GL H 491.25
PAN

125486
LBSNAA

श्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. — 125486 ~~J.D- 1491~~
वर्ग संख्या
Class No. GL Sans 491.25
पुस्तक संख्या
Book No. पाणिनी PAN

॥ ओ३म् ॥

श्रीपाणिनिमुनि प्रणीता

अष्टाध्यायी ।

पाणिनि सूत्रवृत्तिः

सभाष्य

मुरादाबादनगरस्थ वल्लभशास्त्रि संस्कृतपाठशालायाः
प्रधानाध्यापकेन जीवारामेण शर्मणा विरचितया
भाषाटिप्पण्या समलङ्कृता नवीन संस्कृता,

मुरादाबादनगर
लक्ष्मीनारायणनाम्नि मुद्रणयन्त्रे
मुद्रापयित्वा
रहबर कार्य्यालयाधिपतिना च
प्रकाशिता.

ASHTADHYAEE

WITH
ALL THE NECESSARY NOTES
BY

P. JIVA RAM SHARMA

HEAD PANDIT
Public Arya Sanskrit Pathshala Moradabad

PUBLISHED BY THE PROPRIETORS
RAHBER BOOK AGENCY
MORADABAD.

ALL RIGHTS RESERVED.

प्रथमावृत्ति ११००] सन् १९०५ [प्रतिपुस्तकमूल्यम् २)

॥ ओ३म् ॥

अथ पाणिनि सूत्रवृत्तिः

मरणजन्म जराभयवर्जितम्, पतितपावन विश्वविनोदकम् ।
सकल धर्मसुशिक्षकरक्षकम्, निखिलतापहरं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥

अथ शब्दानुशासनम् ।

अइउण् ॥ १ ॥ ऋलृक् ॥२॥ एओङ् ॥ ३ ॥ ऐऔच् ॥ ४ ॥
हयवरट् ॥ ५ ॥ लण् ॥ ६ ॥ ञमङणनम् ॥ ७ ॥ झभञ् ॥ ८ ॥
घढधष् ॥ ९ ॥ जबगडदश् ॥ १० ॥ खफछठथचटतव् ॥ ११ ॥
कपय् ॥ १२ ॥ शषसर् ॥ १३ ॥ हल् ॥ १४ ॥

इति प्रत्याहारसूत्राणि ।

१–अण् । २–अक्, इक्, उक् । ३–एङ् । ४–अच् , इच्, एच् ऐच् । ५–अट् ।
६–अण् इण् यण् । ७–अम् यम्, ङम् । ८–यञ् । ९–झष् भष् । १०–अश्, हश् वश्
भष् जश् बश् । ११–छव् । १२–यय् मय्, झय्, खय्, चय् । १३–यर् झर् खर्, चर्, शर्
१४–अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्, । इतने प्रत्याहार जानने चाहिये ।

॥ प्रत्याहार के प्रत्येक वर्ण का ज्ञान ॥

१ अण्-अ इ उ । २ अक्-अइ उ ऋलृ । ३ अच्-अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ
॥ ४ ॥ अट् अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ॥ ५ अण्-अ इ उ ऋ लृ ए
ओ ऐ औ ह य व र ल ॥ ६ अम्-अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल
ञ म ङ ण न ॥ ७ अश्--अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण
न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ॥ ८ अल्–अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र
ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स
ह ॥ ९ इक्--इ उ ऋ लृ ॥ १० इच्--इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ॥ ११ इण्-इ उ
ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ॥ १२ उक्--उ ऋ लृ ॥ १३ एङ्-ए ओ ॥

॥ वृत्तिप्रयुक्तसङ्केतों की व्याख्या ॥

(१) सूत्र तथा पदच्छेद में ऊपर जो "१-२-३-४-५-६-७" के अङ्क तथा "अ" और "ल" तथा क्रि० अक्षर हैं. उनमें से प्रत्येक अङ्क अपने पदकी विभक्ति को प्रकाशित करता है तथा "अ" अव्यय के लिये क्रि०क्रिया के लिये और "ल" लुप्त विभक्ति के लिये प्रयुक्त है।

(२) उदाहरण में "यथा" शब्दसे आगे जहां कहीं १-२ इत्यादि अङ्क किसी पद के ऊपर लिखा गया है, वह टिप्पणी का बोधक है जो पृष्ठ के अधोभाग में "सूक्ष्माक्षरों में विवृत्त है" ॥

१४ एच्-ए ओ ऐ औ ॥ १५ऐच्-ऐ औ ॥ १६ हश्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ॥ १७ हल्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह॥ १८यण्-य व र ल॥ १९ यम्-य व र ल ञ म ङ ण न ॥ २० यञ्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ ॥ २१ यय्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प ॥ २२ यर्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ॥ २३ वश्-व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ॥ २४ वल्-व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ॥ २५॥ रल्=र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह॥२६मय्--म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प ॥ २७ ङम्--ङ ण न॥ २८ झष् झ भ घ ढ ध ॥ २९ झश्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ॥ ३० झय्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प ॥ ३१ झर्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ॥ ३२ झल्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ॥ ३३ भष्-भ घ ढ ध ॥ ३४ जश्-ज ब ग ड द् ॥ ३५ बश्-ब ग ड द् ॥ ३६ खय्-ख फ छ ठ थ च ट त क प॥३७खर्-ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ॥ ३८ छव्-छ ठ थ च ट त॥३९ चय् च ट त क प ॥४०चर्-च ट त क प श ष स॥ ४१ शर्-श ष स ॥ ४२ शल्-श ष स ह॥

पाणिनिसूत्रवृत्तिः

अथ प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः

वृद्धिरादैच् ॥ १ ॥

वृद्धिः, आत्, ऐच्। आदैचां वृद्धिसञ्ज्ञास्यात्। यथा—शालायांभवः—शालीयः। इतिकस्याऽपत्यम्—ऐतिकायनः। उपगोरपत्यम्—औपगवः।

शालाका। इतिक का लड़का। उपगुकापुत्र। (आत्) आ और (ऐच्) ऐ औ की वृद्धि संज्ञा हो ॥ १ ॥

अदेङ् गुणः ॥ २ ॥

अत्, एङ्, गुणः। अदेङां गुणसंज्ञा स्यात्। यथा—आर्य्योदर्यः। एति। तरिता। चेता। स्तोता। पचे।

आर्यों का उदय। जाता है। तरने वाला। इकट्ठा करने वाला। स्तुतिकरने वाला। मैं पकाता हूं। (अत्) अ और (एङ्) ए ओ की गुण संज्ञा (नाम) हो। २।

इको गुणवृद्धी ॥ ३ ॥

इकः, गुणवृद्धी। गुणवृद्धिशब्दाभ्यां यत्र गुणवृद्धी विधीयेते तत्रेक एव स्थानेस्याताम्। यथा—नयति। अकार्षीत् ॥

गुण वृद्धि शब्दों से जहां गुण वृद्धि विधान की जायें वहां इक् ही के स्थान में हों ॥ ३ ॥

१-(१ । १, ७२) इति सङ्ख्यात्मकेन सूत्रेण वृद्धसंज्ञा। (४ । २ । ११३) इति छः। (७-१-२) इतिछस्येया देशः। (६ । ४ । १४८) इति शालास्थ लकारस्याऽकारलोपः। शालीय इति साधुः॥ २-(४ । १ । ९९) इतिफक्। ३-(४ । १ । ९२) इत्यण ॥ ४ (६ । १, ८७) इति गुणैकादेशः। ५-[६, १, ७८] इत्यवादेशः ॥ ६-[७ । २ । १] इति वृद्ध्यादेशः ॥

न धातुलोप आर्द्धधातुके ॥ ४ ॥

न, धातुलोपे, आर्द्धधातुके । धात्ववयवलोपनिमित्त आर्द्धधातुके परे तन्निमित्तके, इको गुणवृद्धी नस्याताम् । यथा-लोलुवः । मरीमृजः ॥

वार बार काटने वाला । बार २ पवित्र करने वाला । धात्ववयव लोप निमित्तक आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो उसको मान के इक् को गुण वृद्धि नहीं ॥ ४ ॥

क्ङिति च ॥ ५ ॥

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न स्याताम् । यथा-कृतम् । जिष्णुः । चिनुतः ॥

किया । ठहरने वाला । वे दोनों बीनते हैं । गित् कित् ङित् प्रत्यय को मानके इक् को गुण वृद्धि नहीं ॥ ५ ॥

दीधीवेवीटाम् ॥ ६ ॥

दीधीवेव्योरिटश्च गुणवृद्धी न स्याताम् । यथा-आदीध्यनम् । आवेव्यनम् । भविष्यति ॥

प्रकाश । गमन । होगा । दीधी, वेवी और इट् को गुण वृद्धि न हों ॥ ६ ॥

हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ ७ ॥

हलः, अनन्तराः, संयोगः । अज्भिरव्यवहिताहलः संयोगसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा-अग्निः । इन्द्रश्चन्द्रोमन्द्रइति ॥

अच् जिन के अन्तर (मध्य में) न हों ऐसे दो वा अधिक हल् संयोग संज्ञक हों ॥ ७ ॥

१-(३ । १. २२) इतियङ् । (६ । १ । ९) इति द्वित्वम् । [३।१।१३४] इत्यच । (२ । ४ ।७४) इति यङ्लुक् । ७ । ४ । ८२ । इत्यभ्यास गुणः । ६ । ४ , ७७ इत्युवङादेशः , लोलुवइति साधुः ॥ २-७,४, ९० इति रीगागमः ॥ ३--३ । ३ ११४ इतिक्तः ॥ ४-३ । २ , १३९ इतिग्स्नुप्रत्ययः, क्ङिति चेत्यत्र गकारोऽपि चर्त्वभूतो निर्दिश्यते तेन गुणो न भवतीति ॥ ५-,३,३, ११५, इति ल्युट् ७, १,१ इत्यनादेशः ॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ॥ ८ ॥

मुखनासिकावचनः, अनुनासिकः । मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—सँस्कर्त्ता ॥

संस्कारकरने वाला । मुख सहित नासिका से जिस का उच्चारण हो वह वर्ण अनुनासिक संज्ञक हो ॥ ८ ॥

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ॥ ९ ॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयंयस्ययेनतुल्यं तन्मिथः सवर्णसञ्ज्ञः स्यात् । यथा--दण्डाग्रम् ।

(ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) । होतृ+ऌकारः = होतॄकारः ॥

दण्ड का अग्रभाग । तालु आदिस्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिस वर्णका जिस वर्ण के साथ तुल्य हो वह उसके साथ सवर्ण संज्ञक हो ॥ ९ ॥

नाज्झलौ ॥ १० ॥

न, अच्हलौ । तुल्यस्थानप्रयत्नावप्यज्झलौमिथः सवर्णसञ्ज्ञकौ नस्याताम् । यथा--दधिशीतलम् ॥

ठण्डा दही । तुल्य स्थान और प्रयत्न वाले भी अच् और हल् परस्पर सवर्ण संज्ञक न हों ॥ १० ॥

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् ॥ ११ ॥

ईदूदेत्, द्विवचनम्, प्रगृह्यम् । ईत्, ऊत्, एत्, इत्येवमन्तं द्विवचनं शब्दरूपं प्रगृह्यसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--कवी आस्ताम् । साधू उपदिशतः । बालिके इमे ॥

दो शायर थे । दो साधु उपदेश करते हैं । ये दो लड़कियां । ईदन्त ऊदन्त और एदन्त जो द्विवचनान्त शब्द रूप वह प्रगृह्य संज्ञक (ज्यों का त्यों) हो ॥ ११ ॥

१—(६ । १ । १०१) इति दीर्घः ॥ २—(६, २, १२५) इति प्रकृति भावः ॥

अदसोमात् ॥ १२ ॥

अदसः, मात् । अस्मात्परावीदूतौप्रगृह्यसञ्ज्ञकौस्याताम् । यथा—अमी अधीयते । अमू आर्य्यौ ॥

वे पढ़ते हैं। वे दोनों आर्य हैं। अदस् शब्द के मकार से परे ईकार और ऊकार प्रगृह्यसञ्ज्ञक हों ॥ १२ ॥

शे ॥ १३ ॥

शयेतच्छब्द रूप प्रगृह्य संज्ञंस्यात्। यथा--अस्मेइन्द्रा बृहस्पतिः ॥

हमारे लिये इन्द्र (बिजुली) और बृहस्पति (सूर्य) । वेद में सुबादेश शे प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १३ ॥

निपात एकाजनाङ् ॥ १४ ॥

निपातः, एकाच्, अनाङ् । आङ् वर्जितएक ज्निपातः प्रगृह्य-सञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—उ उत्तिष्ट ॥

अरे उठ । आङ् वार्जित एकाचनिपात प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १४ ॥

ओत् ॥ १५ ॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा--उताहो इदम् ॥

अथवा यह । ओदन्त निपात प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १५ ॥

सम्बुद्धौशाकल्यस्येतावनार्षे ॥ १६ ॥

सम्बुद्धौ । शाकल्यस्य । इतौ । अनार्षे । सम्बुद्धिनिमित्त ओकारो वा प्रगृह्य संज्ञकः स्यादवैदिक इतौ परे। यथा--प्रभो इति प्रभविति । प्रभ इति ।

हे स्वामिन् यह । अवैदिक इति शब्द परे हो तो सम्बुद्धि निमित्त ओकार शाकल्य जी के मत में प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १६ ॥

१-(६ । १ । ७८) अवादेशः । २-(८-३-१९, इति वावलोपः ॥

उञः ॥ १७ ॥

अवैदिक इतौ परे उञो वा प्रगृह्य संज्ञा स्यात्।यथा--उइति,विति

उञ यह । अवैदिक इति शब्द पर हो तो शाकल्य के मत में उञ प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १७ ॥

ऊँ ॥ १८ ॥

उञइतौदीर्घोऽनुनासिकःप्रगृह्यश्चऊँइत्ययमादेशोवा स्यात् । यथा--उ इति, विति, ऊँ इति ॥

ऊँ यह । अवैदिक इति शब्द परे हो तो शाकल्य के मत में उञ के स्थान में हुआ ऊँ प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १८ ॥

ईदूतौ च सप्तम्यर्थे ॥ १९ ॥

सप्तम्यर्थेवर्त्तमानमीदूदन्तंशब्दरूपंप्रगृह्यसंज्ञं स्यात् । यथा-सोमोगौरी अधिश्रितः । मामकी, तनूइति ॥

चन्द्र सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है। यह मेरे शरीर में। सप्तमी के अर्थ में वर्त्तमान जो ईदन्त और ऊदन्त शब्द रूप वह प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १९ ॥

दाधाघ्वदाप् ॥ २० ॥

दाधा । घु । अदाप् । दाब्दैपौविहायदाधारूपाधातवो घु-संज्ञकास्स्युः । यथा-दीयते । धीयते ॥

दिया जाता है। धारण किया जाता। दाप् और दैप् को छोड़कर दाधा रूप धातु संज्ञक हों ॥ २० ॥

आद्यन्तवदेकस्मिन् ॥ २१ ॥

आद्यन्तवत् । एकस्मिन् । एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमाद्यन्तवत् स्यात् । यथा--आभ्याम् ।

इन दोनों ने। एक में किया हुआ कार्य आदि और अन्त के तुल्य (नाई) हो ॥ २१ ॥

१-[७ । १ । ३९] इतिसुपां सुलुक्. २ [६, ४, ६६] इतीत्वम् ॥

तरप्[1]तमपौ[2] घः ॥ २२ ॥

इमौ घसंज्ञकौ स्यातास् । यथा—कुमारितरा । कुमारितमा ॥

दोनों में से यह अधिक तर बालिका है । सब में यह अधिक ही बालिका है ।
तरप् और तमप् प्रत्यय घ संज्ञक हों ॥ २२ ॥

बहुगणवतुडति[1]सङ्ख्या[2] ॥ २३ ॥

इमे सङ्ख्या सञ्ज्ञकाः स्युः।यथा—बहुकृत्वः[3]।गणधा[4]।तावच्छः[5]।कतिकः[6]।

बहुतवार करके । सङ्ख्या की तरह । तबतक । कितने से लिया गया ॥ बहु, गण, वतु और डति संख्या संज्ञक हों ॥ २३ ॥

ष्णान्ता[1] षट्[2] ॥ २४ ॥

षान्ता नान्ता च सङ्ख्या षट्सञ्ज्ञिका स्यात् । यथा—षट्तिष्ठन्ति । षट्पश्य । पञ्च पठन्ति । पञ्चपश्य ॥

छः पढ़ते हैं । छः को देख । पांच पढ़ते हैं । पांचकोदेख । षकारान्त और नकारान्त सङ्ख्याषट्संज्ञक हो ॥ २४ ॥

डति च ॥ २५ ॥

डत्यन्ता सङ्ख्या षट् सञ्ज्ञिका स्यात् । यथा-कति गच्छन्ति कति छात्रानध्यापयानि ॥

कितने जाते हैं।कितने विद्यार्थियोंको पढ़ाऊं॥डति प्रत्ययान्त सङ्ख्या षट्संज्ञकहो २४

क्तक्तवतू[1] निष्ठा[3] ॥ २६ ॥

इमौ निष्ठा सञ्ज्ञकौ स्यातास् । यथा--स्तुतस्तेन विष्णुः । स्नातं-मयका । विष्णुर्विश्वं कृतवान् ॥

मैंने स्नान किया । उसने विष्णु की स्तुति की । ईश्वर ने संसार रचा । क्त और क्तवतु प्रत्यय निष्ठा संज्ञक हों ॥ २६ ॥

---

१ [५, ३, ५७] तरप् (६, ३, ४३) २ (५, ३, ५५) इति तमप् ॥ ३--(५ ४-१७) इतिकृत्वसुच् ४ [५, ३, ४२] इतिधा. ५ (५, ४, ४२) इति शस्. ६ (५, २, ४१) इति डति. (५ १ २२) इति कन . ७ (७, १, २२) इति जश्शसोर्लुक ८ [३, ४, ७१] इति कर्तरिक्तवतू:. ९ [३, ३, ११४] इति नपुंसकेभावेक्तः ॥

सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ २७ ॥

सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसञ्ज्ञानि स्युः । यथा—सर्वे । सर्वस्मै । सर्वस्मात् । सर्वेषाम् ॥

सब । सबकेलिये । सबसे । सबका, के, की ॥ सर्व आदि शब्द सर्वनाम संज्ञक हों ॥ (गण पठित शब्द सर्वत्र पृष्ठके अधोभागमें अङ्कित हैं)

विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ ॥ २८ ॥

दिगुपदिष्टे बहुव्रीहौ समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि वा सर्वनाम सञ्ज्ञानिस्युः । यथा—उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै ॥

उत्तर पूर्व (ईशान) दिशाके लिये ॥ दिशा वाचीय शब्दों के बहुव्रीहि समास में सर्वादि शब्दरूप सर्वनाम संज्ञक विकल्पसे हों ॥ २८ ॥

न बहुव्रीहौ ॥ २९ ॥

बहुव्रीहौ समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनाम सञ्ज्ञानि न स्युः। यथा—प्रियविश्वाय ॥

सब संसारको प्यारकरनेवाले के लिये ॥ बहुव्रीहि समास में सर्वादि शब्द सर्वनाम संज्ञक न हों ॥ २९ ।

तृतीयासमासे ॥ ३० ॥

तृतीयासमासेवाक्ये च सर्वनामत्वं नो स्यात् । यथा—मास पूर्वाय-- मासेन पूर्वाय ॥

एक मास पूर्वको ॥ तृतीया के समास और वाक्य में सर्वादि शब्द रूप सर्वनाम संज्ञक न हों ॥ ३० ॥

१–(७ । १ । १७) इति शी ॥ २– ७ । १ । १४) इति स्मै ॥ ३-(७ । १ । १५) इति स्मात् ४-(७ । १ । ५२) इति सुट् ॥ ५-(७ । ३ । ५ ११४) इति स्याट् । ६-(७ । ३ । ११३) इति याट् ॥

+ सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, (पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्) (स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्) (अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः त्यद्, तद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ॥

द्वन्द्वे च ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वे च समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसञ्ज्ञानि न स्युः। यथा--वर्णाश्रमेतराणाम् ॥

वर्ण और आश्रम से भिन्नों का ॥ द्वन्द्व समास में सर्वादिशब्द रूप सर्वनाम संज्ञक न हों ॥ ३१ ॥

विभाषा जसि ॥ ३२ ॥

द्वन्द्वे समासे जसि सर्वादीनि शब्दरूपाणि वा सर्वनामसञ्ज्ञानि स्युः। यथा--वर्णाश्रमेतरे, वर्णाश्रमेतराः ॥

द्वन्द्व समास में जस्विभक्ति परे हो तो सर्वादि शब्द रूप विकल्पसे सर्वनामसंज्ञक हों ३२

प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च ३३

प्रथम चरमतयाल्पार्द्ध कतिपयनेमाः, च। इमे जसि वा सर्वनाम सञ्ज्ञकाः स्युः। यथा-प्रथमे, प्रथमाः। चरमे, चरमाः। द्वितये, द्वितयाः। अल्पे, अल्पाः। अर्द्धे, अर्द्धाः। कतिपये, कतिपयाः। नेमे, नेमाः(तीयस्य ङित्सुवा) यथा-द्वितीयस्मै, द्वितीयाय। इत्यादि॥

पहिले सब। पिछले सब। दूसरे। थोड़े। आधे। कुछ, कितने। आधे॥ प्रथम, चरम, तयप्रत्यान्त, अल्प, अर्द्ध, कतिपय और नेम शब्द जस् में विकल्प से सर्वनाम संज्ञक हों ॥ ३३ ॥

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम ॥ ३४ ॥

पू० णि०। व्य० याम्। अ० याम्। एषांव्यवस्थायामसञ्ज्ञायां जसि वा सर्वनामसञ्ज्ञा स्यात्। यथा--पूर्वे, पूर्वाः। परे, पराः। अवरे, अवराः। दक्षिणे, दक्षिणाः। उत्तरे, उत्तराः। अपरे, अपराः। अधरे, अधराः ॥

पहिले (सब)। अगले। पिछले। दाहिने। बायें। दूसरे। नीचे के ॥ पूर्व,

पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर और अधर ये असञ्ज्ञावाचक शब्द जस् परे होतो विकल्पसे व्यवस्था अर्थ में सर्वनाम संज्ञक हों ॥ ३४ ॥

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ ३५ ॥

स्वम् । अज्ञातिधनाख्यायाम् । ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य जसि वा सर्वनाम संज्ञा स्यात् । यथा--स्वेबालाः । स्वाबालाः ॥

अपने लड़के ॥ ज्ञातिऔरधनसेभिन्नअर्थकावाचीस्व शब्दजस् में विकल्पसे सर्वनामसंज्ञक हों । ३५ ॥

अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥३६॥

बहिर्योगोपसंव्यान गम्यमानेऽन्तरमित्येतच्छब्दरूपंजसि वा सर्वनामसञ्ज्ञंस्यात् ॥ यथा—अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः ।
अन्तरे, अन्तरा वा शाटकाः ॥

बाहिरी घर पहिनने योग्य धोती ॥ बहिर्योग और उपसंव्यान गम्यमान होतो अन्तर शब्द जस् में विकल्प से सर्व नाम संज्ञक हो ॥ ३६ ॥

स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ ३७॥

स्वरादिनिपातम्, अव्ययम् । स्वरादयोनिपाताश्चाऽव्ययसंज्ञकास्स्युः । यथा—स्वर् ॥

स्वरादि और निपात शब्द अव्ययसंज्ञक हों ॥ ३७ ॥

* स्वर्, अन्तर्, प्रातर्, पुनर्, सनुतर्, उच्चैस्, नीचैस्, शनैस्, ऋधक्, ऋते, युगपत्, आरात्, पृथक्, ह्यस्, श्वस्, दिवा, रात्रौ, सायम्, चिरम्, मनाक्, ईषत्, जोषम्, तूष्णीम्, बहिस्, अवस्, समया, निकषा, स्वयम्, वृथा, नक्तम्, नञ् हेतौ, इद्धा, अद्धा, सामि, वत्, ब्राह्मणवत्, क्षत्रियवत्, सना, उपधा, सनत्, सनात्, तिरस्, अन्तरा, अन्तरेण, ज्योक्, कम्, शम्, सहसा, विना, नाना, स्वास्ति, स्वधा, अलम् वषट्, श्रौषट्, वौषट्, अन्यत्, अस्ति, उपांशु, क्षमा, विहायसा, दोषा, मृषा, मिथ्या, मुधा, पुरा, मिथो, मिथस्, प्रायस्, मुहुस्, प्रवाहुकम्, प्रवाहिका, आर्यहलम्, अभीक्ष्णम्, साकम्, सार्धम्, नमस्, हिरुक्, धिक्, अथ, अम्, आम्, प्रताम्, प्रशान्, मा, माङ्, आकृतिगणोऽयम् । च, वा, ह, अह, एव, एवम्, नूनम् शश्वत्, युगपत्, भूयस्, कूपत्, सूपत्, कुवित्, चेत्, चण्, यत्र, कच्चित्, नह, हन्त माकि, माकिम्, नकि, नकिम्, नकिर्, माङ्, नञ्, यावत्, तावत्, त्वै, न्वै, द्वै, रै,

तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः ॥ ३८ ॥

तद्धितः, च, असर्वविभक्तिः । यस्मात्सर्वाविभक्तिर्नोत्पद्यते ऽसौतद्धितान्तोऽव्ययसंज्ञकः स्यात् । यथा--यतः[1], ततः । यत्र[2], तत्र ।

चूंकि । तब, पश्चात् । जहां । वहां ॥ असर्वविभक्ति (जिस से कि सर्व विभक्ति न हों) ऐसा तद्धित प्रत्यान्त शब्द अव्यय संज्ञक हो ॥ १८ ॥

कृन्मेजन्तः ॥ ३९ ॥

कृत्, मेजन्तः । कृद्योमान्तः, एजन्तश्च तदन्तशदरूपमव्यय संज्ञंस्यात् । यथा--स्मारंस्मारम्[3] । वक्षे[4] ॥

याद कर २ के । कहने को ॥ मकारान्त और एजन्त कृत् प्रत्यय अव्यय संज्ञक हों ॥ ३९ ॥

क्त्वातोसुन्कसुनः ॥ ४० ॥

एतदन्तंशब्दरूपमव्ययसंज्ञंस्यात् । यथा--कृत्वा[5] । उदेतोः[6] । पुरा क्रूरस्य विसृपः[7] ॥

करके । प्राप्त करना चाहिये । चारों ओर से शत्रुओंके जीतने में विजयी । क्त्वा तोसुन् और कसुन् जिनके अन्त में हों ऐसे शब्द अव्यय संज्ञक हों ॥ ४० ॥

अव्ययीभावश्च ॥४१॥

अव्ययीभावः च । अव्ययी भावसमासोऽव्ययसञ्ज्ञः स्यात् । यथा--उपाऽग्नि ॥

अग्नि के पास ॥ अव्ययीभाव समासअव्यय संज्ञक हो ॥ ४१ ॥

श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा, स्वधा, वषट्, तुम्, तथाहि, खलु, किल, अथ, सुष्ठु, स्म, आदह । उपसर्गविभक्तिप्रतिरूपकाश्च । अवदत्तम्, अहंयुः, अस्तिक्षीरा, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, पशु, शुकम्, यथा, कथा, च, पाट, प्याट्, अङ्ग, है, हे, भोः, अये, द्य, विषु, एकपदे, युत्, आतः । चादिरप्याकृतिगणः ॥

१-(५ । ३ । ७) इति तसिल् । २-[५।३।१०] इति त्रल् । ३-[३ । ४ । २२] इति णमुल् । ४-(३।४।८) इति से । ५ [३ । ४ । २१] इति क्त्वा । ६-(३ । ४ । १६) इति तोसुन् । ७-[३।४।१७] इति कसुन् ।

शि सर्वनामस्थानम् ॥४२॥

शि इत्येतच्छब्दरूपं सर्वनामस्थानसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--पुस्तकानिसन्ति । पुस्तकानिपश्य ॥

पुस्तकें हैं । पुस्तकें देख ॥ जस् और शस् के स्थान में हुआजो शि आदेश वह सर्वनामस्थान संज्ञक हो ॥ ४२ ॥

सुडनपुंसकस्य ॥ ४३ ॥

सुट्, अनपुंसकस्य । सुट्प्रत्याहारः स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थान सञ्ज्ञानिस्युरनपुंसकस्य । यथा–राजा,राजानौ, राजानः, राजानम्, राजानौ ॥

बादशाह ॥ नपुंसक से इतर लिङ्ग का सुट् सर्वनाम स्थान संज्ञक हो ॥४३॥

नवेतिविभाषा ॥४४ ॥

नवा, इति, विभाषा । निषेधविकल्पयोर्विभाषा सञ्ज्ञास्यात् । यथा–शुशाव, शिश्वाय ॥

गया ॥ नवाशब्दके अर्थकी विभाषा संज्ञाहो ॥ ४४ ॥

इग्यणः संप्रसारणम् ॥४५॥

इक्, यणः, सम्प्रसारणम् । यणःस्थानेप्रयुज्यमानोयइक्सः सम्प्रसारणसञ्ज्ञः स्यात् । यथा–इष्टम् । उप्तम् । गृहीतम् ॥

यज्ञकिया । बोया । लिया ॥ यण्के स्थान में प्रयुक्त इक सम्प्रसारण संज्ञक हो ४५

आद्यन्तौटकितौ ॥ ४६ ॥

टित्कितौयस्योक्तौतस्यक्रमादाद्यन्ताऽवयवौस्याताम् । यथा–लविता । भीषयते ॥

१-(७ । १ । ७२) इतिनुमागमः;२-(६ । ४ । ८) इतिदीर्घत्वम् (८ । २ । ७) इति नकारलोपः। ३-६ । १.३० इति वा सम्प्रसारणम्। ४-(६ । १ । १५) इति सम्प्रसारणम्. ५-(७ । २ । ३७) इतांटोदीर्घः ॥ ६-७.३.४० इति षुक्.

काटनेवाला । डराता है ॥ टित् और कित् जिसको कहे हों उसके आदि और अन्तके अवयवक्रमसे हों । अर्थात्टित्आगमआदिमेंऔरकित् अन्तमेंहो) ॥ ४६ ॥

मिदचोऽन्त्यात्परः ॥ ४७ ॥

मित्, अचः, अन्त्यात्, परः । अचांमध्येयोऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवाऽन्तावयवोमितस्यात् । यथा–धनानि[3] । वनानि ॥

धन । वन । मित् आगम अन्त्य अच् से परे उसका अवयवरूप हो ॥ ४७ ॥

एच इग्घ्रस्वादेशे ॥ ४८ ॥

एचः इक्, ह्रस्वादेशे । ह्रस्वादेशेकर्त्तव्येएचःस्थाने इगेव स्यात् । यथा–अतिरि । अतिनु । उपगु ॥

निर्धन (कुल) विना नाव वाला । गौकेपास ॥ एच्को ह्रस्वादेश करनेमें इक्हीहो ॥ ४८ ॥

षष्ठीस्थानेयोगा ॥ ४९ ॥

अनिर्धारितसम्बन्धविशेषाषष्ठीस्थानेयोगाबोध्या । स्थानंचप्रसंगः । यथा–वक्ता[4] ॥

कहने वाला । जिस षष्ठी का कोई सम्बन्ध नियत नहीं उसका स्थानमें योग हो ॥ ४९ ॥

स्थानेऽन्तरतमः ॥ ५० ॥

प्रसंगसतिसदृशतम,आदेशःस्यात् । यथा--कार्यालयः ॥

दफ्तर । स्थानमेंप्राप्तआदेशअत्यन्तसदृशतमहो ॥ ५० ॥

उरण्रपरः ॥ ५१ ॥

१-[७, २, ३५] इतीडागमः, २-(७, ३, ४०) इति षुगागमः । ३-(७, १, ७२) इति नुमागमः ४-[२, ४, ५३] इति वचादेशः,

उः, अण्, रपरः। उःस्थानेजायमानोयोऽण् स रपरःसन्नेवप्रवर्त्तते॥ यथा-कर्त्ता। हर्त्ता॥

करने वाला। हरने वाला॥ ऋकेस्थानमेंप्राप्तहुआ अण् तत्काल रपरहुआ ही प्रवृत्तहो॥ ५१॥

अलोऽन्त्यस्य ॥ ५२ ॥

अलं अन्त्यस्य। षष्ठीनिर्दिष्टस्याऽन्त्यस्यालआदेशःस्यात्। यथा-दशगोणिः॥

दशगोनोंसेलियाहुआ॥ षष्ठीनिर्दिष्टआदेशअन्त्यअल्केस्थानमेंहो॥ ५२॥

ङिच्च ॥ ५३ ॥

ङित्, च। अनेकालोऽपिङिच्चादेशोऽलोन्त्यस्यस्यात्। यथा-मातापितरौ॥

मा बाप॥ अनेकाल भी ङित् आदेश अन्त्यअल्के स्थानमें हो॥ ५३॥

आदेःपरस्य ॥ ५४ ॥

परस्ययत्कार्यंविहितंतत्तस्यादेर्बोध्यम्। यथा-आसीनः॥

बैठाहुआ। परकोकहाकार्यउसकेआदिअल्कोहो॥ ५४॥

अनेकाल्शित् सर्वस्य ॥ ५५ ॥

अनेकालादेशःशिच्चषष्ठीनिर्दिष्टस्यसर्वस्यस्थानेस्यात्। यथा-वक्ता। वनानि॥

अनेकाल्औरशित्आदेशसम्पूर्णषष्ठीनिर्दिष्टकेस्थानमेंहो॥ ५५॥

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥ ५६ ॥

१—(३। १। १३३) इति तृच्। (७. १. ९४.) इत्यनङादेशः। [८. ४. ४६] इतिद्वित्वम्. २-(१. २. ५०) इतीदादेशः. ३—(६. ३. २५) इत्यनङादेशः॥

४-आस उपवेशने, अनुदात्तेत् ईदासः। परस्य यदिति। तस्मादित्युत्तरस्यादेः, इति न सूत्रितम्, आदेरित्यंशस्य सर्वादेशबाधकत्वापत्तेः। सिद्धान्ते तु परत्वात्सर्वादेशत्वं बाधकमित्यनुपदमेव वक्ष्यति। आदेर्बोध्यमिति। आदेरलोबोध्यमित्यर्थः। इति त०बो०॥

स्थानिवत्, आदेशः, अनल्विधौ । अनल्विधावादेशःस्थानिवत् स्यात् । यथा—बालकाय ॥

बालक के लिये । अल् (एकवर्ण) आश्रित कार्य्य को छोड़कर इतरकार्य्य करने में आदेश स्थानिवत् हो ॥ ५६ ॥

अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥ ५७ ॥

पूर्वविधौ कर्त्तव्ये परनिमित्तोऽजादेशःस्थानिवत्स्यात्।यथा—अवधीत्

उसने मारा ॥ पूर्व की विधि करने में पर निमित्तक अच् के स्थानमें जो आदेश वह स्थानिवत् हो ॥ ५७ ॥

नपदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णाऽनुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु ॥ ५८ ॥

एषु विधिषु परनिमित्तोऽजादेशो नस्थानिवत् । यथा—कानि सन्ति । दद्ध्यत्र । यायावरः । कण्डूतिः । चिकीर्षकः । पिण्ढि । पिंषन्ति । प्रतिदीव्नां । सग्धिः । जक्षतुः ॥

कौन हैं । यहां दही । पूजनीय । खुजली । करने की इच्छा करने वाला । पीस । पीसते हैं । प्रकाश से । समान भोजन । उन दोनों ने खाया ॥ पदान्त द्विर्वचन, वरे, यलोप, स्वर, सवर्ण, अनुसार, दीर्घ, जस्, और चर्, विधि के करने में पर निमित्त जो अच् के स्थान में आदेश वह स्थानिवत् न हो ॥ ५८ ॥

१-"७-१-१३" इति यकारादेशः "७-३-१०२" इति दीर्घः. २-"६-४-४८' इति धकारेऽकार लोपः' स्थानिभावत्वा "७-२-७" दिति न वृद्धिः ३-"६-४-१११ " इत्यसाकारलोपः स्थानिवत्वा "६-१-७७" दिति यण् प्राप्तिः सानो ४-"८-४-४६" इति द्वित्वम्. स्थानित्वात्. ५-"३-२-१७६' इति वरच्. "६-४-४८" इति यङकार लोप स्थानित्वात् "६-४-६४" इति द्वितीय यकारे अकारलोपः सन. ६—"३-३-१७४" इति क्तिच् "६-४-४८" इति यकारलोपः; स्थानित्वा " ६ १-६६" दिति यकारलोपः सन. ७--"३-१-१३३" इति ण्वुलि कृतेऽतोलोपो न स्थानिवत् "६ १-१९०' इति प्रत्ययात् पूर्व मुदात्तम्. ८-"३ १-७८" इतिश्नम् "३ ४ ८७" इति ह्यादेशः "१-१.४७' इति मिदागमः "६-४ १०१" इति ध्यादेशः "८-४-४०" इति ष्टुत्वम्. "८-२-३९' इतिजश्त्वम्. "६-४-१११" इत्यकारलोपः. "८-२-२३" इति षकार लोपे कृते सति स्थानित्वा "८-४-५८" दिति पर सवर्णो न. ९-"८ ३ २४' इत्यनुस्वारे कृते "६-४,१११" इत्याकारलोपो न स्थानिवत. १०-"६,४,१३४" इत्यकारलोपः स्थानित्वा ' ८-२. ७७, दिति दीर्घत्वं न. ११-' २ ४ ३९ ' घस्लादेश ' ६-४ १०० ' इत्युपधा लोपः ' ८-२-२६ इति सकार लोपः ' ८,२, ४० ' इति धत्वम् उपधालोपस्य स्थानित्वा ' ८,४,५२ ' दिति धकारस्य जश्त्वं न. १२—'२,४,४० ' इति घस्लादेशः ' ६,४,९८ , इत्युपधालोपः, अत्रोपधा लोपस्य स्थानित्वा ' ८,४,५४ ' दिति चर्त्वं न स्यादस्माद् वचनाद् भवति ८' ,३,६० इति षत्वम् ॥

द्विर्वचनेऽचि ॥ ५९ ॥

द्वित्वनिमित्तेऽचिपरे ऽजादेशः स्थानिवत् स्यात्-द्वित्वे कर्त्तव्ये । यथा—पपतुः[1] । पपुः ॥

उन दोनों ने पिआ । उन्हों ने पिआ ॥ द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो परनिमित्त अच् के स्थान में जो आदेश वह स्थानिवत् हो द्वित्व करने में ।५९।

अदर्शनं लोपः ॥ ६० ॥

प्रसक्तस्या ऽदर्शनं लोपसञ्ज्ञंस्यात् । यथा—गौधेरः[2] ॥

गोह का वच्चा ॥ विद्यमान का अदर्शन लोप संज्ञक हो ॥ ६० ॥

प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः ॥ ६१ ॥

प्रत्ययस्याऽदर्शनस्य लुक्श्लु लुप इत्येताः संज्ञाः स्युः । यथा-अत्ति[3] । जुहोति[4] । वरणाः[5] ।

वह खाता है । वह होम करता है । प्रत्यय के अदर्शन की लुक् श्लु और लुप् संज्ञा हो ॥ ६१ ॥

प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥ ६२ ॥

प्रत्ययलुप्तेऽपि तदाश्रितं कार्य्यं स्यात् । यथा-अग्निचित् ।

अग्नि का चुनने वाला ॥ प्रत्यय के लोप होने पर भी उस प्रत्यय को मान के तदाश्रित कार्य हो ॥ ६२ ॥

न लुमताऽङ्गस्य ॥ ६३ ॥

न, लुमता, अङ्गस्य । लुक्, श्लु, लुप् इमे लुमन्तः । लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्य्यं न स्यात् । यथा—कति[6] ॥

कितने । लु वाले शब्द से प्रत्यय का लोप हो तो उस के परे जिस की अङ्गसञ्ज्ञा की है, उसको प्रत्यय लक्षण कार्य न हो ॥ ६२ ॥

१-(६-४-६४) इत्याकार लोपः २-(४-१-१२९) इति ढ्रक् । (७ । १ , २) इत्ययादेशः । ३-(२-४-७२) इति शपोलुक् ४-(२-४-७५) इति शपः श्लुः ५-(४-२-८१) इति लुप् ६-(७, ३-१०९ इतिगुणो न ॥

अचोऽन्त्यादिटि ॥ ६४ ॥

अचः, अन्त्यादि, टि । अचांमध्येयोऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—सोमसुत् ॥ ६४ ॥

सोम के रसको खींचने वाला । अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् वह है आदि में जिस समुदाय के वह समुदाय टि संज्ञक हो ॥ ६४ ॥

अलोन्त्यात् पूर्व उपधा ॥ ६५ ॥

अलः, अन्त्यात्, पूर्वः, उपधा । अन्त्यादलः पूर्वोवर्ण उपधा सञ्ज्ञः स्यात् । यथा—पठ् । पच् ॥

यहां ठ तथा च से पूर्व पकार में अकार की उपधा संज्ञा है । अन्त्य अल् से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा हो ॥ ६५ ॥

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥ ६६ ॥

तस्मिन्, इति, निर्दिष्टे, पूर्वस्य । सप्तमी निर्देशेन विधीयमानं कार्य्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य पूर्वस्यज्ञेयम् । यथा—दध्यानय ॥

दही ला । सप्तमी विभक्ति से विधान किया हुआ कार्य्य व्यवधानरहित पूर्वको हो ॥

तस्मादित्युत्तरस्य ॥ ६७ ॥

तस्मात्, इति उत्तरस्य । पञ्चमी निर्देशेन विधीयमानं कार्य्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य परस्य बोध्यम् । यथा—उत्तम्भनम् ॥

ठहरना । पञ्चमी विभक्ति से परे कहा कार्य्य व्यवधान रहित उत्तरको हो ६७॥

स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसञ्ज्ञा ॥ ६८ ॥

१–(३ । २ । ६०) इति क्विप् । (६ । १ । ७१) इति तुक् ।

स्वम्, रूपम्, शब्दस्य, अशब्दसञ्ज्ञा। शब्दसञ्ज्ञां विहायेह शास्त्रे स्वमेवरूपं शब्दस्य ग्राह्यं (प्रत्याय्यं) स्यात्। यथा-अग्नेर्ढक्, वह्नेर्नस्यात्॥

अग्नि शब्द से ढक् प्रत्यय हो परन्तु उसके पर्याय वाचीय वह्नि आदिकों से नहो। शब्दसञ्ज्ञा को छोड़कर व्याकरण में शब्द के स्वरूप का ही ग्रहण हो॥ ६८॥

अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः ॥६९॥

अणुदित्, सवर्णस्य, च, अप्रत्ययः। प्रत्ययं विहाय, अण्, उदिच्च सवर्णानां ग्राहकः स्यात्। अत्राण् परेण णकारेण। यथा-अण्। कु, चु, टु, तु, पु, एते उदितः॥ ६९॥

प्रत्यय रहित अण और उदित् सवर्ण के और स्वीयरूपके भी ग्राहक हों॥ ६९॥

तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥

तपरः, तत्कालस्य। तः परोयस्मात्सच, तात्परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैवग्राहकः स्यात्। यथा-वेदैः॥

वेदों से। तकार जिससे परे हो अथवा तकार से जो परे हो वह अपने काल का ग्राहक हो॥ ७०॥

आदिरन्त्येन सहेता ॥ ७१ ॥

आदिः, अन्त्येन, सह, इता। अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां वर्णानां स्वस्यच ग्राहकः स्यात्। यथा-अण्। अक्। अच्। हल्॥

आदिवर्ण अन्त्य इत् के साथ मिलकर मध्यस्थ और स्वीय स्वरूपका ग्राहक हो ७१

येन विधिस्तदन्तस्य ॥ ७२ ॥

येन, विधिः, तदन्तस्य। येन विशेषणेन विधिर्विधीयते तदन्तस्य

स्यात्, स्वस्य च रूपस्य । यथा—चेयः । जयः ॥ ७२ ॥

इकट्ठाकरना । जीत । जहां जिस विशेषण से विधि विधान किया जावे वहां तदन्त को कार्य्यहो ॥ ७२ ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥ ७३ ॥

वृद्धिः, यस्य, अचाम्, आदिः, तत्, वृद्धम् । यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिः, तद्वृद्धसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—शालीयः ॥

जिस समुदाय के अचों का आदि अच्वृद्धिहो वह वृद्धसञ्ज्ञकहो ॥ ७३ ॥

त्यदादीनि च ॥ ७४ ॥

त्यदादीनि वृद्धसञ्ज्ञानि स्युः । यथा—त्यदीयम् । मदीयम् ॥

उसका, के, की । मेरा, रे, री । त्यदादिशब्दरूप वृद्धसञ्ज्ञकहों ॥ ७४ ॥

एङ् प्राचां देशे ॥ ७५ ॥

एङ् यस्याचामादिः-तद्वृद्धसञ्ज्ञं वा स्याद्देशाभिधाने । यथा-एणीपचनीयः । भोजकटीयः ॥

एणीपचनका रहनेवाला । भोजकटकारहनेवाला । जिस समुदायके अचोंकाआदि अच् एङ्हो वह पूर्वियों के देश में वृद्धसंज्ञकहो ॥ ७५ ॥

इतिप्रथमाऽध्यायस्य प्रथमःपादः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ॥ १ ॥

गाङ्कुटादिभ्यः, अञ्णित्, ङित् । गाङादेशात्कुटादिभ्यश्चपरेऽञ्-

१—(३ । ३ । ५६) इलच् ।

णितःप्रत्ययाङ्तिःस्युः । यथा—अध्यगीष्ट । कुटितुम् ॥

बहपढ़ा । कुटिलताकरनेको । गाङ्‌आदेश और कुटादि धातुओंसे परे जोञ्तित् और णित् से भिन्न प्रत्यय वे ङित्वत्हों ॥ १ ॥

विजइट् ॥ २ ॥

विजः, इट् । विजः परे,इडादिः प्रत्ययो ङिद्वत्स्यात् । यथा—उद्विजितुम् ॥

डरनेको । विज (ओविजी) धातुसे परे इडादि प्रत्यय ङित् वत् हो ॥ २ ॥

विभाषोर्णोः ॥ ३ ॥

विभाषा, ऊर्णोः । ऊर्णोर्धातोः परे, इडादिप्रत्ययो वा ङिद्वत् स्यात् । यथा—प्रोर्णुविता, प्रोर्णविता ॥

ढांकनेवाला । ऊर्णुञ् धातु से परे इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित् वत् हो ॥ ३ ॥

सार्वधातुकमपित् ॥ ४ ॥

सार्वधातुकम्, अपित् । अपित् सार्वधातुकं ङिद्वत् स्यात् । यथा कुरुतः । कुर्वन्ति ॥

वेदोनो करते हैं : वे करते हैं । अपित् (प जिसका इत् गया हो)सार्वधातुक प्रत्यय ङित् वत हो ॥ ४ ॥

असंयोगाल्लिट्कित् ॥ ५ ॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् । यथा--बिभिदतुः ॥

उनदोनोंने फाड़ा । असंयोगान्त धातुसे परे अपित् लिट् प्रत्यय कित्वत्हो ॥ ५ ॥

१--(२ । ४ । ५०) ङ्गतगाङादेशः । (६ । ४ । ६६) इत्वम् ।

इन्धिभवतिभ्यां च[अ] ॥ ६ ॥

आभ्यां परो लिट् किद्वत् स्यात्। यथा—पुत्र ईधे अथर्वणः। बभूव, बभूविथ ॥ (श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति वाच्यम् ॥)

यथा—श्रेथतुः, श्रेथुः। ग्रेथतुः, ग्रेथुः। देभतुः, देभुः। परिषस्वजे, परिषस्वजाते ॥

अहिंसक विद्वान् का पवित्र शिष्यप्रदीप्त हो (य० अ० ११ म० ३३)। वह हुआ, तू हुआ। इन्धि और भू धातु से परे लिट् प्रत्यय किद्वत् हो ॥ ६ ॥

मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः[१] क्त्वा ॥ ७ ॥

एभ्यः परः सेट् क्त्वा किद्वत् स्यात्। यथा—मृडित्वा। मृदित्वा। गुधित्वा। कुषित्वा। क्लिशित्वा। उदित्वा। उषित्वा ॥

सुखीहोकर। पीसकर। लपेटकर। खींचकर। दुःखीहोकर। कहकर। वसकर। मृड आदि धातुओं से परे सेट् क्त्वा प्रत्यय किद्वत् हो ॥ ७ ॥

रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥ ८ ॥

रु०च्छः, सन्[२], च[अ]। एभ्यः—संश्च, क्त्वा च, कितौ स्याताम्। यथा—रुदित्वा। विदित्वा। मुषित्वा। गृहीत्वा। सुप्त्वा। पृष्ट्वा। रुरुदिषति। विविदिषति। मुमुषिषति। जिघृक्षति। सुषुप्सति। पिपृच्छिषति[२] ॥

रोकर। जानकर। चुराकर। पकड़कर। सोकर। पूंछकर। रोनाचाहता है। जाननाचाहता है। चुरानाचाहता है। पकड़नाचाहता है। सोना (नींद) चाहता है। पूंछनाचाहता है ॥ रुद आदि धातुओं से परे सन् और क्त्वा प्रत्यय किद्वत् हो ॥ ८

१-(७। २। १२) इतिनेट् ॥ २-(७। २। ७५) इति सन इट्।

इको झल् ॥ ९ ॥

इकः, झल् । इगन्ताद्धातोःपरोझलादिःसन्कित्स्यात् । यथा—चिचीषति । बुभूषति । चिकीर्षति । दीङ्—दातुमिच्छति—दिदीषते ॥

चुननाचाहताहै । होनाचाहताहै । करनाचाहताहै ॥ इक्वान्धातुसे परे झलादि सन् किद्वत् हो ॥

हलन्ताच्च ॥ १० ॥

ह०तं, च । इक्समीपाद्धलः परोझलादिः सन् कित् स्यात् । यथा—गुहू—जुघुक्षति । बिभित्सति । बुभुत्सते ॥

छिपना चाहता है । काटनाचाहताहै । जाननाचाहताहै ॥ इक्वानहलन्तधातु से परे झलादि सन् किद्वत् हो ॥ १० ॥

लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥ ११ ॥

लिङ्सिचौ, आ०पुं । इक्समीपाद्धलः परौ झलादीलिङ्सिचौ आत्मनेपदपरतः कितौ स्याताम् । यथा—भित्सीष्ट । अभित्त ॥

काटे । काटा । इक्वान् हलन्तधातु से परे झलादिलिङ् और सिच् प्रत्यय किद्वत् हो ॥ ११ ॥

उश्च ॥ १२ ॥

उः, च । ऋवर्णान्ताद् धातोःपरौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्यातामात्मनेपदेषुपरतः । यथा—कृषीष्ट । अकृत ॥

ईश्वरकरे वह करे । उसने किया । ऋकारान्त धातु से परे झलादि लिङ् और सिच् प्रत्यय किद्वत् हो आत्मनेपद–विषय में ॥ १२ ॥

वा गमः ॥ १३ ॥

गमः परौझलादी लिङ्सिचौ वा कितौ स्याताम् । यथा—सङ्गसीष्ट, सङ्गंसीष्ट । समगत, समगंस्त ॥

१–(६ । ४ । ३७) वेत्यनुनासिकलोपः । (१ । ३ । २९) इत्यात्मनेपदम् ॥

ईश्वर करे वह जावे। वह गया। गम धातु से परे झलादि लिङ् और सिच् प्रत्यय विकल्प से कित् वत् हो ॥ १३ ॥

हनः सिच् ॥ १४ ॥

हनः परः सिच् कित् स्यादात्मनेपदेषु परतः। यथा--आहत ॥

उसने मारा। आत्मनेपद विषय में हन् धातु से परे सिच् प्रत्यय किद्वत् हो ॥ १४ ॥

यमो गन्धने ॥ १५ ॥

यमः, गन्धने। गन्धने यमो धातोः परः सिच् कित् स्यात्। यथा--उदायत ॥

उसने दोषप्रकाशितकिया। गन्धन (दूसरे के दोषों को प्रकट करना) अर्थमें वर्त्तमान यम धातु से परे सिच् प्रत्यय किद्वत् हो ॥ १५ ॥

विभाषोपयमने ॥ १६ ॥

विभाषा, उं०ने। उपयमनेऽर्थे वर्त्तमानाद्यमः परः सिच् वा कित् स्यादात्मनेपदेषु परतः। यथा--रामः सीतामुपायत, उपायंस्तवा ॥

रामने सीतासे विवाह किया। आत्मने पद प्रत्यय परे होता उपयमन (विवाह) अर्थ में वर्त्तमान यमधातुसे परे सिच् प्रत्यय विकल्प से किद् वत् हो ॥ १६ ॥

स्थाघ्वोरिच्च ॥ १७ ॥

स्थाघ्वोः, इत्, च। स्थाधातोर्घुसंज्ञकानाञ्चेदादेशः, सिच्चकित् स्यादात्मनेपदेषु परतः। यथा--उपास्थित, उपास्थिषाताम्, उपास्थिषत। अदित, अधित ॥

वह ठहरा, वे दोनों ठहरे, वे ठहरे! उसने दिया। उसने धारण किया। स्था और घुसंज्ञक धातुओं से परे सिच् प्रत्यय किद्वत् हो और उक्त धातुओं के अन्त को इकार आदेश हो ॥ १७ ॥

१--(१।३।२८) इत्यात्मनेपदम्। (६।४।३७) इत्यनुनासिकलोपः ॥

२--(१।३।२५) इत्यात्मनेपदम्। (८।२।२७] इतिसिचोलोपः ॥

अ अ ` १
नक्त्वासेट् ॥ १८ ॥

सेट्क्त्वा किन्नस्यात् । यथा—शयित्वा । वर्तित्वा ॥

सोकर । वर्त्तावकरके ॥ सेट् (इटासहवर्तमानः) क्त्वाप्रत्ययकिद्वत्नहो ॥१८॥

निष्ठाशीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः[1] ॥१९॥

एभ्य परः सेण्निष्ठाकिन्नस्यात् । यथा—शयितः, शयितवान् । प्रस्वेदितः, प्रस्वेदितवान् । प्रमेदितः, प्रमेदितवान् । प्रक्ष्वेदितः, प्रक्ष्वेदितवान् । प्रधर्षितः, प्रधर्षितवान् ॥

सोयाहुआ । पसीनायुक्त । प्रीतियुक्त । दवाहुआ । शीङ् आदिधातुओंसे परे सेट् निष्ठाप्रत्ययकिद्वत्नहो ॥ १९ ॥

मृषस्तितिक्षायाम् ॥ २० ॥

मृषः, ति०म् । तितिक्षायामर्थे मृषेर्धातोः सेण्निष्ठाकिन्नस्यात् । यथा—मर्षितः, मर्षितवान् ॥

सहाहुआ । तितिक्षा (सहनशीलता) अर्थमें मृषधातुसेपरे सेट् निष्ठाप्रत्यय किद्वत्नहो ॥ २० ॥

उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥

उ०द्, भाँ० णोः, अ०म् । उदुपधात्परो भावादिकर्मणोः सेण् निष्ठा वा किन्नस्यात् । यथा—द्युतितमनेन[1], द्योतितमनेन । मुदितमनेन, मोदितमनेन साधुना । स प्रमुदितः[2], प्रमोदितः ॥

इस ने प्रकाश किया । इस साधुने हर्षित किया । वह हर्षित हुआ । भाव और आदि कर्म में उकारोपध धातुसे परे सेट् निष्ठा प्रत्यय विकल्प से किद्वत् न हो २१

१—(३।३।११४) इतिक्तः । २—(३।४।७१) इतिक्तः ॥

पूङः क्त्वाच ॥ २२ ॥

पूङः, क्त्वा, च । पूङः परःक्त्वा, निष्ठा च, सेट् किन्न स्यात् । यथा–पवितः[1], पूतः । पवितवान्, पूतवान् । क्त्वा ग्रहण मुत्तरार्थम् ॥

पवित्र । पुङ् धातु से परे सेट् निष्ठा और सेट् क्त्वा प्रत्यय किद्वत् न हो ॥२२॥

नोपधात्थफान्ताद् वा ॥२३॥

नकारोपधात्, थकारान्तात्, फान्ताच्च धातोः परः सेट् क्त्वा किद्वत् वा स्यात् । यथा–ग्रथित्वा, ग्रन्थित्वा । श्रथित्वा, श्रन्थित्वा । गुफित्वा, गुम्फित्वा ॥

गांठलगाकर । छोड़कर । बन्द करके । नकारोपध थकारान्त और फकारान्त धातु से परे सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प से किद्वत् हो ॥ २३ ॥

वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ॥२४॥

व०तः, च । वञ्चि, लुञ्चि, ऋत् इत्येभ्यः परः सेट् क्त्वा किन्न वा स्यात् । यथा–वचित्वा, वञ्चित्वा । लुचित्वा, लुञ्चित्वा । ऋतित्वा, अर्त्तित्वा ॥

ठगकर । केश उखाड़कर । घृणा करके । वञ्चि लुञ्चि और ऋत् धातु से परे सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प से किद्वत् न हो ॥ २४ ॥

तृषि मृषिकृशेः काश्यपस्य ॥२५॥

तृषि मृषि कृशि इत्येभ्यः परः सेट् क्त्वा किन्न वा स्यात् । यथा–तृषित्वा, तर्षित्वा । मृषित्वा, मर्षित्वा । कृशित्वा, कर्शित्वा ॥

१–(७ । २ । ५१) वेर्ताडागमः ।

प्यासा होकर । सहकर । दुबला होकर । तृषि मृषि और कृश धातु से परे सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प से किद् वत् न हो ॥ २५ ॥

रलोव्युपधाद्धलादेः संश्च ॥ २६ ॥

र० ५, ह० ५ दे: १, सन् १, च अ । उश्च, इश्च वी । इमे उपधे यस्य तस्माद्धलादे रलन्ताद्धातोः परौ क्त्वासनौ सेटौ वाकितौ स्याताम् । यथा—द्युतित्वा, द्योतित्वा । लिखित्वा, लेखित्वा । रुचित्वा, रोचित्वा । (द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्) दिद्युतिषते, दिद्योतिषते । लिलिखिषति, लिलेखिषति । रुरुचिषते, रुरोचिषते ॥

प्रकाशित करके । लिखकर । रुचिकर । प्रकाशित करना चाहता है । लिखना चाहता है । अच्छा लगना चाहता है । उकार इकार जिसकी उपधा में हों और हल जिसकी आदि में हो ऐसे रलन्त धातु से परे सेट् सन् तथा सेट् क्त्वा विकल्प से किद् वत् हों ॥ २६ ॥

ऊकालोऽज्झ्रस्व दीर्घप्लुतः ॥२७॥

ऊकाल: १, अच् १, ह्र० १ तः । उश्च ऊश्च उ३श्चवः । वां काल इवकालो यस्यसोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात् । यथा—दधि । कुमारी । देवदत्त ३ ॥

दही । अनव्याही लड़की । हे देवदत्त (ऊंची आवाज से दूर से बुलाना) । एक मात्रिक द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक अच् क्रमसे ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत संज्ञक हो २७

अचश्च ॥ २८ ॥

अचः ६, च अ । ह्रस्व दीर्घ प्लुतशब्दैर्यत्राऽज्विधीयते तत्राच इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते । यथा—अतिरिकुलम् । अतिनुकुलम् । उपगुकुलम् ॥

निर्धनकुल । जिसकुल में नौका न हो । जिस वंश मे गौ न हों । ह्रस्व दीर्घ प्लुत शब्दों से जहां अच् विधान कियाजाय वहां अच् के ही स्थान में हो (अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत का व्यवहार स्वरों में ही होता है व्यंजनों में नही) ॥ २८ ॥

उच्चैरुदात्तः ॥ २९ ॥

उच्चैः, उदात्तः । ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागेषु निष्पन्नोऽच्, उदात्तसंज्ञः स्यात् । आ ये ॥

वर्त्तमान (य० अ० ११ म० ९) ऊंचे स्वर से उच्चारण किया अच् उदात्त संज्ञक हो ॥ २९ ॥

नीचैरनुदात्तः ॥ ३० ॥

नीचैः, अ०त्तः । नीचैरुपलभ्यमानोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात् । यथा—अर्वाङ् ॥

निकट । नीचेस्वर से उच्चारण किया अच् अनुदात्त संज्ञक हो ॥ ३० ॥

समाहारः स्वरितः ॥ ३१ ॥

उदात्तत्वानुदात्तत्वेवर्ण धर्मौ यस्मिन् समाह्रियते सोऽच् स्वरित संज्ञःस्यात् ॥

उदात्त और अनुदात्त के गुण जिस में मिले हों वह अच् स्वरित संज्ञक हो ३१

तस्यादितउदात्तमर्द्धह्रस्वम् ॥ ३२ ॥

तस्य, अदितः, उदात्तम, अ०म् । तस्यस्वरितस्यादावर्द्ध ह्रस्वमुदात्तंस्यात् ।यथा--क्व । कन्या । शक्तिके ३ ॥

कहां । लड़की । हेवल्लवती । उसस्वरितके आदिमें अर्द्धह्रस्वउदात्तहो ॥ ३२ ।

१--(५ । ३ । १२)इत्यत् । (७ ।२ । १०५) इतिक्वादेशः ॥

एकश्रुतिदूरात्सम्बुद्धौ ॥ ३३ ॥

दूरात्सम्बोधने उदात्तानुदात्तस्वरितानामेक श्रुतिःस्यात्। यथा— आगच्छभोमाणवकसोमदत्त ३ ॥

हेलड़केसोमदत्तआ। यहां उदात्त अनुदात्त तथा स्वरितकापृथक् २ उच्चारण नहीं कियाजाता। दूरसे बुलानेमें उदात्तअनुदात्त और स्वरितकाएकश्रवणहो ।३३।

यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ ३४ ॥

ये०णि, अं०सु०। जपादीन् वर्जयित्वा यज्ञक्रियायांमन्त्र एक- श्रुतिः स्यात्। यथा—विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव ॥

हे सबजगत् को पैदाकरने वाले ईश्वर सबदुःखोको दूरकर। जप (मनमेंपढ़ना) न्यूङ्ख (वेदकाविशिष्ट भाग)औरसाम (सामवेद) कोछोड़करयज्ञकर्ममेंएकश्रुतिहो ३४

उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥ ३५ ॥

यज्ञकर्मणिवौषट् शब्द उच्चैस्तरांवास्यादेकश्रुतिश्च। यथा—वषट् कारैःसरस्वती। वषट्कारैःसरस्वती ॥

वषट्कार (देवोद्देश्यत्याग) से वाणी सुशोभितहोती है। यज्ञकर्ममेंवषट्कार श- ब्द विकल्पसे उदात्ततरहो और एक पक्ष में एकश्रुतिभीहो ॥३५॥

विभाषाच्छन्दसि ॥ ३६ ॥

छन्दसि वैकश्रुतिःस्यात्। यथा--इषेत्वोर्ज्जेत्वा। इषेत्वोर्ज्जेत्वा ॥

तुझको ऐश्वर्यऔर बलकेलिये। वेदमन्त्रोंके सामान्य उच्चारणमें उदात्त अनुदात्त तथा स्वरितको विकल्पसे एक श्रुति स्वरहो ॥ ३६ ॥

* न्यूङ्खानामषोडशओकाराः। गीतेषु समाख्या इतिसि०कौ० ॥

१--यहांउदात्त और एकश्रुतिदोनों काचिन्ह नहोनेसे एकही प्रकारका स्वर अवगत होताहै परन्तु उच्चा- रण में भेद विदित होता है ॥

नसुब्रह्मण्यायांस्वरितस्यतूदात्तः॥३७॥

न, सु०म्, सु०स्य.तु,उ० त्तः। सुब्रह्मण्यख्यनिगदे यज्ञक०ण्येक श्रुतिर्नस्यादीपितु स्वरितस्योदात्तः स्यात्। (सुब्रह्मण्यामोकार उदात्तोभवति,भा०) ॥ यथा--सुब्रह्मण्योम्

सुब्रह्मण्या (ब्राह्मणस्थ कण्डिका) में एक श्रुतिनहो किन्तु स्वरितको उदात्तहो ॥ ३७ ॥

देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ ३८ ॥

दे०णोः, अ० त्तः। सुब्रह्मण्यायामनयोः स्वरितस्याऽनुदात्तः स्यात्। यथा-देवा ब्रह्माण आगच्छत ॥

देव (विद्वान्) ब्रह्माण (ब्रह्मज्ञानी) आओ। सुब्रह्मण्या में देव ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को अनुदात्त हो ॥ ३८ ॥

स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम् ३९

स्व०त्, सं०म्, अ०म्। संहितायां स्वरितात् परेषामनुदात्ताना मेकश्रुतिः स्यात् यथा-अग्निमीडे पुरोहितम्। होतारं रत्न धातमम् ॥

सर्वहितकारक हवन करनेवाले ईश्वर की मैं स्तुति करताहूं। स्वरितसे परे संहिता में एक, दो वा बहुत अनुदात्तों को एक श्रुति स्वर हो ॥ ३९ ॥

उदात्तस्वरितपरस्यसन्नतरः ॥ ४० ॥

उदात्तस्वरितौपरौयस्मात्तस्यानुदात्तस्यानुदात्ततरः स्यात्। यथा-अग्निः, पूर्वेभि ऋषिभिः

परमात्मा ब्रह्मचारी और सन्यासिओं से पूजने योग्य है। उदात्त और स्वरित जिससे परे हों ऐसे अनुदात्त को सन्नतर (अनुदात्ततर) आदेश हो॥४० ॥

अपृक्त एकाल् प्रत्ययः ॥ ४१ ॥

अपृक्तः, ए० यः । एकाल् प्रत्ययोऽपृक्तसंज्ञकः स्यात् । यथा-घृतस्पृक्[1] ॥

घीको छूने वाला । एक अल् (वर्ण) अपृक्त संज्ञक हो ॥ ४१ ॥

तत्पुरुषःसमानाधिकरणःकर्मधारयः ४२

समानाधिकरणस्तत्पुरुषःकर्मधारयसंज्ञःस्यात् । यथा—परमराज्यम्[2], उत्तमराज्यम् ॥

अच्छाराज्य । समानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारय संज्ञक हो ॥ ४२ ॥

प्रथमा निर्दिष्टं समासउपसर्जनम् ।४३।

प्र०मं, सं०से, उ०मं । समासे प्रथमा निर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञंस्यात् । यथा—कष्टश्रितः[3] । शङ्कुलाखण्डः । गृहदारु । वृकभयम् । आर्यसमाजः । अक्षशौण्डः ॥

दुःखी । सरौते से काटाहुआटुकड़ा । घरकेलियेलकड़ी । भेड़िये से डर । श्रेष्ठों की सभा । पांसावाज । समास में प्रथमा विभक्तिसे निर्देश कियापद उपसर्जन संज्ञक हो ॥ ४३ ॥

एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ॥ ४४ ॥

ए० क्ति, च, अ० ते । पूर्वनिपातवर्जितैकविभक्तिपदमुपसर्जनसंज्ञंस्यात् । यथा—निष्क्रान्तः वाराणस्या = निर्वाराणसिः[4] । निष्क्रान्तम्, वाराणस्या = निर्वाराणसिम् । निष्क्रान्तेन वाराणस्या = निर्वाराणसिना । निष्क्रान्ताय वाराणस्या =

१—(३ । २ । ५८) इति क्विन् । (६ । १।६७) इतिवलोपः । (८ । २ । ६२) इति कुत्वम् ॥
२— (६ । २ । १३०) अकर्मधारयेराज्यमित्यत्राकर्मधारय इति निषेधादुत्तरपदाद्युदात्तत्वाभावे समासान्तोदात्तत्वमेव ॥ ३–(२ । २। ३०) इतिकष्टशब्दस्य पूर्वप्रयोगः ॥ ४– (१ । २ । ४८] इति ह्रस्वः । निर्वाराणसिरिति।अनोजलं तद्वरं यस्यासा वराणा गङ्गा, तस्या अदूरभवा नगरी वाराणसी-काशी।

निर्वाराणसये । निष्कान्तात् वाराणस्या = निर्वाराणसेः । निष्कान्तस्य वाराणस्या = निर्वाराणसेः । निष्कान्ते वाराणस्या = निर्वाराणसौ । एवं निष्कौशाम्बिः ॥

काशीनगर से निकला हुआ । पूर्व निपातको छोड़कर एक विभक्ति पद उपसर्जन संज्ञक हो ॥ ४४ ॥

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ४५

अ०द्, अधातुः, अ०यः, प्रा०म् । धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च विहाया ऽर्थ वच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिक संज्ञं स्यात् । यथा—वेदः । कुण्डम् । गङ्गा ॥

श्रुति (सत्य ज्ञानका पुस्तक) कुण्ड । धातु प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवान् शब्दस्वरूप प्रातिपदिक संज्ञक हो ॥ ४५ ॥

कृत्तद्धितसमासाश्च ॥ ४६ ॥

कृ० सोः, च । कृत्तद्धितान्तौ समासश्च प्रातिपदिक संज्ञकाःस्युः । पूर्व सूत्रेणैव सिद्धे समासग्रहणं नियमार्थम् । यथा—कर्त्ता[1] । नागरम्[2] । पाठशाला[3] ॥

करने वाला । शहरका । पढ़ने का स्थान । कृदन्त तद्धितान्त और समासान्त की प्रातिपदिक संज्ञा हो ॥ ४६ ॥

ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥४७॥

ह्रस्वः, नं० के, प्रा०स्यं । क्लीवेप्रातिपदिकस्याऽजन्तस्य ह्रस्वः स्यात् । यथा—रै-अतिरिकुलम् । नौ-अतिनुकुलम् । गो-उपगुकुलम् ॥

नपुंसक लिङ्ग में अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो ॥ ४७ ॥

१–(३ । १ । १३३) इति तृच् । (७ । ३ । ८४) इतिगुणः । (७; १. ९४) इत्यनङ् । (६.४.८) इति दीर्घः । (८. २. ७) नकार लोपः ॥ २–(४. ३. ५३) इत्यण् । (७. २. ११५] इति वृद्धिः ॥ ३–(२. २. ८) इति समासः ॥

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥४८॥

गो० योः, उ०स्य। उपसर्जनयोगोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। यथा—चित्रगुः।निर्वाराणसिः॥

चित्र विचित्र जिसकी गायें हों वह। उपसर्जन गोशब्दान्त और उपसर्जन स्त्री प्रत्ययान्त प्रातिपदिकको ह्रस्वहो ॥ ४८ ॥

लुक् तद्धितलुकि ॥४९॥

तद्धितलुकि सति उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। यथा—श्रविष्ठासु जातः--श्रविष्ठः। फाल्गुनः॥

श्रविष्ठानक्षत्र में जन्मा। फल्गुनी नक्षत्र में पैदा हुआ। तद्धित प्रत्यय के लुक् होनेपर उपसर्जन स्त्री प्रत्यय का लुक् हो॥ ४९ ॥

इद् गोण्याः ॥ ५० ॥

तद्धितलुकि सति गोण्याइदादेशः स्यात्। यथा--पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पटः--पञ्चगोणिः॥

पांच गोणि (नि) ओं से लिया हुआवस्त्र। तद्धित के लुक् होनेपर गोणी शब्द को इकारादेश हो॥ ५० ॥

लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने ॥ ५१ ॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचनेस्य ताम्। यथा--पञ्चालानां निवासोजनपदः--पञ्चालाः, कुरवः, वङ्गाः॥

पञ्चाल (फर्रुखाबाद के इतस्ततः स्थान) के रहने वाले। कुरुक्षेत्र के राजा

१-(४. ३. ३४) इति जातार्थप्रत्ययस्य लुक्॥
२-(४. २. ८१] इति चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य लुप॥

या रहने वाले । बंगाली । तद्धित के लुप होने पर व्यक्ति (लिङ्ग) और वचन युक्तवत् (पूर्ववत्) हों ॥ ५१ ॥

विशेषणानां चाऽजातेः ॥५२॥

वि० म्, च, अ० तेः । तद्धितलुपि सति जातिं विहाय विशेषणानां च व्यक्तिवचने युक्तवत् स्याताम् । यथा--पञ्चाला रमणीयाः (हरीतक्यादिषु व्यक्तिः) हरीतक्याः फलानि-हरीतक्यः ॥ (खलतिकादिषु वचनम्) खलतिकस्य पर्वतस्य अदूर भवानि-खलतिकम्--वनानि ॥ (मनुष्यलुपि प्रतिषेधः) मनुष्यलक्षणे ॥ लुबर्थ विशेषणानां न, लुबन्तस्य तु भवतीत्यर्थः--चञ्चा-अभिरूपः ॥

पञ्चाल देश सुन्दर है । तद्धित के लुप होने पर जाति भिन्न विशेषणों के लिङ्ग वचन भी युक्तवत् हों ॥ ५२ ॥

तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् ॥ ५३ ॥

तत्, अ० म्, सं० त् । युक्तवद् वचनं न कार्यम्, सञ्ज्ञानां प्रमाणत्वात् । यथा—आपः । दाराः । गृहाः । सिकता । वर्षा ॥

जल । स्त्रियाँ । बालू । वर्षायें ॥ संज्ञा शब्दों के प्रमाण होनेसे युक्तवद्भाव अशिष्य (अकथनीय) है ॥५३॥

लुब्योगाऽप्रख्यानात् ॥ ५४ ॥

लुब्, यो० त् । योगाऽप्रख्यानाल्लुबप्यशिष्यः ॥

यौगिक अर्थ के प्रसिद्ध न होने से लुप भी अशिष्य है ॥ ५४ ॥

योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात् ॥

यदि हि योगस्याऽवयवार्थस्येदंबोधकंस्यात्, तदा तदभावेन दृश्येत ॥

जो यौगिक अर्थ का प्रमाण होतो उसके न होने पर शब्द प्रयोग का अदर्शन हो॥

प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्याऽन्य-प्रमाणत्वात् ॥ ५६ ॥

प्रे०म्, अं०स्य, अं०त् । प्रत्ययार्थः प्रधानम्, इत्येवं रूपं वचनमप्यशिष्यम् कुतः अर्थस्य लोकत एव सिद्धेः ॥

लोकसे अर्थका प्रमाण होने से प्रधान और प्रत्ययार्थ भी अशिष्य हैं । ५६ ॥

कालोपसर्जने च तुल्यम् ॥ ५७ ॥

अतीताया रात्रेः पश्चिमार्द्धेन आगामिन्याः पूर्वार्द्धेन च सहितो दिवसः--अद्यतनः । (विशेषणमुपसर्जनम्) इत्यादि पूर्वाचार्यैः परिभाषितम् । तत्राप्यशिष्यत्वं समानं लोकप्रसिद्धत्वात् ॥

अर्थ के अन्य प्रमाण होने से काल और उपसर्जन भी अशिष्य हैं ॥ ५७ ॥

जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचन-मन्यतरस्याम् ॥ ५८ ॥

जा०मूँ, ए०न्, ब०मूँ, अ०म् । जातिवाच्ये एकस्मिन्नर्थे बहुवचनं वा स्यात् । यथा--यवानष्टाः, यवोनष्टो वा । मनुष्याश्चतुराः, मनुष्यश्चतुरो वा ॥

यव (जौ) नाश होगये (या) । आदमी होशियार हैं (है) । जाति (समान

उत्पत्ति) के कथन होने पर एक अर्थ में बहुवचन विकल्प से हो ॥ ५८ ॥

अस्मदोद्वयोश्च ॥ ५६ ॥

अस्मदः, द्वयोः, च । अस्मदोद्वित्वे, एकत्वे च विवक्षिते बहुवचनं वा स्यात् । यथा--वयंवच्मः,पक्षे-अहं वच्मि, आवांवच्व इति वा ॥ (सविशेषणस्य प्रतिषेधः) यथा--पटुरहं वच्मि ॥

हम कहते हैं । मैं कहता हूं । हम दोनों कहते हैं । अस्मद् शब्द के द्विवचन और एक वचन में बहुवचन विकल्प से हो ॥ ५९ ॥

फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे ॥ ६० ॥

तारकाभिधाने, एषां द्वित्वे बहुत्वप्रयुक्तं कार्यं वा स्यात् । यथा--पूर्वे फल्गुन्यौ, पूर्वाः फल्गुन्यः । पूर्वे प्रोष्ठपदे, पूर्वाः प्रोष्ठपदाः ॥

नक्षत्र वाच्य हो तो फल्गुनी और प्रोष्ठपद (पूर्वाभाद्रपद) के द्विवचनमें बहुवचन विकल्प से हो ॥ ६० ॥

छन्दसि, पुनर्वस्वोरेकवचनम् ॥ ६१ ॥

छन्दसि विषये पुनर्वस्वोर्द्विवचने एकवचनं वा स्यात् । यथा—पुनर्वसु नक्षत्रम्, पुनर्वसू वा ॥

छन्द विषय में पुनर्वसु नक्षत्र के द्विवचन में एकवचन विकल्प से हो ॥ ६१ ॥

विशाखयोश्च ॥ ६२ ॥

वि० योः, च । छन्दसि विषये विशाखयोश्च द्विवचने एकवचनं वा स्यात् । यथा—विशाखानक्षत्रम्, विशाखे वा ॥

छन्दविषय में विशाखानक्षत्रके द्विवचन में एकवचन विकल्पसे हो ॥ ६२ ॥

तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम् ॥ ६३ ॥

ति०स्वोः, न० द्वे, ब० स्य, द्वि०म्, नित्यम् । तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रविषये द्वन्द्वे बहुवचनप्रसङ्गे नित्यं द्विवचनं स्यात् । यथा—तिष्यश्च पुनर्वसू च—तिष्यपुनर्वसू ॥

एकतिष्य (पुष्य) और दो पुनर्वसु । नक्षत्रों के द्वन्द्वसमास में बहुवचन को द्विवचन नित्य हो ॥ ६३ ॥

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ॥६४॥

स० म्, ए० षः, ए०क्तौ । एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेकएव शिष्यते । यथा—बालश्च,बालश्च = बालौ । वृक्षश्च , वृक्षश्च, वृक्षश्च = वृक्षाः ॥

दो बालक । बहुत पेड़ । एक विभक्ति परे हो तो समानरूपवाले शब्दों में एक शेष रहे ॥ ६४ ॥

वृद्धोयूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः॥६५॥

वृद्धः, यूना, त०णः, चेत्,एव,विशेषः । यून सहोक्तौ गोत्रं शिष्यते गोत्रयुवप्रत्ययमात्रकृतं चेत् तयोः सर्वं वैरूप्यं स्यात् । यथा—गार्ग्यश्च, गार्ग्यायणश्च = गार्ग्यौ ॥

गार्ग्य और गार्ग्यायणगोत्रोत्पन्न । यदि गोत्रप्रत्यय और युवप्रत्ययमात्र ही भेद हो तो युवप्रत्ययान्तके साथ गोत्रप्रत्ययान्त शेषरहे एकविभक्ति परे होनेपर॥६५॥

स्त्री पुंवच्च ॥ ६६ ॥

स्त्री, पुंवत्, च । यूनासहोक्तौ वृद्धा स्त्री शिष्यते तदर्थश्च पुंवत् स्यात् ।

यथा--गार्गी च, गार्ग्यायणौ च = गर्गाः। अस्त्रियामित्यनुवर्त्तमाने (यञञोश्च) इति लुक्। दाक्षी च, दाक्षायणश्च = दाक्षी ॥

गर्गगोत्रीय। दक्षगोत्रीय। यदि तल्लक्षणही विशेष हो तो युवप्रत्ययके साथ गोत्रप्रत्ययान्त स्त्रीवाचक शब्द शेष रहे और इस स्त्रीवाचक शब्दको पुल्लिङ्गवत् कार्य हो एक विभक्ति में ॥ ६६ ॥

पुमान् स्त्रिया ॥ ६७ ॥

स्त्रियासहोक्तौ पुमान् शिष्यते तल्लक्षणएव विशेषश्चेत्। यथा--काकश्च काकी च = काकौ। कुक्कुटाश्च कुक्कुट्यश्च = कुक्कुटाः ॥

दो काक। मुरगे। यदि तल्लक्षणही विशेषहो तो स्त्रीवाचक शब्दके साथ पुरुषवाची शेष रहे ॥ ६७ ॥

भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् ॥ ६८ ॥

स्वसृदुहितृभ्या साकं भ्रातृपुत्रौ शब्दौ शिष्येते यथा--भ्राता च स्वसा च = भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिताच = पुत्रौ ॥

भाई और बहिन। पुत्र और पुत्री। भ्रातृ और पुत्र शब्द स्वसृ और दुहितृ शब्दके साथ यथाक्रम से शेष रहें। ६८ ॥

नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ६९ ॥

न० म्, अ० केन, ए०त्, च, अस्य, अ०म्। अक्लीबेनसहोक्तौ क्लीबं शिष्यते, तच्च वा एकवत्-स्यात्तल्लक्षण एव विशेषश्चेत्। यथा--शुक्लः कम्बलः,शुक्ला शाटी,शुक्लं वस्त्रम्। तदिदं शुक्लम्, तानीमानि-शुक्लानि ॥

अनपुंसक के साथ नपुंसकवाची शब्द शेषरहे और इस नपुंसक को एकवचन विकल्प से हो ॥ ६९ ॥

पिता मात्रा ॥ ७० ॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । यथा--माता च पिता च = पितरौ, मातापितरौ वा ॥

माता और पिता । मातृशब्द के साथ विकल्प से पितृशब्द शेष रहे ॥ ७० ॥

श्वशुरः श्वश्र्वा ॥ ७१ ॥

श्वश्र्वासहोक्तौ श्वशुरो वा शिष्यते तल्लक्षणएव विशेषश्चेत् । यथा--श्वश्रूश्च श्वशुरश्च-श्वशुरौ, श्वश्रूश्वशुरौ वा ॥

सास ससुर । श्वश्रू शब्दके साथ श्वशुर शब्द विकल्प से शेष रहे यदि तल्लक्षण विशेष हो तो ॥ ७१ ॥

त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥ ७२ ॥

त्य०नि, सर्वैः, नित्यम् । सर्वैः सहोक्तौ त्यदादीनि शब्दरूपाणि नित्यं शिष्यन्ते । यथा–सच देवदत्तश्च = तौ । यश्चसोमदत्तश्च = यौ ॥ (त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत् परं तच्छिष्यते) । यथा–सच यश्च–यौ ॥ (पूर्वशेषोऽपि दृश्यते)इतिभाष्यम् । यथा–सच यश्च = तौ ॥ (त्यदादितः शेषे पुन्नपुंसकतो लिङ्गवचनानि भवन्ति) यथा–सच देवदत्तश्च = तौ, तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च= तानि । पुन्नपुंसकयोस्तु परत्वान्नपुंसकं शिष्यते तच्च देवदत्तश्च = ते ॥

त्यदादि शब्दरूप सब के साथ नित्य शेष रहैं ॥ ७२ ॥

ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ ७३ ॥

ग्रा० षु, स्त्री । अतरुणेषु ग्राम्यपशुसमूहेषु स्त्री शिष्यते । यथा-गावइमाः । अजा एताः ॥

ये गायें । ये बकरीं । अतरुण (जो जवान न हों) ग्राम्य (गांव में पैदा हुये) पशुओं के सङ्घ (समूह) में स्त्रीवाचक शब्द शेषरहे ॥ ७३ ॥

इतिप्रथमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः.

अथ प्रथमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः ।

भूवादयो धातवः ॥ १ ॥

भू० यः, धातवः । क्रियावाचिनोभ्वादिशब्दा धातुसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा-एध-एधते । स्पर्द्ध-स्पर्द्धते ॥

बढ़ता है । कुछ चलता है । क्रियाके वाची भू आदि शब्द धातुसंज्ञक हों ॥ १ ॥

उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ २ ॥

उ० शे, अच्, अ० कः, इत् । उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्सञ्ज्ञः स्यात् । (प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः) । यथा-एध । स्पर्द्ध ॥

उपदेश में जो अनुनासिक अच् उस की इत्सञ्ज्ञा हो ॥ २ ॥

हलन्त्यम् ॥ ३ ॥

हल्, अन्त्यम् । उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात् । यथा-अ इ उण् अत्र णकारः । ऋ ऌ क् अत्रककारः । सर्वत्रैवं बोध्यम् ॥

उपदेश में अन्त्य हल् इत्सञ्ज्ञक हो ॥ ३ ॥

न विभक्तौ तुस्माः ॥ ४ ॥

१--यावत् सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाऽभिधीयते । आश्रितक्रमरूपत्वात्सा क्रियेत्यभिधीयते । इतिपदमञ्जरी ॥

विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा इतोनस्युः । यथा–त्–गृहात् । स्–बालकाः । तस्–पठतः । म्–अपचताम् ॥

घरसे । लड़के । वेदोनों पढ़तेहैं । उनदोनोंने पकाया । विभक्तिस्थतवर्ग, सकार और मकारकी इत् सञ्ज्ञा न हो ॥ ४ ॥

आदिर्ञिटुडवः ॥ ५ ॥

आदिः, ञि० वः । उपदेशे धातोराद्या ञिटुडव इतःस्युः । यथा–ञिमिदा–मिन्नः । टुवेपृ–वेपथुः । डुपचष्–पक्तिमम् ॥

चिकना । कांपना । पकाहुआ । उपदेशमेंधातुकेआदि ञि, टु, डु, इत्संज्ञकहों । ५ ।

षः[1]प्रत्ययस्य ॥ ६ ॥

उपदेशे प्रत्ययस्यादिः ष इत् स्यात् । यथा–नर्तकी[2] । रजकी ॥

नटनी । धोबिन । उपदेशमेंप्रत्ययका आदिषकार इत् संज्ञकहो ॥ ६ ॥

चुटू[1] ॥ ७ ॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौस्याताम् । यथा–कौञ्जायन्यः[3] । जस्,छात्राः । वनचरी[4] । मन्दुरजः ॥

कुञ्जऋषिकीसन्तति । विद्यार्थी । वनमेंफिरनेवाली । घुड़सालमेंजन्मा । उपदेश मेंप्रत्ययके आदि चवर्ग और टवर्ग इत्संज्ञकहों ॥ ७ ॥

लशक्वतद्धिते ॥ ८ ॥

लशकु,अं०ते । उपदेशे तद्धितवर्जप्रत्ययाद्यालशकवर्गा इतःस्युः ।

१–(८ । २ । ४२) इति निष्ठातकारस्यनकारः । २–(३ । १ । १४५) इतिष्वुन् । (४ । १ । ४१) षिद् गौरादिभ्यश्चेतिङीष् । रजकशब्दो गौरादि गणेपठितः ॥ ३–(४ । १ । ९८) इतिच्फञ् ॥ ४–(३ । २ । १६) इतिटः । (४ । १ । १५) इतिङीप् ॥ ५ । (३ । २ । ९७) इतिडः । (६ । ३ । ६) इतिह्रस्वः ॥

यथा--लस्य--चयनम्[1] । यजनम् । शस्य--भवति[2] । यजते । कोः-भुक्तः । भुक्तवान् । प्रियंवदः[3] । जिष्णुः । भङ्गुरः ॥

इकट्ठाकरना । यज्ञकरना । होताहै । होमकरताहै । खायाहुआ । प्रियबोलनेवाला । जीतनेवाला । अपनेआपटूटनेवाला । तद्धितवर्जितउपदेशमें प्रत्ययकेआदि ल, श और कवर्ग इत्संज्ञक हों ॥ ८ ॥

तस्य[6] लोपः[1] ॥ ९ ॥

यस्येत् संज्ञा विहिता तस्यलोपः स्यात् । प्रागेवोदाहृतम् ॥
जिसकी इत् संज्ञा विधान की है उसका लोपहो ॥ ९ ॥

यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम् ॥ १० ॥

य०म्, अ०शः, स०म् । समसङ्ख्यानां विधिर्यथाक्रमंस्यात् । यथा-कवये[6] । गुरवे । चायकः । लावकः ॥

कविकेलिये । गुरुकेलिये । इकट्ठाकरनेवाला । काटनेवाला । बराबरसङ्ख्यावालोंका कार्य यथासङ्ख्य (तरतीववार) हो ॥ १० ॥

स्वरितेनाऽधिकारः[3] ॥ ११ ॥

स्वरितचिह्नेनाधिकारोविज्ञेयः । स्वरितोनामवर्णधर्मः । वर्णधर्ममात्रमित्यर्थः । प्रतिज्ञास्वरिताः पाणिनीयाः ॥
स्वरितकेचिह्नसे अधिकारजाननाचाहिये ॥ ११ ॥

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥ १२ ॥

१—(३ । ३ । ११५) इतिल्युट् । (७. १. १) अनादेशः । २—(३. १.६८) इतिशप् ३—(६. ३ ६७. इतिमुमागमः. ४—(३.३.१३९) इतिग्स्नुः ५-(३. २. १६१) इतिघुरच्॥ ६-(७.३. ८४) इतिगुणादेशः (६. १.७८. इतिक्रमादय् अव् आय् आवादेशाः ॥

अ॰तं॰, आ॰मं॰। अनुदात्तेतो ये धातवो ङितश्च तेभ्य एवात्मनेपदं स्यात्। यथा-(अनुदात्तेद्भ्यः) आस्-आस्ते । वस्-वस्ते। (ङिद्भ्यः) पूङ्-सूते। शीङ्-शेते ॥

बैठताहै। पहनताहै। पैदाकरताहै! सोताहै। अनुदात्तेत् और ङित् धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों ॥ १२ ॥

+भावकर्मणोः ॥ १३ ॥

भावे कर्मणि चात्मनेपदं स्यात्। यथा-भावे, सुप्यते भवता। आस्यते त्वया। कर्मणि, क्रियते[२] कटः। ह्रियते भारः। कर्मकर्त्तरि-लूयते केदारः स्वयमेव ॥

धातु से भाव और कर्म में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों ॥ १३ ॥

कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे ॥ १४ ॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्त्तर्यात्मनेपदं स्यात्। यथा-व्यतिलुनते[३]। व्यतिपुनते ॥

एक दूसरेका काटतेहैं। एक दूसरेका साफ करतेहैं। कर्मव्यतिहार (कार्यके बदले) अर्थमें वर्त्तमान धातु से कर्त्तामें आत्मनेपद हो ॥ १४ ॥

अ॰ नगतिहिंसार्थेभ्यः ॥ १५ ॥

गत्यर्थेभ्यो हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्यः कर्मव्यतिहारे नात्मनेपदं स्यात्। यथा--व्यतिगच्छन्ति[४],व्यतियन्ति[५]। व्यतिहिंसन्ति,व्यतिघ्नन्ति[६] ॥

+ भाव्यत इति भावः, ण्यन्ताद् भवतेः कर्मणि घञ् ॥ १-(६ । १ । १५) इति ञिष्वप्शये धातोः सम्प्रसारणम् ॥ २-(७ । ४ । २८) इतिरिङादेशः ॥ ३--लूञ्छेदने '(७ । १ । ५) इत्यदादेशः । (६ । ४ । ११२) इत्याकारलोपः । (७ । ३ । ८०) इतिह्रस्वः ॥ ४—(७. ३. ७७] इतिछकारादेशः [६. १.७३] इतितुगागमः ॥ ५—[६ ४ ८१] इतियणादेशः ॥ ६—[६. ४. ९८] इत्युपधालोपः । [७. ३. ५४] इतिकुत्वम् ॥

(प्रतिषेधेहसादीनामुपसङ्ख्यानम्) । यथा--व्यतिहसन्ति । व्यतिजल्पन्ति । व्यतिपठन्ति ॥ (हरतेरप्रतिषेधः) यथा संप्रहरन्ते राजानः ॥

एक दूसरेके विरुद्ध चलतेहैं ॥ एक दूसरेको कष्टदेतेहैं । गत्यर्थ और हिंसार्थक धातुओंसे कर्मव्यतिहारमें आत्मनेपदहो ॥ १५ ॥

इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥ १६ ॥

इ०तं, च । इतरेतरोऽन्योन्य इत्येवमुपपदाद्धातोः कर्मव्यतिहारे नात्मनेपदं स्यात् । यथा-इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति, अन्योऽन्यस्य व्यतिलुनन्ति ॥ (परस्परोपपदाच्चेतिवाच्यम्) यथा—परस्परस्य व्यतिलुनन्ति ॥

एकदूसरे का काटतेहैं । इतरेतर और अन्योन्य जिसके उपपदहों ऐसे धातुसेकर्मव्यतिहारमें आत्मनेपद नहो ॥ १६ ॥

नेर्विशः ॥ १७ ॥

नेः, विशः । नेः परस्माद् विशआत्मनेपदं स्यात् । यथा -निविशते ॥

घुमताहै । निउपसर्ग पूर्वक विशधातुसेआत्मनेपदहो ॥ १७ ॥

परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥ १८ ॥

परिव्यवेभ्य उत्तरात् क्रीणातेरात्मनेपदं स्यात् । यथा--परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते ॥

सबमोललेताहै । वेचताहै । मोललेताहै । परि, वि और अव पूर्वक क्रीधातुसे आत्मनेपदहो ॥ १८ ॥

विपराभ्यांजेः ॥ १९ ॥

विपराभ्यां जेः । विपरापूर्वाज्जयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा--विजयते । पराजयते ॥

जीतता है । हारता है । उपसर्ग वि परा पूर्वक जि धातु से आत्मनेपद हो ॥ १९ ॥

आङो दोऽनास्यविहरणे ॥ २० ॥

आङः, दः, अ० णे । आङ्पूर्वाद्ददातेर्मुखविकसनादन्यत्रार्थे वर्तमानादात्मनेपदं स्यात् । यथा-विद्यामादत्ते ॥ (पराङ्गकर्मकान्न निषेधः) । यथा-व्याददते-पिपीलिकाः पतङ्गस्यमुखम् ॥

विद्या को ग्रहण करता है । अनास्य विहरण (मुखका न फैलाना) अर्थमें आङ्पूर्वक डुदाञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ २० ॥

क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च ॥ २१ ॥

क्रीडः, अ० भ्यः, च । अनु, सम्, परि इत्येवं पूर्वादाङ् पूर्वाच्च क्रीडधातोरात्मनेपदं स्यात् । यथा—अनुक्रीडते । संक्रीडते । परिक्रीडते । आक्रीडते । (समोऽकूजने) संक्रीडते । कूजने तु—संक्रीडति चक्रम् ॥ (आगमेः क्षमायाम्) ण्यन्तस्येदं ग्रहणम् । यथा—आगमयस्व तावत् । मात्वरिष्ठा इत्यर्थः ॥ (शिक्षेर्जिज्ञासायाम्) यथा—धनुषि शिक्षते । धनुर्विषये ज्ञाने शक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः ॥ (आशिषि नाथः) आशिष्येवेति नियमार्थं वार्त्तिकमित्युक्तम् । यथा—सर्पिषो-नाथते । सर्पिर्मे स्यादित्याशास्त इत्यर्थः ॥ (हरतेर्गतताच्छील्ये) गतम्-प्रकारः । यथा—पैतृकमश्वा अनुहरन्ते । मातृकं गावः । पितुर्मातुश्च गतं सततं परिशीलयन्तीत्यर्थः ॥ (किरते हर्षजीविकाकुलाय करणेष्विति वाच्यम्) यथा—अपस्किरते वृषभो हृष्टः, कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी च ॥

१—(६ । १ । १४२) इति सुट् ॥

(आङिनुप्रच्छ्योः) । आनुते शृगालः । आपृच्छते गुरुम् ।। (शपउपालम्भे) देवदत्ताय शपते । वाचा शरीरस्पर्शनमिति । त्वत् पादौ स्पृशामि नैतन्मयाकृतं शपथ विशेषः ।।

साथ खेलता है । अच्छे प्रकार खेलता है । चारों ओर से खेलता है । सर्व प्रकार से खेलता है । अनु सम् परि और आङ् पूर्वक क्रीड धातु से आत्मनेपद हो ।।

समवप्रविभ्यः स्थः ।। २२ ।।

सम्, अव, प्र, वि इत्येवंपूर्वात्स्था धातोरात्मनेपदं स्यात् । यथा–संतिष्ठते । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते । (स्थाघ्वोरिच्च) समस्थित, समस्थिषाताम्, समस्थिषत ।। (आङः प्रतिज्ञायामुपसङ्ख्यानम्) यथा–शब्दं नित्यमातिष्ठते । नित्यत्वेनप्रतिजानीते इत्यर्थः ।।

अच्छे प्रकार ठहरता है । निश्चय ठहरता है । प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है । विरुद्ध ठहरता है । सम्, अव, प्र और वि पूर्वक स्था धातु से आत्मने पद हो ।। २२ ।।

प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ।। २३ ।।

प्र० योः, च । प्रकाशने स्थेयाख्यायां च स्था धातोरात्मनेपदं स्यात् । यथा--तिष्ठते वृपलीकामुकाय । आशयं प्रकाशयतीत्यर्थः । संशय्य कर्णादिषुतिष्ठते यः । कर्णादीन्निर्णेतृत्वे नाश्रयतीत्यर्थः ।।

प्रकाशन और स्थेयाख्य (विवादपदनिर्णयता) अर्थ में स्था धातु से आत्मनेपद हो ।। २३ ।।

उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ।।२४।।

उदः, अ० णि । अनूर्ध्वकर्मणिवर्त्तमानादुत्पूर्वात् स्थाधातोरात्म-

१ [७ । ३ । ७८] इति तिष्ठादेश ।।

नेपदं स्यात् । यथा-मुक्तावुत्तिष्ठते । तदर्थंयततेइत्यर्थः । (ईहाया-मेव) इहमाभूत् । अस्माद्ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठन्ति । शतमुत्पद्यतेइत्यर्थः ॥

वह मुक्तिके लिये प्रयत्न करता है । अनूर्ध्व (उठने में न) कर्म में वर्त्तमान उत् पूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद हो ॥ २४ ॥

उपान्मन्त्रकरणे ॥२५॥

उपात्, मं० णे । मन्त्रकरणेऽर्थेवर्त्तमानादुपपूर्वात् स्था धातोरात्मने पदं स्यात् । यथा -आग्नेय्याऽग्नीध्रमुपतिष्ठते । (उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्) । यथा- (देवपूजायाम्) आदित्यमुपतिष्ठते । सङ्गतिकरणे-गङ्गायमुनामुपतिष्ठते । उपश्लिष्यतीत्यर्थः । मित्रकरणे-रथिकानुपतिष्ठते । मित्रीकरोतीत्यर्थः।पथि-अयं पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते । प्राप्नोतीत्यर्थः॥ (वा लिप्सायामितिवाच्यम्) यथा--भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा । लिप्सया उपगच्छतीत्यर्थः ॥

अग्नि है देवता जिस मन्त्र (ऋचा) का उससे होता के समीप बैठताहै। मन्त्र करण अर्थ में वर्त्तमान उपपूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद हो ॥ २५ ॥

अकर्मकाच्च ॥ २६ ॥

अ०त्, च । उपात्तिष्ठतेरकर्मकादात्मनेपदं स्यात् । यथा—भोजनकाले उपतिष्ठते । सन्निहितो भवतीत्यर्थः ॥

उपपूर्वक अकर्मक स्था धातु से आत्मनेपद हो ॥ २६ ॥

उद्विभ्यां तपः ॥ २७ ॥

उद्, वि इत्येवं पूर्व त्तपतेरकर्मकादात्मनेपदं स्यात्। यथा—उत्तपते ।

वितपते । दीप्यते इत्यर्थः ॥ (स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वाच्यम्)

स्वमङ्गं स्वाङ्गम्, न त्वद्रवामितिपरिभाषितम् । उत्तपते, वितपते पाणिम् ॥

उद् और वि पूर्वक अकर्मक तप धातु से आत्मनेपद हो ॥ २७ ॥

आङो यमहनः ॥ २८ ॥

आङः, य०नः । आङ्पूर्वाभ्यामकर्मकाभ्यांयमहनधातुभ्यामात्मनेपदं स्यात् । यथा—आयच्छते । आहते ॥

देताहै । मारताहै । आङ् पूर्वक अकर्मक यम और हन धातु से आत्मनेपद हो॥२८॥

समो गम्यृच्छिभ्याम् ॥ २९ ॥

समः, ग०म् । सम्पूर्वाभ्यां गम्यृच्छिभ्यामकर्मकाभ्यामात्मनेपदं स्यात् । यथा--संगच्छते । समृच्छते ॥

अच्छेप्रकार जानताहै । सम्यक् जानताहै । सम् पूर्वक अकर्मक गम्लृ और ऋच्छ धातु से आत्मनेपद हो ॥ २९ ॥

निसमुपविभ्यो ह्वः ॥ ३० ॥

नि०भ्यः, ह्वः । नि, सम्, उप, वि इत्येवं पूर्वाद् ह्वयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा--निह्वयते । संह्वयते । उपह्वयते । विह्वयते ॥

बुलाताहै । नि, सम्, उप, और वि पूर्वक ह्वेञ् धातुसे आत्मनेपद हो ॥ ३० ॥

स्पर्द्धायामाङः ॥ ३१ ॥

स्प०म्, आङः । स्पर्द्धायामर्थे आङ् पूर्वाद् ह्वयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा--मल्लोमल्लमाह्वयते ॥

१ '६ । ४ । ३७' इत्यनुनासिकलोपः ॥

मल्ल मल्लको बुलाताहै । स्पर्द्धा (पराभवेच्छा) अर्थमें आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३१ ॥

गन्धनाऽवक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ॥ ३२ ॥

गन्धनादिष्वर्थेषु वर्त्तमानात् करोतेरात्मनेपदं स्यात् । गन्धनम्-हिंसा । यथा-उत्कुरुते । सूचयतीत्यर्थः । सूचनं हि प्राणवियोगानुकूलत्वाद्धिंसैव । अवक्षेपणम्-भर्त्सनम् । श्येनोवर्त्तिकामुदाकुरुते । भर्त्सयतीत्यर्थः । गुरुमुपकुरुते । सेवते इत्यर्थः । परदारान् प्रकुरुते । तान् वशी करोतीत्यर्थः । एधोदकस्योपस्कुरुते । गाथाः प्रकुरुते । प्रकाशयतीत्यर्थः । सहस्रं प्रकुरुते । धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः ॥

गन्धन (हिंसन) अवक्षेपण (धमकाना) सेवन (सेवा) साहसिक्य (वशमें करना) प्रतियत्न (प्रणिधान) प्रकथन (सम्यक् कथन) और उपयोग (उपकार) अर्थमें कृञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३२ ॥

अधेः प्रसहने ॥ ३३ ॥

प्रसहने वर्त्तमाना दधिपूर्वात्करोतेरात्मनेपदं स्यात् । प्रसहनम्-क्षमाऽभिभवश्च । षहमर्षणेऽभिभवे चेति पाठात् । यथा-शत्रुमधिकुरुते । क्षमते इत्यर्थः ॥

प्रसहन अर्थमें वर्त्तमान डुकृञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३३ ॥

वेः शब्दकर्मणः ॥ ३४ ॥

१-एध शब्दोऽकारान्तः. अवो दैधोऽम-इति निपातः. एधाश्च उदकं च तेषां समाहारः. यद् वा एधःशब्दः सकारान्तः. तथा च एधांसि च दकं चेति विग्रहः. दकशब्दोऽप्युदक वाच्ये वेत्यर्थोऽत्र न भिद्यते. उक्तंच हलायुधे-' प्रोक्तं प्राणैर्भुवनममृतं जीवनीयं दकं च ' इति. त० बो० ॥

विपूर्वाच्छब्दकर्मणः करोतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—शृगालो-विकुरुते स्वरान् । उच्चारयतीत्यर्थः ॥

विपूर्वक शब्दकर्मक कृञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३४ ॥

सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञान-भृतिविगणनव्ययेषु नियः॥ ३५ ॥

सत्सु सम्माननादिषु विशेषणेषु नयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—शास्त्रे नयते । शास्त्रस्थं सिद्धान्तं शिष्येभ्यः प्रापयतीत्यर्थः । उत्सञ्जने । दण्डमुन्नयते । उत्क्षिपतीत्यर्थः । बालकमुपनयते । आचार्यकरणे । शास्त्रविधिना आत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः । ज्ञाने । तत्त्वं नयते । निश्चिनोतीत्यर्थः । भृतौ । कर्मकरानुपनयते । वेतनादि-दानेन स्वसमीपं प्रापयतीत्यर्थः । विगणने । (विगणनमृणादेर्नि-यातनम्) करं विनयते । राज्ञेदेयं भागं परिशोधयतीत्यर्थः । व्यये । शतं विनयते । धर्म्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः ॥

सम्मानन (प्राप्तकरना) उत्सञ्जन (ऊपरको फेंकना) आचार्य करण (गुरुका करना) ज्ञान (बोध) भृति (नौकरी) विगणन (चुकाना) और व्यय (धर्म-कार्यमें व्यय) अर्थमें णीञ्धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३५ ॥

कर्त्तृस्थे चाऽशरीरे कर्मणि ॥ ३६ ॥

क०स्थ, च, अशरीरे, कर्मणि। शरीराऽवयवभिन्ने कर्त्तृस्थे कर्माणि नयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—क्रोधं विनयते । अपगमयतीत्यर्थः ॥

शरीरावयव भिन्न और कर्त्ता में स्थित कर्म उपपद हो तो णीञ् धातु से आत्मने-पद हो ॥ ३६ ॥

वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ॥ ३७ ॥

एष्वर्थेषु क्रमते रात्मनेपदं स्यात्। यथा—ऋच्यस्य क्रमते बुद्धिः। न प्रतिहन्यते इत्यर्थः। (सर्गः-उत्साहः) अध्ययनायक्रमते। उत्सहते इत्यर्थः। अस्मिञ्छास्त्राणि क्रमन्ते। स्फीतानि—प्रवृद्धानि भवन्तीत्यर्थः ॥

वृत्ति (अप्रतिबन्ध) सर्ग (उत्साह) और तायन (वृद्धि) अर्थमें क्रम धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३७ ॥

उपपराभ्याम् ॥ ३८ ॥

उपपरापूर्वात् क्रमतेरात्मनेपदं स्यात्। यथा--उपक्रमते। पराक्रमते ॥

आरम्भकरताहै। बहादुरी करताहै। उपपरा पूर्वक क्रम धातु से आत्मनेपद हो ३८

आङ उद्गमने ॥ ३९ ॥

आङः, उ०ने। उद्गमनेऽर्थे वर्त्तमानादाङ् पूर्वात् क्रमतेरात्मनेपदं स्यात्। यथा--भानुराक्रमते। उदयत इत्यर्थः ॥

उद्गमन अर्थमें आङ्पूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपद हो ॥ ३९ ॥

वेः पादविहरणे ॥ ४० ॥

पादविहरणेऽर्थेवर्त्तमानाद्विपूर्वात्क्रमतेरात्मनेपदं स्यात्। यथा--साधुविक्रमते वाजी ॥

घोड़ा अच्छा चलताहै। पाद विहरण अर्थमें वि पूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपदहो ४०

प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ ४१ ॥

समर्थाभ्यां प्रोपाभ्यां परस्मात् क्रमतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—प्रक्रमते । उपक्रमते । आरभते इत्यर्थः ॥

तुल्यार्थ प्र, उप पूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपद हो ॥ ४१ ॥

अनुपसर्गाद् वा ॥ ४२ ॥

उपसर्गवियुक्तात् क्रमतेरात्मनेपदं वा स्यात् । यथा—क्रामति । क्रमते ॥

टहलता है । उपसर्ग भिन्न क्रमधातु से आत्मनेपद विकल्पसे हो ॥ ४२ ॥

अपह्नवे ज्ञः ॥ ४३ ॥

अपलापेऽर्थे वर्तमानाज्जानातेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—शतमप जानीते । अपलपतीत्यर्थः ॥

अपह्नव (सत्य को भी झूठ बनाकर कहना) अर्थ में ज्ञा धातुसे आत्मने पदहो ॥

अकर्मकाच्च ॥ ४४ ॥

अ०तं, च । अकर्मकाज्जानातेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—सर्पिषो जानीते । सर्पिषो उपायेन प्रवर्त्तते इत्यर्थः ॥

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो ॥ ४४ ॥

सम्प्रतिभ्यामनाध्याने ॥ ४५ ॥

स० मं, अं० ने । अनाध्यानेऽर्थे सम्,प्रति,इत्येवं पूर्वाज्जानाते

१—(७ । ३ । ७६) इति दीर्घत्वम् ।

रात्मनेपदं स्यात् । यथा-शतं संजानीते । अवेक्षते इत्यर्थः । सहस्रं प्रतिजानीते । अङ्गीकरोतीत्यर्थः ॥

अनाध्यान (उत्कण्ठा पूर्वक स्मरण का न करना) सम् प्रति पूर्वक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो ॥ ४५ ॥

भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ॥ ४६ ॥

भासनादिषु सत्स्वर्थेषु वदतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा-शास्त्रे वदते । भासमानो ब्रवीतीत्यर्थः । उपसम्भाषायाम् । भृत्यानुपवदते । सान्त्वयतीत्यर्थः । ज्ञाने । शास्त्रेवदते । यत्ने । गेहे वदते । विमतौ।क्षेत्रेविवदन्ते । उपमन्त्रणे । उपवदते प्रार्थयते इत्यर्थः ॥

शास्त्रमें प्रकाशित हुआ बोलता है । नौकरों को धैर्य दिलाता है । शास्त्रमें सम्यग् बोध रखता है। घरकेलिये उत्साहित होता है । खेतमें विवाद करतेहैं । प्रार्थनाकरता है। भासन (दीप्ति) उपसम्भाषा (धैर्य दिलाना) ज्ञान (बोध) यत्न (उत्साह) विमति (नानामति) और उपमन्त्रण (मांगना) अर्थमें वद धातुसे आत्मनेपदहो ॥४६॥

व्यक्तवाचांसमुच्चारणे ॥ ४७ ॥

मनुष्याणां समूहोच्चारणे वदतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा--सम्प्रवदन्ते छात्राः । नेह सम्प्रवदन्ति खगाः ॥

विद्यार्थी अच्छाउच्चारण करतेहैं । स्पष्टवाणी वालोंके एकसाथ उच्चारण करनेमें वदधातु से आत्मनेपदहो ॥ ४७ ॥

अनोरकर्मकात् ॥ ४८ ॥

अनोः, अ०त् । व्यक्तवाग्विषयादनुपूर्वादकर्मकाद्वदतेरात्मने-

पदं स्यात् । यथा--अनुवदते सावित्री यशोदायाः । यशोदाऽध्री-याना वदति तथा सावित्रीत्यर्थः ॥

स्पष्ट उच्चारणविषयक अनुपूर्वक अकर्मक वद धातु से आत्मनेपदहो ॥ ४८ ॥

विभाषाविप्रलापे ॥ ४९ ॥

विरुद्धोक्तिरूपेऽव्यक्तवाचां समुच्चारणेवदतेरात्मनेपदंवास्यात् । यथा-विप्रवदन्ते, विप्रवदन्ति वावैद्याः ॥

हकीम एक दूसरेके प्रतिकूल कहताहै । विप्रलाप (एकदूसरेकेविरुद्ध) अर्थमेंस्पष्ट उच्चारण विषयक वदधातुसे विकल्प करके आत्मनेपदहो ॥ ४९ ॥

अवाद् ग्रः ॥ ५० ॥

अवपूर्वाद् गिरतेरात्मनेपदंस्यात् । यथा--अवगिरते ॥

निकलताहै । अवपूर्वक गृ धातुसेआत्मनेपदहो ॥ ५० ॥

समः प्रतिज्ञाने ॥ ५१ ॥

प्रतिज्ञानेऽर्थे वर्त्तमानात् सम्पूर्वाद् गिरतेरात्मनेपदंस्यात् । यथा-शब्दंनित्यंसंगिरते ॥

शब्दकोनित्यमानताहै । प्रतिज्ञान (स्वीकारकरना) अर्थमें सम्पूर्वक गृ धातुसे आत्मनेपदहो ॥ ५१ ॥

उदश्चरः सकर्मकात् ॥ ५२ ॥

उदः, चरः, स०तं । सकर्मकादुत्पूर्वाच्चरतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा-धर्ममुच्चरते । उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः ॥

उद्पूर्वक सकर्मक चरधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ५२ ॥

समस्तृतीयायुक्तात् ॥ ५३ ॥

समः, तृ० तं । सम्पूर्वाच्चृतीयायुक्ताच्चरतेरात्मनेपदंस्यात् । यथा—रथेन संचरते ॥

रथसेचलताहै । तृतीया विभक्तिसे युक्तसंपूर्वकचरधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ५३ ॥

दाणश्चसाचेच्चतुर्थ्यर्थे ॥ ५४ ॥

दाणः, च, चेत्, च० र्थे । सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेनयुक्तादात्मनेपदंस्यात् तृतीयाचेच्चतुर्थ्यर्थे । यथा—वृपल्या संप्रयच्छते । योवृपल्या सह भुञ्जानस्तयादत्तं स्वयं भुङ्क्ते स्वयंच तस्यै ददाति तद्विपयोऽयं प्रयोगः ॥

तृतीयाविभक्तियुक्त सम्पूर्वक दाणधातुसे आत्मनेपदहो यदि वह तृतीया चतुर्थी के अर्थमें हो तो ॥ ५४ ॥

उपाद्यमःस्वकरणे ॥ ५५ ॥

उपात्, यमः, स्व० णे । स्वीकारे वर्त्तमानादुत् पूर्वाद्यम आत्मनेपदं स्यात् । यथा--भार्यामुपयच्छते ॥

स्त्रीकोवरता है । स्वकरण (विवाह) अर्थमें उपपूर्वक यम धातुसे आत्मनेपदहो॥

ज्ञाश्रुस्मृदृशांसनः ॥ ५६ ॥

सन्नन्तानामेपामात्मनेपदं स्यात् । यथा—धर्म्मं जिज्ञासतेनित्यम्, गुरुं शुश्रूपतेच यः । नहिसुस्मूर्पते नष्टम् मुक्तिमार्गं दिदृक्षते ॥

धर्म को जानना चाहता है । गुरु की सेवा करना चाहताहै । नाश हुये पदार्थ

का स्मरण नहीं करना चाहता। मोक्षके मार्गको देखना चाहता है। ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृशिर् सन्नन्त धातुओं से आत्मनेपद हो ॥ ५६ ॥

नानोर्ज्ञः ॥५७॥

न, अनोः, ज्ञः, अनुपूर्वात् सन्नन्ताज्जानातेरात्मनेपदं न स्यात्। यथा--पुत्रमनुजिज्ञासति। पूर्वसूत्रस्यैवायं निषेधः ॥

अनुपूर्वक सन्नन्त ज्ञा धातु से आत्मनेपद न हो ॥ ५७ ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥ ५८ ॥

प्रति, आङ् इत्येवं पूर्वात्सन्नन्ताच्छ्रणोतेरात्मनेपदं न स्यात्। यथा--प्रतिशुश्रूषति। आशुश्रूषति ॥

बदलेमें सुननाचाहताहै। अच्छेप्रकार सुननाचाहताहै प्रति और आङ्पूर्वक सन्नन्त श्रु धातुसे आत्मनेपद्नहो ॥ ५८ ॥

शदेः शितः ॥५९॥

यः शिद्भावीशितः सम्बन्धीवा तस्माच्छदेरात्मनेपदं स्यात्। यथा-शीयते, शीयेते, शीयन्ते ॥

मारताहै। शित् भावी या शित्सम्बन्धी शद्लृधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ५९ ॥

म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥ ६० ॥

म्रियतेः, लु०ङोः, च। लुङ्लिङोर्म्रियतेः शितश्चात्मनेपदंस्यात्। यथा--अमृत। मृषीष्ट। शितः। म्रियते, म्रियेते, म्रियन्ते ॥

१--(१। २। १२) इति लिङ कित्। (७। २। २७) इति सलोपः। (१। १। ५) इति गुण निषेधः॥
२--(७। ४। २८) इति रिङादेशः ॥

मरगया। हेप्रभो वहमर जावे। प्राणत्यागकरे। लुङ् लिङ् सम्बन्धी तथा शित् सम्बन्धी मृङ्धातुसे आत्मनेपदहो॥ ६०॥

पूर्ववत् सनः॥ ६१॥

सनः पूर्वोयोधातुस्तेनतुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदंस्यात्। यथा–एदिधिषते। शिशयिषते। आसिसिषते। निविविक्षते। आचिक्रांसते॥

बढ़नाचाहताहै। सोना (नींद) चाहताहै। बैठनाचाहताहै। घुसनाचाहता है। निकलनाचाहताहै। आत्मनेपदीधातुओंसेसन्प्रत्ययहोनेपरभीआत्मनेपदहीहो॥ ६१॥

आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य॥ ६२॥

आ०त्, कृञः, अ० स्य। अनुप्रयोगस्य कृञ आम्प्रत्ययवदात्मनेपदं स्यात्। यथा–एधाञ्चक्रे। ईहाञ्चक्रे। ईक्षाञ्चक्रे॥

वह बढ़ाथा। उसने चेष्टाकीथी। अनुप्रयुक्त कृञ् धातु से आम्प्रत्ययवत् (अर्थात् आम्प्रत्यय जिस धातु से हुआहै उससे यदि आत्मनेपदहो तो) आत्मनेपद हो॥ ६२॥

प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु॥ ६३॥

प्रो०म्, युजेः, य०षु। प्र, उप इत्येवं पूर्वाद्युजेरयज्ञपात्रप्रयोग विषयादात्मनेपदं स्यात्। यथा–प्रयुङ्क्ते। उपयुङ्क्ते॥ (**स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वाच्यम्**)। उद्युङ्क्ते, नियुङ्क्ते॥

प्रयोगमें लाताहै। यज्ञपात्रप्रयोगसे भिन्न अर्थमें प्र तथा उपपूर्वक युजिर् धातु से आत्मनेपद हो॥ ६३॥

× कृञिति प्रत्याहारग्रहणम् (५। ४। ५०) इत्यारभ्य (५। ४। ५८) पर्यन्तं तेन ईहामास। ईहाम्बभूव इत्यपि साधुः॥

१-(३।१।७८) इति श्नम्। (६। ४। १११) इति श्नोऽल्लोपः। (८।२। ३०) इतिकुत्वम्। (८। ३। २४) इत्यनुस्वारः। (८। ४। ५८) इतिपरसवर्णः॥

समः क्ष्णुवः ॥ ६४ ॥

सम्पूर्वात् क्ष्णुतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—संक्ष्णुतेऽसिम् ॥

तलवार को पैना करता है । सम् पूर्वक क्ष्णुधातुसे आत्मनेपद हो ॥ ६४ ॥

भुजोऽनवने ॥ ६५ ॥

भुजः, अ०ने । अपालने वर्त्तमानाद् भुजेरात्मनेपदंस्यात् । यथा—मोदकान् भुङ्क्तेअभ्यवहरतीत्यर्थः । वृद्धोजनोदुःखशतानिभुङ्क्ते ॥

लड्डूखाताहै । बूढ़ाआदमी सैकडों दुःखउठाताहै । अनवन (भोजनसेभिन्न) अर्थ में भुजधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ६५ ॥

णेरणौयत्कर्मणौचेत्सकर्त्ताऽनाध्याने ६६

णेः, अणौ, यत्, कर्म, णौ, चेत्, स, कर्त्ता, अ०ने । अणौ यत्-कर्मणौ चेत्तदेवकर्म,सएवकर्त्तातर्हि ण्यन्ताद्धातोरनाध्यानेऽर्थेआत्म-नेपदंस्यात् । यथा—आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः-आरोहयते हस्ती-स्वयमेव । प्रजाःपश्यन्तिराजानम्-दर्शयतेराजास्वयमेव ॥

फीलवानहाथीपर चढ़तेहैं-हाथीअपने आप चढ़वालेताहै ॥ प्रजाराजाको देखतीहै-राजाअपने आपही दिखलाताहै । अनाध्यान (चिन्तार्थभिन्न) अर्थ में अण्यन्तअ-वस्थामें जो कर्म वही ण्यन्त में कर्म तथाकर्त्ताहोताण्यन्तधातुसेआत्मनेपदहो ॥६६॥

भीस्म्योर्हेतुभये ॥ ६७ ॥

भीस्म्योः, हे० ये । हेतुभयेऽर्थे बिभेतेःस्मयतेश्चण्यन्तादात्मनेपदं स्यात् । यथा—जटिलो भीषयते । मुण्डोविस्मापयते ॥

जटावाला डराता है । मुंड़ियाविस्मयको प्राप्त कराता है । हेतुभय (किसी का-

१-(२ । ४ । ७२) इति शपोलुक् । २-(७ । ३ । ४०) इति षुक् । ३-(७ । ३ । ३६) इति पुगागमः ।

रण से भय) अर्थ में ण्यन्त भी और स्मिधातु से आत्मनेपद हो ॥ ६७ ॥

गृधिवञ्च्योःप्रलम्भने ॥ ६८ ॥

प्रतारणेऽर्थे गृधिवञ्चिभ्यां ण्यन्ताभ्यामात्मनेपदं स्यात् । यथा-माणवकं गर्धयते, वञ्चयते वा ॥

लड़के को ठगता है । प्रलम्भन (ठगना) अर्थ में वर्त्तमान ण्यन्त गृधि और वञ्चुधातु से आत्मनेपदहो ॥ ६९ ॥

लियःसम्माननशालीनीकरणयोश्च ६९

लियः, सं० योः, च । सम्माननेशालीनीकरणे प्रलम्भनेचार्थे-वर्त्तमानाद्ण्यन्ताल्लिय आत्मनेपदंस्यात्। यथा-जटाभिरालापयते। पूजां समधिगच्छतीत्यर्थः। श्येनोवर्त्तिकामुल्लापयते। न्यक्करोतीत्यर्थः। कस्त्वामुल्लापयते । विसंवादयतीत्यर्थः ॥

जटाओं से पूजित होता है । बाज वटेरको नीचे करता है । कौन तुझको ठगता है । सम्मानन (पूजा) शालीनीकरण (नीचे करना) और प्रलम्भन अर्थ में वर्त्तमान ण्यन्त ली धातु से आत्मनेपद हो ॥ ६९ ॥

मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे ॥ ७० ॥

मिं०त्, कृञः, अं०से । अभ्यासे वर्त्तमानान्मिथ्योपपदाद् ण्यन्तात् कृञ आत्मनेपदं स्यात् । यथा-पदंमिथ्याकारयते। स्वरादि-दुष्टम[illegible]रयतीत्यर्थः ॥

पदको झूठा कराताहै । अभ्यास अर्थ में मिथ्या है उपपद जिसके ऐसे ण्यन्त कृञ धातु से आत्मनेपद हो ॥ ७० ॥

स्वरितञितःकर्त्रभिप्रायेक्रियाफले ७१

कर्त्रभिप्राये क्रियाफले स्वरितेतो ञितश्च ये धातवस्तेभ्य आत्मनेपदं स्यात् । यथा—यजते, पचते । कुरुते, सुनुते ॥

यजनकरता है, पकाताहै । करताहै, निकालताहै । यदि क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो स्वरितेत और ञित् धातुओं से आत्मनेपद हो ॥ ७१ ॥

अपाद्वदः ॥ ७२ ॥

कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेऽपपूर्वाद्वदतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—न्यायमपवदते ॥

न्यायके विरुद्ध बोलताहै । यदि क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो अपपूर्वक वद् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ७२ ॥

णिचश्च ॥ ७३ ॥

णिचः, च । कर्त्रभिप्रायेक्रियाफलेऽपपूर्वाद्वदतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—ओदनं पाचयते ॥

भात को पकाताहै । क्रियाका फल कर्त्ता के लिये हो तो णिजन्त धातु से आत्मनेपद हो ॥ ७३ ॥

समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥ ७४ ॥

सं०भ्यः, यमः, अ०थे । ग्रन्थंविहायकर्त्रभिप्राये क्रियाफले सम् उद्, आङ् इत्येवंपूर्वाद्यमेरात्मनेपदंस्यात् । यथा—व्रीहीन्संयच्छते । भारमुद्यच्छते । वस्त्रमायच्छते ॥

धानोंको इकट्ठाकरताहै । भारकोउतारताहै । वस्त्रकोफैलाताहै। ग्रन्थविषयको छोड़कर यदिक्रियाका फलकर्त्ताकेलिये होतो सम्, उद्, और आङ्पूर्वक यमधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ७६ ॥

अनुपसर्गाज्ज्ञः ॥ ७५ ॥

अ०र्गात्, ज्ञः । कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेऽनुपसर्गाज्जानातेरात्मनेपदं-

स्यात् । यथा—गांजानीते । कथंतर्हिभट्टिः । इत्थंनृपः पूर्वमवालुलोचे ततोऽनुजज्ञेगमनंसुतस्येति । कर्मणिलिट् । नृपेणेतिविपरिणामः ॥

वाणी अथवा गौको जानता है । यदि क्रियाकाफलकर्त्ताके लिये होतो उपसर्गरहित ज्ञाधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ७५ ॥

विभाषोपपदेनप्रतीयमाने ॥ ७६ ॥

वि० षा, उ० नें, प्रँ० ने । स्वरितञितइत्यादि पञ्चसूत्र्यायदात्मनेपदंविहितं तत्समीपोच्चारितेनपदेन क्रियाफलस्यकर्तृगामित्वेद्योतितेवास्यात् । यथा—स्वंयज्ञंयजते, यजतिवा । स्वंपुत्रमपवदते, अपवदतिवा । स्वमोदनंपाचयते, पाचयतिवा । स्वान्व्रीहीन् संयच्छते, संयच्छतिवा । स्वां, गांजानीते, जानातिवा ॥

क्रियाकाफल कर्त्ताको उपपदसे प्रतीतहोतो पूर्वोक्त पांचसूत्रों में विकल्प से आत्मनेपदहो ॥ ७६ ॥

शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥ ७७ ॥

कर्त्तरिशेषधातुभ्यः परस्मैपदं स्यात् । यथा—याति । वाति ॥

जाता है । चलता है । शेष (आत्मनेपद से भिन्न) धातुओं से कर्त्ता में परस्मैपदहो ॥

अनुपराभ्यां कृञः ॥ ७८ ॥

अनुपरापूर्वात् करोतेः परस्मैपदं स्यात् । यथा—अनुकरोति । पराकरोति ॥

नकल करता है । उलटा करता है । अनु और परापूर्वक कृञ् धातु से परस्मैपद हो ॥

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥ ७९ ॥

अं० भ्यः, क्षिपः । अभि, प्रति, अति, इत्येवं पूर्वात् क्षिपेः परस्मै-

पदं स्यात्। यथा—अभिक्षिपति। प्रतिक्षिपति। अतिक्षिपति॥

इधर उधर फेंकना है। फेंकताहैं। बहुत फेंकता है। अभि, प्रति और अतिपूर्वक क्षिप धातु से परस्मैपद हो॥ ७९॥

प्राद् वहः॥ ८०॥

प्रपूर्वाद्वहतेः परस्मैपदं स्यात्। यथा—प्रवहति॥

निकलता है। प्रपूर्वक वह धातु से परस्मैपद हो॥ ८०॥

परेर्मृषः॥ ८१॥

परेः, मृषः। परिपूर्वाद्मृष्यतेः परस्मैपदं स्यात्। यथा—परिमृष्यति॥

सम्यक् सहता है। परिपूर्वक मृष् धातु से परस्मैपद हो॥ ८१॥

व्याङ्परिभ्योरमः॥ ८२॥

व्यां०भ्यः, रमः। वि, आङ्, परि, इत्येवं पूर्वाद्रमतेः परस्मैपदं स्यात्। यथा—विरमति। आरमति। परिरमति॥

ठहरताहै (रुकताहै)। खेलताहै। चारोंओर से खेलताहै। वि, आङ् और परि पूर्वक रमु धातु से परस्मैपद हो॥ ८२॥

उपाच्च॥ ८३॥

उपात्, च। उपपूर्वाद् रमतेः परस्मैपदं स्यात्। यथा—सोमदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्॥

ठहराताहै। उपपूर्वक रमु धातुसे परस्मैपद हो॥ ८३॥

विभाषाऽकर्मकात्॥ ८४॥

उपपूर्वाद्रमतेरकर्मकात् परस्मैपदं वा स्यात् । यथा--उपरमते, उपरमति वा । निवर्त्तते इत्यर्थः ॥

लौटताहै । उपपूर्वक अकर्मक रम धातु से विकल्प करके परस्मैपद हो ॥ ८५ ॥

बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्योणेः ॥८६॥

बु० भ्यः, णेः । एभ्यो णयन्तेभ्यः परस्मैपदं स्यात् । यथा--बोधयति शास्त्रम् । योधयति काष्ठानि । नाशयति दुःखम् । जनयति सुखम् । अध्यापयति वेदम् । प्रावयति । प्रापयतीत्यर्थः । द्रावयति । विलापयतीत्यर्थः । स्रावयति । स्यन्दयतीत्यर्थः ॥

शास्त्रको बतलाताहै । लकड़ींचीरताहै । दुःखकोदूरकरताहै । सुखकोपैदाकरताहै । वेदकोपढ़ाताहै । पहुंचाताहै । विलापकराताहै । चुआताहै । बुध, युध, नश, जन, इङ्, प्रु, द्रु, स्रु इनण्यन्तधातुओंसे परस्मैपदहो ॥ ८५॥

निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥ ८६ ॥

नि० भ्यः, च अ । णयन्तनिगरणार्थेभ्यश्चलनार्थेभ्यश्चपरस्मैपदं स्यात् । यथा-निगारयति, आशयति, भोजयति । चलयति, कम्पयति ॥ (आदेः प्रतिषेधः) । आदयतेयः[illegible] ॥

खिलाताहै । कम्पाताहै । निगरण (निगलना) और चलनार्थ ण्यन्तधातुओं से परस्मैपदहो ॥ ८१ ॥

अणावकर्म्मकाच्चित्तवत्कर्त्तृकात् ॥८८॥

अणौ, अ० तौ चि० तं । अणयन्तो योधातुरकर्मकश्चित्तवत् कर्तृकस्तस्माद् णयन्तात्परस्मैपदंस्यात् । यथा-शेतेबालकस्तंमाताशाययति । आस्ते चैत्रस्तंमैत्रआसयति ॥

बालककोमाता सुलातीहै । मैत्र चैत्रकोबिठलाताहै । अण्यन्त अवस्थामें अकर्मक चेतनकर्त्तावाले ण्यन्तधातुसे परस्मैपदहो ॥ ८७ ॥

न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः ॥ ८८ ॥

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं न स्यात्। यथा--पाययते। दमयते। आयामयते। आयासयते। परिमोहयते। रोचयते। नर्त्तयते। वादयते। वासयते (धेट उपसङ्ख्यानम्)। यथा--धापयेते शिशुमेकं समीची ॥

पिलाता है। रोकता है। फैलाता है। फिंकवाता है। मोह कराता है। पसन्द कराता है। नचाता है। कहलाता है। बसाता है। पा, दमि, आङ्+यम, आङ्+यस, परि+मुह, रुचि, नृति, वद, वस इन ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद न हो॥ ८८॥

वा क्यषः ॥ ८६ ॥

क्यषन्तात्परस्मैपदं वा स्यात्। यथा--लोहितायति, लोहितायते॥

लाल होता है। क्यष् प्रत्यान्त धातु से विकल्प से परस्मैपद हो॥ ८९॥

द्युद्भ्यो लुङि ॥ ९० ॥

द्युतादिभ्यो लुङि वा परस्मैपदं स्यात्। यथा--अद्युतत्, अद्योतिष्ट॥

प्रकाशित हुआ। द्युतादि गणपठित धातुओं से विकल्प करके परस्मैपद हो॥ ९०॥

वृद्भ्यः स्यसनोः ॥ ६१ ॥

वृतादिभ्यः परस्मैपदं वा स्यात् स्ये सनि च परे। यथा-वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते। विवृत्सति, विवर्त्तिषते॥

बर्त्ताव करेगा। बर्त्ताव करना चाहता है। वृतु आदि धातुओं से स्य सन् विषय में विकल्प से परस्मैपद हो॥ ९१॥

लुटि च क्लृपः ॥ ६२ ॥

१-(७।३।३७) इतियुक्। २-अलोहितोलोहितो भवतीत्यत्रार्थे क्यष्, अकृत् सार्वधातुकयोरितिदीर्घः।

लुटि स्य सनोश्च क्लृपेः परस्मैपदं वास्यात्। यथा—कल्प्तासि, कल्पितासे। कल्प्स्यति, कल्पिष्यते, कल्प्स्यते, चिक्लृप्सति, चिकल्पिषते, चिक्लृप्सते ॥

लुट्लकारस्य और सनप्रत्ययके विषयमें क्लृप धातुसे विकल्पसे परस्मैपद हो ॥९३॥

इतिप्रथमाऽध्यायस्यतृतीयः पादः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादारम्भः ॥

आकडारादेका सञ्ज्ञा ॥१॥

आ, कडारात्, एका, सञ्ज्ञा। इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव सञ्ज्ञा स्यात्। यापरानवकाशाच्च ॥

कडाराः कर्मधारये, इससूत्रपर्यन्त एक की एकही सञ्ज्ञा हो ॥ १ ॥

विप्रतिषेधे परं कार्य्यम् ॥ २ ॥

तुल्यबलविरोधे परं कार्य्यं स्यात्। यथा—वृक्षेभ्यः ॥

वृक्षों के लिये। विप्रतिषेध (तुल्यबलविरोध) में पर को कार्य्य हो ॥ २ ॥

यू स्त्र्याख्यौ नदी ॥ ३ ॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—कुमारी। वधूः ॥

वहू। स्त्रीलिङ्गवाचक ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द नदीसंज्ञक हों ॥ ॥ ३ ॥

नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ॥ ४ ॥

न, इयङुवङ्स्थानौ, अस्त्री। इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदी

१-(७ । २ । ५९) । इतीट् । २-(७ । २ । ६०) इतिनेट् ।

सञ्ज्ञकौ न स्याताम्, स्त्रीशब्दं विहाय। यथा—हे श्रीः!। हे भ्रूः!॥

हेशोभा। हे भौंह स्त्रीशब्द को छोड़कर स्त्रीलिङ्गवाचक इयङ् उवङ् स्थानी ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द नदीसंज्ञक न हों॥ ४॥

वामि॥ ५॥

वा, आमि। स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—श्रीणाम्, श्रियाम्। भ्रूणाम्, भ्रुवाम्॥

स्त्रीशब्दको छोड़कर इयङ् उवङ् स्थानी ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाचक शब्द आम्परेहो तो विकल्प से नदीसंज्ञकहों॥ ५॥

ङिति ह्रस्वश्च॥ ६॥

ङिति, ह्रस्वः, च। इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ, ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञकौ स्यातां ङिति सुपिपरे। यथा—मत्यै, मतये। धेन्वै, धेनवे। श्रियै, श्रिये। भ्रुवै, भ्रुवे॥

बुद्धि के लिये। गायके लिये। शोभा के लिये। भौंहके लिये। स्त्रीशब्द को छोड़कर इयङ् उवङ् स्थानी दीर्घ और ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त स्त्रीलिङ्गवाचक शब्द ङित् विभक्ति परे हों तो विकल्प से नदीसंज्ञक हों॥ ६॥

शेषो घ्यसखि॥ ७॥

शेषः, घि, असखि। सखिशब्दं विहाय ह्रस्वाविवर्णोवर्णौ घि सञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—अग्नये। भानवे। कृतये। धेनवे॥

अग्निकेलिये। सूर्यके लिये। कार्यके लिये। सखि शब्द को छोड़कर शेष इकारान्त और उकारान्त शब्द घिसंज्ञक हों॥ ७॥

पतिः समास एव॥ ८॥

* नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबेऽथ पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥ अत्र निरंकुशः कवयः॥

पतिः, समासे, एव । पतिशब्दः समास एव घिसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—प्रजापतये ॥

परमात्माके लिये । पति शब्द समास ही में घिसंज्ञक हो ॥ ८ ॥

षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ॥ ९ ॥

प० क्तः, छन्दसि, वा । पष्ठयन्तेनयुक्तः पतिशब्दश्छन्दसिघिसंज्ञकोवास्यात् । यथा—कुलुश्चानां पतये नमः, पत्ये वा ॥

डांकुओं के मालिक का सत्कार । पष्ठीयुक्तपतिशब्द छन्दोविषय में विकल्प से घिसंज्ञक हो ॥ ९ ॥

ह्रस्वं लघु ॥ १० ॥

ह्रस्वमक्षरं लघु सञ्ज्ञकं स्यात् ॥

ह्रस्व अक्षर लघुसंज्ञक हो ॥ १० ॥

संयोगे गुरु ॥ ११ ॥

संयोगेपरे ह्रस्वमक्षरंगुरुसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—शिक्षा । विप्रः ॥

संयोग परे हो तो ह्रस्व अक्षर गुरु संज्ञक हो ॥ ११ ॥

दीर्घं च ॥ १२ ॥

दीर्घञ्चाक्षरङ्गुरुसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—ईहाञ्चक्रे ॥

चेष्टा की । दीर्घ अक्षर भी गुरु संज्ञक हो ॥ १२ ॥

यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ॥ १३ ॥

यस्माद्यः प्रत्ययः क्रियते तदादिशब्दरूपं तस्मिन् प्रत्यये परेऽङ्ग-

सञ्ज्ञं स्यात् । यथा--कर्त्ता[1] । करिष्यति । औपगवः ॥

जिस प्रकृति (धातु या प्रातिपदिक) से प्रत्यय विधान किया जावे उसप्रकृति प्रत्यय की अङ्गसंज्ञा हो ॥ १३ ॥

सुप्तिङन्तम् पदम् ॥ १४ ॥

सुबन्तं तिङन्तं च पदसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--ब्राह्मणाः पठन्ति ॥

ब्राह्मणपढते हैं । सुबन्त और तिङन्त पदसञ्ज्ञक हो ।. १४ ॥

नः क्ये ॥ १५ ॥

क्यचि, क्यङि, क्यषि च नान्तमेव पदसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-- राजीयति[2] । राजायते[3] । चर्म्मायते, चर्म्मायति ॥

राजाके समान आचरण करता है । चर्मके सदृश होताहै । क्य प्रत्यय परे हो तो नान्त सुबन्त पदसंज्ञक हो ॥ १५ ॥

सिति च ॥ १६ ॥

सितिपरे पूर्वं पदसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-भवदीयम्[4] ॥

आपका । सित्प्रत्यय परे हो तो पूर्व की पदसंज्ञा हो ॥ १६ ॥

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ॥ १७ ॥

स्वादिषु, असर्वनामस्थाने । कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनाम स्थानेषु परेपूर्वं पदसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--राजभ्याम् । राजभिः । राजत्वम् । राजता । राजतरः । राजतमः ॥

सर्वनामस्थान वर्जित कप् (५ । ४ । १५१) प्रत्ययपर्यन्त स्वादि प्रत्यय परे हो तो पूर्वकी पदसंज्ञा हो ॥ १७ ॥

१—कर्त्तरिलुट् । २—(८ । २ । ७) इति नलोपः । (७ । ४ । ३३) इतीत्वम् । ३--(७ । ४ । २५) इत्यात्वम् । ४—(४ । २ । ११४) इतिछः । (८ । २ ३९) इति जश्त्वम् ।

यचि भम् ॥१८॥

यकारादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिषु सर्वनामस्थानेषु परेषु पूर्वं भसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—गार्ग्यः । दाशरथिः ॥

दशरथका पुत्र । सर्वनामस्थान वर्जित यकारादि अजादि स्वादि प्रत्यय परे हों तो पूर्वकी भसञ्ज्ञा हो ॥ १८ ॥

तसौ मत्वर्थे ॥१९॥

तान्तसान्तौ भसञ्ज्ञकौ स्यातां मत्वर्थप्रत्यये परे । यथा--उदश्वित्वान्घोषः । यशस्वीपुमान् ॥

मट्ठेवाला आभीरका झोंपड़ा । यशवाला पुरुष । मत्वर्थ प्रत्यय परे हों तो तकारान्त और सकारान्त शब्द भसञ्ज्ञक हों ॥ १९ ॥

अयस्मयादीनि च्छन्दसि ॥ २० ॥

अयस्मयादीनि शब्दरूपाणि छन्दसि विषये निपात्यन्ते । यथा--अयस्मयं वर्म । ससुष्टुभासऋक्वतागणेन । पदत्वात्कुत्वं भत्वाज्जश्त्वं न भवति ॥

छन्द विषय में अयस्मयादि शब्द निपातित हैं ॥ २० ॥

बहुषु बहुवचनम् ॥ २१ ॥

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् । यथा--बाला अधीयते ॥

लड़के पढ़ते हैं । दो से अधिक के प्रयोग में बहुवचन हो ॥२१॥

द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने ॥ २२ ॥

द्व्येकयोः, द्वि० ने। द्वित्वैकत्वयोरिमे स्याताम्। यथा--बालौ पठतः। बालः पठति॥

दोके कथन में दोवचन और एकके कथन में एकवचन हो॥ २२॥

कारके॥ २३॥

अधिकारोऽयम्॥

यहांसे आगे पचपनसूत्रतक कारकका अधिकार है॥ २३॥

ध्रुवमपायेऽपादानम्॥ २४॥

ध्रुवम्, अपाये, अपादानम्। अपाये यद्ध्रुवं तत्कारकमपादानसञ्ज्ञं स्यात्। यथा--ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात्पतति॥

गांवसे आता है। दौड़ते हुये घोड़ेसे गिरता है। अपाय (वियोग) में जो ध्रुव (स्थिर) कारक है वह अपादानसञ्ज्ञकहो॥ २४॥

भीत्रार्थानांभयहेतुः॥ २५॥

भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात्। यथा--चौराद् बिभेति। पापात्त्रायते॥

चोरसे डरता है। पापसेबचताहै। भयार्थ और रक्षार्थ धातुओंके प्रयोगमें भयहेतु कारक अपादानसञ्ज्ञकहो॥ २५॥

पराजेरसोढः॥ २६॥

पराजेः, असोढः। परापूर्वस्य जयतेरसोढकारकमपादानसञ्ज्ञंस्यात्। यथा--अध्ययनात् पराजयते॥

पढ़नेसे भागता है। परापूर्वक जि धातुके प्रयोगमें असोढ़ (जिसकोनहींसहसक्ता) कारक अपादानसंज्ञकहो॥ २६॥

* अपाये यदुदासीनं चलंवा यदिवाचलम्। ध्रुवमेवातदावेशात्तदपादानमुच्यते॥ १-[२. ३. २८] इतिपञ्चमी।

वारणार्थानामीप्सितः ॥ २७ ॥

वारणार्थानाम्, ईप्सितः । वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितोऽर्थोऽपदानसञ्ज्ञंस्यात् । यथा--यवेभ्यःक्षेत्रे गावारयति ॥

खेतमें जौ से गौओं को हटाता है । वारणार्थ (हटाना) धातुओं के प्रयोग में ईप्सित (चाहाहुआ) अर्थवाला कारक अपादान संज्ञक हो ॥ २७ ॥

अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ॥ २८ ॥

अन्तर्धौ, येन, अदर्शनम्, इच्छति । अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति तत्कारकमपादान सञ्ज्ञंस्यात् । यथा-अध्यापकान्निलीयतेबालः॥

बालकअध्यापकसेछिपताहै । छिपने में जिससे अदर्शन की इच्छा हो वह कारक अपादान संज्ञक हो ॥ २८ ॥

आख्यातोपयोगे ॥ २९ ॥

आख्याता, उपयोगे । नियमपूर्वक विद्यास्वीकारे वक्ताऽपादान सञ्ज्ञः स्यात् । यथा--उपाध्यायादधीते ॥

अध्यापकसे पढ़ता है । उपयोग (नियमपूर्वक पढ़ना) में आख्याता (अध्यापक) कारक अपादानसंज्ञक हो ॥ २९ ॥

जनिकर्त्तुः प्रकृतिः ॥ ३० ॥

जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात् । यथा—काष्ठादग्निर्जायते ॥

काष्ठसे अग्नि पैदा होता है । जन धातु के कर्त्ता की जो प्रकृति (उपादान) है वह कारक अपादानसंज्ञक हो ॥ ३० ॥

भुवः प्रभवः ॥३१॥

भूकर्त्तुः प्रभवोऽपादानसञ्ज्ञः स्यात्।यथा—हिमवतो गङ्गाप्रभवति॥

हिमालय (पर्वत) से गङ्गा निकलती है । भू धातु के कर्त्ता का प्रभव (उत्पत्ति स्थान) कारक अपादानसंज्ञकहो ॥ ३१ ॥

कर्मणा यमभिप्रैति स *सम्प्रदानम् ॥ ३२॥

क्रि०

कर्मणा, यम्, अभिप्रैति, सः, सम्प्रदानम् । दानस्यकर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा--छात्रायपुस्तकं ददाति (**क्रिययायमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्**) यथा--पत्येशेते ॥ (**कर्मणः करणसञ्ज्ञा, सम्प्रदानस्य च कर्मसञ्ज्ञा वाच्या**) घृतेन इन्द्राय यजते । घृतमिन्द्राय ददातीत्यर्थः

विद्यार्थी के लिये पुस्तक है । कर्त्ता कर्म जिसको देने का अभिप्राय करे वह कारक सम्प्रदान संज्ञक हो ॥ ३२ ॥

रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ॥ ३३ ॥

रुच्यर्थाना धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः सम्प्रदानसञ्ज्ञःस्यात् । यथा--रोचन्तेचैत्रायमोदकाः ॥

चैत्र को लड्डु अच्छेलगते हैं । रुचि अर्थवाले धातुओं के प्रयोग में जो प्रीयमाण (तृप्त होनेवाला) है वह कारक सम्प्रदान संज्ञक हो ॥ ३३ ॥

श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ॥३४॥

* अनिराकरणात् कर्तुस्त्या गाङ्गं कर्मणेप्सितम् । प्रेरणानुमतिभ्यां वा लभते सम्प्रदानताम् ॥ १-(२ । ३। १३) इति चतुर्थी ॥

एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टस्सम्प्रदानसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-यज्ञदत्ताय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा ॥

यज्ञदत्तको जताने के लिये प्रशंसा, दूर, स्थित और गाली देता है । श्लाघ, ह्नु स्था धातु और शपधातुके प्रयोगमें ज्ञीप्समान (जिसको जनानाचाहैं) कारक संप्रदान संज्ञकहो ॥ ३४ ॥

धारेरुत्तमर्णः ॥ ३५ ॥

धारेः, उत्तमर्णः । धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्णः सम्प्रदानसंज्ञःस्यात् । यथा-देवदत्तोयज्ञदत्ताय शतम्मुद्राधारयति ॥

देवदत्त यज्ञदत्तका सौ रुपयेसेऋणीहै । धारिधातुके प्रयोगमें उत्तमर्ण (ऋणदाता) कारकसंप्रदान संज्ञकहो ॥ ३५ ॥

स्पृहेरीप्सितः ॥ ३६ ॥

स्पृहेः, ईप्सितः । स्पृहेः प्रयोगे इष्टः सम्प्रदानसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-पुष्पेभ्यः स्पृहयति ॥

पुष्पोंको चाहताहै ॥ स्पृहि धातुके प्रयोगमें ईप्सित (जिसको लेनाचाहै) कारक सम्प्रदानसंज्ञकहो ॥ ३६ ॥

क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानांयंप्रतिकोपः ३७

क्रुधाद्यर्थानांप्रयोगे यं प्रतिकोपः ससम्प्रदानसञ्ज्ञः स्यात् । यथा-दस्यवे क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति ॥

दस्यु (चोर, शत्रु) के लिये क्रोध, द्रोह, अक्षमा निन्दाकरता है । क्रुधार्थ, द्रुहार्थ, ईर्ष्यार्थ और असूयार्थ धातुओंके प्रयोगमें जिसके प्रति कोपहो वह कारक सम्प्रदान संज्ञकहो ॥ ३७ ॥

क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोःकर्म्म ॥ ३८ ॥

क्रुधद्रुहोः, उपसृष्टयोः, कर्म । सोपसर्गयोरनयोर्यं प्रतिकोपस्तत्कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-यज्ञदत्तमभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति ॥

यज्ञदत्तपरक्रोध, द्रोहकरताहै । उपसर्गयुक्त क्रुध और द्रुहधातुके प्रयोगमें जिसके प्रति कोपहो वह कारक कर्मसंज्ञकहो ॥

राधीक्ष्योर्यस्यविप्रश्नः ॥ ३९ ॥

राधीक्ष्योः, यस्य, विप्रश्नः । एतयोः कारकंसम्प्रदानं स्यात्, यदीयोविविधः प्रश्नः क्रियते । यथा-देवदत्तायराध्यति, ईक्षतेवा, पृष्टःसन् शुभाशुभं विज्ञापयतीत्यर्थः ॥

राधि और ईक्षधातुके प्रयोगमें जिसका विविधप्रश्नहो वह कारक सम्प्रदान संज्ञकहो ॥ ३९ ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता ॥ ४० ॥

आभ्यां परस्य शृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्त्तनरूपव्यापारस्य कर्त्ता सम्प्रदानं स्यात् । यथा-विप्राय गां प्रतिशृणोति, आशृणोति वा । विप्रेण मह्यंदेहीति प्रवर्त्तितः प्रतिजानीत इत्यर्थः ॥

प्रति और आङ्पूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में जो पूर्व का कर्त्ता वह कारक सम्प्रदानसंज्ञक हो ॥ ४० ॥

अनुप्रतिगृणश्च ॥ ४१ ॥

अ० गृणः, च । आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्वव्यापारस्य कर्तृभूतं सम्प्रदानसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-होत्रेऽनुगृणाति, प्रतिगृणाति । होता प्रथमं शंसति, तमध्वर्युः प्रोत्साहयतीत्यर्थः ॥

अनु और प्रतिपूर्वक शब्दार्थ गृ धातु के प्रयोग में जो पूर्व (प्रस्ताव करते समय) का कर्त्ता वह कारक सम्प्रदानसञ्ज्ञक हो ॥ ४१ ॥

साधकतमं करणम् ॥ ४२ ॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसञ्ज्ञं स्यात्। यथा-आसिना हन्ति । लोचनाभ्यां पश्यति ॥

तलवारसे मारता है । आंखों से देखता है । क्रियाका जो साधकतम कारक वह करणसञ्ज्ञक हो ॥ ४२ ॥

दिवः कर्म्म च ॥ ४३ ॥

दिवस्साधकतमं कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्याच्चात्करणसञ्ज्ञं च। यथा-अक्षैरक्षान् वा दीव्यति ॥

पासों से खेलता है। दिव धातु का साधकतम कारक कर्म और करणसंज्ञक हो ४३

परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥

नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणम्। तस्मिन् साधकतमं कारकं सम्प्रदानसञ्ज्ञं वा स्यात् । यथा--शतेन, शताय वा, परिक्रीतः ॥

परिपूर्वक क्री धातु के प्रयोग में साधकतम कारक विकल्प से सम्प्रदानसञ्ज्ञक हो ४४

आधारोऽधिकरणम् ॥ ४५ ॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसञ्ज्ञं स्यात्। यथा--भूमौ शेते । स्थाल्यां पचति ॥

भूमिपर सोता है । बटलोई में पकाता है । क्रियाका आधार कारक अधिकरणसंज्ञक हो ॥ ४५ ॥

अधिशीङ्स्थासां कर्म्म ॥ ४६ ॥

* क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम् । विवक्ष्यते यदा तत्र करणत्वं तदा स्मृतम् ॥ १-(२ । ३ ११) इति तृ० ।

अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्मसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा--अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा शैलम् ॥

सोता है। स्थित होता है, बैठता है पहाड़पर । अधिपूर्वक शीङ् स्था और अस धातु का आधार कारक कर्मसञ्ज्ञक हो ॥ ४६ ॥

अभिनिविशश्च ॥ ४७ ॥

अभिनिविशः, च । अभिनीत्येतत् सङ्घातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्मसञ्ज्ञः स्यात् । यथा--अभिनिविशते सन्मार्गम् । परिक्रयणे सम्प्रदानमिति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्याऽन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात्क्वचिन्न-कल्याणेऽभिनिवेशः ॥

अच्छे मार्गपर चलता है । अभि नि पूर्वक विश धातु का आधार कारक कर्मसञ्ज्ञक हो ॥

उपान्वध्याङ्वसः ॥ ४८ ॥

उपादिपूर्वस्यवसतेराधारःकर्मसञ्ज्ञःस्यात् । यथा-उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा पापी दुःखम् (अभुक्त्यर्थस्य न) वने उपवसति ॥

पापी दुःख में रहता है । उप, अनु, अधि और आङ्पूर्वक वस धातु का आधार कारक कर्मसञ्ज्ञक हो ॥ ४८ ॥

कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म ॥ ४९ ॥

कर्त्तुः, ईप्सिततमम्, कर्म । कर्त्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसञ्ज्ञंस्यात् । यथा--ग्रामञ्जिगमिषति ॥

गांवको जानना चाहता है । क्रिया द्वारा कर्त्ता का ईप्सित (अत्यन्त इष्ट) कारक कर्मसंज्ञक हो ॥ ४९ ॥

तथायुक्तं चाऽनीप्सितम् ॥ ५० ॥

कर्त्तुः क्रियया यदनीप्सिततमं तत्कारकमपि कर्मसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशति । विषं खादति मूढधीः ॥

गांवको जाता हुआ तृणों को छूता है । मूर्ख विष खाता है । क्रिया द्वारा कर्त्ता का अनीप्सित (जिसकी इच्छा न हो) कारक भी कर्मसंज्ञक हो ॥ ५० ॥

अकथितं च ॥ ५१ ॥

अकथितं च यत्कारकं तत्कर्मसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-परिगणनमत्राक्रियते । दुहि याचि रुधि प्रच्छि भिक्षि चिञामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ । ब्रुविशासि गुणेन च यत्सचते तदकीर्त्तितमाचरितं कविना । यथा-गां दोग्धि पयः । नृपतिं भूमिं याचते । व्रजमवरुणद्धि गाम् । अश्वारोहं मार्गं पृच्छति । ग्राम्यं नरं गां भिक्षते । वृक्षमवचिनोति फलानि । धार्म्मिकान् धर्म्मं ब्रूते, शास्ति वा ॥

गौ का दूध दुहा है । राजा से भूमि मांगता है । गौ को गोशाला में रोकता है । सवार से मार्ग पूछता है । गांव के पुरुष से गौ को मागता है । वृक्षके फलों को बीनता है । धर्म्मात्माओं को धर्मकी शिक्षा करता है । अकथित (जिसके वास्ते कि कोई विधान न हो) कारक कर्मसंज्ञक हो ॥ ५१ ॥

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता सणौ ॥ ५२ ॥

ग० काणाम्, अणि, कर्त्ता, सः, णौ । गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मकाणामकर्मकाणां चाणौ यः कर्त्ता स णौ कर्म स्यात् । यथा-भृत्यं ग्रामं गमयति । धार्मिकं धर्म्मं बोधयति । बालान्मोदकान्भोजयति । यज्ञ-

* अप्रधानकर्मण्याख्येये ल्यादीनाहुर्द्विकर्मणाम् । अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्तुश्च कर्मणः ॥

दत्तं वेदमध्यापयति । देवदत्तमासयति। (नीवह्योर्न) ॥ नायपति, वाहयतिवा, भारंभृत्येन ॥ (नियन्तृकर्तृकस्यवहेरनिषेधः) ॥ वाहयति रथंवाहान्सूतः ॥ (आदिखाद्योर्न)॥ आदयति, खादयति वान्नंऽबटुना॥ (भक्षेरहिंसार्थस्यन) भक्षयतिबटुनाऽन्नम्॥ (जल्पतिप्रभृतीनामुपसङ्ख्यानम्)॥ जल्पयति, भाषयतिधर्म्मंपुत्रंदेवदत्तः ॥

नौकरको गांवकोभेजताहै ॥ धर्म्मात्माको धर्मवतलाताहै । लड़कोंको लड्डू खिलाताहै । यज्ञदत्तको वेदपढ़ाताहै । देवदत्तको बैठाताहै। गत्यर्थक बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक (भोजन) शब्दकर्मक और अकर्मकधातुओंका अण्यन्त अवस्थाका जोकर्त्ता वह ण्यन्तअवस्थामें कर्मसंज्ञकहो ॥ ५२ ॥

हृक्रोरन्यतरस्याम् ॥ ५३ ॥

हृक्रोः,अन्यतरस्याम् । हृक्रोरणौयःकर्त्ता सणौवाकर्म स्यात्। यथा-हारयति, कारयतिवा भृत्येन भृत्यं वाकटम् । (अभिवादिदृशोरात्मनेपदेवेतिवाच्यम्) ॥ अभिवादयते गुरुंदेवदत्तः, देवदत्तेनवा । दर्शयतेप्रभुंभक्तंभक्तेनवा ॥

नौकरसे चटाई लिवाजाताहै । बनवाताहै । हृ और कृधातुका अण्यन्त अवस्था का कर्त्ता ण्यन्त अवस्थामें विकल्पसे कर्मसंज्ञकहो ॥ ५३ ॥

स्वतन्त्रः कर्त्ता ॥ ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्त्तृसञ्ज्ञः स्यात् । यथा-देवदत्तः पठति ॥

क्रिया में कथित स्वतन्त्र कारक कर्त्तासंज्ञक हो ॥ ५४ ॥

तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ ५५ ॥

तत्प्रयोजकः, हेतुः, च । कर्त्तुः प्रयोजको हेतुसञ्ज्ञः कर्त्तृसञ्ज्ञश्च स्यात् । यथा—भवतीति भवन्, भवन्तं प्रेरयति-भावयति ॥

स्वतन्त्र कर्त्ता का जो प्रयोजक (प्रेरक) वह कारक हेतु और कर्त्तृसञ्ज्ञक हों ॥

प्रागीश्वरान्निपाताः ॥ ५६ ॥

प्राक्, ईश्वरात्, निपाताः । अधिरीश्वरेसूत्रमिति वक्ष्यति तदवधेर्निपाताऽधिकारोविज्ञेयः ॥

अधिरीश्वरे सूत्र तक निपातका अधिकार जानना चाहिये ॥ ५६ ॥

चादयोऽसत्त्वे ॥ ५७ ॥

अद्रव्यार्थाश्चादयोनिपातसञ्ज्ञकाः स्युः । चादयः स्वरादिगणे पठ्यन्ते ॥

असत्व (अद्रव्य) के वाचक च आदि निपातसञ्ज्ञक हों ॥ ५७ ॥

प्रादयः ॥ ५८ ॥

अद्रव्यार्थाः प्रादयोनिपातसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर्, निस्, दुर्, दुस्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप । इमे प्रादयो विज्ञेयाः ॥

अद्रव्य वाचक प्र आदि निपातसंज्ञक हों ॥ ५८ ॥

उपसर्गाः क्रियायोगे ॥ ५९ ॥

प्रादयःक्रियायोगे उपसर्गसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा—प्रणयति ॥

बनाता है । क्रिया के योग में प्र आदि उपसर्गसंज्ञक हों ॥ ५९ ॥

१-(८ । ४ । १४) इति णत्वम् ।

गतिश्च ॥ ६० ॥

गतिः, च । प्रादयः क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञकाश्च स्युः । यथा—प्रकृत्य, प्रकृतम् । आरभ्य, अधिकृतम् ॥

क्रिया के योग में प्र आदि गतिसंज्ञक भी हों ॥ ६० ॥

ऊर्यादिच्विडाचश्च ॥ ६१ ॥

ऊ० डाचः, च । इमे क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा—ऊरीकृत्य, उररीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य (कारिकाशब्दस्योपसङ्ख्यानम्) कारिका--क्रिया । कारिका कृत्य ॥

स्वीकार करके । सफेद करके । पटपटकरके । ऊरी आदिशब्दच्विप्रत्ययान्त और डाच्प्रत्ययान्त क्रियाके योग में गतिसंज्ञक हों ॥ ६१ ॥

अनुकरणं चाऽनितिपरम् ॥ ६२ ॥

अनितिपरऽनुकरणं क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--खाट् कृत्य ॥

खखारकर । इतिशब्द जिससे परे न हो ऐसा अनुकरण क्रिया के योग में गतिसंज्ञक हो ॥ ६२ ॥

आदरानादरयोः सदसती ॥ ६३ ॥

क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम् । यथा—सत्कृत्य । असत्कृत्य ॥

आदर करके । अनादर करके । आदर और अनादर अर्थ में सत् और असत् शब्द क्रिया के योग में गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ६३ ॥

१-(७ । १ । ३७) इति ल्यप् २-(७ । ४ । ३२) इतीत्वम् ।

भूषणेऽलम् ॥ ६४ ॥

भूषणेयोऽलंशब्दः,स क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—अलंकृत्य ॥

सजाकर । क्रिया के योग में भूषण अर्थ होने पर अलं शब्द गतिसंज्ञक हो ॥६४॥

अन्तरपरिग्रहे ॥ ६५ ॥

अन्तर, अपरिग्रहे । अन्तः शब्दोऽपरिग्रहेऽर्थे गतिसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—अन्तर्हत्य । मध्ये हत्वेत्यर्थः ॥

अपरिग्रह (अस्वीकार) अर्थमें अन्तर शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक हो ॥६५॥

कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते ॥ ६६ ॥

इमौ श्रद्धाप्रतीघातेगतिसञ्ज्ञकौस्याताम् । यथा—कणेहत्य पयःपिबति । अतिशयेनाभिलष्य । मनोहत्य पयः पिबति ॥

मन भरके दूध पीता है । कणे और मनस् शब्द श्रद्धाके प्रतीघात (अभिलाषानिवृत्ति) अर्थमें गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ६६ ॥

पुरोऽव्ययम् ॥ ६७ ॥

पुरस्, अव्ययम् । अव्ययं पुरस् शब्दः क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—पुरस्कृत्य । पूर्वस्मिन् देशे कृत्वेत्यर्थः ॥

आगे करके । क्रियाके योगमें पुरस् अव्यय गतिसंज्ञक हो ॥ ६७ ॥

अस्तं च ॥ ६८ ॥

अस्तमितिमान्तमव्ययं गतिसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—अस्तङ्गत्य ॥

छिपकर । अस्तम् अव्यय भी क्रियाके योग में गतिसञ्ज्ञक हो ॥ ६८ ॥

अच्छ गत्यर्थवदेषु ॥ ६९ ॥

अच्छशब्दोऽयं गत्यर्थेषु धातुषु वदतौ च गतिसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-अच्छगत्य[1] । अच्छोद्य ।

सामने जाकर । सामने कहकर । गत्यर्थ और वद धातु के योगमें अच्छ अव्यय गतिसञ्ज्ञक हो ॥ ६९ ॥

अदोऽनुपदेशे ॥ ७० ॥

अनुपदेशे अदश्शब्दो गतिसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-अदःकृत्य । अदः कृतम् ॥

स्वयं विचारके । स्वयं विचार किया । अनुपदेश में अदस् शब्द क्रियाके योग में गतिसञ्ज्ञक हो ॥ ७० ॥

तिरोऽन्तर्धौ ॥ ७१ ॥

तिरस्, अन्तर्धौ । अन्तर्धौ तिरस् शब्दोगतिसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-तिरोभूय ॥

छिपकर । अन्तर्धि (छिपना) अर्थ में तिरस् शब्द गतिसञ्ज्ञक हो ॥ ७१ ॥

विभाषा कृञि ॥ ७२ ॥

अन्तर्धौ तिरश्शब्दः करोतौ परे वा गतिसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-तिरःकृत्य[2], तिरस्कृत्य, तिरः कृत्वा ॥

छिपकर । अन्तर्धि अर्थ में तिरस् शब्द कृञ् के योगमें विकल्पसे गतिसञ्ज्ञक हो॥७२

१- अच्छेत्यनुकरणत्वेऽविभक्तिकोनिर्देशः सुपांसुलुगिति विभक्तेर्लुप्तत्वात् । अभिशब्दस्यार्थं इति आभिमुख्ये । अच्छोद्येति, । यजादित्वा सम्प्रसारणमुदकमच्छं गच्छति, अकलुषमित्यर्थः ॥ २-(८ । ३ । ४२) वेति सत्वम् ॥

उपाजेऽन्वाजे ॥ ७३ ॥

इमौ कृञि वा गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम् ॥ यथा—उपाजेकृत्य, उपाजे कृत्वा । अन्वाजे कृत्य, अन्वाजे कृत्वा ॥

दुर्बल की सहायता करके । उपाजे और अन्वाजे शब्द कृञ् के योगमें विकल्प से गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ७३ ॥

साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ ७४ ॥

कृञि वा गतिसञ्ज्ञानि स्युः । (च्व्यर्थ इति वाच्यम्) ॥ यथा—साक्षात्कृत्य, साक्षात्कृत्वा । शीतं कृत्य, शीतं कृत्वा ॥

सामने करके । ठण्डा करके । साक्षात् आदि शब्द कृञ् के योग में विकल्प से गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ७४ ॥

अनत्याधान उरसिमनसी ॥ ७५ ॥

अनत्याधाने, उरसिमनसी । अनत्याधानेऽर्थे उरसिमनसि शब्दौ कृञि वा गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम् । यथा—उरसिकृत्य, उरसिकृत्वा । मनसिकृत्य, मनसिकृत्वा ॥

निश्चय करके । अनत्याधान (आधाराधेय) अर्थ में उरसि और मनसि शब्द कृञ् के योग में विकल्प से गतिसंज्ञक हों ॥ ७५ ॥

मध्ये पदे निवचने च ॥ ७६ ॥

इमेऽनत्याधाने वा गतिसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा—मध्ये कृत्य, मध्ये कृत्वा । पदेकृत्य, पदेकृत्वा । निवचनेकृत्य, निवचने कृत्वा ॥

वाणी को वशमें करके । अनत्याधान अर्थ में मध्ये पदे और निवचने शब्द कृञ् के योग में विकल्प से गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ७६ ॥

नित्यं हस्ते पाणावुपयमने ॥ ७७ ॥

नित्यम्, हस्ते, पाणौ, उपयमने। विवाहे हस्ते पाणौ शब्दौ नित्यं गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—हस्ते कृत्य। पाणौ कृत्य ॥

विवाह कर। उपयमन (विवाह) अर्थ में हस्ते और पाणौ शब्द नित्य कृञ् के योग में गतिसंज्ञक हों ॥७७॥

प्राध्वम् बन्धने ॥ ७८ ॥

बन्धनेऽर्थे प्राध्वंशब्दः कृञि गतिसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा—प्राध्वङ् कृत्य ॥

बांधकर। बन्धन अर्थ में प्राध्वम् अव्यय कृञ् के योग में गतिसंज्ञक हो ॥७८॥

जीविकोपनिषदावौपम्ये ॥ ७९ ॥

जीविकोपनिषदौ, औपम्ये। औपम्ये विषये कृञीमौ गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—जीविका कृत्य। उपनिषत्कृत्य[1] ॥

जीविका की तरह करके। उपनिषत् की नाईं करके। उपमा विषय में जीविका और उपनिषत् शब्द कृञ् के योग में गतिसंज्ञक हो ॥ ७९ ॥

ते प्राग्धातोः ॥ ८० ॥

तेगत्युपसर्गसञ्ज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः। यथा—न्यषेधीत्॥

मनेकिया। वे गति और उपसर्ग संज्ञक धातु से पूर्वप्रयुक्त हों ॥ ८० ॥

छन्दसि परेऽपि ॥ ८१ ॥

छन्दसि विषये गत्युपसर्गसञ्ज्ञकाः परेपि स्युः। यथा—याति निहस्तिना। हन्ति निमुष्टिना, निहन्ति मुष्टिना ॥

१ उपनि पूर्वात्सदेः सत्सूद्विषेति क्विप्, सदिर प्रतेरिति षत्वम्।

हाथीपर जाता है । घूंससे मारता है । छन्दो विषय में गतिसंज्ञक और उपसर्ग संज्ञक धातु से परे भी हों ॥ ८१ ॥

व्यवहिताश्च ॥ ८२ ॥

व्यवहिताः, च । छन्दसिविषये व्यवहिताश्च गत्युपसर्गसञ्ज्ञका-दृश्यन्ते । यथा-आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि ॥ (आ) (मन्द्रैः) प्रशंसितैः (इन्द्र) परमैश्वर्य वर्द्धक (हरिभिः) अश्वैः (याहि) आगच्छ (यजु० अ० २० म० ५३) ॥

छन्दविषय में गति और उपसर्गसंज्ञक व्यवहित भी हों ॥ ८२ ॥

कर्म्मप्रवचनीयाः ॥ ८३ ॥

अधिकारोऽयम् । विभाषा कृञि (१ । ४ । ६८) ॥

इस सूत्रतक कर्मप्रवचनीय का अधिकार है ॥

अनुर्लक्षणे ॥ ८४ ॥

अनुः, लक्षणे । लक्षणे द्योत्येऽनुः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-यज्ञमनुप्रावर्षत् ॥

यज्ञके पश्चात् वर्षा । लक्षण प्रकाशित होनेपर अनु शब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञक हो ८४

तृतीयार्थे ॥ ८५ ॥

तृतीयार्थे द्योत्येऽनुः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-नदी-मनुवसति तपस्वी ॥

नदी के समीप तपस्वी रहता है । तृतीया के अर्थ में अनुशब्द कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो ॥ ८५ ॥

१-(२ । ३ । ८) इति द्वितीया ।

हीने ॥ ८६ ॥

हीनेद्योत्येऽनुः कर्म्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-अन्वर्जुनं योद्धारः ॥

और योधा अर्जुन से न्यून हैं। हीन अर्थमें अनुशब्द कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो ८६

उपोऽधिके च ॥ ८७ ॥

उपः, अधिके, च । हीनेऽधिके च द्योत्येउपेत्यव्ययं कर्मप्रवचनीयसंज्ञं स्यात् । यथा--उपदयानन्दं ब्रह्मचारिणः । उपाऽर्णकेपणः ॥

दयानन्द ब्रह्मचारिओंमें प्रथम हैं। पैसे से आना अधिक होताहै। हीन और अधिक अर्थ में उपशब्द कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो ॥ ८७ ॥

अपपरी वर्जने ॥ ८८ ॥

इमौ वर्जने कर्मप्रवचनीयसंज्ञौस्याताम् । यथा-अपमथुरायावृष्टो-मेघः, परिमथुरायावा ॥

मथुराको छोड़कर मेघवर्षा । वर्जन अर्थमें अप और परिशब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञकहों ॥ ८८ ॥

आङ् मर्यादावचने ॥ ८९ ॥

आङ्मर्यादायां कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-आपाटलिपुत्राद्वृष्टोमेघः । आकुमारं यशः पाणिनेः ॥

पटनाको छोड़कर मेहवर्षा । लड़कोंतक पाणिनिका यशहै अर्थात् लड़केभीपाणिनिको जानतेहैं । मर्यादा अर्थमें आङ्कर्मप्रवचनीयसंज्ञकहो ॥ ८९ ॥

लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ॥ ९० ॥

१-(२ । ३ । ९) इति सप्तमी । २—(२ । ३ । १०] इतिपञ्चमी ॥

एष्वर्थेषु विषयभूतेषु प्रत्यादयः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकाः स्युः। यथा—लक्षणे-वृक्षंप्रतिपर्यनुवा विद्योततेविद्युत्। इत्थम्भूताख्याने-साधुर्देवदत्तोमातरंप्रति पर्यनुवा। भागे-यदत्रमांप्रतिपर्यनुवास्यात्। वीप्सायाम्-वृक्षंवृक्षंप्रति पर्यनुवासिञ्चति ॥

वृक्षको लक्षकरके बिजुली चमकतीहै। माताकेलिये देवदत्तसज्जनहै। यहां कुछ मेरेलियेभीहो। प्रतिवृक्षको सींचताहै। लक्षण, इत्थंभूताख्यान, भाग और वीप्सा अर्थमें प्रति, परि और अनुशब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञकहो ॥ ९० ॥

अभिरभागे ॥ ९१॥

अभिः, अभागे। भागवर्जे लक्षणादावभिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा—वृक्षमभिविद्योततेविद्युत्। साधुर्देवदत्तोमातरमभि। वृक्षंवृक्षमभिसिञ्चति ॥

लक्षणइत्थं भूताख्यान औरवीप्सा अर्थमें अभिशब्दकर्म प्रवचनीयसंज्ञकहो॥ ९१ ॥

प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ॥ ९२ ॥

एतयोरर्थयोः प्रतिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात्। यथा—अभिमन्युरर्जुनतः प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छतिमाषान् ॥

अर्जुनका प्रतिनिधि अभिमन्यु। तिलोंके बदलेमें उर्ददेताहै। प्रतिनिधि और प्रतिदान विषयमें प्रतिशब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञकहो ॥ ९२ ॥

अधिपरी अनर्थकौ ॥ ९३ ॥

अनर्थकावधिपरीकर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—कुतोऽध्यागच्छति, कुतः पर्यागच्छति ॥

कहांसे आता है। अनर्थक अधि और परिशब्द कर्म प्रवचनीयसंज्ञकहों ॥ ९३ ॥

१—(२ । ३ । ११) इतिपञ्चमी।

सुः पूजायाम् ॥ ९४ ॥

पूजायामर्थे सुः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—सुस्तुतम् ॥

सम्यक् स्तुतिकी । पूजाअर्थमें सुशब्दकर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञकहो ॥ ९४ ॥

अतिरतिक्रमणेच ॥ ९५ ॥

अतिः, अतिक्रमणे, च । अतिक्रमणे पूजायांच, अतिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—अति स्तुतमेव भवता । अतिसिक्तंभवता ॥

आपने सम्यक्स्तुतिकी । आपनेबहुतहीसींचा । अतिक्रमण और पूजा अर्थमें अतिशब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञकहो ॥ ९५ ॥

अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्ग-गर्हासमुच्चयेषु ॥ ९६ ॥

एषुद्योत्येष्वपिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—सर्पिषोऽपि स्यात् । अपिसिञ्चेन्मूलकसहस्रम् । अपिस्तुयाद् राजानम् । अपिस्तुयाद् वृषलम् । अपिसिञ्च ॥

कुछ घी भी हो । सम्भव है कि-सहस्र मूलिओं को सींचे । राजा की आज्ञा मान । निन्दनीय स्थल है-कि वृषल की वह स्तुति करे । इकट्ठा सींच । पदार्थ (स्तुति) सम्भावन (मुमकिन) अन्ववसर्ग (कामचारानुज्ञा) गर्हा (निन्दा) और समुच्चय अर्थ में अपि शब्द कर्म प्रवचनीयसंज्ञक हो ॥ ९६ ॥

अधिरीश्वरे ॥ ९७ ॥

अधिः, ईश्वरे । स्वस्वामिसम्बन्धेऽधिः कर्म्मप्रवचनीय सञ्ज्ञः स्यात् । यथा—अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः । ब्रह्मदत्तस्य स्वाः पाञ्चाला इत्यर्थः । अधिपञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः पञ्चालानां ब्रह्मदत्तः स्वामीत्यर्थः ॥

ईश्वर अर्थ में अधि शब्द कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञक हो ॥ ९७ ॥

विभाषा कृञि ॥ ९८ ॥

ईश्वरेऽर्थेऽधिः करोतौ वा कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । यथा-यदत्रमामधिकरिष्यति ॥

मुझे यहां स्वामी बनायेगा । कृञ्के योग में अधिशब्द विकल्प से कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो ॥ ९८ ॥

लः परस्मैपदम् ॥ ९९ ॥

लादेशाः परस्मैपदसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा-तिप्, तस्, झि । सिप्, थस्, थ । मिप्, वस्, मस् । शतृक्वसू च ॥

लकार के स्थान में जो आदेश वे परस्मैपदसञ्ज्ञक हों ॥ ९९ ॥

तङानावात्मनेपदम् ॥ १०० ॥

तङानौ, आत्मनेपदम् । तङ् प्रत्याहारः, शानच् कानचौ चाऽत्मनेपदसञ्ज्ञाः स्युः । यथा--त, आताम्, झ । थास्, आथाम्, ध्वम् । इट्, वहि, महिङ् । शानच् कानचौ च ॥

लकारके स्थान में जो तङ् और आन आदेश वह आत्मनेपदसंज्ञक हों ॥ १०० ॥

तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १०१

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमात्प्रथममध्यमोत्तमसञ्ज्ञाः स्युः । यथा-परस्मैपदेषु-तिप्, तस्, झि, इति प्रथमः । सिप्, थस्, थ, इति मध्यमः । मिप्, वस्, मस्, इत्युत्तमः । आत्मनेपदेषु त, आताम्, झ, इति प्रथमः । थास्, आथाम्, ध्वम्, इति मध्यमः । इट् वहि, महिङ्, इत्युत्तमः ॥

परस्मैपद और आत्मनेपदकेतिङ्के जो तीन १ त्रिक वेक्रमसे प्रथम मध्यम और उत्तम पुरुषसञ्ज्ञकहों ॥ १०१ ॥

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचना- न्येकशः ॥ १०२ ॥

तानि, एक० नानि, एकशः। येलब्धप्रथमादिसञ्ज्ञास्तेतिङस्त्रय- स्त्रिका एकवचनद्विवचनबहुवचनसञ्ज्ञकाः स्युः एकैकंपदम् ॥

प्रत्येकत्रिकमें जो तीन भागहैं वे एक२के प्रति क्रमसे एकवचनद्विवचनऔर बहु- वचनसञ्ज्ञकहों ॥ १०२ ॥

सुपः ॥ १०३ ॥

सुपस्त्रीणित्रीणिवचनान्येकशएकवचनद्विवचनबहुवचनसञ्ज्ञका- निस्युः। यथा—सु इत्येकवचनम्। औ इति द्विवचनम्।जस् इतिबहु- वचनम् एवंसर्वत्र ॥

सुप्के जो तीन २ भागहैं वे क्रमसे एक २ के प्रति एकवचन द्विवचन और बहु- वचनसंज्ञकहों ॥ १०३ ॥

विभक्तिश्च ॥ १०४ ॥

विभक्तिः, च। सुप्तिङौ विभक्तिसञ्ज्ञकौ स्याताम्।

सुप् और तिङ्के निर्कोक जोतीन २ भागहैं वेप्रत्येक विभक्तिसञ्ज्ञकहों ॥ १०४ ॥

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणेस्थानि- न्यपिमध्यमः ॥ १०५ ॥

युष्मदि, उपपदे, स० करणे, स्थानिनि, अपि, मध्यमः । तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेचमध्यमपुरुषः स्यात्। यथा—त्वम्पठसि। अप्रयुज्यमाने। पठसि॥

तिङ्वाच्यकारक वाचक युष्मद् शब्दप्रयुक्तहो अथवानहो तो धातुसे मध्यम पुरुषहो॥ १०५॥

प्रहासेचमन्योपपदेमन्यतेरुत्तम एकवच्च॥ १०६॥

प्रहासे, च, मन्योपपदे, मन्यतेः, उत्तमः, एकवत्, च। प्रहासे गम्यमाने मन्योपपदेधातोर्मध्यमः स्यान्मन्यतश्चोत्तमः सचैकार्थस्यवाचकः स्यात्। यथा—एहिमन्ये मोदकान्भोक्ष्यसे भुक्तास्तेऽतिथिभिः। एतम्, एतवा, मन्येमोदकान् भोक्ष्येथे, भोक्ष्यध्वे, भोक्ष्ये, भोक्ष्यावहे, भोक्ष्यामहे, इत्यादि। मन्यसे, मन्येथे, मन्यध्वे, इत्यादिरर्थः॥

प्रहासअर्थमें मन्योपपद (मन्यजिसकेसाथहो) एस धातुसे मध्यमपुरुषहो और मन्यधातुसे उत्तमपुरुषहो और वह एकार्थवाचकहो॥ १०६॥

अस्मद्युत्तमः॥ १०७॥

अस्मदि, उत्तमः। अस्मद्युपपदे समानाभिधेयेप्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेऽप्युत्तमपुरुषः स्यात्। यथा—अहम्पठामि, पठामि वा॥

क्रियाकेसाथ समानाधिकरण प्रयुज्यमान वा अप्रयुज्यमान अस्मद्शब्दउपपदहो तो धातुसे उत्तमपुरुषहो॥ १०७।

शेषे प्रथमः॥ १०८॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमपुरुषः स्यात्। यथा—कःपठति, पठति वा॥

क्रिया के साथ समानाधिकरण प्रयुक्त अथवा अप्रयुक्त शेष (अस्मद् युष्मद् से भिन्न) उपपद हो तो धातु से प्रथमपुरुष हो ॥ १०८ ॥

परः सन्निकर्षः संहिता ॥ १०९ ॥

वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासञ्ज्ञः स्यात् । यथा—दध्योदनम् ॥

दही भात । वर्णों की अत्यन्त निकटता संहिता सञ्ज्ञक हो ॥ १०९ ॥

विरामोऽवसानम् ॥ ११० ॥

विरामः, अवसानम् । वर्णानामभावोऽवसानसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—वेदः । गतः ॥

वर्णों के अभाव की अवसान सञ्ज्ञा हो ॥ ११० ॥

इति जीवारामशर्म्मकृतायां पाणिनिसूत्रवृत्तौ प्रथमाऽध्यायस्य चतुर्थपादः प्रथमाध्यायश्च समाप्तः ॥

अथ द्वितीयाऽध्यायारम्भः ।

प्रथमःपादः ।

समर्थः पदविधिः ॥ १ ॥

पदसम्बन्धी योविधिः स समर्थाश्रितः स्यात् ॥

पदविधि समर्थ के आश्रित हो (यह अधिकार सूत्र है) ॥ १ ॥

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ॥ २ ॥

सुप्, आमन्त्रिते, पराङ्गवत्, स्वरे । स्वरलक्षणे कर्त्तव्ये सुबन्तमामन्त्रिते परे परस्याङ्गवत् स्यात् । यथा—द्रवत्पाणी शुभस्पती । (अव्ययानां प्रतिषेधः) ॥ उच्चैरधीयानः । नीचैरधीयानः ॥

स्वरविधि करने में आमन्त्रित परे हो तो सुबन्त पराङ्गवत् हो ॥ २ ॥

प्राक् कडारात् समासः ॥ ३ ॥

कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्राक्समास इत्याधिक्रियते ॥

कडाराःकर्मधारये ॥ (२ । २ । ३८) इस सूत्रतक समास का अधिकार है ॥ ३ ॥

सह सुपा ॥ ४ ॥

सहेति योगो विभज्यते । सुबन्तं समर्थेन सह समस्यताम् । अयमप्यधिकारः ॥

सुबन्त समर्थ सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो यह भी अधिकार है ॥ ४ ॥

अव्ययीभावः ॥ ५ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहां से अव्ययीभाव समास का अधिकार (२ । १ । २१) सूत्रतक है ॥ ५ ॥

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्धयर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्त वचनेषु ॥ ६ ॥

विभक्त्यादिष्वर्थे यदव्ययं तत्समर्थेन सह समस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा–विभक्तौ तावत्–स्त्रीषु, इत्यधिस्त्रि[1] । समीपे-समाजस्य समीपमुपसमाजम् । मद्राणां समृद्धिः- सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धिः-दुर्यवनम् । मक्षिकाणामभावो-निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययः--अतिहिमम् । निद्रासम्प्रतिनयुज्यते--इत्यतिनिद्रम् । पाणिनिशब्दस्य प्रकाशः,-इतिपाणिनि । रथस्यपश्चादनुरथम् । योग्यता वीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थः । रूपस्ययोग्यमनुरूपम्, अर्थमर्थं प्रति--प्रत्यर्थम्, शक्तिमनतिक्रम्य-यथाशक्ति । हरेः सादृश्य--सहरि । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेति--अनुज्येष्ठम् । सचक्रम्[2] । सदृशः सख्या ससखि । यथार्थत्वेनैवसिद्धे पुनः सादृश्यग्रहणंगुणभूतेऽपि सादृश्ये यथास्यादिति । क्षत्राणां सम्पत्तिः–सक्षत्रम् । ऋद्धेराधिक्यं-समृद्धिः,-अनुरूपमात्मभावः सम्पत्तिः, इतिभेदः । तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति । अन्ते-अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते--साग्नि ॥

१-(२ । ४ । १८) इतिनपुंसकत्वम् । (१ । १ । ४७) इतिह्रस्वत्वम् । २-(६ । ३ । ८१) इतिसहस्य सः ।

स्त्रिओंकी कथा । समाज के पास । मद्रोंकी की उन्नति । यवनों की अवृद्धि । मक्खिओं का अभाव । शीतका नाश । निद्राका न होना । यह पाणिनिशब्द लोक में प्रकाशित है । रथके पीछे, रूपके योग्य, हरेक अर्थके प्रति ताकत के मुताबिक । हरिके सदृश । यथाज्येष्ठ । एकसाथ चक्र । मित्रके सदृश । क्षत्रिओं की सम्पत्ति । ऋद्धिकी अधिकता । तृण सहित खाता है । अग्नि (जिस में अग्नि का सम्यग् बयानहो) ग्रन्थ तक पढ़ता है । विभक्तिवचन १ समीपवचन २ समृद्धिवचन ३ व्यृद्धिवचन ४ अर्थाभाववचन ५ प्रत्ययवचन ६ असम्प्रतिवचन ७ शब्दप्रादुर्भाववचन ८ पश्चाद् वचन ९ यथावचन १० आनुपूर्व्यवचन ११ यौगपद्यवचन १२ सादृश्यवचन १३ सम्पत्तिवचन १४ साकल्यवचन १५ और अन्तवचन १६ में जो अव्यय वह समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव सञ्ज्ञक हो ॥ ६ ॥

यथाऽसादृश्ये ॥ ७ ॥

यथेत्येतदव्ययमसादृश्येवर्त्तमानं सुपा सह समस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा—यथाध्यापकम् ॥

जो २ अध्यापक । सादृश्य से भिन्न अर्थमें वर्त्तमान यथा अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययी भाव संज्ञक हो ॥ ७ ॥

यावदवधारणे ॥ ८ ॥

यावत्, अवधारणे । यावदित्येतदव्ययमवधारणे वर्त्तमानं सुपा सह समस्यताम्, अव्ययी भावश्च समासः स्यात् । यथा- यावन्तः श्लोका स्तावन्तो बुध प्रणामाः--यावच्छ्लोकम् ॥

जितने श्लोक हैं उतने पण्डितों को प्रणाम हैं ॥ अव धारण अर्थमें वर्त्तमान यावत् अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययी भाव संज्ञक हो ॥ ८ ॥

सुप्प्रतिना मात्रार्थे ॥ ९ ॥

१-यत्परिमाणमेषांते । यत्तदेतेभ्यः-, इति वतुप ।

सुप्[1], प्रतिना[2], मात्रार्थे[3]। मात्रार्थे वर्त्तमानेन प्रतिना सह सुबन्तं समस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात्। यथा—शाकस्य लेशः-शाकप्रति॥

मात्रा (कुछ) अर्थमें वर्त्तमान सुबन्त प्रतिके साथ समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो ॥ ९ ॥

अक्षशलाकासङ्ख्याः[1] परिणा[2] ॥ १० ॥

अक्षशलाकासङ्ख्याशब्दाः परिणासह समस्यन्ताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात्। यथा—अक्षेण विपरीतं वृत्तम्—अक्षपरि। शलाकापरि। एकपरि॥

पासेका विरुद्ध पड़ना। अक्षशलाका और सङ्ख्यापरि के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो ॥ १० ॥

विभाषा[अ] ॥ ११ ॥

अधिकारोऽयम्॥

यहां से (२।२।१६) यहां तक विकल्प का अधिकार है ॥ ११ ॥

अपपरिबहिरञ्चवः[1] पञ्चम्या[2] ॥ १२ ॥

अपपरि, बहिस्, अञ्चु इत्येते सुबन्ताः पञ्चम्यन्तेन सह वा समस्यन्ताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात्। यथा—अपेन्द्रप्रस्थं वृष्टोदेवः, अपेन्द्रप्रस्थात्। परीन्द्रप्रस्थम्, परीन्द्रप्रस्थात्। बहिर्वनम्, बहिर्वनात्। प्राग्वनम्, प्राग्वनात्॥

दहली को छोड़कर मेघ बरसा। वन के बाहर। वन के पूर्व की दिशा में। अप, परि बहिस् और अञ्चु सुबन्त पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हों और वह समास अव्ययीभावसञ्ज्ञक हो ॥ १२ ॥

आङ्[अ] मर्यादाऽभिविध्योः ॥ १३ ॥

एतयोराङ् पञ्चम्यन्तेन वा समस्यन्ताम् , अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा—आपाटलिपुत्रं वृष्टोमेघः, आपाटलिपुत्रात् । आबालं यशोदयानन्दस्य आबालेभ्यः ॥

पटनातकमेघवरमा । लड़केतकभी स्वामिदयानन्दको जानतेहैं । मर्यादा और अभिविधिअर्थमें वर्त्तमानजोआङ् वह पञ्चम्यन्त सुबन्तकेसाथ विकल्पसे समासको प्राप्तहो और वहसमास अव्ययी भावसंज्ञकहो ॥ १३ ॥

लक्षणेनाभिप्रतीआभिमुख्ये ॥ १४ ॥

लक्षणेन[३], अभिप्रती, आभिमुख्ये । आभिमुख्यद्योतकावभिप्रतीचिह्नवाचिनासह वासमस्येताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा—अभ्यग्नि—शलभाःपतन्ति, अग्निमभि । प्रत्यग्नि, अग्निंप्रति ॥

अग्निको लक्ष्यकरके पतङ्ग गिरतेहैं । आभिमुख्यद्योत्यहोतो अभिप्रति शब्दलक्षणवाचक सुबन्तकेसाथ विकल्पसे समासको प्राप्तहों और वहसमास अव्ययी भाव संज्ञकहो ॥ १४ ॥

अनुर्यत्समया ॥ १५ ॥

अनुः[१], यत्समया[३] । यंपदार्थंसमयाद्योत्यते तेनलक्षण भूतेनानुः समस्यताम्, अव्ययीभावश्चसमासः स्यात् । यथा—अनुवनमशनिर्गतः ॥

बनके पासहोकर बिजलीनिकलगई । जिसकासमीपवाचक अनुहो वह उसलक्षण वाचक सुबन्तके साथसमासको प्राप्तहो और वहसमास अव्ययीभावसंज्ञकहो ॥ १५ ॥

यस्यचाऽयामः ॥ १६ ॥

यस्य[६], च, आयामः[अ] । यस्यदैर्ध्यमनुनाद्योत्यते तेनलक्षण भूतेनानुर्वा समस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा—अनुगङ्गं—वाराणसी, गङ्गायाअनु ॥

गङ्गासी लम्बी२ काशी वसती है। जिसका आयाम (विस्तार) वाचक अनु हो वह उस लक्षण वाचक सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभावसञ्ज्ञक हो ॥ १६ ॥

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि* च ॥ १७ ॥

इमानि निपात्यन्ते। यथा–तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स तिष्ठद्गु-कालः ॥

गौ दुहनेका समय। तिष्ठद्गु आदि शब्द अव्ययीभाव समासमें निपातित हैं ॥ १७॥

पारेमध्ये षष्ठ्या वा ॥ १८ ॥

पार मध्यशब्दौ षष्ठ्यन्तेन सह वा समस्येताम्, अव्ययी भावश्च समासः स्यात्। एदन्तत्वंचानयोर्निपात्यते पक्षेपष्ठीतत्पुरुषः। यथा–पारेगङ्गम्, पारंगङ्गायाः, गङ्गापारम्। मध्येगङ्गम्, मध्यंगङ्गायाः, गङ्गामध्यम् ॥

गङ्गापार। गङ्गाकावीच। पारे और मध्ये (एकारान्तनिपातित) शब्द षष्ठ्यन्त सुबन्तकेसाथ विकल्पसेसमासकोप्राप्तहो औरवहसमास अव्ययीभावसंज्ञकहो ॥ १८ ॥

सङ्ख्या वंश्येन ॥ १९ ॥

वंशोद्विधा-विद्ययाजन्मनाच। तत्रभवोवंश्यः। तद्वाचिना सह सङ्ख्यावासमस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात्। यथा–द्वौ-मुनीवंश्यौ–द्विमुनि। पाणिनिकात्यायनौ। व्याकरणस्य–त्रिमुनि।

* तिष्ठद्गु, वहद्गु, आयतीगवम्—एतेकालवाचकाः। खले यवम्, खलेबुसम्, लूनयवम्, लूयमानयवम्, पूतयवम्, पूयमानयवम्, संहृतयवम्, संह्रियमाणयवम्, संहृतबुसम्, ह्रियमाणबुसम्, एतेऽन्यपदार्थवृत्तयः। समभूमि, समपदाति, सम्भूमि, सम्पदाति, समम्भूमि, समम्पदाति,—षण्णां समत्वं भूमे रित्याद्यर्थः। (सुषि-निर्दुभ्यःषमम्)—एतस्यशोभनत्वादीत्यर्थः। आयतीसमम्, अपसमम्, पापसमम्, पुण्यसमम्, अत्रसर्वत्र समशब्दस्यसमाः संवत्सरइत्यर्थः। प्राह्ण, प्ररथ, प्रमृग, प्रदक्षिणम्—प्रगतत्वमह्न इत्याद्यर्थः। सम्प्रति—प्रतिगतस्य संगतत्व मित्यर्थे। तद्विपरीतार्थे—असम्प्रति, (इच्कर्मव्यतिहारे) इतितिष्ठद्ग्वादिः ॥

विद्यातद्वतामभेदविवक्षया त्रिमुनिव्याकरणम् । पाणिनिकात्यायन-पतञ्जलयः एवविंशतिभारद्वाजम् । एकविंशतिर्भारद्वाजा वंश्या-इतिविग्रहः ॥

सङ्ख्या वाचक सुबन्त वंश्य वाचक सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययी भाव संज्ञक हो ॥ १९ ॥

नदीभिश्च ॥ २० ॥

नदीभिः, च । नदीभिः सङ्ख्या समस्यताम्, अव्ययी भावश्च समासः स्यात् । समाहारे चायमिष्यते । यथा-पञ्चनदम् ॥

पांचनदीओं का मेल । नदीवाचक सुबन्त के साथ सङ्ख्या वाचक सुबन्त समासको प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो ॥ २० ॥

अन्यपदार्थे च सञ्ज्ञायाम् ॥ २१ ॥

अन्यपदार्थे विद्यमानं सुबन्तं नदीभिः सह नित्यं समस्यताम्, सञ्ज्ञायां गम्यमानायाम्, अव्ययी भावश्च समासः स्यात् । यथा-उन्मत्तगङ्गम्, नामदेशः, लोहितगङ्गम् ॥

अन्यपदार्थ में वर्त्तमान सुबन्त नदीवाचक सुबन्त के साथ संज्ञागम्यमान होनेपर नित्य समासको प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो ॥[१] २१ ॥

तत्पुरुषः ॥ २२ ॥

अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः ॥

यहां से (२ । २ । २१) तक तत्पुरुष समास का अधिकार है ॥ २२ ॥

द्विगुश्च ॥ २३ ॥

द्विगुः, च । द्विगुरपि तत्पुरुषसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-पञ्चराजम् ॥

१-राजाहः सखिभ्यष्टच्, तत्पुरुषस्याङ्गुलेःसङ्ख्याव्ययादे रिति टजचौ तत्पुरुष निबन्धनौ तथापि प्रकृति भेदाभेद विवक्षायां बहुवचनम् ॥

पांचराजाओंका समूह । द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ २३ ॥

द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः[1] ॥ २४ ॥

द्वितीयान्तं श्रतादिप्रकृतिकैः सुबन्तैस्सह वा समस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात् । यथा—कष्टंश्रितः, कष्टश्रितः । कान्तारमतीतः, कान्तारातीतः । दुःखंपतितः, दुःखपतितः । ग्रामंगतः, ग्रामगतः । तरङ्गानत्यस्तः, तरङ्गात्यस्तः । सुखंप्राप्तः, सुखप्राप्तः । सुखमापन्नः, सुखापन्नः । (गम्यादीनामुपसङ्ख्यानम्) ग्रामंगमी-ग्रामगमी । ओदनंबुभुक्षुः, ओदनबुभुक्षुः ॥

दुःखी । वनसे निकलाहुआ । दुःख में गिरा हुआ । गांवको गया । लहरों से नाश कियाहुआ, या आच्छादित । सुखी । सुखयुक्त । द्वितीयान्त सुबन्त श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ २४ ॥

स्वयं क्तेन ॥ २५ ॥

स्वयमित्येतत्सुबन्तं क्तान्तेनसह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—स्वयंधौतौ पादौ ॥

अपने आप पैर धोये । स्वयम् अव्यय क्तान्त सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष सञ्ज्ञक हो ॥ २५ ॥

खट्वा क्षेपे ॥ २६ ॥

क्षेपे गम्यमाने खट्वाशब्दो द्वितीयान्तः क्तान्तेन सह ससस्यताम्,

१ गत्यर्थत्वात् (३ । ४ । ७२) इति कर्त्तरिक्तः ।

तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—खट्वारूढो जाल्मः।नित्य समासो ऽयम्। अपथ प्रस्थित इत्यर्थः ॥

निन्दार्थ में द्वितीयान्त खट्वा शब्द क्तान्त सुबन्त के साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ २६ ॥

सामि ॥ २७ ॥

सामिशब्दः क्तान्तेन सह समस्यताम् ,तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—सामिकृतम् । सामिभुक्तम् । सामिपीतम् ॥

आधाकिया । आधा खाया । आधा पिआ ।सामिशब्द क्तान्त सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ २७ ॥

कालाः ॥ २८ ॥

कालवाचिनो द्वितीयान्ताश्शब्दाः क्तान्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—मासप्रमितः-प्रतिपच्चन्द्रः । मासं परिच्छेत्तुमारब्ध वा नित्यर्थः ॥

काल वाचक द्वितीयान्त सुबन्त क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ २८ ॥

अत्यन्तसंयोगे च ॥ २९ ॥

अत्यन्तसंयोगे गम्ये कालवाचिनो द्वितीयान्ताश्शब्दाः सुपा सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—मुहूर्त्तं सुखम् ॥

दोघड़ी का सुख । अत्यन्तसंयोग गम्यमान हो तो द्वितीयान्त कालवाचक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ २९ ॥

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ॥ ३० ॥

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृत गुणवचनेन, अर्थशब्देन चसह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—शङ्कुलया खण्डः-शङ्कुला खण्डः। धान्येन अर्थो--धान्यार्थः ॥

सरौते से टुकड़ा किया। अन्नसे धन। तृतीयान्त सुबन्त तत्कृत (तृतीयान्त से हुये) गुण वचन और अर्थसुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ३० ॥

पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ॥३१॥

तृतीयान्तमेतैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—मासेनपूर्वः, मासपूर्वः। पितृसदृशः। मातृसमः। ऊनार्थे—माषोनम्। माषविकलम्। असिकलहः। वाङ्निपुणः। गुडमिश्रः। आचारश्लक्ष्णः॥ (मिश्रग्रहणे सोपसर्गस्यापिग्रहणम्) (मिश्रंचानुपसर्गमसन्धौ, इत्यत्रानुपसर्गग्रहणात्)—गुणसंमिश्राधानाः ॥ (अवरस्योपसङ्ख्यानम्)॥ मासेन अवरः—मासावरः ॥

पिताके तुल्य। माता के सदृश। मासे से कम। तलवार की लड़ाई। कहनेमें चतुर। गुड़धानी। शुभ आचारवाला। तृतीयान्त सुबन्त पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्षण सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ३१ ॥

कर्तृकरणे कृता बहुलम् ॥ ३२ ॥

कर्तरि, करणे च तृतीया कृदन्तेन सह बहुलम् समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—धर्म्मेण त्रातः-धर्म्मत्रातः। परशुना छिन्नः-परशुच्छिन्नः। बहुलग्रहणं सर्वोपाधि व्यभिचारार्थम्। तेन दात्रेण लूनवानित्यादौ न ॥

धर्म्म से बचायाहुआ। कुल्हाड़ी से काटागया। कर्त्ता करण वाचक तृतीयान्त सुबन्त कृदन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥३२॥

कृत्यैरधिकार्थवचने ॥ ३३ ॥

कृत्यैः, अधिकार्थवचने। स्तुतिनिन्दाप्रयुक्तमध्यारोपितार्थवचनमधिकार्थवचनम्। तत्रकर्त्तरि करणेच तृतीया कृत्यैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासःस्यात्। यथा—काकपेयानदी। कण्टक संचेय-ओदनः ॥

कौवोंसे पीनेके योग्यनदी। कांटोंसे एकत्रकरने योग्यभात। अधिकार्थ वचन गम्यमान होतो कर्त्ता और करणमेंजो तृतीया वह कृत्यप्रत्ययों के साथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ३३ ॥

अन्नेन व्यञ्जनम् ॥ ३४ ॥

संस्कारक द्रव्यवाचकं तृतीयान्तमन्नेनसहसमस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात्। दध्नोपसिक्तओदनः—दध्योदनः ॥

दहीसे संस्कारकियाहुआभात। व्यञ्जनवाचक तृतीयान्तसुबन्त अन्नवाचकसुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ३४ ॥

भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ॥ ३५ ॥

मिश्रीकरणवाचितृतीयान्तं सुबन्तं भक्ष्यवाचिसुबन्तेनसहसमस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात्। यथा—गुडेनमिश्राधानाः-गुडधानाः ॥

तृतीयान्तमिश्रीकरण वाचकसुबन्त भक्ष्यवाचीसुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ३५ ॥

चतुर्थी तदर्थार्थ बलिहितसुखरक्षितैः ३६

यदर्थ, अर्थ, बलिहित, सुख, रक्षित इत्येतैः सह चतुर्थ्यन्तं सुबन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । तदर्थेनप्रकृतिविकृति भाव एव । यथा-कपाटायदारु, कपाटदारु । (अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वाच्यम्) ॥ विप्रायायम्, विप्रार्थो वेदः । भूतबलिः । गोहितम् । नरसुखम् । गोरक्षितम् ॥

किवाड़ के लिये लकड़ी । ब्राह्मण के लिये वेद । प्राणि को भोजन । गौके लिये हितकारी । मनुष्य के लियेसुख । गौ के लिये रक्खा । चतुर्थ्यन्त सुबन्त तदर्थ, अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षितसुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ३६ ॥

पञ्चमी[1] भयेन[2] ॥ ३७ ॥

पञ्चम्यन्तं सुबन्तं भयवाचिना सुबन्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-चोराद्भयम्-चोरभयम् । (भयभीत भीतिभीभिरितिवाच्यम्) वृकेभ्यो भीतः-वृकभीतः । वृकभीतिः । वृकभीः ॥

चोरसेडर । पञ्चम्यन्त सुबन्त भयवाचक सुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ३७ ॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ३८

अप०स्तैः[2], अल्पशः । एभिस्सहाऽल्पं पञ्चम्यन्तंसमस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात् । यथा-सुखापेतः । कल्पनापोढः । चक्रमुक्तः । स्वर्गपतितः । तरङ्गापत्रस्तः । अल्पशःकिम् । प्रासादात्पतितः ॥

सुखसंयुक्त । कल्पनासे निकलाहुआ । चक्रसेभिन्न । सुखसेस्थित । लहरसे फेंका-हुआ । पञ्चम्यन्त सुबन्त अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त सुबन्तके साथ

समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ३८ ॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि[1] क्तेन[2] ॥ ३९ ॥

इमेपञ्चम्यन्ताः क्तान्तेन सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—स्तोकान्मुक्तः, अल्पान्मुक्तः। अन्तिकादागतः, अभ्यासादागतः। दूरादागतः, विप्रकृष्टादागतः। कृच्छ्रादागतः, । (पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः) इत्यलुक् ॥

थोड़े से छोड़ागया। पास से आया। दूर से आया। दुःखसे छूटा। स्तोकार्थ, अन्तिकार्थ, दूरार्थ और कृच्छ्र शब्द पञ्चम्यन्त सुबन्त क्तान्तके साथ समासको प्राप्तहों और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ३९ ॥

सप्तमी[1] शौण्डैः[2] ॥ ४० ॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिःसहसमस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात्। यथा—अक्षेषुशौण्डः—अक्षशौण्डः ॥

पक्काज्वारी। सप्तम्यन्त सुबन्त शौण्डादि सुबन्तोंके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ४० ॥

सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥ ४१ ॥

सि० न्धैः[3], च[अ]। एभिः सप्तम्यन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—इन्द्रप्रस्थसिद्धः। आतपशुष्कः। स्थालीपक्वः। चक्रबन्धः ॥

दहली में सिद्ध। घाम में सूखा। बटलोई में पका हुआ। चक्र में बन्धा हुआ। सप्तम्यन्त सुबन्त सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्धसुबन्त के साथ समास को प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४१ ॥

ध्वाङ्क्षेण[3] क्षेपे[7] ॥ ४२ ॥

निन्दागम्ये ध्वाङ्क्ष वाचिना सह सप्तम्यन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-पाठशालायां ध्वाङ्क्ष इव-पाठशाला ध्वाङ्क्षः॥

पाठशाला में कौआ की नाईं। निन्दागम्यमान हो तो सप्तम्यन्त सुबन्त ध्वाङ्क्ष (काक) वाचक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४२ ॥

कृत्यैर्ऋणे ॥ ४३ ॥

कृत्यैः, ऋणे। ऋणेगम्ये सप्तम्यन्तं कृत्यप्रत्ययान्तैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-मासेदेयमृणम्-मासदेयम्। ऋण ग्रहणं नियोगोपलक्षणार्थम्। पूर्वाह्णे गेयं साम॥

मास में अवश्य देने योग्य ऋण। ऋण गम्यमान हो तो सप्तम्यन्त सुबन्त कृत्य प्रत्ययान्त सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ४३

सञ्ज्ञायाम् ॥ ४४ ॥

सञ्ज्ञायां विषये सप्तम्यन्तं सुबन्तं सुपा सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-अरण्येतिलकाः॥

वनके तिल। सञ्ज्ञा विषयमें सप्तम्यन्त सुबन्त सुबन्तके साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४४ ॥

क्तेनाऽहोरात्रावयवाः ॥ ४५ ॥

अह्नो रात्रेश्चाऽवयवाःसप्तम्यन्ताः क्तान्तेन सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-पूर्वाह्णकृतम्। अपररात्रकृतम्॥

दिनके प्रथम प्रहरमें किया। रात्रिके दूसरे भागमें किया। अहरवयव और रात्र्यवयव सप्तम्यन्त सुबन्त क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४५ ॥

१- ६।३।९) इत्यलुक्।

तत्र ॥ ४६ ॥

तत्रेत्येतत्सप्तम्यन्तं क्तान्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-तत्रभुक्तम् । तत्रपीतम् ॥

तत्र यह सप्तम्यन्त सुबन्त क्तान्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४६ ॥

क्षेपे ॥ ४७ ॥

क्षेपे गम्यमाने सप्तम्यन्तं क्तान्तेनसह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-भस्मनिहुतम् ॥

राखमें होमक्रिया । निन्दागम्यमान होतो सप्तम्यन्त सुबन्त क्तान्त सुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ४७ ॥

पात्रे सम्मितादयश्च ॥ ४८ ॥

पा० दयः, च । इमे क्षेपे निपात्यन्ते । यथा-पात्रेसम्मिताः । भोजनसमये एवसंगताः, नतुकार्ये । गेहेशूरः । गेहेनर्दी । आकृतिगणोयम् ॥

निन्दा अर्थमें पात्रे सम्मितादिक शब्द तत्पुरुष समासमें निपातितहैं ॥ ४८ ॥

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः-समानाधिकरणेन ॥ ४९ ॥

इमे समानाधिकरणेन सुपासह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-पूर्वं कृष्टं पश्चात् समीकृतम्-कृष्टसमीकृतम् । एकनाथः ।

१—(६ । ३ । १४) इत्यलुक् ।

सर्वच्छात्राः । जरद्धस्ती । पुराणान्नम् । नवपाठकाः । केवल वैयाकरणः ॥

जुतेहुयेमें पटेलालगाया । एकस्वामी । सर्वविद्यार्थी । वृद्धगज । पुरानाअन्न । नये पढ़नेवाले । सिर्फव्याकरणको जाननेवाला । पूर्वकाल, सर्व, जरत्, पुराण, नव और केवल सुबन्तसमानाधिकरण सुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास* तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ४९ ॥

दिक्सङ्ख्ये सञ्ज्ञायाम् ॥ ५० ॥

समानाधिकरणेति—आपादपरिसमाप्तेरधिकारः । सञ्ज्ञायांविषये दिग्वाचिनः शब्दाः सङ्ख्याच समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह समस्यन्ताम्,तत्पुरुषश्चसमासःस्यात् । यथा—पूर्वेषुकामशमी । पञ्चाम्राः॥

पञ्चपेड़ा । सञ्ज्ञा विषय में दिशावाचक और सङ्ख्या सुबन्त समानाधिकरण सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ॥ ५० ॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ॥ ५१ ॥

तद्धितार्थे विषये, उत्तरपदे परतः, समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये समानाधिकरणेन सुपासह समस्येताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—पूर्वस्यां शालायां भवः—पौर्वशालः । पूर्वशालाप्रियः । दिक्षुसमाहारो नास्ति । सङ्ख्यातद्धितार्थे । पञ्चनापितिः । उत्तरपदे । पञ्चगवधनः । समाहारे । दशकुमारि ॥

पूर्व दिशाकेघर में पैदा हुआ । पूर्वदिशाका गृह प्याराहै जिसको । पांच नापितोंकी सन्तान । पांच गौ ही धनहै जिसका ऐसा नर । दशबालिकाओंका समाहार (मेल) । तद्धितार्थ विषयमें उत्तरपद परे हो और समाहार अभिधेय हो तो दिशावाचक और सङ्ख्या सुबन्त समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष सञ्ज्ञक हो ॥ ५१ ॥

* (१ । २ । ४२) सूत्र के अनुसार इसपादर्काससमासिनक तत्पुरुषसमासकी कर्मधारयसंज्ञा प्रत्येक, सूत्रमें समझनाचाहिये ॥ १- (४ । २ । १०७) इतिञः ।

सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः ॥ ५२ ॥

12.51.86

संख्यापूर्वः, द्विगुः। तद्धितार्थेत्यत्रोक्तः सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः स्यात्। यथा-पञ्चसुस्थालीपुसंस्कृतः-पञ्चस्थालः।पञ्चनावप्रियः पञ्चपूली॥

पांच बटलोईओं में पकाहुआ। पांच नावों पर प्यार करनेवाला। पांच पूलिओं का संघात। तद्धितार्थ विषय में उत्तरपद परे हो और समाहार अभिधेय हो तो संख्यापूर्वक समास द्विगुसंज्ञक हो॥ ५२॥

कुत्सितानि कुत्सनैः ॥ ५३ ॥

कुत्स्यमानानि कुत्सनैः सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-वैयाकरणखसूचिः॥

ऊपर को देखने वाला व्याकरणी। कुत्सित वाचक सुबन्त कुत्सन वाचक सुबन्तों के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष सञ्ज्ञक हो॥ ५३॥

पापाणके कुत्सितैः ॥ ५४ ॥

पाप, अणक इमे सुबन्ते कुत्सित वचनैस्सह समस्येताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-पापनापितः। अणककुलालः॥

पापी नाई। नीच कुम्हार। पाप और अणक सुबन्त कुत्सित वाचक सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो॥ ५४॥

उपमानानि सामान्यवचनैः ॥ ५५ ॥

उपमानवाचीनि सुबन्तानि सामान्यवचनैः सुबन्तैः सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-घनः-श्यामः-घनश्यामः॥

बादल के तुल्य काला। उपमानवाचक सुबन्त सामान्यवाचक सुबन्तों के साथ

१—(४।२।१५) इत्यण।(४।१।८८) इतिलुक्।

समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ५५ ॥

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ ५६ ॥

सामान्या प्रयोगे उपमेयं व्याघ्रादिभिस्सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—पुरुषोऽयं व्याघ्रइव—पुरुषव्याघ्रः ॥

व्याघ्र के समान वीर नर। सामान्य (उपमानोपमेय के साधारण धर्म्म) का प्रयोग न हो तो उपमित (उपमेय) वाचक सुबन्त व्याघ्रादि उपमान वाचक सुबन्तोंके साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ५६ ॥

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ॥ ५७ ॥

भेदकं समानाधिकरणेन भेदेन सह बहुलं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्, क्वचिन्न। यथा—कृष्णसर्पः। रामोजामदग्न्यः ॥

काला सांप। जमदग्नि के पुत्र परशुराम। विशेषण वाचक सुबन्त विशेष्यवाचक समानाधिकरण सुबन्त के साथ बहुल करके समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ५७ ॥

पूर्वाऽपरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च ॥ ५८ ॥

पूर्वा० वीराः, च। इमे समानाधिकरणेन सहसमस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—पूर्ववैयाकरणः। अपरनैयायिकः। प्रथमाध्यापकः। चरमपुरुषः। जघन्यपुरुषः। समानपुरुषः। मध्यपुरुषः। मध्यमपुरुषः। वीरपुरुषः ॥

पहिला व्याकरणकाज्ञाता । दूसरा न्यायकाज्ञाता । पूर्व अध्यापक । पिछिला-पुरुष । नीचपुरुष । मध्यदशाकानर । वीरपुरुष । पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम, और वीर सुबन्त समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ॥ ५८ ॥

श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ ५९ ॥

स्पष्टम् । (श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनं कर्त्तव्यम्) ॥ अश्रेणयः-श्रेणयः कृताः-श्रेणीकृताः ॥

जोकि पूर्वपङ्क्ति नहीं थीं उनको छिद्ररहित पङ्क्तिबनाया । श्रेणि आदि सुबन्त कृतादि समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ५९ ॥

क्तेन नञ्विशिष्टेनाऽनञ् ॥ ६० ॥

नञ्विशिष्टेन क्तान्तेनसहाऽनञ् क्तान्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—कृतंच तदकृतंच कृताकृतम् । (कृतापकृतादीनामुपसङ्ख्यानम्) ॥ कृतापकृतम् । भुक्तविभुक्तम् । पीतविपीतम् । गतप्रत्यागतम् इत्यादीनि ॥ (शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्) ॥ शाकप्रियः पार्थिवः—शाकपार्थिवः ॥

नञ् भिन्न क्तान्त विशिष्ट सुबन्त क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ६० ॥

सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ६१

एते पूज्यमानैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—सद्वैद्यः । महावैयाकरणः । परमपुरुषः । उत्तमपुरुषः । उत्कृष्टपुरुषः ॥

सत्, महत्, परम, उत्तम, उत्कृष्ट सुबन्त पूज्यमान (सत्करणीय) वाचक सुबन्तों के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥६१॥

वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् ॥ ६२ ॥

पूज्यमानवाचिसुबन्तमेभिस्सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—गोवृन्दारकः । गोनागः । गोकुञ्जरः ॥

अच्छा बैल । पूज्यमान वाचक सुबन्त वृन्दारक, नाग, कुञ्जरसुबन्तोंकेसाथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६२ ॥

कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ॥ ६३ ॥

जातिपरिप्रश्ने वर्त्तमानौ कतरकतमौ समर्थेनसुपासहसमस्येताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—कतरकठः । कतमकलापः । गोत्रं च चरणैः सहेतिजातित्वम् ॥

जातिके परिप्रश्नमेंवर्त्तमान कतर और कतमशब्द समर्थ सुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहों और वहसमास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६३ ॥

किं क्षेपे ॥ ६४ ॥

क्षेपेगम्ये किमेतच्छब्दरूपं सुपासह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—कुत्सितोराजा--किंराजायोनरक्षति ॥

निन्दार्थमें किम्शब्दसमर्थ सुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ६४ ॥

पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः ॥ ६५ ॥

पोटादिभिः सहजातिवाचिसुबन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा--इभपोटा–पोटा स्त्रीपुंसलक्षणा । इभयुवतिः । अग्निस्तोकः । उदश्वित्कतिपयम् । गृष्टिः-सकृत्प्रसूता--गोगृष्टिः । धेनुः-नवप्रसूतिका-गोधेनुः । वशा-वन्ध्या-गोवशा । वेहद्-गर्भपातिनी-गोवेहद् । वष्कयणी-तरुणवत्सा-गोवष्कयणी । कठप्रवक्ता । कठश्रोत्रियः । कठाध्यापकः । कठधूर्त्तः ॥

जातिवाचक सुबन्त पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय,गृष्टि, धेनु, वशा, वेहद्, वष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक और धूर्तसुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६५ ॥

प्रशंसावचनैश्च ॥ ६६ ॥

प्रशंसावचनैः, च । एतैस्सहजातिवाचि सुबन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात् । यथा–गोमतल्लिका, गोमचर्चिका, गोप्रकाण्डम्, गवोद्धः, गोतल्लजः । प्रशस्ता गौरित्यर्थः । मतल्लिकादयो नियतलिङ्गाः, नतुविशेष्यनिघ्नाः ॥

जाति वाचक सुबन्त प्रशंसा वाचक सुबन्तोंके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६६ ॥

युवाखलतिपलितवलिनजरतीभिः ६७

युवशब्दः खलत्यादिभिः समानाधिकरणैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासःस्यात् । यथा–युवाखलतिः-युवखलतिः । युवतिःखलती-युवखलती । युवापलितः-युवपलितः । युवतिः पलिता-युवपलिता । युवावलिनः-युववलिनः । युवतिर्वलिना-युववलिना । युवाजरन्--युवजरन् । युवतिर्जरती-युवजरती ॥

जवानगञ्जा, जी । जवानवृद्ध, वृद्धा । युवशब्दखलति, पलित, वलिन और

जरती समानाधिकरण सुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६७ ॥

कृत्यतुल्याख्या अजात्या ॥ ६८ ॥

कृत्यप्रत्ययान्ता स्तुल्यपर्यायाश्च सुबन्ताः अजातिवचनेन सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-भोज्योष्णम् । पानीयशीतम् । तुल्यश्वेतः । सदृशश्वेतः ॥

गर्मभोजन । ठण्डापानी । बराबर श्वेत । कृत्यप्रत्ययान्त और तुल्य पर्यायवाले शब्द जातिभिन्न समानाधिकरण सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ६८ ॥

वर्णो वर्णेन ॥ ६९ ॥

वर्णः, वर्णेन । वर्णो वर्णेन समानाधिकरणेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-कृष्णसारङ्गः । लोहितसारङ्गः ॥

काला हरिण । लाल हरिण । वर्णविशेष वाचक सुबन्त वर्णविशेष वाचक समानाधिकरण सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ६९

कुमारः श्रमणादिभिः ॥ ७० ॥

कुमारशब्दः श्रमणादिभिः समानाधिकरणैस्सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-कुमारीश्रमणा-कुमारश्रमणा ॥

सुन्दर कन्या । कुमारशब्द श्रमणादि समानाधिकरण सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ७० ॥

चतुष्पादो गर्भिण्या ॥ ७१ ॥

चतुष्पादः, गर्भिण्या । चतुष्पाज्जातिवाचिनो गर्भिणीशब्देन सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-गोगर्भिणी ॥

ग्याबनगौ। चतुष्पाद्, वाचक सुबन्त गर्भिणी शब्द के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ७१ ॥

मयूरव्यंसकादयश्च ॥ ७२ ॥

म० दयः,अ। इमे निपात्यन्ते।यथा–मयूरोव्यंसकः–मयूरव्यंसकः। छात्रव्यंसकः ॥

धूर्तमार। मयूरव्यंसक आदि शब्द तत्पुरुष समास में निपातित हैं ॥ ७२ ॥

इति द्वितीयाऽध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

अथ द्वितीयाऽध्यायस्य द्वितीय पादारम्भः।

पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ॥ १ ॥

पू० त्तरम्, ए० देशिना, ए० करणे। अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा–पूर्वकायस्य–पूर्वकायः। अपरकायः। अधरकायः। उत्तरकायः ॥(सर्वोप्येकदेशोऽह्नासमस्यताम्) ॥ सङ्ख्या विसायेति ज्ञापकात्। मध्याह्नः। सायाह्नः ॥

एक अधिकरण में एकदेशी सुबन्त के साथ पूर्व, अपर, अधर, और उत्तर शब्द समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ १ ॥

अर्द्धं नपुंसकम् ॥ २ ॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबेऽसौ समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा–अर्धं पिप्पल्याः–अर्धपिप्पली ॥

सम अंशवाचक नपुंसकलिङ्ग अर्द्धशब्द एकाधिकरण में एकदेशी सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ २ ॥

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्य-तरस्याम् ॥ ३ ॥

द्वि० तुर्याणि, अन्य० स्याम् । इमान्येकदेशिना सुबन्तेनसह समस्यन्ताम्,तत्पुरुषश्च समासः स्यात्।यथा-द्वितीयं भिक्षायाः--द्वितीयभिक्षा । षष्ठी समासपक्षे, भिक्षाद्वितीयं वा । तृतीयं भिक्षायाः-तृतीयभिक्षा, भिक्षा तृतीयं वा । चतुर्थं भिक्षायाः--चतुर्थभिक्षा, भिक्षाचतुर्थं वा । तुर्यं भिक्षायाः-तुर्यभिक्षा, भिक्षातुर्यं वा ॥

एकाधिकरण में एकदेशी सुबन्त के साथ द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्यशब्द समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ३ ॥

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ॥ ४ ॥

इमे द्वितीयान्तेन सह वा समस्येताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-प्राप्तो जीविकाम्-प्राप्तजीविकः, जीविकाप्राप्तो वा । आपन्नो जीविकाम्-आपन्नजीविकः, जीविकापन्नो वा ॥

प्राप्त और आपन्न सुबन्त द्वितीयान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४ ॥

कालाः परिमाणिना ॥ ५ ॥

परिच्छेद्य वाचिना सुबन्तेन सह कालाः समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-मासो जातस्य यस्यस-मासजातः । द्व्यहजातः । द्वयोरह्नोः समाहारः-द्व्यहः ॥

कालवाचक सुबन्त परिमाण वाचक सुबन्तोंके साथ समासको प्राप्तहों और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ५ ॥

नञ्[1] ॥ ६ ॥

नञ्सुपासह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—नब्राह्मणः—अब्राह्मणः ॥

नञ्सुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६ ॥

ईषदकृता ॥ ७

ईषत्, अकृता। ईषदित्ययंशब्दोऽकृदन्तेन सुपासह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। (ईषद्गुणवचनेनेतिवाच्यम्)॥

यथा—ईषद्रक्तम्। ईषत्पिङ्गलः ॥

ईषद् (कुछ) यह शब्द कृदन्त से भिन्न सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ७ ॥

षष्ठी ॥ ८ ॥

षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—आर्याणांसमाजः-आर्य्यसमाजः॥(कृद्योगाषष्ठी समस्य त इतिवाच्यम्) इध्मव्रश्चनः ॥

षष्ठ्यन्त सुबन्त समर्थ सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ॥ ८ ॥

याजकादिभिश्च ॥ ९ ॥

या० दिभिः, च। एभिः सह षष्ठ्यन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च स-

१—(६ । ३ । ७३) इति नस्यलोपः।

मासः स्यात्। यथा-ब्राह्मणानां याजकः-ब्राह्मणयाजकः। **(गुणान्तरेण तरलोपश्चेति वाच्यम्)**॥ सर्वेषांश्वेततरः-सर्वश्वेतः। सर्वेषांमहत्तरः-सर्वमहान्॥

(तत्स्थैश्चगुणैः षष्ठी समस्यतइतिवाच्यम्) ॥ चन्दनगन्धः॥

षष्ठ्यन्त सुबन्त याजकादिके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो॥ ९॥

न निर्धारणे ॥ १० ॥

निर्धारणे या षष्ठी सा न समस्यताम्। यथा-नृणां द्विजः श्रेष्ठः॥ **(प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यत इतिवाच्यम्)** ॥ सर्पिषोज्ञानम्॥

निर्धारण (पृथक्त्व) में जो षष्ठी वह समास को प्राप्त न हो॥ १०॥

पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ॥ ११ ॥

पूरणाद्यर्थैः, सदादिभिश्च षष्ठी न समस्यताम्। यथा-छात्राणां पञ्चमः। गुणे--काकस्य कार्ष्ण्यम्। सुहितार्था तृप्त्यर्थाः। फलानां सुहितः। सति। छात्रस्य कुर्वन्, कुर्वाणो वा। अव्यये। ब्राह्मस्य कृत्वा। तव्ये। ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्। समानाधिकरणे। पाणिनेः सूत्रकारस्य। किं च स्यात्, पूर्वनिपातस्य नियमः॥

षष्ठी सुबन्त पूरण आदिके साथ समासको प्राप्त न हो॥ ११॥

* याजक, पूजक, परिचारक, परिषेचक, परिवेषक, स्नातक, अध्यापक, उत्सादक, उद्वर्त्तक, होतृ, पोतृ, भर्तृ, रथगणक, पत्तिगणक, वृन्, इतियाजकादिः। श्लो०- क्रियानुगतिमास्थायलोकेख्यातिमुपागताः। ये कान्ताः पाचकाद्यास्ते दृष्टव्यायाजकादिषु॥

क्तेन च पूजायाम् ॥ १२ ॥

मतिबुद्धीति सूत्रेण विहितो यः क्त स्तदन्तेन षष्ठी न समस्यताम्। यथा-राज्ञांमतो, बुद्धः, पूजितो वा ॥

राजाओं से सत्कारित। पूजार्थ में षष्ठ्यन्त सुबन्त क्तान्त सुबन्तके साथ समास को प्राप्त न हो ॥ १२ ॥

अधिकरणवाचिना च ॥ १३ ॥

अधिकरणवाचिना क्तेन सह षष्ठी न समस्यताम्। यथा-इद-मेषाम्, आसितम्, गतम्, भुक्तम्, वा ॥

षष्ठ्यन्त सुबन्त अधिकरण वाचक क्तान्त सुबन्त के साथ समासको प्राप्त न हो १३

कर्मणि च ॥ १४ ॥

उभय प्राप्तौ कर्मणि। इति या षष्ठी सा न समस्यताम्। यथा-आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन ॥

जो ग्वाला नहीं वह गौओं को दुहे तो आश्चर्य है। कर्म्म में जो षष्ठी वह समास को प्राप्त न हो ॥ १४ ॥

तृजकाभ्यां कर्त्तरि ॥ १५ ॥

कर्त्रर्थतृजकाभ्यां षष्ठ्या न समासः स्यात्। यथा-अपांस्रष्टा। ओदनस्य पाचकः ॥

जलको बनानेवाला। भातका पकानेवाला। कर्त्रर्थतृच् और अक के साथ षष्ठी का समास न हो ॥ १५ ॥

कर्त्तरि च ॥ १६ ॥

कर्त्तरि षष्ठ्या अकेन सह समासो न स्यात्। यथा-भवतः शायिका ॥

आपकी सुलानेवाली। कर्त्ता में अक प्रत्यय के साथ षष्ठी का समास न हो॥१६॥

नित्यं क्रीडाजीविकयोः ॥ १७ ॥

एतयोरर्थयोरकेन सह नित्यं षष्ठी समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—उद्दालकपुष्पभञ्जिका-क्रीडाविशेषस्य सञ्ज्ञा। जीविकायाम्। दन्तलेखकः॥

दाँत बनानेवाला। क्रीडा और जीविका अर्थ में अकप्रत्यय के साथ षष्ठी नित्य समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञकहो ॥ १७ ॥

कुगतिप्रादयः ॥ १८ ॥

इमे समर्थेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। कुत्सितः पुरुषः-कुपुरुषः। गति-उररीकृतम्। प्रादयः। दुर्निन्दायाम्। दुष्पुरुषः। स्वतीपूजायाम्। सुपुरुषः। अतिपुरुषः॥

कुशब्द गतिसञ्ज्ञक और प्रादि समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ॥ १८ ॥

उपपदमतिङ् ॥ १९ ॥

उपपदम्, अतिङ्। उपपदमतिङन्तं सुबन्तं समर्थेन सह नित्यंसमस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—कुम्भंकरोतीति-कुम्भकारः॥

तिङ्भिन्न उपपद सुबन्त समर्थ सुबन्तके साथ नित्यसमासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ १९ ॥

अमैवाव्ययेन ॥ २० ॥

अमा, एव, अव्ययेन। अमैवतुल्यविधानं यदुपपदं तदेवाव्ययेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा--स्वादुङ्कारंभुङ्क्ते॥

स्वादिष्टकरके खाताहै। यदि उपपदका समास अव्ययके साथ होतो अमूही अव्ययके साथहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ २० ॥

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् ॥ २१ ॥

तृ० तीनि, अन्यतरस्याम्। (उपदंशस्तृतीयायाम्) इत्यादीन्युपपदानि अमन्तेन अव्ययेन सहवा समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा--मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते, मूलकोपदंशम् ॥

मूलीको काटकर खाताहै। तृतीयाआदि उपपद सुबन्त अमूहीके साथ विकल्पसे समासको प्राप्तहों और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ २१ ॥

क्त्वा च ॥ २२ ॥

तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि क्त्वान्तेन सहवा समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा--उच्चैः कृत्य, उच्चैः कृत्वा ॥

ऊंचाकरके। तृतीया आदि उपपद सुबन्त क्त्वाप्रत्यय के साथभी विकल्पसे समासको प्राप्तहों और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ २२ ॥

शेषोबहुव्रीहिः ॥ २३ ॥

शेषः, बहुव्रीहिः। अधिकारोऽयम् ॥

शेषसमास (१ । २ । २८) सूत्र तक बहुव्रीहि संज्ञकहो ॥ २३ ॥

अनेकमन्यपदार्थे ॥ २४ ॥

अनेकम्, अ०र्थे। अनेकं सुबन्त मन्यपदार्थे वर्त्तमानं समस्यताम्, बहुव्रीहिश्च समासः स्यात्। यथा-प्राप्तमुदकं यंग्रामम्-सप्राप्तोदकोग्रामः। ऊढोरथोयेन-सऊढरथोवृषभः। उपहतमुदकं यस्मै-सउपहतोदकोऽतिथिः।

उद्धृत ओदनोयस्याः-सोदधृतौदनास्थाली । विशाले लोचनेयस्य-सविशाललोचनः । वीराः पुरुषा यस्मिन् ग्रामे-सवीरपुरुषोग्रामः । प्रथमार्थे तुन-वृष्टेदेवेगतः । **(प्रादिभ्यो धातुजस्यवाच्योवाचोत्तरपदलोपः)** ॥ प्रपतितपर्णमस्य-प्रपर्णः । प्रपलाशः ॥ **(नञोऽस्त्यर्थानां वाच्योवाचोत्तरपदलोपः)** ॥ अविद्यमानः पुत्रो यस्य सोऽपुत्रः । अविद्यमाना भार्या यस्यसोऽभार्य्यः ॥ **(अव्ययानांचबहुव्रीहिर्वक्तव्यः)** ॥ उच्चैर्मुखः । नीचैर्मुखः ॥ **(सप्तम्युपमान पूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च)** ॥ कण्ठेस्थितः कालो यस्य स कण्ठेकालः । उष्ट्रस्य मुखमिव मुखं यस्य स उष्ट्रमुखः । खरमुखः ॥ **(समुदायविकारषष्ठ्याश्चबहुव्रीहि रुत्तरपदलोपश्चेतिवाच्यम्)** ॥ केशानां सङ्घातः-केशसङ्घातः । केशसंघातश्चूडाऽस्य केशचूडः । सुवर्णविकारोऽलङ्कारोऽस्य-सुवर्णाऽलङ्कारः ॥

अन्यपदार्थमें वर्त्तमान अनेक सुबन्त समर्थ सुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास बहुव्रीहि संज्ञकहो ॥ २४ ॥

सङ्ख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराऽधिक-सङ्ख्याःसङ्ख्येये ॥ २५ ॥

सङ्ख्येयार्थया सङ्ख्यया तयासह अव्ययादयः समस्यन्ताम्, बहुव्रीहिश्च समासः स्यात् । यथा—दशानां समीपेयेसन्ति ते-उपदशाः । नव, एकादशवा । आसन्नविंशाः । विंशते रासन्नाइत्यर्थः । अदूरत्रिंशाः । अधिकचत्वारिंशाः । द्वौ वा त्रयो वा,-द्वित्राः । द्विरावृत्तादश-द्विदशाः । विंशतिरित्यर्थः ॥

सङ्ख्येय अर्थमें जोसङ्ख्या उसके साथ अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक और

१—(५ । ४ । ७३) इतिडच् ॥ २—(६ । ४ । १४२) इति तिशब्दलोपः ॥

सङ्ख्यावाचक शब्द समासको प्राप्तहों और वहसमास बहुव्रीहि संज्ञकहो ॥ २५ ॥

दिङ्नामान्यन्तराले ॥ २६ ॥

दिङ्नामानि, अन्तराले । दिशो नामान्यन्तराले वाच्ये समस्यन्ताम्, बहुव्रीहिश्च समासः स्यात् । यथा-दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्चदिशोऽन्तरालम्-दक्षिणपूर्वा । आग्नेयमित्यर्थः ॥

दिशाओं का अन्तराल (बीच) वाच्य हो तो दिशाके नामवाचक अनेक सुबन्त समासको प्राप्तहों और वहसमास बहुव्रीहि संज्ञकहो ॥ २६ ॥

तत्रतेनेदमितिसरूपे ॥ २७ ॥

तत्र, तेन, इदम्, इति, सरूपे । सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपोपपदे, तृतीयान्तेच प्रहरणविषये, इदं युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे समस्यताम्, कर्मव्यतीहारे द्योते सच बहुव्रीहिः समासःस्यात् । यथा-केशेषु,केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तम्-केशाकेशि । दण्डैश्च दण्डैश्च, प्रहृत्येदं युद्धंप्रवृत्तम्-दण्डादण्डि । मुष्टीमुष्टि ॥

सप्तम्यन्त और तृतीयान्त समानरूप शब्द इदम् इस अर्थ में परस्पर समास को प्राप्त हों और वह समास बहुव्रीहि संज्ञक हो ॥ २७ ॥

तेन सहेति तुल्ययोगे ॥ २८ ॥

तेन,सह,इति ,तुल्ययोगे। तुल्ययोगे वर्त्तमानं सहेत्येतत्तृतीयान्तेन सह समस्यताम्, बहुव्रीहिश्च समासः स्यात् । यथा-पुत्रेण सह-सपुत्रः, सह पुत्रो वा, आगतः ॥

बेटेके सहित आया। तुल्ययोगमें वर्त्तमान सह शब्द तृतीयान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास बहुव्रीहि संज्ञक हो ॥ २८ ॥

१—(६ । ३ । १२७)इतिदीर्घत्वम् । (५।४ । १२७) इतीच्।२-(६। ३।८२) इति वेह सहस्यसः ।

चार्थे द्वन्द्वः ॥ २९ ॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्त्तमानं समस्यताम्, द्वन्द्वश्च समासः स्यात्। समुच्चयाऽन्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराः--चार्थाः। परस्पर निरपेक्षस्य अनेकस्य एकस्मिन्नन्वयः-समुच्चयः। अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वे-अन्वाचयः। मिलितानामन्वयः-इतरेतरयोगः। समूहः-समाहारः। तत्र ईश्वरम्, गुरुं च भजस्वेति समुच्चये। भिक्षामट गां चानयेत्यन्वाचये च। न समासः, असामर्थ्यात्। पाणी च पादौ च-पाणिपादम्, इतीतरेतरयोगे। अहं च त्वं च ते च तत्र गच्छामः समाहारे॥

चकार के अर्थ में वर्त्तमान अनेक सुबन्त समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास द्वन्द्व संज्ञक हो ॥ २९ ॥

उपसर्जनं पूर्वम् ॥ ३० ॥

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्। यथा—कष्टश्रितः। शङ्कुलाखण्डः। कपाटदारु। वृकभयम्। वेदविद्या। अक्षशौण्डः॥

समास में उपसर्जन संज्ञक का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३० ॥

राजदन्तादिषु परम् ॥ ३१ ॥

एषु परमुपसर्जनं प्रयोज्यम्। यथा—दन्तानां राजा-राजदन्तः। (धर्मादिष्वनियमः)॥ अर्थधर्म्मौ, धर्म्मार्थौ॥

राजदन्तादि गण में उपसर्जन संज्ञकका पर प्रयोग हो ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वे घि ॥ ३२ ॥

द्वन्द्वे समासे घि सञ्ज्ञं पूर्वं स्यात्। यथा—कविश्च काकश्च=कविकाकौ॥

१ -(२।४।२) इति नपुंसक एकत्वम्।

द्वन्द्व समास में घिसञ्ज्ञक का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३२ ॥

अजाद्यदन्तम् ॥ ३३ ॥

अजादि, अन्तम् । द्वन्द्वे समासेऽजाद्यन्तं पूर्वं स्यात् । यथा—अश्वेन्द्ररथाः ॥

द्वन्द्व समास में अजाद्यन्त का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३३ ॥

अल्पाच्तरम् ॥ ३४ ॥

द्वन्द्वे समासेऽल्पाच्तरं पूर्वं प्रयोज्यम् । यथा—प्लक्षन्यग्रोधौ ॥ (ऋतुनक्षत्राणां समानाक्षराणामानुपूर्व्येण) ॥ हेमन्तशिशिरवसन्ताः । कृत्तिकारोहिण्यौ । (लघ्वक्षरं पूर्वम्) ॥ कुशकाशम् ॥ (अभ्यर्हितं च) ॥ तापसपर्वतौ ॥ (वर्णानामानुपूर्व्येण) । ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ॥ (भ्रातुर्ज्यायसः) ॥ रामलक्ष्मणौ ॥ (सङ्ख्याया अल्पीयस्याः) ॥ द्वित्राः । त्रिचतुराः । नवविंशतिः ॥

पीपल और वर्गद । द्वन्द्व समास में अल्प अच् वाले का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३४ ॥

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ॥ ३५ ॥

बहुव्रीहौ समासे सप्तम्यन्तं विशेषणं च पूर्वं प्रयोज्यम् । यथा—कण्ठे कालः । चित्रगुः ॥ (सर्वनामसङ्ख्ययोरुपसङ्ख्यानम्) ॥ सर्वश्वेतः । द्विशुक्लः ॥ (मिथोऽनयोः समासे सङ्ख्यापूर्वम्) ॥ द्व्यन्यः ॥ (वा प्रियस्य) ॥ गुडप्रियः, प्रियगुडः ॥ (गड्वादेः परा सप्तमी) ॥ गडुकण्ठः । क्वचिन्न वहेगडुः ॥

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त और विशेषण का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३५ ॥

निष्ठा ॥ ३६ ॥

बहुव्रीहौ समासे निष्ठान्तं पूर्वं स्यात् । यथा—कृतकृत्यः । (जातिकालसुखादिभ्यः परानिष्ठा वाच्या) ॥ सारङ्गजग्धी । मासजाता । सुखजातः । प्रायिकं चेदम्-कृतकटः ॥

बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३६ ॥

वाऽहिताग्न्यादिषु ॥ ३७ ॥

एषु वा निष्ठान्तं पूर्वं प्रयोज्यम् । यथा—आहिताग्निः, अग्न्याहितः ॥

रक्खाहुआ अग्नि । आहिताग्न्यादि में निष्ठान्त शब्द का विकल्प से पूर्व प्रयोग हो ॥ ३७ ॥

कडाराः कर्मधारये ॥ ३८ ॥

कडारादयः शब्दाः कर्मधारये समासे वा पूर्वं प्रयोज्याः । यथा—कडारजैमिनिः, जैमिनि कडारः ॥

कर्मधारय समास में कडार आदि शब्दों का विकल्प से पूर्व प्रयोग हो ॥ ३८ ॥

इति द्वितीयाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः

अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अनभिहिते ॥ १ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहां से आगे अनभिहित (जिसमें प्रत्यय न हुआ हो उस) का अधिकार है ॥ १ ॥

कर्म्मणि द्वितीया ॥ २ ॥

अनुक्ते कर्म्मणि द्वितीया विभक्तिः स्यात् । यथा—पाठं पठति ॥ (उभसर्वतसोः कार्य्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु । द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते) ॥ उभयतो ग्रामम् । सर्वतोग्रामम् । धिग्यज्ञदत्तम् । उपर्युपरि ग्रामम् । अध्यधि ग्रामम् । अधोऽधोग्रामम् ॥ (अभितः परितः समया निकषाहा प्रतियोगेषु दृश्यते) ॥ अभितोग्रामम् । उभयत इत्यर्थः । परितोग्रामम् सर्वतइत्यर्थः । समया ग्रामम् । निकषा ग्रामम् । हा देवदत्तम् । बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् ॥

अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति हो ॥ २ ॥

तृतीया च होश्छन्दसि ॥ ३ ॥

छन्दसि विषये जुहोतेः कर्मणि कारके तृतीया स्याच्चाद्द्वितीया । यथा—यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति, यवागूं वा ॥

हव्य पदार्थ को अग्नि में डालता है । छन्दो विषय में हु धातु के कर्मकारक में विकल्प से तृतीया विभक्ति हो ॥ ३ ॥

अन्तराऽन्तरेणयुक्ते ॥ ४ ॥

आभ्यांयोगेद्वितीयास्यात् । यथा—अन्तरा त्वां च मां च नदी । धर्म्ममन्तरेण न सुखम् ॥

तेरे और मेरे बीच में नदी है । विना धर्म के सुख नहीं । अन्तरा और अन्तरेण के योगमें द्वितीया विभक्ति हो ॥ ४ ॥

१-पञ्चम्या स्तासिल् । धिमिन्दार्थोऽयम् । उपर्युपरीति (८ । १ । ७) इति द्वित्वम् । २-समया निकषा शब्दौ समीपवचनौ गृह्येते ।

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ ५ ॥

कालाध्वनोः, अत्यन्तसंयोगे । इह द्वितीयाविभक्तिः स्यात् । यथा-मासमधीते । क्रोशं कुटिलानदी ॥

लगातार मासभर पढ़ताहै । लगातार एककोसतक टेढ़ी नदीहै । अत्यन्त संयोग गम्यमान होतो काल और अध्ववाचक शब्दोंमें द्वितीया विभक्तिहो ॥ ५ ॥

अपवर्गे तृतीया ॥ ६ ॥

अपवर्गः-फलप्राप्तिः । तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे-तृतीयाविभक्तिःस्यात् । यथा-दिवसेन, क्रोशेन वा, अनुवाकोऽधीतः ॥

एक दिवसमें अथवा एक कोशमें अनुवाक पढ़ा । अपवर्ग गम्यमान होतो काल और अध्वके अत्यन्त संयोगमें तृतीया विभक्तिहो ॥ ६ ॥

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥ ७॥

शक्तिद्वयमध्ये यौकालाध्वनौ ताभ्यामिमे विभक्ती स्याताम् । यथा-अद्यभुक्त्वाहं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्तास्मि । कर्त्तृशक्त्योर्मध्येऽयंकालः । इहस्थोयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्यति । कर्त्तृकर्मशक्त्योर्मध्येऽयं देशः ।

मैं आज खाकर दोदिनमें खाऊंगा । यहां एककोशतक यह निशाना मारताहै । कारकोंके मध्यमें जोकाल और अध्व (मार्ग) वाचक शब्द उनसे पञ्चमी और सप्तमी विभक्तिहो ॥ ७ ॥

कर्मप्रवचनीययुक्तेद्वितीया ॥ ८ ॥

अनेन योगे द्वितीया विभक्तिः स्यात् । यथा-यज्ञमनुप्रावर्षत् ॥

कर्मप्रवचनीय के योग में द्वितीया विभक्ति हो ॥ ८ ॥

यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ ९ ॥

यस्मात्, अ० मे, यस्य, च, ई० मे, तत्र. से० मी। अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी विभक्तिः स्यात्। यथा—उपखार्य्यां द्रोणः। अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः, अधिपञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः॥

खारी का द्रोण १६ वां अंश है अर्थात् खारी १२ मन ३२ सेरकी और द्रोण ३४ सेरका होता है। जिससे अधिक और जिसका ईश्वर वचन हो उस कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी विभक्ति हो॥ ९॥

पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥ १० ॥

पञ्चमी, अपाङ्परिभिः। एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमीविभक्तिः स्यात्। यथा—अपमथुरायाः, परिमथुराया वृष्टोमेघः। आपाटलिपुत्राद् वृष्टोमेघः, आकुमारंयशः पाणिनेः॥

अप, आङ्, परि इन कर्मप्रवचनीयों के योग में पञ्चमी विभक्ति हो॥ १०॥

प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥ ११ ॥

तत्रकर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी विभक्तिः स्यात्। यथा—अभिमन्युरर्जुनात्प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्॥

अर्जुनका प्रतिनिधि अभिमन्यु। तिलोंसे उर्द बदलताहै। जिससे कि प्रतिनिधि और प्रतिदान (बदला) कियाजावेउसकर्मप्रवचनीयके योगमें पञ्चमी विभक्तिहो॥ ११॥

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥ १२ ॥

अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्म्मणिकारके इमे स्याताम्। यथा-ग्रामम्, ग्रामाय वा व्रजति ॥

गांव को जाता है। चेष्टा गम्यमान हो तो अध्व (मार्ग) वर्जित गत्यर्थक धातुओं के कर्म्म कारक में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति हो ॥ १२ ॥

चतुर्थी सम्प्रदाने ॥ १३ ॥

सम्प्रदाने कारके चतुर्थी विभक्तिः स्यात्। यथा-छात्राय पुस्तकं ददाति ॥

सम्प्रदानकारक में चतुर्थी विभक्ति हो ॥ १३ ॥

क्रियार्थोपपदस्य च कर्म्मणि स्थानिनः १४

क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य तस्यस्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य धातोस्तुमुनः कर्म्मणि चतुर्थी विभक्तिः स्यात्। यथा-फलेभ्यो व्रजति। फलान्याहर्त्तुं व्रजतीत्यर्थः ॥

क्रियार्था क्रिया जिसके उपपद हो उस अप्रयुज्यमान धातुके कर्म कारक में चतुर्थी विभक्तिहो ॥ १४ ॥

तुमर्थाच्च भाववचनात् ॥ १५ ॥

तुमर्थात्, च, भाववचनात्। (भाववचनाश्च) इति योगेन योविहितोघञ् तदन्ताच्चतुर्थी स्यात्। यथा-यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः ॥

तुमर्थ भाववचन प्रातिपदिकसे चतुर्थी विभक्तिहो ॥ १५ ॥

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्-योगाच्च ॥ १६ ॥

नमः० योगात्[अ], च । एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । यथा—नमो ब्रह्मणे । स्वस्ति प्रजाभ्यः । अग्नयेस्वाहा । स्वधापितृभ्यः । अलंमल्लोमल्लाय । वषडग्नये ॥

ईश्वर के लिये नमस्कृति । प्रजाके लिये कल्याण । अग्नि के लिये स्वाहा । मातापिता को जल । मल्लमल्ल के लिये पर्याप्त हैं । अग्नि के लिये देना । नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् इन के योग में चतुर्थी विभक्ति हो ॥ १६ ॥

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषा-ऽप्राणिषु ॥ १७ ॥

मन्य० णिँ, अँनादरे, विभाषा[अ], अँप्राणिषु । प्राणिवर्जे मन्यतेः कर्मणिकारके चतुर्थीवास्यादनादरे । यथा—न त्वां तृणंमन्ये, तृणाय वा ॥ (अप्राणिष्वित्यपनीय नौकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम्) ॥ तेन न त्वां नावमन्नं वा मन्ये । न त्वां शुने, श्वानं वा मन्ये ॥

अनादर गम्यमान हो तो प्राणि वर्जित मन्य धातु के कर्म कारक में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति हो ॥ १७ ॥

कर्त्तृँकरणयोस्तृतीया ॥ १८ ॥

अनभिहिते कर्त्तरि, करणे, च तृतीया स्यात् । यथा—केनेदं कृतम् । वाचावक्ति । (प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्) ॥ प्रकृत्याचारुः । प्रायेण याज्ञिकः । सुखेन दुःखेन वा प्रयातीत्यादि ॥

यह किसने किया । वाणी से कहता है । अनभिहित कर्त्ता और करण में तृतीया विभक्ति हो ॥ १८ ॥

१—(प०) उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी । यथा—नमस्करोमि भवन्तम् ॥

२—आदरे-अशमानं दृषदंमन्येमन्ये काष्ठमुलूखलम् । अन्धायास्तं सुतं मन्ये यस्य माता न पश्यति ॥

सहयुक्तेऽप्रधाने ॥ १९ ॥

सहार्थेन युक्ते अप्रधाने तृतीया स्यात् । यथा-पुत्रेणसहागतः पिता । एवं साकम्, सार्द्धम् ॥

पितामय अपने पुत्र के आया । सहार्थ (साहित्य) से युक्त अप्रधान में तृतीया विभक्ति हो ॥ १९ ॥

येनाऽङ्गविकारः ॥ २० ॥

येनाङ्गेन विकृतेन आङ्गिनो विकारोलक्ष्यते ततस्तृतीया स्यात् । यथा-अक्ष्णा काणः । अक्षि सम्बन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः ॥

जिस अङ्ग के विकृत होने से अङ्गीका विकार लक्षित हो उससे तृतीया विभक्ति हो ॥ २० ॥

इत्थंभूतलक्षणे ॥ २१ ॥

कञ्चित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात् । यथा-किं भवता कमण्डलुना मस्करी दृष्टः ॥

क्या आपने कमण्डलु वाला संन्यासी देखा है । इत्थं भूत लक्षण (ऐसाचिह्न) में तृतीया विभक्ति हो ॥ २१ ॥

सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्म्मणि ॥ २२ ॥

संज्ञः, अन्यतरस्याम्, कर्मणि । संपूर्वस्य जानातेः कर्मणि कारके तृतीया वा स्यात् । यथा-पित्रा, पितरं वा संजानीते ॥

पिता को सम्यक् जानता है । सम् पूर्वक ज्ञा धातु के कर्मकारक में विकल्प से तृतीया विभक्ति हो ॥ २२ ॥

हेतौ ॥ २३ ॥

हेत्वर्थे तृतीया स्यात् । यथा—विद्यया यशः ॥

विद्या से यश । हेतु वाचक शब्द में तृतीया विभक्ति हो ॥ २३ ॥

अकर्त्तर्यृणे पञ्चमी ॥ २४ ॥

अकर्त्तरि, ऋणे, पञ्चमी । कर्त्तृवर्जितं यदृणं हेतुभूतं ततः पञ्चमी स्यात् । यथा—सहस्राद्बद्धः ॥

सहस्र मुद्रा का ऋणी है । कर्त्तृ वर्जित ऋण हेतु में पञ्चमी विभक्ति हो ॥२४॥

विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥ २५ ॥

गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमी वा स्यात् । यथा—जाड्याज्जाड्येन वा बद्धः ॥

मूर्खता से बँधा है । स्त्रीलिङ्ग भिन्न गुण हेतु में विकल्प से पञ्चमी विभक्ति हो २५

षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥ २६ ॥

हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योते षष्ठी स्यात् । यथा—पठनस्य हेतोर्वसति ॥

पढ़ने के कारण रहता है । हेतु शब्द के प्रयोग में हेतु द्योत्य हो तो षष्ठी विभक्ति हो ॥ २६ ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥ २७ ॥

सर्वनाम्नः, तृतीया, च, । सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया स्यात्, षष्ठी च । यथा—केन हेतुना वसति, कस्य हेतोर्वा (निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्) ॥ किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मान्निमित्ताद्, कस्यनिमित्तस्य, कस्मिन्निमित्ते । एवं हि किं कारणं को हेतुः, किं प्रयोजनमित्यादि ॥

किसकारण से रहता है। सर्वनाम वाचक हेतु के प्रयोग में हेतु योग्य हो तो तृतीया और षष्ठी विभक्ति हो ॥ २७ ॥

अपादाने पञ्चमी ॥ २८ ॥

अपादाने कारके पञ्चमी स्यात्। यथा—ग्रामादायाति॥ (ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च) ॥ प्रासादात् प्रेक्षते । आसनात्प्रेक्षते । प्रासादमारुह्य, आसने उपविश्य, प्रेक्षत इत्यर्थः । श्वशुराल्लज्जते । श्वशुरंवीक्ष्येत्यर्थः ॥ (प्रश्नाख्यानयोश्चवाच्या)॥ कुतोभवान्, इन्द्रप्रस्थात् ॥ (यतश्चाध्वकालनिर्माणंतत्रपञ्चमी) ॥ वनाद्ग्रामोयोजनं ये जनेनवा ॥ (तद्युक्तात्काले सप्तमी वाच्या) कार्तिक्याआग्रहायणीमासे ॥ (अध्वनः प्रथमा सप्तमीच वाच्या)मुरादाबादतस्सम्भलश्चत्वारि योजनानि चतुर्षुवेति ॥

गांवसे आताहै । अपादानकारकमें पञ्चमी विभक्तिहो ॥ २८ ॥

अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥ २९ ॥

एभिर्योगे पञ्चमी स्यात् । अन्यइत्यर्थग्रहणम् । यथा—अन्यो, भिन्नो वा देवदत्ताद् । अराद्वनात् । ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः । इतरो देवदत्तात् । दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः । तेन सम्प्रति देशकालवृत्तिना ग्रामात्पूर्वो वृक्षः । योगेऽपिभवति। चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः । प्राग्ग्रामाद् । आच् । दक्षिणाग्रामाद् । आहि । दक्षिणाहिग्रामाद् ॥

देवदत्त से भिन्न । वनके पास या दूर । देवदत्त से विरोधी । बिनाज्ञानके मुक्ति नहीं होती । गांव से पहिला वृक्ष, चैत्रसे पहिला फागुन । गांव से पूर्वकी ओर ।

१-(५ । ३ । ३७, ३८) इत्याजाही प्रत्ययौ ।

गांव से दक्षिण की ओर या दूर। अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच्, और आहिशब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति हो॥ २९॥

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ॥ ३० ॥

षष्ठी, अतसर्थप्रत्ययेन। एतद्योगे षष्ठी स्यात्। यथा–नगरस्य दक्षिणतः॥

नगर के दक्षिण की ओर। अतसर्थ प्रत्ययके योग में षष्ठी विभक्ति हो॥३०॥

एनपा द्वितीया ॥ ३१ ॥

एनबन्तेन योगे द्वितीया स्यात्। एनपेति योगविभागात् षष्ठ्यपि। यथा–दक्षिणेन ग्रामम्, ग्रामस्य वा। दक्षिणस्यामदूर इत्यर्थः॥

एनप् प्रत्ययान्त के योगमें द्वितीयाविभक्ति हो॥ ३१॥

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ३२ ॥

पृ० नानाभिः, तृतीया, अन्यतरस्याम्। एभिर्योगे तृतीया स्यात्, पञ्चमीद्वितीये च। अन्यतरस्यां ग्रहणं समुच्चयार्थम्। पञ्चमीद्वितीये चाऽनुवर्त्तेते। यथा–पृथक् सोमदत्तेन, सोमदत्तात्, सोमदत्तं वा। विना सोमदत्तेन, सोमदत्तात्, सोमदत्तं वा। नाना सोमदत्तेन, सोमदत्तात्, सोमदत्तं वा॥

विना सोमदत्तके १। पृथक्, विना और नाना शब्द के योगमें तृतीया पञ्चमी और द्वितीया विभक्ति हो॥ ३२॥

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्याऽसत्त्ववचनस्य ॥ ३३ ॥

१-(५।३।३५) इत्येनप्।

एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे कारके तृतीयासप्तम्यौ स्याताम् । यथा–स्तोकेन, स्तोकाद्वामुक्तः । अल्पेन, अल्पाद्वा मुक्तः । कृच्छ्रेण, कृच्छ्राद्वा मुक्तः । कतिपयेन, कतिपयाद्वा मुक्तः ॥

थोड़े या कुछ से छूटा२ । दुःखसे दूर हुआ । कुछसे छूटा । असत्व (अद्रव्य) वाचक स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय इनके करण कारक में तृतीया और सप्तमी विभक्ति हो ॥ ३३ ॥

दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥३४॥

दू० कार्थैः, षष्ठी, अन्यतरस्याम् । एभिर्योगे षष्ठीपञ्चम्यौ स्याताम् । यथा–दूरम्, निकटम्, ग्रामस्य, ग्रामाद्वा ॥

गांव से दूर, पास । दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दोंके योग में षष्ठी और पञ्चमी विभक्ति हो ॥ ३४ ॥

दूरान्तिकार्थेभ्योद्वितीया च ॥ ३५ ॥

दू० कार्थेभ्यः, द्वितीया, च । एभ्योद्वितीयास्याच्चात् पञ्चमीतृतीये च ॥ प्रातिपदिकार्थ मात्रे विधिरयम् । यथा–ग्रामस्यदूरम्, दूरात्, दूरेण वा । नगरस्य-अन्तिकम्, अन्तिकात्, अन्तिकेन वा ॥

शहर के पास । दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दों से द्वितीया पञ्चमी और तृतीया विभक्ति हो ॥ ३५ ॥

सप्तम्यधिकरणे च ॥ ३६ ॥

सप्तमी, अधिकरणे, च । अधिकरणे कारके सप्तमी स्यात्, चादूरान्तिकार्थेभ्यश्च । यथा–स्थाल्यां पचति, मोक्षे इच्छामि । वनस्य दूरे, अन्तिके वा ॥ (क्तस्येन् विषयस्य कर्मण्युपसङ्ख्या-

नम्) ॥ अधीती व्याकरणे । अधीतमनेनेति विग्रहे । (इष्टादिभ्यश्च ५ । २ । ८८) इतिकर्त्तरीनिः ॥ (साध्वसाधु प्रयोगे च) ॥ साधुर्देवदत्तो मातरि । असाधुरपितरि ॥ (निमित्तात्कर्मयोगे) ॥ निमित्तमिह फलम् । योगः-संयोगः समवायात्मकः ॥ चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥ १ ॥ हेतौ तृतीयाऽत्र प्राप्ता तन्निवारणार्थम् । सीमा-अण्डकोशः । पुष्कलको-गन्धमृगः । चमरीम्-मृगीं चमरोमृगभेद विशेषः ॥

बटलोई में पकाता है । दूरार्थ, अन्तिकार्थ और अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति हो ॥ ३६ ॥

यस्य चॅ भावेनॅ भावलक्षणम् ॥ ३७॥

यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततस्सप्तमी स्यात् । यथा-गोषु दुह्यमानासु गतः ॥

जिस की क्रिया स अन्य क्रिया लक्षित हो उससे सप्तमी विभक्ति हो ॥ ३७ ॥

षष्ठी चाऽनादरे ॥ ३८ ॥

अनादराऽधिक्ये भावलक्षणे षष्ठी सप्तम्यौ स्याताम् । यथा-रुदति, रुदतोवाप्राव्रजीत् ॥

पुत्रादिको रोताहुआ छोड़कर संन्यासी होगया । जिसकी क्रियासे अधिक अनादरसहित इतर क्रिया लक्षित होतो उससे षष्ठी और सप्तमी विभक्तिहो ॥ ३८ ॥

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च ॥ ३९ ॥

स्वामी०प्रसूतैः, च । एभिः सप्तभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्याताम् । यथा—क्षेत्रस्य, क्षेत्रेवास्वामी । भूमेः, भूम्यांवेश्वरः । भूमेः, भूम्यांवाधिपतिः । भूमेः, भूम्यांवादायादः । मम, मयिवा साक्षी । तस्य, तस्मिन्वा प्रतिभूः । गवां, गोषुवाप्रसूतः ॥

खेतका मालिक । भूमिका स्वामी । भूमिका हिस्सेदार । मेरा गवाह । उसका ज़ामिन । गौओं का ही अनुभव है जिसको । स्वामिन्, ईश्वर, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू, और प्रसूत शब्दके योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हो ॥ ३९ ॥

आयुक्तकुशलाभ्यां चाऽऽसेवायाम् ॥ ४० ॥

आभ्यां योगे षष्ठी सप्तम्यौ स्यातां तात्पर्येऽर्थे । यथा—आयुक्तोव्यापारितः, आयुक्तः कुशलोवा पुस्तक लेखने, पुस्तक लेखनस्य वा ॥

तात्पर्य के लिये पुस्तक लिखता है । आसेवा गम्यमान हो तो आयुक्त और कुशल शब्दों के योगमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हो ॥ ४० ॥

यतश्च निर्धारणम् ॥ ४१ ॥

यतः, च, निर्धारणम् । जातिगुणक्रियासञ्ज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम्, यतस्ततषष्ठीसप्तम्यौ स्याताम् । यथा—नृणां नृषु वा विप्राः श्रेष्ठाः । गवां गोषु वा कृष्णाबहुक्षीरा । गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः । छात्राणां छात्रेषु वा यज्ञदत्तः पटुः ॥

मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं । गौओं में काली गाय अधिक दूध देनेवाली है । जानेवालों में दौड़नेवाला शीघ्री है । विद्यार्थिओं में यज्ञदत्त चतुर है । जिससे निर्धारण हो उस में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हो ॥ ४१ ॥

पञ्चमी विभक्ते: ॥ ४२ ॥

विभागो विभक्तं निर्धारणस्य यत्रभेद एव तत्र पञ्चमी स्यात्। यथा—माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः ॥

पटना निवासिओं से मथुराके निवासी बड़े धनी हैं। जिस निर्द्धारणके आश्रय में विभक्त (विभाग) हो उस में पञ्चमी विभक्ति हो ॥ ४२ ॥

साधुनिपुणाभ्यामर्चायांसप्तम्यप्रतेः।४३।

सा० भ्याम्, अर्चायाम्, सप्तमी, अप्रतेः। आभ्या योगे सप्तमी स्यादर्चायां, न तु प्रतेः प्रयोगे । यथा—मातरि साधुर्निपुणो वा ॥ (अप्रत्यादिभिरिति वाच्यम्) ॥ साधुर्निपुणोवा मातरंप्रति, पर्यनुवा ॥

माता की सेवा करनेवाला। अर्चागम्यमान हो तो प्रतिभिन्न साधु और निपुण शब्दके योग में सप्तमी विभक्ति हो ॥ ४३ ॥

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥ ४४ ॥

आभ्यां योगे तृतीया स्याच्चात् सप्तमी। यथा—प्रसितः, उत्सुकोवा केशैः, केशेषु वा ॥

बालों के संभालने में लगाहुआ। प्रसित और उत्सुक के योग में तृतीया और सप्तमी विभक्ति हो ॥ ४४ ॥

नक्षत्रे च लुपि ॥ ४५ ॥

लुबन्तान्नक्षत्रशब्दात् तृतीया सप्तम्यौ स्याताम्। अधिकरणे-यथा—पुष्येण, पुष्ये वा पायसमश्नीयात् ॥

पुष्य में खीर खावे। लुबन्त नक्षत्र वाचक शब्द से तृतीया और सप्तमी विभक्तिहो ४५

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचन-

मात्रे प्रथमा ॥ ४६ ॥

प्रातिपदिकार्थमात्रे, लिङ्गमात्रे, परिमाणमात्रे, सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। यथा-उच्चैः। नीचैः। बालः। कुमारी। वनम्। द्रोणः। खारी। एकः। द्वौ। बहवः॥

प्रातिपदिकार्थमात्र, लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र और वचन (सङ्ख्या) मात्र में प्रथमा विभक्ति हो ॥ ४६ ॥

सम्बोधने च ॥ ४७ ॥

सम्बोधनेऽपि प्रथमा स्यात्। हे नर! ॥

सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति हो ॥ ४७ ॥

साऽऽमन्त्रितम् ॥ ४८ ॥

सम्बोधने या प्रथमा तदन्तमामन्त्रितसञ्ज्ञं स्यात्[1]। आमन्त्रितप्रदेशा आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवद् इत्येवमादयः। यथा-अग्नेनय सुपथा॥

हे परमात्मन्! सुमार्गपर चला। सम्बोधन में जो प्रथमा वह आमन्त्रितसंज्ञक हो॥४८॥

एकवचनं सम्बुद्धिः ॥ ४९ ॥

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसञ्ज्ञं स्यात्। हे देव[1]! ॥

अयि लड़के। सम्बोधन का जो एकवचन वह सम्बुद्धि संज्ञक हो ॥ ४९ ॥

षष्ठी शेषे ॥ ५० ॥

कर्म्मादिभ्योऽन्यः प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिसम्बन्धादिः शेषः तत्र षष्ठी स्यात्। यथा-मनुष्यस्य धर्म्मः॥

१-(७।३।१०८) इति गुणादेशः। (६।१।६९) इति सुलोपः।

शेष स्व स्वामि आदि सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ५० ॥

ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ॥ ५१ ॥

ज्ञः, अविदर्थस्य, करणे । जानाते रज्ञानार्थस्यकरणे कारके शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी स्यात् । यथा—सर्पिषोज्ञानम् ॥

घृतका ज्ञान है परन्तु वास्तव में घृत नहीं है । विदर्थ (ज्ञानार्थ) से भिन्न ज्ञा धातु के शेष करण कारक में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ५१ ॥

अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥ ५२ ॥

एषां कर्म्मणि शेषे षष्ठी स्यात् । यथा—मातुः स्मरति । सर्पिषोदयनमीशनंवा ॥

माताको यादकरता है । घृतकादेना अथवा ऐश्वर्यत्व । अधीगर्थ (स्मरणार्थ) दय, ईश इनधातुओंके शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५२ ॥

कृञः प्रतियत्ने ॥ ५३ ॥

कृञः कर्मणि कारके शेषे षष्ठी स्याद् गुणाधाने । यथा—एधोदकस्योपस्कुरुते ॥

कृञ् धातुके शेष कर्ममें प्रतियत्न गम्यमान होनेपर षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५३ ॥

रुजार्थानांभाववचनानामज्वरे ॥ ५४ ॥

रु० नाम्, भाव० नाम्, अज्वरे । भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रुजार्थानां कर्मणि कारके शेषे षष्ठी स्यात् । यथा—चौरस्य रुजति-रोगः ॥ पिशुनस्यामयत्यामयः ॥ (अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम्) ॥ चौरं संतापयति तापः ॥

चोरको रोग प्राप्त होताहै । चुगलको रोग प्राप्त होताहै । ज्वर वर्जित रुजार्थक भाववाचक धातुओंके शेष कर्ममें षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५४ ॥

आशिषि नाथः ॥ ५५ ॥

आशीरर्थस्यनाथतेःकर्मणि कारके षष्ठी स्यात् । यथा-मधुनो नाथते ॥

मिष्टका आशीर्वाद देताहै । आशीर्वाद अर्थ में नाथ धातुके शेष कर्म कारकमें षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५५ ॥

जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ॥ ५६ ॥

हिंसार्थानामेषां शेषे कर्म्मणिकारके षष्ठी स्यात् । यथा-चौरस्योज्जासनम् । निप्रौ-संहतौ, विपर्यस्तौ, व्यस्तौवा । चौरस्यनिप्रहणनम्, प्रणिहननम्, निहननम्, प्रहणनम् वा । चौरस्योन्नाटनम् । चौरस्यक्राथनम् । चौरस्यपेषणम् ॥

चौरके लिये दुःख । हिंसार्थ में जासिनि प्र हन नाट क्राथ और पिष धातुके शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५६ ॥

व्यवहृपणोस्समर्थयोः ॥ ५७ ॥

शेषे कर्मणि कारके षष्ठी स्यात् । द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे चानयेस्तुल्यार्थत्वम् । यथा-शतस्य-व्यवहरणंपणनंवा ॥

सौका क्रय विक्रय करता है अथवा जुआ खेलता है । समानार्थ व्यवहृ और पण धातुके शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५७ ॥

दिवस्तदर्थस्य ॥ ५८ ॥

दिवः, तदर्थस्य । द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि कारके षष्ठी स्यात् । यथा—सहस्रस्य दीव्यति ॥

हज़ार से क्रय विक्रय करता है या जुआ खेलता है । तदर्थ (क्रय विक्रय द्यूतार्थ) दिव धातु के शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ५८ ॥

विभाषोपसर्गे ॥ ५९ ॥

विभाषा, उपसर्गे । उपसर्गे सति दिवस्तदर्थस्य कर्मणि कारके वा षष्ठी स्यात् । यथा—सहस्रस्य, सहस्रं वा प्रतिदीव्यति ॥

उपसर्ग पूर्वक तदर्थ दिव धातु के शेष कर्म कारक में विकल्प से षष्ठी विभक्ति हो ॥ ५९ ॥

द्वितीया ब्राह्मणे ॥ ६० ॥

ब्राह्मणविषये प्रयोगे दिवस्तदर्थस्यकर्मणिकारके द्वितीया स्यात् । यथा—गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः ॥

इसकी सभा में उस दिन गौ का क्रय विक्रय या जुआ खेलें । ब्राह्मण ग्रन्थ विषयक प्रयोग में व्यवहारार्थ दिवधातु के कर्मकारक में द्वितीया विभक्ति हो ६०

प्रेष्य ब्रुवोर्हविषोदेवतासम्प्रदाने ॥ ६१ ॥

प्रेष्यब्रुवोः, हविषः, देव० दाने । देवता सम्प्रदानार्थे वर्त्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणोर्हविर्विशेषस्य वाचकाच्छब्दात् षष्ठी स्यात् । यथा—अग्नये घृतस्य हविषः प्रेष्य, अनुब्रूहि वा ॥

अग्नि के लिये घृत दे या रख । देवता सम्प्रदान गम्यमान हो तो प्रेष्य और ब्रुव धातु के हविष प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६१ ॥

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ ६२ ॥

षष्ठी स्यात् । यथा—पुरुष मृगश्चन्द्रमसः, चन्द्रमसे वा ॥

शुद्धस्वरूप जगदीशके लिये । छन्दविषय में चतुर्थी के अर्थमें बहुल करके षष्ठी हो ॥ ६२ ॥

यजेश्च करणे ॥ ६३ ॥

यजेः, च, करणे । छन्दसिविषये यजेः करणे कारके बहुलं षष्ठी स्यात् । यथा—घृतस्य घृतेन वा यजते ॥

घीसे यजन करता है । छन्द विषयमें यज धातु के करण कारक में बहुल करके षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६३ ॥

कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे ॥ ६४ ॥

कृत्वोर्थानां प्रयोगे कालवाचिन्यधिकरणे षष्ठी स्यात् । यथा—पञ्चकृत्वोऽह्नो भुङ्क्ते । द्विरह्नोऽधीते ॥
दिनमें पांच वार खाता है । दोवार दिन में पढ़ता है । कृत्वोर्थ प्रत्ययों का प्रयोग हो तो काल वाचक तथा अधिकरण में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६४ ॥

कर्त्तृकर्मणोः कृति ॥ ६५ ॥

कृत्प्रयोगे कर्त्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात् । यथा—ईश्वरस्य कृतिः । जगतः कर्त्ता विधाता वै ॥
ईश्वरका बनाया । जगत्का कर्त्ता ईश्वर ही है । कृत्प्रत्यय के सम्बन्ध होनेपर कर्त्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६५ ॥

उभयप्राप्तौ कर्मणि ॥ ६६ ॥

उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात् । यथा—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन । (अकाकारयोः स्त्रीप्रत्य-

---

१- (५ । ४ । १७) इति कृत्वसुच् । २- (५ । ४ । १८) इति सुच् ।

ययोः प्रयोगेनेति वाच्यम्) ॥ भेदिका देवदत्तस्य काष्ठानाम् ॥ (शेषे विभाषा) ॥ विचित्रा जगतः कृतिरीश्वरस्य, ईश्वरेण वा ॥

कृत्प्रत्यय के सम्बन्ध में कर्त्ता कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त हो तो कर्ममें ही हो ॥ ६६ ॥

क्तस्य च वर्त्तमाने ॥ ६७ ॥

वर्त्तमानार्थस्य क्तस्य प्रयोगे षष्ठी स्यात् । यथा–राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा ॥

राजाओं का इष्ट, राजाओं का ज्ञात, राजाओं का सत्कारित । वर्त्तमान में (३ । २ । १८८) विहित क्तप्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६७ ॥

अधिकरणवाचिनश्च ॥ ६८ ॥

अ० चिनः, च । क्तस्य प्रयोगे षष्ठी स्यात् । यथा–इदमेषा मासितम्, शयितं, गतं, भुक्तं वा ॥

यह इनकी बैठक, सोना, जाना, खाना है । अधिकरण वाची क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६८ ॥

न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥ ६९ ॥

एतेषां प्रयोगे षष्ठी न स्यात् । यथा--लादेशः- कुर्वन्, कुर्वाणो वा सृष्टिमीश्वरः । उ--सभां दिदृक्षुः । उक्--दैत्यान् घातको रामः । (कमेरनिषेधः) ॥ वेश्यायाः कामुकः खलः । अव्ययम्--जगत् सृष्ट्वा, सुखं कर्त्तुम् । निष्ठा--रामेण हता दैत्याः, दैत्यान् हतवान् रामः । खलर्थाः–ईषत्करः प्रपञ्चस्तेन । तृन्निति प्रत्याहारः-शतृ शानचाविति (३ । २ । १२४) तृनो (३ । २ । १३५) नकारात् । शानन्-सोमंपवमानः । चानश्-आत्मानं मण्डयमानः । शतृ-

वेदमधीयन्। तृन्-कर्त्ता लोकान्॥ (द्विषः शतुर्वा) ॥ चौरस्य, चौरं वा द्विषन् ॥

ईश्वर सृष्टिको करताहुआ। सभा को देखने की इच्छा करनेवाला। दैत्यों को मारने वालेराम। वेश्यावाजदुष्ट। संसार को वनाकर, सुखसे करने को। रामने दैत्यों को मारा। उसने थोड़ा प्रपञ्च किया। सोम को पवित्र करता हुआ। अपने आपको सजाता हुआ। वेदको पढ़ता हुआ। लोकों का वनाने वाला। चोरसे द्वेष करता हुआ। ल, उ, उक्, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ और तृन् प्रत्ययान्त के योगमें षष्ठी विभक्ति न हो॥ ६९ ॥

अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥ ७० ॥

अकेनोः, भवि० योः। भविष्यत्यकस्य, भविष्यदाधमर्ण्योर्थेन-च प्रयोगे षष्ठी नस्यात्। यथा—साधून् पालकोव्रजति। ग्रामंगामी, शतंदायी ॥

सज्जनों का पालन करने वाला जाता है। गांवको जानेवाला, सौदेनेवाला। भविष्यकालमें विहित अक भविष्यत् और आधमर्ण्य अर्थ में विहित इन इसके योगमे षष्ठी विभक्तिनहो ॥ ७० ॥

कृत्यानां कर्त्तरि वा ॥ ७१ ॥

कृत्याना प्रयोगे कर्त्तरि वा षष्ठी स्यात्। यथा—तेन, तस्य वा लेखो लेख्यः ॥

उसको लेख लिखना चाहिये। कृत्य प्रत्ययके प्रयोग होनेपर कर्त्ता में विकल्प से षष्ठीहो ॥ ७१ ॥

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ७२ ॥

तुल्यार्थैः, अतुलोपमाभ्याम्, तृतीया, अन्यतरस्याम्। तुलोपमा-

१-(३। २। १२८) इति शानन्।

शब्दौ वर्जयित्वा तुल्यार्थैर्योगे तृतीया वा स्यात् पक्षे षष्ठी। यथा-- तुल्यः, सदृशः, समो वा देवदत्तस्य देवदत्तेन वा ॥

देवदत्तके सदृश। तुला और उपमाभिन्न तुल्यार्थ शब्दोंके योग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति विकल्पसे हो ॥ ७२ ॥

चतुर्थी चाऽऽशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशल-सुखार्थहितैः ॥ ७३ ॥

चतुर्थी, च, आशिषि, आयु० हितैः। एतदर्थैर्योगे चतुर्थी वा स्यात् पक्षे षष्ठी। यथा-आशिषि-आयुष्यं, चिरञ्जीवितं देवदत्ताय देवदत्तस्य वाभूयात्। एवमेव मद्रम्, भद्रम्, कुशलम्, निरामयम्, सुखम्, शम्, अर्थः, प्रयोजनम्, हितम्, पथ्यम्, वाभूयात् ॥

हे परमात्मन्! देवदत्त सुखपूर्वक रहे। आशिष् अर्थगम्यमान होतो आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित के योगमें षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति हो ॥ ७३ ॥

इतिद्वितीयाऽध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

द्विगुरेकवचनम् ॥ १ ॥

द्विगुः, एकवचनम्। द्विग्वर्थः समाहारः समास एकवचनं स्यात्। यथा-दशपूलाः समाहृताः—दशपूली ॥

दशपूलों का समूह। द्विगु अर्थवाला समाहार समास एकवचनहो ॥ १ ॥

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य्यसेनाङ्गानाम् ॥ २ ॥

द्वन्द्वः, च, प्रा० नाम्। एषां द्वन्द्व एकवत्स्यात्। यथा—पाणिपादम्। मार्दङ्गिकपाणविकम्। रथिकाश्वारोहम् ॥

१—(२। ४। १७) इतिनपुंसकत्वम्। (४। १। २१) इतिर्ङीप्।

हाथपैर। मृदङ्ग और ढोल बजाने वाले। रथवान् और सवार। प्राण्यङ्ग, तुर्याङ्ग और सेनाङ्गों का द्वन्द्व समास एकवचनहो ॥ २ ॥

अनुवादे चरणानाम् ॥ ३ ॥

चरणानां द्वन्द्व एकवत्स्यादनुवादेगम्ये ॥ (स्थेणोर्लुङीतिवक्तव्यम्)॥यथा-उदगात्कठकालापम्।प्रत्यष्ठात्कठकौथुमम्॥

अनुवाद गम्यमान होतो चरणवाचकों का द्वन्द्व एकवचनहो ॥ ३ ॥

अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ॥ ४ ॥

अ० क्रतुः, अ० सकम्। यजुर्वेदे विहितो यः क्रतुः तद्वाचिनामनपुंसकलिङ्गानां द्वन्द्वे एकवत्स्यात्। यथा-अर्काश्वमेधम् ॥

अर्क और अश्वमेध (यज्ञ)। नपुंसक भिन्न अध्वर्युक्रतु (यजुर्वेद में कथितवड़े-नाम) वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचनहो ॥ ४

अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ॥ ५ ॥

अध्ययनतः, अ० ख्यानाम्। अध्ययन निमित्तेन प्रत्यासन्ना आख्या येषां तेषां द्वन्द्व एकवत्स्यात्। यथा-अष्टाध्यायी महाभाष्यम्॥

अष्टाध्यायी और महाभाष्य। अध्ययन निमित्त से अविप्रकृष्टाख्यों (एक दूसरे के पश्चात् पढ़ने योग्य ग्रन्थों) का द्वन्द्व एकवत्हो ॥ ५ ॥

जातिरप्राणिनाम् ॥ ६ ॥

जातिः, अ० नाम्। प्राणिवर्जितजातिवाचिनां द्वन्द्वएकवत् स्यात्। यथा--आराशस्त्रि ॥

आरा और आरी। प्राणिवर्जित जाति वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचन हो॥६॥

* चरणशब्दः कठकाला पादिषु शाखा भेदेषु मुख्यस्तदध्यायिषु पुरुषेषु गौणः।

विशिष्टलिङ्गो नदी देशोऽग्रामाः ॥ ७ ॥

विशिष्टलिङ्गः, नदीदेशः, अग्रामाः । ग्रामवर्जितनदीदेशवाचिनां भिन्नलिङ्गानां समाहारे द्वन्द्व एकवत् स्यात् । यथा—गङ्गा च शोणश्च--गङ्गाशोणम् । कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च-कुरुकुरुक्षेत्रम् ॥

गङ्गा और शोण । कुरु और कुरुक्षेत्र । ग्रामवर्जित भिन्नलिङ्ग नदी वाचक और देश वाचकों का द्वन्द्व एकवचन हो ॥ ७ ॥

क्षुद्रजन्तवः ॥ ८ ॥

एतेषां समाहारे द्वन्द्व एकवत् स्यात् । यथा--दंशाश्च मशकाश्च-दंशमशकम् ॥

डांस और मसे । क्षुद्र जन्तु वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवत् हो ॥ ८ ॥

येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥ ९ ॥

येषां नित्यो विरोधस्तद्वाचिनां शब्दानां द्वन्द्व एकवत् स्यात् । यथा—मार्जारमूषकम् । अहिनकुलम् ॥

बिलार और मूसा । सांप और नौला । जिनका आपस में नित्य विरोध है उनको कहनेवाले शब्दों का द्वन्द्व एकवचन हो ॥ ९ ॥

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ १० ॥

शूद्राणाम्, अनि० नाम् । अबहिष्कृतानां शूद्राणां द्वन्द्व एकवत् स्यात् । यथा—तक्षाऽयस्कारम् ॥

बढ़ई और लुहार । अनिरवसित (जिनके पात्र या हाथ का द्विज जल पीसक्ते हैं) शूद्र वाचक शब्दोंका द्वन्द्व एकवचन हो ॥ १० ॥

गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ ११ ॥

इमानि यथोच्चारितानि साधूनि स्युः। यथा-गवाश्वम्। दासीदासमित्यादि॥

बैल और घोड़ा। गवाश्व आदि शब्द द्वन्द्व समास में नपुंसकलिङ्ग एक वचनान्त निपातित हैं॥ ११॥

विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम्॥ १२॥

वृक्षादीनां . शानां द्वन्द्वो वैकवत्स्यात्। यथा-प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः। रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः। कुशकाशम्, कुशकाशाः। व्रीहियवम्, व्रीहियवाः। दधिघृतम्, दधिघृते। गोमहिषम्, गोमहिषाः। शुकबकम्, शुकबकाः। अश्ववडवम्, अश्ववडवौ। पूर्वापरम्, पूर्वापरे। अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे॥ (फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तु धान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवदितिवाच्यम्)॥ बदराणि च आमलकानि च-बदरामलकम्॥

पाकुड़ और बड़। रुरु पृषत (मृग भेद)। कुश और काश। धान और जौ। दही और घी। बैल और भैंसे। तोता, बगुला। घोड़ा, घोड़ी। पहिले, दूसरे। नीचे, ऊपर के। वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि, अश्व, बडव, पूर्वापर और अधरोत्तर शब्द का विकल्प से द्वन्द्व एकवत् हो॥ १२॥

विप्रतिषिद्धं चाऽनधिकरणवाचि॥ १३॥

विरुद्धार्थानामद्रव्यवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वो वैकवत्स्यात्। यथा-शीतोष्णम्, शीतोष्णे॥

१-(२। ४। २७) इतिपूर्ववल्लिङ्गम्॥

सर्दी और गर्मी । अद्रव्यवाचक परस्पर विरोधवाले शब्दों का द्वन्द्व विकल्प से एकवचन हो ॥ १३ ॥

न दधिपय आदीनि ॥ १४ ॥

नैतान्येकवत्स्युः । यथा—दधिपयसी । वाङ्मनसे ॥

दही और दूध । वाणी और मन । दधि पय आदि का द्वन्द्व एकवचन न हो ॥ १४ ॥

अधिकरणैतावत्त्वे च ॥ १५ ॥

द्रव्यसङ्ख्यावगमे द्वन्द्वो नैकवत्स्यात् । यथा—दशदन्तोष्ठाः ॥

दस दांत और ओष्ठ । अधिकरण (वाच्य वस्तु) का परिमाण गम्यमान हो तो द्वन्द्व एकवचन न हो ॥ १५ ॥

विभाषा समीपे ॥ १६ ॥

अधिकरणैतावत्त्वस्य समीपे द्वन्द्वो वैकवत्स्यात् । यथा—उपदशं-दन्तोष्ठम् । उपदशाः-दन्तोष्ठाः ॥

लग भग नव या एकादश दांत और होठ । अधिकरण वस्तु के परिमाण की सीमा गम्यमान हो तो विकल्प से द्वन्द्व एकवत् हो ॥ १६ ॥

स नपुंसकम् ॥ १७ ॥

सः, नपुंसकम् । समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । यथा—पञ्चपूली । पाणिपादम् ॥ (अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियांभाष्यते) ॥ पञ्चपूली ॥ (आवन्तोवा) ॥ दशखट्वी, दश खट्वम् ॥ (अनो नलोपश्च वा द्विगुः स्त्रियाम्) ॥ सप्ततक्षी, सप्ततक्षम् ॥ (यात्रादिभ्यः प्रतिषेधो वाच्यः) ॥ पञ्च पात्रम्, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम् ॥

जिस को समाहार में एकवचन कहा है वह द्विगु वा द्वन्द्व समास नपुंसक लिङ्ग हो ॥ १७ ॥

अव्ययीभावश्च ॥ १८ ॥

अव्ययीभावः, च । अयं च नपुंसकं स्यात् । यथा--अधिस्त्रि । उपकुमारि ॥

अव्ययी भाव समास भी नपुंसकलिङ्ग हो ॥ १८ ॥

तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः ॥ १९ ॥

तत्पुरुषः, अन० रयः । नञ्समासं कर्मधारयं च विहायाऽन्यस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् । अधिकारोऽयम् ॥

नञ् और कर्मधारय समास को छोड़ कर शेष तत्पुरुष समास नपुंसकलिङ्ग हो १९

सञ्ज्ञायां कन्थोशीनरेषु ॥ २० ॥

सञ्ज्ञायाम्, कन्था, उ० पुं । कन्थान्तस्तत्पुरुषः क्लीबं स्यात् साचे दुशीनरदेशोत्पन्नायाः कन्थायाः सञ्ज्ञा । यथा--सुशमस्य अपत्यानि-सौशमयः । तेषां कन्था-सौशमिकन्थम् ॥

उशीनर देशीय कन्था की संज्ञा गम्यमान हो तो कन्थान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २० ॥

उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् २१

उपज्ञान्त उपक्रमान्तश्च तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्, तयोरुपज्ञायमानोपक्रमयमाणयोरादिः प्राथम्यं चेदाख्यातुमिष्यते । यथा--पाणिनेरुपज्ञा-पाणिन्युपज्ञं ग्रन्थः । नन्दोपक्रमं द्रोणः ॥

पाणिनिका ईजाद किया ग्रन्थ (अष्टाध्यायी) । नन्दका चलाया हुआ द्रोण ।

उपज्ञा और उपक्रम के आदि के कथन की इच्छा हो तो उपज्ञान्त और उपक्रमान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २१ ॥

छाया बाहुल्ये ॥ २२ ॥

छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् पूर्वपदार्थबाहुल्ये गम्ये। यथा--इक्षूणां छाया-इक्षुच्छायम् ॥

ईखकी छाया। पूर्वपदार्थ में बाहुल्य गम्यमान हो तो छायान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २२ ॥

सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा ॥ २३ ॥

राजपर्यायपूर्वः, अमनुष्यपूर्वश्च सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्। यथा -ईश्वरसभम् । (पर्यायस्यैवेष्यते) ॥ नेह, राजसभा। रक्षः सभम्। राजसभा। राक्षससभा ॥

राजपर्याय पूर्वक और अमनुष्य पूर्वक सभान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २३ ॥

अशाला च ॥ २४ ॥

सङ्घातार्थाया सभा तदन्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्। यथा—स्त्रीसभम् ॥

स्त्रियों का संघात। सङ्घात अर्थवाला सभान्त तत्पुरुष नपुंसक लिङ्ग हो ॥ २४ ॥

विभाषा सेनासुराच्छायाशाला-निशानाम् ॥ २५ ॥

एतदन्तस्तत्पुरुषो वा क्लीबं स्यात्। यथा—क्षत्रियसेनम्, क्षत्रियसेना। यवसुरम्, यवसुरा। कुड्यच्छायम्, कुड्यच्छाया। पाठशालम्, पाठशाला। श्वनिशम्, श्वनिशा ॥

क्षत्रियों की सेना। जौ की मदिरा। भित्तिकी छाया। पाठशाला। कुत्तों की

रात। सेना, सुरा, छाया, शाला और निशा जिनके अन्तमें हों ऐसा तत्पुरुष विकल्प से नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २५ ॥

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ॥ २६ ॥

अनयोः परपदस्यैव लिङ्गं स्यात्। यथा—कुक्कुटमयूर्यौ इमे। मयूरीकुक्कुटौ—इमौ। (द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः)॥ पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः-पञ्चकपालः। प्राप्तोजीविकाम्-प्राप्तजीविकः। अलं कुमार्य्यै-अलङ्कुमारिः। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः-निष्कौशाम्बिः॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में परके तुल्य लिङ्ग हो ॥ २६ ॥

पूर्ववदश्ववडवौ ॥ २७ ॥

पूर्ववत्, अश्ववडवौ। अश्ववडवयोः पूर्ववल्लिङ्गं स्यात्। यथा—अश्वश्च वडवा च-अश्ववडवौ। अश्ववडवान्। अश्ववडवैः॥

द्वन्द्व समास में अश्व और वडवा शब्द का पूर्ववत् लिङ्ग हो ॥ २७ ॥

हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि ॥ २८

हेम० रौ, अहो० त्रे, च, छं० सि। हेमन्तशिशिरौ, अहोरात्रे, इत्येतयोश्छन्दसि विषये पूर्ववल्लिङ्गं स्यात्। यथा—हेमन्तश्च शिशिरं च—हेमन्तशिशिरौ। अहोरात्रे॥

हेमन्त (मार्गशिर और पौष) और शिशिर (माघ और फाल्गुन)। दिनरात। छन्दोविषय में हेमन्त शिशिर और अहोरात्र शब्दों का पूर्ववत् लिङ्ग हो ॥ २८ ॥

रात्राह्नाहाः पुंसि ॥ २९ ॥

इत्येते पुंसि भाष्यन्ते। यथा—अहोरात्रः। पूर्वाह्णः। द्व्यहः। (सं-

इत्र्ख्या पूर्वं रात्रं क्लीबम्) ॥ द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् ॥

दिनरात । दिनकाप्रथमभाग । दो दिन । रात्र, अह्न और अह पुंल्लिङ्गमेंहों ॥ २९ ॥

अपथं नपुंसकम् ॥ ३० ॥

अपथशब्दो नपुंसकं स्यात् । यथा—अपथानि गाहते मूढः ।

मूर्ख कुमार्गों में चलता है । अपथशब्द नपुंसक लिङ्ग हो ॥ ३० ॥

अर्धर्चाः पुंसि च ॥ ३१ ॥

अर्द्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः । यथा—अर्धर्चः, अर्धर्चम् ॥

आधामन्त्र । अर्द्धर्च आदि शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में भी हों ॥ ३१ ॥

इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ३२

इदमः, अन्वादेशे, अश्, अनुदात्तः, तृतीयादौ । अन्वादेश विषयस्येदमोऽनुदात्तोऽशादेशः स्यात्तृतीयादौ विभक्तौ । यथा - इमकाभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता, अथो आभ्यामहरप्यधीतम् ॥

इनदोनों विद्यार्थियों ने रात दिन पढ़ा । अन्वादेश (कथित को पुनः कहने) में इदम्शब्द को अनुदात्त अश् आदेश हो तृतीयादि विभक्तिपरे होंतो ॥ ३२ ॥

एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ ॥ ३३ ॥

एतदः, त्रतसोः, त्रतसौ, च, अनुदात्तौ । अन्वादेशविषये एतदोऽश् स्यात्, स चाऽनुदात्तस्त्रतसोः परतः, तौ चाऽनुदात्तौ स्याताम् । यथा- एतस्मिन्नगरे सुखंवसामः । अथोऽत्राधीमहे अतो नगन्तास्मः ॥

इसनगर में सुखपूर्वक रहतेहैं और यहां पढ़तेहैं इसवास्ते यहां से न जायंगे । त्र और तस्प्रत्यय परे होंतो अन्वादेश में एतद्शब्द को अनुदात्त अश् आदेश हो और वे त्र और तस् अनुदात्त भी हों ॥ ३३ ॥

*—(५ । ३ । ७१) इत्यकच् ।

द्वितीयाटौस्स्वेनः ॥ ३४ ॥

द्वितीयाटौस्सु, एनः । द्वितीया, टा, ओस् इत्येतेषु परतः, इदमेतदोरनादेशः स्यादन्वादेशे।यथा–अनेनव्याकरणमधीतम्–एनंन्यायमध्यापयेति । अनेन छात्रेण रात्रिरधीता–एनेनाहरप्यधीतम् । अनयोः पवित्रं कुलम्-एनयोः प्रभूतं स्वमिति । एतदः । एतं छात्रं गणितमध्यापय-एनं पदार्थविद्यामप्यध्यापय । एतेन छात्रेण रात्रिरधीता-एनेनाहरप्यधीतम् । एतयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्–एनयोः प्रभूतं यशः ॥ (एनदिति नपुंसकैकवचने वाच्यम्) ॥ इदं-कुण्डमानय–प्रक्षालयैनत्, परिवर्त्तयैनत् ॥

इसने व्याकरण पढ़लिया-इसको न्याय पढ़ा। इन दोनों का पवित्र कुल और अधिक धन है । इस छात्रको गणित पढ़ा और इसको पदार्थ विद्या भी पढ़ा। इस छात्रने रात पढ़ा और दिन में भी पढ़ा । इन दोनों विद्यार्थिओं का शोभन शील है और इन का अधिक यश भी है । द्वितीया, टा और ओस् परे हो तो अन्वादेश में इदम् और एतद् शब्द को अनुदात्त एन आदेश हो ॥ ३४ ॥

आर्द्धधातुके ॥ ३५ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहां से (२ । ४ । ९६) सूत्रतक आर्द्ध धातु का अधिकार है ॥ ३५ ॥

अदोजग्धिर्ल्यप्तिकिति ॥ ३६ ॥

अदः, जग्धिः, ल्यप्तिकिति । ल्यबितिलुप्तसप्तमीकम् । अदोजग्धिः स्याल्ल्यपितादौकिति च । यथा–विजग्ध्य । जग्धम् ॥

खाकर । खायाहुआ । ल्यप् और तकारादि कित् प्रत्यय परे हों तो अद् धातु को जग्धि आदेश हो ॥ ३६ ॥

लुङ्सनोर्घस्लृ ॥ ३७ ॥

लुङ्सनोः, घस्लृ । अदो घस्लादेशः स्यात्, लुङि सनि च परे । यथा—अघसत् । जिघत्सति ॥

उसने खाया । वह खाना चाहता है । लुङ् और सन् परे हों तो अद् धातु को घस्लृ आदेश हो ॥ ३७ ॥

घञपोश्च ॥ ३८ ॥

घञपोः, च । अदो घस्लादेशः स्यात्, घञि, अपि च परे । यथा—घासः । प्रघसः ॥

गौ आदि के खाने के तृणविशेष । घञ् और अप प्रत्यय परे हों तो अद् धातु को घस्लृ आदेश हो ॥ ३८ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ३९ ॥

छन्दसि विषये बहुलमदो घस्लादेशः स्यात् । यथा—घस्तान्नूनम् । सग्धिश्च मे ॥

निश्चय खाया । छन्द विषय में अद् धातु को बहुल करके घस्लृ आदेश हो ॥ ३९ ॥

लिट्यन्यतरस्याम् ॥ ४० ॥

लिटि, अन्यतरस्याम् । अदो घस्लृ वाऽऽदेशः स्याल्लिटि । यथा—जघास । आद ॥

उसने खाया । लिट् लकार परे हो तो अद् धातु को विकल्प से घस्लृ आदेश हो ॥ ४० ॥

वेञो वयिः ॥ ४१ ॥

वेञः, वयिः । वेञो वयिर्वा स्याल्लिटि । यथा—उवाय, ऊयतुः, ऊयुः । ऊवतुः, ऊवुः । ववौ, ववतुः, ववुः ॥

बस्त्र विनने का ताना तानना । लिट् परे हो तो वेञ् धातु को विकल्प से वयि आदेश हो ॥ ४१ ॥

हनो वध लिङि ॥ ४२ ॥

हनः, वध, लिङि । हन्तेर्वधादेशः स्यादार्द्धधातुक विषये, लिङि परे । वधादेशोऽदन्तः । यथा-वध्यात्, वध्यास्ताम्, वध्यासुः ॥

मारे । आर्द्धधातुकविषय में हन् धातु को वध आदेश हो लिङ् लकार परे हो तो ॥ ४२ ॥

लुङि च ॥ ४३ ॥

लुङि च परे हन्तेर्वधादेशः स्यात् । यथा-अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः ॥

मारा । लुङ् लकार परे हो तो हन् धातु को वध आदेश हो ॥ ४३ ॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥

आत्मनेपदेषु, अन्यतरस्याम् । हनो वधादेशो वा स्याल्लुङ्यात्मनेपदेषुपरेषु । यथा-आवधिष्ट, आवधिषाताम्, आवधिषत । आहत, आहसाताम्, आहत ॥

आत्मनेपद में हन् धातु को विकल्प से वध आदेश हो लुङ् लकार परे हो तो ॥ ४४ ॥

इणो गा लुङि ॥ ४५ ॥

इणः, गा, लुङि । स्पष्टम् । यथा-अगात्, अगाताम्, अगुः ॥

गया । लुङ् परे हो तो इण् धातु को गा आदेश हो ॥ ४५ ॥

णौ गमिरबोधने ॥ ४६ ॥

१ (२ । ४ । ७७) इति सिचोलुक् ।

णौ, गमिः, अ॰ ने। इणो गमिः स्याण्णौ परेयथा-गमयति। बोधने तु प्रत्याययति॥

णिच् प्रत्यय परे हो तो अबोधनार्थ इण् धातु को गमि आदेश हो॥ ४६॥

सनि च ॥ ४७॥

इणो गमिः स्यात्सनिपरे नतु बोधने। यथा-जिगमषति। बोधने-प्रतीपिषति-अर्थान्॥

जाना चाहता है। अर्थों की प्रतीति कराना चाहता है। सन् परे हो तो अबोधनार्थ इण् धातु को गमि आदेश हो॥ ४७॥

इङश्च ॥ ४८॥

इङः, च। इङो गमिः स्यात्सनि परे। यथा-अधिजिगांसते॥

वह पढ़ना चाहता है। सन् परेहो तो इङ् धातु को भी गमि आदेश हो॥४८॥

गाङ् लिटि ॥ ४९॥

इङो गाङ् स्याल्लिटि। यथा-अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे॥

वह पढ़ा। लिट् परे हो तो इङ् धातु को गाङ् आदेश हो॥ ४९॥

विभाषा लुङ्लृङोः ॥ ५०॥

लुङि लृङि च परत इङो गाङ् वा स्यात्। यथा-अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्, अध्यगीषत। अध्यैष्ट, अध्यैषाताम्. अध्यैषत। लृङि। अध्यगीष्यत, अध्यैष्यत॥

लुङ् और लृङ् परे हो तो इङ् धातु को विकल्प से गाङ् आदेश हो॥५०॥

१-(१।४।१६) इतीत्वम्।

णौ च संश्चङोः ॥ ५१ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ इङो वा गाङादेशः स्यात् । यथा-अधिजिगापयिषति, अध्यापिपयिषति । चङि । अध्यजीगपत्, अध्यापिपत् ॥

पढ़ाना चाहता है । पढ़ाताथा । सन् और चङ् परक णिच्परे हो तो इङ् धातु को विकल्प से गाङ् आदेश हो ॥ ५१ ॥

अस्तेर्भूः ॥ ५२ ॥

अस्तेः, भूः । अस्तेर्भूः स्यात् । यथा-भविता । भवितव्यम् । भवितुम् ॥

होगा । होनाचाहिये । होनेको । अस्धातु को भू आदेशहो ॥ ५२ ॥

ब्रुवो वचिः ॥ ५३ ॥

ब्रुवः, वचिः । ब्रुवोवचिरादेशः स्यात् । यथा-वक्ता । वक्तुम् । वक्तव्यम् ॥

कहने वाला । कहनेको । कहना चाहिये । ब्रूञ्धातु को वचि आदेशहो ॥ ५३ ॥

चक्षिङः ख्याञ् ॥ ५४ ॥

चक्षिङःख्याञादेशस्स्यात् । यथा-आख्याता । आख्यातुम् । आख्यातव्यम् । (ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते) ॥ आक्शाता । आक्शातुम् । आक्शातव्यम् ॥ (वर्जनेख्शाञ्नेष्ठः) ॥ दुर्जनाः संचक्ष्याः । वर्जनीया इत्यर्थः ॥

वक्ता । कहने को । कहना चाहिये । चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेशहो ॥ ५४ ॥

वा लिटि ॥ ५५ ॥

लिटिपरे चक्षिङःख्याञादेशो वा स्यात् । यथा—आचख्यौ । आचचक्षे ॥

कहाथा । लिट् लकारपरे होतो चक्षिङ् धातु को विकल्पसे ख्याञ् आदेशहो ।५५।

अजेर्व्यघञपोः ॥५६॥

अजेः, वी, अघञपोः । घञमपंच विहाय, अजेर्वी इत्ययमादेशः स्यात् । यथा-प्रवायकः । प्रवणीयः । (वलादावार्धधातुके वेष्यते) ॥ प्रवेता, प्राजिता । प्रवेतुम्, प्राजितुम् ॥

फेंकने वाला । फेंकने योग्य । घञ् और अप् प्रत्यय को छोड़ के अज धातु को वी आदेशहो ॥ ५६ ॥

वा यौ ॥ ५७ ॥

अजेर्वी वादेशः स्याद्यौ । यथा--प्रवयणः, प्राजनः ॥

दण्ड । युप्रत्यय परे हो तो अज धातु को विकल्प से वी आदेश हो ॥ ५७ ॥

ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः ५८

ण्य० तः, यूनि, लुक्, अणिञोः । ण्यप्रत्ययान्तात्, क्षत्रियगोत्रप्रत्ययान्ताद्, ऋष्यभिधायिनो गोत्रप्रत्ययान्ताद्, ञितश्च, परयोर्युवाभिधायिनोः अणिञो लुक्स्यात् । यथा—कौरव्यः पिता, कौरव्यः पुत्रः । श्वाफल्कः पिता, श्वाफल्कः पुत्रः । वासिष्ठः पिता, वासिष्ठः पुत्रः । तैकायनिः पिता, तैकायनिः पुत्रः ॥

कुरुगोत्रीय (ब्राह्मण) पिता या पुत्र । श्वफल्क का पिता या पुत्र । वसिष्ठका पिता या पुत्र । तिकका पिता या पुत्र । ण्यप्रत्ययान्त, क्षत्रियगोत्रप्रत्ययान्त, ऋष्यभिधायी गोत्रप्रत्यान्त और ञित् प्रत्ययान्त से युवापत्य में विहित अण् और इञ् प्रत्यय का लुक्हो ॥ ५८ ॥

पैलादिभ्यश्च ॥ ५९ ॥

पै० भ्यः, च । एभ्यो युवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । (पीलाया वा-इत्यण्) । तस्मात्--(अणोद्व्यचः इतिफिञ्) । तस्यलुक्-यथा-पैलःपिता पुत्रश्च । (तद्राजाच्चाणः) ॥ द्व्यञ् मगधेत्यण् अन्तादाङ्गशब्दाद् (अणोद्व्यचः) इति फिञो लुक्-आङ्गः पिता-पुत्रश्च ॥

पैलवंशीय पितापुत्र । पैल आदिकों से परे युवप्रत्ययका लुक् हो ॥ ५९ ॥

इञः प्राचाम् ॥ ६० ॥

गोत्रे य इञ् तदन्ताद्युव प्रत्ययस्य लुक् स्यात् तच्चेद् गोत्रं प्राचां भवति । यथा-पन्नागारस्यापत्यम्-(अत इञ्) । (यञिञोश्च)-इतिफक् । पन्नागारिः--पितापुत्रश्च ॥

प्राग्देशीय गोत्रमें विहित जो इञ् तदन्त से विहित युव प्रत्ययका लुक्हो ॥ ६० ॥

न तौल्वलिभ्यः ॥ ६१ ॥

तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुक् नस्यात् । यथा-तौल्वलिः-पिता तौल्वलायनः पुत्रः ॥

तौल्वलि (गोत्रीय) पिता, पुत्र । तौल्वलि आदि शब्दों से परे युव प्रत्ययका लुक् नहो ॥ ६१ ॥

तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ॥ ६२ ॥

तद्राजस्य, बहुषु, तेन, एव, अस्त्रियाम् । बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् स्यात् तदर्थकृते बहुत्वे, नतु स्त्रियाम् । यथा-अङ्गाः । वङ्गाः ॥

अङ्गदेशके राजे। वङ्गदेशके राजे। यदि उस तद्राजसंज्ञक प्रत्यय से ही बहुवचन हुआ हो तो स्त्री लिङ्ग भिन्न बह्वर्थ में वर्त्तमान तद्राजसंज्ञक प्रत्ययका लुक् हो। ६२॥

यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ ६३ ॥

यस्यादिभ्यः, गोत्रे। एभ्योऽपत्य प्रत्ययस्य लुक् स्यात् तत्कृतेबहुत्वे, नतु स्त्रियाम्। यथा—यस्काः ॥

यस्क (गोत्रीय सन्तान)। स्त्री लिङ्ग भिन्न तत्कृत बहुवचन में वर्त्तमान यस्क आदि शब्दों से विहित गोत्र प्रत्यय का लुक् हो ॥ ६३ ॥

यञञोश्च ॥ ६४ ॥

यञञोः, च। गोत्रे यञजन्त मञन्तं च तदवयवयारतयोर्लुक् स्यात्तत् कृते बहुत्वे नतु स्त्रियाम्। यथा—गर्गाः। विदाः ॥

गर्ग (गोत्रीय सन्तान)। विद (गोत्रीय सन्तान)। स्त्री लिङ्ग भिन्न तत्कृत बहुवचनमें वर्त्तमान यञ् और अञ् गोत्र प्रत्ययों का लुक् हो ॥ ६४ ॥

अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च ॥ ६५ ॥

अ० भ्यः, च। एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् स्यात् तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्। यथा—अत्रयः। भृगवः। कुत्साः। वसिष्ठाः। गोतमाः। अङ्गिरसः ॥

अत्रिगोत्रीय सन्तान। भृगुगोत्रीय सन्तान। कुत्सगोत्रीय सन्तान। वसिष्ठगोत्रीय सन्तान। गोतमगोत्रीय सन्तान। अङ्गिरगोत्रीय सन्तान। अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, अङ्गिरस् शब्दों से परे स्त्रीलिङ्ग भिन्न तत्कृत बहुवचन में वर्त्तमान गोत्रप्रत्यय का लुक् हो ॥ ६५ ॥

बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु ॥ ६६ ॥

बहचः, इञः, प्रा० तेषु । बह्वचः प्रातिपदिकाद् य इञ् विहितः प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च वर्त्तते तस्य बहुषु लुक् स्यात् । यथा–पन्नागाराः । युधिष्ठिराः ॥

पन्नागारगोत्रीय सन्तान । युधिष्ठिरगोत्रीय सन्तान । बह्वच् प्रातिपदिक से विहित प्राच्यगोत्र और भरतगोत्र में जो इञ् उसका बहुत्व में लुक् हो ॥ ६६ ॥

न गोपवनादिभ्यः ॥ ६७ ॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुङ् न स्यात् । बिदाद्यन्तर्गणोऽयम् । यथा–गौपवनाः ॥

गोपवनगोत्रीय सन्तान । गोपवनादिकों से विहित गोत्रप्रत्यय का लुक् न हो॥६७॥

तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ॥ ६८ ॥

तिक० भ्यः, द्वन्द्वे । एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुक् स्याद् द्वन्द्वे । यथा–तैकायनश्च-कैतवायनश्च । तिकादिभ्यः फिञ् तस्य लुक्-तिककितवाः ॥

तिक और कितगोत्रीय सन्तान । तिकादि, कितवादिकों से परे द्वन्द्व समास में गोत्र प्रत्यय का बह्वर्थ में लुक् हो ॥ ६८ ॥

उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥ ६९ ॥

उ० भ्यः, अन्य० स्याम्, अद्वन्द्वे । एभ्योगोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुग्वा स्याद् द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च । यथा–औपकायनाश्च-लामकायनाश्च । (नडादिभ्यः फक्) । तस्य लुक्–उपकलमकाः, औपकायन लामकायनाः, लमकाः, लामकायनाः ॥

उपक और लमकगोत्रीय सन्तान । उपक आदिक शब्दों से परे द्वन्द्व और अद्वन्द्व समास में गोत्रप्रत्यय का बहुत्व में विकल्प से लुक् हो ॥ ६९ ॥

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् ॥ ७० ॥

आ० योः, अग० नच् । एतयोरवयवस्य गोत्रप्रत्ययस्याऽणो यञश्च बहुषु लुक् स्यात्--अवशिष्टस्य प्रकृतिभागस्य यथा सङ्ख्यमगस्ति, कुण्डिनच्, इमावादेशौस्याताम् । यथा--अगस्तयः । कुण्डिनः ॥

आगस्त्य गोत्रीय सन्तान । कौण्डिन्य गोत्रीय सन्तान । आगस्त्य और कौण्डिन्यशब्दसे परे बह्वर्थ में गोत्र प्रत्यय का लुक् हो और उक्तशब्दों को क्रम से अगस्ति और कुण्डिनच् आदेशहों ॥ ७० ॥

सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ॥ ७१ ॥

सुपः, धा० योः । एतयोर वयवस्यसुपो लुक् स्यात् ॥ यथा--पुत्रीयति । कष्टश्रितः ॥

धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुपका लुक्हो ॥ ७१ ॥

अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ ७२ ॥

लुक्स्यात् । यथा—अत्ति । हन्ति ॥

अद आदि धातुओं से परे शप् का लुक् हो ॥ ७२ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७३ ॥

छन्दसि विषये शपो बहुलं लुक्स्यात् । यथा—वृत्रं हनति वृत्रहा । अहिः शयते । अदादिभिन्नेऽपि क्वचिल्लुक् । त्राध्वं नो देवाः॥

सूर्य बादल को नष्ट करता है। सर्प सोता है । देवता हमारी रक्षाकरें । छन्द विषय में शप् का लुक् बहुल करके हो ॥ ७३ ॥

यङोऽचि च ॥ ७४ ॥

यङः, अचि, च । अचिपरे यङो बहुलं लुक् स्यात् । यथा--लोलुवः । पोपुवः ॥

अच् परे हो तो यङ् का लुक् बहुलकरके हो ॥ ७४ ॥

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥ ७५ ॥

शपः श्लुः स्यात् । यथा-जुहोति ॥

हवन करता है । जुहोति (हु) आदि से परे शप् को श्लु आदेश हो ॥७५ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७६ ॥

छन्दसिविषये बहुलं शपः श्लुः स्यात् । यथा-दाति । अन्यत्रापि पूर्णं विवष्टि ॥

देता है । पूर्ण कहता है । छन्द विषय में शप् को बहुल करके श्लु आदेश हो ७६

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥ ७७ ॥

एभ्यः सिचो लुक्स्यात् । यथा-अगात् । अस्थात् । घु, अदात् । अपात् । अभूत् ॥

वह गया । वह ठहरा । दिया । पिया । हुआ । गाति, स्था, घुसञ्ज्ञक, पा, और भू धातु से परे सिच्का लुक् हो परस्मैपद विषय में ॥ ७७ ॥

विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥ ७८ ॥

परस्मैपदेषु एभ्यः सिचो लुग्वा स्यात् । यथा-अघ्रात्, अघ्रा-

सीत् । अघात्, अघासीत् । अशात्, अशासीत् । अच्छात्, अच्छासीत् । असात्, असासीत् ॥

उसने सुगन्ध लिया । उसने पिआ । उसने छोटा किया । उसने छेदा । उसने समाप्त किया । परस्मैपद विषय में घ्रा, धेट्, शा, छा, और सा धातु से परे सिच् प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो ॥ ७८ ॥

तनादिभ्यस्तथासोः ॥ ७९ ॥

तनादिभ्यः, तथासोः । तनादेः सिचो लुग्वा स्यात्तथासोः परतः । यथा—अतत, अतनिष्ट । अतथाः, अतनिष्ठाः ॥

उसने । तूने विस्तारित किया । त और थास् परे हो तो तनादि धातुओं से परे सिच् का विकल्प से लुक् हो ॥ ७९ ॥

मन्त्रेघसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥ ८० ॥

मन्त्रे, घस०भ्यः, लेः । मन्त्रे एभ्यो ले लुक्स्यात् । यथा—(घस्लृ, अदने) । अक्षन् । लोके, अघसन् । (ह्वृ, कौटिल्ये) । माह्वाः । लोके, अह्वाः । (णश, अदर्शने) । प्रणक् । लोके, अनशत् । वृ इति वृङ् वृञोः सामान्येन ग्रहणम् । आवाः । लोके, अवारीत् । (दह, भस्मीकरणे) । अधक् । अधाक्षील्लोके । (प्रा, पूरणे) । आप्राः । अप्रासील्लोके । (वृञ्, वरणे) । वर्क् । अवर्चील्लोके । (डुकृञ्, करणे) अक्रः, बहुवचनेऽक्रन् । (गम्लृ, गतौ) । अग्मन् । अगमँल्लोके । (जनी, प्रादुर्भावे) । अज्ञत । अजनि, अजनिष्ट लोके ॥

मन्त्र विषय में घस, ह्वर, णश, वृ, दह, आप्, वृञ्, कृ, गमि और जनि धातुओं से परे लि (लुङ् का च्लि) का लुक् हो ॥ ८० ॥

आमः ॥ ८१ ॥

आमः परस्य लेर्लुक्स्यात् । यथा—ईहाञ्चक्रे ॥

चेष्टाकी । आम् से परे लि का लुक् हो ॥ ८१ ॥

अव्ययादाप्सुपः ॥ ८२ ॥

अव्ययात्, आप्सुपः । अव्ययादुत्तरस्यापः सुपश्च लुक्स्यात् । यथा--तत्र शालायाम् । कृत्वा ॥

वहां शाला में । करके । अव्यय से परे आप् और सुप् का लुक् हो ॥ ८२ ॥

नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः ॥ ८३ ॥

न, अव्ययीभावात्, अतः, अम्, तु, अपञ्चम्याः । अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक्, तस्य पञ्चम्याविना अमादेशश्च स्यात् । यथा--उपकुम्भं तिष्ठति । उपकुम्भं पश्य ॥

घड़े के पास खड़ा है । घड़े के पास देख । अदन्त अव्ययी भावसे परे सुप् का लुक् न हो और पञ्चमी विभक्ति भिन्न सुप् को अम् आदेश हो ॥ ८३ ॥

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ ८४ ॥

तृतीयासप्तम्योः, बहुलम् । अदन्तादव्ययी भावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात् । यथा--उपकुम्भम्, उपकुम्भेन । उपकुम्भम्, उपकुम्भे । बहुलग्रहणात् सुमद्रमुन्मत्तगङ्गमित्यादौ सप्तम्या नित्यमम्भावः ।

अदन्त अव्ययीभाव से परे तृतीया और सप्तमी विभक्ति को बहुल करके अम् आदेश हो ॥ ८४ ॥

लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥ ८५ ॥

लुडादेशस्य प्रथमपुरुषस्य परस्मैपदस्याऽऽत्मने पदस्य च डा, रौ, रस्, इमे क्रमात् स्युः । यथा--कर्त्ता, कर्त्तारौ, कर्त्तारः । आत्मने पदस्य । अध्येता, अध्येतारौ, अध्येतारः ॥

लुट् लकारके प्रथम पुरुष को डा, रौ और रस् आदेश हों ॥ ८५ ॥

इति जीवाराम शर्म्मकृतायां पाणिनि सूत्रवृत्तौ द्वितीयाऽध्यायस्य चतुर्थपादः समाप्तश्च द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथतृतीयाऽध्यायारम्भः ।

प्रथमःपादः ।

प्रत्ययः ॥ १ ॥

अधिकारोऽयम् । आपञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः ॥

यहां से लेकर पञ्चम अध्याय तक प्रत्यय का अधिकार है ॥ १ ॥

परश्च ॥ २ ॥

परः, च । अयमप्यधिकारः । प्रत्ययःपरः स्यात् ॥

यह भी अधिकार है कि प्रत्यय परे हो ॥ २ ॥

आद्युदात्तश्च ॥ ३ ॥

आ० त्तः, च । अमप्यधिकारः । प्रत्ययस्याद्युदात्तः स्यात् । यथा—कर्त्तव्यम् ॥

करनाचाहिये । यह भी अधिकार है कि प्रत्यय का आदि उदात्त हो ॥ ३ ॥

अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ ४ ॥

सुपः पितश्च प्रत्यया अनुदात्ताः स्युः । यथा—दृशदः । पठति ॥

पत्थर । पढ़ता है । सुप् और तिप् प्रत्यय अनुदात्त हों ॥ ४ ॥

गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् । यथा-जुगुप्सते । तितिक्षते । चिकित्सति ॥

निन्दाकरना चाहता है । क्षमा करना चाहता है । चिकित्सा करना चाहता है। गुप तिज और कित धातु से सन् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

मान्बधदान्शान्भ्योदीर्घश्चाभ्यासस्य ६

मान्० भ्यः, दीर्घः, च, अ०स्य । एभ्यो धातुभ्यः सन्नभ्यासस्य च-दीर्घादेशः स्यात् । यथा-मीमांसते । बीभत्सते । दीदांसते । शीशांसते ॥

मीमांसाकरताहै । बांधना चा० । काटना चा० । पैनाकरना चा० । मान्, बध, दान और शान धातुसे सन् प्रत्यय हो और इनके अभ्यासको दीर्घादेशहो ॥ ६ ॥

धातोःकर्मणःसमानकर्तृकादि-च्छायांवा ॥ ७ ॥

धातोः, कर्मणः, स०र्तृ, इ०म्, वा । इषि कर्मको यो धातु रिषणैव समान कर्तृकस्तस्म दिच्छायामर्थे वा सन् स्यात् । यथा-कर्त्तुमिच्छति-चिकीर्षति । गन्तुमिच्छति-जिगमिषति । (आशङ्कायामुपसङ्ख्यानम्) । यथा-शङ्के पतिष्यति कूलम् । श्वामुमूर्षति । (इच्छासन्नन्तात्प्रतिषेधोवाच्यः) । यथा-चिकीर्षितुमिच्छति ॥

करना चाहता है । जाना चाहता है । समानकर्तृक इच्छाके कर्मोपपद धातुसे इच्छा अर्थ में विकल्पसे सन् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

सुप आत्मनः क्यच् ॥ ८ ॥

सुपः, आत्मनः, क्यच् । इषिकर्मणा एषितुरेवात्म सम्बन्धिनः सुब-

न्ता दिच्छायामर्थे वाक्यच् स्यात् । यथा–पुत्रमिच्छति–पुत्रीयति ॥

पुत्रकी इच्छा करता है । इच्छा कर्म सुबन्त से आत्मा के इच्छार्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

काम्यच्च ॥ ९ ॥

काम्यच्, च । आत्मेच्छायां सुबन्तकर्मणः काम्यच् च स्यात् । यथा–वस्त्रमात्मन इच्छति–वस्त्रकाम्यति ॥

वस्त्र की इच्छा करता है । इच्छा कर्म सुबन्त से आत्मा के इच्छार्थ में काम्यच् प्रत्यय भी हो ॥ ९ ॥

उपमानादाचारे ॥ १० ॥

उ०त्, आ० रे । उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे वा क्यच् स्यात् । यथा–पुत्रमिवाचरति–पुत्रीयतिच्छात्रम् । (अधिकरणाच्चेति वाच्यम्) । यथा–प्रासादीयति–कुट्यां रङ्कः । कुटीयते–प्रासादे ॥

विद्यार्थी से पुत्रके तुल्य वर्त्ताव करता है । उपमान वाची सुबन्त कर्म से आचार अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय हो ॥ १० ॥

कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ ११ ॥

कर्त्तुः, क्यङ्, सलोपः, च । उपमानात् कर्त्तुः सुबन्ता दाचारेऽर्थे वा क्यङ् स्यात् । सान्तस्य तु कर्त्तृ वाचकस्य लोपो वा स्यात् । (ओजसोऽप्सरसो नित्य मितरेषां विभाषया) ॥ यथा–पण्डित इवाचरति मूर्खः-पण्डितायते । ओजायते । अप्सरायते । यशायते, यशस्यते । विद्वायते, विद्वस्यते । त्वद्यते । मद्यते । अनेकार्थत्वे तु-

युष्मद्यते, अस्मद्यते ॥ (क्यङ् मानिनोश्च) । कुमारीवाचरति-कुमारायते । हरिणीवाचरति--हरितायते । गुर्वीव-गुरूयते । सपत्नीव--सपत्नायते, सपतीयते, सपत्नीयते । युवतिरिव-युवायते । पट्वी मृद्व्याविव-पट्वीमृद्वयते । (न कोपधायाः)-पाचिकायते ॥ (आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब वा वक्तव्यः) ॥ यथा-अवगल्भते, अवगल्भायते । क्लीबते, क्लीबायते । होडते, होडायते ॥ (सर्वप्रातिपदिकेभ्य इत्येके) ॥ यथा-अश्व इवाचरति-अश्वायते । गर्दभायते । अश्वति । गर्दभति ॥

उपमान वाची सुबन्त कर्त्ता से आचार अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय और सकार का लोप भी विकल्प से हो ॥ ११ ॥

भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥१२

भृ० भ्यः, भुवि, अच्वेः, लोपः, च, हलः । अभूत तद् भाव विषयेभ्यो भृशादिभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् स्यात्, हलन्तानाञ्च लोपः । यथा-अभृशो भृशोभवति-भृशायते सुमनायते ॥

शीघ्र कारी होता है। प्रसन्न होताहै । अभूत तद् भाव विषयक भृशादि प्रातिपदिकों से भू के अर्थमें क्यङ् प्रत्यय हो और हलन्तों के अन्तका लोप हो॥१२॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ १३ ॥

लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च भवत्यर्थे क्यष् स्यात् । यथा-लोहितायति, लोहितायते । पटपटायति, पटपटायते । (लोहित डाज्भ्यः क्यष् वचनं भृशादिष्वितराणि) ॥ यथा--अनीलो नीलो भवति-नीलायते, नीलायति पटः । अलोहिनी लोहिनी भवति-लोहिनीयति, लोहिनीयते खट्वा । अहरितं हरितं भवति--हरितायति, हरितायते शाटकम् ॥

१ (७ । ४ । २५) इति दैर्घ्यम् ॥

लाल होता है। पटर करता है। लोहित आदि और डाजन्त प्रातिपदिकों से भू के अर्थ में क्यष् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

कष्टाय क्रमणे ॥ १४ ॥

चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्। यथा--कष्टाय क्रमते-कष्टायते। पापं कर्त्तुमुत्सहते इत्यर्थः ॥ (सत्त्रकक्षकष्ट कृच्छ्र गहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वाच्यम्)॥ कण्वम्-पापम्। सत्त्रादयोवृत्तिविषये पापार्थाः। तेभ्यो द्वितीयान्ते-भ्यश्चिकीर्षायां क्यङ् स्यात्। यथा--पापं चिकीर्षतीत्यस्वपद विग्रहः-सत्त्रायते, कक्षायते, कष्टायते, कृच्छ्रायते, गहनायते ॥

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्रमण अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो ॥ १४ ॥

कर्म्मणोरोमन्थ तपोभ्यां वर्त्तिचरोः। १५।

क० णोः,रो० भ्याम्, व० रोः। रोमन्थ तपोभ्यां कर्मभ्यां क्रमेण-वर्त्तनायां चरणे, चार्थे क्यङ् स्यात्। यथा-रोमन्थं वर्त्तयति-रोमन्थायते गौः। (हनुचलन इतिवाच्यम्)॥चर्वितस्यापकृष्य पुनश्चर्वणमित्यर्थः। अपानप्रदेशान्निसृतं द्रव्यमिहरोमन्थः। तदश्नातीत्यर्थः॥ (तपसः परस्मैपदं च)। तपश्चरति-तपस्यति ॥

बैल जुगाली करता है। तप करता है। वृतु और चर धातुओं के रोमन्थ और तप कर्मों से क्यङ् प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ॥ १६ ॥

बा० भ्याम्, उ० ने। उद्वमनेऽर्थे आभ्यां कर्मभ्यां क्यङ् स्यात्। यथा-बाष्पमुद्वमति-बाष्पायते। ऊष्मायते॥ (फेनाच्चेति वाच्यम्)। फेनायते ॥

भाफ ऊपर को निकलता है। गर्मी ऊपर को आती है। उद्वमन अर्थ में बाष्प और ऊष्म कर्म्मों से क्यङ् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥ १७ ॥

एभ्यः कर्म्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात्। यथा-शब्दं करोति--शब्दायते। वैरायते। कलहायते। अभ्रायते। कण्वायते। मेघायते। पक्षे-तत्करोतीति णिजपीष्यत इतिन्यासः। शब्दयति। (सुदिन दुर्दिननीहारेभ्यश्च)। यथा--सुदिनायते। दुर्दिनायते। नीहारायते ॥

शब्द करता है। वैर को करता है। झगड़े को करता है। बादल को करता है। पाप को करता है। धूम को करता है या बादल को करता है। शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ शब्द से करने अर्थ में क्यङ्प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

सुखादिभ्यः कर्त्तृवेदनायाम् ॥ १८ ॥

कर्त्तृवेदनायामर्थे सुखादिभ्यः कर्मभ्यः क्यङ् स्यात्। यथा-सुखं वेदयते-सुखायते। दुःखं वेदयते-दुःखायते ॥

सुखी होता है। दुखी होता है। कर्त्तृवेदनार्थ में (सुखादि कर्त्ता को प्राप्त होने में) सुखादि कर्म सुबन्तों से करण (करना) अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ॥ १९ ॥

करणे इत्यनुवृत्तेः क्रिया विशेषे-पूजायां, परिचर्यायामाश्चर्ये च-क्यच् स्यात्। यथा-नमस्यति-बुधान्। पूजयतीत्यर्थः। वरिवस्यति-गुरून्। शुश्रूषते इत्यर्थः। चित्रीयते। विस्मयते इत्यर्थः। विस्मापयते। इतीतर ॥

नमस्, वरिवस् और चित्रङ् कर्म सुबन्तों से करण अर्थ में क्यच् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥ २० ॥

पु०रात्, णिङ् । पुच्छ भाण्ड चीवर इत्येभ्यो णिङ् स्यात् करण विषये । (पुच्छा दुदसने, व्यसने, पर्यसने च) ॥ विविधं विरुद्धं वोत्क्षेपणम्—व्यसनम् । यथा--विपुच्छयते । उत्पुच्छयते । परिपुच्छयते । (भाण्डात् समाचयने) ॥ सम्भाण्डते । भाण्डानि समाचिनोति । राशी करोतीत्यर्थः । (चीवरा दर्जने परिधाने-च) । यथा- सञ्चीवरयते--भिक्षुः । चीवरा ण्यर्जयति, परिधत्तेवेत्यर्थः ॥

पुच्छ (पूंछ) भाण्ड (पात्र) और चीवर (वस्त्र) कर्म सुबन्तों से करण अर्थ में णिङ् प्रत्यय हो ॥ २० ॥

मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहल कलकृततूस्तेभ्योणिच् ॥२१॥

मु० स्तेभ्यः, णिच् । मुण्डादिभ्यः सुबन्तकर्मभ्यः करणेऽर्थे-णिच् स्यात् । यथा--मुण्डंकरोति--मुण्डयति । मिश्रयति । श्लक्ष्णयति । लवणयति ॥ (व्रताद्भोजनतन्निवृत्त्योः) ॥ पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति ॥ (वस्त्रात्समाच्छादने) ॥ संवस्त्रयति । (हल्यादिभ्योग्रहणे) ॥ (हलिकल्योरदन्तत्वं च निपात्यते) हलिं कलिं वा गृह्णाति--हलयति, कलयति । कृतं गृह्णाति--कृतयति । तूस्तानि विहन्ति-वितूस्तयति । तूस्तम् केशाइत्येके । जटीभूताः कशाइतीतरे । पापमित्यपरे ॥

मुण्डन करता है । मिलान करता है । चिकना करता है । नमकीन करताहै । दूध का नियम करता है । कपड़े से ढकता है हलको पकड़ता है ।

मधुर शब्द करता है। सत्य ग्रहण करता है। बालों को साफ करता है। मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत और तूस्त कर्म्म सुबन्तों से करण अर्थ में णिच् प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

धातोरेकाचोहलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ॥ २२ ॥

धातोः, एकाचः, हलादेः, क्रि० रे, यङ्। एकाचो हलादेर्धातोर्वर्त्तमानात् क्रियासमभिहारे यङ् स्यात्। यथा -पुनः पुनः पठति--पापठ्यते। भृशं ज्वलति-जाज्वल्यते॥ (सूचिसूत्रिमूत्र्य ट्यर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् वाच्यः)। आद्यास्त्रयश्चुरादा वदन्ताः। यथा--सो सूच्यते। सोसूत्र्यते। मोमूत्र्यते। अटाट्यते। अरार्यते। अशाश्यते। प्रोर्णोनूयते ॥

वार२ पढ़ता है। लगातार जलता है। क्रिया के समभिहार (वार२ या लगातार) में वर्त्तमान हलादि एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥ २३ ॥

कौटिल्ये गम्ये गत्यर्थाद् धातोर्नित्यं यङ्स्यात्। यथा -कुटिलं व्रजति-वाव्रज्यते। चाचल्यते ॥

कुटिल चलता है। कौटिल्य अर्थ में गत्यर्थ धातुओं से नित्य यङ्प्रत्यय हो ॥ २३ ॥

लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो-भावगर्हायाम् ॥ २४ ॥

लुपः० भ्यः, भा० याम्। एभ्यो धात्वर्थगर्हायामेवयङ् स्यात्।

१-(७। ४। ८३) इत्यभ्यासदीर्घः।

यथा--गर्हितं लुम्पति--लोलुप्यते । सासद्यते । चञ्चूर्यते । जञ्जप्यते । जञ्जभ्यते । दन्दह्यते । दन्दश्यते । निजेगिल्यते ॥

बुरा काटता है । बुरा रुकता है । बुरीतरह खाता है । निन्दित पाठ करता है । बुरी जम्हाई लेता है । निरर्थक जलता है । बुरा डसता है । बुरी तरह निगलता है । धात्वर्थ की निन्दा में लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश तथा गृ धातुसे यङ् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

सत्यापपाशरूपवीणा तूलश्लोकसेनालोमत्वच वर्मवर्ण चूर्णचुरादिभ्यो णिच् ॥ २५ ॥

सत्या० दिभ्यः, णिच् । एभ्यो णिच् प्रत्ययः स्यात् । यथा--सत्यं करोत्याचष्टे वा--सत्यापयति । (अर्थवेदयोरापुग्वाच्यः) ॥ यथा--अर्थापयति । वेदापयति । पाशं विमुञ्चति--विपाशयति । रूपंपश्यति--रूपयति । वीणयोपगायति--उपवीणयति । तूलेनानुकुष्णाति--अनुतूलयति । तृणाग्रं तूलेनानुघट्टयतीत्यर्थः । श्लोकैरुपस्तौति--उपश्लोकयति । सेनया अभियाति--अभिषेणयाति । लोमान्यनु मार्ष्टि--अनुलोमयति । (त्वचसंवरणे) । घः । त्वचंगृह्णाति--त्वचयति । वर्मणा सन्नह्यति--संवर्म्मयति । वर्णंगृह्णाति--वर्णयति चूर्णैरवध्वंसते--अवचूर्णयति । चोरयति ॥

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण इन सुबन्तों और चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

हेतुमति च ॥ २६ ॥

१--(७ । ४।८६) इत्यभ्यासनुगागमः । (७ । ४ । ८८) इत्युकारादेशः ।२--(८ । ३ । ६५ इतिषत्वम् ।

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् । यथा -भवन्तं प्रेरयति--भावयति । (णिचश्च) ॥ इति कर्त्रगे फले आत्मनेपदम्--भावयते ॥ (**आख्यानात्कृतस्तदाचष्टेकृल्लुकप्रकृतिप्रत्ययापत्तिः प्रकृतितच्चकारकम्**) ॥ यथा--चैत्रवधमाचष्टे--चैत्रं घातयति । मैत्र बन्धमाचष्टे--मैत्रं बन्धयति । राजागमनमाचष्टे- राजानमागमयति ॥ (**आङ्लोपश्च कलात्यन्तसंयोगे मर्यादायाम्**) ॥ यथा-आरात्रि विवासमाचष्टे--रात्रिंविवासयति । (**चित्रीकरणे प्रापि**) ॥ उज्जयिन्याः प्रस्थितो महिष्मत्यां सूर्योद्गमनं सम्भावयते--सूर्यमुद्गमयति ॥

हेतुमान् (प्रयोजक) कर्त्ता वाच्य होतो धातुसे णिच् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥ २७ ॥

क० भ्यः, यक् । एभ्यो धातुभ्योयक् स्यात् । यथा- कण्डूयति, कण्डूयते ॥

खुजलाता है । कण्ड्वादि गण पठित धातुओं से यक् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥ २८

गुपू० भ्यः, आयः । एभ्यो धातुभ्यआयप्रत्ययः स्यात् स्वार्थे । यथा--गोपायति । धूपायति । विच्छायति । पणायति । पनायति ॥

रक्षाकरता है । सन्ताप करता है । जाता है । व्यवहार करता है । स्तुति करता है । गुपू, धूप, विच्छि, पणि और पनि धातुओं से आय प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

ऋतेरीयङ् ॥ २९ ॥

ऋतेः, ईयङ् । (ऋतिः सौत्रो धातुः) अस्मादीयङ् स्यात् स्वार्थे ।

जुगुप्सायामयं धातुरिति बहवः । कृपायां चेत्येके । यथा--ऋतीयते ॥

ऋति धातु से ईयङ् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

कमेर्णिङ् ॥ ३० ॥

कमेः, णिङ् । कमेर्णिङ् प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे । यथा--कामयते ॥

इच्छा करता है । कम धातु से णिङ् प्रत्यय हो ॥ ३० ॥

आयादय आर्द्धधातुकेवा ॥ ३१ ॥

आ०र्यः, आँ०के, वा । आर्द्धधातुक विवक्षायामायादयः प्रत्यय वा स्युः । यथा--गोपायिष्यति, गोपिष्यति ।

रक्षाकरेगा । आर्द्ध धातुक विवक्षा में आयादि प्रत्यय विकल्प से हों ॥ ३१ ॥

सनाद्यन्ता धातवः ॥ ३२ ॥

स०न्ताः, धा०वः । सन् आदिर्येषां ते-सनादयः । सनादयोऽन्ते येषां ते सनाद्यन्ताः । सनाद्यन्ताः समुदाया धातुसंज्ञकाः स्युः । यथा--चिकीर्षति । पुत्रीयति । पुत्रकाम्यति ॥

सनाद्यन्त समुदाय धातुसंज्ञक हो ॥ ३२ ॥

स्यतासीलृलुटोः ॥ ३३ ॥

लृ- इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम् । धातोः स्यतासी प्रत्ययौ स्यातां लृलुटोः परतः । यथा--करिष्यति । अकरिष्यत् । श्वः कर्त्ता ॥

लृ (लृङ् लृट्) और लुट् लकार परे होतो धातुसे स्य और तासि प्रत्यय हों ॥ ३३ ॥

सिब्बहुलं लेटि ॥ ३४ ॥

सिप्, बहुलम् लेटि । लेटिपरे धातोर्बहुलं सिप् प्रत्ययः स्यात्। यथा—भाविषति, भाविषाति, भविषति, भविषाति, भवति, भवाति॥

होवे । लेट् लकार परे हो तो धातु से बहुल करके सिप् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥ ३५ ॥

का० यात्, आम्, अ० न्त्रे, लिटि । कास् धातोः प्रत्ययान्तेभ्यश्चाऽऽम् स्यादमन्त्रे लिटि ॥ (कास्यनेकाज् ग्रहणं कर्त्तव्यम्) । सूत्रे प्रत्ययग्रहणमपनीय तत्स्थानेऽनेकाच इतिवाच्यमित्यर्थः । यथा—कासाञ्चक्रे । लोलूयाञ्चक्रे । चुलुम्पाञ्चकार । दरिद्राञ्चकार ॥

निन्दित भाषण किया । काटा । दरिद्र हुआ । मन्त्र विषयके छोड़कर लिट् लकार परे हो तो कास् और प्रत्ययान्त धातुओं में आम् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

इजादेश्च गुरुमतोनृच्छः ॥ ३६ ॥

इ० देः, च, गु० तः, अ० च्छः । इजादिर्यो धातुर्गुरुमा- ञ्छत्यन्यस्तस्मादाम् स्याल्लिटि । (आमोमकारस्यनेत्त्वम्) ॥ आस्कासोराम् वि- ज्ञापकात् । यथा—ईहाञ्चक्रे । ऊहाञ्चक्रे ॥

चेष्टा की थी । वितर्कणा की थी । लिट् परे हो तो इजादि गुरुमान् धातु से आम् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

दयायासश्च ॥ ३७ ॥

दया० सः, च । दय, अय, आस्, एभ्य आम् स्याल्लिटि । यथा—दयाञ्चक्रे । अयाञ्चक्रे । आसाञ्चक्रे ॥

रक्षा की थी । गया था । बैठा था । लिट् लकार परे हो तो दय, अय, और आस् धातु से आम् प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ३८ ॥

उ० भ्यः, अ० म्। एभ्योवाऽऽम् स्याल्लिटि। यथा—ओषाञ्चकार, उवोष। विदाञ्चकार, विवेद। जागराञ्चकार, जजागार ॥

जलाया था। जाना था। जागा था। लिट् लकार परे हो तो उष, विद और जागृ धातु से विकल्प से आम् प्रत्यय हो ॥ ३८ ॥

भीह्रीभृहुवांश्लुवच्च ॥ ३९ ॥

भी० वाम्, श्लुवत्, च। एभ्योवाऽऽम् स्याल्लिटि श्लाविवकार्यं च। यथा—बिभयाञ्चकार, बिभाय। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। बिभराञ्चकार, बभार। जुहवाञ्चकार, जुहाव ॥

भय किया था। लज्जा की थी। पोषण किया था। होम किया था। लिट् लकार परे हो तो भी, ह्री, भृ और हु धातु से विकल्प करके आम् प्रत्यय हो और आम् को मानकर श्लुवत् कार्य्य हो ॥ ३९ ॥

कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥ ४० ॥

कृञ्, च, अनु० ते, लिटि। आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते। (आम् प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य)। इतियोगे कृञ् ग्रहण सामर्थ्यदनुप्रयोगेऽन्यस्यापीति विज्ञायते। तेन कृभ्वस्तियोगइत्यतः कृञो द्वितीयेति ञकारेण प्रत्याहाराश्रयणात् कृभ्वस्ति लाभः। यथा—पाचयाञ्चकार। पाचयाम्बभूव। पाचयामास ॥

पकाया था। लिट् लकार परे हो तो आम् के पश्चात् कृञ् प्रत्याहार (कृञ्, अस्, भू,) का अनुप्रयोग हो ॥ ४० ॥

विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ॥ ४१ ॥

वि० क्रि० न्तु, इति, अ० अ म् । वेत्तेर्लोट्याम् गुणाभावो, लोटो लुक्, लोडन्त करोत्यनुप्रयोगश्च, वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते। इति शब्दात् । यथा–विदाङ्कुर्वन्तु, विदन्तु ॥

वे जानें । विद धातुको लोट् लकार प्रथम पुरुषके बहुवचन में आम् गुण का अभाव लोट्का लुक् और लोडन्त कृञ्का अनुप्रयोगकरके विकल्पसे निपातन कियाहै

अभ्युत्सादयां प्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद् विदामक्रन्नितिछन्दसि ॥ ४२ ॥

अ० मकः, पा० यात्, वि० न्, अ इति, छन्दसि । छन्दसिविषये ऽभ्युत्सादयामित्येवमादयोवानिपात्यन्ते । आद्येषु चतुर्षु लुङि आम् अक इत्यनुप्रयोगश्च । यथा–अभ्युत्सादयामकः । अभ्युदसीषददितिलोके । प्रजनयामकः । प्राजीजनदित्यर्थः । चिकयामकः । अचैषीदित्यर्थे चिनोतेराम् द्विर्वचनं कुत्वं च । रमयामकः । अरीरमत् । पावयांक्रियात् । पाव्यादितिलोके । विदामक्रन् । अवेदिषुः ॥

अभ्युत्सादयामक, प्रजनयामक, चिकयामक, रमयामक पावयांक्रियात् , और विदामक्रन् छन्दो विषय में निपातित हैं ॥ ४२ ॥

च्लि लुङि ॥ ४३ ॥

लुङि परे धातोश्च्लिः स्यात् ॥

लुङ् परे हो तो धातु से च्लि प्रत्यय हो ॥ ४३ ॥

च्लेः सिच् ॥ ४४ ॥

लुङि परे च्लेः सिजादेशः स्यात्। यथा—अकार्षीत्। अहार्षीत्॥

किया। हरलिया। लुङ् परे हो तो च्लि के स्थान में सिच् आदेश हो ।४४।

शल इगुपधादनिटः क्सः ॥ ४५ ॥

शलः, इ० तू, अनिटः, क्सः। इगुपधोयो धातुः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्ले क्सादेशः स्याल्लुङि। यथा—दुह—अधुक्षत्। लिह—अलिक्षत्॥

स्वाद लिया। दुहा। लुङ् परे हो तो शलन्त इगुपध, अनिट् धातुसे परे च्लि के स्थान में क्सादेश हो ॥ ४५ ॥

श्लिष आलिङ्गने ॥ ४६ ॥

श्लिषः, आँ० ने। आलिङ्गने एव श्लिषः क्सादेशो नान्यत्र। यथा—अश्लिक्षत् देवदत्तः प्रमोदाम्॥

देवदत्त प्रमोदा से मिला। लुङ् परे हो तो श्लिष धातुसे परे आलिङ्गन अर्थ में च्लि को क्सादेश हो ॥ ४६ ॥

न दृशः ॥ ४७ ॥

दृशेर्धातोः परस्य च्लेः क्सादेशो न स्यात्। यथा—अदर्शत्, अद्राक्षीत्॥

उसने देखा। दृशिर् धातु से परे च्लि को क्सादेश न हो ॥ ४७ ॥

णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥ ४८ ॥

कर्त्तृवाचिनि लुङिपरे ण्यन्तेभ्यो धातुभ्यः श्रि द्रु स्रु इत्येतेभ्यश्च परस्य च्लेश्चङादेशः स्यात्। यथा—अचीकरत्। अशिश्रियत्। अदुद्रुवत्। असुस्रुवत्॥

उसने कराया। सेवा की। गया। णिजन्त और श्वि, द्रु तथा स्रु धातु से परे च्लि को चङ् आदेश हो ॥ ४८ ॥

विभाषा धेट्श्व्योः ॥ ४९ ॥

आभ्यां परस्य च्लेश्चङादेशो वा स्यात् कर्त्तृवाचिनि लुङि परे (चङि)--इति द्वित्वम्। यथा--अदधत्, अधात्। अधासीत्। अशिश्वियत्, अश्वत्, अश्वयीत् ॥

पिया। गया। धेट् तथा श्वि धातु से परे च्लि को विकल्प से चङ् आदेश हो कर्त्तृवाचक लुङ् परे हो तो ॥ ४९ ॥

गुपेश्छन्दसि ॥ ५० ॥

गुपेः, छन्दसि। छन्दसि विषये गुपेः परस्य च्लेश्चङादेशो वा स्यात्। यथा--गृहानजूगुपतम्। अगौप्तमित्यर्थः ॥

छन्दो विषय में गुप धातु से परे च्लि को विकल्प से चङ् आदेश हो ॥ ५० ॥

नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥ ५१ ॥

छन्दसि एभ्यो धातुभ्यो णयन्तेभ्यः परस्य च्लेश्चङादेशो न स्यात्। यथा--ऊनयीः। औनिनिदिति लोके। ध्वनयीत्। अदिध्वनदिति लोके। एलयीः। ऐलिलिदिति लोके। अर्दयीत्। आर्दिददिति लोके ॥

ऊन, ध्वन, इल तथा अर्द इन णिजन्त धातुओं से परे छन्दो विषय में च्लि को चङ् आदेश न हो ॥ ५१ ॥

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥ ५२ ॥

अ० भ्यः, अङ्। कर्त्तृवाचिनि लुङि परे एभ्यश्च्लेरङादेशः स्यात्। यथा--पर्यास्थत। अवोचत्। आख्यत् ॥

१-(७। ४। २०) इति वच उम्।

फेंका। कहा। अस्‌,वच्‌ तथा ख्या धातु से परे कर्तृवाचक लुङ्‌ परे हो तो च्लि को अङ्‌ आदेश हो ॥ ५२ ॥

लिपिसिचिह्वश्च ॥ ५३ ॥

लि० ह्वः, च। एभ्यः परस्य च्लेरङादेशः स्यात्‌। यथा—अलिपत्‌। असिचत्‌। आह्वत्‌। (आतोलोपः) ॥

लीपा। सींचा। बुलाया। लिप्‌ सिच्‌ तथा ह्वेञ्‌ धातुओंसे परे च्लिको अङ्‌ आदेश हो। ५३

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्‌॥ ५४॥

आ० पु, अ० म्‌। लिपि सिचि ह्वेञ्‌ इत्येतेभ्य आत्मनेपदेषु परेषु च्लेरङादेशो वा स्यात्‌। यथा—अलिपत, अलिप्त। असिचत, असिक्त। आह्वत, आह्वास्त ॥

आत्मनेपद विषय में लिपि सिंचि तथा ह्वेञ्‌ धातु से परे च्लि को विकल्प से अङ्‌ आदेश हो ॥ ५४ ॥

पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ५५

श्यन्‌ विकरण पुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङादेशः स्यात्‌ परस्मैपदेषु परेषु। यथा—अपुषत्‌। अद्युतत्‌। अगमत्‌ ॥

परस्मैपद प्रत्यय परे हों तो दिवाद्यन्तर्गत पुषादि गण, द्युतादिगण तथा ऌ जिस धातुका इत्‌ गया हो ऐसे धातु से परे च्लि को अङ्‌ आदेश हो ॥५५॥

सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ ५६ ॥

स० भ्यः, च। एभ्यः परस्य च्लेरङादेशः स्यात्‌। यथा—असरत्‌। अशिषत्‌। आरत्‌ ॥

गया। शिक्षा की। गया या प्राप्त हुआ। परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो सृ शासु तथा ऋ धातु से परे च्लि को अङ्‌ आदेश हो ॥ ५६ ॥

इरितो वा ॥ ५७ ॥

इरितः, वा । इरितो धातोः परस्य च्लेरङादेशो वा स्यात् परस्मैपदेषु परेषु । यथा—अभिदत्, अभैत्सीत् ॥

काटा या चीड़ा । परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय परे हो तो जिसका इर् इत् गया हो ऐसे धातु से परे च्लि को विकल्प से अङ् आदेश हो ॥ ५७ ॥

जृस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥ ५८ ॥

जृस्तम्भ्वादिभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लेरङादेशो वा स्यात् । यथा—अजरत्, अजारीत् । अस्तभत्, अस्तम्भीत् । अम्रुचत्, अम्रोचीत् । अम्लुचत्, अम्लोचीत् । अग्रुचत्, अग्रोचीत् । अग्लुचत् अग्लोचीत् । अग्लुचत्, अग्लुञ्चीत् । अश्वत्, अश्वयीत्, अशिश्वियत् ॥

बुड्ढा हुआ । गया या प्राप्त हुआ । चुराया । गया । गया या बढ़ा । जृ स्तम्भु आदि धातुओं से परे च्लि को विकल्प से अङ् आदेश हो ॥ ५८ ॥

कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ॥ ५९ ॥

कृ० भ्यः, छं० सि । छन्दसि विषये एभ्यः परस्य च्ले रङादेशः स्यात् । यथा—अकरत् । अमरत् । अदरत् । आरुहत् ॥

किया । मरा । हिंसाकी । चढ़ा । छन्दोविषय में कृ, मृ, दृ, तथा रुह धातु से परे च्लि को अङ् आदेश हो ॥ ५९ ॥

चिण् ते पदः ॥ ६० ॥

ते परे पदधातोः परस्य च्ले श्चिणादेशः स्यात् । यथा -उदपादि ॥

उत्पन्न किया । तशब्द परे हो तो पद धातु से परे च्लि को चिण आदेश हो ६०

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यो-ऽन्यतरस्याम् ॥ ६१ ॥

दी० भ्यः, अ० म् । एभ्यश्च्ले श्चिण् वाऽऽदेशः स्यादेकवचने त शब्दे परे । यथा-अदीपि, अदीपिष्ट । अजनि, अजनिष्ट । अबोधि, अबुद्ध । अपूरि, अपूरिष्ट । अतायि, अतायिष्ट । अप्यायि, अप्यायिष्ट ॥

प्रकाशित किया । हुआ । जाना । बढ़ा (पूर्ण हुआ) । रक्षा की । बढ़ा । एकवचन में तशब्द परे हो तो दीपी, जनी, बुध, पूरी, तायृ तथा ओप्यायी धातुओं से परे च्लि को विकल्प से चिण् आदेश हो ॥ ६१ ॥

अचः कर्मकर्त्तरि ॥ ६२ ॥

कर्मकर्त्तरि त शब्दे परे, अजन्ताद्धातोश्च्लेश्चिणादेशो वा स्यात् । यथा-अकारि, अकृत मोदकः स्वयमेव ॥

लड्डू अपने आप बनगये । कर्मकर्त्ता में तशब्द परे हो तो अजन्त धातुसे परे च्लि को विकल्प से चिण् आदेश हो ॥ ६२ ॥

दुहश्च ॥ ६३ ॥

दुहः, च । कर्मकर्त्तरि तशब्दे परे दुहश्च धातोः परस्य च्लेश्चिणादेशो वा स्यात् । यथा-अदोहि । पक्षे क्सः । लुग्वेति । पक्षे लुक्-अदुग्ध । अधुक्षत धेनुः स्वयमेव ॥

गाय अपने आप दुह गई । कर्मकर्त्ता में तशब्द परे हो तो दुह धातु से परे च्लि को विकल्प से चिण् आदेश हो ॥ ६३ ॥

न रुधः ॥ ६४ ॥

१-(६ । ४ । १०४) इतिलुक् ।

कर्मकर्त्तरि तशब्दे परे रुधधातोः परस्य च्लेश्चिणादेशो नस्यात् । यथा—अवारुद्ध धेनुस्स्वयमेव ॥

अपने आप गायरुकगई । कर्म कर्त्ता में तशब्द परे होते रुधधातु से परे च्लि को चिण् आदेश न हो ॥ ६४ ॥

तपोऽनुतापे च ॥ ६५ ॥

तपः, अ० पे, च । कर्मकर्त्तरि अनुतापेच त शब्दे परे च्लेश्चिणा देशो न स्यात् । यथा—अन्वतप्त पापेन । पापंकर्त्तुः । तेनाभ्याहत इत्यर्थः । कर्मणि लुङ् । यद्वापापेन पुंसा कर्त्रा अशोचीत्यर्थः ॥

कर्म कर्त्ता तथा अनुताप अर्थ में तशब्द परे हो तो तप धातु से परे च्लि को चिण् आदेश न हो ॥ ६५ ॥

चिण् भावकर्मणोः ॥ ६६ ॥

भाव कर्म वाचिनि तशब्दे परे च्लेश्चिणादेशः स्यात् । यथा—अशायि भवता । अकारि घटः कुलालेन ॥

आपसे सोयागया । कुम्हारने घड़ा बनाया । भाव कर्म वाची तशब्द परे होतो धातु मात्रसे परे च्लि को चिण् आदेश हो ॥ ६६ ॥

सार्वधातुके यक् ॥ ६७ ॥

भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परे धातोर्यक् प्रत्ययः स्यात् । यथा—शय्यते भवता । गम्यते ग्रामः ॥

आपसे सोया जाता है । गांव जायाजाता है (गांव को जाता है) । भाव तथा कर्म वाची सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धातु मात्र से यक् प्रत्यय हो ६७

कर्त्तरि शप् ॥ ६८ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् प्रत्ययः स्यात् । यथा—भवति॥
होताहै। कर्त्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धातु मात्र से शप् प्रत्यय हो ६८

दिवादिभ्यः श्यन् ॥ ६९ ॥

दिव इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्यन् प्रत्ययः स्यात्। शपोपवादः। यथा—दीव्यति। हलिचेति दीर्घः॥

खेलताहै। दिवादि गण पठित धातुओं से श्यन प्रत्यय हो॥ ६९॥

वा भ्राश भ्लाश भ्रमु क्रमु क्लमु त्रसि-त्रुटि लषः ॥ ७० ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे एभ्यो धातुभ्यो वा श्यन् स्यात्। यथा—भ्राश्यते, भ्राशते। भ्लाश्यते, भ्लाशते। भ्रम्यति, भ्रमति। भ्राम्यतीति तु दिवादौ वक्ष्यते। क्राम्यति, क्रामति। क्लाम्यति, क्लामति। त्रस्यति, त्रसति। त्रुट्यति, त्रुटति। लष्यति, लषति॥

प्रकाशित होता है। अनवस्थित होता है१। टहलता है। ग्लानि करता है। उद्वेग करता है। तोड़ता है। इच्छा करता है। भ्राश, भ्लाश, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि तथा लष धातु से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय हो॥ ७०॥

यसोऽनुपसर्गात् ॥ ७१ ॥

यसः, अ० त्। यसोनुपसर्गाद् वा श्यन् स्यात्। यथा—यस्यति, यसति॥

पुरुषार्थ करता है। उपसर्ग रहित यस धातु से विकल्प करके श्यन प्रत्यय हो॥७१॥

संयसश्च ॥ ७२ ॥

१—(७। ३। ७६) इति दैर्घ्यम्।

सम्, यसः, च । सम्पूर्वाच्च यसो वा श्यन् स्यात्। यथा-संयस्यति, संयसति ॥

सम् पूर्वक यस धातु से भी विकल्प से श्यन् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

स्वादिभ्यः श्नुः ॥ ७३ ॥

षुञ् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नुः स्यात् । यथा-सुनोति, सुनुतः, सुन्वन्ति । हुश्नुवोरिति यण् ॥

स्नान, पीडन, मद्यनिकालना (उक्त कार्य) करता है । स्वादि गण पठित धातुओं से श्नु प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

श्रुवः शृ च ॥ ७४ ॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नु प्रत्ययश्च । शपोऽपवादः । श्नोर्ङि-त्त्वाद् धातोर्गुणो नो । यथाच-शृणोति, शृणुतः, शृण्वन्ति । (६ । ४ । ८७) इति यण् ॥

सुनता है, वे दोनों सुनते हैं, वे सब सुनते हैं । श्रु धातु को शृ आदेश और श्नु प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

अक्षोऽन्यतरस्याम् ॥ ७५ ॥

अक्षः, अ० स्याम् । कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे, अक्षो वा श्नुः स्यात्। पक्षे शप् । यथा-अक्ष्णोति, अक्ष्णुतः, अक्ष्णुवन्ति । अक्षति, अक्षतः, अक्षन्ति ॥

व्याप्त होता है । अक्षु धातु से विकल्प करके श्नु प्रत्यय हो कर्त्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो ॥ ७५ ॥

तनूकरणे तक्षः ॥ ७६ ॥

तनूकरणेऽर्थे तक्षधातोर्वाश्नुः स्यात्। यथा—तक्ष्णोति, तक्षतिकाष्ठम्॥

लकड़ी को छीलता है। तनूकरण अर्थ में तक्ष धातु से विकल्प करके श्नु प्रत्यय हो। ७६।

तुदादिभ्यः शः ॥ ७७ ॥

तुदइत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः शः स्यात्। यथा—तुदति, तुदते ॥

पीडा करता है। तुदादिगण पठित धातुओं से श प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

रुधादिभ्यः श्नम् ॥ ७८ ॥

रुधिर् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्य श्नम् प्रत्ययः स्यात्। यथा—रुणद्धि। (श्नमोरल्लोपः)॥

रोकता है या ढांकता है। रुधादि गण पठित धातुओं से श्नम् प्रत्यय हो ॥ ७८॥

तनादिकृञ्भ्य उः ॥ ७९ ॥

त० भ्यः, उः। तनु इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः कृञश्च प्रत्ययः स्यात्। यथा—तनोति। करोति ॥

विस्तारित करता है। करता है। तनादिगण पठित और कृञ् धातु से उ प्रत्यय हो ७९

धिन्विकृण्व्योरच ॥ ८० ॥

धि० व्योः, अ, च। अनयोरकारोऽन्तादेशः स्यादुप्रत्ययश्च। यथा—धिनोति। कृणोति ॥

तृप्त करता है। दुःख देता है। धिवि तथा कृवि धातु से उ प्रत्यय और इन के अन्त को अकारादेश हो ॥ ॥८०॥

क्र्यादिभ्यश्श्ना ॥ ८१ ॥

क्र्य० भ्यः, श्ना । डु-क्रीञ् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नाप्रत्ययः स्यात् । यथा-क्रीणाति ॥

बदलना है या रहन करता है । क्र्यादि गणपठित धातुओं से श्ना प्रत्यय हो ॥८१

स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भु स्कुम्भु स्कुञ्भ्य श्नुश्च ॥ ८२ ॥

स्तम्भु०भ्यः, श्नुः, च । एभ्यः श्नुश्चात् श्ना स्यात् । यथा-स्तभ्नोति, स्तभ्नाति । स्तुभ्नोति, स्तुभ्नाति । स्कभ्नोति, स्कभ्नाति । स्कुभ्नोति, स्कुभ्नाति । स्कुनोति, स्कुनाति । (स्तम्भ्वादयश्चत्वारो धातवः सौत्राः । सर्वेरोधनार्था इत्येके) माधवस्तु प्रथम तृतीयोस्तम्भार्थौ, द्वितीयोनिष्कोपणार्थः, चतुर्थोधारणार्थ इत्याह । पञ्चमस्तु ।(स्कुञ्-आप्रवणे) ॥

स्तम्भु आदि धातुओं से श्नु तथा श्ना प्रत्यय हो ॥ ८२ ॥

हलःश्नः शानज्झौ ॥ ८३ ॥

हलः, श्नः, शानच्, हौ । हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे । यथा--मुषाण ॥

चुरा । हि परे हो तो क्र्यादि हलन्त धातुओं से परे श्ना प्रत्यय को शानच् आदेश हो ॥ ८३ ॥

छन्दसि शायजपि ॥ ८४ ॥

छन्दसि, श्नःच, अपि । छन्दसि विषये श्नः शानजादेशः स्याच्छायजपि । (हृग्रहोर्भश्छन्दसीति-हस्य भः) । यथा-ग्रभाय जिह्वया मधु । बधान देव सवितः ॥

छन्दो विषय में आ के स्थान में शानच् आदेश हो तथा शायच् भी। ॥ ८४ ॥

व्यत्ययो बहुलम् ॥ ८५ ॥

व्यं० यः, बहुलम्। छन्दसि विषये विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्यात्। यथा—भेदति। भिनत्तीतिप्राप्ते। मरते। म्रियते इति प्राप्ते। नेषतु। नयतेर्लोट शप् सिपौ द्वौ विकरणौ। तरुषेम। तरेमेत्यर्थः। तरते विध्यादौ लिङ् उः सिप् शप् चेति त्रयो विकरणाः ॥

छन्दो विषय में विकरणों का बहुलता से व्यत्यय (विपर्य्यय) हो ॥ ८५ ॥

लिङ्याशिष्यङ् ॥ ८६ ॥

लिङि, आशिषि, अङ्। आशीर्लिङि परे धातोरङ् स्याच्छन्दसि। (वच उम्) ॥ यथा—मन्त्रं वोचेमाग्नये। तच्छकेयम् ॥ (दृशेरग्वक्तव्यः) ॥ पितरं च दृशेयं मातरं च। अङि तु ऋदृशोऽङीति गुणः स्यात् स न ॥

छन्दो विषय में आशीर् लिङ् परे हो तो धातु से अङ् प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः ॥ ८७ ॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवत् स्यात्। यथा—पच्यते ओदनः स्वयमेव। भिद्यते काष्ठं स्वयमेव। अपाचि। अभेदि ॥

अपने आप भात पकता है। अपने आप लकड़ी चिरती है। पकाया। चीरा। कर्मदशाके तुल्य है क्रिया जिस में ऐसा कर्त्ता कर्म के सदृश हो ॥ ८७ ॥

तपस्तपः कर्मकस्यैव ॥ ८८ ॥

तपः. तपःकर्म्म, एव। कर्त्ता कर्मवत् स्यात्। यथा–तप्यते तपस्तापसः। अर्जयतीत्यर्थः ॥

तप कर्म तपधातु का कर्त्ता कर्मवत् हो ॥ ८८ ॥

न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ॥ ८९ ॥

एषां कर्मकर्त्तरि यक्चिणौ न स्याताम्। यथा–दुग्धे धेनुः स्वयमेव। अदुग्ध धेनुः स्वयमेव। प्रस्नुते धेनुः स्वयमेव। प्रास्नोष्टधेनुः स्वयमेव। नमते दण्डः स्वयमेव। अनंस्त दण्डः स्वयमेव ॥

अपने आप धेनु दुही जाती है। अपनेआप गाय दुही गयी। अपने आप गाय चूती है। अपनेआप गाय स्रावित हुई दण्ड अपने आप नमता है। दण्ड अपने आप नमा। कर्मकर्ता में दुह स्नु तथा नम धातुसे यक् तथा चिण् प्रत्यय न हों ८९

कुषिरञ्जोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च ९०

अनयोः कर्मकर्त्तरि न यक् किन्तु–श्यन् परस्मैपदं च। यथा–कुष्यति, कुष्यते पादः। रज्यति, रज्यते वस्त्रम् ॥

पैर खींचाजाता है। कपड़ा रंगाजाता है। कुष तथा रञ्ज धातु के कर्म कर्त्ता में यक् प्रत्यय न हो किन्तु पूर्वीओं के मत में श्यन् और परस्मैपद हो ॥ ९० ॥

धातोः ॥ ९१ ॥

अधिकारोऽयमातृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः ॥

तृतीय अध्याय की समाप्ति तक धातुका अधिकार है ॥ ९१ ॥

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ॥ ९२ ॥

तत्र, उ० मू, स० स्थम्। अस्मिन् धात्वधिकारो यत्सप्तमी निर्दिष्टं तदुपपद संज्ञं स्यात्। यथा–(कर्मण्यण्)-कुम्भकारः ॥

कुम्हार। इस धातु अधिकार में जो सप्तमी विभक्ति निर्दिष्टपद वह उपपद संज्ञक हो॥

कृदतिङ् ॥ ९३ ॥

कृत्, अतिङ् । अस्मिन् धात्वधिकारे तिङ् वर्जिताः प्रत्ययाः कृत्सञ्ज्ञकाः स्युः । यथा—कर्त्तव्यः । करणीयम् ॥

करनाचाहिये । इस धातु अधिकार में तिङ् भिन्न प्रत्यय कृत् संज्ञक हों ।९३।

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ॥ ९४ ॥

वा० अ० पः, स्त्रि० म् । परिभाषेयम् । अस्मिन् धात्वधिकारे ऽसरूपो,ऽपवादः प्रत्ययः उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्, स्त्र्यधिकार विहित प्रत्ययं वर्जयित्वा ॥

स्त्रियाम् इस विषय को छोड़कर इस धातु अधिकार में असमान रूप तथा अपवाद रूप प्रत्यय विकल्प से बाधक हों ॥ ९४ ॥

कृत्याः ॥ ९५ ॥

अधिकारोऽयं-ण्वुलः प्राक् ॥

ण्वुल्तृचौ इस सूत्रके पूर्व२ कथित प्रत्यय कृत्संज्ञक हों ॥ ९५ ॥

तव्यत्तव्यानीयरः ॥ ९६ ॥

धातोरिमेस्युः । तकाररेफौ सुरार्थौ । कर्त्तव्यम्, करणीयं मया । एधितव्यम्, एधनीयं त्वया । गन्तव्यम्, गमनीयं तेन । पठितव्यम्, पठनीयम् भवता । चेतव्यश्चयनीयोवाऽस्माभिर्धर्म्मः । सेवितव्या, सेवनीया वा युवाभ्यामम्बा ॥ (वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च)॥

यथा—वसतीति—वास्तव्यः॥(केलिमर उपसङ्ख्यानम्)॥

यथा-पचेलिमाः-माषाः । पक्तव्यः । भिदेलिमाः सरलाः । भेतव्याः । कर्मणि प्रत्ययः ॥

मुझे करना चाहिये । तुझे पढ़ना चाहिये । उसे जाना चाहिये । आपको पढ़ना चाहिये । हम को धर्म इकट्ठा करना चाहिये । तुम दोनों को माता की सेवा करना चाहिये । धातु से तव्यत् तव्य तथा अनीयर प्रत्यय हों ॥ ६६ ॥

अचोऽत् ॥ ९७ ॥

अचः, अत् । अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात् । यथा-चेयम् । जेयम् । पेयम् । गेयम् । देयम् ॥ **(तकि शसि चति यति जनिभ्यो यद्वाच्यः)**॥ यथा-तक्यम् । शस्यम् । चत्यम् । यत्यम् । जन्यम् ॥ **(हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः)** ॥ यथा-वध्यः । पक्षे वक्षमाणोण्यत्-घात्यः ॥

इकट्ठा करना चाहिये । जीतना चाहिये । पीना चाहिये । गाना चाहिये । देना चाहिये । अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो ॥ ९७ ॥

पोरदुपधात् ॥ ९८ ॥

पोः, अ० धात् । पवर्गान्तादुपधाद्धातोर्यत् स्यात् । यथा-लभ्यम् । शप्यम् ॥

प्राप्त होने योग्य । विरुद्ध कथन योग्य । जिसकी उपधा में अकार हो ऐसे पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

शकिसहोश्च ॥ ९९ ॥

श० होः, च । आभ्यां यत् स्यात् । यथा-शक्यम् । सह्यम् ॥
होसकने योग्य । सहने योग्य । शक्लृ तथा सह धातु से भी यत् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

१-(६ । ४ । ६५) इतीत्वम् ।

गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥ १०० ॥

ग० येमः, च, अ० र्गे। एभ्यश्चानुपसर्गेभ्यो यत् स्यात्। यथा-गद्यम्। मद्यम्। चर्य्यम्। यम्यम्॥ (चरेराङि चागुरौ)॥ आचर्योदेशः। गन्तव्य इत्यर्थः॥

गाने योग्य। मदिरा। स्वीकार करने योग्य। शान्त होने योग्य। उपसर्गरहित गद, मद, चर तथा यम धातु से यत् प्रत्यय हो॥ १००

अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ॥ १०१ ॥

अ० र्याः, ग० षु। गर्ह्यपणितव्य निरोधेष्वर्थेषु अवद्य पण्यवर्या निपात्यन्ते। यथा-अवद्यम्-पापम्। पण्या-धेनुः। व्यवहर्तव्येत्यर्थः। अनिरोधोऽप्रतिबन्धः। तस्मिन् विषये वृङो यत्। शतेन--वर्या--वडवा॥

पाप। खरीदने योग्य गाय। सौ से स्वीकार करने योग्य घोड़ी। अवद्य, पण्य, तथा वर्या ये शब्द गर्ह्य, पणितव्य तथा अनिरोध अर्थ में यत्प्रत्ययान्त निपातित हैं॥

वह्यं करणम् ॥ १०२॥

वहेर्धातोः करणे यत् प्रत्ययो निपात्यते। यथा--वहन्त्यनेनेति-वह्यं शकटम्॥

वह धातु से करण अर्थ में यत् प्रत्ययान्त वह्य यह निपातित है॥ १०२॥

अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ १०३ ॥

स्वामि वैश्यार्थे यत् प्रत्ययो निपात्यते। यथा--अर्य्यः--स्वामी वैश्यो वा ॥

स्वामी (मालिक) तथा वैश्य अर्थ में ऋ धातु से यत प्रत्ययान्त अर्य यह निपातित है ॥ १०३ ॥

उपसर्या काल्या प्रजने ॥ १०४ ॥

उपसर्येति निपात्यते काल्या चेत् प्रजने स्यात्। गर्भ ग्रहणे प्राप्तकाला–काल्या। उपसर्या–गौः। गर्भाधानार्थं वृषभेणोपगन्तु योग्येत्यर्थः ॥

प्रजन अर्थात् प्रथम गर्भ ग्रहण का काल जिसको प्राप्त हो तो उप उपसर्ग पूर्वक सृ धातु से उपसर्या यह निपातित है ॥ १०४ ॥

अजर्यं सङ्गतम् ॥ १०५ ॥

नञ्पूर्वाज्जीर्यतेः कर्त्तरि यत् संगतं चेद् विशेष्यम्। यथा–तेनं संगत मार्येण रामाजर्यं कुरु द्रुतम् ॥

हे राम ! उस आर्य के साथ अजर्य (न्यूनता रहित) संगति को शीघ्र कर। संगत अर्थ में नञ् पूर्वक जॄ धातु से यत् प्रत्ययान्त अजर्य्य यह निपातित है १०५

वदः सुपि क्यप् च ॥ १०६ ॥

अनुपसर्गे सुवन्त उपपदे वदेर्भावे क्यप् यच्चप्रत्ययौ स्याताम्। यथा–ब्रह्मोद्यम्, ब्रह्मवद्यम्। ब्रह्म–वेदः तस्य वदनमित्यर्थः ॥

सुबन्त उपपद हो तो उपसर्ग रहित वद धातु से क्यप् तथा यत् प्रत्यय हों १०६

भुवो भावे ॥ १०७ ॥

भुवः[1], भावे। सुबन्त उपपदेऽनुपसर्गे भावे भूधातोः क्यप् स्यात्। यथा–ब्रह्मणो भावो ब्रह्म भूयम् ॥

१-(६ । १ । १५)-सम्प्रसारणम्।

सुबन्त उपपद होतो उपसर्ग रहित भू धातुसे भावमें क्यप् तथा यत्प्रत्यय हों॥ १०७॥

हनस्त च ॥१०८॥

हनः, तः, च । अनुपसर्गे सुप्युपपदे हन्तेर्भावे क्यप् स्यात् तकारश्चान्तादेशः । यथा—ब्रह्मणो हननम् ब्रह्महत्या । स्त्रीत्वं लोकतः ॥

सुबन्त उपपद होतो उपसर्ग रहित हन धातुसे भाव में क्यप् प्रत्यय और हनके अन्तको तकारादेशहो ॥ १०८ ॥

एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥ १०९ ॥

एभ्यो धातुभ्यः क्यप् स्यात् । यथा—इत्यः । स्तुत्यः । शिष्यः । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः । पुनः क्यवुक्तिः परस्यापि ण्यतो बाधनार्था। (शंसि दुहिगुहिभ्यो वा)॥ सस्यम्, शंस्यम् । दुह्यम्, दोह्यम्। गुह्यम्, गोह्यम् ॥ (आङ् पूर्वादञ्जेः सञ्ज्ञायामुपसङ्ख्यानाम्)॥ (अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणादिषु) बाहुलकात् करणे क्यप् । अनिदितामिति न लोपः । यथा—आज्यम्-घृतम् ॥

एति, स्तु, शास्, वृ, दृ तथा जुषी धातु से क्यप् प्रत्यय हो ॥ १०९ ।

ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः ॥ ११० ॥

ऋ० तः, च, अ० तेः । क्लृपिचृती विहाय ऋकारोपधाच्च धातोः क्यप् स्यात् । यथा—वृत्-वृत्यम् । वृध्-वृध्यम् ॥

नर्त्तीव । बढ़ना । क्लृप् तथा चृत धातु को छोड़कर इतर ऋकारोपध धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

ई च खनः ॥ १११ ॥

१-(६ । १ । ७२) इतिलुक् । २-(६ । ४ । ३८) —इतीत्वम् ।

खनतेर्धातोः क्यप् ईकारश्चान्तादेशः स्यात् । यथा--खेयम् (आद्गुणः) ॥

खन धातु से क्यप् प्रत्यय हो और इसके अन्त को ईकारादेश हो ॥ १११ ॥

भृञोऽसञ्ज्ञायाम् ॥ ११२ ॥

भृञः, अ० म् । असंज्ञायां विषये भृञो धातोः क्यप् स्यात् । यथा--भृत्याः--कर्मकराः भर्त्तव्या इत्यर्थः । क्रिया शब्दोऽयं न तु संज्ञा ॥

असञ्ज्ञा विषय में भृञ् धातु से क्यप् प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

मृजेर्विभाषा ॥ ११३ ॥

मृजेः, विभाषा । मृजेः क्यप् वा स्यात् पक्षेण्यत् । यथा--मृज्यः मार्ग्यः ॥

मृज धातु से विकल्प से क्यप् प्रत्यय हो ॥ ११३ ॥

राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥ ११४ ॥

इमे सप्त क्यबन्ता निपात्यन्ते । राज्ञा सोतव्योऽभिषव द्वारा निष्पादयितव्यः । यद्वा लतात्मकः सोमो राजा स सूयते कण्ड्यतेऽत्रेति अधिकरणे क्यप् । निपातनाद् दीर्घः । यथा--राजसूयः, राजसूयम्-अर्धर्चादिः । सरत्याकाशे-सूर्यः । कर्त्तरि क्यप् । निपातन उत्वम् । यद्वा (षू-प्रेरणे)--तुदादिः । सुवति कर्माणि लोकं प्रेरयति क्यपो रुट् । मृषोपपदाद् वदः कर्माणि नित्यं क्यप् । मृषोद्यम् । विशेष्य निघ्नोऽयम् । उच्छ्राय सौन्दर्यगुणाः-मृषोद्याः । रोचतः-रुच्यः । गुपेरादेः कत्वं च संज्ञायाम् । सुवर्ण रजतभिन्नं धनम्-कुप्यम् । गोप्य-

१--(७ । ३ । ५२ । इतिकुत्वम् । (७ । २ । ११४) इति वृद्धिः ।

मन्यत्। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते--कृष्टपच्याः--कर्मकर्त्तरि न व्यथते अव्यथ्यः ॥

राजसूय आदि सात शब्द क्यप् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ११४ ॥

भिद्योद्ध्यौ नदे ॥ ११५ ॥

नदेऽभिधेये भिदेरुज्झेश्च क्यप्, उज्झेर्धत्वं निपात्यते। यथा--भिनत्ति-कूलम्--भिद्यः। उज्झत्युदकम्--उद्ध्यः ॥

नद (नदी) वाच्य हो तो भिद्य तथा उद्ध्य क्यप् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥

पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे ॥ ११६ ॥

नक्षत्रेऽभिधेयेऽधिकरणे क्यप् निपात्यते। यथा--पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः--पुष्यः। सिध्यन्त्यस्मिन्--सिध्यः ॥

नक्षत्र वाच्य हो तो पुष धातु से पुष्य तथा सिध धातु से सिध्य क्यप् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ११६ ॥

विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु

वि०त्याः, मुं०षु। पूङ् नीञ् जिभ्यः क्यप्। यथा-विपूयो मुञ्जः रज्ज्वादि करणाय शोधयितव्य इत्यर्थः। विनीयः कल्कः--पिष्ट ओषधि विशेष इत्यर्थः। जित्या हलिः। बलेन कृष्टव्य इत्यर्थः। कृष्ट समीकरणार्थं स्थूल काष्ठम्। सीतेत्यर्थः ॥

मुञ्ज अर्थ में विपूय, कल्क अर्थ में विनीय, और हलि अर्थ में जित्य ये क्रमशः विपूर्वक पूङ्, विपूर्वक णीञ्, और जी धातु से निपातित हैं ॥ ११७ ॥

प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥ ११८ ॥

(छन्दसीति वक्तव्यम्)। यथा-प्रतिगृह्यम्। अतिगृह्यम्। लोके तु-प्रतिग्राह्यम्। अपिग्राह्यम्॥

छन्दो विषय में प्रति तथा अति पूर्वक ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो॥ ११८॥

पदाऽस्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च॥११९॥

पदेऽस्वैरिणि बाह्यायां पक्ष्यचार्थे ग्रहेर्धातोः क्यप् स्यात्। यथा--अवगृह्यम्, प्रगृह्यम्-पदम्। अस्वैरी-परतन्त्रः। गृह्यकाः-शुकाः। पञ्जरादि बन्धनेन परतन्त्री कृता इत्यर्थः। बाह्यायाम्। ग्राम गृह्या सेना। ग्रामबहिर्भूतेत्यर्थः। स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् पुन्नपुंसकयोर्न। पक्ष्ये भवः--पक्ष्यः दिगादित्वाद्यत्। आर्य्यैर्गृह्यते--आर्य्यगृह्यः। तत्पक्षाश्रित इत्यर्थः॥

पद, अस्वैरि, बाह्या तथा पक्ष्य अर्थ में ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो॥ ११९॥

विभाषा कृवृषोः॥ १२०॥

कृञो वृषश्च वा क्यप् स्यात्। यथा--कृत्यम्, कार्य्यम्। वृष्यम्, वर्ष्यम्॥

कृञ् तथा वृष धातु से विकल्प से क्यप् प्रत्यय हो॥ १२०॥

युग्यं च पत्रे॥ १२१॥

युग्यमिति निपात्यते पत्रं चेत्स्यात्। यथा-पतत्यनेनेतिपत्रम्-वाहनमित्यर्थः। युग्यो गौः। युग्योऽश्वः। युग्यो हस्ती। अत्र क्यप् कुत्वं च निपात्यते॥

पत्र (सवारी) अर्थ में युज धातु से क्यप् प्रत्ययान्त युग्य यह निपातित है॥

१—(३।१।१२४) इति ण्यत्

अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ १२२ ॥

अं० द्, अ० म् (अ)। अमोपपदाद् वसे रधिकरणे ण्यत् वृद्धौ सत्यां पाक्षिकोह्रस्वश्च निपात्यते। यथा–अमा सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्कौ–अमावास्या, अमावस्या ॥

अमा उपपद हो तो वस धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त अमावस्य यह विकल्प से निपातित है ॥ १२२ ॥

छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥१२३॥

छन्दसीमे निपात्यन्ते। कृन्तते निस्पूर्वा क्यपि प्राप्ते ण्यत्। आद्यन्तयोर्विपर्यासः निसः षत्वं च। निष्टर्क्यं चिन्वीत। देव शब्दे उपपदे ह्वयते र्जुहोते र्वा क्यप् दीर्घश्च। स्पर्धते वा उ देवहूये। प्र उत् आभ्यां नयतेः क्यप्। प्रणीयः। उन्नीयः। उत्पूर्वाच्छिषेः क्यप्। उच्छिष्यः। मृङ्स्तृञ् ध्वृभ्यो यत्। मर्यः। स्तर्या। स्त्रियामेवायम्। ध्वर्यः। खनेर्यण्ण्यतौ। खन्यः, खान्यः। यजेर्यः। शुन्धध्वं देव्याय कर्मणे देवयज्यायै। आङ्पूर्वात् पृच्छेः क्यप्। आपृच्छ्यम्। सीव्यतेः क्यप् षत्वं च। प्रतिषीव्यः। ब्रह्मणिवदेर्ण्यत्। ब्रह्मवाद्यम्। भवतेः स्तौतेश्च ण्यत्। भाव्यः। स्ताव्यः। उपपूर्वाच्चिनोतेर्ण्यत् आयादेशश्च पृडे उत्तरपदे। उपचाय्यपृडम्। (हिरण्य इतिवाक्यम्)। उपचेयपृडमन्यत्। मृडसुखने। पृड चेत्यस्मादिगुपध लक्षणः कः ॥

निष्टर्क्यादि १८ शब्द इस सूत्र में निपातित हैं ॥ १२३ ॥

ऋहलोर्ण्यत् ॥ १२४ ॥

ऋहलोः, ण्यत्। ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् स्यात्। यथा—आर्य्यस्य कार्यं भवता च वार्य्यम्। वाक्यं न वाच्यम् विपरीतबुद्धे!॥

ऋवर्णान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय हो ॥ १२४ ॥

ओरावश्यके ॥ १२५ ॥

ओः, आँ० के। उवर्णान्ताद् धातोर्ण्यत् स्यादवश्यं भावे द्योते। यथा—लाव्यम्। पाव्यम्॥

अवश्य काटने के योग्य। अवश्य साफकरने के योग्य। आवश्यक अर्थ द्योत्य हो तो उवर्णान्त धातु से ण्यत् प्रत्यय हो ॥ १२५ ॥

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ।१२६।

आ० चमः, च। एभ्यो धातुभ्यः ण्यत् स्यात्। यथा—(षुञ्-अभिषवे)-आसाव्यम्। (यु-मिश्रणे)-याव्यम्। (डु-वप्-बीजसन्ताने) वाप्यम्। बीज सन्तानम्, क्षेत्रे विकिरणम्, गर्भाधानम् च। अयं छेदनेऽपिकेशान्-वपति। (रप, लप--व्यक्तायां वाचि)--राप्यम्, लाप्यम्। (त्रपूष्--लज्जायाम्)-त्राप्यम्। (चमु-अदने)-आचाम्यम्॥

आङ् पूर्वक सु, वपि रपि, लपि, त्रपि तथा चमु धातु से ण्यत् प्रत्यय हो १२६

आनाय्योऽनित्ये ॥ १२७ ॥

आना य्यः, अं० त्ये। आङ् पूर्वान्नयते र्ण्यद्, आदेशश्च निपात्यते। यथा—आनाय्यो दक्षिणाग्नि विशेष एवेदम्। स हि गार्हपत्यादानीयतेऽनित्यश्च। सततमप्रज्वलनात्॥

यदि अनित्य अर्थ वाच्य हो तो आङ् पूर्वक णीञ् धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त आनाय्य यह निपातित है ॥ १२७ ॥

प्रणाय्योऽसम्मतौ ॥ १२८ ॥

प्र० य्यः, अ० तौ । असम्मतावभिधेये प्रणाय्य इति निपात्यते। सम्मतिः प्रीति विषयी भवनं कर्म्मव्यापारः । तथा भोगेष्वादरोऽपि सम्मतिः । यथा-प्रणाय्यः-चौरः । प्रीत्यनर्हइत्यर्थः । प्रणाय्योऽन्ते वासी । विरक्त इत्यर्थः ॥

असम्मति अर्थ में प्र पूर्वक णीञ् धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त प्रणाय्य यह निपातित है।

पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवास सामिधेनीषु ॥ १२९ ॥

पा० धाय्याः, मा० षु । पाय्यादयः शब्दा निपात्यन्ते यथासङ्ख्यं माने हविषि निवासे सामिधेन्यां चाभिधेयायाम् । यथा-मीयतेऽनेनेतिपाय्यम्-मानम् । ण्यत् धात्वादेः पत्वं च । आतो युगिति युक् । मम्यङ् नीयते होमार्थमग्निं प्रतीति सान्नाय्यम् -हविर्विशेषः, ण्यदादेशः, समोदीर्घश्च निपात्यते । निचीयतेऽस्मिन्धान्यादिकं-निकाय्यः निवासः । अधिकरणे ण्यत् । आय्, धात्वादेः कुत्वं च निपात्यते धीयतेऽनया समिदिति--धाय्या--ऋक् ॥

मान, हविष्, निवास तथा सामिधेनी अर्थ में यथा क्रम पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य तथा धाय्या निपातित हैं ॥ १२९ ॥

क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ ॥ १३० ॥

क्रतावभिधेये कुण्डपाय्य सञ्चाय्य इतीमौशब्दौ निपात्येते । पिबतेरधिकरणे यत् युक् च । यथा--कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोमः-कुण्डपा-

य्यः-क्रतुः। सम्पूर्वाच्चिनोतेर्ण्यत्, आयादेशश्च। सञ्चीयतेऽस्मिन् सो-मइति सञ्चाय्यः क्रतुः॥

क्रतु (यज्ञ) अर्थ में कुण्डपाय्य तथा सञ्चाय्य निपातित हैं॥ १३० ॥

अग्नौपरिचाय्योपचाय्यसमूह्याः १३१

अग्नि धारणार्थे स्थलविशेषे इमोनिपात्यन्ते। परि, उप पूर्वाच्चि-नोतेर्ण्यत्। सम्पूर्वाद् वहतेः सम्प्रसारणं दीर्घत्वं च। यथा-परिचाय्यः। उपचाय्यः। समूह्यं चिन्वीत॥

अग्नि धारणस्थल विशेष अर्थमें परिचाय्य, उपचाय्य तथा समूह्य निपातित हैं॥

चित्याग्निचित्ये च॥ १३२॥

चित्यशब्दोऽग्निचित्या शब्दश्च निपात्यते। यथा-चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्नेश्चयन मग्निचित्या॥

चित्य तथा अग्निचित्या निपातित हैं॥ १३२॥

ण्वुल्तृचौ॥ १३३॥

सर्व धातुभ्य इमौ स्याताम्। (कर्त्तरिकृद्)-इति कर्त्रर्थे। (युवो-रनाकौ)-यथा-- कारकः। हारकः। कारिका। हारिका। कर्त्ता। हर्त्ता। कर्त्री। हर्त्री॥

धातु मात्र से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हों॥ १३३॥

नन्दिग्रहि पचादिभ्योल्युणिन्यचः १३४

न० भ्यः, ल्यु० चः। नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रहादेर्णिनिः, पचादेरच्

१-(७। ३। ४४) इत्यतइकारः। (४। १। ४)इतिटाप्। २-(४। १। ५)-इतिङीप्।

स्यात्। यथा–नन्दयतीति-नन्दनः। जनमर्दयतीति-जनार्दनः। मधुसूदनः। विशेषेण भीषयते इतिविभीषणः। लवणः नन्द्यादि गणेनिपातनाएणत्वम्॥ ग्राही। स्थायी। मन्त्री। विषयी वृद्ध्य भावो निपातनात्। विपयी- इह षत्वमपि। परिभावी, परिभवी, पाक्षिको वृद्ध्याभावो निपात्यते। पचादिराकृतिगणः। पचः। श्वपच इत्यपि। पततीति पतः। पारापत इत्यपि। वदतीति-वदः। कद्वदो यद्वद इत्यपि। वष्टीति–वशः। व्रणयतीति--व्रणः। रणयतीति--रणः। क्षमः। भरः। जार भरः। वृणोतीति--वरः। कन्या-वर-इत्यपि। गोपः। सर्पः। नर्त्तः। दर्शः। मेषः॥

गण पठित नन्द्यादि ग्रह्यादि तथ, पचादि धातुओं से क्रमशः ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय हों॥ १३४॥

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः॥ १३५॥

एभ्यः कः स्यात्। यथा--क्षिपः। लिखः। बुधः। कृशः। जानातीति--ज्ञः। प्रीणातीति प्रियः। किरतीति--किरः॥

इक् प्रत्याहार जिसकी उपधा में हो तथा ज्ञा प्री और कृ धातु से क प्रत्यय हो। १३५

आतश्चोपसर्गे॥ १३६॥

आतः, च, उ०ऽगे। सोपसर्गेभ्य, आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः कः स्यात्। यथा- प्रज्ञः। प्रस्थः। बलप्रदः॥

पण्डित। एक ऽ१ सेर। बलको देनेवाला। उपसर्गपूर्वक आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो॥ १३६॥

पाघ्राध्माधेट्दृशः शः॥ १३७॥

एभ्यो धातुभ्यः शः स्यात् । यथा- पिबतीति-पिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । धया-कन्या । पश्यः ॥

पा, घ्रा, ध्मा, धेट् तथा दृशिर् धातु से श प्रत्यय हो ॥१३७॥

अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च ॥१३८॥

अ० तं, लि० भ्यः, च । अनुपसर्गेभ्यो लिम्पादिभ्यः शः स्यात् । यथा-लिम्पतीति-लिम्पः । विन्दः । धारयः । पारयः वेदयः । उदेजयः । चेतयः । (सातिः-सुखार्थः -सौत्रो हेतुमण् ण्यन्तः सातयः । साहयः । (नौ लिम्पेर्वाच्यः) । निलिम्पाः देवाः ॥ (गवादिषु विन्देः सञ्ज्ञायाम्) । यथा-गोविन्दः । अरविन्दः ॥

लीपनेवाला । प्राप्त होनेवाला । धारण करने वाला । पालन करनेवाला । जतलानेवाला । कंपानेवाला । चेतनेवाला । सुखदाता । सहनेवाला । उपसर्ग रहित लिम्पादिधातुओं से श प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

ददातिदधात्योर्विभाषा ॥ १३९ ॥

द० त्योः, वि० षा । दाञो धाञश्च वाशः स्यात् । यथा-ददः, दायः । दधः, धायः ॥

दाता। धारणकरने वाला अथवा पोषण करनेवाला । डु-दाञ और डु धाञ धातु से श प्रत्यय हो ॥ १३९ ॥

ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥ १४० ॥

ज्व० भ्यः, णः । इतिशब्द आद्यर्थः । ज्वलादिभ्यः अकसन्तेभ्यो वा णः स्यात् । पक्षे अच् । यथा-ज्वालः, ज्वलः । चालः, चलः ॥

(तनोते रूपसङ्ख्यानम्) ॥ अवतनोतीति-अवतानः ॥

आगकीलपट । चलनेवाला । ज्वल धातुसे लेकर कसपर्यन्त धातुओं से विकल्पसे ण प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

श्याऽऽद्व्यधास्रुसंस्वतीणवसाऽवहृ लिहश्लिषश्वसश्च ॥ १४१ ॥

श्या० सं०, च । श्यैङ् प्रभृतिभ्यो नित्यं णः स्यात् । यथा-अवश्यायः, प्रतिश्यायः । आत्-दायः । धायः । व्याधः । (स्रु-गतौ)-आङ् पूर्वः, सम्पूर्वश्च । आस्रावः,संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥

गमनकर्त्ता । दाता, धाता । बहेलिया । चूना, टपकना । गमनकर्त्ता । समाप्ति, विराम । हरण । चाटना, चटनी । अस्पर्श । दम, स्वास । श्यैङ्, आकारान्त, व्यध, आङ् + स्रु, सम् + स्रु अति + इण, अव + सा, अव + हृ, लिह, श्लिष और श्वस धातु से ण प्रत्यय हो ॥ १४१ ॥

दुन्योरनुपसर्गे ॥ १४२ ॥

दुन्योः, अं० र्गे । णः स्यात् । यथा-दुनोतीति-दावः । नयतीति नायः ॥

अग्नि । नेता । उपसर्ग रहित दु-दु तथा णीञ् धातु से ण प्रत्यय हो ॥ १४२ ॥

विभाषा ग्रहः ॥ १४३ ॥

ग्रहो णो वा स्यात् । पक्षेऽच् । व्यवस्थित विभाषेयम् । यथा-तेन जलचरे ग्राहः, ज्योतिषि-ग्रहः ॥

ग्रह धातुसे विकल्प करके ण प्रत्यय हो ॥ १४३ ॥

१-(७ । ३ । ६६) इतियुक् ।

गेहे कः ॥ १४४ ॥

गेहे कर्त्तरि ग्रहेः कः स्यात् । यथा—गृह्णाति धान्यादिकमिति—गृहम् तात् स्थ्याद्-गृहाः—दाराः ॥

अर्थ । गेह (घर) कर्त्ता होने पर ग्रह धातु से क प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

शिल्पिनि ष्वुन् ॥ १४५ ॥

क्रियाकौशलम्-शिल्पम् । तद्वतिकर्त्तरि ष्वुन् स्यात् । (नृति-खनिरञ्जिभ्य एव)। यथा—नर्त्तकः, नर्त्तकी। खनकः, खनकी ।(असि अके अने च रञ्जेर्न लोपो वाच्यः) । रजकः, रजकी ॥

शिल्पी कर्त्ता वाच्य हो तो नृति, खन तथा रञ्जधातु से ष्वुन् प्रत्यय हो १४५

गस्थकन् ॥ १४६ ॥

गेः, थकन् । शिल्पिनि कर्त्तरि गायतेः थकन् स्यात् । यथा—गाथकः, गाथिका ॥

गानेवाला (स्त्री)। शिल्पी कर्त्ता हो तो गै धातु से थकन् प्रत्यय हो ॥ १४६॥

ण्युट् च ॥ १४७ ॥

शिल्पिनि कर्त्तरि गायते ण्युट् स्यात् । यथा—गायनः, गायनी ॥

गानेवाला (स्त्री) । यदि शिल्पी कर्त्ता हो तो गै धातु से ण्युट् प्रत्यय हो १४७

हश्चव्रीहिकालयोः ॥ १४८ ॥

हः, च, व्री० योः । ओहाक ओहाङश्च ण्युट् स्यात् व्रीहौ

काले च, कर्त्तरि । यथा–जहात्युदकमिति हायनो व्रीहिः । जहाति भावानिति-हायनोवर्षम्, जिहीते प्राप्नोतीति वा ॥

व्रीहि तथा काल अर्थमें ओहाक् तथा ओहाङ् धातु से ण्युट् प्रत्यय हो ।१४८।

प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् ॥ १४९ ॥

स्पष्टम् । समभिहारग्रहणेन साधुकारित्वं लक्ष्यते । यथा–प्रवकः । सरकः । लवकः ॥

सुष्ठु गन्ता २ । सुष्ठु काटनेवाला । समभिहार अर्थ में प्रु, सृ तथा लू धातु से वुन् प्रत्यय हो ॥ १४९ ॥

आशिषि च ॥ १५० ॥

आशीर्विषयार्थ वृत्तेर्धातोर्वुन् स्यात् कर्त्तरि । यथा–जीवतात्–जीवकः । नन्दतात्–नन्दकः । आशीः प्रयोक्तृ धर्मः । आशासितुः पित्रादेरियमुक्तिः ॥

आशीर्वाद अर्थ में धातु से वुन् प्रत्यय हो ॥ १५० ॥

इति तृतीयाऽध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तिमगात्.

अथ द्वितीयः पादारम्भः ।

कर्म्मण्यण् ॥ १ ॥

कर्म्मणि, अण् । कर्म्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात् । उपपद समासः । यथा–मोदकान् करोतीति–मोदककारः । कुम्भकारः । कुम्भकारी । (शीलिकामि भक्ष्या चरिभ्योणः) ॥ अणोऽपवादार्थं वार्त्तिकम् । ओदनशीलः, ओदनशीला । मोदककामः, मो-

दककामा। मांसभक्षः, मांसभक्षा। कल्याणचारः, कल्याणचारा। (ईक्षिक्षमिभ्यांच) सुखप्रतीक्षः, सुखप्रतीक्षा। बहुक्षमः, बहुक्षमा॥

हलवाई। कुम्हार, कुम्हारी। कर्म्म उपपद हो तो धातु से अण् प्रत्यय हो॥ १॥

ह्वावामश्च ॥ २ ॥

ह्वा० मः, च। ह्वेञ् वेञ् माङ् इत्येभ्यो धातुभ्यः कर्म्मण्युपपदेऽण् स्यात्। यथा-स्वर्गह्वायः। तन्तुवायः। धान्यमायः॥

सुखको कहनेवाला। जुलाहा। अन्न को तौलनेवाला (तौला)। कर्म्म उपपद हो तो ह्वेञ् वेञ् तथा माङ् धातु से अण् प्रत्यय हो॥ २॥

आतोऽनुपसर्गे कः ॥ ३ ॥

आतः, अं०र्गे, कः। आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे कः स्यात् (आतोलोपः)। यथा गोदः। बुद्धिदः। पार्ष्णित्रम्। (कविधौ सर्वत्रप्रसारणिभ्योडः) ब्रह्म जिनातीति-ब्रह्मज्यः। सर्वत्र ग्रहणात्। आतश्चोपसर्गे-आह्वः। प्रह्वः॥

गायको देनेवाला। बुद्धि को देनेवाला। एड़ी को बचानेवाला। कर्म उपपद हो तो उपसर्ग रहित आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो॥ ३॥

सुपि स्थः ॥ ४ ॥

सुपि-इतियोगो विभज्यते। सुपि उपपदे आदन्ताद्धातोः कः स्यात्। यथा-द्वाभ्यांपिबतीति-द्विपः। समस्थः। विषमस्थः। ततः-(स्थः) सुपि तिष्ठतेः कः स्यात्। आरम्भसामर्थ्याद्भावे। आखूनामुत्थानम्-आखूत्थः॥

हस्ती। बीच की दशाका। विषम दशाका। चूहोंका उठना। सुबन्त उपपद हो तो आकार तथा स्था धातु से क प्रत्यय हो॥ ४॥

तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ ५ ॥

तुन्दशोकयोः कर्म्मणोरुपपदयोः परिमृजापनुदोर्धात्वोः कः स्यात्। (आलस्य सुखाहरणयोरिति वाच्यम्) यथा--तुन्दं मार्ष्टी-ति-तुन्दपरिमृजः-अलसः। शोकापनुदः सुखस्याहर्त्ता। यश्च संसारा सारत्वोपदेशेन शोकमपनुदति--स शोकापनुदः॥ (क प्रकरणे-मूलविभुजादिभ्य उपसङ्ख्यानम्)॥ यथा--मूलानि विभुजाति--मूल विभुजो रथः। नखमुचानि धनूंषि। कौमोदते-कुमुदम्। आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः। कुध्रः। गिलतीति-गिलः॥

तुन्द तथा शोक कर्म्म क्रमशः उपपद हों तो परिपूर्वक मृजूष तथा अप पूर्वक णुद धातु से क प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

प्रे दाज्ञः ॥ ६ ॥

दारूपात्, जानातेश्च प्रोपसृष्टात् कर्मण्युपपदेकः स्यात्। यथा-सर्वप्रदः। पथिप्रज्ञः॥

सबकुछ देनेवाला। मार्गज्ञाता। कर्मउपपद हो तो प्रपूर्वकडु-दाञ् तथा ज्ञा धातु से क प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

समिख्यः ॥ ७ ॥

कर्मण्युपपदेसम्पूर्वात् ख्याधातोः कः स्यात्। यथा- गां संचष्टेगो सङ्ख्यः॥

गौ की गणना करनेवाला। कर्म उपपद हो तो सम् पूर्वक ख्या धातु से क प्रत्यय हो। ७॥

गापोष्टक् ॥ ८ ॥

गापोः, टक्। अनुपसृष्टाभ्यामाभ्यां टक् स्यात् कर्म्मण्युपपदे। यथा--साम गायतीति-सामगः, सामगी। (पिबतः सुराशीध्वो रितिवाच्यम्) यथा--सुरापः, सुरापी। शीधुपः, शीधुपी॥

सामवेदको गानेवाला, सामवेदको गानेवाली। सुरा (शराब) को पीनेवाला (ली)। ईख के रसको पीनेवाला, पीनेवाली। कर्म उपपद हो तो उपसर्ग रहित गा धातु से टक् प्रत्यय हो॥ ८॥

हरतेरनुद्यमनेऽच्॥ ९॥

हरतेः, अ० ने, अच्। कर्मण्युपपदे हरते रनुद्यमने वर्त्तमानादच् स्यात्। यथा-अंशं हरतीति-अंशहरः॥ (शक्ति लाङ्गलाङ्कुशतोमरयष्टिघटघटी धनुष्षु ग्रहेरुपसङ्ख्यानम्)॥ यथा शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः। अङ्कुशग्रहः। यष्टिग्रहः। तोमरग्रहः। घटग्रहः। घटीग्रहः। धनुर्ग्रहः॥ (सूत्रे च धार्यर्थे)। सूत्रग्रहः। यस्तु केवलं सूत्र मुपादत्ते, न तु धारयति-तत्र अणेव-सूत्रग्राहः॥

भागी। कर्म्म उपपद हो तो अनुद्यम अर्थमें वर्त्तमान हृ धातु से अच् प्रत्यय हो

वयसि च॥ १०॥

उद्यमनार्थमिदंसूत्रम्। वयसि गम्ये कर्मण्युपपदे हरतेरच् स्यात्। यथा--कवचहरः-कुमारः॥

अवस्था गम्यमान हो तो कर्मोपपद हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो॥ १०॥

आङि ताच्छील्ये॥ ११॥

१—(४।१।१५) इति ङीप्॥

ताच्छील्ये गम्ये आङ् पूर्वाद् हरतेः कर्मण्युपपदेऽच् स्यात् । यथा--पुष्पाण्याहरति तच्छीलः- पुष्पहरः । फलाहरः ॥

जो स्वभाव से ही फूलों को हरण करता है, तथा फलों को । तत् शीलता गम्यमान हो तो आङ् पूर्वक कर्म्मोपपद हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

अर्हः ॥ १२ ॥

कर्म्मण्युपपदेऽर्हतेरच् स्यात् । यथा--धन्यवादार्हः, धन्यवादार्हा । पूजार्हः, पूजार्हा । स्त्रीलिङ्गे विशेषः, इत्येके ॥

धन्यवाद के योग्य । पूजा के योग्य । कर्म उपपद हो तो अर्ह धातु से अच् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

स्तम्बकर्णयोरमिजपोः ॥ १३ ॥

स्त०योः,र०पोः । स्तम्ब कर्ण इत्येतयोः सुबन्तयो रुपपदयोर्यथासङ्ख्य रमिजपोरच् स्यात् ॥ (हस्तिसूचकयोरितिवाच्यम्) ॥ यथा--स्तम्बेरमते-स्तम्बेरमो–हस्ती ॥ कर्णेजपः-सूचकः ॥

स्तम्ब तथा कर्ण सुबन्त उपपद हो तो यथा सङ्ख्य रमु और जप धातुसे अच् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

शमि धातोः सञ्ज्ञायाम् ॥ १४ ॥

शम्युपपदे धातुमात्रात्संज्ञायां विषयेऽच् स्यात् । यथा-शङ्कल्याणं करोतीति-शङ्करः । शम्भवः । शंवदः ॥

१--तत् पुरुषे कृतीति, हलन्तादिति वा, ङे रलुक् ।

कल्याण कर्त्ता (ईश्वर) । कल्याणमय (ईश) । सत्यवक्ता । शम् उपपद हो तो धातु मात्र से संज्ञाविषय में अच् प्रत्यय हो ॥ १४ ॥

अधिकरणे शेतेः ॥ १५ ॥

अधिकरणे सुबन्त उपपदे शेतेरच् स्यात् । यथा -खेशेते-ख शयः । गर्त्तशय ॥ (पार्श्वादिषूपसङ्ख्यानम्)॥ यथा--पार्श्वाभ्यां शेते-पार्श्वशयः । पृष्ठशयः । उदरेण शेते--उदरशयः ॥ (उत्तानादिषु कर्त्तृषु) ॥ उत्तानः शेते-उत्तानशयः । अवमूर्धशयः । अवनतो मूर्धा यस्य असौ-अवमूर्धा । अधोमुखः शेते इत्यर्थः- ॥ (गिरौ डश्छन्दसि) ॥ गिरौ शेते गिरिशयः ॥

आकाश में सोनेवाला । बिलमें सोनेवाला । अधिकरण सुबन्त उपपद हो तो शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

चरेष्टः ॥ १६ ॥

चरेः, टः । अधिकरणे सुबन्ते उपपदे चरेष्टः स्यात् । यथा--समाजेषुचरतीति समाजचरः, समाजचरी ॥

समाजों में भ्रमण करनेवाला (ली) । अधिकरण सुबन्त उपपद हो तो चर धातु से ट प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

भिक्षासेनाऽऽदायेषु च ॥ १७ ॥

एषूपपदेषु चरेष्टः स्यात् । यथा--भिक्षां चरतीति-भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायेति ल्यबन्तम् । आदायचरः ॥

भिक्षार्थ घूमनेवाला । सेना के साथ चलनेवाला । लेकरचलनेवाला । भिक्षा, सेना, तथा आदाय सुबन्त उपपद हों तो चरधातु से ट प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥ १८ ॥

पुरस् अग्रतस् अग्रे इत्येषूपपदेषु सर्त्तेष्टः स्यात् । यथा–पुरःसरतीति–पुरस्सरः । अग्रतस्सरः । अग्रेसरः ॥

आगे जानेवाला । पुरस् अग्रतस् तथा अग्रे उपपद हों तो धातुसे टप्रत्ययहो ॥

पूर्वे कर्त्तरि ॥ १९ ॥

कर्त्तृवाचिनि पूर्वशब्दे उपपदे सर्त्तेष्टःस्यात् । यथा–पूर्वःसरतीति–पूर्वसरः ॥

अग्रगामी । कर्तृ वाचक पूर्वशब्द उपपद होतो सृ धातुसे ट प्रत्ययहो ॥ १९ ॥

कृञोहेतुताच्छील्याऽऽनुलोम्येषु ॥ २० ॥

कृञः, हे०पुं । एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् । अतःकृकमि॰ति (८।३।४६) । इति सः । यथा–यशस्करी–विद्या।अर्थकरः। वचनकरः॥

यशको करने वाली विद्या । धनको इकट्ठा करने वाला । वचनको माननेवाला । हेतु (कारण) ताच्छील्य (स्वभावता) आनुलोम्य (अनुकूलता) गम्यमानहोतो कर्म्मोपपद डु कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो ॥ २० ॥

दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसङ्ख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥ २१ ॥

एषूपपदेषु कृञष्टः स्यात्। यथा–दिवाकरोतीति–दिवाकरः । वि-

भाकरः। निशाकरः। प्रभाकरः। कस्कादित्वात्सः। भास्करः। कारकरः। अन्तकरः। अनन्तकरः। आदिकरः। बहुकरः। नान्दीकरः। किङ्करः। लिपिकरः। लिबिकरः। बालिकरः। भक्तिकरः। कर्तृकरः। चित्रकरः। क्षेत्रकरः। सङ्ख्या—एककरः, द्विकरः, त्रिकरः। जङ्घाकरः। बाहुकरः। अहस्करः। यत्करः। तत्करः। धनुष्करः। अरुष्करः॥ (किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज्विधानम्)॥ किङ्करा। यत्करा। तत्करा। पुंयोगेङीष्॥

सूर्य २। चन्द्रमा। सूर्य, मारनेवाला, यत्नकरनेवाला। अन्तकरने वाला। अनन्तजगत्को बनाने वाला (ईश्वर)। आरम्भ करने वाला। बहुत करने वाला। नाटक के आरम्भ में गाने वाला। नौकर। कापीलिखने वाला, नकल करने वाला। मालगुजारी को वसूल करने वाला। सेवक (भक्त)। कर्त्ता को बनाने वाला (ईश्वर)। तसवीर उतारने वाला। किसान। एक, दो, तीन, कामों को करने वाला। जांघ को बनाने वाला (वैद्य)। भुजा को बनाने वाला। सूर्य्य। प्रयत्न से करने वाला। विस्तार करने वाला। धनुष को बनानेवाला। व्रण करने वाला। दिवादिकर्म्म उपपद होंतो डु-कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो॥ २१॥

कर्म्मणि भृतौ॥ २२॥

कर्म्मशब्दे उपपदे करोतेष्टः स्यात्। यथा—कर्म्मकरोतीति—कर्मकरः—सेवक इत्यर्थः॥

भृति गम्यमान हो तो कर्म्मोपपद होनेपर डु-कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो॥ २२॥

न शब्द श्लोककलह गाथा वैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु॥ २३॥

एषूपपदेषु कृञष्टो न स्यात्। यथा—शब्दंकरोतीति—शब्दकारः। श्लोककारः। कलहकारः। गाथाकारः। वैरकारः। चाटुकारः। सूत्रकारः। मन्त्रकारः। पदकारः॥

शब्दको करनेवाला । श्लोक को बनानेवाला । लड़ाई करनेवाला । गाथाको बनानेवाला । शत्रुता करनेवाला । खुशामदी । मूत्रको बनानेवाला । गुप्तपरिभाषण करनेवाला । पदको रचनेवाला । शब्दादि कर्म्म उपपद हों तो डु-कृञ् धातु से ट प्रत्यय न हो ॥ २३ ॥

स्तम्बशकृतोरिन् ॥ २४ ॥

स्त० तोः, इन् ॥ (व्रीहि वत्सयोरिति वाच्यम्) ॥ स्तम्ब शकृत् कर्म्मणोरुपपदयोः करोतेरिन् स्यात् । यथा—स्तम्बकरिः—व्रीहिः । शकृत्करिः—वत्सः ॥

स्तम्ब तथा शकृत् कर्म्म उपपद हों तो डु-कृञ् धातु से इन प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥ २५ ॥

हरतेः, दृ० योः, पशौ । पशौकर्त्तरि दृतिनाथयोरुपपदयोर्हृञ इन् स्यात् । यथा—दृतिं हरतीति—दृतिहरिः । नाथंनासारज्जुं हरतीति—नाथहरिः ॥

चरसा खींचनेवाला पशु । नाथको तोड़नेवाला पशु । पशु कर्त्ता हो तो दृति तथा नाथ कर्म उपपद होनेपर हृञ् धातु से इन् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ॥ २६ ॥

फः० हिः, आ० रिः, च । उपपदस्य एदन्तत्वं ग्रहे रिन् प्रत्ययश्च निपात्यते । यथा—फलानिगृह्णातीति—फलेग्रहिः-वृक्षः । आत्मशब्दस्य उपपदस्य मुमागम इन्प्रत्ययश्च भृञो निपात्यते । आत्मानंबिभर्त्ति—आत्मम्भरिः । चात्—कुक्षिम्भरिः । उदरम्भरिः ॥

वृक्ष । स्वयं पेट भरनेवाला । फलेग्रहि तथा आत्मम्भरि शब्द निपातित हैं २६

छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ २७ ॥

एभ्यः कर्म्मण्युपपदे छन्दसीन् स्यात्। यथा-ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम् । गोसनिम् । ये पथां पथि रक्षयः । हविर्मथीनाम् ॥

कर्म्म उपपद हो तो छन्दो विषयमें वन सन रक्षि तथा मथ धातु से इन् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

एजेः खश् ॥ २८ ॥

कर्म्मण्युपपदे ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्। यथा-जनान् एजयतीति -जनमेजयः ॥

मनुष्यों को कम्पाने वाला। कर्म उपपद हो तो ण्यन्त एजृ धातु से खश् प्रत्यय हो ॥

नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥ २९ ॥

अत्र वार्त्तिकम् ।(स्तने धेटो नासिकायां ध्मश्चेति वाच्यम्)॥यथा--स्तनम् धयतीति--स्तनन्धयः।धेटष्टित्त्वात्- स्तानन्धायी । नासिकन्धमः । नासिकन्धयः ॥

स्तन पीनेवाला। नाकसे धौंकने वाला। नासिका तथा स्तन कर्म्म उपपद हों तो ध्मा तथा धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

नाडीमुष्ट्योश्च ॥ ३० ॥

ना॰ ष्ट्योः, च । अनयो रुपपदयोः कर्म्मणोर्ध्माधेटोः खश् स्यात् । यथासङ्ख्यं नेष्यते । यथा--नाडिन्धमः । नाडिन्धयः । मुष्टिन्धमः । मुष्टिन्धयः ॥ (घटी खारीखरीषूपसङ्ख्यानम्) । यथा--घटिन्धमः । घटिन्धयः । खारिन्धमः । खारिन्धयः । खरिन्धमः । खरिन्धयः ॥

१-(६ । ३ । ६७) इति मुमागमः ॥ २-(६ । ३ । ६६) इति ह्रस्वम् ।

सुनार। बालक। नाडी तथा मुष्टि कर्म्म उपपद हों तो ध्मा तथा धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

उदि कूले रुजिवहोः ॥ ३१ ॥

उत्पूर्वाभ्यां रुजिवहिभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् स्यात्। यथा--कूल मुद्रुजतीति--कूलमुद्रुजो रथः। कूलमुद्वहः ॥

रथ, गाड़ी। नदी! कूलकर्म उपपद हो तो उत्पूर्वक रुजो तथा वह धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

वहाभ्रे लिहः ॥ ३२ ॥

वह अभ्र इति कर्मणोरुपपदयोर्लिहः खश् स्यात्। यथा--वहः स्कन्धः। तं लेढीति--वहंलिहो गौ। अभ्रं लिहो वायुः ॥

वह तथा अभ्र कर्म उपपद हों तो लिह धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३२ ॥

परिमाणे पचः ॥ ३३ ॥

परिमाणे कर्मण्युपपदे पचः खश् स्यात्। यथा--प्रस्थं पचतीति--प्रस्थंपचा स्थाली। खारिम्पचः कटाहः ॥

एकऽ१सेर जिसमें पके ऐसी बटलोई। खारी (१२॥।ऽ२) जिस में पके ऐसी कड़ाही। परिमाण (प्रस्थादि) वाचक कर्म उपपद हों तो डु-पचष् धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३३ ॥

मितनखे च ॥ ३४ ॥

मित नख इति कर्मणोरुपपदयोः पचः खश् स्यात्। यथा--मितम्पचतीति--मितम्पचा--ब्राह्मणी। नखम्पचा--यवागूः ॥

परिमित पकानेवाली ब्राह्मणी। नखों को सन्ताप पहुँचानेवाली श्राणा (खिचड़ी)। मित तथा नख कर्म्म उपपद हों तो डु-पचष् धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

विध्वरुषोस्तुदः ॥ ३५ ॥

वि० षोः, तुदः । एतयोः कर्मणोरुपपदयोस्तुदः खश् स्यात् । यथा—विधुन्तुदः । मुमिकृते—(संयोगान्तस्यलोपः)—अरुन्तुदः ॥

वायु को दूषित करनेवाला । कार्य्य को विगाड़नेवाला । विधु तथा अरुष् कर्म उपपद हों तो तुद धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ॥ ३६ ॥

अ० योः, दृ० पोः । असूर्य ललाट इत्येतयोः कर्मणो रुपपदयो-र्दृशितपोः खश् स्यात् । असूर्यमित्यसमर्थसमासः । दृशिनानञः सम्बन्धात् । सूर्यं न पश्यन्तीत्यसूर्यम्पश्याराजदाराः । ललाटन्तपः सूर्य्यः ॥

सूर्य को न देखनेवालीं राजाओं की रानी । ललाट को तपानेवाला सूर्य । सूर्य्य तथा ललाट कर्म्म उपपद हों तो यथाक्रम दृशिर् तथा तप धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥ ३७॥

उ० माः, च । उग्रम्पश्य इरम्मद पाणिन्धम इतीमे शब्दा निपात्यन्ते । यथा-उग्रं पश्यन्तीति--उग्रम्पश्याः।इरा-उदकम् । तेनमाद्यति दीप्यते-अविन्धनत्वादिति--इरम्मदो- मेघज्योतिः । निपातनात्श्यन्न । पाण-योध्मायन्ते--अस्मिन्निति--पाणिन्धमोऽध्वा । अन्धकाराद्यावृत इत्यर्थः । सर्पाद्यपनोदनाय पाणयः शब्द्यन्ते ॥

उग्रम्पश्य, इरम्मद तथा पाणिन्धमशब्द खश् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ३७ ॥

प्रियवशे वदः खच् ॥ ३८ ॥

प्रिय वश इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्वदः खच् स्यात्।यथा–प्रियंवदतीति–प्रियंवदः।वशंवदः ॥ (गमेः सुचिवाच्यः)॥असञ्ज्ञार्थमिदम्। मितंगमोहस्ती ॥(विहायसो विह इतिवाच्यम्)॥ विहायसा गच्छति–विहंगमः॥ (खच्चडिद्वा वाच्यः)॥ विहङ्गः, विहङ्गमः। भुजङ्गः, भुजङ्गमः॥ (डेचविहायसो विहादेशो वाच्यः) ॥ विहगः। भुजगः ॥

प्रिय बोलने वाला। यथार्थ वक्ता। प्रिय तथा वश कर्म उपपद होंतो वद धातुसे खच् प्रत्यय हो ॥ ३८ ॥

द्विषत् परयोस्तापेः ॥ ३९ ॥

द्वि० योः, तापेः। द्विषत्परयोः कर्मणो रुपपदयो स्तापेः खच् स्यात्। यथा–द्विषन्तम्, परं वा, तापयतीति द्विषन्तपः, परन्तपः॥

वैरिओं को सन्तप्त करनेवाला। द्विषत् तथा पर कर्म्म उपपद हों तो तापि धातु से खच् प्रत्यय हो ॥ ३९ ॥

वाचि यमो व्रते ॥ ४० ॥

वाँचि, यमेः, व्रते। वाक् शब्दे उपपदे यमेः खच् स्यात् व्रतेगम्ये। यथा–वाचंयमः ॥

वाणी को संयममें करनेवाला। वाक् शब्द उपपद हो तो व्रत गम्यमान होनेपर यम धातु से खच् प्रत्यय हो ॥ ४० ॥

पूस्सर्वयोर्दारिसहोः ॥ ४१ ॥

पूँ० योः, दाँ० होः। पुर् सर्व इत्येतयोः कर्मणो रुपपदयोर्यथा

१-(६। ४। ९४)-इत्युपधाह्रस्वः। २-(६। ३। ६९) इति निपातः।

सङ्ख्यं दारिसहोः खच् स्यात् । यथा--पुरं दारयतीति- पुरन्दरः । सर्वसहः॥ (भगे च दारेरिति वाच्यम्)॥भगं दारयतीति-भगन्दरः॥

चौर । राजा, या सब कुछ सहने वाला । पुर तथा सर्व कर्म उपपद हों तो यथा सङ्ख्य दारि तथा सह धातु खच् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ॥ ४२ ॥

एतेषु कर्मसूपपदेषु कषः खच् स्यात् । यथा—सर्वं कषतीति सर्वङ्कषः-खलः । कूलङ्कषा-नदी । अभ्रङ्कषः—वायुः । करीषङ्कषा वात्या॥

सर्व, कूल, अभ्र तथा करीष कर्म उपपद हों तो कष धातु से खच प्रत्ययहो॥४२॥

मेघर्त्तिभयेषु कृञः ॥ ४३ ॥

एषुकर्म्मसूपपदेषु कृञ् खच् स्यात् । यथा—मेघं करोतीति मेघङ्करः यज्ञः । ऋतिङ्करः—धर्म्मः । भयङ्करः-अधर्म्मः । भयशब्देन तदन्तविधिः । अभयङ्करः ॥

मेघ, ऋति तथा भय कर्म उपपद हों तो डु-कृञ धातु से खच् प्रत्यय हो ॥ ४३॥

क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ॥ ४४ ॥

एषु कर्म्मसूपपदेषु कृञोऽण् स्यात्, चात् खच् । यथा--क्षेमकारः, क्षेमङ्करः । प्रियकार, प्रियङ्करः । मद्रकार, मद्रङ्करः ॥

कुशलताकारक । प्रीतिकरने वाला । हर्षकारक । क्षेम प्रिय तथा मद्र कर्म्म उपपद होंतो डु-कृञ् धातु से अण् तथा खच् प्रत्यय हो ॥ ४४ ॥

आशिते भुवः करणभावयोः ॥ ४५ ॥

आशितशब्दे उपपदे भवतेः खच् स्यात् । यथा--आशितो भव-

त्यनेनेति--आशितम्भवः--ओदनः। आशितस्य भवनम्--आशितम्भवम् वर्त्तते ॥

आशित (भुक्त) कर्म्म सुबन्त उपपद होतो भू धातु से करण तथा भाव में खच् प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

सञ्ज्ञायां भृतॄवृजि धारि सहितपिदमः ॥ ४६ ॥

सञ्ज्ञायामेभ्यः खच् स्यात्। यथा-विश्वम् बिभर्त्तीति—विश्वम्भरः, विश्वम्भरा। रथन्तरम्—साम। इह रथेन तरतीति--व्युत्पत्तिमात्रम्, न त्ववयवार्थानुगमः। पतिंवरा—कन्या। शत्रुञ्जयः—हस्ती॥युगन्धरः—वृषभः। शत्रुंसहः। शत्रुन्तपः। अरिन्दमः॥

सञ्ज्ञा विषय में भृ, तॄ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि तथा दम धातु से खच् प्रत्यय हो॥

गमश्च ॥ ४७ ॥

गमः, च। संज्ञाया विषये सुप्युपपदे गमः खच् स्यात्। यथा सुतङ्गमः॥

संज्ञा विषय में सुबन्त उपपद हो तो गम धातु से खच् प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

अन्ताऽत्यन्ताऽध्वदूरपार सर्वाऽनन्तेषु डः ॥ ४८ ॥

एषु कर्मसूपपदेषु गमेर्डः स्यात्। डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। यथा-अन्तं गच्छतीति--अन्तगः। अत्यन्तगः। अध्वगः। दूरगः। पारगः। सर्वगः। अनन्तगः॥ (सर्वत्रपन्नयोरुपसङ्ख्यानम्)॥ यथा सर्वत्रगच्छतीति--सर्वत्रगः। पन्नं गच्छतीति- पन्नगः।

पन्नामिति पद्यतेः क्तान्तं क्रियाविशेषणम् । (उरसोलोपश्च) ॥ उरसा गच्छतीति उरगः ॥ (सुदुरोरधिकरणे) ॥ सुखेन गच्छत्यत्र-सुगः । दुःखेन गच्छत्यस्मिन्निति--दुर्ग ॥ (अन्यत्रापि दृश्यते इतिवाच्यम्) ॥ ग्रामगः ॥

पार जानेवाला । बहुत ही चलनेवाला । पथिक । दूर जानेवाला । पारजानेवाला । सब जगह गानेवाला । टेढ़ चलनेवाला । अन्त आदि कर्म उपपद हों तो गम धातु से ड प्रत्ययहो ॥ ४८ ॥

आशिषि हनः ॥ ४९ ॥

आशिषि गम्यमानायां कर्म्मण्युपपदे हनधातोर्डः स्यात् । यथा-शत्रुं वध्यात्-शत्रुहः ।(दारा वाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम्)॥ दारुशब्दे उपपदे आङ् पूर्वाद् हन्ते रण् टकारश्चान्तादेशो वक्तव्यइत्यर्थः । यथा-दार्वाघाटः । (चारौ वा)॥ चार्वाघाटः,चार्वाघातः । (कर्मणि समि च) ॥ कर्म्मण्युपपदे सम्पूर्वाद् हन्ते रुक्तं वेत्यर्थः । यथा-वर्णान् संहन्तीति-वर्णसङ्घाटः, वर्णसङ्घातः । पदसङ्घाटः, पदसङ्घातः ॥

आशीर्वाद गम्यमान हो तो कर्मउपपद होनेपर हन धातु से ड प्रत्यय हो ४९

अपे क्लेशतमसोः ॥ ५० ॥

क्लेश तमसोः कर्मणो रुपपदयो रपपूर्वाद् हन्तेर्डःस्यात् । यथा-क्लेशापहः पुत्रः । तमोपहः सूर्यः ॥

क्लेश और तमस् कर्मउपपद हों तो अपपूर्वक हन धातु से ड प्रत्यय हो ॥५०॥

कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥ ५१ ॥

कुं० योः, णिनिः । कुमारशीर्षयोरुपपदयो र्हन्तेर्णिनिः स्यात् । यथा—कुमारघाती । शिरसः शीर्ष भावो निपात्यते-शीर्षघाती ॥

लड़के को मारने वाला । शिर को काटने वाला । कुमार और शीर्ष कर्म उपपद हों तो हन धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

लक्षणेजायापत्योष्टक् ॥ ५२ ॥

लं० णे, जां त्योः, टक् । लक्षणवति कर्त्तरि जायापत्योः कर्मणोरुपपदयोर्हन्तेष्टक् स्यात् । यथा—जायाघ्नो मद्यपी । पतिघ्नी वृषली ॥

स्त्रीको मारने वाला सराबी । पतिको मारने वाली बदमाश औरत । लक्षणवान् कर्त्तामें जाया तथा पति कर्म उपपद हों तो हन् धातु से टक् प्रत्यय हो ५२

अमनुष्यकर्त्तृके च ॥ ५३ ॥

अमनुष्यकर्त्तृके वर्तमानाद्धन्तेः कर्मण्युपपदे टक् स्यात् । यथा -पित्तघ्नं घृतम् ॥

पित्त को शान्तिकरनेवाला घी । मनुष्य भिन्न कर्त्तामें कर्म्म उपपद हो तो वर्त्तमान हन धातु से टक् प्रत्यय हो ॥ ५३ ॥

शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥ ५४ ॥

हस्तिकपाटयोः कर्मणो रुपपदयोः शक्तौ च गम्यमानायां हन्ते ष्टक् स्यात् । यथा—हस्तिनं हन्तुं शक्तः-हस्तिघ्नो ना। कपाटघ्नश्चौरः॥

हाथी को मारने वाला नर । किवाड़ों को तोड़ने वाला चोर । हस्ति तथा कपाट कर्म उपपद हों और शक्ति गम्यमान हो तो हन धातु से टक् प्रत्यय हो ५४

पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥ ५५ ॥

हन्तेष्टक् टिलोपः, घत्वं च निपात्यते पाणिताडयो रुपपदयोः ।

यथा–पाणिघः । ताडघः ॥ (राजघउपसङ्ख्यानम्) ॥
राजनं हन्तीति–राजघः ॥

तबलची । तालमिलाने वाला । शिल्पी कर्त्ता होतो पाणिघ तथा ताडघ टक् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ५५ ॥

आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषुच्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ॥ ५६ ॥

आ०येषु, च्व्य०र्थेषु, अच्वौ, कृञः, करणे, ख्युन् । एषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु कर्म्मसूपपदेषु कृञः करणे ख्युन् स्यात् । यथा–अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्त्यनेन–आढ्यङ्करणम् । सुभगङ्करणम् । स्थूलङ्करणम् । पलितङ्करणम् । नग्नङ्करणम् । अन्धङ्करणम् । प्रियङ्करणम् ॥

जो धनी नहीं है उसको धनी बनाना (सपन्न करना)। सुन्दर बनाना । मोटा सम्पादन करना । वृद्धभाव को प्राप्तकरना । वस्त्ररहित करना । नेत्ररहित करना । अप्यारे को प्यारा करना । अच्व्यन्तच्व्यर्थ आढ्यादि कर्म उपपद होतो करण कारक में कृञ् धातु से ख्युन् प्रत्यय हो । ५६ ॥

कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥ ५७ ॥

अढ्यादिषु सुबन्तेषूपपदेषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषुभवतेरिमौ स्याताम् । यथा–अनाढ्य आढ्यो भवतीति–आढ्यम्भविष्णुः, आढ्यम्भावुकः । सुभगम्भविष्णुः, सुभगम्भावुकः । स्थूलम्भविष्णुः, स्थूलम्भावुकः । पलितम्भविष्णुः, पलितम्भावुकः । नग्नम्भविष्णुः, नग्नम्भावुकः । अन्धम्भविष्णुः, अन्धम्भावुकः । प्रियम्भविष्णुः, प्रियम्भावुकः ॥

अच्व्यन्त च्व्यर्थ आढ्य आदि सुबन्त उपपद होतो कर्त्ता कारक में भू धातु से खिष्णुच् तथा खुकञ् प्रत्यय हों ॥ ५७ ॥

स्पृशोऽनुदके क्विन् ॥ ५८ ॥

स्पृशः, अं०के, क्विन् । अनुदके सुबन्ते उपपदे स्पृशेः क्विन् स्यात् । यथा–घृतं स्पृशतीति–घृतस्पृक् । मन्त्रेण स्पृशति–मन्त्रस्पृक् । नीरेणस्पृशतीति–नीरस्पृक् ॥

घी को छूने वाला । सलाह से करता है । पानीद्वारा छूता है । उदक भिन्न सुबन्त उपपद होतो स्पृश धातु से क्विन् प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

ऋत्विग् दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ॥ ५९ ॥

ऋत्विगादयः पञ्चशब्दाः क्विनन्ता निपात्यन्ते, अपरे त्रयोधातवो निर्दिश्यन्ते । यथा–ऋतौ यजति, ऋतुं यजति, ऋतुप्रयुक्तो वा यजतीति-ऋत्विक् । रूढिरियम् । धृषेः क्विन् द्वित्वमन्तोदात्तत्वंच । धृष्णोतीति–दधृक् । सृजेः कर्माणि क्विन् अमागमश्च । सृजन्ति तामिति–स्रक् । दिशेः कर्माणि क्विन् । दिशन्ति तामिति—दिक् । उत्पूर्वात् स्निहः क्विन् नुपसर्गलोपः पत्वंच । उष्णिक् । अलाक्षणिकमपि किञ्चित् कार्यं निपातनाल्लभ्यते । प्राङ्, प्रत्यङ्, उदङ् । युङ्, युञ्जौ, युञ्जः । क्रुङ्, क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः ॥

ऋतु २ में यज्ञ करने वाला । ढीठ । माला, हार । दिशा । एकछन्दका नाम है । पूर्व को चलने वाला, उलटा चलने वाला, ऊपर को चलने वाला । जोड़ने वाला । गमन करने वाला । ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक् और उष्णिक् क्विन् प्रत्ययान्त निपातित हैं तथा -अञ्चु, युजि और क्रुञ्च धातु से क्विन् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ॥ ६० ॥

त्यदादिषूपपदे अनालोचने वर्त्तमानाद् दृशेः कञ्क्विनौ स्याताम् । यथा–त्यादृशः, त्यादृक् । तादृशः, तादृक् । यादृशः, यादृक् । (समानान्ययोश्चेतिवाच्यम्) ॥ सदृशः, सदृक् । अ-

१–(६ । ३ । ९१) इति दैर्घ्यम् ॥

न्यादृशः, अन्यादृक् ॥ (दृशेः क्सोऽपिवाच्यः) ॥ त्यादृक्षः। तादृक्षः। यादृक्षः। एतादृक्षः। ईदृक्षः। सदृक्षः। अन्यदृक्षः ॥

वैसा। तैसा। जैसा। त्यदादि सुबन्त उपपद होतो दर्शन से भिन्न अर्थ में वर्तमान दृशधातु से कञ् तथा क्विन् प्रत्यय हो ॥ ६० ॥

सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिद-जिनीराजामुपसर्गेऽपिक्विप् ॥ ६१ ॥

स० जाम्, उँ० र्गे, अपि, क्विप्। सुप्युपपदे एभ्यो धातुभ्यः क्विप् स्यादुपसर्गे सत्यसतिच। यथा-द्युसत्, उपनिषत्। वीरसूः, प्रसूः। मित्रद्विट्, प्रद्विट्। मित्रध्रुक्, प्रध्रुक्। गोधुक्, प्रधुक्। अश्वयुक्, प्रयुक्। ब्रह्मवित्, प्रवित्। काष्ठभित्, प्रभित्। रज्जुच्छिद्, प्रच्छिद्। इन्द्रियजित्, प्रजित्। सेनानीः, प्रणीः। विराट्, सम्राट् ॥

प्रकाशप्राप्ति, ब्रह्मज्ञान। वीरपैदा करने वाली, विशेष पैदाकरनेवाली। मित्र से वैर करनेवाला। मित्र का शत्रु। गायको दुहने वाला। घोड़े को जोड़ने वाला। (सईस)। ब्रह्म (वेद, ईश्वर) का जानने वाला। लकड़ी को चीरने वाला। रस्सी को काटने वाला। दुश्मन को जीतने वाला। सेना का पति। राजा। सोपसर्ग तथा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद होनेपर सत्, सूङ्, द्विष्, द्रुह, दुह, युज, विद, भिद, छिद, जि, नी, तथा राजृ धातु से क्विप् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

भजो ण्विः ॥ ६२ ॥

भजः, ण्विः। सुप्युपसर्गे चोपपदे भजेर्ण्विः स्यात्। यथा-अंशं भजते-अंशभाक्, प्रभाक् ॥

हिस्सेदार। दीप्ति प्राप्त होनेवाला। सोपसर्ग तथा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद होनेपर भज धातु से ण्वि प्रत्यय हो ॥ ६२ ॥

छन्दसि सहः ॥ ६३ ॥

सुप्युपपदे छन्दसि विषये सहेर्ण्विः स्यात् । यथा—तुराषाट् ॥

सुबन्त उपपद हो तो छन्दविषय में सह धातु से ण्वि प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

वहश्च ॥ ६४ ॥

वहः,च । सुप्युपपदे छन्दसि वहेर्ण्विः स्यात् । यथा—प्रष्ठवाट् ॥

अग्रगन्ता । छन्दविषय में सुबन्त उपपद होतो वह धातु से ण्वि प्रत्ययहो ॥ ६४ ॥

कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥ ६५ ॥

एषूपपदेषु च्छन्दसि वहेर्ञ्युट् स्यात् यथा—कव्यवाहनः । पुरीषवाहनः । पुरीष्यवाहनः ॥

देवताओं का भोजन लेजाने वाला । सूर्यकी किरणें । छन्दविषय में कव्य,पुरीष तथा पुरीष्य ये उपपद होंतो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

हव्येऽनन्तः पादम् ॥ ६६ ॥

अनन्तः पादं चेत् तर्हि छन्दसि हव्यशब्दे उपपदे वहेर्ञ्युट् स्यात् । यथा—अग्निश्च हव्यवाहनः ॥

हवन किये पदार्थ को अग्नि लेजाने वाला है । छन्दो विषय में हव्यशब्द उपपद होतो अनन्त पाद वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो ॥ ६६ ॥

जनसनखनक्रमगमो विट् ॥ ६७ ॥

ज० मः, विट् । सुप्युपदे एभ्यो विट् स्याच्छन्दसि विषये ।

विड्वनोरित्यात्वम्। यथा-अब्जाः। गोषाः। सनोतेरनः-इतिषत्वम्। कूपखाः। दधिक्राः। अग्रेगाः॥

जल में पैदा होने वाला। इन्द्रियजित्। कुये को खोदने वाला। दही को बिलोने वाला। आगे जानेवाला। छन्द विषय में सुबन्त उपपद हो तो जन सन खन क्रम तथा गमधातु से विट् प्रत्यय हो॥ ६७॥

अदोऽनन्ने॥ ६८॥

अदः, अनन्ने। अनन्ने सुप्युपपदे अदे विंट्स्यात्। यथा-आममत्तीति--आमात्। सस्यात्॥

अजीर्णता को दूरकरने वाला। खेती को खाने वाला। अन्न वर्जित सुबन्त उपपद हो तो अद् धातु से विट् प्रत्यय हो॥ ६८॥

क्रव्ये च॥ ६९॥

क्रव्यशब्दे उपपदे अदे विंट्स्यात्। यथा-क्रव्य मत्तीति-क्रव्यात्॥

कच्चे मांसको खाने वाला। क्रव्य शब्द उपपद हो तो अद् धातु से विट् प्रत्यय हो॥ ६९॥

दुहः कब्घश्च॥ ७०॥

दुहेः, कप्, घः, च। सुप्युपपदे दुहेः कप्स्यात्, घश्चान्तादेशः। यथा-कामदुघा॥

कामना को पूर्ण करने वाली। सुबन्त उपपद हो तो दुह धातु से कप् प्रत्यय हो तथा दुह को घकारान्तादेश भी हो॥ ७०॥

मन्त्रे श्वेतवहोक्थ शस्पुरोडाशो ण्विन्॥ ७१॥

मन्त्रे, श्वे० शः, णिन् । (श्वेतवाहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम्) ॥ यत्रपदत्वं भावि तत्र णिनोऽपवादोऽडस्वक्तव्य इत्यर्थः । यथा--श्वेतवाः, श्वेतवाहौ, श्वेतवाहः । उक्थानि, उक्थैर्वा शंसति--उक्थशाः यजमानः । उक्थशासौ । उक्थशासः । पुरादास्यते, दीयते पुरोडाः ॥

सूर्य्य । बड़े व्रतकी आज्ञा देनेवाला । यज्ञद्रव्य । मन्त्र विषय में श्वेत वह, उक्थशस तथा पुरोडाश शब्दों से णिन प्रत्यय हो अथवा उक्त शब्द णिन प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ७१ ॥

अवे यजः ॥ ७२ ॥

अवे उपपदे मन्त्र विषये यजेर्णिन् स्यात् । यथा--अवयाः, अवयाजौ, अवयाजः ॥

मन्त्र विषय में अव उपपद हो तो यज धातु से णिन प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

विजुपे छन्दसि ॥ ७३ ॥

विच्, उप, छन्दसि । उपे उपपदे यजेर्विच् स्याच्छन्दसि विषये । यथा—उपयट् ॥

छन्द विषय में उप उपपद हो तो यज धातु से विच् प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

आतो मनिन् क्वनिब् वनिपश्च ॥ ७४ ॥

आतः, म० पः, च । सुप्युपसर्गे चोपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये इमे स्युः. चाद्विच् । यथा—सुदामा । क्वनिप् । सुधीवा । सुपीवा । वनिप् । भूरिदावा । घृतपावा । विच् । कीलालपाः ॥

अच्छा देनेवाला । सुष्ठु पीनेवाला । अधिक देनेवाला । जलपीनेवाला । छन्दो विषय में आकारान्त धातुओं से सुबन्त उपपद हो तो मनिन्, क्वनिप्, वनिप् तथा विच् प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७५ ॥

अ० भ्यः, अपि, दृ० न्ते । अन्येभ्योऽपि धातुभ्योऽनाकारान्तेभ्यो मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् इतीमे प्रत्यया दृश्यन्ते । यथा-शृ । सुशर्म्मा । क्वनिप् । प्रातरित्वा । प्रातरित्वानौ । प्रातरित्वानः ॥ वनिप् । विजायते इति-विजावा । ओणृ-अवावा ॥

सुन्दर सुखवाला । सुबह जानेवाला । पैदा होनेवाला । रटनेवाला ॥ आकारान्त धातुओं के अतिरिक्त इतर धातुओं से भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् तथा विच् प्रत्यय दीखते हैं ॥ ७५ ॥

क्विप् च ॥ ७६ ॥

सर्वधातुभ्योऽयमपि दृश्यते । यथा-उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ॥

सर्वधातुओं से क्विप् प्रत्यय हो ॥ ७६ ॥

स्थः क च ॥ ७७ ॥

सुप्युपपदे स्थाधातोः कक्विपौ स्याताम् । यथा-शंस्थः, शंस्था । शमिधातोरित्ययं बाधितुं सूत्रम् ॥

हर्ष पूर्वक ठहरनेवाला ॥ सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क तथा क्विप् प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ ७८ ॥

सुपि, अ०तौ, णिनिः, ता०ल्ये । अजाति वाचिनि सुबन्ते उपपदे ताच्छील्य द्योत्ये धातोर्णिनिः स्यात् । यथा-उष्णभोजी । शीतभोजी । उपजीवी । न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः । अनुया-

१—(६ । ४ । ४१) इत्यनुनासिकस्य आत् ।

णिवर्गः ॥ (साधुकारिण्युपसङ्ख्यानम्) ॥ (ब्रह्मणिवादः) ॥

अताच्छील्यार्थं वार्त्तिकद्वयम् । यथा—साधुदायी । साधुकारी । ब्रह्मवादी ॥

गर्म भोजन करने वाला । शीतभोजन करने वाला । आश्रित, सेवक२ । पीछेचलने वाला ॥ जातिभिन्न सुबन्त उपपद होतो ताच्छील्य (उसका स्वभाव) गम्यमान होनेपर धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ७८ ॥

कर्त्तर्युपमाने ॥ ७९ ॥

कर्त्तरि, ७ं०ने । कर्त्तृवाचिनि उपमाने उपपदे धातोर्णिनिः स्यात् । उपपदार्थः कर्त्ता प्रत्ययार्थस्य कर्त्तुरुपमानम् । यथा—उष्ट्रइव क्रोशतीति—उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षइव रवीतीति—ध्वाङ्क्षरावी ॥

ऊंटकी तरह बलबलाने वाला । काककी तरह कांव २ करने वाला । उपमान वाची कर्त्ता उपपद होतो धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ७९ ॥

व्रते ॥ ८० ॥

सुप्युपपदे व्रते गम्ये धातोर्णिनिः स्यात् । यथा—स्थण्डिलशायी ॥

चबूतरेपर सोनेवाला । व्रत (नियम) गम्यमान होतो सुबन्त उपपद होनेपर धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥ ८१ ॥

बहुलम्, आं० क्ष्ण्ये । आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये धातोर्बहुलं णिनिःस्यात् । आभीक्ष्ण्यम्—पौनः पुन्यम् । तात्पर्यमासेवा—ताच्छील्यादितरत् । यथा—क्षीरपायिणोमाथुराः ॥

मथुरा के रहने वाले दूध पीने वाले हैं । आभीक्ष्ण्य गम्यमान होतो बहुल करके धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

मनः ॥ ८२ ॥

सुप्युपपदे मन्यतेर्णिनिः स्यात्। यथा-दर्शनीयमानी। शोभनमानी॥
अपनेको मनोहर माननेवाला। सुबन्त उपपद होतो मन धातु से णिनि प्रत्यय हो ८२

आत्माने खश्च ॥ ८३ ॥

आ०ने, खश्, च। सुप्युपपदे स्वकर्म्मके मनने वर्त्तमानान्मन्यतेः खश् स्यात्, चान्णिनिः। यथा-पण्डितमात्मानं मन्यते-पण्डितम्मन्यः, पण्डितमानी॥ (खित्यनव्ययस्य)॥
अपने आपको पण्डित माननेवाला॥ सुबन्त उपपद होतो आत्मा के मान में वर्त्तमान मन धातु से खश तथा णिनि प्रत्यय हो॥ ८३॥

भूते ॥ ८४ ॥

अधिकारोऽयम्। वर्त्तमाने लडिति यावत्॥
भूतकाल मे वर्त्तमानेलट् इससूत्र तक अधिकार है॥ ८४॥

करणे यजः ॥ ८५ ॥

करणे उपपदे भूतार्थाद् यजेर्णिनिः स्यात् कर्त्तरि। यथाः-अग्निष्टोमेनेष्टवानिति-अग्निष्टोमयाजी। सोमयाजी॥
जिसने अग्निष्टोम यज्ञ किया है वह। जिसने सोम यज्ञ किया है वह। करण उपपद हो तो यजधातु से णिनि प्रत्यय हो॥ ८५॥

कर्म्मणि हनः ॥ ८६ ॥

कर्म्मणि उपपदे हन्तेर्णिनिः स्यात्। यथा-मातुलं हतवान् इति-मातुलघाती। पितृव्यघाती॥

जिसने कि अपने मामा को मारदिया है वह। जिसने कि स्वीय चाचा को मारदिया है वह। कर्म उपपद हो तो हन धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥ ८७ ॥

एतेषु कर्म्मसूपपदेषु हन्तेर्भूते क्विप् स्यात्। यथा–ब्रह्महा। भ्रूणहा। वृत्रहा ॥

ब्राह्मण को मारने वाला। गर्भ का नाश करनेवाला। बादलका नाश करने वाला–सूर्य, वायु। ब्रह्म भ्रूण तथा वृत्र कर्म्म उपपद हों तो हन धातु से क्विपप्रत्यय हो

बहुलं छन्दसि ॥ ८८ ॥

छन्दसिविषये बहुलं हन्तेः क्विप् स्यात्। यथा–मातृहा, मातृघातः। पितृहा, पितृघातः ॥

माता तथा पिता को मारने वाला। छन्दोविषय में बहुल करके क्विप्प्रत्यय हो

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ ८९ ॥

स्वादिषु कर्मसूपपदेषु करोतेः क्विप् स्यात्। यथा–सुकृत्। कर्म्मकृत्। पापकृत्। मन्त्रकृत्। पुण्यकृत्। स्वादिष्वेवेति नियमा भावादन्यस्मिन् नप्युपपदे क्विप्–शास्त्रकृत्। भाष्यकृत् ॥

धार्मिक। काम करने वाला। पापी। सलाह करने वाला। धर्मात्मा। सुआदि कर्म उपपद हों तो कृञ धातु से क्विप् प्रत्यय हो ॥ ८९ ॥

सोमे सुञः ॥ ९० ॥

सोमे कर्मण्युपपदे सुञः क्विप् स्यात्। यथा–सोमसुत् ॥

सोम (औषध) को निचोड़ने वाला ॥ सोम कर्म उपपद हो तो सुञ धातुसे क्विप् प्रत्यय हो ॥ ९० ॥

अग्नौ चेः ॥ ९१ ॥

अग्नौ कर्मण्युपपदे चिनोतेः क्विप् स्यात्। यथा-अग्निचित्। अग्निचितौ। अग्निचितः ॥

अग्निको इकट्ठा करने वाला ॥ अग्नि कर्म उपपद हो तो चिञ् धातु से क्विप् प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ ९२ ॥

क० णि, अं० म्। कर्मण्युपपदे कर्मण्येव कारके क्विप् स्यादग्न्याख्यायां गम्यमानायाम्। यथा-श्येन इव चीयते-श्येनचित् ॥

कर्म उपपद हो तो चिञ् धातु से कर्म कारक में ही अग्नि की आख्यागम्यमान होनेपर क्विप् प्रत्यय हो ॥ ९२ ॥

कर्मणीनिविक्रियः ॥ ९३ ॥

क० णि, इनिः, वि० यः। कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीणातेः इनिः स्यात्। (कुत्सितग्रहणं कर्त्तव्यम्)॥ मद्यविक्रयी ॥

शराब को बेचनेवाला। कर्म उपपद हो तो विपूर्वक डुक्रीञ् धातुसे इनि प्रत्यय हो॥

दृशेः क्वनिप् ॥ ९४ ॥

कर्मण्युपपदे दृशेर्भूते क्वनिप्स्यात्। यथा-पारं दृष्टवानिति-पारदृश्वा ॥

किनारे को देखनेवाला। कर्म उपपद हो तो दृशधातु से क्वनिप् प्रत्यय हो९४॥

राजनि युधिकृञः ॥ ९५ ॥

राजन्शब्दे कर्मण्युपपदे युध्यतेः करोतेश्च क्वनिप् स्यात्। युधि

रकर्मकः—अन्तर्भावितरयर्थः । यथा—राजानं योधित वानिति—राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥

राजा को युद्ध कराने वाला । राजा जिसने बनाया हो । राजन् शब्द कर्म उपपद हो तो युध तथा कृञ् धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो ॥ ९५ ॥

सहे च ॥ ९६ ॥

सहशब्दे चोपपदे युधिकृञोः क्वनिप् स्यात् । यथा—सह युध्वा । सह कृत्वा ॥

साथ में जिसने युद्ध किया हो । साथ में जिसने कार्य किया हो । सह शब्द उपपद हो तो युध तथा कृञ् धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो ॥ ९६ ॥

सप्तम्यां जनेर्डः ॥ ९७ ॥

स० म्, जनेः, डः । स्पष्टम् । यथा—मन्दुरायां जातः—मन्दुरजः । इमानि रत्नानि समुद्रजानि ॥

तवेले में पैदा हुआ । ये रत्न समुद्र में पैदा हुये हैं । सप्तम्यन्त उपपद हो तो जन धातु से ड प्रत्यय हो ॥ ९७ ॥

पञ्चम्यामजातौ ॥ ९८ ॥

पं० म्, अ० तौ । जातिशब्दवर्जिते पञ्चम्यन्ते उपपदे जनेर्डः स्यात् । यथा—संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति । संस्कारजः । अदृष्टजः । दुःखजः ॥

सत्संग से दोष तथा गुण पैदा होते हैं । संस्कारसे पैदा हुये । विना देखे पैदा हुआ । दुःखसे पैदा हुआ । जातिवर्जित पञ्चम्यन्त सुबन्त उपपद हो तो जन धातु से ड प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

१—(६ । ३ । ६३) इति ह्रस्वम् ॥

उपसर्गे च सञ्ज्ञायाम् ॥ ९९ ॥

संज्ञायां विषये उपसर्गे चोपपदे जनेर्डः स्यात् । यथा -प्रजा--स्यात् सन्ततौ जन ॥

संज्ञाविषयमें उपसर्ग उपपद होतो जन धातु से ड प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

अनौ कर्मणि ॥ १०० ॥

कर्मण्युपपदे अनुपूर्वाज्जनेर्डः स्यात् । यथा—पुमांसमनुरुध्य जाता -पुमनुजा । स्त्र्यनुजः ॥

कर्म उपपद होते अनुपूर्वक जन धातु से ड प्रत्यय हो ॥ १०० ॥

अन्येष्वपि दृश्यते ॥ १०१ ॥

अ०पु, अपि, दृ०ते । अन्येष्वप्युपपदेषु जनेर्डः स्यात् । यथा—न-जायते इति—अजः । द्वाभ्यां जन्म संस्काराभ्यां जायते इति द्विजः । ब्राह्मणजः । अपिशब्दोऽत्र सर्वोपाधि व्यभिचारार्थः । तेन धात्वन्तरादपि कारकान्तरेष्वपि क्वचिद् दृश्यते--यथा--परितः खातः--परिखा । आखा ॥

इतर सुबन्त उपपद होनेपर भी जन धातु से ड प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

निष्ठा ॥ १०२ ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र तयोरेवेति भावकर्म्मणोः क्तः। (कर्त्तरि कृत्)-इति कर्त्तरि क्तवतुः । यथा—भुक्तम्मया । दत्तास्त्वया मोदकाः । पण्डिता ग्रामंगतवान् ॥

मैंने खाया । तूने लड्डू दिये । पण्डित गांवको गया । भूत अर्थ में वर्त्तमान धातु से निष्ठा प्रत्यय हो ॥ १०२ ॥

सुयजोर्ङ्वनिप् ॥ १०३ ॥

सु०जोः, ङ्व० पृ० । सुनोतेर्यजेश्च ङ्वनिप् स्याद् भूते । यथा—सुत्वा, सुत्वानौ, सुत्वानः । यज्वा, यज्वानौ, यज्वानः ॥

अर्क को निकालनेवाला । यजनकरनेवाला । भूतकाल में सुञ तथा यज धातुसे ङ्वनिप् प्रत्ययहो ॥ १०३ ॥

जीर्यतेरतृन् ॥ १०४ ॥

जीर्यतः, अतृन् । भूतेजीर्यतेरतृन् स्यात् । यथा—जरन्, जरन्तौ, जरन्तः ॥

वृद्ध । भूत काल में जॄ धातु से अतृन् प्रत्ययहो ॥ १०४ ॥

छन्दसि लिट् ॥ १०५ ॥

छन्दसि विषये धातोर्लिट् स्यात् । यथा—अहं सूर्य्य मुभयतोददर्श ॥

सूर्य्य को दोनों ओर से देखनेवाला हूँ, या देखा । छन्द विषय में धातु से लिट् प्रत्ययहो ॥ १०५ ॥

लिटः कानज्वा ॥ १०६ ॥

लिटः, कानच्, वा । छन्दसि विषये लिटो वा कानजादेशः स्यात् । यथा—अग्निं चिक्यानः ॥

अग्नि को चयन करताहुआ । छन्दो विषय में लिट् को विकल्प से कानच् आदेश हो ॥ १०६ ॥

क्वसुश्च ॥ १०७ ॥

क्वसुः, च । छन्दसि विषये लिटः क्वसुरादेशः स्यात् । यथा—पपिवान् । जक्षिवान् ॥

पिआ । खाया । छन्द विषय में लिट् को क्वसु आदेश भी हो ॥ १०७ ॥

भाषायां सदवसश्रुवः ॥ १०८ ॥

सदादिभ्योधातुभ्यो भूत सामान्ये भाषायां लिड्वा स्यात्, तस्य च नित्यं क्वसुः । यथा--निषेदुषीमासनबन्धधीरः । निषेदुषीम्-निषण्णाम् । उवविष्टामित्यर्थः । आसनबन्धे-उपसेवने धीरः।अनूषिवान्। शुश्रुवान् । पक्षे-निषसाद । अनूवास । शुश्राव ॥

भाषा (लोक) में सद, वस तथा श्रु धातु से परे लिट् के स्थान में विकल्प से क्वसु आदेश हो ॥ १०८ ॥

उपेयिवान् नाश्वाननूचानश्च ॥१०९॥

उ० नः, च । इमे निपात्यन्ते । उपपूर्वादिणो भाषायामपि भूत मात्रे लिड्वा, तस्य नित्यं क्वसुः, इट्-उपेयिवान्। नञ् पूर्वादश्नातः क्वसुरिडभावश्च । अनाश्वान् । अनुपूर्वाद्वचेः कर्त्तरि कानच्-वेदस्यानुवचनं कृतवान्-अनूचानः ॥

प्राप्त हुआ । अभुक्त । वेदका अनुवचन किया । उपेयिवान्, अनाश्वान् तथा अनूचान निपातित हैं ॥ १०९ ॥

लुङ् ॥ ११० ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ् स्यात् । यथा-अभूत्, अभूताम्, अभूवन् । अभूः, अभूतम्, अभूत । अभूवम्, अभूव, अभूम ॥

हुआ । भूत अर्थ में वर्त्तमान धातु से लुङ् प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

अनद्यतने लङ् ॥१११॥

अनद्यतन भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् । यथा-अभवत्, अभवताम्

अभवन् । अभवः, अभवतम्, अभवत । अभवम्, अभवाव, अभवाम ॥

हुआ । आज को (गत रात्रि के ११ बजे से तथा रात्रि के १२ बजे तक) छोड़ कर भूत अर्थ में वर्त्तमान धातु से लङ् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

अभिज्ञावचने लृट् ॥ ११२ ॥

स्मृति वचने उपपदे भूतानद्यतने धातो लृट् स्यात् । यथा--स्मरसि चन्द्र ! प्रयागे वत्स्यामः । बुध्यसे मैत्र ! काश्यां पठिष्यामः । चेतसे चैत्र ! लवपुरं गमिष्यामः ॥

चन्द्र ! याद है प्रयाग में रहते थे । मैत्र ! याद है काशी में पढ़ते थे । चैत्र ! याद है लाहौर को गये थे । अभिज्ञा (स्मृति) वचन उपपद हो तो अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से लृट् प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

न यदि ॥ ११३ ॥

यच्छब्द सहितेऽभिज्ञावचने उपपदे लृण् न स्यात् । यथा--अभिजानासि मैत्र ! यद्गुरुकुले अपाठिस्म ॥

मैत्र ! याद है गुरुकुल में पढ़ते थे । यद् शब्द सहित स्मृति वचन उपपद हो तो धातु से लृट् प्रत्यय न हो ॥ ११३ ॥

(अ)भिभाषा साकाङ्क्षे ॥ ११४ ॥

साकाङ्क्षे उक्तविषये लृड्वा स्यात् । लक्ष्य लक्षण भावेन साकाङ्क्षश्चेद्धात्वर्थः । यथा--स्मरसि सोमदत्त ! प्रयागे वत्स्यामः--तत्रवेदंच पठिष्यामः । वासो लक्षणम् । पठनं लक्ष्यम् । पक्षे लङ् । यच्छब्दयोगेऽपि--(नयदि) इति बाधित्वा परत्वाद् विकल्पः ॥

सोमदत्त ! याद है प्रयाग में रहते थे और वहांपर वेद पढ़ते थे । साकाङ्क्षा (इच्छासहित) अर्थ में अभिज्ञा वचन उपपद हो तो धातु से विकल्प करके लृट् प्रत्यय हो ॥ ११४ ॥

परोक्षे लिट् ॥ ११५ ॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थे वृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । यथा—बभूव, बभूवतुः, बभूवुः । बभूविथ, बभूवथुः, बभूव । बभूव, बभूविव, बभूविम ॥

हुआ । भूत अनद्यतन परोक्ष अर्थ में वर्त्तमान धातु से लिट् प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

हशश्वतोर्लङ्च ॥ ११६ ॥

ह०तोः, लङ्, च । अनयोरुपपदयोर्लिड्विषये लङ् स्याच्चाल्लिट् । यथा—इतिह—अकरोत्, चकार वा । शश्वदकरोत्, चकार वा ॥

इस तरह कर । सदा करता रह । ह तथा शश्वत् उपपद होतो लिङ् विषय में धातु से लङ् तथा लिट् प्रत्यय हो ॥ ११६ ॥

प्रश्नेचासन्नकाले ॥ ११७ ॥

प्रश्ने, च, आ० ले । प्रष्टव्यः—प्रश्नः । आसन्नकाले पृच्छ्यमानेऽर्थे भूतानद्यतन परोक्षार्थ वृत्तेर्धातोर्लङ् लिटौ स्याताम् । यथा—अगमत्किम्, जगामकिम् ॥

क्या वह गया । आसन्न (निकट) काल घोत्य होतो प्रश्न गम्यमान होने पर लङ् तथा लिट् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

लट्स्मे ॥ ११८ ॥

स्मशब्दे उपपदे भूतानद्यतनपरोक्षार्थ वृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । यथा-यजतिस्म युधिष्ठिरः । तत्र कार्य्यं करोतिस्म ॥

युधिष्ठिरने यज्ञकिया । वह वहां कार्य करताथा । स्मशब्द उपपद होतो परोक्ष भूत अनद्यतन अर्थ में वर्त्तमान धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

अँपरोक्षेचँ ॥ ११९ ॥

अपरोक्ष भूतानद्यतनार्थ वृत्तेर्धातोः स्मे उपपदे लट् स्यात् । यथा-एवं ब्रवीतिस्म पितामदीयः ॥

मेरा पिता ऐसे कहताथा । अपरोक्ष भूत अनद्यतन अर्थ में वर्त्तमान धातु से स्म शब्द उपपद होनेपर लट् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

नँनौपृष्टप्रतिँवचने ॥ १२० ॥

अनद्यते परोक्ष इति निवृत्तम् । ननुशब्दे उपपदे प्रश्नपूर्वके प्रतिवचने भूतेऽर्थे लट् स्यात् । यथा--अकार्षीः किम्--ननुकरोमिभोः॥

करलिया क्या--जी हां करलिया । ननुशब्द उपपद होते प्रश्नपूर्वक प्रतिवचने (जवाब) भूत अर्थ में लट् प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

नन्वोर्विभाषा ॥ १२१ ॥

नँन्वोः, वि०षा । नशब्दे नुशब्दे चोपपदे पृष्टप्रतिवचने वा लट् स्यात् । यथा--अकार्षीकिम्--नकरोमि, नाकार्षम्, अहंनुकरोमि, अहंन्वकार्षम् ॥

तूने करलिया क्या-नहीं किया, मैंने नहीं किया । न तथा नुशब्द उपपद होते प्रश्न के उत्तर में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

पुरि लुङ् चास्मे ॥ १२२ ॥

पुँरि, लुङ्, चँ, अँस्मे । अनद्यतन ग्रहणं मण्डूकप्लुत्यानुवर्त्तते । पुरा शब्दयोगेऽस्मशब्दवर्जिते भूतानद्यतने वा लुङ् लटौ स्याताम् । पक्षे यथा प्राप्तम् । यथा--वसन्तीह पुरा आर्य्याः, अवात्सुः, अवसन्, ऊषुर्वा ॥

प्रथम यहां आर्य्य रहतेथे। स्मशब्द वर्जित पुरा शब्दका योग होनेपर भूत अनद्य तन अर्थ में वर्त्तमान धातु से विकल्प करके लुङ् तथा लट् प्रत्यय हों ॥ १२२ ॥

वर्त्तमाने लट् ॥ १२३ ॥

आरब्धोऽपरिसमाप्तश्च वर्त्तमानः। वर्त्तमानक्रिया वृत्तेर्धातो लेट् स्यात्। यथा-भवति। एधते ॥

होता है। बढ़ता है। वर्त्तमान (जबसे आरम्भ किया जावे और जबतक समाप्त नहो) अर्थ में धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ १२३॥

लटः शतृशानचावप्रथमा समाना-धिकरणे ॥ १२४ ॥

लटः, श० चौ, अ० णे। अप्रथमान्तेन समानाधिकरणेन लटः शतृशानचौ आदेशौ स्याताम्। यथा-पठन्तं चैत्रंपश्य। यजमानेन मैत्रेणाहं दृष्टः। अधीयानायच्छात्रायच्छत्रं ददाति। गच्छतोऽश्वादपप्तत्। आगच्छतो वाष्पयानस्यशब्दः। गच्छति काले। लडित्यनुवर्त्तमाने पुनर्लट् ग्रहणमातिकविधानार्थम्। तेन-(प्रथमा समानाधिकरण्येऽपि क्वचित्)॥ यथा-सन् बालः, अस्ति बालः॥ (माङ्याक्रोश इतिवाच्यम्) यथा-मापचन्, पचमानो वा ॥

पढ़ते हुये चैत्रको देखा। यजन करते हुये मैत्र ने मुझे देखा। पढ़तेहुये विद्यार्थी को छतरी देता है। जाते हुये घोड़े से गिरगया। आती हुई रेल का शब्द। समय के चले जानेपर। अप्रथमा समानाधि करण में लट् को शतृ तथा शानच् आदेश हो ॥ ११४ ॥

सम्बोधने च ॥ १२५ ॥

१-(७।२।८२)-इतिमुमागमः।

सम्बोधने च लटः शतृशानचा वादेशौ स्याताम् । यथा—भोः पठन् ! अन्तेवासिन् ! । भोः स्कुन्दमान ! बालक ! ॥

हे पढ़ते हुये विद्यार्थी ! । अयि कूदते हुये लड़के ! । सम्बोधन में भी लट् के स्थान में शतृ तथा शानच् आदेश हो ॥ १२५ ॥

लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ १२६ ॥

लक्षणे हेतौ चार्थे वर्त्तमानाद् धातोः परस्य लटः शतृ शानचा वादेशौ स्याताम् । यथा—तिष्ठतोऽनु शासति गणितज्ञाः । हेतौ—अधीयानो वसाम्यहम् ॥

गणितज्ञ (हिसावको जानने वाले)खड़ेहुये पढ़ाते हैं । मैं पढ़ताहूं इसवास्ते रहता हूं । क्रिया विषयक लक्षण तथा हेतु अर्थ में वर्त्तमान धातुसे परे लट् के स्थानमें शतृ तथा शानच् आदेश हों ॥ १२१ ॥

तौ सत् ॥ १२७ ॥

तौ शतृ शानचौ सत्सञ्ज्ञकौ स्याताम् । यथा—सृष्टिं कुर्वन्, कुर्वाणो वा।धर्मस्य कार्यं करिष्यन्, करिष्यमाणो वा जीवनं नेष्यामि

सृष्टि को करता हुआ । धर्म के कार्य करता हुआ जीवन को व्यतीत करूंगा । वे शतृ तथा शानच् प्रत्यय सत् संज्ञक हों ॥ १२७ ॥

पूङ्यजोः शानन् ॥ १२८ ॥

पू० जोः, शा० न् । पूङो यजेश्च वर्त्तमाने शानन् स्यात् । यथा—पवमानः । यजमानः ॥

पवित्र करने वाला, वायु । यज्ञकरने वाला । वर्त्तमान काल में पूङ् तथा यज धातु से शानन् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु-

चानश् ॥ १२९ ॥

ताच्छील्यम्, तत् स्वाभाव्यम् । वयः शरीरावस्था--युवतादिः । शक्तिः--सामर्थ्यम् । कर्त्तर्येषु द्योत्येषु चानश् स्यात् । यथा--भोगम्-भुञ्जानः । कवचं-बिभ्राणः । शत्रुम्-निघ्नानः ॥

भोगों को भोगता हुआ । कवचको धारण किये हुये । दुश्मन को मारता हुआ । कर्त्ता में ताच्छील्य वयोवचन तथा शक्ति द्योत्यहो तो धातुसे चानश् प्रत्यय हो । १२९

इङ्धार्योश्शत्रकृच्छ्रिणि ॥ १३० ॥

इं० योः, शं० णि । अकृच्छ्रिणि कर्त्तर्याभ्यां शतृस्यात् । यथा--अधीयन् । धारयन् ॥

पढ़ताहुआ । धारण करताहुआ । अकृच्छ्री (जो कठिन नहो) कर्त्ता इङ् तथा धारि धातु से शतृ प्रत्यय हो ॥ १३० ॥

द्विषोऽमित्रे ॥ १३१ ॥

द्विषः, अमित्रे । अमित्रे कर्त्तरि द्विषेः शतृ स्यात् । यथा--द्विषन्--शत्रुम् ॥

रिपु से वैर करताहुआ । अमित्र अर्थमें कर्त्ता वाच्य हो तो द्विष धातु से शतृ शतृ प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

सुञोयज्ञसंयोगे ॥ १३२ ॥

सुञः, यं०गे । यज्ञेन संयोगः-यज्ञसंयोगः । यज्ञसंयुक्तेऽभिषवे वर्त्तमानात् सुञः शतृ स्यात् । यथा -सर्वे सुन्वन्तः । विश्वे यजमानाः सासनाः ॥

सब निचोड़ते हुये । सब यजमान मय आसनों के । यज्ञ संयोग में वर्त्तमान सुञ धातु से शतृ प्रत्यय हो ॥ १३२ ॥

अर्हः प्रशंसायाम् ॥ १३३ ॥

प्रशंसायामर्हतेः शतृ स्यात् । यथा--अर्हन् ॥

पूजाको प्राप्त होता हुआ । प्रशंसा अर्थमें वर्त्तमान अर्ह धातुसे शतृप्रत्यय हो ॥ १३३ ॥

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधु-कारिषु ॥ १३४ ॥

आक्वेः, तं०षु । भ्राजभासेति-क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छील तद्धर्म तत्साधुकारिषु कर्तृषु बोधव्या इति ॥

भ्राज भास (३ । २ । १७७) इस सूत्र पर्यन्त तच्छील, तद्धर्म तथा तत्साधुकारी कर्त्ताओं में प्रत्यय जानना चाहिये ॥ १३४ ॥

तृन् ॥ १३५ ॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु सर्वधातुभ्यस्तृन् स्यात् । यथा--कर्त्ता--कम्बलान् ॥

कम्बलों का बनानेवाला (गड़ेरिया) । तच्छीलादि कर्त्ताओं में धातुमात्र से तृन् प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

अलङ्कृञ् निराकृञ् प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इ-ष्णुच् ॥ १३६ ॥

तच्छीलादिषुकर्तृषु अलङ्कृञादिभ्यो धातुभ्य इष्णुच् स्यात् । यथा--अलङ्करिष्णुः । निराकरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । उत्पचिष्णुः ।

उत्पतिष्णुः । उन्मदिष्णुः । रोचिष्णुः । अपत्रपिष्णुः । वर्त्तिष्णुः । वर्धिष्णुः । सहिष्णुः । चरिष्णुः ॥

पूर्णकरने वाला । दूरकरनेवाला । सम्यक्पैदा करनेवाला । अधिक पकाने वाला । अधिक उड़नेवाला । अहंकारी । दीप्तिशील, प्रकाशक । स्वभाव से लज्जा करनेवाला । वर्त्तनशील, सम्यग् व्यवहारकर्त्ता । वृद्धिशील । सहनशील । चलने वाला, चालाक, इतस्ततः भ्रमण करनेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो अलम् + डुकृञ्, निर् + आङ् + डुकृञ्, प्र + जनी, उत् + डुपचष्, उत् + मद, रुच, अप + त्रपूष्, वृतु, वृधु, सह तथा चर धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो ॥ १३६ ॥

णेश्छन्दसि ॥ १३७ ॥

णेः, छन्दसि । छन्दसि तच्छीलादिषु कर्त्तृषु ण्यन्ताद् धातोरिष्णुच् स्यात् । यथा-दृषदं धारयिष्णवः ॥

पत्थर को धारण करानेवाला । छन्दविषय में तच्छीलादि कर्त्ता हों तो ण्यन्त धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो ॥ १३७ ॥

भुवश्च ॥ १३८ ॥

भुवः, च । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु भूधातोश्छन्दसीष्णुच् स्यात् । यथा-भविष्णुः ॥

होनेवाला, होनहार । छन्दो विषय में तच्छीलादि कर्त्ता हों तो भू धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः ॥ १३९ ॥

ग्ला० स्थः, च, क्स्नुः । छन्दसीति निवृत्तम् । ग्ला जि स्था इत्येभ्यश्चाद् भुवश्च तच्छीलादिषु कर्त्तृषु ग्स्नुः स्यात् । यथा-ग्लास्नुः । गित्वान्न गुणः । जिष्णुः । स्थास्नुः । भूष्णुः । गिदयं नतु कित् । ते-

नस्थ ईत्वं नो । (श्रयुकः किति)-इत्यत्र गकार प्रश्लेषाद्भुवोनेट् ॥ (दंशेश्छन्दस्युपसङ्ख्यानम्) ॥ दंक्ष्णवः पशवः ॥

ग्ला नियुक्त । जीतनेवाला । ठहरनेवाला । होनहार । तच्छीलादि कर्त्ता हों तो ग्ला, जि, स्था तथा भू धातु से ग्स्नु प्रत्यय हो ॥ १३९ ॥

त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥ १४० ॥

एभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु क्नुः स्यात् । यथा-त्रस्नुः गृध्नुः । धृष्णुः । क्षिप्नुः ॥

डरपोक । लोभी । सहनशील, चतुर । फेंकनेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो त्रसी गृधु ञिधृषा तथा क्षिप धातु से क्नु प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥ १४१ ॥

श० भ्यः,घिनुण् । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु शमादिभ्यो धातुभ्योऽष्टभ्योघिनुण् स्यात् । यथा-शमी । तमी । दमी । श्रमी । भ्रमी । क्षमी । क्लमी । प्रमादी ॥

शान्त, धीर । तमोगुणी, अभिलाषी । इन्द्रियजित् । मेहनती । भ्रम करनेवाला । क्षमा करनेवाला । ग्लानि करनेवाला । प्रमाद करनेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो शमादि आठ धातुओं से घिनुण प्रत्यय हो ॥ १४१ ॥

सम्पृचाऽनुरुधाऽऽङ्यमाऽऽङ्यस-परिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपप-रिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विष द्रुहदुहयुजाऽऽक्रीडविविचत्यज

रज भजाऽति चराऽपचराऽऽमुषाऽभ्याहनश्च ॥ १४२ ॥

स० नेः, च। तच्छीलादिषु कर्तृषु सम्पृचादिभ्यो धातुभ्यो घिनुण् स्यात्। यथा-सम्पर्की। अनुरोधी। आयामी। आयासी। परिसारी। संसर्गी। परिदेवी। संज्वारी। परिक्षेपी। परिराटी। परिवादी। परिदाही। परिमोही। दोषी। द्वेषी। द्रोही। दोही। योगी। आक्रीडी। विवेकी। त्यागी। रागी। भागी। अतिचारी। अपचारी। आमोषी। अभ्याघाती॥

छूने वाला। रोकने वाला। दीर्घ, लम्बा। परिश्रमी। पंसारी। मेली। पक्काज्वारी, आखिलाड़ी। रोगी। इधर उधर फेंकने वाला। रटंटू। निन्दक, स्पष्टवक्ता। सम्यक् जलने वाला। अधिक मोह करनेवाला। पापी। द्वेषकरने वाला। दुश्मन। दूधवाला, पूर्णकर्त्ता। इन्द्रियजित्, ईश्वरीयनियमका यथार्थज्ञाता। बहुतखिलाड़ी। ज्ञानी। लोभरहित। रंगाहुआ। हिस्सेदार। बहुत चलनेवाला। बुराकार्य करनेवाला। चोर। मारनेवाला॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो सम्पृचादिक धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो॥ १४२ ॥

वौ कषलसकत्थस्रम्भः ॥ १४३ ॥

विशब्द उपपदे एभ्यो घिनुण् स्यात्। यथा-विकाषी। विलासी। विकत्थी। विस्रम्भी॥

हिंसक। खिलाड़ी। तारीफ करनेवाला। विश्वासी॥ तच्छीलादि कर्त्ताओं में विशब्द उपपद हो तो कष, लस, कत्थ तथा स्रम्भ धातु से घिनुण प्रत्यय हो॥

अपे च लषः ॥ १४४ ॥

लषधातोरपउपपदे चाद्वौ च घिनुण् स्यात्। यथा-अपलाषी। विलाषी॥

शोभा रहित । अतिसुन्दर ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो अप तथा वि उपपद होनेपर लष धातु से घिनुण् प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ॥ १४५ ॥

प्र उपपदे लपादिभ्यो धातुभ्यो घिनुण् स्यात् । यथा-प्रलापी । प्रसारी । प्रद्रावी । प्रमाथी । प्रवादी । प्रवासी ॥

बकवादी । चारों ओर फैलाने वाला, पंसारी । भागने वाला । बिलोड़ने वाला, कष्टकारक । वक्ता । परदेश में रहने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ताओं में प्र उपपद होनेपर लप, सृ, द्रु, मथ, वद तथा वस धातु से घिनुण प्रत्यय हो ॥ १४५ ॥

निन्दहिंसक्लिशखाद विनाश परिक्षिप परिरट परिवादिव्या भाषा सूयो वुञ् ॥ १४६ ॥

नि०यः, वुञ् । तच्छीलादिषु कर्तृषु निन्दादिभ्यो धातुभ्यो वुञ् स्यात् । यथा-निन्दकः । हिंसकः । क्लेशकः । खादकः । विनाशकः । परिक्षेपकः । परिराटकः । परिवादकः । व्याभाषकः । असूयकः । (तच्छीलादिषु वास रूपन्यायेन तृजादयो नोभवन्तीति विज्ञेयम्) ॥

निन्दा करने वाला । दुःख देने वाला । कष्ट पहुंचाने वाला । खाने वाला । नाशकर्त्ता । फेंकने वाला । बहुतेरटने वाला । निंदक, स्पर्धवक्ता । हँसी करनेवाला । निन्दक ॥ तच्छीलादि कर्त्ताओं में निन्दआदि धातुओंसे परे वुञ् प्रत्ययहो ॥ १४६ ॥

देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥ १४७ ॥

दे०शोः, च, उं०र्गे । उपसर्गे उपपदे देवयतेः क्रुशेश्चवुञ् स्यात् । यथा-आदेवकः । आक्रोशकः ॥

खिलाड़ी, विजयी, सुन्दर । गालीदाता । अण्डवण्डबकने वाला । तच्छीलादि कर्त्ता होतो उपसर्ग उपपद होनेपर देवि तथा कुशधातुसे वुञ् प्रत्यय हो ॥ १४७ ॥

चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥ १४८ ॥

च० द्व. अ० द्व, युच् । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु चलनार्थाच्छब्दार्थाच्च युच् स्यात् । यथा—चलनः । चोपनः । शब्दनः । रवणः । कम्पनः ॥

चलने वाला । शब्दकरने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होतो अकर्मक चलनार्थ तथा शब्दार्थक धातुओंसे युच् प्रत्ययहो ॥ १४८ ॥

अनुदात्तेतश्चहलादेः ॥ १४९ ॥

अ० तः, च, हं० देः । अनुदात्तेद्यो धातुर्हलादि रकर्मकस्तस्माद्युच् स्यात् । यथा—वर्त्तनः । वर्धनः ॥

वर्त्तावकरने वाला । वृद्धिकर्त्ता ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होतो अकर्मक हलादि अनुदात्तेत् धातु से युच् प्रत्ययहो ॥ १४९ ॥

जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ॥ १५० ॥

(जु-इति सौत्रो धातुः-गतौ वेगेच) । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु जु प्रभृतिभ्यो धातुभ्यो युच् स्यात् । यथा—जवनः । चङ्क्रमणः । दन्द्रमणः । सरणः । गर्धनः । ज्वलनः । शोचनः । लषणः । पतनः । पदनः ॥

चलने वाला, जल्दबाज । इधर उधर टहलने वाला । इधर उधर घूमने वाला । जाने वाला । लोभी । अग्नि । शोककर्त्ता । सुन्दर । गिरने वाला । गमनशील ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होतो जु आदि धातुओं से युच् प्रत्ययहो ॥ १५० ॥

क्रुध मण्डार्थेभ्यश्च ॥ १५१ ॥

क्रु० भ्यः, च । क्रुधार्थेभ्यो मण्डार्थेभ्यश्च धातुभ्यो युच् स्यात् । यथा—क्रोधनः । रोषणः । मण्डनः । भूषणः ॥

क्रोधी । भूषण युक्त । तच्छीलादि कर्त्ता हों तो क्रुधार्थक तथा मण्डार्थक धातुओं से युच् प्रत्यय हो ॥ १५१ ॥

न यः ॥ १५२ ॥

यकारान्ताद् युज् न स्यात् । यथा—क्ष्मायिता ॥

कांपा हुआ । तच्छीलादि कर्त्ता हों तो यकारान्त धातु से युच प्रत्यय नहो ॥ १५२

सूददीपदीक्षश्च ॥ १५३ ॥

सू० क्षः, च । एभ्यो युज् न स्यात् । यथा—सूदिता । दीपिता । दीक्षिता ॥

झरनेवाला । प्रकाशक । शिक्षित ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो सूद, दीप तथा दीक्ष धातु से युच् प्रत्यय नहो ॥ १५३ ॥

लषपतपदस्था भू वृषहन कम गम शृभ्य उकञ् ॥ १५४ ॥

ल० भ्यः, उकञ् । तच्छीलादिषु कर्तृषु लष प्रभृतिभ्यो धातुभ्य उकञ् स्यात् । यथा—लाषुकः । पातुकः । पादुकः । स्थायुकः । भावुकः । वर्षुकः । घातुकः । कामुकः । गामुकः । शारुकः ॥

कान्तियुक्त । गमनशील । गमन कर्त्ता । स्थित । जिस का प्रपदनेकारसहो । वर्षने वाला । मारने वाला । कामी । गमनशील । हिंसक ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो लष आदि धातुओं से उकञ् प्रत्ययहो ॥ १५४ ॥

जल्पभिक्ष कुट्टलुण्टवृङः षाकन् ॥ १५५ ॥

तच्छीलादिषु कर्त्तृषु जल्पादिभ्यो धातुभ्यः षाकन् स्यात्। यथा-जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः, वराकी ॥

बकवादी, अधिकबोलने वाला। भिक्षुक। जलाने वाला। चोर। विचारा, विचारी॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो जल्पादि धातुओं से षाकन् प्रत्ययहो ॥ १११ ॥

प्रजोरिनिः ॥ १५६ ॥

प्रजोः, इनिः। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु प्रपूर्वाज्जवतेरिनिः स्यात्। यथा-प्रजवी, प्रजविनौ, प्रजविनः ॥

वेगवान्, अति चलने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो प्र पूर्वक जू धातुसे इनि प्रत्यय हो ॥ १९३ ॥

जिदृक्षिविश्रीण्वमाऽव्यथाऽभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥ १५७ ॥

जि० भ्यः, च। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु जि प्रभृतिभ्यो धातुभ्य इनिः स्यात्। यथा-जयी। दरी। क्षयी। विश्रयी। अत्ययी। वमी। अव्यथी। अभ्यमी। परिभवी। प्रसवी, प्रसविनौ, प्रसविनः ॥

जीतनेवाला। आदर करनेवाला। नाशवाला। सेवक। आज्ञा का न मानने वाला, कार्य्य को विगाड़ने वाला। कै करनेवाला। अश्व, घोड़ा। अतिरोगी। हारनेवाला। पैदाकरनेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो जि, दृ, क्षि, वि + श्रि, इण, वम, नञ् + व्यथ, अभि + अम, परि + भू तथा परिपूर्वक षू धातु से इनि प्रत्यय हो ॥ १९७ ॥

स्पृहि गृहि पति दयि निद्रा तन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ॥ १५८ ॥

स्पृ० भ्यः, आलुच् । स्पष्टम् । यथा—स्पृहयालुः । गृहयालुः । पतयालुः । दयालुः । निद्रालुः । तन्द्रालुः । श्रद्धालुः ॥ (शीङो-वाच्यः) ॥ शयालुः ॥

चाहनेवाला । गृहीता, लेनेवाला । पतनशील, गिरनेवाला । रहीम, दयाकरने वाला । सोनेवाला । ऊंघनेवाला, आलसी । आदरकरने वाला । बहुत सोने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो स्पृहि, गृहि, पति, दयि, नि + द्रा, तत् + द्रा, श्रत् + डुधाञ् इन धातुओं से आलुच् प्रत्यय हो ॥ १५८ ॥

दा धेट् सि शद सदो रुः ॥ १५९ ॥

दा० दंः, रुः । तच्छीलादिषु कर्तृषु एभ्यो रुः स्यात् । यथा—दारुः । धारुः । सेरुः । शद्रुः । सद्रुः ॥

दाता । पीनेवाला । बांधने वाला । पैना, तेज़ । गमनशील ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो डुदाञ्, धेट्, सि, शद तथा सद् धातु से रु प्रत्यय हो ॥ १५९ ॥

सृघस्यदः क्मरच् ॥ १६० ॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु एभ्यः क्मरच् स्यात् । यथा—सृमरः । घस्मरः । अद्मरः ॥

जानेवाला । खानेवाला । भोजी ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो सृ, घस् तथा अद धातु से क्मरच् प्रत्यय हो ॥ १६० ॥

भञ्जभासमिदो घुरच् ॥ १६१ ॥

भ० दंः, घुरच् । तच्छीलादिषु कर्तृषु एभ्यो घुरच् स्यात् । यथा—भङ्गुरः । भासुरः । मेदुरः ॥

नष्ट होनेवाला, टूटनेवाला । प्रकाश । चिकना ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो भञ्ज, भास तथा मिद धातु से घुरच् प्रत्यय हो ॥ १६१ ॥

विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ॥ १६२ ॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु विदादिभ्यो धातुभ्यः कुरच् स्यात्। यथा-विदुरः। भिदुरः। छिदुरः ॥

पण्डित। तोड़नेवाला। छेदन कर्ता ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो विद, भिदिर् तथा छिदिर् धातु से कुरच् प्रत्यय हो ॥ १६२ ॥

इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप् ॥ १६३ ॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु इणादिभ्यो धातुभ्यःक्वरप् स्यात्। यथा-इत्वरः, इत्वरी। नश्वरः नश्वरी। जित्वरः,जित्वरी। सृत्वरः, सृत्वरी ॥

पथिक, पथिका। नाश होनेवाला, ली। जीतनेवाला, ली॥ जानेवाला, ली। तच्छीलादि कर्त्ता हों तो इण्, नश, जि तथा सृ धातु से क्वरप् प्रत्ययहो॥ १६३॥

गत्वरश्च ॥ १६४ ॥

गत्वरः, च। गत्वर इति निपात्यते। गमे रनुनासिकलोपः क्वरप् च यथा-गत्वरः, गत्वरी॥

गमनशील, ला॥ गम्लृ धातु से क्वरप् प्रत्यय तथा अनुनासिक का लोप करके गत्वर शब्द निपातित कियागया है ॥ १६४ ॥

जागुरूकः ॥ १६५ ॥

जागुः, ऊकः। जागर्त्तेरुकः प्रत्ययः स्यात्। यथा-जागरूकः।

चतुर,जागरणशील॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो जागृ धातुसे ऊक प्रत्ययहो॥ १६५॥

यजजपदशां यङः ॥ १६६ ॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु एभ्यो यङन्तेभ्यः ऊकः स्यात्। यथा-यायजूकः। जञ्जपूकः। दन्दशूकः ॥

बार बार यज्ञ करनेवाला । बार२ कहने वाला । बार२ काटने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो यङन्त यज, जप तथा दंश धातु से ऊक प्रत्यय हो ॥ १६६ ॥

नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥ १६७

तच्छीलादिषु कर्तृषु नम्यादिभ्यो धातुभ्यो रः स्यात् । यथा-नम्रः । कम्प्रः । स्मेरः । अजस्रम् । कम्रः । हिंस्रः । दीप्रः ॥

नमनशील, लचाहुआ । कांपने वाला । कामुक, सुन्दर । दुःखदायक । प्रकाशित॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो नम, कमि, स्मिङ्, नञ् + जसु, कमु, हिंस तथा दीपी धातु से र प्रत्यय हो ॥ १६७ ॥

सनाशंसभिक्ष उः ॥ १६८ ॥

स०क्षं:,उः । तच्छीलादिषु कर्तृषु सन्नन्तेभ्य आशंसे भिक्षेश्चोः स्यात् । यथा-चिकीर्षुः, चिकीर्षू, चिकीर्षवः । आशंसुः । भिक्षुः ॥

करनेकी इच्छा करने वाला । इच्छावान्, उम्मेदवार । मांगने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ताहोंतो सन्नन्त, आङ्+शसि तथा भिक्षधातुसे उ प्रत्ययहो ॥ १६८ ॥

विन्दुरिच्छुः ॥ १६९ ॥

विन्दुः, इच्छुः । वेत्तेर्नुम्, इषेश्छत्वमुश्च. निपात्यते । यथा-विन्दुः । इच्छुः ॥

जलकण, पानीका क़तरा, जानने वाला । चाहने वाला ॥ विदधातुको नुमागम तथा उ प्रत्यय एवम् इषुसे उ प्रत्यय तथा धातु को छत्व करके विन्दु तथा इच्छु शब्द निपातन कियागया है ॥ १६९ ॥

क्याच्छन्दसि ॥ १७० ॥

क्यात्, छन्दसि छन्दसि विषये तच्छीलादिषु कर्तृषु क्य प्रत्ययान्ताद् धातोरुः स्यात् । यथा-मित्रयुः ॥

मित्रप्रिय । तच्छीलादि कर्त्ता होंतो छन्दो विषय में क्य (क्यच्, क्यङ्, क्यष्) प्रत्ययान्त धातु से उ प्रत्ययहो ॥ १७० ॥

आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥ १७१

छन्दसि विषये तच्छीलादिषु कर्त्तृषु आदन्ता दृदन्ताद् गमादिभ्यश्च किकिनौ स्यातामम् च लिड्वत् । यथा-पपिः सोमम् ददिर्गाः । बभ्रिर्वज्रम् । जग्मिर्युवा । जघ्निर्वृत्रममित्रियम् । जज्ञिः । (भाषायां धाञ् कृ सृ गमि जनि नमिभ्यः)॥ दधिः । चक्रिः । सस्रिः । जग्मिः । जज्ञिः । नेमिः ॥

छन्दो विषय में तच्छीलादि कर्त्ता होंतो आकारान्त ऋदन्त गम्लृ हन तथा जनी वा जन धातु से कि तथा किन् प्रत्ययहों और वे लिड्वत् माने जावें ॥ १७१ ॥

स्वपितृषोर्नजिङ् ॥ १७२ ॥

स्व०षोः, नजिङ् । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु स्वपेस्तृषेश्च नजिङ् स्यात्। यथा-स्वप्नक्, स्वप्नजौ, स्वप्नजः । तृष्णक्, तृष्णजौ, तृष्णजः ॥

सोने वाला । प्यासा ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो ञिष्वप् तथा ञितृष् धातु से नजिङ् प्रत्यय हो ॥ १७२ ॥

शृवन्द्योरारुः ॥ १७३ ॥

शृ० द्योः, आरुः । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु आभ्यामारुः स्यात् । यथा-शरारुः । वन्दारुः ॥

हिंसक । स्तुतिकरने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो शृ तथा वदि धातु से आरु प्रत्यय हो ॥ १७३ ॥

भियः क्रुक्लुकनौ ॥ १७४ ॥

तच्छीलादिषु कर्त्तृषु ञिभी भयेऽस्मात् क्रु क्लुकनौ स्याताम् यथा-भीरुः। भीलुकः॥ (क्रुकन्नपि वाच्यः)॥ भीरुकः॥

डरपोंक॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो ञिभीधातुसे क्रु तथा क्लुकन् प्रत्ययहों॥ १७४॥

स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥ १७५ ॥

स्थेश०सः, वरच्। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु स्थादिभ्यो धातुभ्यो वरच् स्यात्। यथा-स्थावरः। ईश्वरः। भास्वरः। पेस्वरः। कस्वरः॥

वृक्षादि। स्वामी। गमन शील। दीप्तिशील। जानेवाला॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो स्था, ईश, भास, पिस तथा कस धातु से वरच् प्रत्यय हो॥ १७५॥

यश्च यङः ॥ १७६ ॥

यः, च, यङः। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु या प्रापणेऽस्माद् यङन्ताद् वरच् स्यात्। यथा-यायावरः॥

सर्वत्र विचरनेवाला॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो यङन्त या धातु से वरच् प्रत्यय हो॥

भ्राज भास धुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥ १७७ ॥

तच्छीलादिषु कर्त्तृषु एभ्यः क्विप् स्यात्। यथा-विभ्राट्। भाः, भासौ, भासः। धूः, धुरौ, धुरः। विद्युत्। ऊर्क्। पूः, पुरौ, पुरः। जूः, जुवौ, जुवः। ग्रावस्तुत्॥

विशेष प्रकाशित। प्रकाश। धूर्त्त। विजुली। बलवान। नगर। गमनशील। पत्थरों की तारीफ़ करनेवाला॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो भ्राज आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो॥ १७७॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ १७८ ॥

अ० भ्यः, आपि, दृश्यते । तच्छीलादिषु कर्तृषु अन्येऽभ्योऽपि-धातुभ्यः क्विप् दृश्यते । यथा-युक् । छिद् । भिद् ॥ (क्विब् वचि प्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणांदीर्घोऽसम्प्रसारणं च) ॥

यथा-वक्तीति-वाक् । पृच्छतीति-प्राट् । आयतं स्तौतीति-आयतस्तूः । कटं प्रवते-कटप्रूः । जुरुक्तः । श्रयतीति-श्रीः ॥ (द्युति गमि जुहोतीनां द्वे च) ॥ यथा-दिद्युत् । जगत् ॥ (जुहोतेर्दीर्घश्च) ॥ जुहूः । (दृ-भये) अस्य (ह्रस्वश्च) ॥ दीयते--दद्दत् ॥ (ध्यायते सम्प्रसारणं च) ॥ धीः ॥

जोड़नेवाला । छेदन कर्ता ॥ भेदनकर्ता ॥ तच्छीलादि कर्ता हों तो इतर धातुओं से भी क्विप् प्रत्यय दीखता है ॥ १७८ ॥

भुवः सञ्ज्ञान्तरयोः ॥ १७९ ॥

सञ्ज्ञायामन्तरे च गम्ये भवतेः क्विप् स्यात् । यथा -मित्रभूर्नाम कश्चित् । प्रतिभूः । धनिकाधमर्णयोरन्तरेयो विश्वासार्थं तिष्ठति सः-प्रतिभूरित्युच्यते ॥

सञ्ज्ञा तथा अन्तर गम्यमान हो तो भू धातु से क्विप् प्रत्ययहो ॥ १७९ ॥

विप्रसंभ्यो ड्वसञ्ज्ञायाम् ॥ १८० ॥

वि० भ्यः, डु, अ० म् । असञ्ज्ञायामेभ्यो भुवो डुः स्यात् । यथा--विभुः--व्यापकः । प्रभुः- स्वामी । सम्भुः--जनिता ॥ (मितद्र्वादिभ्य उपसङ्ख्यानम्) ॥ यथा--मितंद्रवतीति-मितद्रुः । शतद्रुः । शम्भुः ॥

यदि किसी का नाम न हो तो वि, प्र तथा सम् उपसर्ग पूर्वक भू धातु से डु प्रत्यय हो ॥ १८० ॥

धः कर्मणि ष्ट्रन् ॥ १८१ ॥

धेटो धाञश्च कर्मणि कारके ष्ट्रन् स्यात् । यथा--धात्री । स्तनदायिनी, आमलकी च धात्रीत्युच्यते ॥

कर्मकारक में धेट् एवम् डुधाञ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो ॥ १८१ ॥

दाम्नीशस युयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ॥ १८२ ॥

करणे कारके दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् । यथा—दान्त्यनेनेति—दात्रम् । नेत्रम् । शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । नध्री ॥

हिसिया । लोचन, आंख । औज़ार । जोता (जोत्तर) । युगबन्धनार्थ दाम, जुयेके साथ हलबांधनेकी रस्सी । तारीफ । पशुआदिके ताडनकादण्डा, चाबुक । बन्धन । झरना । लिङ्ग, शिश्न । पत्ता । दाढ़ । बरत्रा (बर्त्त) चमड़ेके चरसे के खींचने की रस्सी ॥ करणकारकमें दाप् आदि धातुओंसे ष्ट्रन् प्रत्ययहो ॥ १८२ ॥

हलसूकरयोः पुवः ॥ १८३ ॥

पूङ्पूञोः करणे कारके ष्ट्रन् स्यात् । तच्चेत्करणं हलसूकरयोरवयवः । यथा—पोत्रम् । हलस्य, सूकरस्य वा मुखमित्यर्थः ॥

पूङ् तथा पूञ् धातुसे करण कारक में ष्ट्रन् प्रत्ययहो यदि वह करण हल या सुअरका अवयव (मुख) होतो ॥ १८३ ॥

अर्त्तिलूधूसूखनिसहचर इत्रः ॥ १८४ ॥

---

* (७ । २ । ९) इतिनेट् ।

अ० चेरः, इत्रः । करणे कारके एभ्यो धातुभ्य इत्रः स्यात् । यथा-अरित्रम् । लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ॥

करिया, नाव चलानेका काष्ठ, चप्पा । चाकू । व्यजन, पंखा । प्रेरक । कुद्दाल, फांवडा । शोधनेका साधन । जौना, हाल ॥ करण कारक में ऋ, लूञ्, धू, सू, खनु, सह, तथा चर धातु से इत्र प्रत्यय हो ॥ १८४ ॥

पुवः सञ्ज्ञायाम् ॥ १८५ ॥

सञ्ज्ञायां गम्यमानायां करणे कारके पवतेरित्रः स्यात् । यथा-दर्भः पवित्रम् । बर्हिष्पवित्रम् ॥

दाभ पाक हैं । यदि समुदाय से सञ्ज्ञा गम्यमान हो तो कारण कारक में पू धातु से इत्र प्रत्यय हो ॥ १८५ ॥

कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः ॥ १८६ ॥

कं० रि, च, ऋं० योः । ऋषिदेवतयोः करणे कर्त्तरि च पुव इत्रः स्यात् । ऋषौ करणे, देवतायां च कर्त्तरि । ऋषिर्वेदमन्त्रः । पूयतेऽनेनेति-पवित्रम् । अग्निः पवित्रम् ॥

ऋषि तथा देवता वाच्य हो तो करण तथा कर्त्ता कारक में पू धातु से इत्रप्रत्यय हो

ञीतः क्तः ॥ १८७ ॥

ञीतो धातोर्वर्त्तमानेऽर्थे क्तः स्यात् । यथा-मिन्नः । धृष्टः ॥

स्नेहयुक्त । ढीठ । ञकार जिसका इत् गया हो ऐसे धातु से वर्त्तमान अर्थ में क्त प्रत्यय हो ॥ १८७ ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥ १८८ ॥

म० भ्यः, च । मति रिच्छा । बुद्धि र्ज्ञानम् । पूजा सत्कारः । एतदर्थेभ्यश्च धातुभ्यो वर्त्तमानेऽर्थे क्तः स्यात् । यथा–राज्ञां मतः । बुद्धः । पूजितः ॥

राजा लोग चाहते हैं, जाना है, सत्कार किया है ॥ वर्त्तमान अर्थ में मत्यर्थक बुद्ध्यर्थक तथा पूजार्थक धातुओं से क्त प्रत्यय हो ॥ १८८ ॥

इति तृतीयाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

अथ तृतीयाऽध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

उणादयो बहुलम् ॥ १ ॥

उ० यः, बे० म् । संज्ञायां विषये उणादयो वर्त्तमानेऽर्थे बहुलंस्युः । केचिदविहिता अप्यूह्याः । (कृ वा पा जिमि स्वदि साध्यशूभ्य उण्)। यथा–कारुः । वायुः । पायु । जायुः । मायुः । स्वादुः । साधुः । आशुः ॥ बाहुलकं प्रकृतेस्तनु दृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् । कार्य्य सशेष विधेश्च तदुक्तं नैगमरूढि भवं हि सुसाधु ॥ १ ॥ नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् । यन्नपदार्थ विशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥ २ ॥ संज्ञासु धातु रूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे । कार्याद् विद्यदनुबन्ध, मेतच्छास्त्र मुणादिषु ॥३ ॥

कारीगर । पवन । गुदा । औषध । पित्त । स्वादुभोजन कर्त्ता । सज्जन । घोड़ा । वर्त्तमान अर्थ में उणादिप्रत्यय बहुलता से संज्ञाविषय में हों ॥ १ ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ २ ॥

१-(७ । २ । ११५) इति वृद्धिः ॥ २-(७ । ३ । ३३) इति युक् ॥

भूते, अपि, दृ० न्ते । भूते कालेऽपि उणादयः प्रत्यया दृश्यन्ते। यथा—वर्त्म । चर्म । भस्म ॥

रास्ता । चाम । राख ॥ भूतकालमें भी उणादि प्रत्यय दीखते हैं ॥ २ ॥

भविष्यति गम्यादयः ॥ ३ ॥

भविष्यति काले इमे साधवः स्युः । यथा—ग्रामं गमी । अत्राऽऽगामी ॥ (अनद्यतने उपसङ्ख्यानम्)॥ श्वोग्रामं गमी ॥

गांवको जानेवाला है । यहां आने वाला है ॥ भविष्यत् कालमें गमि आदि शब्द सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

यावत् पुरानिपातयोर्लट् ॥ ४ ॥

यां० योः, लट् । भविष्यति काले यावत् पुरा शब्दयोर्निपातयोरुपपदयो र्धातो लट् स्यात् । यथा—यावत् भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते ॥

निश्चय खायेगा । निश्चय प्रथम खायेगा ॥ यावत् तथा पुरा निपात उपपद हों तो भविष्यत् काल में धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

विभाषा कदाकर्ह्योः ॥ ५ ॥

भविष्यति काले कदा कर्हि इत्येतयोरुपपदयो र्धातोर्वा लट् स्यात् । यथा—कदा कर्हि वा भुङ्क्ते, भोक्ष्यते, भोक्ता वा ॥

कब खायेगा ॥ कदा तथा कर्हि शब्द उपपद हों तो भविष्यत् काल में विकल्प करके धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

किंवृत्ते लिप्सायाम् ॥ ६ ॥

भविष्यति काले किंवृत्तमुपपदे लिप्सायां गम्यमानायां धातो

वा लट् स्यात्। यथा-कं कतरं कतमं वा भवन्तो भोजयन्ति, भोजयिष्यन्ति, भोजयितारो वा ॥

आप किसको भोजन करायेंगे ॥ किं वृत्त उपपद हो तो लिप्सा के गम्यमान होनेपर विकल्प करके धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥ ७ ॥

लिप्स्यमानेनान्नादिनास्वर्गादेः सिद्धौ गम्यमानायां भविष्यति काले वा लट् स्यात्। यथा-येऽन्नं ददति, दास्यन्ति, दातारो वा-ते स्वर्गं यान्ति, यास्यन्ति, यातारो वा ॥

जो अन्नदान करेंगे वे स्वर्ग (सुख) को प्राप्त होंगे ॥ लिप्स्यमान अन्नादि से स्वर्गादि (विशेषसुख) की सिद्धि गम्यमान होनेपर भविष्यत् काल में विकल्प से लट् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

लोडर्थलक्षणे च ॥ ८ ॥

लोडर्थः प्रैषादिर्लक्ष्यतेयेन-तत्र वर्त्तमानाद्धातोर्भविष्यति काले वा लट् स्यात्। यथा-अध्यापकश्चेदायाति, आयास्यति, आयाता वा अतस्त्वं पाठंस्मर ॥

चूंकि अध्यापक आने वालाहै इसवास्ते तू पाठ यादकर। लोडर्थप्रैषादि लक्षित हों जिससे ऐसे अर्थ में वर्त्तमान धातु से भविष्यत् कालमें विकल्पसे लट्प्रत्ययहो ।८।

लिङ्चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ ९ ॥

लिङ्, च, ऊ०के। ऊर्ध्वं मुहूर्त्ताद् भवः-ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकः। निपातनात्समास उत्तरपद वृद्धिश्च। ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके भविष्यति काले लोडर्थ लक्षणे वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ्लटौ वा स्याताम्। यथा-मुहूर्त्तादुपरि उपाध्यायश्चेदागच्छेत्, आगच्छति, आगमिष्यति, आगन्ता वा-अथ यूयंवेद मधीयीध्वम् ॥

चूंकि दो घड़ी में उपाध्याय (शुल्क (फीस) लेकर पढ़ाने वाला) आनेवाले हैं इसलिये तुमवेद को पढ़ो । ऊर्ध्वमौहूर्तिक भविष्यत् काल में लोडर्थ लक्षण होने पर वर्त्तमान धातु से विकल्पकरके लिङ् तथा लट् प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

तुमुन्ण्वुलौक्रियायांक्रियार्थायाम् ॥ १० ॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यदर्थे धातोस्तुमुन् ण्वुलौ स्याताम्। मान्तत्वादव्ययत्वम् । यथा-गुरुकुलं द्रष्टुं प्रयाति। उत्सवं दर्शकायन्ति॥

गुरुकुल को देखेगा अतः जाता है । उत्सव को देखेंगे इसलिये जाते हैं। क्रियार्थक्रिया उपपद होतो भविष्यत्काल में धातुसे तुमुन् तथा ण्वुल् प्रत्यय हो ॥ १० ॥

भाववचनाश्च ॥ ११ ॥

भा०नाः, च । भाव इति प्रकृत्य वक्ष्यमाणा घञादयः क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यदर्थेस्युः। यथा-यागाययाति । पाठायैति ॥

यज्ञ करेगा अतः जाता है । पढ़ेगा इसलिये जाता है। क्रियार्थक्रिया उपपद होतो भविष्यत्काल में धातु से घञ् आदि प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

अण् कर्मणि च ॥ १२ ॥

भविष्यति काले कर्मण्युपपदे क्रियार्थायां क्रियायां चाण् स्यात्। यथा-काण्डलावो व्रजति ॥

वृक्षके स्कन्ध को काटेगा इसलिये जाता है ॥ कर्म तथा क्रियार्थ क्रिया उपपद होतो भविष्यत्काल में धातु से अण् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

लृट्शेषे च ॥ १३ ॥

शेषे शुद्धे भविष्यति काले धातोर्लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यांच । यथा-करिष्यतीति-व्रजति ॥ गमिष्यामि ॥

करेगा इसवास्ते जाता है । जाऊंगा । क्रियार्थ क्रिया उपपदहो या नहो तो शेष भविष्यत्काल में धातु से लृट् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

लृटः सद्वा ॥ १४ ॥

लृटः स्थाने सत्संज्ञकौ शतृशानचौ वा स्याताम् । व्यवस्थित विभाषेयम् । तेनाऽप्रथमा समानाधिकरणे, प्रत्ययोत्तरपदयोः, सम्बोधने, लक्षणहेत्वोश्च, नित्यम् । यथा—करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य । करिष्यतोऽपत्यं कारिष्यतः । करिष्यद्भक्तिः । हे करिष्यन् ! ॥ अर्जयिष्यन् वसति । प्रथमासमानाधिकरणे विकल्पः । करिष्यन् सः, करिष्यमाणः सः, करिष्यति, करिष्यते ॥

करने वालेको देख । करने वालेका लड़का । करने वालेकी भक्ति । हेकरनेवाले ! । इकट्ठाकरे इसलिये रहता है । वह करेगा ॥ लृट् के स्थान में सत् संज्ञक शतृ तथा शानच् विकल्प से आदेश हों ॥ १४ ॥

अनद्यतने लुट् ॥ १५ ॥

भविष्यदनद्यतनेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लुट् स्यात् । यथा—श्वोगन्तासः । परेद्युः पठितासित्वम् । चैत्रेगन्तास्मि ॥ (परिदेवनेश्वस्तनी भविष्यदर्थे वक्तव्या) ॥ यथा—इयं नु कदा गन्ता या एवंपादौ निदधाति । अयं नु कदाऽध्येता यः एवमनभियुक्तः ॥

वह कल जायगा । तू परसों पढ़ेगा । चैत्र में मैं जाऊंगा ॥ भविष्यद् अनद्यतन (आजको छोड़कर) काल में वर्त्तमान धातु से लुट् प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥ १६ ॥

प० शंः, घञ्, । इत उत्तरं त्रिष्वपि कालेषु प्रत्यया विधीयन्ते । पदादिभ्यो धातुभ्यो घञ् स्यात् । यथा—पद्यतेऽसौ- पादः । रुजतीति रोगः । विशतीति- वेशः । स्पृशतीति- स्पर्शः ॥

पैर। रोग। सजावट का काम। छूना॥ पद रुज, विश तथा स्पृश धातु से घञ् प्रत्यय हो। १६

सृ स्थिरे ॥ १७ ॥

स्थिरे कर्त्तरि सर्त्तेर्धातोर्घञ् स्यात्। यथा--सरति कालान्तरमिति--सारः ॥ (व्याधिमत्स्यबलेषुचेतिवाच्यम्) ॥ यथा--अतीसारो व्याधिः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्रसरतिः। रुधिरादिक मतिशयेन सरतीत्यर्थः। विसारीमत्स्यः। सारोबलम्। सारो बले स्थिरांशेच ॥

पक्का हस्सा, स्थिर। स्थिर कर्त्ता वाच्य होतो सृ धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ १७

भावे ॥ १८ ॥

भावे वाच्ये धातोर्घञ् स्यात्। यथा--पाकः। त्यागः। रागः। यागः॥

पचन। त्यजन, छोड़ना। रञ्जन, रंगना। यजन ॥ भाव वाच्य हो तो धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

अकर्त्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम् ॥ १९ ॥

कर्त्तृवर्जिते कारके सञ्ज्ञायां विषये धातोर्घञ् स्यात्। यथा--प्रास्यते इति प्रासः। को भवता लाभो लब्धः। आहरन्ति तस्माद्रसमित्याहारः ॥

कुन्तास्त्र, भाला। आपको क्या लाभ हुआ। भोजन॥ कर्त्तृवर्जित कारक में संज्ञा गम्यमान हो तो धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ॥ २० ॥

परिमाणाख्यायां गम्यमानायां सर्वेभ्यो धातुभ्यो घञ् स्यात्। यथा--एकस्तण्डुल निचायः। द्वौ कारौ ॥ (दारजारौ कर्त्तरि

१--(६ । ४ । २७) इति रञ्जेर्नलोपः ॥

णिलुक् च)॥ यथा—दारयन्तीति—दाराः । जारयन्तीति—जाराः ॥

एक चावलों का समूह । दो करण (मारना) ॥ परिमाणाख्या गम्यमान हो तो सब धातुओं से घञ् प्रत्यय हो ॥ २० ॥

इङश्च ॥ २१ ॥

इङः, च । इङोधतोर्घञ् स्यात् । यथा—उपेत्याधीतेऽस्मादसावुपाध्यायः ॥(अपादाने स्त्रियामुपसङ्ख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष्)॥ यथा—उपाध्याया, उपाध्यायी॥ (शॄ वायुवर्ण निवृत्तेषु)॥ शॄ इत्यविभक्तिको निर्देशः ।शारः—वायुः । शारः—वर्णः शारः—निवृत्तम् ॥

इङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

उपसर्गे रुवः ॥ २२ ॥

उपसर्गे उपपदे रौतेर्धातोर्घञ् स्यात् ।यथा—संरावः ॥

शब्द, आवाज़ । उपसर्ग उपपद हो तो रु धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

समि युद्रुदुवः ॥ २३ ॥

सम्युपपदे एभ्यो घञ् स्यात् । यथा—संयूयते मिश्री क्रियते गुडादिभिरिति संयावः । संद्रावः । सन्दावः ॥

हलवा । चञ्चलवस्तु । गमन, जाना ॥ सम् उपपद हो तो यु, द्रु तथा दु धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २३ ॥

श्रिणी भुवोऽनुपसर्गे ॥ २४ ॥

श्रि०वः, अ० गे। श्रिणी भू इत्येतेभ्यो धातुभ्योनुपसर्गेभ्यो घञ् स्यात् । यथा—श्रायः । नायः । भावः ॥

सेवा । नीति । आशय, मतलब ॥ उपसर्गरहित श्रिञ्, नीञ्, तथा भू धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

वौ क्षुश्रुवः ॥ २५ ॥

वावुपपदे आभ्यां घञ् स्यात् । यथा -विक्षावः । विश्रावः ॥

शब्द । प्रसिद्धि । वि उपपद हो तो क्षु तथा श्रु धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥२५॥

अवोदोर्नियः ॥ २६ ॥

अ० दोः, नियः । अव उत् इत्येतयो रुपपदयोर्नयतेर्धातो घञ् स्यात् । यथा--अवनायः--अधोनयनम् । उन्नायः ऊर्ध्वनयनम् ॥

अव तथा उत् उपपद हों तो नीञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

प्रे द्रुस्तुस्रुवः ॥२७ ॥

प्रयुपपदे एभ्यो घञ् स्यात् । यथा -प्रद्रावः-पलायनम् । प्रस्तावः--प्रस्तावना । प्रस्रावः--मूत्रम् ॥

प्र उपपद हो तो द्रु, स्तु तथा स्रु धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

निरभ्योः पूल्वोः ॥ २८ ॥

निरभिपूर्वयोः पूल्वोर्धात्वोर्घञ् स्यात् । यथा--निष्पूयते शूर्पादिभिरिति--निष्पावो-धान्य विशेषः । अभिलावः--कृन्तनम् ॥

निर् तथा अभि उपपद हो तो पूङ्, पूञ् तथा लूञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो॥२८॥

उन्न्योर्ग्रः ॥ २९ ॥

उन्न्योः, ग्रः । उन्न्योरुपपदयोर्गॄधातोर्घञ् स्यात् । यथा -उद्गारः-वमनम् । निगारः--भोजनम् ॥

उत् तथा नि उपपद हों तो गॄ धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

कॄ धान्ये ॥ ३० ॥

कॄ इत्यस्माद् धान्य विषयकादुन्न्यो र्घञ् स्यात् । यथा-उत्कारः, निकारः । धान्यस्य विक्षेपादिकमित्यर्थः ॥

उत् तथा नि उपपद हों तो धान्य विषयक कॄ धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥३०॥

यज्ञे समि स्तुवः ॥ ३१ ॥

यज्ञविषये प्रयोगे सम्पूर्वात् स्तौतेर्घञ् स्यात् । यथा-समेत्यस्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगाः-स देशः संस्तावः । यज्ञेकिम् । संस्तवः-परिचयः ॥

यज्ञविषयक प्रयोग में संपूर्वक स्तु धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

प्रेस्त्रोऽयज्ञे ॥ ३२ ॥

प्रे, स्त्रः, अ०ज्ञे । यज्ञविषयं विहाय प्रयुपपदे स्तॄञ् धातोर्घञ् स्यात् । यथा-प्रस्तारः ॥

फैलाव ॥ यज्ञ विषयक को छोड़कर प्रपूर्वक स्तॄञ्धातुसे घञ्प्रत्ययहो ॥ ३२ ॥

प्रथने वावशब्दे ॥ ३३ ॥

प्रथने, वौ, अशब्दे । प्रथने गम्ये विपूर्वात् स्तॄञ् धातोर्घञ् स्यादशब्दे । यथा-पटस्य विस्तारः । प्रथनेकिम् । तृणविस्तरः । अशब्दे किम् । ग्रन्थविस्तरः ॥

अशब्द विषयक प्रथन (विस्तीर्णता) गम्यमान होतो विपूर्वक स्तृञ धातु से घञ प्रत्यय हो ॥ ३३ ॥

छन्दोनाम्नि च ॥ ३४ ॥

विपूर्वात् तृणातेश्छन्दो नाम्नि घञ् स्यात् । यथा-विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः ॥

जिसमें कि अक्षर विस्तीर्ण किये जाते हैं ऐसा पङ्क्ति नामक छ द ॥ विपूर्वक स्तृञ धातु से छन्दोनामवाच्य होनेपर घञ प्रत्ययहो ॥ ३४ ॥

उदि ग्रहः ॥ ३५ ॥

उद्युपपदे ग्रहे धातोर्घञ् स्यात् । यथा-उद्ग्राहः ॥

ऊपर पकड़ना ॥ उद् उपपद होतो ग्रहधातु से घञ प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

समि मुष्टौ ॥३६ ॥

मुष्टौ विषये सम्युपपदे ग्रहेर्धातोर्घञ् स्यात्।यथा-मल्लस्यसंग्राहः ॥

मल्लकी मुष्टि ॥ मुष्टिविषयक धात्वर्थ होतो सम् उपपद होनेपर ग्रह धातु से घञ प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ ३७ ॥

प०न्योः, नीणोः, द्यू०योः । द्यूताभ्रेषयोः परिशब्दे निशब्दे चोपपदे यथासङ्ख्यं निय इणश्च धातोर्घञ् स्यात् । यथा-परिणायेन शारान्हन्ति । समन्तान्नयनेनेत्यर्थः । एषोऽत्र न्यायः । उाचतमित्यर्थः । द्यूताभ्रेपयोःकिम् । परिणयः-विवाहः । न्ययः-नाशः॥

यथा सङ्ख्य परि तथा नि उपपद होतो द्यूत विषयार्थ नीञ् तथा अभ्रेष (न्याय) विषयार्थ इण धातु से घञ प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

परावनुपात्यय इणः ॥ ३८ ॥

परौ, अ०ये, इणः। अनुपात्यये गम्ये परि शब्दे उपपदे इणोधातो-र्घञ् स्यात्। क्रमप्राप्तस्य अनतिपातः–अनुपात्ययः–परिपाटी। यथा–तव पर्य्यायः। मम पर्यायः॥

अनुक्रम, सिलसिला। अनुपात्यय (पारी) गम्यमान होतो परि पूर्वक इण धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ ३८॥

व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥ ३९ ॥

पर्याये गम्ये वि उप इत्येतयो रुपपदयोः शेतेर्धातोर्घञ् स्यात्। यथा-तवविशायः तवराजोपशायः तवराजानमुपशयितुंपर्यायइत्यर्थः॥

पर्यायगम्यमान हो तो वि तथा उप उपपद होनेपर शीङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो॥३९॥

हस्तादाने चेरस्तेये ॥ ४० ॥

ह० ने, चेः, अ० ये। अस्तेयं विहाय हस्तादाने गम्ये चिनोते र्धातो र्घञ् स्यात्। हस्तादान इत्यनेन प्रत्यासत्ति रादेयस्य लक्ष्यते। यथा–पुष्प प्रचायः॥

अस्तेय विषयक हस्तादान गम्यमान हो तो चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ४०

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥ ४१ ॥

नि० षु, आदेः, च, कः। निवसन्त्यस्मिन्निति-निवासः। चीयते ऽसौ-चितिः। पाण्यादि समुदायः-शरीरं। राशी करणम्-उपसमाधानम्। एष्वर्थेषु चिनोते घञ् आदेश्च कादेशः। यथा–निवासे-

मथुरा-निकायः । चितौ-अ कायस्म गेंन चिन्वीत । शरीरंचीयतेऽस्मि-न्नस्थ्यादिकमिति-कायः । समूहे गोमयनिकायः ॥

निवासादि अर्थोंमें चिञ् धातुसे घञ् प्रत्यय और धातुके आदिको ककारादेश हो ॥

सङ्घेचानौत्तराधर्ये ॥ ४२ ॥

सङ्घे, च, अ० र्ये । अनौत्तराधर्ये सङ्घे वाच्ये चिनोते र्घञ् स्यात्, आदेश्च कः । यथा-छात्रनिकायः । प्राणिनां समूहः-सङ्घः ॥

औत्तराधर्य से भिन्न समूह वाच्य हो तो चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय तथा धातुके आदि को ककारादेश हो ॥ ४२ ॥

कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ॥ ४३ ॥

स्त्रीलिङ्गे वाच्ये भावे कर्मव्यतिहारे गम्ये धातोर्णच् स्यात् । यथा-व्यावहासी । व्यावक्रोशी ॥

आपस में हंसना । आपस में रोना ॥ भाव में स्त्रीलिङ्ग वाच्य हो तो कर्म व्य-तिहार गम्यमान होनेपर धातु से णच् प्रत्यय हो ॥ ४३ ॥

अभिविधौ भाव इनुण् ॥ ४४ ॥

अ० धौ, भावे, इनुण् । अभिविधिरभिव्याप्तिः क्रिया गुणाभ्यां कार्त्स्न्येन सम्बन्ध इत्यर्थः । अभिविधौ गम्ये धातो र्भावे इनुण् स्यात् । यथा-सांकूटिनम् ॥

अभिविधि गम्यमान हो तो भाव में धातु से इनुण प्रत्यय हो ॥ ४४ ॥

आक्रोशेऽवन्यो र्ग्रहः ॥ ४५ ॥

आ० शे, अ० न्योः, ग्रहः । आक्रोशे गम्ये अव नि इत्येतयो

१-(५ । ४ । १५) इत्यण् ॥

रुपपदयो ग्रहे घञ् स्यात् । यथा-अवग्राहस्तव भूयात् । अभिभव इत्यर्थः । निग्राहस्ते भूयात् । बाध इत्यर्थः ॥

आक्रोश (शाप) गम्यमान होनेपर अव तथा नि उपपद हों तो ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

प्रे लिप्सायाम् ॥ ४६ ॥

लिप्सायां गम्यमानायां प्रयुपपदे ग्रहे घञ् स्यात् । यथा-पात्र ग्राहेण चरति भिक्षुः ॥

लोलुप संन्यासी पात्र लिये विचरता है ॥ लिप्सा (लोभ) गम्यमान होने-पर प्र उपपद हो तो ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ४६ ॥

परौ यज्ञे ॥ ४७ ॥

यज्ञे परावुपपदे ग्रहे घञ् स्यात् । यथा-उत्तरः- परिग्रहः । स्फयेन वेदेः स्वीकरणम् ॥

यदि यज्ञ विषय अभिधेय हो तो परिपूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

नौ वृ धान्ये ॥ ४८ ॥

धान्येऽभिधेये निशब्दे उपपदे वृ इत्यस्माद् धातो घञ् स्यात् । यथा-नीवारः ॥

पुआल (प्यार) ॥ धान्य अभिधेय हो तो नि उपपद होनेपर वृङ् तथा वृञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥ ४९ ॥

१-(६ । ३ । १२२) इतिनेर्दार्घः ॥

उच्छब्दे उपपदे श्रयत्यादिभ्यो धातुभ्यो घञ् स्यात्। यथा-उच्छ्रायः। उद्यावः। उत्पावः। उद्द्रावः॥

उच्चता, ऊँचा पन। सम्मेलन, मिलना। पवित्रता। पलायन, भागना। उद् उपपद हो तो श्रिञ्, यु, पूञ् या पूङ् तथा द्रु धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ ४९॥

विभाषाऽऽङि रुप्लुवोः॥ ५०॥

आङि उपपदे रौतेः प्लवतेश्च वा घञ् स्यात्। यथा-आरावः, आरवः। आप्लावः, आप्लवः॥

शब्द। स्नान॥ आङ् उपपद हो तो रु तथा प्लुङ् धातुओं से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो॥ ५०॥

अवेग्रहो वर्ष प्रतिबन्धे॥ ५१॥

अवे, ग्रहः, व० न्धे। वर्षप्रतिबन्धेऽभिधेयेअव उपपदे ग्रहेर्वा घञ् स्यात्। यथा-अवग्राहः, अवग्रहः॥

विष्टिरोध, वर्षा का न होना॥ वर्षा का प्रतिबन्ध (रुकावट) होना हो तो अव उपपद होनेपर ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्ययहो॥ ५१॥

प्रे वणिजाम्॥ ५२॥

प्र उपपदे ग्रहेर्वा घञ् वणिजां सम्बन्धी चेत्प्रत्ययार्थः। यथा-तुलाप्रग्राहेण चरति। तुलाप्रग्रहेण चरति॥

तुला (तराजू) लिये घूमता है॥ यदि वणिक् सम्बन्धी प्रत्ययार्थ वाच्य हो तो प्र शब्द उपपद होने पर ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्ययहो॥ ५२॥

रश्मौ च॥ ५३॥

प्रयुपपदे ग्रहेर्वा घञ् स्यात्, रश्मिश्चेत् प्रत्ययार्थः। यथा-प्रग्राहः प्रग्रहः॥

किरण ॥ रश्मि, अभिधेय हो तो प्र उपपद होनेपर ग्रह धातुसे विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो ॥ ५३ ॥

वृणोतेराच्छादने ॥ ५४ ॥

वृं० तेः, आँ० ने । प्र उपपदे वृणोतेराच्छादने वा घञ् स्यात् । यथा—प्रवारः, प्रवरः, ॥

आच्छादन । चद्दरादि वस्त्र जोकि ऊपर से ओढ़ेजाते हैं ॥ प्रत्ययार्थ से आच्छादन विशेष अभिधेय हो तो प्र उपपद होनेपर वृञ् धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

परौ भुवोऽवज्ञाने ॥ ५५ ॥

परौ, भुवः, अ० ने । परावुपपदे भुवो वा घञ् स्यादवज्ञाने गम्ये । यथा—परिभावः । परिभवः । अवज्ञाने किम् । सर्वतो भवनम्—परिभवः ॥

परि उपपदहो तो अवज्ञान (तिरस्कार) अर्थ में भू धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो ॥ ५५ ॥

एरच् ॥ ५६ ॥

एः, अच् । इवर्णान्ताद्धातोर्भावेऽकर्त्तरि च कारके संज्ञायामच् स्यात् । यथा—जयः । चयः । क्षयः । अयः ॥ (भयादीनामुपसङ्ख्यानम्) ॥ नपुंसके क्तादि निवृत्यर्थम् । भयम् । वर्षम् ॥

जीत । इकट्ठा करना । नाश । पूर्वजन्म का शुभकर्म्म ॥ इवर्णान्त धातु से कर्त्ता भिन्न कारक तथा भाव में संज्ञागम्यमान होनेपर अच् प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

ऋदोरप् ॥ ५७ ॥

ऋदोः, अप् । ऋकारान्तादुवर्णान्ताच्चाऽप् स्यात् । यथा—करः । गरः । शरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः ॥

हस्त, हाथ । विष । बाण । जौ । लेश (जरासा हिस्सा) । स्तुति, प्रशंसा । पवित्र करना ॥ कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुसे अप् प्रत्ययहो ॥ ५७ ॥

ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥ ५८ ॥

ग्र०मः, च । एभ्यो धातुभ्योऽप् स्यात् । यथा-ग्रहः । वरः । दरः । निश्चयः । गमः ॥ (वशिरण्यो रुपसङ्ख्यानम्) ॥ यथा- वशः । रणः ॥ (घञर्थेकविधानम्) ॥ प्रस्थः । विघ्नः ॥ (ड्वित्वप्रकरणे के कृञादीनामिति वक्तव्यम्) ॥ चक्रम् । चिक्लिदम् । चक्नसः ॥

सूर्यादिनव । पति । गर्त्त । सिद्धान्त, पक्का । जाना, मार्ग ॥ ग्रह, वृञ् वा वृङ् दृङ,निस् वा निर् + चिञ् तथा गम्लृ धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

उपसर्गेऽदः ॥ ५९ ॥

उपसर्गे उपपदेऽदेर्धातो रप् स्यात् । यथा--प्रघसः । विघसः ॥

भोजन ॥ उपसर्ग उपपद होतो अद्धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

नौ ण च ॥ ६० ॥

नावुपपदे अदेर्णः स्यादप्च । यथा--न्यादः, निघसः ॥

भोजन, खुराक ॥ नि उपपद होतो अद्धातुसे ण तथा अप्प्रत्यय हो ॥ ६० ॥

व्यधजपोरनुपसर्गे ॥ ६१ ॥

व्य०पोः, अ०र्गे । व्यधजप इत्येतयोरनुपसर्गयोरप् स्यात् । यथा-- व्यधः । जपः ॥

१—(३ । ४ । ३८) इत्यनेनघस्लृः ॥

फाड़ना, चोट लगना, छेद करना। बार बार कहना ॥ उपसर्ग उपपद न हो तो व्यध तथा जप धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

स्वनहसोर्वा ॥ ६२ ॥

स्व० सोः, वा। स्वनहसोरनुपसर्गयो र्वाऽप् स्यात्। यथा-स्वनः, स्वानः। हसः, हासः ॥

शब्द। हसना ॥ उपसर्ग रहित स्वन तथा हस धातु से विकल्पसे अप् प्रत्यय हो ॥

यमः समुपनिविषु च ॥ ६३ ॥

सम् उप नि वि इत्येतेषूपपदेषु अनुपसर्गे च यमेरब्वा स्यात्। यथा--संयमः, संयामः। उपयमः, उपयामः। नियमः, नियामः। वियमः, वियामः। यमः, यामः ॥

संयम। विवाह। व्रत, कायदा। संयम, रोकना। समय, प्रहर ॥ सम्, उप, नि, वि ये उपपद हों वा नहीं तो यम् धातु से विकल्प करके अप् प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

नौ गदनदपठस्वनः ॥ ६४ ॥

नावुपपदे एभ्यो वाप् स्यात्। यथा-निगदः, निगादः। निनदः, निनादः। निपठः, निपाठः। निस्वनः, निस्वानः ॥

कथन। ध्वनि। पठन। शब्द ॥ नि उपपद होतो गद नद पठ तथा स्वन धातु से विकल्प करके अप् प्रत्यय हो ॥ ६४ ॥

क्वणो वीणायां च ॥ ६५ ॥

क्वणः, वी०म्, च। नावनुपसर्गे चवीणाविषयाच्च क्वणते रब्वा स्यात्। यथा-निक्वणः, निक्वाणः। क्वणः, क्वाणः ॥

वीणाका शब्द॥ वीणा अर्थ में नि उपपद होने पर तथा उपसर्ग उपपद नहो तोभी क्वण धातु से विकल्प करके अप् प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

नित्यं पणः परिमाणे ॥ ६६ ॥

परिमाणे गम्ये पणे नित्यमप् स्यात् । यथा—मूलकपणः । शाकपणः । व्यवहारार्थंमूलकादीनांपरिमितामुष्टिर्बध्यतेपणोऽसावुच्यते॥

मूली की गड्डिया । शाक की गड्डिया ॥ परिमाण गम्यमान होतो पण धातु से नित्य अप् प्रत्यय हो ॥ ६६ ॥

मदोऽनुपसर्गे ॥ ६७ ॥

मदः, अ०र्गे । अनुपसर्गान्मदोऽप् स्यात् । यथा—विद्यामदः । धनमदः ॥

विद्याका घमण्ड । धनका घमण्ड ॥ उपसर्गरहित मद धातुसे अप् प्रत्यय हो ॥ ६७ ॥

प्रमदसम्मदौ हर्षे ॥ ६८ ॥

हर्षे इमौ निपात्येते । यथा—मित्रप्रमदः । पुत्रसम्मदः ॥

मित्रका हर्ष । पुत्रका हर्ष ॥ हर्ष अभिधेय होतो अप् प्रत्ययान्त प्रमद तथा सम्मद शब्द निपातित हैं ॥ ६८ ॥

समुदोरजः पशुषु ॥ ६९ ॥

समुदोः, अजः, पशुषु । सम्पूर्वोऽजिः—समुदाये, उत्पूर्वश्चप्रेरणे । तस्मात् पशुविषयकादप् स्यात् । यथा—समजः—पशूनां सङ्घः । उदजः—पशूनां प्रेरणम् ॥

पशुओं का समुदाय । पशुओं के चलाने का दण्डा ॥ सम् तथा उत् उपपद हों तो पशु विषयक अज धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

अक्षेषु ग्लहः ॥ ७० ॥

ग्लह इति निपात्यते अक्षविषयक धात्वर्थे । यथा–ग्लहः ॥

जूआ, द्यूत, पासा ॥ अक्षविषयक धात्वर्थ होतो ग्रह वा ग्लह धातु से अप् प्रत्ययान्त ग्लह यह निपातित है ॥ ७० ॥

प्रजने सर्त्तेः ॥ ७१ ॥

प्रजनविषये सर्त्ते रप् स्यात् । प्रजनं प्रथमगर्भ ग्रहणम् । यथा–गवा मुपसरः ॥

गऊओं का प्रथम गर्भ को प्राप्त होना ॥ प्रजन विषय में सर्त्ति (सृ) धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु ॥ ७२ ॥

एषूपपदेषु ह्वयतेः सम्प्रसारणमप् च स्यात् । यथा–निहवः । अभिहवः । उपहवः । विहवः ॥

बुलाना ॥ नि, अभि, उप तथा वि उपपद होंतो ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और इस को सम्प्रसारण भी हो ॥ ७२ ॥

आङि युद्धे ॥ ७३ ॥

युद्धेऽभिधेये आङि उपपदे ह्वयतेः सम्प्रसारणमप् च स्यात् । यथा–आहूयन्तेऽस्मिन्निति–आहवः ॥

संग्राम । युद्ध अभिधेय होतो आङ् उपपद होने पर ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय तथा उक्त धातु को सम्प्रसारण भी हो ॥ ७३ ॥

निपानमाहावः ॥ ७४ ॥

नि०म्, आ०वः । आङ् पूर्वस्य ह्वयतेः सम्प्रसारणमब् वृद्धिश्च निपात्यते, उदकाधारश्चेद् वाच्यः स्यात् । यथा–आहूयन्ते जलपानार्थं पशवो यत्रेति–आहावः ॥

पशुओं की पौ ॥ निपान अभिधेय होनेपर आङ्+ह्वेञ् धातुको सम्प्रसारण वृद्धि तथा अप् प्रत्यय करके आहाव निपातन कियागया है ॥ ७४ ॥

भावेऽनुपसर्गस्य ॥ ७५ ॥

भावेऽनुपसर्गस्य ह्वयतेः सम्प्रसारणमप् च स्यात् । यथा—हवः ॥

बुलाना ॥ भाव अभिधेय हो तो ह्वेञ् धातु से सम्प्रसारण तथा अप् प्रत्यय हो ७५

हनश्च वधः ॥ ७६ ॥

हनः, च, वधः । अनुपसर्गाद्धन्तेर्भावेऽप् स्यात्, वधादेशश्च । यथा—शत्रूणां वधः ॥

दुश्मनों का मारना ॥ भाव अभिधेय हो तो उपसर्गरहित हन धातु से अप्प्रत्यय तथा उक्त धातु को वधादेश भी हो ॥ ७६ ॥

मूर्त्तौ घनः ॥ ७७ ॥

मूर्त्तिः काठिन्यम् । मूर्त्तावभिधेयायां हन्तेरप् स्यात्, घनश्चादेशः । यथा—अभ्रघनः । दधिघनः ॥

बद्दलों की सघनता । जमाहुआ दही ॥ मूर्त्ति वाच्य हो तो हन् धातु से अप् प्रत्यय तथा हन्को घनादेश भी हो ॥ ७७ ॥

अन्तर्घनो देशे ॥ ७८ ॥

अ० नः, देशे । अन्तः पूर्वाद्धन्तेरप् घनादेशश्च स्यात्, देशे वाच्ये । यथा—अन्तर्घनः-वाहीक ग्राम विशेषस्य संज्ञेयम् । अन्तर्घण इति पाठान्तरम् ॥

देश वाच्य हो तो अन्तः+हन् धातु से अप्प्रत्यय तथा हन् को घन आदेश हो ॥ ७८ ॥

अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ॥७९॥

अ० शे, प्र० णः, प्र० णः, च । प्र पूर्वस्य हन्तेः प्रघणः प्रघाणश्चेतीमौशब्दौ निपात्येते-अगारैकदेशे वाच्ये । द्वार देशेद्वौप्रकोष्ठावलिन्दौ--अभ्यन्तरो, बाह्यश्च । तत्र बाह्ये प्रकोष्ठे निपातन मिदम् । प्रविशद्भिर्जनैः पादैः प्रकर्षेण हन्यते इति । यथा—प्रघणः । प्रघाणः ॥

बाहरी दहलीज के आगे का चबूतरा ॥ अगारैकदेशे वाच्य हो तो प्र + हन धातु से अप् प्रत्ययान्त प्रघण तथा प्रघाण निपातन कियेगये हैं ॥ ७९ ॥

उद्घनोऽत्या धानम् ॥ ८० ॥

उ० नः, अ० नम् । उत्पूर्वस्य हन्ते रुद्घन इति निपात्यतेऽत्याधानं चेत् स्यात् । अत्याधानम्-उपरि स्थापनम् । यस्मिन् काष्ठे अन्यानि काष्ठानि स्थापयित्वा तक्ष्यन्ते -तदुद्घनः ॥

अत्याधान (ऊपर रखना) वाच्य होनेपर उत् + हन धातु से अप् प्रत्ययान्त उद्घन यह निपातन किया गया है ॥ ८० ॥

अपघनोऽङ्गम् ॥ ८१ ॥

अ० नः, अ० म् । अप पूर्वस्य हन्ते रप् घन इति निपात्यतेऽङ्गं चेत् स्यात् । यथा—अपघनः । अङ्गम्-शरीरावयवः । स चेह न सर्वः, किन्तु पाणिः पादश्चेत्याहुः ॥

अङ्गवाच्य होनेपर अप् + हन धातु से अप् प्रत्ययान्त अपघन निपातन किया गया है ॥ ८१ ॥

करणेऽयोविद्रुषु ॥ ८२ ॥

एषूपपदेषु हन्तेः करणेऽप् स्याद् घनादेशश्च। यथा-अयो हन्यतेऽनेनेति--अयोघनः। विघनः। द्रुघनः। द्रुघण इत्येके पूर्व-पदात् संज्ञाया मिति णत्वम्॥

घन। मुद्गर। कुल्हाड़ी॥ अयस्, वि तथा द्रु उपपद होनेपर हन धातु से करण में अप् प्रत्यय तथा हन धातु को घन आदेश हो॥ ८२॥

स्तम्बे क च॥ ८३॥

स्तम्बे उपपदे हन्तेः करणे कारके कः स्यादप् च, पक्षे घनादेशश्च। यथा-स्तम्बघ्नः, स्तम्बघनः॥

झाड़ी को तोड़ने वाला॥ स्तम्ब शब्द उपपद हो तो हन धातु से करण कारक में क तथा अप् प्रत्यय हो और अप् के सन्नियोग में हन धातु को घन आदेश भी हो

परौ घः॥ ८४॥

परौ हन्ते रप् स्यात् करणे कारके घश्चादेशः। यथा-परि हन्यते ऽनेनेति--परिघः, पलिघः॥

घन, मुद्गर। परि उपपद हो तो हन धातु से करण कारक में अप् प्रत्यय और हन को घ आदेश हो॥ ८४॥

उपघ्न आश्रये॥ ८५॥

उ० घ्नः, आ० ये। उप पूर्वस्य हन्तेरप् उपधा लोपश्च नि-पात्यते। आश्रयशब्देन सामीप्यं लक्ष्यते। यथा--पर्वतेनोपहन्यते सामीप्येन गम्यते इति-पर्वतोपघ्नः॥

आश्रय (समीपता) द्योत्य हो तो उपपूर्वक हन धातु से अप्प्रत्ययान्त उपघ्न निपातन किया गया है॥ ८५॥

१—(८। २। २२) इति लोवा॥

सङ्घोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥ ८६ ॥

गणे प्रशंसायां च सङ्घोद्घौ शब्दौ निपात्येते । यथा--संहननम्--सङ्घः । उद्धन्यते उत्कृष्टो जायते इति--उद्घः ॥

गण तथा प्रशंसा अर्थमें अप्प्रत्यायान्त सङ्घ और उद्घ निपातन कियेगये हैं ॥ ८६॥

निघो निमितम् ॥ ८७ ॥

निघः, नि० म् । निघ इति निपूर्वाद् धन्तेरप् टिलोपो घत्वं च निपात्यते, निमितं चेद् वाच्ये । समन्तान्मितम्–निमितम् । यथा–निर्विशेषं हन्यन्ते ज्ञायन्ते इति–निघाः–वृक्षाः । समारोहपरिणाहा इत्यर्थः ॥

निमित वाच्य हो तो निपूर्वक हन धातुको अप् प्रत्यय टिलोप तथा घत्व निपातन कियागया है ॥ ८७ ॥

ड्वितः क्त्रिः ॥ ८८ ॥

डु इद्यस्य तस्माद् ड्वितो धातोः क्त्रिः स्यात् भावे । त्रेर्मम् नित्यमिति वचनात्केवलो नोप्रयुज्यते । यथा–(डुपचष् पाके) पाकेन निर्वृत्तम्–पक्त्रिमम् । डुवप्–उप्त्रिमम् । डुकृञ्–कृत्रिमम् ॥

पकाहुआ । बोया हुआ । कियाहुआ, बनावटी ॥ डु जिसका इत् गया हो ऐसे धातु से भाव में क्त्रि प्रत्यय हो ॥८८॥

ट्वितोऽथुच् ॥ ८९ ॥

ट्वितः, अ० च् । टु इद्यस्य तस्मात् ट्वितो धातोरथुच् स्याद् भावे । यथा–(टु-वेपृ)–वेपथुः । (टु ओश्वि)–श्वयथुः ॥

कांपना । जाना ॥ टु जिसका इत् गयाहो ऐसे धातु से भाव में अथुच् प्रत्ययहो ८९

यज याचयत विच्छ प्रच्छ रक्षो नङ् ९०

य० क्षः, नङ् । यजादिभ्यो धातुभ्यो भावे नङ् स्यात् । यथा-यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विश्नः । प्रश्नः । रक्ष्णः । प्रश्नेचासन्नेति ज्ञापकान्न सम्प्रसारणम् ॥

यज्ञ । मांगना । उपाय । जाना । सवाल ॥ यज आदि धातुओं से भाव में नङ् प्रत्यय हो ॥ ९० ॥

स्वपो नन् ॥ ९१ ॥

स्वपः, नन् । स्पष्टम् । यथा-स्वप्नः ॥

सोना, नींद ॥ ञिष्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

उपसर्गे घोः किः ॥ ९२ ॥

उपसर्गे उपपदे घु संज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः स्याद्भावे । यथा-विधिः । प्रधिः । अन्तर्धिः । उपाधीयतेऽनेनेति-उपाधिः । निधिः ॥

क्रम । रथकी नाभि, धुरा । आच्छादन, छिपना । लक्षण, पद । कोष ॥ उपसर्ग पद हो तो घु संज्ञक धातुओं से भाव में कि प्रत्ययहो ॥ ९२ ॥

कर्मण्यधिकरणे च ॥ ९३ ॥

क० णि, अ० णे, च । कर्मण्युपपदे घोः किः स्यादधिकरणेऽर्थे । यथा-जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति--जलधिः--समुद्रः ॥

अधिकरण कारक में कर्म उपपदहो तो घु संज्ञक धातु से कि प्रत्ययहो ॥ ९३ ॥

स्त्रियां क्तिन् ॥ ९४ ॥

भावादौ स्त्रीलिङ्गे धातोः क्तिन् स्यात् । यथा—करणम्--कृतिः । चयनम्--चितिः । मननम्--मतिः ॥ (श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे) ॥ श्रूयतेऽनयेति--श्रुतिः । यजेरिषेश्च--इष्टिः । स्तुतिः ॥ (ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः) ॥ कीर्णिः । गीर्णिः । लूनिः । धूनिः । पूनिः ॥ (चायतेः क्तिनि चि भावोवाच्यः)॥ अपचितिः ॥ (सम्पदादिभ्यः क्विप्) ॥ सम्पत् । विपत् ॥ (क्तिन्नपीष्यते) ॥ सम्पत्तिः । विपत्तिः ।

भाव आदि में स्त्रीलिङ्गवाच्य हो तो धातुसे क्तिन् प्रत्यय हो ॥९४॥

स्थागापापचो भावे ॥९५॥

स्था० चः, भावे । स्त्रीलिङ्गे स्थादिभ्यो धातुभ्यः क्तिन् स्यात् भावे । यथा--प्रस्थितिः, उपस्थितिः, संस्थितिः । सङ्गीतिः । सम्पीतिः । पक्तिः ॥

प्रस्थान, हाजिरी, ठहरना । गाना । पीना । पकना ॥ भाव में स्त्रीलिङ्गवाच्य हो तो स्था आदि धातुओं से क्तिन् प्रत्यय हो ॥ ९५ ॥

मन्त्रेवृषेषपचमनविदभूवीराउदात्तः ९६

मन्त्रे, वृ०राः, उ०त्तः । स्त्रीलिङ्गे भावे मन्त्रविषये एभ्यो धातुभ्यः क्तिन् स्यादसावुदात्तः । यथा--वृष्टिः । इष्टिः । पक्तिः । मतिः । वित्तिः । भूतिः । वीतिः । रातिः ॥

वर्षा । अभिलाषा । पकना । मनन । ज्ञान । होना । जाना । देना ॥ मन्त्रविषय में वृषआदि धातुओंसे स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय और वह उदात्त हो ॥ ९६ ॥

ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ९७

ऊ० यू०, च। ऊत्यादयः शब्दाः क्तिन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। यथा—अवनम्-ऊतिः। यूतिः। जूतिः। सातिः। हेतिः। कीर्तिः॥

बचाना। मिश्रीकरण। वेग। अवसान। अग्नि ज्वाला, सूर्य प्रभा। कथन, यश॥ ऊति आदि शब्द क्तिन् प्रत्ययान्त उदात्त निपातित हैं॥ ९७॥

व्रजयजो र्भावे क्यप्॥ ९८॥

आभ्यां स्त्रीलिङ्गे भावे क्यप् स्यात् स चोदात्तः। यथा—व्रज्या। इज्या॥

गमन। यज्ञ। व्रज तथा यज धातुसे स्त्रीलिङ्ग भावमें क्यप् प्रत्यय और वह उदात्त हो ९८

संज्ञायांसमजनिषदनिपतमनविदषुञ् शीङ्भृञिणः॥ ९९॥

संज्ञायां विषये समजादिभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां भावादौ क्यप् स्यादसावुदात्तः। यथा—समजन्त्यस्यामिति- समज्या- सभा। निषीदन्त्यस्यामिति निषद्या-आपणः। निपतन्त्यस्यामिति-निपत्या-पिच्छिला भूः। मन्यतेऽनयेति मन्या-गलपार्श्व शिरा। विदन्त्यनयेति-विद्या। सुत्या-अभिषवः। शय्या। भृत्या। ईयतेऽनया-इत्या-शिबिका डोली इत्यर्थः॥

संज्ञाविषय में सम् पूर्वक जन आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव आदि में क्यप् प्रत्यय हो और वह उदात्त समझाजावे॥ ९९॥

कृञः श च॥ १००॥

(कृञः) इति योगविभागः। कृञः क्यप् स्यात्। श च चात् क्तिन्। यथा—कृत्या, क्रिया, कृतिः॥

१-(६।४।२०) इत्यूठ्॥ २—(३।१।६७) इति यक्। (७।४।२८) इति रिङ्॥

कृञ् धातु से स्त्रीलिङ्ग विषयक भावादि में श, क्यप् तथा क्तिन् प्रत्यय हों ॥ १०० ॥

इच्छा ॥ १०१ ॥

इषेः स्त्रियां शो यगभावश्च निपात्यते । यथा—इच्छा मदीया गमनाय वर्त्तते ॥ (परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाट्या--नामुपसङ्ख्यानम्) ॥ शो, यक्, च निपात्यते । यथा—परिचर्या-पूजा । परिसर्या-परिसरणम् । अत्रगुणोऽपि ॥ (मृग-अन्वेषणे) चुरादावदन्तः । अतोलोपाभावोऽपि शे यकि णि लोपः--मृगया—आखेटः । अटतेः शे यकि ट्यशब्दस्य द्वित्वम्, पूर्वभागे यकार निवृत्तिर्दीर्घश्च-अटाट्या-वृथाभ्रमणम् ॥ (जागर्त्तेरकारो वा) ॥ पक्षे शः-जागरा, जागर्या-निद्राभावः ॥

इष धातु से श और यक् प्रत्यय का अभाव निपातन कियागया है ॥ १११ ॥

अः प्रत्ययात् ॥ १०२ ॥

स्त्रियां प्रत्ययान्तेभ्योधातुभ्योऽकारे प्रत्ययः स्यात् । यथा—कर्त्तुमिच्छातिचिकीर्षति, चिकीर्षतीति-चिकीर्षा । पुत्रीया । पुत्रकाम्या । लोलूया ॥

स्त्रीलिङ्ग में प्रत्ययान्त धातु से अ प्रत्यय हो ॥ १०२ ॥

गुरोश्च हलः ॥ १०३ ॥

गुरोः. च, हलः । स्त्रियां गुरुमतो हलन्तादः स्यात् । यथा—ईहा-चेष्टा । ऊहा-अध्याहारः ॥

स्त्रीलिङ्ग में हलन्त गुरुमान धातु से अ प्रत्यय हो ॥ १०३ ॥

षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ १०४ ॥

षि० भ्यः, अङ् । षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च स्त्रियामङ् प्रत्ययः स्यात् । (जॄष्)-ऋदृशोऽङि गुणः । यथा-जरा । त्रपुष्-त्रपा । भिदादिभ्यः । भिदा । छिदा । विदा । मेधा । लेखा । कृपेः सम्प्रसारणं च । कृपा ॥

बुढ़ापा । लज्जा । फाड़ना । काटना । बुद्धि । धारणावती बुद्धि । लेखन ॥ ष् जिस धातु का इत् गया हो और भिद् आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो ॥ १०४ ॥

चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥ १०५ ॥

चि० र्चः, च । एभ्योऽङ् स्यात् । यथा चिन्तनम्-चिन्ता । पूजा-अर्चनम् । कथा-कथनम् । कुम्बा-लोके टट्टीति कथ्यते । चर्चा-विचारः ॥

चिन्ति आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो ॥ १०५ ॥

आतश्चोपसर्गे ॥ १०६ ॥

आतः, च, उ० र्गे । उपसर्गे उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामङ् स्यात् । यथा-उपदा । उपधा । अवस्था ॥ (श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिः) ॥ श्रद्धा । अन्तर्धा ॥

भेंट । छल । आयु ॥ उपसर्ग उपपद होतो आकारान्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो ॥ १०६ ॥

ण्यासश्रन्थो युच् ॥ १०७ ॥

ण्या० न्थः, युच् । ण्यन्तेभ्यो धातुभ्य आस श्रन्थ इत्येताभ्यां च स्त्रियां युच् स्यात् । यथा-कारणा । हारणा । आसना । श्रन्थना ॥ (घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम्) ॥ घट्टना । वन्दना । वेदना ॥ (इषेरनिच्छार्थस्य) ॥ अन्वेषणा । अध्येषणा-प्रार्थना ॥ (परेर्वा) ॥ पर्येषणा । परीष्टिः-अन्वेषणा ॥

कराना । चुराना । उपवेशन । ग्रन्थन, गुथना ॥ णिजन्त, आस तथा श्रन्थ धातु से स्त्रीलिङ्ग में युच् प्रत्यय हो ॥ १०७ ॥

रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ॥ १०८ ॥

रोगाख्यायां गम्यमानायां धातोर्बहुलं ण्वुल् स्यात् । यथा- प्रच्छर्दिका । प्रवाहिका । विचर्चिका । क्विचिन्न--शिरोऽर्त्तिः ॥ (धात्वर्थे निर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः) ॥ आशिका । शायिका ॥ (इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे) ॥ पचिः । पचतिः । पठिः । पठतिः ॥ (वर्णात् कारः) ॥ निर्देश इति प्रकृतम् । अकारः । ककारः । हकारः ॥ (रादिफः) ॥ रेफः ॥ (मत्वर्थाच्छः) ॥ मत्वर्थीयः ॥ (इणजादिभ्यः) ॥ आजिः । आतिः ॥ (इञ्वपादिभ्यः) ॥ वापिः । वासिः । स्वरभेदः ॥ (इक्कृष्यादिभ्यः) ॥ कृषिः । गिरिः ॥

रोगाख्या गम्यमान होतो स्त्रीलिङ्ग में बहुलकरके धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो ॥ १०८ ॥

संज्ञायाम् ॥ १०९ ॥

सञ्ज्ञायां विषये धातोर्ण्वुल् स्यात् । यथा--उद्दालकपुष्पभञ्जिका ॥

स्त्रीलिङ्ग वाच्य होतो संज्ञाविषय में धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो ॥ १०९ ॥

विभाषाऽऽख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च ११०

वि०षा, आ०यो:, इञ्, च । परिप्रश्ने आख्याने च गम्ये धातोरिञ्वा स्याच्चान् ण्वुल् । यथा--कां त्वं कारिं, कारिकां, क्रियां, कृत्यां, कृतिं वाऽकार्षीः--सर्वां कारिं, कारिकां, क्रियां, कृत्यां, कृतिं वाऽकार्षम् । एवं गणिं, गणिका, गणनाम्, पाचिं, पाचिकां, पचां पक्तिम् ॥

तूने कौन कामकिया-मैंने सबकाम करलिया ॥ परिप्रश्न (पूछना) आख्यान

(कथन) अर्थात् उसका उत्तर देना हो तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से इञ् तथा ण्वुल् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ ११० ॥

पर्य्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ॥ १११ ॥

पर्यायः—परिपाटी क्रमः । अर्हणम्—अर्हः, योग्यता । पर्यायादिषु द्योत्येषु ण्वुच् स्यात् । यथा—भवतः आसिका, शायिका, अग्रगामिका । भवानिक्षुभक्षिकामर्हति । ऋणे—इक्षुभक्षिकां मे धारयति । उत्पत्तौ—इक्षुभक्षिका उपपादि ॥

आपके बैठने की, सोने की, आगे चलने की पारी । आप गन्ना खासक्ते हैं । आपने मेरे गन्ने खाये हैं । मेरे लिये गन्ने पैदा किये ॥ पर्याय, अर्ह, ऋण तथा जन्म अर्थ में स्त्रीलिङ्ग वाच्य हो तो धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

आक्रोशे नञ्यनिः ॥ ११२ ॥

आ० शे, नञि, अनिः । आक्रोशे गम्ये नञि उपपदे अनिः स्यात् । यथा—अजीविनिस्ते शठ ! भूयात् ॥

हे मूर्ख ! तू मरजा ॥ आक्रोश (कोशना) गम्यमान हो तथा नञ् उपपद हो तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से अनि प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ ११३ ॥

कृ० टः, ब० म् । भावेऽकर्त्तरि च कारके संज्ञायामिति च सर्वं निवृत्तम् । कृत्यसंज्ञका ल्युट् च बहुलमर्थेषु स्युः । यथा—दानीयो विप्रः । राज्ञा भुज्यन्ते—राजभोजनाः शालयः । प्रस्कन्दनम् । प्रपतनम् ॥

देनेयोग्य ब्राह्मण । राजाओं के खाने योग्य धान । कूदना । गिरना ॥ कृत्य संज्ञक और ल्युट् प्रत्यय कारकों में बहुलता से हों ॥ ११३ ॥

नपुंसके भावे क्तः ॥ ११४ ॥

नपुंसकलिङ्गे भावे धातोः क्तः स्यात्। यथा—हसितम्। जल्पितम्। शयितम्। भुक्तम्॥

हसा। कहा। सोया। खाया॥ नपुंसक लिङ्ग विषयक भाव में धातु से क्त प्रत्यय हो

ल्युट् च ॥ ११५ ॥

नपुंसकलिङ्गे भावे धातो ल्युट् स्यात्। यथा—हसनं पठने न कदापि वरम्। शयनं दिवसे बहुहानिकरम्॥

पढ़ने में हसना कभी भी अच्छा नहीं। दिन में सोना बहुत ही हानि करने वाला है॥ भाव में नपुंसकलिङ्गवाच्य हो तो धातु से ल्युट् प्रत्यय हो॥ ११५॥

कर्मणि च येनसंस्पर्शात् कर्त्तुः शरीर सुखम्॥ ११६॥

येन स्पृश्यमानस्य कर्त्तुः शरीरसुख मुत्पद्यते तस्मिन् कर्मण्युपपदे धातो नपुंसकलिङ्गे भावे ल्युट् स्यात्। नित्यसमासार्थमिदं वचनम्। यथा—पयः पानं सुखं पूर्णम्॥

दूध का पीना पूरा सुख है॥ जिस कर्म के सम्पर्क से कर्त्ता के शरीर को सुख हो उसके उपपद होनेपर भाव में नपुंसकवाच्य हो तो धातु से ल्युट् प्रत्ययहो। ११६

करणाधिकरणयोश्च॥ ११७॥

कं० योः, च। करणेऽधिकरणे च कारके धातोर्ल्युट् स्यात्। यथा--इध्मप्रव्रश्चनः। अधिकरणे। गोदोहनी॥

कुल्हाड़ी। बटलोई॥ करण और अधिकरण कारक में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो। (१। १। १२१) यहांतक करण तथा अधिकरण का अधिकारहै ११७॥

पुंसिसंज्ञायां घः प्रायेण ॥ ११८ ॥

पुल्लिङ्गयोः करणाधिकरणयोरभिधेययोर्धातोर्घः स्यात् समुदायेन चेत् संज्ञाऽभिधेया भवेत् । यथा--उरश्छदः । अधिकरणे । आकरः ॥

कवच । खान ॥ संज्ञा अभिधेय हो तो पुल्लिङ्ग विषयक करण तथा अधिकरण में धातु से प्रायः घ प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

गोचर संचर वह व्रज व्यजा पण-निगमाश्च ॥ ११९ ॥

गो०मां:, च । गोचरादयः शब्दाघान्ता निपात्यन्ते । यथा--गावश्चरन्त्यस्मिन्निति--गोचरः--देशः । संचरन्तेऽनेनेति--संचर- मार्गः । वहन्त्यनेनेति--वहः--स्कन्धः । व्रजः- पन्थाः । व्यजः--व्यजनम् । आपणः--पण्यस्थानम् । निगच्छन्त्यनेन--निगमश्छन्दः । चात् कषः ॥ निकषः ॥

संज्ञागम्यमान होतो पुंलिङ्ग विषयक करण तथा अधिकरण कारक में घ प्रत्ययान्त गोचरादि शब्द निपातन किये हैं ॥ ११९ ॥

अवेतृस्त्रोर्घञ् ॥ १२० ॥

अवे, तॄस्त्रोः, घञ् । अव उपपदे करणाधिकरणयोः सञ्ज्ञायां गम्यमानायां तरते स्तृणातेश्च धातो घञ् स्यात् । यथा--अवतारः--नद्यादेः । अवस्तारः--जवनिका । कनात इतिप्रसिद्धम् ॥

अव उपपद होतो करण और अधिकरण में संज्ञावाच्य होने पर तॄ तथा स्तॄञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

हलश्च ॥ १२१ ॥

हलः, च । हलन्ताद् धातोः करणाधिकरणयोर्घञ् स्यात्। यथा--विदन्ति-जानन्ति, विद्यन्ते-भवन्ति, विन्दन्ति, विन्दन्ते--लभन्ते, विन्दते -विचारयन्ति सर्वाविद्या येन यस्मिन् वा इति-वेदः । आरमन्त्यस्मिन्निति आरामः।रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति-रामः । दाशरथिर्न ॥

संज्ञावाच्य हो तो हलन्त धातु से पुंल्लिङ्ग विषयक करण तथा अधिकरण में घञ् प्रत्ययहो ॥ १२१ ॥

अध्यायन्यायोद्याव संहाराश्च॥१२२॥

अ० रोः, च। इमे घञन्ता निपात्यन्ते।यथा–अधीयतेऽस्मिन्निति-अध्यायः । नीयतेऽनेनेति–न्यायः । उद्युवन्ति, संहरन्ति-अनेनेति उद्यावः । संह्रियन्तेऽनेनेति-संहारः–प्रलयः ॥

अध्याय आदि शब्द घञ् प्रत्ययान्त निपातन कियेगये हैं ॥ १२२ ॥

उदङ्कोऽनुदके॥१२३॥

उ०कः,अं०के।अनुदके उदङ्क इति निपात्यते । यथा-घृतोदङ्कः॥ घी का कुप्पा ॥ उदक (जल) भिन्नसंज्ञा विषय में उदङ्क यह निपातन किया गया है ॥ १२३ ॥

जालमानायः ॥ १२४ ॥

जालम्, आ० यः । आनाय इति निपात्यते जालं चेत् स्यात् । यथा–आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेनेति-आनायः जालम् ॥

जाल अभिधेय हो तो आनाय यह निपातित है ॥ १२४ ॥

खनो घ च ॥ १२५ ॥

खनः, घः, च। करणाधिकरणयोः खनतेर्घघञौ स्याताम्। यथा-आखनः, आखानः-कोलः, मूषको वा। (खनेर्डडरेकेकवका-वाच्यः)॥ यथा-आखः, आखरः, आखनिकः, आखनिकवकः। इमे खनित्र वचनाः॥

करण तथा अधिकरण कारक में घ, और घञ् प्रत्यय हो॥ १२५॥

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्॥ १२६॥

ईषद्, दुस्, सु इत्येतेषूपपदेषु दुःखसुखार्थेषु धातोः खल् स्यात्। कृच्छ्रे। यथा-दुष्करो भवता क्रियते कटः। अकृच्छ्रे। ईषत्करः, सुकरः॥ (निमिमीलियां खल चोरात्वं नेतिवाच्यम्)॥ ईषन्निमयः। दुष्प्रमयः। सुविलयः। निमयः। मयः। लयः॥

कृच्छ्र (दुःख) तथा अकृच्छ्र (सुख) अर्थ में वर्त्तमान जो ईषत्, दुर् तथा सु उपपद हों तो धातु से खल् प्रत्यय हो॥ १२६॥

कर्त्तृकर्मणोश्च भूकृञोः॥ १२७॥

क॰ णोः, च, भू॰ ञोः। कर्त्तृकर्मणोरीषदादिषु चोपपदेषु भूकृञोः खल् स्यात्। यथासङ्ख्यं नेष्यते। कर्त्तृकर्मणी च धातोरव्यवधानेन प्रयोज्ये। ईषदादयस्तु ततः प्राक्॥ (कर्त्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोरिति वाच्यम्)॥ खित्वान्मुम्। यथा-अनाढ्येनाढ्येन दुःखेन भूयते इति-दुराढ्यम्भवम्, ईषदाढ्यम्भवम्, स्वाढ्यम्भवम्। ईषदाढ्यङ्करः, दुराढ्यङ्करः, स्वाढ्यङ्करः॥

कर्त्ता तथा कर्म में ईषद् आदि उपपद हों तो भू तथा डुकृञ् धातु से खल् प्रत्यय हो॥ १२७

आतो युच्॥ १२८॥

आतः, युच् । कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषदादिषूपपदेषु आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो युच् स्यात् । यथा—ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ॥ (भाषायां शासि युधि दृशि धृषि मृषिभ्यो युज्वाच्यः) ॥ दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्धर्षणः । दुर्मर्षणः ॥

कृच्छ्र तथा अकृच्छ्र अर्थ में ईषदादि उपपद हों तो आकारान्त धातुओं से युच् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥ १२९ ॥

ईषदादिषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि युच् स्यात् । यथा—सूपसदनोऽग्निः ॥

सम्यक् स्थानवाला अग्नि ॥ ईषदादि उपपद हों तो गत्यर्थक धातुओं के छन्दो विषय में युच प्रत्यय हो ॥ १२९ ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ १३० ॥

अ० भ्यः, अपि, दृश्यते । छन्दसि विषये गत्यर्थेभ्योऽप्यन्येभ्यो धातुभ्यो युच् दृश्यते । यथा—सुदोहना ॥

सम्यक् प्राप्त करना ॥ छन्दो विषय में गत्यर्थ धातुओं के भिन्न से भी युच प्रत्यय दीखता है ॥ १३० ॥

वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद् वा ॥ १३१ ॥

समीपमेव—सामीप्यम् । स्वार्थेष्यञ् । वर्त्तमानेलडित्यारभ्य उणादयो बहुलमिति यावद्—येनोपाधिना ये प्रत्यया विहितास्ते तथैव वर्त्तमानसमीपे भूते भविष्यति—च वा स्युः । यथा—कदा आगतवन्तो

भवन्तः-अयमागच्छामि, अयमागमम् । कदा गमिष्यसि-एष गच्छामि, गमिष्यामि वा ॥

आप कब आये हैं-अभी आया हुआ हूं । तू कब आवेगा-अभी आता हूं ॥ वर्त्तमान समीपीय भूत तथा भविष्यत् काल में वर्त्तमान धातु से विकल्प करके वर्त्तमान वत् प्रत्यय हों ॥ १३१ ॥

आशंसायां भूतवच्च ॥ १३२ ॥

आ०मूँ, भू०तँ, चँ । आशंसायां भविष्यति काले भूतवद्वर्त्तमानवच्च वा प्रत्ययाः स्युः । यथा-मेघश्चेदवर्षीत्, वर्षति, वर्षिष्यति वा-धान्यमवाप्स्म वपामः, वप्स्यामो वा । सामान्याति देशे विशेषानतिदेशः । तेन लङ्लिटौ नो ॥

यदि मेघ वर्षेगा तो धान बोयेंगे ॥ आशंसा (प्रियार्थ प्राप्तीच्छा) वचन उपपद होतो धातु से भविष्यत् काल में विकल्पसे भूत तथा वर्त्तमान वत् प्रत्यय हों १३२

क्षिप्रवचँने लृँट् ॥ १३३ ॥

क्षिप्रपर्याये उपपदे आशंसायां गम्यमानायां धातोर्लृट् स्यात् । यथा-वृष्टिश्चेत् क्षिप्रमाशु त्वरितंचपलं वा, यास्यति-शीघ्रं वप्स्यामः । नेति वक्तव्ये लृड्ग्रहणं लुटोऽपि विषये यथा स्यात् । श्वःक्षिप्रमध्येष्यामहे ॥

यदि वर्षा शीघ्रहोगी तो जल्दी बोयेंगे ॥ क्षिप्र वचन उपपद होतो आशंसा गम्यमान होने पर धातुसे लृट्प्रत्यय हो ॥ १३३ ॥

आशंसावचँने लिङ् ॥ १३४ ॥

आशंसावाचिनि उपपदे भविष्यति काले लिङ् स्यात् । यथा-गुरुश्चेदुपेयादाशंसे-अधीयीय । आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥

यदि गुरुजी आवेंगे तो मैं पढूंगा ॥ आशंसा वाची उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १३४ ॥

नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ॥ १३५ ॥

न, अ०त्, क्रि०योः । क्रियायाः—सातत्ये, सामीप्ये च गम्ये लङ्लुटौ न स्याताम् । यथा—यावज्जीवं भृश मन्न मदात् । यावज्जीवं भृश मध्यापयिष्यति । सामीप्ये—येयं पौर्णमास्यागामिनी तस्या मग्नीना धास्यते, सोमेन यक्ष्यते ॥

जबतक जिया निरंतर अन्न दान किया । जबतक जियेगा लगातार पढ़ायेगा । जो यह पूर्णिमा आती है उसमें अग्निसे धारण तथा सोमसे यजन करेगा ॥ क्रियाके प्रबन्ध तथा सामीप्य में अनद्यतन वत् प्रत्यय न हों । अर्थात् भूत अनद्यतन में लङ् तथा भविष्यत् अनद्यतन में लुट् विहित है वह न हो ॥ १३५ ॥

भविष्यति मर्य्यादावचनेऽवरस्मिन् १३६

भविष्यति काले मर्यादोक्ताववरस्मिन् प्रभिभागेऽनद्यतन वत् प्रत्यय विधानं न स्यात् । यथा—आलवपुराद्यो मार्गो गन्तव्यस्तस्य यदवर मिन्द्रप्रस्थस्य तत्र स्थास्यामः ॥

लाहौर तक जोमार्ग तय करना है उसका उरला जो दहली का मार्ग है वहां ठहरेंगे ॥ भविष्यत् काल में मर्यादा वचन का अवर विभाग कहना होतो धातु से अनद्यतन वत् प्रत्यय न हो ॥ १३६ ॥

कालविभागेचानहोरात्राणाम् ॥ १३७ ॥

कालमर्यादा विभागे सत्यवरस्मिन् विभागे भविष्यति कालेऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधानं न स्यात् । अहोरात्र सम्बधिनी विभागे प्रतिषेधार्थ मिदम् । यथा योऽयमब्दः-आगामी तस्ययदवर माग्रहायण्याः-तत्र युक्ता अध्येष्यामहे ॥

जो यह साल आने वालाहै उसके अगहनका पूर्णमा का जो उरला विभागहै उसमें हम संलग्न होकर पढ़ेंगे ॥ समयकी मर्यादा के विभागमें उरले विभागकी अपेक्षा होतो भविष्यत् कालमें अनद्यतन प्रत्यय नहो जोकि वह मर्यादा विभाग अहोरात्र सम्बन्धी न होतो ॥ १३७॥

परस्मिन् विभाषा ॥ १३८ ॥

काल मर्य्यादा विभागेसति भविष्यति काले परस्मिन् प्रविभागे वाऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधानं न स्यात् । न चेहोरात्रसम्बन्धी प्रविभागः। यथा-योऽयं संवत्सरः आगामी तस्य यत् परमाग्रहायण्याः तत्राध्येष्यामहे, अध्येतास्तहे वा ॥

जोकि यह वर्ष आने वाला है उसके अगहन की पौर्णमासी का जो परभाग है उसमें पढ़ेंगे ॥ समयकी मर्यादा के विभाग में परभाग की अपेक्षा हो तो विकल्प करके अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो, जोकि वह मर्यादा वचन अहोरात्र सम्बन्धी विभाग में न हो तो ॥ १३८ ॥

लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ १३९

हेतु हेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्। यथा-देवदत्तश्चेपठिष्यत् तदा पण्डितोऽभविष्यत् ॥

यदि देवदत्त पढ़ेगा तो पण्डित होगा ॥ लिङ्निमित्त भविष्य काल में क्रियातिपत्ति हो तो धातु से लृङ्लकार ॥ १३९ ॥

भूते च ॥ १४० ॥

हेतु हेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भूतेऽर्थे लृङ् स्यात्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । यथा-दृष्टो मयका स भिक्षु र्भोजनार्थी चङ्क्रम्यमाणः अपरश्चैको विट् परिव्राजार्थी यदि तेनासौदृष्टोऽभविष्यत् ततोऽभोक्ष्यत ॥

भोजनार्थी घूमता हुआ मैंने एक संन्यासी देखा था और एक वैश्य संन्यासी के अन्वेषण में था यदि उसने उसे देखा होगा तो भोजन किया होगा ॥ लिङ्-निमित्त में क्रियातिपत्ति हो तो भूतकाल में भी लृङ् प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

वोताप्योः ॥ १४१ ॥

वा, आ, उताप्योः । उताप्योरित्यतः (३ । ३ । १५२) प्राग् भूते लिङ् निमित्ते लृङ् वेत्यधि क्रियते ॥

यहां से लेकर उताप्योः समर्थयो लिङ् इस सूत्र पर्यन्त जो विधान किया है इस में लिङ् के निमित्त क्रियातिपत्ति हो तो लृङ् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ १४१ ॥

गर्हायां लडपिजात्वोः ॥ १४२ ॥

ग० मँ, लट्. अ० त्वोः । गर्हायां गम्यमानायामपिजात्वो रुपपदयो धातो लट् स्यात्, कालत्रये । यथा—अपि भार्यां त्यजासि जातुर्वेश्या माधत्से, गर्हित मिदं कृत्यम् ॥

पत्नी को छोड़कर गणिका को धारण करता है, यह निन्दनीय कार्य है ॥ कुत्सा अर्थ में अपि तथा जातु उपपद हों तो धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ १४२ ॥

विभाषा कथमि लिङ् च ॥ १४३ ॥

गर्हायां गम्यमानायां कथं शब्द उपपदे धातो र्वा लिङ् स्याच्चाल्लट् कालत्रये । यथा—कथं धर्मं त्यजेः, त्यजासि वा । पक्षे कालत्रये लकाराः । अत्र भविष्यति नित्यं लृङ् भूते वा । कथं नाम तत्रभवान् धर्म मत्यक्ष्यत् ॥

आपने क्यों धर्म छोड़ा, छोड़ते हो, छोड़ोगे ॥ कथं शब्द उपपद हो तो गर्हा गम्यमान होनेपर धातु से विकल्प करके लिङ् तथा लट् प्रत्यय हों ॥ १४३ ॥

किंवृत्ते लिङ्लृटौ ॥ १४४ ॥

किंवृत्त उपपदे गर्हायां गम्यमानायां धातो लिङ् लृटौ स्यातास्। यथा—कः, कतरः, कतमो वा वेदं निन्देत्, निन्दिष्यति वा ॥

कौन वेद की निन्दा करे, करेगा ॥ किं शब्द का प्रयोग उपपद होनेपर गर्हा गम्यमान हो तो धातु से लिङ् तथा लृट् प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिं वृत्तेऽपि १४५

अ० योः, अ० त्ते, अपि। किं वृत्तेऽकिं वृत्ते चोपपदेऽनव क्लृप्त्यमर्षयोर्धातोर्लिङ् लृटौ स्याताम्। गर्हायामिति निवृत्तम्। अनवक्लृप्तिः—असंभावना। अमर्षः—क्रोधः। यथा—नो सम्भावयामि, नोमर्षयेवा भवन्तो वेदान् निन्देयुः, निन्दिष्यन्ति वा। कः, कतरः, कतमो वा वेदान् निन्देत्, निन्दिष्यति—वा। लृङ् प्राग्वत् ॥

किं शब्दका प्रयोग हो अथवा न हो तो अनवक्लृप्ति (गैरमुमकिन) तथा अमर्ष अर्थ में धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हो ॥ १४५ ॥

किङ्किलास्त्यर्थेषु लृट् ॥ १४६ ॥

किङ्किलास्त्यर्थेषूपपदेषु अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गर्हागम्यमानायां धातो लृट् स्यात्। किङ्किलेति—समुदायः क्रोध द्योतकमुपपदम्। अस्त्यर्थाः, अस्ति, भवति, विद्यतयः। यथा—न श्रद्धे, न मर्षये वा, किङ् किल त्वं गुरुं निन्दिष्यसि। अस्ति, भवति, विद्यते वा वेश्यां यास्यसि ॥

न मैं स्वीकार करता हूँ और न मैं कुपित होता हूँ कि तू गुरुकी निन्दा करेगा। उपस्थित (स्त्री) होनेपर भी दुष्ट वेश्यागमन करेगा ॥ किङ्किल और अस्त्यर्थ धातु उपपद हो तो अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष अर्थ में धातु से लृट् प्रत्यय हो ॥ १४६ ॥

जातुयदोर्लिङ् ॥ १४७ ॥

जाँ० दोः, लिङ् । जातु यद् इत्येतयोरुपपदयोरनव क्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोर्धातोर्लिङ् स्यात् । यथा-जातु, यद् वा त्वादृशो गुरुं निन्देन्नावकल्पयामि, नोमर्षयामि । लृङ् प्राग्वत् ॥ (यदायद्योरुपसङ्ख्यानम्) ॥ यदा, यदि भवद्विधः सत्यं निन्देन्नावकल्पयामि नमर्षयामि ॥

मै कभी नहीं मानता कि तुम सरीखा गुरुकी कभी निन्दा करे ॥ जातु तथा यद् उपपद हों तो अनव क्लृप्ति और अमर्ष गम्यमान होनेपर धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १४७ ॥

यच्चयत्रयोः ॥ १४८ ॥

यच्चयत्र इत्येतयोरुपदयोरनव क्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयो र्धातो लिङ् स्यात् । यथा-यच्च, यत्र वा त्वमेवं कुर्या न श्रद्दधे, नोमर्षयामि ॥

मैं विश्वास नहीं करता जो कि तू ऐसा कार्य करे ॥ यच्च और यत्र उपपद हों तो अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष के गम्यमान होनेपर धातु से लिङ्प्रत्यय हो १४८

गर्हायां च ॥ १४९ ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरिति निवृत्तम् । यच्चयत्रयो र्योगे गर्हायां गम्यमानायां लिङेव स्यात् । यथा-यच्च, यत्र वा, त्वमद्यं पिबेः- अहो अन्याय्यमेतत् ॥

यह निन्दनीय वार्त्ता है कि तू शराब पिये ॥ यच्च तथा यत्र उपपद हों तो निन्दा गम्यमान होनेपर धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १४९ ॥

चित्रीकरणे च ॥ १५० ॥

चित्रीकरणमाश्चर्यमद्भुतं विस्मयनीयम् । यच्च यत्रयो रुपपदयो-

श्चित्रीकरणे गम्यमानेधातोर्लिङ् स्यात् । यथा-यच्च, यत्र वा भवान् ब्रह्मचारी भूत्वा चौर्य्यं कुर्यात्-आश्चर्यमेतद् वर्वर्त्ति भगवन्! ॥

आश्चर्य की वार्त्ता है कि आप ब्रह्मचारी होकर चोरी करें॥ यच्च तथा यत्र उपपद हों तो चित्रीकरण गम्यमान होनेपर धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५० ॥

शेषे लृडयदौ ॥ १५१ ॥

शेषे, लृट्, अयदौ। यच्च यत्राभ्यां विनाऽन्यस्मिन्नुपपदे चित्रीकरणे गम्ये धातोर्लृट् स्यात्। यथा-आश्चर्यमन्धो नाम मां द्रक्ष्यति॥

विस्मय है कि अन्धा मुझे देखेगा ॥ यदि शब्दका प्रयोग न हो तो यच्च और यत्र से भिन्न इतर उपपद होनेपर चित्रीकरण के गम्यमान में धातु से लृट्प्रत्यय हो॥

उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ॥ १५२ ॥

उ० प्योः, स० योः, लिङ्। उत अपि इत्येतयोस्समर्थयो र्धातोर्लिङ् स्यात्। यथा-उताधीयीत, अप्यधीयीत ॥

जी हां यह पढ़े ॥ एकार्थक उत तथा अपि उपपद हों तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो॥ यहां से लेकर भूतकाल में भी क्रियातिपत्ति होनेपर लृङ् लकार हो ॥ १५२ ॥

कामप्रवेदनेऽकच्चिति ॥ १५३ ॥

स्वाभिप्रायाविष्करणे गम्यमाने लिङ् स्यात्, न तु कच्चिति। यथा-कामो मे भुञ्जीत भवान् ॥

मैं चाहता हूं कि आप भोजन करें ॥ कच्चित् भिन्न उपपद हो तो इच्छा का प्रकाश गम्यमान होनेपर धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५३ ॥

सम्भावनेऽलमितिचेत् सिद्धाऽप्रयोगे १५४

सं० ने, अलम्, इति. चेत्, सिं० गे। सम्भावनेऽर्थे लिङ् स्या-

च्चेत् सम्भावनमलमिति सिद्धाप्रयोगे सति। यथा—अपि पर्वतं भवान् शिरसा भिन्द्यात् ॥

आप पहाड़को शिरसे तोड़ें ॥ जो सिद्ध अलम् शब्द का प्रयोग न किया जाय तो अलमर्थ सम्भावन में वर्त्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५४॥

विभाषा धातौसम्भावनवचनेऽयदि १५५

सम्भावनवचने धतावुपपदे यच्छब्दवर्जिते धातो र्वा लिङ् स्यात्। यथा—सम्भावयामि भुञ्जीत, भोक्ष्यते वा-भवान् ॥

मुमकिनकिन है कि आप खायें गे ॥ यद् शब्द वर्जित अलमर्थ सम्भावन अर्थ का कहनेवाला धातु उपपद हो तो धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय हो जो सिद्ध अलं शब्द का प्रयोग न हो तो ॥ १५५ ॥

हेतेहेतुमतोर्लिङ् ॥ १५६ ॥

हे० तोः, लिङ्। हेतुः कारणम्। हेतुमत् फलम्। हेतुभूते हेतुमति चार्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ् वा स्यात्। यथा—धर्म्मं कुर्याच्चेत् सुखं यायात्, धर्मं करिष्यति चेत् सुखं यास्यति ॥

यदि धर्म्म करेगा तो सुख मिलेगा ॥ हेतु तथा हेतुमान् अर्थ में विकल्प से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५६ ॥

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥ १५७॥

इच्छार्थेषु धातुषूपपदेषु धातोर्लिङ्लोटौ स्याताम्। यथा—इच्छामि पठेः, पठ वा। एवमेव कामये, प्रार्थये ॥

मैं चाहता हूं कि तू पढ़े ॥ इच्छार्थक धातु उपपद हों तो धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय हों ॥ १५७ ॥

समानकर्तृकेषुतुमुन् ॥ १५८ ॥

इच्छार्थेषु धातुषु समान कर्तृकेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् स्यात् । यथा--इच्छामि भोक्तुम् । एवमेव कामये, वष्टि, वाञ्छामि ॥

भोजन (को) करना चाहता हूं ॥ समान (एक) कर्तृक इच्छार्थक धातु उपपद होतो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो ॥ १५८ ॥

लिङ् च ॥ १५९ ॥

समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषूपपदेषु धातुषु लिङ् स्यात् यथा -अधीयीयेतीच्छति ॥

मैं पढ़ूं यह चाहता है ॥ समान कर्तृक इच्छार्थक धातु उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५९ ॥

इच्छार्थेभ्योविभाषा वर्त्तमाने ॥ १६० ॥

इ०भ्यः, विभा०षा, व०ने। इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो वर्त्तमाने काले वा लिङ् पक्षेलट् । यथा--इच्छेत्, इच्छति । कामयेत, कामयते ॥

चाहता है ॥ इच्छार्थक धातुओं से वर्त्तमानकाल में धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय हो ॥ १६० ॥

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्न प्रार्थनेषु लिङ् ॥ १६१ ॥

विधिः--प्रेरणम् । निमन्त्रणम्--नियोगकरणम् । आमन्त्रणम्--कामचारणम् । अधीष्टः--सत्कारपूर्वकोव्यापारः । सम्प्रश्नः--सम्प्रधारणम् । प्रार्थनम्--याच्ञा । विध्याद्यर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात् । यथा--विधौ--भोजनं कुर्यात् पठनाय चायं गच्छेत् । निमन्त्रणे--भवानिह भुञ्जीत । आमन्त्रणे--इहासीत महामुने ! । अधीष्टे--पुत्रमध्यापयेद्

भवान् । सम्प्रश्ने--किं भो व्याकरणमधीयीय, उतन्यायम् । प्रार्थने--भवति मे प्रार्थनं वेदमधीयीय ॥

यह भोजन करे और पढने के लिये जावे । इससमय आप भोजन करें । महात्माजी ! इहां बैठिये । आप लड़के को पढ़ावें । क्योंजी मैं व्याकरण पढूं या न्याय । आप से मेरी प्रार्थना है कि मैं वेदपढूं ॥ विधि आदि ६ अर्थों में धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १६१ ॥

लोट् च ॥ १६२ ॥

विध्याद्यर्थेषु लोडपि स्यात् । यथा--विधौ-ग्रामंगच्छ न स्वगृहम् । इतरत् पूर्वसूत्रवत् ॥

गांव को जा अपने घर को न आ ॥ पूर्वोक्तविधि आदि छह अर्थों में धातु से लोट् प्रत्यय भी हो ॥१६२ ॥

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषुकृत्याश्च १६३

प्रै०षु, कृत्याः, च । प्रैषः--विधिः ।अतिसर्गः--कामचारानुज्ञा । पैषादिष्वर्थेषु धातोः कृत्यसञ्ज्ञकाः प्रत्ययाः स्युश्चाल्लोट् । यथा--भवताखलु यष्टव्यम्, यजतां च भवानिह । एवं त्वया हिकरणीयं कर्त्तव्यं खलु च कार्य्यम् ॥

आप यज्ञ करें ॥ प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल इन अर्थों में धातु से कृत्य संज्ञक प्रत्यय तथा लोट्लकार भीहो ॥ १६३ ॥

लिङ्चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ १६४ ॥

लिङ्, च,ऊं०के । प्रैषादिषु गम्यमानेषु ऊर्ध्वमौहूर्तिकेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लिङ् चाद् यथा प्राप्तं च प्रत्ययाः स्युः । यथा--मुहूर्त्तादूर्ध्वम--यजेत. यजताम्, यष्टव्यम् ॥

दोघड़ी बाद यज्ञ करना चाहिये ॥ प्रैषादि अर्थ गम्यमान होते ऊर्ध्वमौहूर्तिक अर्थ में वर्त्तमान धातु से लिङ् और यथा प्राप्त प्रत्यय हों ॥ १६४ ॥

स्मे लोट् ॥ १६५ ॥

स्मशब्द उपपदे प्रैषादिषु गम्यमानेषूर्ध्वं मौहूर्त्तिकेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लोट् स्यात् । यथा-ऊर्ध्वमौहूर्त्तायजतांस्म ॥

वह दोघड़ी के पश्चात् यजन करे ॥ स्मशब्द उपपद होतो प्रैषादि अर्थ के गम्यमान होनेपर ऊर्ध्वमौहूर्त्तिक अर्थ में वर्त्तमान धातु से लोट् प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

अधीष्टे च ॥ १६६ ॥

स्मशब्द उपपदेऽधीष्टे गम्ये धातोर्लोट् स्यात् । यथा--भवान्स्म अध्यापयतु ॥

आप पढाइये ॥ स्मशब्द उपपद होतो अधीष्ट अर्थ के गम्यमान होनेपर धातु से लोट् प्रत्यय हो ॥ ११६ ॥

कालसमयवेलासु तुमुन् ॥ १६७ ॥

कालादिषूपपदेषु धातोस्तुमुन् स्यात् । यथा--कालो भोक्तुम् । समयो गन्तुम् । वेला पठितुम् ॥

भोजन का समय । जाने का समय । पढ़ने का समय ॥ कालसमय तथा वेला उपपद होतो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

लिङ् यदि ॥ १६८ ॥

यच्छब्दे उपपदे कालसमयवेलासु च लिङ् स्यात् । यथा--कालः, समयः, वेला वा यत् स भुञ्जीत ॥

यदि वह खाये तो भोजन का समय है ॥ यद् शब्द सहित कालसमय तथा वेला उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

अर्हे कृत्यतृचश्च ॥ १६९ ॥

अर्हे, कृ० चः, च । अर्हे कर्त्तरि वाच्ये गम्ये वा धातोः कृत्यतृचः प्रत्ययाः स्युश्चाल्लिङ् । यथा—भवता खलु कन्या वोढव्या, वाह्या, वहनीया । भवान् खलु कन्याया वोढा भवान् खलु कार्यां वहेत् ॥

आप इस कन्या से विवाह करें अर्थात् यह कन्या आपके योग्य है ॥ अर्ह (योग्य) कर्त्ता वाच्य वा गम्यमान हो तो धातु से कृत्यसंज्ञक तृच् तथा लिङ् प्रत्यय हो ॥ १६९ ॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥ १७० ॥

आ० योः, णिनिः । स्पष्टम् । यथा—अवश्यंकारी । सहस्रंदायी ॥

सर्वथा करनेवाला । सहस्र (हज़ार) का देनदार ॥ अवश्य भाव विशिष्ट तथा आधमर्ण्य विशिष्ट कर्त्ता वाच्य हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ १७० ॥

कृत्याश्च ॥ १७१ ॥

कृत्याः, च । कृत्यसंज्ञकाश्च प्रत्यया आवश्यकाधमर्ण्ययोरुपाधिभूतयोर्धातोस्स्युः । यथा—अवश्यं धर्म्मः सेव्यः । शतं देयम् ॥

धर्म अवश्य सेवन करना चाहिये । सौ (रुपये) देना चाहिये ॥ उपाधि भूत आवश्यक और आधमर्ण्य अर्थ में धातु से कृत्यसंज्ञक प्रत्यय हों ॥ १७१ ॥

शकि लिङ् च ॥ १७२ ॥

शक्नोत्यर्थोपाधिके धात्वर्थे । लिङ् चात् कृत्याश्च स्युः । यथा भवता खलु भारो वोढव्यः, वहनीयः, वाह्यः । भवान् खलु भारं वहेत् ॥

आप बोझा ले जासक्ते हैं ॥ शक्त्यर्थोपाधिक धात्वर्थ हो तो धातु से लिङ् और कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भी हों ॥ १७२ ॥

आशिषि लिङ्लोटौ ॥ १७३ ॥

आशीर्विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लिङ् लोटौ स्याताम् । यथा- चिरञ्जीव्याः, जीव, जीवतात् वा त्वम् ॥

तू अधिक जीता रह ॥ आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् तथा लोट् प्रत्यय हों १७३

क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥ १७४ ॥

आशिषि विषये धातोः क्तिच्क्तौ प्रत्ययौ स्याताम्, संज्ञायां विषये । यथा-भवतात्-भूतिः । क्तः देवा एनं देयासुर्देवदत्तः ॥

ऐश्वर्य । देवता इसे देवें, इस नाम वाला ॥ यदि समुदाय से संज्ञा गम्यमान हो तो आशीर्वाद अर्थ में धातु से क्तिच् तथा क्त प्रत्यय हों ॥ १७४ ॥

माङि लुङ् ॥ १७५ ॥

माङ् युपपदे धातोर्लुङ् स्यात् । यथा--स माकार्षीत् ॥

वह न करे माङ् शब्द उपपद हो तो धातु से लुङ् प्रत्यय हो ॥ १७५ ॥

स्मोत्तरे लङ् च ॥ १७६ ॥

स्मशब्दोत्तरे माङ्युपपदे धातोर्लङ् स्यात । चाल्लुङ् । यथा- मास्म करोत्, मा स्म कार्षीत् ॥

मतकर ॥ स्म जिस से परे हो वह माङ् उपपद हो तो धातु से लुङ् तथा लङ् प्रत्यय हो १७६

इति तृतीयाऽध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अथ तृतीयाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ॥ १ ॥

धात्वर्थानां सम्बन्धे यस्मिन् काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि

स्युः । यथा--वसन् ददर्शावतरन्तमम्बरात् । भूते लट् । सोमयाज्यस्य पुत्रो भविता । सोमेन यक्ष्यमाणोयःपुत्रस्ततत्कर्तृकंभवनम् ॥

रहते हुये ने आकाश से उतरते देखा । सोमयज्ञ जिसने किया है उस के पुत्र होगा ॥ सोमयाजी यह शब्द भूतकाल और भविता यह भविष्यकाल में है परन्तु यहां भूतकाल भविता के भविष्यकाल का सम्बन्ध पाकर सिद्धहोता है । धात्वर्थ सम्बन्ध में अयथाकालोक्त भी प्रत्यय हों ॥ १ ॥

क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥ २ ॥

क्रि० रे, लोट्, लोटः, हिस्वौ, वा, च, तध्वमोः । पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातो र्लोट् स्यात्तस्य च हिस्वौ स्याताम् । तौ च हिस्वौ क्रमेण परस्मैपदात्मनेपदं संज्ञौ भवेतां तिङ्सञ्ज्ञौ च । तध्वमोर्विषये तु हिस्वौ वा स्याताम् । पुरुषैकवचन संज्ञे तु नानयोरतिदिश्येते । हिस्व विधानसामर्थ्यात् । तेन सकलपुरुष वचन विषये परस्मै पादिभ्यो हिः कर्त्तरि । आत्मनेपादिभ्यः स्वोभावकर्म कर्तृषु ॥

क्रिया के समभिहार (वार२ होना) अर्थ में वर्त्तमान धातु से लोट् प्रत्यय हो और लोट् को परस्मै पद के विषय में हि तथा आत्मने पद में स्व आदेश हो परन्तु त, ध्वम् को हि और स्व आदेश विकल्प से हो ॥ २ ॥

समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ॥ ३ ॥

अनेक क्रिया समुच्चये द्योत्ये प्रागुक्तं वा स्यात् ॥ यथा - भ्राष्ट्रमट, कूपमट, मृत्युमटे इत्येवायमटाति । एवमेव सर्वत्र ॥

भाड़ में जा, कुयें में पड़, मरजा ॥ अनेक क्रियाओं के अध्याहार में धातु से विकल्प करके लोट् हो और उस लोट्के स्थानमें पूर्वोक्त हि और स्व आदेश हो ॥ ३ ॥

यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ॥ ४ ॥

अ
य० धि, अ० गः, पू० न् । पूर्वास्मिन् लोट् विधाने यथा विध्य-नु प्रयोगः स्यात् । यथा—लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनातीति छिनत्तीति न प्रयुज्यते । अधीष्वाधीष्वेत्येवायमधीते । पठतीति न प्रयुज्यते ॥

पूर्वोक्त लोट् विधान में यथाविधि अनुप्रयोग हो अर्थात् जिस धातु से लोट् विहित हो उसी धातु का सङ्ख्या काल और पुरुष के नियम से पीछे प्रयोग हो॥४॥

समुच्चये सामान्यवचनस्य ॥ ५ ॥

लोड्विधौ समुच्चये सामान्यार्थस्य धातोरनुप्रयोगः स्यात् । अनुप्रयोगाद्यथायथं लडादयस्तिबादयश्च । ततः सङ्ख्याकालयोः पुरुषविशेषार्थस्य चाभिव्यक्तिः । यथा—ओदनं भुङ्क्ष्व, क्षीरं पिब, मोदकान् खादेत्येवायमभ्यवहरति ॥

भात, दूध, लड्डू खा । समुच्चय अर्थ में लोट् विधान हो तो सामान्य अर्थ कहनेवाले धातुओं का अनुप्रयोग हो ॥ ५ ॥

छन्दसि लुङ् लङ् लिटः ॥ ६ ॥

छन्दसि धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वेषु कालेषु लुङ्लङ्लिटो वा स्युः । पक्षेयथा स्वं प्रत्ययाः यथा—देवोदेवेभिरागमत् । अत्रलोडर्थेलुङ् । इदं तेभ्योकरं नमः । लङ् । अग्निममार । अत्रम्रियते इत्यर्थः । लिट् ॥

दिव्यगुणयुक्त ईश्वर प्राप्त हो । यह उनके लिये नमस्कृति की है ॥ धात्वर्थ सम्बन्ध होने पर छन्द विषय में सर्वकालों में विकल्प से लुङ्, लङ् और लिट् प्रत्यय हों ॥ ६ ॥

लिङर्थे लेट् ॥ ७ ॥

१-(७ । १ । १०) इन्धेस निषेधः ॥

विध्यादौ हेतु हेतुमद्भावादौ च धातो र्लेट् स्याच्छन्दसि। यथा—तारिषत्[1]। जोषिषत्[2] ॥

तारे सेवे॥ विध्यादि तथा हेतुहेतुमद्भाव में धातु से विकल्प करके छन्दोविषय में लेट् लकार हो।

उपसंवादाशङ्कयोश्च ॥ ८ ॥

उ॰ योः, च। उपसंवादे, आशङ्कायां च गम्यमानायां छन्दसि लेट् स्यात्। यथा—अहमेव पशूनामीशै[3]। नेज्जिह्मायन्तो नरकंपताम॥

मैं पशुओं का स्वामी हूं। क्या कुटिलता करते हुये हम दुःख को प्राप्त न हों (अपितु होवें)॥ उपसंवाद (एवजमावज़ा) और आशङ्का (मुमुकिन) गम्यमान हो तो छन्दविषय में धातु से लेट् लकार हो॥ ८ ॥

तुमर्थे सेसेनसे असेन् क्से कसेनध्यै अध्यैन् कध्यैकध्यैन् शध्यै शध्यैन्त-वैतवेङ् तवेनः ॥ ९ ॥

तुमुनोऽर्थस्तुमर्थः। तत्रच्छन्दसि धातोः समादयः प्रत्ययाः स्युः। यथा—से। वक्षे[4]। सेन्। एषे[5]। असे। जीवसे। असेन्नित्याद्युदात्तः। क्से। प्रेषे[6]। कसेन्। श्रियसे[7]। अध्यै। अध्यैन्। पृणध्यै। पक्षे आ-

---

१-तृ-प्लवनसन्तरणयोः सिविधो बहुलं णिद्वद्भाव उक्तस्ततो वृद्धिः। २-जुषीप्रीतिसेवनयोरनुदात्तेत, व्यत्ययेन परस्मैपदम्, इतश्च लोपः परस्मैपदेषु लेटोडाटाविति तिपोडागमः, सिब्बहुलं लेटीति सुप्, इडागमः। ३-ईश ऐश्वर्ये। उत्तमैकवचनमिट्। इतश्च-इतिलोपो नास्ति परस्मैपदेषु इत्युक्तेः टेरेत्वं तस्य ऐ। उपसंवादः-पणबन्धः यदि मे भवानिदं कुर्यात्तर्हीदमहं दास्यामीति। समयकरणं पणबन्धः। आशङ्का सम्भावना।

४—वचः से कुत्वं षत्वम्। कषसंयोगे क्षः। ५—एषे इति इको गुणः। नकारोऽन्नित्यादिर्नित्यम् इत्याद्युदात्तार्थः। ६—प्रेषे इति। इकः से कित्वादगुणे आद्गुणः। ७—श्रियसे इति। इयङ् नित्त्वादाद्युदात्तः।

द्युदात्तम् । कध्यै । कध्यैन् । आहुवध्यै[1] । पक्षेनितस्वरः । शध्यै । मादयध्यै[2] । शध्यैन् पिबध्यै[3] । तवै । दातवै[4] । तवेङ् । सूतवे[5] । तवेन् । कर्त्तवे[6] ॥

कहने को । प्राप्तिको । जीनेको । जानेको । शोभाको । पूरण करनेको । हवन करनेको । प्रसन्न कराने को । पीने को । देने को । पैदा करनेको । करने को । तुमर्थ (तुमुन् प्रत्ययका) में छन्दोविषय होनेपर धातु से से, सेन्, असे, असेन्, क्से, क्सेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ् तवेन् ये १९ प्रत्यय हों ॥९॥

प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ॥ १० ॥

छन्दसीमे तुमर्थे निपात्यन्ते । यथा–प्रयै । प्रयातुम् । रोहिष्यै । रोहणाय । अव्यथिष्यै । अव्यथनाय ॥

तुमर्थ में छन्दोविषय होनेपर प्रपूर्वक या धातु से कै प्रत्ययान्त "प्रयै" रुह से इष्यै प्रत्ययान्त "रोहिष्यै" और नञ् पूर्वक व्यथ से इष्यै प्रत्ययान्त "अव्यथिष्यै" शब्द निपातन कियेगये हैं ॥ १० ॥

दृशे विख्ये च ॥ ११ ॥

इमौ छन्दसि निपात्येते । यथा–दृशे । द्रष्टुमित्यर्थः । विख्ये । विख्यातुम् ॥

तुमर्थ में छन्दोविषय होनेपर दृशिर् धातु से के प्रत्ययान्त "दृशे" और विपूर्वक ख्याधातु से के प्रत्ययान्त "विख्ये" निपातित कियेगये हैं ॥ ११ ॥

शकि णमुल्कमुलौ ॥ १२ ॥

छन्दसिविषये शक्नोतावुपपदे तुमर्थे इमौस्याताम् । यथा–विभाजं नाशक्नुवन् । विभक्तुमित्यर्थः । अपलुपं नाशकत् । अपलोप्तुमित्यर्थः ॥

१ जुहोतेरुवङ् । २ मदीहर्षे ण्यन्ताच्छध्यै प्रत्ययः । तस्यभाववाचि सार्वधातुकत्वात् सार्वधातुकेयकि प्राप्ते व्यत्ययेनशप्गुणादेशौ । ३—अत्रापि यक्प्रसंङ्गे व्यत्ययेनशप् । पाघ्रा-इति पिबादेशः । ४ददातेस्तव आयादेशे' लोपः शाकल्यस्य, इति यलोपः । ५ ङित्त्वान्नगुण । ६—कृञोगुणः ॥

शक्लृ धातु उपपद हो तो तुमर्थ में छन्दोविषय होनेपर धातु से णमुल् और कमुल् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

ई॑श्व॒रे तो॒सुन्क॒सुनौ॑ ॥ १३ ॥

ईश्वरशब्द उपपदे छन्दसि विषये तुमर्थे इमौस्याताम् । यथा—ईश्वरो विचरितोः । विचरितुमित्यर्थः । ईश्वरो विलिखः । विलेखितुमित्यर्थः ॥

ईश्वरशब्द उपपद हो तो तुमर्थ में छन्दोविषय होनेपर धातु से तोसुन और कसुन् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

कृ॒त्या॒र्थे त॒वैके॒न्के॒न्य॒त्व॒नः ॥ १४ ॥

कृत्यनामार्थो भावकर्मणी । तस्मिन् कृत्यार्थे छन्दसि विषये तवै केन् केन्य, त्वन् इतीमे स्युः । यथा—नम्लेच्छितवै । न म्लेच्छितव्यमित्यर्थः । अवगाहे । अवगाहितव्यमित्यर्थः । दिदृक्षेण्यः । दिदृक्षितव्यमित्यर्थः । कर्त्वम् । कर्त्तव्यमित्यर्थः ॥

कृत्यार्थ (भाव, कर्म) में छन्दोविषय होनेपर धातु से तवै, केन, केन्य और त्वन् प्रत्यय हों ॥ १४ ॥

अ॒व॒चक्षे॑ च ॥ १५ ॥

कृत्यार्थे छन्दसिविषये अवपूर्वाच्चक्षिङ् एश् प्रत्ययो निपात्यते । यथा—नावचक्षे । नावख्यातव्यमित्यर्थः ॥

कृत्यार्थ में छन्दोविषय होनेपर अवपूर्वक चक्षिङ् धातु से एश् प्रत्ययान्त "अवचक्षे" निपातन कियागया है ॥ १५ ॥

१-शित्वात्सार्वधातुकत्वं तेन ख्याञादेशो नो ।

भावलक्षणेस्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमि-जनिभ्यस्तोसुन् ॥ १६ ॥

भा०णे, स्थे०भ्यः, तोसुन् । भावोलक्ष्यते येन तस्मिन्नर्थे वर्त्तमानेभ्यः स्थादिभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये तुमर्थे तोसुन् स्यात् । यथा-आसंस्थातोः सीदन्ति । आसमाप्तेः सीदन्तीत्यर्थः । इण् । उदेतोः । कृञ् । अपकर्त्तोः । वदि । प्रवदितोः । चरि । प्रचरितोः । हु । होतोः । आतमितोः । जनितोः ॥

प्राप्त होने को । अपकार करने को । प्रवाद को । प्रचारके लिये । दानके लिये । सर्वाभिलाष को । पैदाकरने को । छन्दो विषय में तुमर्थ होतो भाव अर्थ में वर्त्तमान स्थाआदि धातुओं से तोसुन् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

सृपितृदोः कसुन् ॥ १७ ॥

भावलक्षणे वर्त्तमानयोः सृपितृदोर्धात्वोश्छन्दसिविषये तुमर्थे कसुन् स्यात् । यथा-विसृपः । आतृदः ॥

छन्दो विषय में तुमर्थ होतो भाव लक्षण अर्थ में वर्त्तमान सृप्लृ और उतृदिर् धातु से कसुन् प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥ १८

प्रतिषेधार्थयोरलं खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । यथा-अलंदत्त्वा । पीत्वा खलु ॥

अपात्रको न देना चाहिये । खराब वस्तु न पीना चाहिये ॥ प्रतिषेधवाची अलम् और खलु शब्द उपपद हों तो प्राग् देशस्थ आचार्यों के मत में क्त्वा प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

१--गमनादित्यर्थः । २—उतृदिर् हिंसानादरयोः ॥ ३-(७ । ४ । ४६) इति ददातेर्दद्दादेशः । ४—(६ । ४ । ६६) इतीकारादेशः ॥

उदीचां माङो व्यतीहारे ॥ १९

उ० मृ॰, माङः, व्य० रे । व्यतीहारेऽर्थेमाङः क्त्वा स्यादुदीचां मतेन । अपूर्वकालार्थमिदम् । यथा--अपमित्य[1] याचते । अपमित्य हरति । उदीचांग्रहणाद्यथाप्राप्तमपि । याचित्वा । हृत्वा ॥

बदलकर मांगता है । बदलकर लेता है । व्यतीहार (व्यतिक्रम) अर्थ में वर्त्तमान मेङ् धातु से उत्तरदेशस्थों के मत में क्त्वा प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

परावरयोगे च ॥ २० ॥

परेण पूर्वस्यावरेण परस्य योगे गम्ये धातोः क्त्वा स्यात् । यथा--अप्राप्य नदीं पर्वतः । परनदीयोगोऽत्रपर्वतस्य । अतिक्रम्य पर्वतं-स्थिता नदी । अवर पर्वत योगोऽत्रनद्याः ॥

पर से पूर्वका और अवर से परका योगगम्यमान होतो धातुसे क्त्वा प्रत्यय हो ॥२०॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ॥ २१ ॥

समानकर्त्तृकयो र्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् । यथा--भुक्त्वा[2]व्रजति । स्नात्वा भुक्त्वापीत्वैति ॥

खाकर जाता है ॥ स्नानकर खाकर और पीकर जाता है ॥ समानकर्त्तृक धात्वर्थो में से पूर्वकाल धात्वर्थ में वर्त्तमान धातु से क्त्वा प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

आभीक्ष्ण्ये णमुल्च ॥ २२ ॥

पौनः पुन्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वाच । यथा--स्मारं[3] स्मारंशयनमेति । स्मृत्वा स्मृत्वा । पायं पायं व्रजति भवनम् ॥

याद कर करके सोता है । पीपीकर घर जाता है । आभीक्ष्ण्ये (वार२) अर्थ

१--मेङ् प्रणिदाने क्त्वोल्यपि मयतेरिदन्यतरस्यामितीत्वम् , ह्रस्वस्य तुक् ॥२-द्वित्वमतन्त्रमिति काशिका, सि०कौ० ॥ ३--आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इत्युपसङ्ख्यानाद् द्विर्वचनम् ॥४-आतोयुक् ॥

गम्यमान हो तो समान कर्तृक धातुओं में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उससे क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

न यद्यनाकाङ्क्षे ॥ २३ ॥

न, यदि, अ० क्षे । अनाकाङ्क्षे यच्छब्दे उपपदे धातोः क्त्वा-णमुलौ न स्याताम् । यथा—यदयं भुङ्क्ते ततः पठति । यदयमधीते ततः शेते ॥

जब यह खा लेता है तब पढ़ता है । जब यह पढ़ लेता है तब सोता है ॥ अनाकाङ्क्ष (इच्छाका न होना) वाक्य में यद् शब्द उपपद हो तो धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय न हो ॥ २३ ॥

विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ २४ ॥

एषूपपदेषु समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले धातोः क्त्वा णमुलौ वा स्याताम् । यथा—अग्रे भोजं व्रजति । अग्रे भुक्त्वा । प्रथमं भोजम् । प्रथमं भुक्त्वा । पूर्वं भोजम् । पूर्वं भुक्त्वा । पक्षे लडादयः । अग्रे भुङ्क्ते ततो जतीत्यर्थः ॥

अग्र, प्रथम और पूर्व उपपद हों तो समान कर्तृकधात्वर्थों में से पूर्वकालिक धात्वर्थ में वर्त्तमान धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय विकल्प से हों ॥ २४ ॥

कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥ २५ ॥

कर्मणि, आक्रोशे, कृञः, खमुञ् । कर्मण्युपपदे आक्रोशे गम्ये कृञः खमुञ् स्यात् । यथा—चौरङ्कारमाक्रोशति । करोतिरुच्चारणे । चोरशब्द मुच्चार्येत्यर्थः ॥

चोरशब्द मुच्चार्येत्यर्थः ॥ कर्म उपपद हो तो आक्रोश गम्यमान होनेपर डुकृञ् धातु से खमुञ् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

स्वाँदुमि णमुँल् ॥ २६ ॥

स्वाद्वर्थेषु कृञोणमुल् स्यादेककर्तृकयोः पूर्वकाले पूर्वपदस्य मान्तत्वं निपात्यते। यथा–अस्वादुं स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते–स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। [illegible]ारम्। लवणङ्कारम्। सम्पन्नलवण शब्दौ स्वादुपर्यायौ। वासरूपेण क्त्वापि। स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते ॥

स्वादु अर्थ उपपद होंतो समान कर्तृक धात्वर्थों में से पूर्वकालिक धात्वर्थ में डुकृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

अन्यथैवंकथमित्थंसुसिद्धाप्रयोगश्चेत् २७

अ०मुँ, सि०गः, चेत्। एषूपपदेषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धः अप्रयोगोऽस्य एवं भूतश्चेत् कृञ्। व्यर्थत्वात् प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। यथा–अन्यथाकारम्। एवङ्कारम्। कथङ्कारम्। इत्थङ्कारंभुङ्क्ते। इत्थंभुङ्क्ते इत्यर्थः ॥

सिद्धाप्रयोग (अनिष्पत्ति) होतो अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम् इनके उपपद होनेपर डुकृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥ २८ ॥

यँ०योः, अँ०ने। असूयाप्रतिवचने गम्येऽनयोरुपपदयोः कृञो णमुल् स्यात्। यथा–यथाकारमहं भोक्ष्ये तथाकारं भोक्ष्ये किं तवाऽनेन। प्रष्टुमनर्हः सन्यदि पृच्छति तदेदमुत्तरम् ॥

सिद्धाप्रयोग होतो यथा और तथा के उपपद होनेपर असूया (निन्दा) प्रतिवचन के गम्यमान होने में डुकृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

कँर्मणि दृशिँविदोः साकँल्ये ॥ २९ ॥

सकलस्यभावः–साकल्यम्। तस्मिन् विशिष्टेऽर्थे कर्मण्युपपदे आ-

भ्यां णमुल् स्यात् । यथा—पुस्तकदर्शमधीते । यानि यानि पुस्तकानि पश्यति तानि तानि सर्वाण्यधीते इत्यर्थः । छात्रवेदं भोजयति । यं यं छात्रं जानाति, लभते, विचारयति वा तं सर्वं भोजयतीत्यर्थः ॥

कर्म उपपद होतो साकल्य (समूह) अर्थ में दशिर् और विद धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

यावति विन्दजीवोः ॥ ३० ॥

यावच्छब्द उपपदे विन्दते र्जीवतेश्च णमुल् स्यात् । यथा—यावद्वेदं भुङ्क्ते । यावल्लभते तावदित्यर्थः । यावज्जीवमधीते । यावज्जीवति तावदधीते इत्यर्थः ॥

यावत् शब्द उपपद होता विन्द और जीव धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३० ॥

चर्मोदरयोः पूरेः ॥ ३१ ॥

चर्मोदरयोः कर्मणोरुपपदयोः पूरयतेर्णमुल् स्यात् । यथा—चर्मपूरंस्तृणाति । चर्मपूरयित्वेत्यर्थः । उदरपूरं भुङ्क्ते । उदरंपूरयित्वेत्यर्थः ॥

चर्म (चमड़ा) और उदर (पेट) कर्म उपपद होता पूरी (ण्यन्त) धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ३२

व०ण. ऊलोपः, च, अ०म् । कर्मण्युपपदे पूरयते र्णमुल् स्यादूकारलोपश्च वा समुदायेन वर्षप्रमाणे गम्ये । यथा-गोष्पदपूरं वृष्टोमेघः । गोष्पदप्रंवृष्टोमेघः । गोः पादं पूरयन् वृष्टइत्यर्थः ॥

यदि समुदाय से वर्षा की इयत्ता (इतनी) गम्यमान होता पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय और पूरी के ऊकार का लोप विकल्प से हो ॥ ३२ ॥

चेले क्नोपेः ॥ ३३ ॥

चेलार्थेषु कर्मसूपपदेषु क्नोपेर्णमुल् स्याद्वर्षप्रमाणे गम्ये । यथा-चेलं* क्नोपं वृष्टोमेघः । वस्त्र क्नोपम् । वसनक्नोपम् ॥

जितनी वर्षा से कपड़े भीगसक्ते हैं उतनी वर्षा हुई ॥ वर्षप्रमाण गम्यमान हो तो चेलार्थक (वस्त्रवाच्य) कर्म उपपद होनेपर ण्यन्त क्नूयी धातु से णमुल् प्रत्यय हो

निमूलसमूलयोः कषः ॥ ३४ ॥

एतयोरुपपदयोः कषेर्णमुल् स्यात् । यथा-निमूलकाषं कषति । समूलकाषं कषति । निर्गतं मूल्यमस्य निमूलम् । सह मूलेन समूलम् । तथा कषतीत्यर्थः ॥

निमूल और समूल कर्म उपपद हों तो कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ॥ ३५ ॥

एषु कर्मसूपपदेषु पिषेर्णमुल् स्यात् । यथा-शुष्कपेषं पिनष्टि । शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः । चूर्णपेषं पिनष्टि । चूर्णं पिनष्टीत्यर्थः । रूक्षपेषं पिनष्टि । रूक्षं पिनष्टीत्यर्थः ॥

शुष्क, चूर्ण और रूक्ष कर्म उपपद हों तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

समूलाकृतजीवेषु हनकृञ्ग्रहः ॥ ३६ ॥

एषु कर्मसूपपदेषु हनादिभ्यः क्रमशो णमुल् स्यात् । यथा-समूलघातं न्यवधीदरींश्च । समूलान्निःशेषानरीन् शत्रून्निहतानित्यर्थः । अकृतकारं करोति । जीवग्राहं गृह्णाति । जीवतीति जीवः । इगुपधलक्षणः कः । जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः ॥

* यथा वर्षणे चेलानि शब्दायन्ते तथा वृष्ट इत्यर्थः । अन्ये तु क्नूयी शब्दे उन्दे च, उन्दी क्लेदने, क्लिदू आर्द्रीभावे, इत्येवं क्नोपमिति णमुलन्तस्य प्रकृत्यर्थं पर्यालोच्य यथा वर्षणेन चेलान्यार्द्री भवन्ति तावद् वृष्ट इति व्याचख्युः । इति त० बो० ॥

१-(७ । ३ । ५४) इति घत्वम् । (३ । १ । १०८) इति तत्वम् । (३ । ४ । ४३ ।) इत्यनुप्रयोगे । लुङिचेति बधादेशः । तस्याकारान्तत्वादुपदेशेऽनेकाच्त्वादिङ् निषेधोनोभवति. अतो लोपेकृते तस्य स्थानिवद् भावादतो हलादेरिति वा वृद्धिर्न ॥

समूल, अकृत और जीव कर्म उपपद हों तो हन कृञ् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

करणे हनः ॥ ३७ ॥

करण उपपदे हन्तेर्णमुल् स्यात् । यथा—पाद घातं हन्ति । पादेन हन्तीत्यर्थः ॥

करण उपपद हो तो हन धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

स्नेहने पिषः ॥ ३८ ॥

स्निह्यते येन तस्मिन् करणे पिषेर्णमुल् स्यात् । यथा—उदपेषं पिनष्टि । उदकेन पिनष्टीत्यर्थः ॥

स्नेह वाचक करण उपपद हो तो पिष्लृ धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३८ ॥

हस्ते वर्त्तिग्रहोः ॥ ३९ ॥

हस्तार्थे करणे उपपदे आभ्यां णमुल् स्यात् । यथा—हस्तवर्तं वर्तयति । कर वर्त्तम् । पाणिवर्तम् । हस्तेन गुलिकां करोत्यर्थः । हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहम् । पाणिग्रहम् । हस्तेन गृह्णातीत्यर्थः ॥

हस्तवाचक करण उपपद हो तो ण्यन्त वृतु और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो ३९

स्वे पुषः ॥ ४० ॥

स्व इत्यर्थग्रहणम् । स्ववाचिनि करणे उपपदे पुषेर्णमुल् स्यात् । यथा—स्वपोषं पुष्णाति । धनपोषम् । गोपोषम् । आत्मपोषम् । पितृपोषम् । आत्मीयज्ञाति धनवाचनस्वशब्दः ॥

१-गुल: गुडइव रसोऽस्त्यास्याः इति अर्श आदिभ्योऽच् ततश्चाप प्रत्ययस्थात्कादिति इत ॥

स्ववाचक करण उपपद हो तो पुष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४० ॥

अधिकरणे बन्धः ॥ ४१ ॥

अधिकरणवाचिन्युपपदे बध्नातेर्णमुल् स्यात् । यथा—चक्रबन्धं बध्नाति । चक्रे बध्नातीत्यर्थः ॥

अधिकरण उपपद हो तो बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

सञ्ज्ञायाम् ॥ ४२ ॥

सञ्ज्ञायां बध्नातेर्णमुल् स्यात् । यथा—क्रौञ्चबन्धं बद्धः । मयूरिका बन्धम् । अट्टालिकाबन्धम् । बन्धविशेषाणामिमाः सञ्ज्ञाः ॥

सञ्ज्ञाविषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४२ ॥

कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥ ४३ ॥

कर्त्रोः, जी० योः, नं० होः । कर्त्तृवाचिनोर्जीवपुरुषयोरुपपदयोर्यथासङ्ख्यं नशिवहिभ्यां णमुल् स्यात् । यथा—जीवनाशं नश्यति । जीवोनश्यतीत्यर्थः । पुरुषवाहं वहति । पुरुषः प्रेष्यो भूत्वा वहतीत्यर्थः ॥

कर्त्तृवाची जीव और पुरुष उपपद हो तो नश और वह धातु से णमुल् प्रत्यय हो॥

ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ॥ ४४ ॥

ऊर्ध्वशब्दे कर्त्तृवाचिन्युपपदे शुषिपूरिभ्यां णमुल् स्यात् । यथा—ऊर्ध्वसोषं शुष्यति । वृक्षादिरूर्ध्वं एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थः । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते । ऊर्ध्वमुख एव घटादिर्वर्षोदकादिना पूर्णो भवतीत्यर्थः ॥

कर्त्तृवाचक ऊर्ध्वशब्द उपपद हो तो शुष और पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो ४४

उपमाने कर्मणि च ॥ ४५ ॥

उपमाने कर्मणि कर्त्तरि चोपपदे धातोर्णमुल् स्यात् । यथा-घृतनिधायंनिहितं तत्कम् । घृतमिवसुरक्षितमित्यर्थः । अजकनाशं नष्टः । अजक इव नष्ट इत्यर्थः ॥

उपमानवाची कर्म और कर्त्ता उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥ ४६ ॥

कं० षु, यं० धि, अं० गः । निमूलसमूलयोरित्यारभ्य कषादयः यस्माण्णमुलुक्त स एवानुप्रयोक्तव्य इत्यर्थः तथैवोदाहृतम् ॥

कषादि (३ । ४ । ३४) सूत्रस्थ धातुओं से लेकर जिस धातु से णमुल् प्रत्यय हो वही धातु अनुप्रयोक्तव्य है ॥ ४६ ॥

उपदंशस्तृतीयायाम् ॥ ४७ ॥

उं० शः, तृं० म् । दंश दंशने । अस्माद्धातोरुपपूर्वात्तृतीयान्ते उपपदे णमुल् स्यात् । यथा-मूलकोपदंशं भुङ्क्ते मूलकेनोपदंशम् ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो उपपूर्वक दंश धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यहां से लेकर पूर्वकाल का सम्बन्ध है ॥ ४७ ॥

हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥ ४८ ॥

तृतीयान्ते उपपदेऽनुप्रयोग धातुनासमानकर्मकाद्धिंसार्थात् णमुल् स्यात् । यथा-दण्डोपघातं गाः कलयति । दण्डेनोपघातम् । दण्डताडम् । दण्डेनताडम् ॥

दण्डे से पीटकर गौओं को गिनता है ॥ तृतीयान्त उपपदहो तो अनुप्रयोग धातु के साथ समान कर्मवाले हिंसार्थक धातुओं से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

१-(२ । २ । २१) वेति समासः ॥

सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥ ४९ ॥

सं० म्, च, उं० प: । उपपूर्वेभ्यः पीडादिभ्यः सप्तम्यन्ते तृतीयान्ते चोपपदे णमुल् । यथा--पार्श्वोपपीडंशेते । पार्श्वयोरुपपीडम् । पार्श्वाभ्यामुपपीडम् । व्रजोपरोधं गाः स्थापयति । व्रजेन व्रजे वा उपरोधम् । पाण्युपकर्षंधानाः संगृह्णाति पाणावुपकर्षम् । पाणिनोपकर्षम् ॥

पसुलिओं को दबाकर सोता है । गोवाड़ में रोकर गौओं को ठहराता है । हाथ से मीजकर धानों (भुनेहुए जव) का संग्रह करताहै॥सप्तम्यन्त तथा तृतीयान्त उपपद हों तो उपपूर्वक पीड, रुध और कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

समासत्तौ ॥ ५० ॥

सन्निकर्षे गम्ये तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--केशग्राहं युध्यन्ते । केशेषु ग्राहम् । केशैर्ग्राहम् ॥

बालों को पकड़कर लड़ते हैं ॥ तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त उपपद होतो समासत्ति (सान्निकटता) गम्यमान होनेपर धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

प्रमाणे च ॥ ५१ ॥

प्रमाणमायामः । प्रमाणे गम्ये तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--द्व्यङ्गुलोत्कर्षं[1] खण्डिकां छिनत्ति । द्व्यङ्गुलेन द्व्यङ्गुलेवोत्कर्षम् ॥

तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त उपपद होतो प्रमाण के गम्यमान होनेपरभी धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

१- द्वयोरङ्गुल्योः समाहारो द्व्यङ्गुलम् । तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः इत्यत्र समासान्तः । द्व्यङ्गुलेनोत्कृष्य परिच्छिद्येत्यर्थः. खन्तः खण्डः खण्डिका॥

अपादाने परीप्सायाम् ॥ ५२ ॥

परीप्सा त्वरा । अपादाने उपपदे परीप्सागम्यमानायां धातोर्णमुल् स्यात् । यथा-शय्योत्थायं[1] धावति ॥

खाट से उठा और दौड़ा ॥ अपादान उपपद होतो परीप्सा गम्यमान होनेपर धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५२ ॥

द्वितीयायां च ॥ ५३ ॥

द्वितीयान्त उपपदे परीप्सा गम्यमानायां धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--यष्टिग्राहं[2] युध्यन्ते । लोष्टग्राहम् ॥

द्वितीयान्त उपपद हो तो परीप्सा गम्यमान होने पर धातु से णमुल् प्रत्ययहो ५३

स्वाङ्गेऽध्रुवे ॥ ५४ ॥

अध्रुवे स्वाङ्ग्वाचिनि द्वितीयान्त उपपदे धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--अक्षिनिकाणं जल्पति ॥

आंख निकालकर कहता है ॥ स्वाङ्गवाची अध्रुव (अस्थिर) द्वितीयान्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्ययहो ॥ ५४ ॥

परिक्लिश्यमाने च ॥ ५५ ॥

परिक्लिश्यमाने स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्त उपपदे धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते ॥

छाती से रिगड़ कर लड़ते हैं ॥ परिक्लिश्यमान (सर्व प्रकार से पीड़ा विशेष) स्वाङ्ग वाचक द्वितीयान्त उपपदहो तो धातु से णमुल् प्रत्ययहो ॥ ५५ ॥

१--उद: स्थास्तम्भोरिति तिष्ठति सकारस्यतत्वम् शय्यायाउत्थाय ॥ २-एवं खलु युद्धाय त्वरन्ते यदासन्नं यष्ट्यादिकं भवति तदेव गृहीत्वा धावन्ति नायुधं प्रतीक्षन्तइत्यर्थः ॥

विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ ५६ ॥

द्वितीयान्ते उपपदे विशयादिभ्यो णमुल् स्याद् व्याप्यमाने आसेव्यमानेचाऽर्थे गम्ये। यथा—गेहानुप्रवेशप्रवेशमास्ते। गेहंगेहमनुप्रवेशम्। गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशम्। एवं गेहानुप्रपातम्। गेहानुप्रपादम्। गेहानुस्कन्दम् ॥

द्वितीयान्त उपपद हो तो व्याप्यमान और आसेव्यमान के गम्यमान होनेपर विश पत्लृ पद और स्कन्दिर् धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु॥५७॥

क्रियामन्तरयति—क्रियान्तरः। तस्मिन् धात्वर्थे वर्त्तमानादस्यतेस्तृष्यतेश्च कालवाचिषु द्वितीयान्तेषूपदेषु णमुल् स्यात्। यथा—द्व्यहात्यासं गाः पाययति। द्व्यहमत्यासम्। द्व्यहतर्षम्। द्व्यहंतर्षम्। अत्यसनेन तर्षणेन च गवां पानक्रिया व्यवधीयते। अद्य पाययित्वा द्व्यहमतिक्रम्य पुनः पाययतीत्यर्थः ॥

कालवाची द्वितीयान्त उपपद हों तो क्रियान्तर धात्वर्थ में वर्त्तमान अस्यति (असु) और ञितृष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५७ ॥

नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥ ५८ ॥

नाम्नि,आ दि॰होः। नामशब्दे द्वितीयान्ते उपपदे आदिशेर्ग्रहेश्च णमुल् स्यात्। यथा—नामदेशमाचष्टे। नामग्राहमाह्वयति ॥

नाम लेकर पुकारता है॥ द्वितीयान्त नामशब्द उपपद हो तो आङ् पूर्वक दशिर् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ ॥ ५९ ॥

अयथाभिप्रेताख्यानं नाम अप्रियस्योच्चैः प्रियस्य नीचैः कथनम्। अयथाभिप्रेताख्याने गम्ये अव्यय उपपदे करोतेः क्त्वा णमुलौ स्याताम्। यथा—उच्चैः कृत्य। उच्चैः कृत्वा। उच्चैः कारमप्रियमाचष्टे। नीचैःकृत्य। नीचैः कृत्वा। नीचैः कारं प्रियं ब्रूते ॥

चिल्लाकर बोलता है। मीठे स्वर से धीरे बोलता है ॥ अव्यय उपपद हो तो अयथाभिप्रेताख्यान गम्यमान होनेपर डुकृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ५९

तिर्यच्यपवर्गे ॥ ६० ॥

तिर्यचि, अ० गें। समाप्तौ गम्यमानायां तिर्यक् शब्दे उपपदे कृञः क्त्वाणमुलौ स्याताम्। यथा-तिर्यक्कृत्य तिर्यक्कृत्वा गतः। तिर्यक्कारं समाप्य गत इत्यर्थः ॥

अपवर्ग (समाप्ति) गम्यमान हो तो तिर्यक् शब्दके उपपद होनेपर डुकृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्ययहो ॥ ६० ॥

स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ॥ ६१ ।

तस्प्रत्यये स्वाङ्गवाचिन्युपपदे करोतेर्भवतेश्च धातोः क्त्वा णमुलौ स्याताम्। यथा--मुखतः कृत्य गतः। मुखतः कृत्वा। मुखतः कारम्। मुखतो भूय। मुखतो भूत्वा। मुखतो भावम् ॥

मुख में करके गया। मुखमें होकर ॥ तस् प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाची उपपद हो तो डुकृञ् और भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ॥ ६२ ॥

नाधार्थ प्रत्ययान्ते च्व्यर्थ विषये उपपदे कृभ्वो क्त्वा णमुलौ स्याताम् । यथा--अनाना नाना कृत्वा । नाना कृत्य । नाना कृत्वा । नानाकारम् । विनाकृत्य । विनाकृत्वा । विनाकारम् । नानाभूय । नानाभूत्वा । नानाभावम् । अनेकं द्रव्यमेकं भूत्वा । एकधा भूय । एकधा भूत्वा । एकधा भावम् । एकधा कृत्य । एकधा कृत्वा । एकधाकारम् ॥

नार्थ और धार्थ प्रत्ययान्त उपपद हों तो च्व्यर्थ में डुकृञ् और भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों ॥ ६२ ॥

तूष्णीमि भुवः ॥ ६३ ॥

तूष्णींशब्दे उपपदे भुवः क्त्वाणमुलौ स्याताम् । यथा—तूष्णींभूय । तूष्णींभूत्वा । तूष्णीं भावम् ॥

चुप होहोकर ॥ तूष्णीम् शब्द उपपद हो तो भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

अन्वच्यानुलोम्ये ॥ ६४ ॥

अन्वचि, आं० म्ये । आनुकूल्ये गम्ये अन्वक् शब्दे उपपदे भुवः क्त्वाणमुलौ स्याताम् । यथा—अन्वग् भूय आस्ते । अन्वग् भूत्वा । अन्वग् भावम् । अग्रतः, पार्श्वतः, पृष्ठतो वाऽनुकूलो भूत्वा आस्ते इत्यर्थः ॥

अन्वक् शब्द उपपद हो तो आनुलोम्य (आनुकूल्य) अर्थ में भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ॥ ६४ ॥

शक धृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ॥ ६५ ॥

एषूपपदेषु धातोस्तुमुन् स्यात् । यथा—शक्नोति भोक्तुम् । धृष्णोति भोक्तुम् । जानाति भोक्तुम् । ग्लायतिभोक्तुम् । घटते भोक्तुम् । (अर्हतीतियोग्यता) । आरभते भोक्तुम् । लभते भोक्तुम् । प्रक्रमते भोक्तुम् । सहते भोक्तुम् । अर्हति भोक्तुम् । अस्त्यर्थेषु-आस्ति भोक्तुम् । भोजमस्तीत्यर्थः । भवति भोक्तुम् । विद्यते भोक्तुम् ॥

शक, ञिधृषा, ज्ञा, ग्लै, घट, रभ, लभ, क्रम, सह, अर्ह और अस्त्यर्थ (अस, भू, विद) धातु उपपद हों तो तुमुन प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥ ६६ ॥

पँ० षु, अँ० षु । पर्याप्तिः-पूर्णता । तद्वाचिषु सामर्थ्यवचने षूपपदेषु तुमुन् स्यात् । यथा—पर्याप्तो भोक्तुम् । भोक्तुंसमर्थइत्यर्थः । प्रवीणः कुशलः पटुरित्यादि ॥

पर्याप्ति (सामर्थ्य) वाचक अलमर्थ शब्द उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो

कर्त्तरि कृत् ॥ ६७ ॥

कृत् सञ्ज्ञकाः कर्त्तरि कारके स्युः । यथा—कारकः । कर्त्ता । नन्दनः । ग्राही । पचः ॥

कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ताकारक में हों ॥ ६७ ॥

भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्यां वा ॥ ६८ ॥

इमे कृत्यान्ताः कर्त्तरिवा निपात्यन्ते । पक्षे तयोरेवेति सकर्मकात् कर्मणि । अकर्मकात्तु भावेज्ञेयाः । यथा—भवतीति—भव्यः । भव्य-मनेनवा । गायतीति—गेयः—साम्नामयम् । गेयं सामानेनेति वा । प्रव-

चनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य । प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्याय इतिवा । उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरोः । उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः । जायतेऽसौजन्यः । जन्यमनेनेति वा । आप्लवतेऽसा वाप्लाव्यः । आप्लाव्यमनेनेति वा । आपतत्यसावापात्यः । आपत्यमनेनेतिवा ॥

भव्यआदि शब्द कर्त्ताकारक में विकल्प से निपातित हैं ॥ ६८ ॥

लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः ॥ ६९ ॥

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्त्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्त्तरि च । यथा—पठ्यते पाठश्चैत्रेण । पठति पाठंचैत्रः । अकर्मकेभ्यः । आस्यते मैत्रेण । आस्ते मैत्रः ॥

चैत्र पाठको पढ़ता है । मैत्र बैठता है ॥ लकार सकर्म धातुओं से कर्म औरकर्त्ता में हों और अकर्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता में हों ॥ ६९ ॥

तयोरेवकृत्यक्तखलर्थाः ॥ ७० ॥

तयोः, एव, कृ०र्थाः । तयोरेव भावकर्मणोः कृत्यसञ्ज्ञकाः क्तखलर्थाश्च प्रत्ययाः स्युः । यथा—कर्मणिकर्त्तव्यो होमोभवता । भावे । शयितव्यं त्वयाशीघ्रम् । आशितव्यं नगन्तव्यम् । कर्मणि क्तः । कृतोहोमस्तेन । मया मोदका नभुक्ताः । भावे । आशितं भवता । शयितं भवता । कर्मणि खलर्थाः । ईषत्करः कटस्त्वया । सुकरः । दुष्करः । भावे । ईषदाढ्यंभवंमया ॥

आप को होमकरना चाहिये । तुझेजल्दी सोना चाहिये । बैठो जाओन । उसने हवन किया । मैंने लड्डू नहीं खाये । आप बैठे । आप सोये ॥ कृत्य संज्ञक तथा क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही हों ॥ ७० ॥

आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ॥ ७१ ॥

आदिकर्मणि यः क्तः स कर्त्तरि स्यात् चाद्भावकर्मणोः । यथा-प्रकृतो घटं कुलालः । भवे-प्रकृतं चैत्रेण । कर्मणि-प्रकृतो घटः कुलालेन । प्रभुक्तो मोदकान् मैत्रः । प्रभुक्तं मैत्रेण । प्रभुक्तामोदकामैत्रेण ॥

कुम्हारने घड़ा बनाना आरम्भ किया । मैत्रने लड्डूखाये ॥ आदिकर्म में जो विहित क्त वह कर्त्ता तथा भाव और कर्म में हो ॥ ७१ ॥

गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजन रुहजीर्यतिभ्यश्च ॥ ७२ ॥

ग०भ्यः, च । एभ्यो धातुभ्यः कर्त्तरि क्तः स्यात् भावकर्मणोश्च । यथा--गतोमैत्रोग्रामम् । गतं मैत्रेण । गतो मैत्रेण ग्रामः । अकर्मकात् । ग्लानःसः । ग्लानं तेन । उपश्लिष्टो गुरुमसौ । उपश्लिष्टोगुरुमुना । उपशयितो गुरुंभवान् । उपशायितं भवता । उपशायितोगुर्भवता । उपस्थितो गुरुंभवान् । उपस्थितं भवता । उपस्थितो गुरुर्भवता । उपासितं भवता । उपासितोगुरुर्भवता । अनूषितो गुरुंभवान् । अनूषितम् । अनूषितो गुरुर्भवता । अनुजातो माणवको माणविकाम् । अनुजातं माणवकेन । अनुजाता माणवकेन माणविका । आरूढोऽश्वं भवान् । आरूढं भवता । आरूढोऽश्वो भवता । अनुजीर्णो वृषलीं वृषलः । अनुजीर्णं वृषलेन । अनुजीर्णा वृषली वृषलेन ॥

मैत्र गांवको गया । उसने ग्लानि (नफरत) की । वह गुरु से मिला । गुरुके निकट सोया । गुरुके समीप स्थित रहा । आप गुरुके पास बैठा । आप गुरुके पास रहा । लड़कीके पश्चात् लड़का हुआ । आप घोड़ेपर चढ़ा । पापिनी के पीछे पापी दुबला है ॥ गत्यर्थक अकर्मक, श्लिष, शीङ्, स्था, आस्, वस्, जन, रुह, और जीर्यति (जॄष) धातु से कर्त्ता भाव और कर्म में क्त प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने ॥ ७३ ॥

इमे सम्प्रदाने कारके निपात्येते । यथा—दशन्ति तस्मै-दाशः । गां हन्ति तस्मै-गोघ्नोऽतिथिः ॥

सम्प्रदान कारक में दाशृ धातु से अच् प्रत्ययान्त दाश तथा गो + हन धातु से टक् प्रत्ययान्त गोघ्न निपातित है ॥ ७३ ॥

भीमादयोऽपादाने ॥ ७४ ॥

भी० यः, अ० ने । भीमादयः शब्दा अपादाने कारके निपात्यन्ते । यथा—भीमः । भीष्मः । प्रस्कन्दनः । भयानकः । मूर्खः । खलतिः । समुद्रः । स्रुचः ॥

अपादान कारक में मक् (उणादि) प्रत्ययान्त भीमादि शब्द निपातित हैं ७४

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ ७५ ॥

ताभ्याम्, अन्यत्र, उ० यः । उणादयः शब्दा स्ताभ्यामपादान सम्प्रदानाभ्या मन्यत्र कारके स्युः । यथा—कृपितोऽसौ कृषिः । तन्यत इति तन्तुः । वृत्तमितिवर्त्म । चरितं चर्म ॥

खेती । सूत । रास्ता । चमड़ा ॥ सम्प्रदान और अपादान से भिन्न कारकों में उणादि प्रत्यय हों ॥ ७५ ॥

क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्य गति प्रत्यवसानार्थेभ्यः ॥ ७६ ॥

क्तः, अ० णे, च, ध्रौ० भ्यः । एभ्योऽधिकरणे क्तः स्यात् । चाद्यथा प्राप्तम् । यथा—ध्रौव्यार्थेभ्यः, आसितो मैत्रः । आसितं तेन । इदमेषामासितम् । गत्यर्थेभ्यः—यातो मैत्रोग्रामम् । यातोमैत्रेणग्रामः ।

१ गोघ्न इति, । अत्र दानपूर्वके हनने हन्तिर्वर्तते । अर्घार्ह इति, । अर्घोमधुपर्क तदङ्गत्वेन गोहननं विहितम् । एतावद् गोरालम्भनस्थानमतिथिः पितरो विवाहश्चेति । इति द० बो० ॥

यातं मैत्रेण । इदमेषां यातम् प्रत्यवसानार्थेभ्यः । भुक्तो मोदको मैत्रः । भुक्तो मोदको मैत्रेण ।भुक्तंमैत्रेण । इदमेषां भुक्तम् ॥

ध्रौव्य (अकर्म) गत्यर्थक और प्रत्यवसानार्थ (भोजनार्थ) धातुओं से आधिकरण कारक में क्त प्रत्यय हो और चकार से यथा प्राप्त हो ॥ ७६ ॥

लस्य ॥ ७७ ॥

अधिकारोऽयम् । लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् ॥

यहां से लेकर इसपाद की समाप्तितक लकारोंको कार्यविधान कियाजावेगा ॥ ७७ ॥

तिप् तस् झि सिप् थस् थ मिप् वस् मस् ता तां झ थासाथां ध्व मिड् वहि महिङ् ॥ ७८ ॥

इमेऽष्टादशलादेशाः स्युः । यथा-भजति, भजतः, भजन्ति । भजसि, भजथः, भजथ । भजामि, भजावः, भजामः । भजते, भजेते, भजन्ते । भजसे, भजेथे, भजध्वे । भजे, भजावहे, भजामहे ॥

सेवा करता है ॥ लकार के स्थान में तिप् आदि १८ प्रत्यय आदेश हों ॥ ७८ ॥

टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ ७६ ॥

टितः, आ॑०म् , टेः, ए । टितोलस्यात्मने पदानां टे रेत्वं स्यात् । यथा--एधते ॥

टित् (ट जिसका इत् गयाहो) लकारों के आत्मनेपद प्रत्ययों के टि भाग को एकारादेश हो ॥ ७९ ॥

थासः से ॥ ८० ॥

टितोलस्य थासः स्थाने से स्यात् । यथा–एधसे । पक्तासे । पच्यसे ॥

टित लकारों के थास् प्रत्यय को से आदेश हो ॥ ८० ॥

लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥ ८१ ॥

लिटः, तझयोः, ए० चू । लिडादेशयोस्तझयोर्यथासङ्ख्यमेश् इरेच् इतीमावादेशौ स्याताम् । यथा–असौ न लेभे भवदीय कीर्त्तिम् । ते लेभिरे चोत्तम वेदबोधम् ॥

उसने आपकी कीर्त्ति प्राप्त नहीं की । उन्हों ने सर्वोत्तमवेद के ज्ञान को प्राप्त किया ॥ लिट् लकार के त और झ को क्रमशः एश् और इरेच् आदेश हो ॥ ८१ ॥

परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ॥ ८२ ॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयो नवक्रमादादेशाः स्युः । यथा–पपाच । पेचतुः । पेचुः । पेचिथ, पपक्थ । पेचथुः । पेच । पपाच, पपच । पेचिव । पेचिम ॥

उसने पकाया ॥ परस्मैपद संज्ञक तिप् आदि नव प्रत्ययों के स्थान में यथाक्रम णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म, ये नव प्रत्यय आदेश हों ॥ ८२ ॥

विदो लटो वा ॥ ८३ ॥

विदः, लटः, वा । वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः । यथा–वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्व । विद्म । पक्षे । वेत्ति । वित्तः । विदन्ति । वेत्सि । वित्थः । वित्थ । वेद्मि । विद्वः । विद्मः ॥

वह जानता है ॥ विद् धातुके लट् लकार सम्बन्धी परस्मैपद प्रत्ययओं को णलादि नव आदेश विकल्प से हों ॥ ८३ ॥

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥ ८४ ॥

ब्रुवः, प० मू, आदितः, आहः, ब्रुवः । ब्रुवो लटः परस्मैपदानामादितः पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युः । ब्रुवश्चाहादेशः । यथा–आह । आहतुः । आहुः । आत्थ । आहथुः । पक्षे । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रवीषि । ब्रूथः ॥

वह बोलता है ॥ ब्रूञ् धातु के लट् लकार सम्बन्धी परस्मैपद के लिए आदि पांच वचनों को क्रमसे णल् आदि पांच आदेश विकल्प से और ब्रू धातु को आह आदेश हो ॥ ८४ ॥

लोटो लङ्वत् ॥ ८५ ॥

लोटः, लङ्वत् । लोटो लङ्वत् कार्यं स्यात् । तामादयः सलोपश्च । यथा–पचताम् । पचतम् । पचत । पचाव । पचाम ॥

लोटलकार को लङ् के सदृश कार्य हो ॥ ८५ ॥

एरुः ॥ ८६ ॥

एः, उः । लोडादेशस्येकारस्योकारादेशः स्यात् । यथा–पठतु । पठन्तु ॥

वह पढ़े । वे दोनों पढ़ें ॥ लोट् लकार के स्थान में जो इकारादेश उसको उकारादेश हो ॥ ८६ ॥

सेर्ह्यपिच्च ॥ ८७ ॥

१-(८ । २ । ३५) इति चर्त्वम् ॥

सेः[६], हि[१], अपित्[१], च[अ]। लोटः सेर्हिस्यादसावपिच्च । यथा-लुनीहि[१] । पुनीहि ॥

काट । पवित्रकर ॥ लोट् की सि को अपित् (प जिसका इत् न गया हो) हि आदेश हो ॥ ८७ ॥

वाच्छन्दसि ॥ ८८ ॥

वा[अ], छं० सि । छन्दसि विषये वाऽपित्वं लोटो हि स्यात् । यथा-जुहोधि[२] । जुहुधि ॥

यज्ञ कर ॥ छन्दोविषय में लोट्लकार की सि को विकल्प से अपित् हि आदेश हो ॥

मेर्निः ॥ ८९ ॥

मेः[६], निः । लोडादेशस्य मेर्निः स्यात् । यथा-गच्छानि । पठानि ॥

जाऊं । पढूं । लोट्लकार के स्थान में जो मि आदेश उसको नि हो ॥ ८९ ॥

आमेतः ॥ ९० ॥

आम्, एतः[६] । लोट एकारस्य आमादेशः स्यात् । यथा-एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ॥

वह बढ़े । वे दोनों बढ़ें । वे बढ़ें ॥ लोट् लकार सम्बन्धी एकार को आम् आदेश हो ॥ ९० ॥

सवाभ्यां वामौ ॥ ९१ ॥

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् वा, अम् इमावादेशौ स्याताम् । यथा-एधस्व । एधध्वम् ॥

१-(६ । ४ । ११३) इतीत्वम् ॥ २-(२ । ४ । ७६) इति शपः श्लौ द्विर्वचनम् । (६ । ४ । १०१) इति हेर्धिः ॥

तू बढ़ । तुम बढ़ो । सकार और वकार से परे लोट्लकार सम्बन्धी ए को व और अम् आदेश हो ॥ ९१ ॥

आडुत्तमस्य पिच्च ॥ ९२ ॥

आट्, उत्तमस्य, पित्, च । लोडुत्तमस्याडागमः स्यादसावपिच्च। यथा—करवाणि । करवाव । करवाम । करवै । करवावहै। करवामहै ॥

मैं करूं । हम दोनों करें । हम करें ॥ लोट्लकार सम्बन्धी उत्तमपुरुषको आट् का आगम हो और वह अपित् हो ॥ ९२ ॥

एत ऐ ॥ ९३ ॥

एतः, ऐ । लोडुत्तमस्य पुरुषस्य एत ऐ स्यात् । यथा—एधै । एधावहै । एधामहै ॥

मैं बढूं । हम दोनों बढ़ें । हम बढ़ें ॥ लोट्लकार के उत्तमपुरुष सम्बन्धी एकार को ऐकारादेश हो ॥ ९३ ॥

लेटोऽडाटौ ॥ ९४ ॥

लेटः, अडाटौ । लेटः अट् आट् इमावागमौ स्यातामम्चपितौ । यथा—भाविपति । भाविपाति ॥

वह होवे ॥ लेट्लकार को अट् और आट् का पर्याय से आगम हो और पित् हो

आत ऐ ॥ ९५ ॥

आतः, ऐ । लेट् आकारस्य ऐ स्यात् । यथा—एधिषैते २ । एधैते २ ॥

वे दोनों बढ़ें ॥ लेट्लकार सम्बन्धी आकार को ऐकारादेश हो ॥ ९५ ॥

वैतोऽन्यत्र ॥ ९६ ॥

वा, एतः, अन्यत्र । लेट् लकारस्य ऐ वा स्यात् , आत ऐ इति

विषयं विहाय । यथा—एधिषतै । एधिषातै । एधिषते । एधिषाते । एधतै । एधातै । एधते । एधाते ॥

"आतऐ" इस सूत्र के विषय को छोड़कर अन्यत्र(दूसरे स्थानपर)लेट्सम्बन्धी ए को विकल्प से ऐ आदेश हो ॥ ९६ ॥

इतश्च लोपःपरस्मैपदेषु ॥ ९७ ॥

इतः, च, लोपः, प०बु । लेट् सम्बन्धिन इकारस्य परस्मैपद विषयस्य लोपोवा स्यात् । यथा—भाविषत् । भाविषात् । भविषत् । भविषात् । भवत् । भवात् । (झलां जशोन्त इतिदः ।) भाविषद् । भाविषाद् । भविषद् । भविषाद् । भवद् । भवाद् । पक्षे । भाविषति । भाविषाति । भविषति । भविषाति । भवति । भवाति ॥

वहहो ॥ लेट्लकार सम्बन्धी परस्मैपद विषयक इकारका विकल्पसे लोपहो ॥९७॥

सउत्तमस्य ॥ ९८ ॥

सः, उ०स्य।लोडुत्तम पुरुषस्य सस्य लोपोवा स्यात्।यथा—भाविषाव २। भाविषावः २ । भविषाव २ । भविषावः २ । भवाव २ । भवावः २ । भाविषाम २ । भाविषामः २ । भविषाम २ । भविषामः २ । भवाम २ । भवामः २ ॥

लेट्लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प से लोप हो ॥ ९८ ॥

नित्यं ङितः ॥ ९९ ॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमपुरुषस्य नित्यं लोपः स्यात् । यथा—अपचाव । अपचाम ॥

हम ने पकाया । हम दोनों ने पकाया ॥ ङित् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का नित्य लोप हो ॥ ९९ ॥

इतश्च ॥ १०० ॥

इतः, च । ङिल्लकार सम्बन्धिन इकारस्य नित्यं लोपः स्यात् । यथा—अपठत् । अपाठीत् ॥

उस ने पढ़ा । ङित् लकार सम्बन्धी परस्मैपदीय इकारका नित्यलोप हो ॥ १०० ॥

तस्थस्थमिपां तान्तंतामः ॥ १०१ ॥

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमादादेशास्स्युः । यथा—भवताम् । भवतम् । भवत । अभवम् । लोटोलङ्वत्कार्यंज्ञेयम् ॥

ङित् लकारों के तस्, थस्, थ और मिप् को क्रमशः ताम्, तम्, त और अम् आदेश हों ॥ १०१ ॥

लिङः सीयुट् ॥ १०२ ॥

लिङात्मने पदस्य सीयुडागमः स्यात् । यथा—एधेत । एधेयाताम् । एधेरन् ॥

आत्मनेपदीय लिङादेशों को सीयुट् का आगम हो ॥ १०२ ॥

यासुट्परस्मैपदेषूदात्तोङिच्च ॥ १०३ ॥

यासुट्, प० षु, उ० त्तः, ङित्, च । परस्मैपदानां लिङो यासुडागमः स्यात्, सचोदात्तोङिच्च । यथा—कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः ॥

वह करे । वे दोनों करें । वे करें ॥ परस्मैपद विषयक लिङ्लकार को ङित् और उदात्त यासुट् का आगम हो ॥ १०३ ॥

किदाशिषि ॥ १०४ ॥

कित्, आशिषि। आशिषि लिङो यासुडागमः किच्च स्यात्। यथा—सविद्वान् भूयात्। भूयास्ताम्। भूयासुः। भूयाः। भूयस्तम्। भूयास्त। भूयासम्। भूयास्व। भूयास्म॥

ईश्वर करे वह विद्वान होवे॥ परस्मैपद विषयक आशिष् लिङ् में यासुट् का आगम हो और वह कित् समझा जावे॥ १०४॥

झस्य रन् ॥ १०५ ॥

लिङो झस्य रनादेशः स्यात्। यथा—यजेरन्। पचेरन्॥

वे यज्ञ करें। वे पकावें॥ लिङ् सम्बन्धी झकार को रन् आदेश हो॥ १०५॥

इटोत् ॥ १०६ ॥

इटः, अत्। लिङादेशस्येटोऽत् स्यात्। यथा—अधीयीय॥

मैं पढूं॥ लिङादेश इट् को अत् (अ) आदेश हो॥ १०६॥

सुट् तिथोः ॥ १०७ ॥

लिङस्तकारथकारयोः सुडागमः स्यात्। यथा—कृषीष्ट। कृषीयास्ताम्। कृषीरन्। कृषीष्ठाः। कृषीयास्थाम्॥

वह जोते॥ लिङ् लकार सम्बन्धी तकार और थकार को सुट् का आगम हो॥ १०७॥

झेर्जुस् ॥ १०८ ॥

झेः, जुस्। लिङादेशस्य झेर्जुसादेशः स्यात्। यथा—यजेयुः॥

वे यजन करें॥ लिङादेश (लिङ् लकार के स्थान में जो हुआ आदेश) झिको जुस् आदेश हो १०८॥

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ॥ १०९ ॥

सि०भ्यः, च । सिचोऽभ्यस्ताद् विदेश्च परस्य ङित् सम्बन्धिनो झेर्जुसादेशः स्यात् । यथा-(सिचः) अकार्षुः । अहार्षुः । अभ्यस्तात् । अबिभयुः । अजागरुः । विदेः । अविदुः ॥

उन्हों ने किया । उन्हों ने हरलिया । वेडरे । वे जागे । उन्हों ने जाना ॥ सिच् अभ्यस्त संज्ञक और विद् धातु से परे झि को जुस् आदेश हो ॥ १०९ ॥

आतः ॥ ११० ॥

सिच आकारान्ताच्च परस्य झेर्जुसादेशः स्यात् । यथा-अस्थुः । अदुः ॥

वे ठहरे ॥ उन्हों ने दिया ॥ जिससे परे सिच् प्रत्यय का लुक् हुआ हो तो ऐसे आकारान्त धातु से परे जो झि उसको जुस् आदेश हो ॥ ११० ॥

लङः शाकटायनस्यैव ॥ १११ ॥

लङः, शा०स्य, एव । आकारान्तादुत्तरस्य लङादेशस्य झेर्जुसादेशो वा स्यात् । यथा-अयुः । अयान् ॥

वे प्राप्त हुये ॥ आकारान्त धातु से परे लङादेश झि को शाकटायनके मत में जुस् आदेश हो ॥ १११ ॥

द्विषश्च ॥ ११२ ॥

द्विषः, च । द्विषः परस्य लङादेशस्य झेर्जुसादेशो वा स्यात् । यथा--अद्विषुः । अद्विषन् ॥

उन्हों ने वैरकिया ॥ द्विष् धातु से परे लङादेश झि को शाकटायन के मत में ही जुस् आदेश हो ॥ ११२ ॥

तिङ्शित् सार्वधातुकम् ॥ ११३ ॥

तिङः शितश्च प्रत्ययाः सार्वधातुक सञ्ज्ञकाः स्युः। यथा--नयति। स्वपिति। रोदिति। पचमानः। यजमानः॥

लेजाता है। सोताहै। रोता है। पकाताहुआ। यजन करता हुआ॥ तिङ् और शित् प्रत्यय सार्वधातुक संज्ञक हों॥ ११३॥

आर्द्धधातुकं शेषः॥ ११४॥

तिङः शितश्च विहायान्यः प्रत्यय आर्द्धधातुकसञ्ज्ञकःस्यात्। यथा-लविता। लवितुम्। लवितव्यम्॥

धातु से विहित तिङ् और शित से भिन्न प्रत्यय आर्द्धधातुकसंज्ञक हो ११४

लिट् च॥ ११५॥

लिडादेशास्तिङार्द्धधातुकसञ्ज्ञः स्यात्। यथा-पेचिथ॥

तूने पकाया था॥ लिट् के स्थान में हुये तिङादेश आर्द्धधातुकसंज्ञक हों ११५

लिङाशिषि॥ ११६॥

लिङ्, आशिषि। आशिषिविषये यो लिङ् स आर्द्धधातुकसंज्ञकः स्यात्। यथा-पविषीष्ट॥

ईश्वर! वह पवित्र करे॥ आशीर्विषय में लिङ् आर्द्धधातुकसंज्ञक हो॥११६॥

छन्दस्युभयथा॥ ११७॥

छन्दसि, उ० था। छन्दसिविषये उभयथा स्यात्। सार्वधातुक-मार्धधातुकं च। यथा-वर्धन्तु। वर्धयन्तु। आर्द्धधातुकत्वाण्णिलोपः॥

बढ़ावें॥ छन्दोविषय में उभयथा कार्य हो॥ ११७॥

इति तृतीयाऽध्यायस्य चतुर्थपादः समाप्तः॥

अथ चतुर्थाध्यायारम्भः ॥

प्रथमः पादः ॥

ङ्याप् प्रातिपदिकात् ॥ १ ॥

ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्चेत्यापञ्चमाध्याय परि समाप्तेरधिकारः॥
ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से पञ्चमाध्याय की समाप्ति पर्यन्त स्वादि प्रत्यय विधान कियेजाते हैं, यह अधिकार जानना चाहिये ॥ १ ॥

स्वौजस् मौट् छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसि भ्याम्भ्यस् ङसोसाम् ङ्योस्सुप् ॥ २ ॥

ङ्यन्तादाबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः। ङ्यन्तात्। यथा—कुमारी। कुमार्य्यौ। कुमार्य्यः १ कुमारीम्। कुमार्य्यौ। कुमारीः २ कुमार्य्या। कुमारीभ्याम्। कुमारीभिः ३ कुमार्य्यै। कुमारीभ्याम्। कुमारीभ्यः ४ कुमार्याः। कुमारीभ्याम्। कुमारीभ्यः ५ कुमार्य्याः। कुमार्य्योः। कुमारीणाम् ६ कुमार्य्याम्। कुमार्योः। कुमारीषु ७ हे कुमारि!। हे कुमार्य्यौ!। हे कुमार्य्यः!। आपः। यशोदा। यशोदे। यशोदाः १ यशोदाम्। यशोदे। यशोदाः २ यशोदया। यशोदाभ्याम्। यशोदाभिः ३ यशोदायै। यशोदाभ्याम्। यशोदाभ्यः ४ यशोदायाः। यशोदाभ्याम्। यशोदाभ्यः ५

१-(६।१।६८) इति सुलोपः ॥ २-(७।३।१०७) इति ह्रस्वत्वम ॥

यशोदायाः । यशोदयोः । यशोदानाम् ६ यशोदायाम् । यशोदयोः । यशोदासु ७ हे यशोदे ! । हे यशोदे ! । हे यशोदाः ! । प्रातिपदिकात् । दृषद् । दृषदौ । दृषदः । दृषदम् । दृषदौ । दृषदः । दृषदा । दृषद्भ्याम् । दृषद्भिः । दृषदे । दृषद्भ्याम् । दृषद्भ्यः । दृषदः । दृषद्भ्याम् । दृषद्भ्यः । दृषदः । दृषदोः । दृषदाम् । दृषदि । दृषदोः । दृषत्सु । हे दृषद् ! । हे दृषदौ ! । हे दृषदः ! ॥

ङ्यन्त (ङी प्रत्यय जिसके अन्तमें हो) आबन्त (आप्प्रत्यय जिसके अन्तमें हो) और प्रतिपदिक से सु, औ, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, भ्याम्, भिस् , ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस् ङस् ओस्, आम्, ङि, ओस् , सुप् ये २१ प्रत्यय हों ॥ २ ॥

स्त्रियाम्* ॥ ३ ॥

अधिकारोऽयम् । समर्थानामिति यावत् ॥

स्त्रीलिङ्गमें प्रत्यय हो यह (४ । १ । ८२)सूत्रतक अधिकार है ॥ ३ ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥ ४ ॥

अ० तः, टाप् । अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां टाप् स्यात् । यथा—अजा । एडका । अश्वा । चटका । मूषिका । एषु जातिलक्षणोङीष्प्राप्तः । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । एषुवयसि प्रथम इति ङीप्प्राप्तः ॥ (सम्भस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्) ॥ सम्फला । भस्त्रफला । ङ्यापोरितिह्रस्वः ॥ (सत्प्राक्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्) ॥ सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । काण्डपुष्पा । प्रान्तपुष्पा । शतपुष्पा । एकपुष्पा ॥ (शूद्राचामहत्पूर्वाजातिः) ॥

१-(७ । ३ । १०६) इत्योप एकारः ॥

* स्तनकेशवती स्त्री स्यात्लोमशः पुरुषः स्मृतः । उभयोरन्तरं यच्च तदभावेनपुंसकम् ॥

क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमेतिपुंयोगेऽपि । कोकिला जातावपि ॥ (मूलान्नयः) ॥ अमूला ॥

अजादि और अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

ऋन्नेभ्योङीप् ॥ ५ ॥

ऋ० भ्यः, ङीप् । ऋकारान्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा—कर्त्री । हर्त्री । धनिनी । छत्रिणी ॥

ऋकारान्त और नान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

उगितश्च ॥ ६ ॥

उगितः, च । उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा-भवतीक्वयाति । पचन्तीगायति । दीव्यन्ती । शप्श्यनोरितिनुम् ॥ (धातोरुगितः प्रतिषेधोवाच्यः) ॥ उखास्रत् । पर्णध्वत् ब्राह्मणी ॥ (अञ्चतेश्चोपसङ्ख्यानम्) ॥ प्राची । प्रतीची । उदीची ॥

उगिदन्त प्रादिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

वनोरच ॥ ७ ॥

वनः, रं, च । वन्नन्तात्तदन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् रश्चान्तादेशः । वन्निति ङ्वनिप् क्वनिप् वनिपां सामान्य ग्रहणम् । यथा--धीवरी । अतिधीवरी । पीवरी । शर्वरी ॥

वन्नन्त और तदन्त प्रादिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

पादोऽन्यतरस्याम् ॥ ८ ॥

पादः, अ०म् । पाच्छब्दः कृतसमासान्तः । तदन्तात् प्रातिपदि-

कात् स्त्रियां ङीब्वास्यात् । यथा--द्विपदी, द्विपात् । त्रिपदी, त्रिपाद् । चतुष्पदी, चतुष्पाद् ॥

पादन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्पसे ङीप् प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

टाबृचि ॥ ९ ॥

टाप्, ऋचि । ऋचि वाच्यायां पादान्ताट्टाप् स्यात् । यथा-द्विपदाऋक् । त्रिपदा । एकपदा ॥

ऋक्वाच्य होतो पादन्तप्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय हो ॥ ९ ॥

नषट्स्वस्रादिभ्यः ॥ १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् टापौ न स्याताम् । यथा--पञ्च । षट् । सप्त । नव । दश । स्वस्रादिभ्यः । स्वसा । दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिस्रः । चतस्रः ॥

षट्संज्ञक और स्वस्रादि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में टाप् और ङीप् प्रत्यय नहीं १०

मनः ॥ ११ ॥

मन्नन्तात् प्रातिपदिकान्नङीप् । यथा—सीमा । सीमानौ । सीमानः । दामा । दामानौ । दामानः ॥

मन्नन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय न हो ॥ ११ ॥

अनो बहुव्रीहेः ॥ १२ ॥

अनः, बं० हेः । अन्नन्ताद् बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप् न स्यात् । यथा—बहुयज्वा । बहुयज्वानौ । बहुयज्वानः ॥

अन्नन्तबहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय नहो ॥ १२ ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ १३ ॥

डाप्, उ० मे. अ०म। सूत्रद्वयोपात्ताभ्यां डाब् वा स्यात्। यथा—सीमा, सीमे, सीमाः।सीमा, सीमानौ, सीमानः। बहुयज्वा। बहुयज्वे। बहुयज्वाः। बहुयज्वा। बहुयज्वानौ बहुयज्वान ॥

मन्नन्त और अन्नन्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके डाप् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

अनुपसर्जनात् ॥ १४ ॥

अधिकारोऽयम्। यूनस्तिरित्यभिव्याप्य ॥

(४ । १ । ७७) इस सूत्रतक अनुपसर्जन प्रातिपदिकसे प्रत्यय विधान किया जाता है यह अधिकार है ॥ १४ ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ॥ १५ ॥

टिदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् स्यात्। यथा—समाजचरी। ढस्य। सौभेद्रेयी। अणः। कुम्भकारी। अञः। औत्सी। द्वयसजः। ऊरुद्वयसी। दघ्नचः। ऊरुदघ्नी। जानुदघ्नी। मात्रचः। ऊरुमात्री। जानुमात्री। तयपः। पञ्चतयी। दशतयी। ठकः। आक्षिकी। ठञः। लावणिकी। कञः। यादृशी। तादृशी। क्वरपः। इत्वरी ॥ (नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्) ॥ स्त्रैणी। पौंस्नी। शाक्तीकी। याष्टीकी। तरुणी। तलुनी ॥

१—चेरटः, कर्त्तरि टः। २—स्त्रीभ्योढक्। [७। १। २] इत्येयादेशः। ३—कर्मण्यण्। ४—उत्से भवा' उत्सादिभ्योऽञ्। ५ऊरू प्रमाणमस्याः असौ। 'प्रमाणे द्वयसच् दघ्नञ्मात्रचः। ६—पञ्च अवयवा यस्याः, सङ्ख्याया अवयवे तयप्। ७—तेन दीव्यति—, इति ठक्। ८लवणं पण्यमस्याः। ' लवणाट्ठञ्। ९—त्यदादिषु दृशः—इति कञ्। आसर्वनाम्नः, इत्याकारः। १०-इतितच्छीला। इण्नशजिसर्त्तिभ्यः—क्वरप्। ह्रस्वस्यपिति कृतितुक्। ११—स्त्रीपुंसाभ्याम्—इति नञ्स्नञौ १२—शक्तिग्रहणमस्याः शक्तियष्ट्योरीकक्।

टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और करप् ये ग्यारह प्रत्यय जिन के अन्त में हों उन अनुपसर्जनों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

यञश्च ॥ १६ ॥

यञः, च । यञन्ताच्च प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा-गार्गी । वात्सी ॥

यञन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

प्राचां ष्फ तद्धितः ॥ १७ ॥

यञन्तात्ष्फो वा स्यात् स्त्रियां स च तद्धितः । यथा-वात्स्यायनी । वात्सी ॥

प्राग्देशी आचार्यों के मत से स्त्रीलिङ्ग में यञन्त प्रातिपदिक से तद्धित संज्ञक ष्फ प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥ १८ ॥

लोहितादिभ्यः कतशब्दान्तेभ्यो यञन्तेभ्यो नित्यं ष्फः स्यात् । यथा-लौहित्यायनी । कात्यायनी ॥

लोहित, कत शब्दान्त यञन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में नित्य ष्फ प्रत्यय हो १८

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ॥ १९ ॥

कौरव्य माण्डूक शब्दाभ्यां स्त्रियां ष्फः स्यात् । यथा-(कुर्वादिभ्यो ण्यः) कौरव्यायणी । ढक् च मण्डूकादित्यण् । माण्डू-

१-[६ । ४ । १५०] इति यकार लोपः । २-[७ । १ । २] इति फस्यायन् ।

कायनी ॥ (आसुरे रूपसङ्ख्यानम्) ॥ आसुरायणी ॥

व्यन्य कौरव्य और मण्डूकशब्द से स्त्रीलिङ्ग में ष्फ प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

वयसि प्रथमे ॥ २० ॥

प्रथमवयो वाचिनोऽदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा--कुमारी । किशोरी ॥ (वयस्यचरमइतिवाच्यम्) ॥ वधूटी[1] । चिरण्टी ॥

स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धी प्रथमावस्था वाच्य होतो अदन्त प्रातिपदिकसे ङीप्प्रत्ययहो २०

द्विगोः ॥ २१ ॥

द्विगुसंज्ञकाददन्तात् प्रातिपदिकात् ङीप् स्यात् । यथा त्रिलोकी[2] । दशपूली ॥

द्विगुसंज्ञक अदन्त प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

अपरिमाणविस्ताचितकम्बलेभ्योन-तद्धितलुकि ॥ २२ ॥

अ० भ्यः, न, त० कि । अपरिमाणान्ताद् विस्ताद्यन्ताच्च द्विगो ङीप् न स्यात् तद्धित लुकि सति । यथा—पञ्चभिरश्वैः क्रीता--पञ्चाश्वा । आर्हीयष्ठक् । अध्यर्धेति लुक् । द्वौ विस्तौ पचति-द्विविस्ता । त्र्याचिता । द्विकम्बल्या । परिमाणान्तात्तु द्व्याढकी[2] ॥

१--वधूट चिरण्टशब्दौ यौवन वाचिनौ । २--त्रयाणां लोकानां समाहारे तद्धितार्थे इति द्विगुः । अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः--इति स्त्रीत्वम् ।

२-(द्वावाढकौ पचतीति विग्रहे 'आढकाचित पात्रात् खोऽन्यतरस्याम्, द्विगोष्ठंश्च, इति खठनौ विहितौ ताभ्यां पुर्क प्राग्वतीयष्ठञ् । तस्य 'अध्यर्ध' इति लुक् ।

तद्धित लुक् होनेपर अपरिमाणान्त विस्तान्त आचितान्त और कम्बल्यान्त अदन्त द्विगु प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग वाच्य में ङीप् न हो ॥ २२ ॥

काण्डान्तात् क्षेत्रे ॥ २३ ॥

क्षेत्रे यः काण्डान्तो द्विगुस्ततो न ङीप् स्यात् तद्धित लुकि सति। यथा -द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः॥

क्षेत्र वाच्य हो तो तद्धित लुक् होनेपर काण्ड शब्दान्त द्विगु से स्त्रीलिङ्ग वाच्य में ङीप् प्रत्यय न हो ॥ २३ ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥ २४ ॥

प्रमाणे यः पुरुषशब्दस्तदन्ताद् द्विगोर्वा ङीप् स्यात् तद्धितलुकि सति। यथा–द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः सा द्विपुरुषी पुरुषा वा परिखा॥

प्रमाण में जो पुरुष शब्द तदन्त द्विगु से तद्धित लुक् होने पर स्त्रीलिङ्गवाच्य में विकल्प से ङीप् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥ २५ ॥

बं० हेः, ऊं० सः, ङीपं्। ऊधस् शब्दान्ताद् बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीष् स्यात्। यथा–घटोध्नी। कुण्डोध्नी ॥

ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीष् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

सङ्ख्याव्ययादेर्ङीप् ॥ २६ ॥

सं० देः, ङीपं्। सङ्ख्यादेरव्ययादेश्च बहुव्रीहेरूधश्शब्दान् ङीप् स्यात्। यथा–द्व्यध्नी। अत्यूध्नी ॥

१-प्रमाणे द्वय सजिति विहितस्य मात्रचः प्रमाणे लो द्विगो र्नित्यमिति लुक् ॥ २–(५ । ४ । १३१) इत्यनङादेशः ॥

सङ्ख्यादि और अव्ययादि ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि के स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

दामहायनान्ताच्च ॥ २७ ॥

दा० त्, चासङ्ख्यादेर्बहुव्रीहेर्दामान्ताच्च स्त्रियां ङीप् स्यात्। यथा-द्विदाम्नी । द्विहायनी । (त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्)॥ वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीप् णत्वं चेष्यते॥ त्रिहायणी । चतुर्हायणी ॥

सङ्ख्यादि दामान्त और हायनान्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय हो॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्॥२८॥

अनः, उ० नः, अ० म्। अन्नन्ताद् बहुव्रीहेरुपधालोपि नो वा ङीप् स्यात् । यथा-बहुराज्ञी, बहुराजा । बहुतक्ष्णी, बहुतक्ष्णा ॥

उपधालोपी अन्नन्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके ङीप् प्रत्यय हो॥२८॥

नित्यं सञ्ज्ञाच्छन्दसोः ॥ २९ ॥

अन्नन्ताद् बहुव्रीहेरुपधा लोपिनः संज्ञायां विषये छन्दसि च नित्यं ङीप् स्यात् । यथा-सुराज्ञी नाम नगरी । शतमूर्ध्नी ॥

संज्ञा और छन्द विषय में उपधालोपी अन्नन्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्गवाच्य में नित्य ङीप् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

केवलमामकभागधेयपापापर समानार्य्यकृत सुमङ्गलभेषजाच्च॥३०॥

के० तं, च । केवलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सञ्ज्ञायां विषये छन्दसि च स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा-केवली । मामकी । भागधेयी ।

पापी। अपरी। समानी। आर्य्यकृती। सुमङ्गली। भेषजी। अन्यत्रकेवला इत्यादि ॥

संज्ञा और छन्दो विषय में केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्य्यकृत, सुमङ्गल, भेषज इन नव प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्ययहो ॥३०॥

रात्रेश्चाजसौ ॥ ३१ ॥

रात्रेः, च, अजसौ। रात्रिशब्दात् ङीप् स्यात् अजस्विषये छन्दसि। यथा—ह्वयामि रात्रीं जगतोनिवेशनीम् ॥

छन्दो विषय में जस् विभक्ति से अन्यत्र स्त्रीलिङ्गवाच्य में रात्रिशब्द से ङीप् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥ ३२ ॥

अं० तोः, नुक्। एतयोः स्त्रियां नुगागमः ङीप् च स्यात्। यथा—अन्तर्वत्नी-गर्भिणी। पतिवत्नी, जीवितपतिः ॥

अन्तर्वत् और पतिवत् शब्द से स्त्रीलिङ्ग वाच्य में ङीप् प्रत्यय और दोनों को नुक् का आगम हो ॥ ३२ ॥

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ॥ ३३ ॥

पत्युः, नः, यं० गे। यज्ञेन सम्बन्धे पतिशब्दस्य नकारादेशः स्यात्। यथा—वसिष्ठस्य पत्नी। तत्कर्तृकयज्ञस्य फलभोक्त्रीत्यर्थः। दम्पत्योः सहाधिकारात् ॥

यज्ञ के साथ संयोग होनेपर स्त्रीलिङ्ग वाच्य में पतिशब्दको नकारादेश हो ३३

विभाषा सपूर्वस्य ॥ ३४ ॥

पतिशब्दान्तस्य सपूर्वस्य प्रातिपदिकस्य नो वा स्यात्। यथा-वृद्धस्य पतिः। वृद्धपतिः। वृद्धपत्नी॥

सपूर्वक पतिशब्दान्त प्रातिपदिक को स्त्रीलिङ्गवाच्य में विकल्प करके नकारान्तादेश हो

नित्यं सपत्न्यादिषु॥ ३५॥

सपत्न्यादिषु नित्यं पत्युर्नकारादेशः स्यात्। यथा-समानः पतिर्यस्याः--सा सपत्नी। एकपत्नी। वीरपत्नी। भ्रातृपत्नी। पुत्रपत्नी॥

समानादि शब्द जिसके पूर्व हैं ऐसे पतिशब्द को स्त्रीलिङ्गवाच्य में नित्य नकारान्तादेश हो॥ ३५॥

पूतक्रतो रै च॥ ३६॥

पूं० तोः, ऐ, चा पूतक्रतुशब्दस्य स्त्रिया मैकारान्तादेशो ङीप् च स्यात्। इयं त्रिसूत्री पुंयोग एवेष्यते। यथा-पूतक्रतोः स्त्री--पूतक्रतायी। यया तु क्रतवः पूताः स्यात् पूतक्रतु रेवसा॥

पूत क्रतु शब्द से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय और अन्त को ऐकारादेश हो

वृषाकप्यग्नि कुसित कुसीदाना-मुदात्तः॥ ३७॥

वृं० म्, उं० त्तः। एषामुदात्त ऐ आदेशः स्यात् ङीप् च। यथा--वृषाकपेः स्त्री--वृषाकपायी। अग्नायी। भूस्थान देवता। कुसितायी। कुसीदायी॥

वृषाकपि, अग्नि, कुसित और कुसीद शब्द से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय और अन्त को उदात्त ऐ आदेश हो॥ ३७॥

मनोरौ वा ॥ ३८ ॥

मनोः, औ, वा । मनुशब्दस्यौकारादेशः स्यादुदात्तौकारश्च वा ताभ्यां सन्नियोगविशिष्टो ङीप् च । यथा—मनोः स्त्री—मनावी । मनायी । मनुः ॥

स्त्रीलिङ्गवाच्य होनेपर मनुशब्दसे विकल्प करके उदात्त औकारादेश और ङीप् प्रत्ययहो ॥ ३८ ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥ ३९ ॥

वर्णाद्, अ० त्, तो० तः, नः । वर्णवाचिनः प्रातिपदिकादनुदात्तान्तात्तकारोपधाद् वा ङीप् स्यात् तकारस्य नकारादेशश्च । यथा—एनी । एता । रोहिणी । रोहिता ॥

तोपधवर्णवाची अनुदात्तान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गवाच्य में विकल्प करके ङीप् प्रत्यय और तकार को नकारादेशहो ॥ ३९ ॥

अन्यतो ङीष् ॥ ४० ॥

अ० तः, ङीष् । तोपधभिन्नाद् वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् स्यात् । यथा—कल्माषी । सारङ्गी ॥

तोपध से इतरवर्णवाची अनुदात्तान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीष् प्रत्ययहो ॥ ४० ॥

षिद् गौरादिभ्यश्च ॥ ४१ ॥

षि० भ्यः, च । षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष् स्यात् । यथा—नर्त्तकी । गौरी । अनड्वाही । अनडुही ॥ (पिप्पल्यादयश्च)॥ पिप्पली । हरीतकी । आकृतिगणोऽयम् ॥

षित् (ष जिसका इत् गया हो) और गौरादि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

जानपद कुण्ड गोणस्थल भाज नाग काल नील कुश कामुक कबराद् वृत्त्य मत्रा वपना कृत्रिमा श्राणास्थौल्य वर्णाना च्छादनाऽयो विकार मैथुनेच्छा केशवेशेषु ॥ ४२ ॥

जानपदादिभ्य एकादशभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः क्रमाद् वृत्यादिष्वर्थेषु ङीप् स्यात् । यथा–जानपदी वृत्तिश्चेत् । अन्यातु जनपदी, स्वेरविशेषः । कुण्डी अमत्रं चेत् । कुण्डान्या । गोणी आवपनंचेत् । गोणान्या । स्थलीअकृतिमाचेत् । स्थलान्या । भाजी श्राणाचेत् । भाजान्या । नागीस्थूलाचेत् । नागान्या । कालीवर्णश्चेत् । कालान्या । नीली अनाच्छादनंचेत् । नीलाऽन्या । नील्या रक्ता शाटीत्यर्थः । नील्या अन्वक्तव्य इत्यन् । अनाच्छादनेपि न सर्वत्रकिन्तु ॥ (नीलादौषधौ) ॥ नीली ॥ (प्राणिनिच) ॥ नीलीगौः ॥ (संज्ञायां वा) ॥ नीली । नीला । कुशी अयोविकारश्चेत् । कुशान्या । कामुकी मैथुनेच्छाचेत् । कामुकान्या । कबरी केशनां सन्निवेशविशेषः । कबरान्या । चित्रेत्यर्थः ॥

वृत्ति, अमित्र, आवपन, अकृतिमा, श्राणा, स्थौल्य, वर्ण, अनाच्छादन, अयोविकार, मैथुनेच्छा, केशवेश ये अर्थ वाच्य होंतो यथासङ्ख्य जानपद, कुण्ड, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक और कबर प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ४२ ॥

शोणात् प्राचाम् ॥ ४३ ॥

शोणशब्दात् प्राचामाचार्याणां मतेनास्त्रियां ङीष् स्यात्। यथा—शोणी। शोणा॥

प्राग्देशीय आचार्य्यों के मत में शोण (सिन्दूर) शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो॥ ४३॥

वोतो गुणवचनात्॥ ४४॥

वा०उतः, गु०त्। उदन्ताद् गुणवचनात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां वा ङीष् स्यात्। यथा—पट्वी। पटुः। मृद्वी। मृदुः॥ (खरुसंयोगोपधान्न)॥ खरुः पतिंवराकन्या। पाण्डुरियंखट्वा॥

उकारन्त गुणवाची प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे ङीष् प्रत्यय हो॥ ४४॥

बह्वादिभ्यश्च॥ ४५॥

ब०भ्यः, च। बहु इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा ङीष् स्यात। यथा—बह्वी। बहुः। कृदिकारादक्तिनः। रात्रिः। रात्री। सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके। शकटिः। शकटी॥

बहु आदि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में विकल्पकरके ङीष् प्रत्यय हो॥ ४५॥

नित्यं छन्दसि॥ ४६॥

बह्वादिभ्यश्छन्दसि विषये नित्यं स्त्रियां ङीष् स्यात्। यथा—बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥

हे परेश! सर्वपदार्थ तथा पशुओं की रक्षा कीजिये। बहु आदि प्रातिपदिकों से छन्दो विषय होनेपर स्त्रीलिङ्ग में नित्य ङीष् प्रत्यय हो॥ ४६॥

भुवश्च॥ ४७॥

भुवः, च । छन्दसि विषये स्त्रियां भुवोनित्यं ङीप् स्यात् । यथा-विभ्वी ॥

भूशब्द से स्त्रीलिङ्ग में छन्दोविषय होनेपर नित्य ङीप् प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

पुंयोगादाख्यायाम् ॥ ४८ ॥

पु० तं, आं० म् । या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्त्तते ततोङीप् स्यात् । यथा-गोपस्यस्त्री गोपी । गणकस्यस्त्री-गणकी । (पालकान्तान्न) ॥ गोपालिका ॥ सूर्य्यदेवतायां चाप्वाच्यः) सूर्यस्यस्त्रीदेवतासूर्य्या ॥

जो पुमाख्या पुंयोगसे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान है उससे ङीष् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्य्याणामानुक् ॥ ४९ ॥

इ० मं, आं० क् । इन्द्रादीनामानुगागमो ङीप् च स्यात् । इन्द्रादीनांपणांमातुलाचार्ययोश्च पुंयोग एवेष्यते । तत्र ङीपिसिद्धे आनुगागममात्रं विधीयते इतरेषां चतुर्णामुभयं विधीयते । यथा-इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी ॥ (हिमारण्ययोर्महत्वे) ॥ महद्धिमम्-हिमानी । महदरण्यम्-अरण्यानि ॥ (यवाद्दोषे) ॥ दुष्टो यवोयवानी ॥ (यवनाल्लिप्याम्) ॥ यवनानां लिपिर्यवानी ॥ (मातुलोपाध्याययोरानुग्वा) ॥ मातुलानी । मातुली । उपाध्यायानी । उपध्यायी ॥ (यातुस्वयमेवाध्यापिकातत्रवाङीष्) ॥ उपाध्यायी । उपाध्याया ॥ (आचार्यादणत्वंच) ॥ आचार्य्यस्य स्त्रीआचार्यानी । पुंयोग इत्येव । आचार्या स्वयं व्याख्यात्री ॥

१-गाःपालयतीति गोपालः स एव गोपालकः तस्यस्त्रीत्यर्थः ॥

(अर्य्यक्षत्रियाभ्यांवास्वार्थे) ॥ अर्याणी । अर्या । स्वामिनी वैश्या वेत्यर्थः । क्षत्रियाणी । क्षत्रिया । पुंयोगेतु । अर्यी । क्षत्रयी ॥

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यमन, मातुल, और आचार्य शब्द से यथा योग्य पुंयोगादि में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

क्रीतात् करणपूर्वात् ॥ ५० ॥

क्रीतान्ताददन्तात्प्रातिपदिकात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्। यथा-वस्त्रेण क्रीयतेऽसौ-वस्त्रक्रीती । क्वचिन्नो । धनक्रीता ॥

करणपूर्वक क्रीतान्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गवाच्यमें ङीष् प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

क्तादल्पाख्यायाम् ॥ ५१ ॥

क्तात्, अं० म् । करणादेः क्तान्तात् स्त्रियां ङीष् स्यादल्पत्वे द्योत्ये । यथा-अभ्रलिप्ती द्यौः । अल्पैरभ्रैर्मेघैर्लिप्ता इत्यर्थः ॥

अल्पाख्या (कुछ कथन) द्योत्य हो तो करणपूर्वक क्तान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ॥ ५२ ॥

बं० हेः, च, अं० त् । बहुव्रीहेः क्तान्तादन्तोदात्ताददन्तात् स्त्रियां ङीष् स्यात् । (जातिपूर्वादिति वाच्यम्) ॥ तेन बहु नञ् सुकालसुखादि पूर्वान्नो । यथा-ऊरुभिन्नी । नेह । बहु कृता । (जातान्न) ॥ दन्तजाता । (पाणि गृहीती) भार्य्याम् ॥ पाणिगृहीतान्या ॥

अन्तोदात्त क्तान्त अदन्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ५२ ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद् वा ॥ ५३ ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदादन्तोदात्ताद्बहुव्रीहेः स्त्रियां वा ङीष् स्यात् । यथा-सुरापीती । सुरापीता । पीता । सुरा यया सा वित्यर्थः ॥

अस्वाङ्गपूर्वपद अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ॥ ५४

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत् स्वाङ्गं तदन्तादन्तात्प्रातिपदिकाद्वा ङीष् स्यात् । यथा-केशानतिक्रान्ता-अतिकेशी । अतिकेशा । चन्द्रमुखी । चन्द्रमुखा ॥

असंयोगोपध जो स्वाङ्ग तदन्त अदन्त प्रातिपदिक से विकल्प कर ङीष् प्रत्यय हो

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ॥ ५५ ॥

नां० त, च । एभ्यःप्रातिपदिकेभ्यो वा ङीष् स्यात् । यथा-तुङ्गनासिकी । तुङ्गनासिका । तिलोदरी । तिलोदरा । विम्बोष्ठी । विम्बोष्ठा । दीर्घजङ्घी । दीर्घजङ्घा । समदन्ती । समदन्ता । चारुकर्णी । चारुकर्णा । तीक्ष्णशृङ्गी । तीक्ष्णशृङ्गा ॥ (पुच्छाच्च) सुपुच्छी । सुपुच्छा ॥ (कबरमणि विषशरेभ्योनित्यम्) ॥ कबरं चित्रं पुच्छं यस्याः सा कबरपुच्छीमयूरी इत्यादि ॥ (उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च) ॥ उलूकपक्षी शाला । उलूकपुच्छी सेना ॥

नासिकादि शब्द हैं जिनके अन्त में उन प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके ङीष् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

न क्रोडादि बह्वचः ॥ ५६ ॥

क्रोडाद्यन्ताद् बह्वजन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां न ङीष् । यथा—कल्याणक्रोडा । अश्वानामुरः क्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ॥

क्रोडादि बह्वजन्तशब्द हैं आदि में जिनके ऐसे प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय न हो ॥ ५६ ॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ॥ ५७ ॥

सं० त्, च । सह नञ् विद्यमान इत्येवं पूर्वात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां न ङीष् । यथा—सकेशा । अकेशा । विद्यमाननासिका ॥

सह, नञ् और विद्यमान है पूर्व जिसके ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय न हो ॥ ५७ ॥

नखमुखात् सञ्ज्ञायाम् ॥ ५८ ॥

नखमुखान्तात् प्रातिपदिकात् संज्ञायां स्त्रियांविषये ङीष् न । यथा—शूर्पणखा । गौरमुखा ॥

स्त्रीलिङ्गविषय में संज्ञागम्यमान हो तो नख और मुखान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न हो ॥ ५८ ॥

दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि ॥ ५९ ॥

छन्दसि विषये दीर्घ जिह्वीति निपात्यते ॥

छन्दोविषय में दीर्घजिह्वी यह शब्द निपातित है ॥ ५९ ॥

दिक्पूर्वपदान् ङीप् ॥ ६० ॥

दि० तं, ङीप् । दिक् पूर्वपदात् स्वाङ्गान्तात् प्रातिपदिकात् परस्य ङीषो ङीबादेशः स्यात् । यथा—प्राङ्मुखी शाला । स्वरे आद्युदात्तंपदम् ॥

दिशावाचक शब्द पूर्वपद हैं जिसके ऐसे स्वाङ्गान्त प्रातिपदिक से ङीष् के के स्थान ङीप् आदेश हो ॥ ६० ॥

वाहः ॥ ६१ ॥

वाहन्तात् प्रातिपदिकात् ङीष् स्यात् । यथा-दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे ॥

वाहन्त प्रातिपदिक से परे स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ॥ ६२ ॥

सखी अशिश्वी इमौ शब्दौ ङीषन्तौ भाषायां निपात्येते । यथा-सखीयं मे सावित्री । नास्याः शिशुरस्तीति-अशिश्वी ॥

भाषा में सखी और अशिश्वी शब्द निपातित हैं ॥ ६२ ॥

*जातेरस्त्री विषयादयोपधात् ॥ ६३ ॥

जातिवाचि यन्नच स्त्रियां नियतमयोपधं ततःस्त्रियां ङीष् स्यात् । यथा-सूकरी । कुक्कुटी । कटी ॥ (योपध प्रतिषेधे गवय हय मुकय मनुष्य मत्स्यानामप्रतिषेधः) ॥ गवयी । हयी । मुकयी । मनुषी । मत्स्यी ॥

अयोपधि अस्त्रीविषयक जातिवाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष्प्रत्यय हो ६३

पाक कर्ण पर्ण पुष्प फल मूल वालोत्तरपदाच्च ॥ ६४ ॥

पा०अं, च । पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रि-

*आकृति ग्रहणा जातिर्लिङ्गानांच नसर्वभाक् । सकृदाख्यात निर्ग्राह्या गोत्रंच चरणैःसह ॥

यां ङीष् स्यात् । यथा–ओदनपाकी । शङ्कुकर्णी । शालपर्णी । शङ्खपुष्पी । मूलकफली । दर्भमूली । गोवाली । ओषधि विशेषे रूढाइमे ॥

पाकादि शब्द हैं उत्तरपद जिसके उसप्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय हो ॥ ६४ ॥

इतोमनुष्यजातेः ॥ ६५ ॥

इतः,मं०तेः । मनुष्यजातिवाचिन इकारान्ता द्योपधात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् स्यात् । यथा–कुन्ती । दाक्षी ॥

मनुष्यजातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

ऊङुतः ॥ ६६ ॥

ऊङ्, उतः । उकारान्तादयोपधान् मनुष्यजाति वाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियामूङ् स्यात् यथा–कुरूः । कुरुनादिभ्योण्यः । तस्य स्त्रियामवन्तीत्यादिनालुक् ॥ (अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम्) ॥ अलाबूः । कर्कन्धूः ॥

अयोपध उकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ६६ ॥

बाह्वन्तात् सञ्ज्ञायाम् ॥ ६७ ॥

सञ्ज्ञायांविषये बाहुशब्दान्तात्स्त्रियामूङ् स्यात् । यथा–भद्रबाहूः ॥

संज्ञाविषय में बाहुशब्दान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ६७ ॥

पङ्गोश्च ॥ ६८ ॥

पङ्गोः, च । पङ्गुशब्दात्स्त्रियामूङ् स्यात् । यथा–पङ्गूः ॥(श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च) ॥ चादूङ् । श्वश्रूः ॥

पङ्गु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ६८ ॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ॥ ६९ ॥

औपम्ये गम्ये ऊरूत्तरपदात् स्त्रियामूङ् स्यात् यथा—करभोरूः । कदलीस्तम्भोरूः ॥

उपमागम्यमानहोतो ऊरूत्तरपद प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गमें ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

संहितशफलक्षणवामादेश्च ॥ ७० ॥

सं०दे:, च । एभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियामूङ्स्यादौपम्ये । यथा—संहितोरूः । शफोरूः । लक्षणोरूः । वामोरूः[1] ॥ (सहित सहाभ्यां चेतिवाच्यम्) ॥ सहितोरूः । सहोरूः ॥

संहित, शफ, लक्षण और वामशब्द हैं आदि में जिसके ऐसे ऊरूत्तर प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ७० ॥

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ॥ ७१ ॥

कं०ल्वोः, छं०सि । छन्दसिविषये कद्रुकमण्डलुभ्यां स्त्रियामूङ् स्यात् । यथा—कद्रूः । कमण्डलूः ॥ (गुग्गुलु मधुजतु पतयालूमिति वाच्यम्) ॥ गुग्गुलूः । मधूः । जतूः । पतयालूः ॥

छन्दोविषय में कद्रु और कमण्डलु शब्दोंसे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

सञ्ज्ञायाम् ॥ ७२ ॥

कद्रुकमण्डलुभ्यां संज्ञायां स्त्रियामूङ् स्यात् । यथा—कद्रूः । कमण्डलूः[2] ॥

संज्ञा विषय में कद्रु तथा कमण्डलु प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्गवाच्य हों तो ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

१—वामौ सुन्दरौ ऊरू यस्या इति विग्रहः । २—कमण्डलुरिति—चतुष्पदाज्जातिवाचकोऽयम् ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ ७३ ॥

शा० ञः, ङीन् । शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् । यथा—शार्ङ्गरवी[1] । वैदी[2] । (नृनरयोर्वृद्धिश्च)॥ नारी ॥

शार्ङ्गरवादि और अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीन् प्रत्यय हो॥७३॥

यङश्चाप् ॥ ७४ ॥

यङः, चाप् । यङन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप् स्यात् । यङ इति ञ्यङ्ष्यङोः सामान्यग्रहणम् । यथा—आम्बष्ठ्या[3] । कारीषगन्ध्या[4]॥

यङन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में चाप् प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

आवट्याच्च ॥ ७५ ॥

आ० त्, च[अ] । अस्माच्चाप् स्यात् । यञश्चेति ङीपोपवादः । यथा—आवट्या । अवटशब्दो गर्गादिः ॥

यञ् प्रत्ययान्त आवट्य शब्दसे स्त्रीलिङ्ग में चाप् प्रत्यय हो ॥ ७५ ॥

तद्धिताः ॥ ७६ ॥

आपञ्चमाऽध्यायपरिसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥

यहां से पञ्चम अध्याय की समाप्तितक तद्धित का अधिकार है ॥ ७६ ॥

यूनस्तिः ॥ ७७ ॥

१—शृङ्गशब्दादपत्येण् आदिवृद्धिः । २—विदस्यापत्यं स्त्री ' अनृष्यानन्तर्ये बिदादिदिभ्योऽञ् । पूर्ववज्जाति लक्षणे ङीषिप्राप्ते ङीन् विधीयते ॥ ३—आम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री ' वृद्धेत्कोसला—' इतिज्यङ् । ४—करीषस्येव गन्धोयस्य कारीष गन्धि । उपमानाच्च—गन्धस्येदन्तादेशः । तस्य गोत्रापत्यं स्त्री अण् । अणिञोरनार्षयोः—' इतिष्यङादेशः । स च यद्यपिस्त्रियामेव विहितस्तथापि ङित्- करण सामर्थ्यात् तदन्तादप्ययं चाप् ॥

यूनः, तिः । युवन्शब्दात् स्त्रियां तिप्रत्ययः स्यात् । सच तद्धितः यथा-युवतिः ॥

युवन् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में तद्धितसंज्ञक ति प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ॥ ७८ ॥

अणिञोः, अ० योः, गु० योः, ष्यङ्, गोत्रे । गोत्रे यावणिञौ विहितावनार्षौ तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात् । (प०) निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ इत्यणिञोरेव षङावितौ यङश्चाप् यथा-कुमुदगन्धेरपत्यंस्त्री-कौमुदगन्ध्या । वाराह्या ॥

गोत्र में विहित जो अनार्ष अण् और इञ् प्रत्यय तदन्त गुरूपोत्तम प्रातिपदिकों को स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् आदेश हो ॥ ७८ ॥

गोत्रावयवात् ॥ ७९ ॥

गोत्रावयवा गोत्राभिमताः कुलाख्यास्ततो गोत्रे विहितयोरणिञोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात् । यथा-पौणिक्या । भौणिक्या ॥

गोत्र अवयवों से गोत्र में विहित जो अण और इञ् तदन्त प्रातिपदिको को स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् आदेश हो ॥ ७९ ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ ८० ॥

क्रौ० भ्यः, च । स्त्रियां ष्यङ् स्यात् । यथा-क्रौड्या व्याड्या ॥ (सूतयुवत्याम्) ॥ सूत्या (भोजक्षत्रिये) ॥ भोज्या ॥

क्रौड आदि प्रातिपादिक से स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

दैवयज्ञि शौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ८१ ॥

दै० भ्यः, अ० म् । एभ्यो वा स्त्रियां ष्यङ् स्यात् । यथा—दैवयज्ञ्या । दैवयज्ञी । शौचवृक्ष्या । शौचवृक्षी । सात्यमुग्र्या । सात्यमुग्री । काण्ठेविद्ध्या काण्ठेविद्धी ॥

दैवयज्ञि, शौचवृक्षि, सात्यमुग्रि और काण्ठेविद्धि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ष्यङ् प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

समर्थानां प्रथमाद् वा ॥ ८२ ॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते । प्राग्दिश इति यावत् । सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वम् । [illegible]धकार्यत्वमिति यावत् ॥

समर्थों में प्रथम समर्थ प्रातिपदिक से विकल्प करके प्रत्यय हो यह पञ्चमाऽध्यायके द्वितीय पादकी समाप्ति तक अधिकार है ॥ ८२ ॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ॥ ८३ ॥

प्राक्, दी० तः, अण् । तेन दीव्यतीत्यतः प्रागणधिक्रियते ॥

चतुर्थाध्याय के तृतीयपाद की समाप्तिपर्यन्त अण प्रत्यय का अधिकार है ॥८३॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ ८४ ॥

अ० भ्यः, च । एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । यथा—आश्वपतम् । शातपतम् । गाणपतम् । साभापतम् ॥

अश्वपति आदि शब्दों से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अण् प्रत्ययहो ॥ ८४ ॥

१—(७ । २ । ११७) इत्यायचो वृद्धिः ॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाद्ण्यः ८५

दित्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः पत्युत्तर पदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात् । यथा—दैत्यः । आदित्यः । आदित्यम् । सैनापत्यम् ॥ (यमाच्चेति वाच्यम्) ॥ याम्यम् ॥ (वाङ्मति पितृमतां छन्दस्युपसङ्ख्यानम्)॥ वाच्यम् । मात्यम् । पैतृमत्यम् ॥ (पृथिव्याञाञौ)॥ पार्थिवा ॥ पार्थिवी ॥ (देवाद्यञञौ)॥ दैव्यम् । दैवी ॥ (बहिषष्टिलोपो वाच्यः)॥ बाह्यः ॥ (ईकक्च)॥ वाहीकः । ॥(ईकञ्छन्दसि)॥ वाहीकः स्वरे विशेषः ॥ (स्थाम्नोऽकारः) ॥ अश्वत्थामः । पृषोदरादित्वात् सस्य तः ॥ (भवार्थे तु लुग्वाच्यः) ॥ अश्वत्थामा ॥ (लोम्नोऽपत्येषु बहुषु)॥ अकारः । बह्वादीञोऽपवादः । उडुलोमाः । उडुलोमान् ॥ (गोरजादि प्रसङ्गे यत्) ॥गव्यम् ॥

दिति, अदिति, आदित्य और पत्युत्तर पद प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ण्य प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ॥ ८६ ॥

उ० भ्यः, अञ् । प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेञ् स्यात् । यथा—औत्सः ॥ (अग्निकलिभ्यां ढक् वाच्यः)॥ अग्नेरपत्यादि आग्नेयम् । कालेयम् ॥

उत्स आदि प्रातिपदिकों से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अञ् प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ॥ ८७ ॥

धान्यानां भवन इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ् स्नञौ स्याताम् । यथा—स्त्रीषु भवम्—स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रीणां समूहः—स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रीभ्योहितम् । स्त्रैणम् । पौंस्नम् ॥

पञ्चमाऽध्यायके द्वितीय पादावधि जितने अर्थ हैं उन में स्त्री और पुंस् शब्द से यथाक्रम नञ् और स्नञ् प्रत्यय हों ॥ ८७ ॥

द्विगोर्लुगनपत्ये ॥ ८८ ॥

द्विगोः, लुक्, अ० त्ये । द्विगोर्निमित्तं यस्तद्धितोऽजादिरन्यपत्यार्थः प्राग्दीव्यतीयस्तस्य लुक् स्यात् । यथा—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः । द्वौ वेदावधीते-द्विवेदः । त्रिवेदः ॥

अपत्य भिन्न द्विगु से विहित प्राग्दीव्यतीय अर्थों में जो प्रत्यय उसका लुक् हो ८८

गोत्रेऽलुगचि ॥ ८९ ॥

गोत्रे, अलुक्, अचि । अजादौ प्रागदीव्यतीये विवक्षिते गोत्र प्रत्ययस्या लुक् स्यात् । यथा—गर्गाणां छात्राः—गार्गीयाः । वात्सीयाः ॥

प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्ययपरे होतो गोत्रमें विहित प्रत्ययका लुक् न हो ॥ ८९ ॥

यूनि लुक् ॥ ९० ॥

प्राग्दीव्यतीये अजादौ प्रत्यये विवक्षिते युवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा—ग्लुचुकस्यगोत्रापत्यम्—ग्लुचुकायनिः । वक्ष्यमाणः फिन् । ततो यून्यण् । ग्लौचुकायनः तस्यच्छात्रोऽपि ग्लौचुकायनः । अणो लुकि वृद्धत्वाभावाच्छोन ॥

प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय विवक्षित होतो युव प्रत्यय का लुक् हो ॥ ९० ॥

फक्फिञोरन्यतरस्याम् ॥ ९१ ॥

फ०ञो:, अ०म् । प्राग्दीव्यतीये अजादौ प्रत्यये विवक्षिते फक् फिञोर्वा लुक् स्यात् । यथा—कात्यायनस्य छात्राः । कातीयाः । का-

१–तदधीते तद्वेदेत्यत्रार्थे द्विगुः । २—वृद्धाच्छः । (६ । ४ । १५१) इतिहलः परस्यापत्य यकारस्यलोपः ।

त्यायनीयाः । यस्कस्यापत्यम्-यास्कः । शिवाद्यण् । तस्यापत्यं-युवा-यास्कायनिः । अणोद्धश्च इति फिञ् तस्यछात्राः, यास्कीयाः । यास्कायनीयाः ॥

प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय विवक्षित होतो युव संज्ञक फक् तथा फिञ् प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो ॥ ९१ ॥

तस्याऽपत्यम् ॥ ९२ ॥

तस्य, अपत्यम् । तस्येति षष्ठी समर्थादपत्येऽर्थे यथाविहितं प्रत्ययाः स्युः । यथा-उपगोरपत्यम्-औपगवः ॥

समर्थों में प्रथमा षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में यथाविहित (उक्त तथा वक्ष्यमाण) प्रत्यय हों । इस पादकी समाप्तिपर्यंत अपत्यका अधिकारहै॥ ९२ ॥

एकोगोत्रे ॥ ९३ ॥

एकः, गोत्रे । गोत्रे एकएव अपत्यप्रत्ययः स्यात् । यथा-उपगोर्गोत्रापत्यम्-औपगवः । गार्ग्यः । नाडायनः ॥

गोत्रापत्य में एक (प्रथम) ही प्रत्यय हो ॥ ९३ ॥

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ॥ ९४ ॥

गोत्रात्, यूनि, अ०म् । यून्यपत्ये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययान्तादेव अपत्यप्रत्ययः स्यात् स्त्रियांतु नो युवसंज्ञा । यथा-गर्गस्य युवापत्यम्- गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः ॥

स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर युवापत्य की विवक्षा होतो गोत्र प्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हो ॥ ९४ ॥

अतइञ् ॥ ९५ ॥

अतः, इञ् । अपत्येऽर्थेऽदन्तात् प्रातिपदिकादिञ् स्यात् । दशरथस्यापत्यम्–दाशरथिः ॥

अदन्त प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय हो ॥ ९५ ॥

बाह्वादिभ्यश्च ॥ ९६ ॥

बा० भ्यः, च । बाहु इत्येव मादिभ्यः शब्देभ्योऽपत्ये इञ् स्यात् । यथा–बाहुर्नाम कश्चिदाद्यपुरुषः । तस्यापत्यम्–बाहविः ॥

बाहु आदि शब्दों से परे अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय हो ॥ ९६ ॥

सुधातुरकङ् च ॥ ९७ ॥

स० तुः, अकङ्, च । सुधातृशब्दादपत्ये इञ् तत् सन्नियोगेन च तस्या कङादेशः स्यात् । यथा–सुधातु रपत्यं सौधातकिः ॥ (व्यासवरुड निषाद चण्डाल विम्बानां चेति वाच्यम्) ॥ वैयासकिः । वारुडकिः । नैषादकिः । चाण्डालकिः । बैम्बकिः ॥

सुधातृ शब्द से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय हो और अन्त को अकङ् आदेश हो

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ् ॥ ९८ ॥

गोत्रे० कु० भ्यः, च फञ् । गोत्र सञ्ज्ञकेऽपत्ये वाच्ये कुञ्जादिभ्यश्चफञ् स्यात् । यथा–कौञ्जायन्यः । ब्राध्नायन्यः ॥

गोत्रापत्य वाच्य हो तो कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से चफञ् प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

नडादिभ्यः फक् ॥ ९९ ॥

१-(७ । ३ । ३) इत्यैजागमः । २-इञोऽपवादः । चकारो विशेषणार्थः । प्रातच्फञो रास्त्रिमामिति । ञकारो वृद्ध्यर्थः ॥

गोत्रापत्ये नडादिभ्यः फक् स्यात्। यथा-नडस्याऽपत्यं पौत्रादिः-नाडायनः। चारायणः॥

नड आदि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में फक् प्रत्यय हो॥ ९९॥

हरितादिभ्योऽञः॥ १००॥

ह० भ्यः, अञः। एभ्योऽञन्तेभ्यो यूनि फक्। यथा-हरितस्यापत्यम्-हारितायनः। कैदासायनः॥

अञ् प्रत्ययान्त हरित आदि प्रातिपदिकों से युवापत्य में फक् प्रत्यय हो।१००

यञिञोश्च॥ १०१॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात्। यथा-मार्ग्यायणः। दाक्षायणः॥

गोत्र में यञन्त तथा इञन्त प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय हो॥ १०१॥

शरद्वच्छुनकदर्भाद्भृगुवत्साग्रायणेषु

शरद्वादिभ्यो गोत्रापत्ये फक् स्यात् क्रमाद् भृग्वादिष्वपत्य विशेषेषु। यथा-शारद्वतायनो भार्गवश्चेत्। शारद्वतोऽन्यः। शौनकायनो-वात्स्यश्चेत्। शौनकोऽन्यः। दार्भायणः आग्रायणश्चेत्। दार्भिरन्यः॥

शरद्वत्, शुनक, दर्भ प्रातिपदिकों से यथाक्रम भृगु, वत्स और आग्रायण अर्थों में फक् प्रत्यय हो॥ १०२॥

द्रोणपर्वत जीवन्तादन्यतरस्याम् १०३

द्रो० द्, अ० म्। एभ्यो गोत्रे वा फक् स्यात्। यथा-द्रौणायनः। द्रौणिः। पार्वतायनः। पार्वतिः। जैवन्तायनः। जैवन्तिः॥

द्रोण, पर्वत और जीवन्त प्रातिपदिक से गोत्रापत्य में विकल्प से फक् प्रत्यय हो॥

अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ्॥१०४॥

अ० ये, बि० भ्यः, अञ् । एभ्यो गोत्रेऽञ् स्यात् । येत्यत्रानृषयस्तेभ्य अनन्तरे सूत्रेस्वार्थेष्यञ् । यथा--विदस्यगोत्रापत्यम्--वैदः । अनन्तरो वैदिः । बाह्वादेराकृतिगणत्वादिञ् । पुत्रस्यापत्यम्- पौत्रः । दुहितुरपत्यम्-दौहित्रः ॥

ऋषि वर्जित पुत्रादि शब्दों से अनन्तरापत्य में और विदादि प्रातिपदिकोंसे गोत्रापत्य में अञ् प्रत्ययहो ॥ १०४ ॥

गर्गादिभ्योयञ् ॥ १०५ ॥

ग० भ्यः, यञ् । गर्गादिभ्यो गोत्रापत्ये यञ् स्यात् । यथा-गार्ग्यः । वात्स्यः ॥

गोत्रापत्य में गर्ग आदि प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय हो ॥ १०५ ॥

मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः॥१०६॥

मं० वोः, ब्रा० योः । गोत्रे यञ् स्यात् । यथा-माधव्यो ब्राह्मणः । माधवोऽन्यः । बाभ्रव्यः कौशिक ऋषिः । बाभ्रवोऽन्यः ॥

यथाक्रम ब्राह्मण और कौशिक गोत्र वाच्य हो तो मधु और बभ्रु प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय हो ॥ १०६ ॥

कपि बोधा दाङ्गिरसे ॥ १०७ ॥

क० दू, आं० से । कपि बोध शब्दाभ्यामाङ्गिरसेऽपत्यविशेषे गोत्रे यञ् स्यात् । यथा-काप्यः । बौध्यः ॥

आङ्गिरसगोत्रवाच्य हो तो कपि और बोध शब्द से यञ् प्रत्यय हो १०७ ॥

वतण्डाच्च ॥ १०८ ॥

व० तं, च । वतण्डशब्दादाङ्गिरसेऽपत्यविशेषे गोत्रे यञ् स्यात् । यथा—वातण्ड्यः ॥

आङ्गिरसगोत्रवाच्य हो तो वतण्ड शब्द से यञ् प्रत्यय हो ॥ १०८ ॥

लुक् स्त्रियाम् ॥ १०९ ॥

वतण्डशब्दादाङ्गिरस्यां स्त्रियां यञो लुक् स्यात् । यथा—वतण्डी ॥

अङ्गिरस गोत्रीय स्त्रीवाच्य हो तो वतण्ड शब्द से विहित यञ् प्रत्यय का लुक् हो

अश्वादिभ्यः फञ् ॥ ११० ॥

गोत्रापत्ये । यथा--आश्वायनः । आश्मायनः ॥

अश्व आदि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में फञ् प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

भर्गात्त्रैगर्त्ते ॥ १११ ॥

भर्गशब्दादपत्ये विशेषे त्रैगर्त्ते गोत्रे फञ् स्यात् । यथा--भार्गायणस्त्रैगर्त्तः । भार्गिरन्यः ॥

त्रैगर्त्त गोत्रवाच्य हो तो भर्गशब्द से फञ् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

शिवादिभ्योऽण् ॥ ११२ ॥

गोत्र इति निवृत्तम् । यथा--शिवस्यापत्यम्--शैवः ॥

शिवआदि प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

१—शार्ङ्गरवाद्यिल्वान् ङीन् ।

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ॥ ११३ ॥

अ० भ्यः, न० भ्यः, त० भ्यः । अवृद्धो नदीमानुषी नामभ्योऽण् स्यात् । यथा—यमुनाया अपत्यम्—यामुनः । नार्मदः । मानुषीभ्यः । शिक्षिताया अपत्यम्- शैक्षितः ॥

अपत्यार्थ में नदी और मानुषीवाचक अवृद्ध नामोंसे अण् प्रत्यय हो ॥ ११३ ॥

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ११४ ॥

ऋ० भ्यः, च । ऋषयोमन्त्रद्रष्टारः । एभ्योऽण् स्यात् । यथा- वासिष्ठः ॥ वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः । श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः । वासुदेवः । आनुरुद्धः । कुरुभ्यः, नाकुलः । साहदेवः ॥

ऋषि, अन्धक, वृष्णि और कुरुशब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ११४ ॥

मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः ॥ ११५ ॥

मातुः, उत्, स० याः । सङ्ख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च । यथा—द्वयोर्मात्रोरपत्यम्—द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः ॥

सङ्ख्यावाची, सम् तथा भद्र शब्द जिसके पूर्व हों ऐसे मातृशब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय और उकारादेश हो ॥ ११५ ॥

कन्यायाः कनीन च ॥ ११६ ॥

कन्याशब्दादपत्येऽण् तत्सन्नियोगेन कनीनादेशश्च । यथा—क-

न्यायाः-अपत्यम्-कानीनो व्यासः कर्ण ईसा इत्यपिश्रूयते। अनूढाया एवापत्यमित्यर्थः ॥

कन्या शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय और कन्या को कनीन आदेश हो॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ॥

विकर्णशुङ्गच्छगल शब्देभ्यो यथासङ्ख्यं वत्स भरद्वाजात्रिष्वपत्यविशेषेष्वण् स्यात्। यथा-वैकर्णोवात्स्यः। वैकर्णिरन्यः। शौङ्गोभारद्वाजः। शौङ्गिरन्यः। छागल आत्रेयः। छागलिरन्यः॥

यथाक्रम वत्स, भरद्वाज अत्रि अपत्यवाच्य हों तो विकर्ण, शुङ्ग और छगल शब्द से अण् प्रत्यय हो॥ ११७॥

पीलाया वा ॥ ११८ ॥

अपत्येवाण्। यथा-पीलाया अपत्यम्--पैलः। पैलेयः॥

पीला शब्दसे अपत्य में विकल्प से अण् प्रत्यय हो॥ ११८॥

ढक् च मण्डूकात् ॥ ११९ ॥

चादण् पक्षे इञ्। यथा-माण्डूकेयः। माण्डूकः। माण्डूकिः॥

माण्डूक प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढक् इञ् और अण् प्रत्यय हो॥ ११९॥

स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १२० ॥

स्त्रीभ्यः, ढक्। स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् स्यात्। यथा-वैनतेयः॥ याशोदेयः॥

स्त्री प्रत्ययान्त प्रादिपदिकों से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो॥ १२०॥

द्व्यचः ॥ १२१ ॥

द्व्यचः स्त्रीप्रत्ययान्तादपत्ये ढक् स्यात्। यथा-दत्ताया अपत्यम्-दात्तेयः ॥

स्त्रीप्रत्ययान्त दो अच् वाले प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो ॥१२१॥

इतश्चानिञः ॥ १२२ ॥

इतः, च, अनिञः । इकारान्तादनिञन्ताद् द्व्यचोऽपत्ये ढक् स्यात् । यथा-दौलेयः । नैधेयः ॥

अनिञन्त इकारान्त प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

शुभ्रादिभ्यश्च ॥ १२३ ॥

शु० भ्यः, च। ढक् स्यात्। यथा-शुभ्रस्यापत्यम्-शौभ्रेयः ॥

शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो ॥१२३॥

विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥ १२४ ॥

विकर्णशब्दात् कुषीतशब्दाच्च काश्यपेऽपत्यविषये ढक् स्यात्। यथा-वैकर्णेयः । कौषीतकेयः ॥

काश्यप गोत्रोत्पन्न अपत्य वाच्य हो तो विकर्ण तथा कुषीत शब्द से ढक् प्रत्यय हो॥

भ्रुवो वुक् च ॥ १२५ ॥

भ्रुवः, वुक्, च। भ्रूशब्दादपत्ये ढक् तत्सन्नियोगेन च वुगागमः। यथा-भ्रौवेयः ॥

भ्रू शब्द से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो और भ्रू शब्द को वुक् का आगम हो १२५

कल्याण्यादीनामिनङ् च ॥ १२६ ॥

क०म्, ईनङ्, च । अपत्ये एषामिनङादेशश्चाच्च ढक् । यथा-काल्याणिनेयः । सौभागिनेयः ॥

कल्याणी आदि शब्दों से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो तथा कल्याणी आदि शब्दों को इनङ् आदेश हो ॥ १२६ ॥

कुलटाया वा ॥ १२७ ॥

कु०याः, वा । कुलान्यटतीति- कुलटा । वेनङादेशो ढक् प्रत्ययश्च स्यात् । यथा-कौलटिनेयः । कौलटेयः ॥

कुलटा (बदमाश) शब्द से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो और कुलटा को विकल्प से इनङादेश हो ॥ १२७ ॥

चटकाया ऐरक् ॥ १२८ ॥

च०याः, ऐरक् । (चटकस्येति वाच्यम्) ॥ यथा-चटकस्य चटकाया वाऽपत्यम्-चाटकैरः ॥ (स्त्रियामपत्ये लुग्वाच्यः) ॥ चटकाया अपत्यस्त्री, चटका । अजादित्वाट्टाप् ॥

चटका (चिड़िया) शब्द से अपत्यार्थ में ऐरक् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

गोधाया ढ्रक् ॥ १२९ ॥

गो०याः, ढ्रक् । यथा-गौधेरः ॥

गोधा (गोह) शब्द से अपत्यार्थ में ढ्रक् प्रत्यय हो ॥ १२९ ॥

आरगुदीचाम् ॥ १३० ॥

आरक्, उ० म् । गोधाया अपत्ये वाऽऽरक् स्यात् । यथा-गौधारः ॥

उद्गदेशस्थों के मत में गोधाशब्द से अपत्यार्थ में आरक् प्रत्यय हो ॥ १३० ॥

क्षुद्राभ्यो वा ॥ १३१ ॥

क्षु०भ्यः, वा । अङ्गहीनाः शीलहीनाश्चक्षुद्रा ताभ्यो वा द्रक् । पक्षे ढक् । यथा—काणेरः । काणेयः । दासेरः । दासेयः ॥

क्षुद्रावाची प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में विकल्प से द्रक् प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

पितृष्वसुश्छण् ॥ १३२ ॥

पि०सुः, छण् । पितृष्वसृशब्दादपत्ये छण् स्यात । यथा—पैतृष्वस्रीयः ॥

पितृ स्वसु शब्द से अपत्य अर्थ में छण् प्रत्यय हो ॥ १३२ ॥

ढकि लोपः ॥ १३३ ॥

पितृष्वसुरन्त लोपः स्याड्ढकि । यथा—पैतृष्वसेयः । अतएवज्ञापकाड्ढक् ॥

अपत्यार्थ ढक्प्रत्ययपरे होतो पितृष्वसृशब्द से अन्तका लोप हो ॥ १३३ ॥

मातृष्वसुश्च ॥ १३४ ॥

मा०सुः, च । पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि स्यात् । यथा—मातृष्वस्रीयः । मातृष्वसेयः ॥

अपत्यार्थ में पितृष्वसृशब्द के समान मातृष्वसृ शब्द से भी छण् प्रत्यय और ढक् प्रत्यय के परे अन्तका लोप हो ॥ १३४ ॥

चतुष्पादभ्यो ढञ् ॥ १३५ ॥

च०भ्यः, ढञ् । चतुष्पादभि धायिनीभ्यः प्रकृतिभ्योऽपत्ये ढञ्

स्यात् । यथा—कामण्डलेयः । कमण्डलुशब्दश्चतुष्पाज्जातिविशेषे ॥
चतुष्पाद्वाची प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ १३६ ॥

गृ०भ्यः, च । अपत्ये ढञ् स्यात् । यथा—गार्ष्टेयः । हार्ष्टेयः ॥
गृष्टि आदि प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ १३६ ॥

राजश्वशुराद् यत् ॥ १३७ ॥

(राज्ञो जाता वेवेति वाच्यम्) ॥ राजन् श्वशुरशब्दाभ्यामपत्ये यत् स्यात् । यथा—राजन्यः[1] । श्वशुर्यः ॥
राजन् तथा श्वशुर शब्द से अपत्यार्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १३७ ॥

क्षत्राद् घः ॥ १३८ ॥

जातौ क्षत्रशब्दादपत्ये घः स्यात् । यथा—क्षत्रियः[2] ॥
क्षत्र शब्द से अपत्य अर्थ में घ प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

कुलात् खः ॥ १३९ ॥

कुलशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् केवलाच्चापत्येखः स्यात् । यथा—श्रोत्रियकुलीनः[3] । कुलीनः ॥
कुल जिसके अन्त में हो अथवा केवल कुलशब्द से अपत्यार्थ में खप्रत्यय हो ॥

अपूर्व पदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ ।१४०।

१-(६ । ४ । १६८) इत्यनो नो लोपः । २-(७ । १ । २) इति घस्य इयादेशः । ३-(७ । १ । २) इति खस्य ईनादेशः ॥

अं० द् अ॰ म्, यं० औ । अपूर्वपदात् कुलशब्दान्ताद् वा यड् ढकञौ स्याताम् । पक्षे खः । यथा—कुल्यः । कौलयकः । कुलीनः । पदग्रहणं किम् । बहुकुल्यः । बाहुकुलेयकः । बहुकुलीनः ॥

पूर्वपद रहित कुलशब्द से अपत्यार्थ में विकल्प से यत् और ढकञ् प्रत्यय हो ॥

महाकुलादञ् खञौ ॥ १४१ ॥

मं० द्, अं० औ । अन्यतरस्यामित्यनुवर्त्तते । पक्षे खः । यथा—माहाकुलः । माहाकुलीनः । महाकुलीनः ॥

महाकुलशब्द से अपत्यार्थ में विकल्प से अञ् और खञ् प्रत्यय हो ॥ १४१ ॥

दुष्कुलाद् ढक् ॥ १४२ ॥

दुष्कुलशब्दादपत्ये ढक् स्यात् । खश्च यथा—दौष्कुलेयः । दुष्कुलीनः ॥

दुष्कुल प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में विकल्प से ढक् प्रत्यय हो ॥ १४२ ॥

स्वसुश्छः ॥ १४३ ॥

स्वसृशब्दादपत्ये छः स्यात् । यथा—स्वस्रीयः ॥

स्वसृशब्द से अपत्यार्थ में छ प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

भ्रातुर्व्यच्च ॥ १४४ ॥

भ्रातुः, व्यत्, च । भ्रातृशब्दादपत्ये व्यत् स्याच्चाच्छः । यथा—भ्रातृव्यः । भ्रात्रीयः ॥

भ्रातृशब्द से अपत्यार्थ में व्यत् और छ प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

व्यन् सपत्ने ॥ १४५ ॥

भ्रातुर्व्यन् स्यादपत्ये प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन शत्रौ वाच्ये। यथा-भ्रातृव्यः शत्रुः। पाप्मना भ्रातृव्येणेति तूपचारात्॥

यदि प्रकृति प्रत्यय समुदाय से शत्रु वाच्य हो तो भ्रातृशब्द से व्यन् प्रत्यय हो

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ १४६ ॥

रे०भ्यः, ठक् । ठस्येकः । यथा-रैवतिकः ॥

रेवति आदि प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १४६ ॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने णः च ॥ १४७ ॥

गोत्रं या स्त्री तद्वाचकाच्छब्दात् कुत्सायां णठकौस्याताम्। यथा-गार्ग्या अपत्यं गार्गो गार्गिको वा जाल्मः॥

स्त्रीलिङ्ग गोत्रवाची शब्द से निन्दागम्यमान होनेपर अपत्यार्थ में ण और ठक् प्रत्यय हो ॥ १४७ ॥

वृद्धात् ठक् सौवीरेषु बहुलम् ॥ १४८ ॥

सुवीरदेशोद्भवाः सौवीराः। वृद्धात्सौवीरगोत्राद्यूनि बहुलं ठक् स्यात् कुत्सायाम्। यथा--भागवित्तेर्भागवित्तिकः। पक्षे फक् भागवित्तायनः॥

निन्दा गम्यमान हो तो वृद्ध सौवीर गोत्र से अपत्यार्थ में बहुलकरके ठक् प्रत्यय हो ॥ १४८ ॥

फेश्छ च ॥ १४९ ॥

फेः, छ, च। कुत्सायां फिञन्तात् सौवीरगोत्रापत्ये छठकौ स्याताम्। यथा--यमुन्दस्यापत्यम् यामुन्दायनिः। तिकादित्वात् फिञ्। तस्यापत्यं यामुन्दायनीय। या मुन्दायनिकः॥

कुत्सा गम्यमान हो तो फिञ् प्रत्ययान्त सौवीर गोत्र प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में छ तथा ठक् प्रत्यय हो ॥ १४९ ॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ॥ १५० ॥

नो अत्र यथा सङ्ख्यम् । अल्पाच्तरस्य व्यभिचारत्वात् । आभ्यां सौवीर विषयाभ्यामपत्ये णफिञै । स्याताम् । यथा—फाण्टाहृतः । फाण्टाहृतायनिः । मैमतः । मैमतायनिः ॥

सौवीर विषयक फाण्टाहृति तथा मिमत शब्द से अपत्यार्थ में ण और फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५० ॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ १५१ ॥

कुरु इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्योऽपत्ये ण्यः स्यात् । यथा—कौरव्यः ॥

कुरुआदि शब्दों से अपत्यार्थ में ण्य प्रत्यय हो ॥ १५१ ॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥ १५२ ॥

एभ्यो ण्यः स्यात् । यथा—हारिषेण्यः । लाक्षण्यः । कौम्भकार्य्यः ॥

सेनान्त, लक्षण और कारिवाची प्रातिपदिकोंसे अपत्यार्थमें ण्य प्रत्यय हो ॥ १५२ ॥

उदीचामिञ् ॥ १५३ ॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्योऽपत्ये इञ् स्यादुदीचांमतेन । यथा—कारिषेणिः । लाक्षणिः । तान्तुवायिः ॥

उदग्देश वाची आचार्य्यों के मत से सेनान्त लक्षण और कारिवाची प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय हो ॥ १५३ ॥

तिकादिभ्यः फिञ् ॥ १५४ ॥

यथा—तैकायनिः ॥

तिक आदिशब्दों से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५४ ॥

कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ॥ १५५ ॥

आभ्यांफिञ्। यथा—कोसलस्यापत्यम्—कौसल्यायनिः। कर्मारस्यापत्यम्—कार्मार्यायणिः। (छागवृषयोरपि)॥ छागस्यापत्यम्—छाग्यायनिः। वार्ष्यायणिः ॥

कौसल्य और कार्मार्य शब्द से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५५ ॥

अणो द्व्यचः ॥ १५६ ॥

अणन्ताद् द्व्यचोऽपत्ये फिञ् स्यात्। यथा—कात्र्यायणिः* ॥

अण् प्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो॥१५६॥

उदीचां वृद्धाद् गोत्रात् ॥ १५७ ॥

वृद्धं यच्छब्दरूपमगोत्रं तस्मादपत्ये फिञ्स्यादुदीचां मतेन। यथा—आम्रगुप्तायनिः। आम्रगुप्तिः ॥

उदग्देशीय आचार्यों के मत में अगोत्र वृद्ध प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५७ ॥

वाकिनादीनां कुक् च ॥ १५८ ॥

वाकिन इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्योऽपत्ये वा फिञ् तत् सन्नियोगेन चैषां कुगागमः। यथा—वाकिनकायनिः। वाकिनिः ॥

वाकिन आदि शब्दों से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय और वाकिन आदि शब्दों को कुक् का आगम हो ॥ १५८ ॥

पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ॥ १५९ ॥

* [त्यदादीनां वा फिञ् वाच्यः]—त्यादायनिः। त्यादः।

पुत्रान्तात् प्रातिपदिकाद्यः फिञ् तस्मिन् परभूते वा कुगागमः स्यात् पुत्रान्तस्य। यथा-गार्गीपुत्रकायणिः। गार्गीपुत्रायणिः। गार्गीपुत्रिः॥

उदग्देशीय आचार्य्यों के मत में अगोत्र वृद्ध पुत्रान्त प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो और पुत्रान्त प्रातिपदिक को कुक् का आगम विकल्प से हो॥

प्राचाम् वृद्धात् फिन् बहुलम्॥ १६०॥

अवृद्धाच्छब्दरूपादपत्ये बहुलं फिन् स्यात्प्राचां मतेन। यथा-ग्लुचुकायनिः। ग्लौचुकिः॥

प्राग्देशीय आचार्य्यों के मत से अवृद्ध शब्द से अपत्यार्थ में फिन् प्रत्यय विकल्प से हो॥ १६०॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च॥ १६१॥

मनुशब्दादञ्यत् प्रत्ययौ स्याताम्। तत्सन्नियोगेन च षुगागमः समुदायेन चेज्जातिर्गम्यते। यथा-मानुषः। मनुष्यः॥

यदि समुदाय से जातिगम्यमान हो तो मनु शब्द से अञ् और यत् प्रत्यय हो

अपत्यंपौत्र प्रभृति गोत्रम्॥ १६२॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्। यथा-गर्गस्यापत्यम् पौत्रप्रभृति-गार्ग्यः॥

पौत्र प्रभृति अपत्य गोत्र गोत्र संज्ञक हो॥ १६२॥

जीवति तु वंश्ये युवा॥ १६३॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसञ्ज्ञकमेव स्यात्। नतु गोत्रसञ्ज्ञकम्। यथा-गार्ग्यायणः॥

वंशमें पित्रादिके जीतेहुए पौत्र प्रभृति का अपत्य युव संज्ञक हो ॥ १६३ ॥

भ्रातरि च ज्यायसि ॥ १६४ ॥

ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति कनीयान् चतुर्थादि युवसंज्ञकः स्यात्। यथा-गार्ग्ये जीवति गार्ग्यायणोस्य कनीयान् भ्राता ॥

बड़े भाई के जीतेहुए छोटा भाई युव संज्ञक हो ॥ १६४ ॥

वा अन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति

भ्रातुरन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवदेव युवसञ्ज्ञकं वा स्यात्। एकं जीवति ग्रहणम्, अपत्यविशेषणम्, द्वितीयं सपिण्डस्य। तरब्निर्देशः उभयोरुत्कर्षार्थः। स्थानेन वयसाचोत्कृष्टे पितृव्ये, मातामहे, भ्रातरिवा, वयसाधिके जीवति। यथा-गार्ग्यस्यापत्यम्-गार्ग्यायणः। गार्ग्यो वा ॥

बड़े भाई से इतर पीढ़ी में किसी अतिवृद्ध पितृव्यादिके जीनेपर पौत्रप्रभृति का अपत्य विकल्प से युवसंज्ञक हो ॥ १६५ ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियाद् अञ् ॥ १६६ ॥

जनपद क्षत्रिययोर्वाचकादञ् स्यादपत्ये। यथा-पाञ्चालः * ॥

क्षत्रिय वाची जनपद शब्द से अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १६६ ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ॥ १६७ ॥

* (वृद्धस्यचपूजायामिति वाच्यम्]। तत्रभवान् गार्ग्यायणः। [यूनश्चकुत्सायामितिगोत्रं वाच्यम्) गार्ग्योजाल्मः।

* (क्षत्रिय समान शब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्) पञ्चालानां राजा-पाञ्चालः। (पूरोरण वक्तव्यः) पौरवः। [पाण्डोर्ड्यण्] पाण्डयः ॥

आभ्यामपत्येऽञ् स्यात् । यथा—साल्वेयः गान्धारः ॥

क्षत्रिय वाची साल्वेय और गान्धारि जनपद प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १६७ ॥

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् १६८

जनपद शब्दात् क्षत्रियाभिधायिनोद्व्यचो मगधादिभ्यश्चापत्येऽण् स्यात् । यथा—आङ्गः । मागधः । कालिङ्गः । सौरमसः ॥

जनपद शब्दसे क्षत्रिय अभिधेय होतो द्व्यच् प्रातिपदिक और मगध कलिङ्ग सूरमस प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ १६८ ॥

वृद्धेत्कोसलाजादात् ञ्यङ् १६९

जनपद शब्दात् क्षत्रियाभिधायिनो वृद्धाच्च प्रातिपदिकादिकारान्ताच्च कोसलाजादशब्दाभ्यां चापत्ये ञ्यङ् स्यात् । यथा—आम्बष्ठ्यः इत्—आवन्त्यः कौसल्यः । अजादस्यापत्यम् आजाद्यः ॥

क्षत्रियवाची वृद्ध संज्ञक इकारान्त कोसल और अजाद जनपद शब्दों से अपत्यार्थ में ञ्यङ् प्रत्यय हो ॥ १६९ ॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः ॥ १७० ॥

जनपद शब्दात्क्षत्रियाभिधायिनः कुरुशब्दान्नादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो ण्यः स्यात् । यथा—कौरव्यः । नैषध्यः ॥

क्षत्रिय वाची कुरु और नकारादि जनपद शब्दों से अपत्यार्थ में ण्य प्रत्यय हो ॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्

साल्वो जनपदः । तदवयवाः । उदुम्बरादयः । तेभ्यः प्रत्यग्रथा-

दिभ्य स्त्रिभश्च इञ् स्यात् । यथा--औदुम्बरिः प्रात्यग्रथिः कालकूटिः । आश्मकिः ॥

क्षत्रिय वाची साल्वावयव प्रत्यग्रथ कलकूट अश्मक इन जनपद शब्दों से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्ययहो ॥ १७१ ॥

ते तद्राजाः ॥ १७२ ॥

अञादयः एतत् सञ्ज्ञकाः स्युः ॥

क्षत्रिय वाचक जनपद शब्दों से विहित अञादि प्रत्यय तद्राजक संज्ञकहो ॥

कम्बोजात् लुक् ॥१७३॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक् स्यात् । यथा—कम्बोजः* ॥

कम्बोज शब्दसे उत्पन्न तद्राज सञ्ज्ञक प्रत्ययका लुकहो ॥ १७३॥

स्त्रियाम वन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥१७४॥

तद्राजस्य लुक् स्यात् । यथा—अवन्ती । कुन्ती । कुरूः ॥

स्त्री अभिधेय होतो अवन्ति कुन्ति और कुरु शब्दसे उत्पन्न तद्राज संज्ञक प्रत्ययका लुक् हो ॥ १७४ ॥

आतश्च ॥ १७५ ॥

तद्राजस्याकारस्य स्त्रियां लुक् स्यात् । यथा—शूरसेनस्य पत्यम्—शूरसेनानां वा राज्ञी शूरसेनी ॥

स्त्री वाच्य होतो तद्राज संज्ञक अकार प्रत्ययका लुक्हो ॥ १७५ ॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥१७६॥

* [कम्बोजादिभ्य इति वाच्यम्] चोलस्यापत्यम्—चोलः । यवनस्यापत्यम्—यवनः ।

एभ्यस्तद्राजस्य न लुक्। यथा—पञ्चालस्यापत्यम्—पञ्चालानांवा राज्ञी पाञ्चाली। भर्गस्यापत्यम्—भार्गी। यौधेयस्यपत्यम्—यौधेयी ॥

प्राच्य भर्गादि और यौधेयादि प्रातिपदिकों से उत्पन्न तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लुक् न हो ॥ १७६ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः

तेन रक्तं रागात् ॥ १ ॥

रज्यतेऽनेति रागः। यथा—कषायेण रक्तं वस्त्रं—काषायम्। माजिष्ठम्॥

तृतीया समर्थ रागविशेषवाची शब्द से रक्त अर्थमे यथाविहित प्रत्यय हों ॥ १ ॥

लाक्षारोचनात् ठक् ॥ २ ॥

लाक्षादिभ्योरागवचनेभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यो रक्तमित्येतस्मिन् विषये ठक् स्यात्। यथा—लाक्षयारक्तं वस्त्रम्—लाक्षिकम् रौचनिकम् *

तृतीया समर्थ रागवाची लाक्षा और रोचनाशब्दसे रक्त अर्थमें ठक् प्रत्यय हो ॥२॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥ ३ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थान्नक्षत्र विशेषवाचिनः शब्दाद् युक्त इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा—पुष्येण युक्तं -पौषम्-- अहः, पौषीरात्रिः ॥

तृतीयासमर्थ नक्षत्र विशेषवाची शब्दसे युक्तकाल अर्थ में यथाविहित प्रत्ययहो ॥३

---

* [सलककर्दमाभ्यामुपसङ्ख्यानम्) शाकलिकम्। कार्दमिकम्। [आभ्यामणपि) शाकलम्। कार्दमम् [नील्या अन् वक्तव्यः]। नील्यारक्तं नीलंवस्त्रम्। [पीतात्कन्वाच्यः]। पीतेनरक्तं पीतकम् [हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्] हारिद्रम्। महारजनम् ॥

लुब् विशेषे ॥ ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य प्रत्ययस्य लुप् स्यात् । षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तर विशेषश्चेन्नगम्यते । यथा- अद्यपुष्यः ॥

यदि विशेषकालवाच्य नहोतो नक्षत्र विशेषवाचीशब्दसे उत्पन्नप्रत्ययकालुक्हो ४

सञ्ज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ॥ ५ ॥

सञ्ज्ञायां विषये श्रवणशब्दादश्वत्थशब्दाच्चोत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुप् स्यात् । यथा-श्रवणारात्रिः । अश्वत्थोमुहूर्तः ॥

सञ्ज्ञा विषय में नक्षत्रवाची तृतीया समर्थ श्रवण और अश्वत्थ शब्द से उत्पन्न प्रत्यय का लुप् हो ॥ ५ ॥

द्वन्द्वाच्छः ॥ ६ ॥

नक्षत्रद्वन्द्वात्तृतीयासमर्थाद्युक्ते काले छः स्यात् विशेषे चाविशेषे। यथा-तिष्यपुनर्वसवीयमहः । राधानुराधीया-रात्रिः ॥

तृतीया समर्थ नक्षत्र द्वन्द्व से युक्त काल अर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

दृष्टं साम ॥ ७ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थाद् दृष्टं सामेत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा--विश्वामित्रेण दृष्टं--वैश्वामित्रम् * ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से "दृष्ट साम" इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो॥

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ॥ ८ ॥

वामदेवशब्दात्तृतीयासमर्थाद् दृष्टं सामेत्यस्मिन्नर्थे ड्यत् ड्यौ स्याताम् । यथा -वामदेवेन दृष्टं साम-वामदेव्यंसाम ॥

तृतीयासमर्थ वामदेवशब्द से दृष्टसाम इसअर्थ में ड्यत् और ड्य प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

* (अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वाच्यः) उशनसा दृष्टम् — औशनसम् , । (कलेर्ढक्) कलिनादृष्टं साम, कालेयम् ॥

परिवृतो रथः ॥ ९ ॥

तेनेति तृतीया समर्थात्परिवृत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा—वस्त्रेण परिवृतोरथः, वास्त्रोरथः ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से परिवृतरथ इस अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो॥ ९॥

पाण्डुकम्बलादिनिः ॥ १० ॥

पाण्डुकम्बलशब्दात् तृतीयासमर्थात् परिवृतोरथ इत्येतस्मिन्नर्थे इनिः स्यात् । यथा—पाण्डुकम्बलेन परिवृतोरथः—पाण्डुकम्बलीरथः। पाण्डुकम्बलशब्दो राजास्तरणस्य वर्णकम्बलस्य वाचकः ॥

तृतीयासमर्थ पाण्डुकम्बलशब्द से परिवृतरथ इस अर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥१०॥

द्वैपवैयाघ्रादञ् ॥ ११ ॥

द्वीपिव्याघ्रयोर्विकारभूते चर्म्मणी द्वैपवैयाघ्रे, ताभ्यां तृतीया समर्थाभ्यां परिवृतोरथ इत्येतास्मिन्नर्थे अञ् स्यात् । यथा—द्वैपेन परिवृतोरथो द्वैपः । वैयाघ्रः ॥

तृतीयासमर्थ चर्म वाची द्वैप और वैयाघ्र शब्द से परिवृतरथ इस अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

कौमाराऽपूर्ववचने ॥ १२ ॥

कौमारमित्येतदण् प्रत्ययान्तं निपात्यते । यथा—अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः—कौमारः--पतिः--यद्वा अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना-कौमारी भार्य्या ॥

अपूर्व वचन योत्य होनेपर अण् प्रत्ययान्त कौमार शब्द निपातित है ॥१२॥

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥ १३ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थादमत्र वाचिनः शब्दा दुद्धृतमित्ये तस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा—स्थाले उद्धृतः-स्थालः-ओदनः । उद्धरतिरिह-उद्धरण पूर्वके निधाने वर्त्तते । तेन सप्तमी । उद्धृत्य निहित इत्यर्थः ॥

सप्तमी समर्थ अमत्र (पात्र) वाची प्रातिपदिकों से उद्धृत इस अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ॥ १४ ॥

स्थण्डिलशब्दात् सप्तमी समर्थात् शयितर्यभिधेये यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, समुदायेन चेद् व्रतं गम्यते । व्रतमिति शास्त्रोक्तो नियम उच्यते यथा—स्थण्डिले शयितुं व्रतमस्य स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी

यदि समुदाय से व्रत गम्यमान हो तो शयिता वाच्य होनेपर सप्तमी समर्थ स्थण्डिल शब्द से यथाविहित प्रत्यय हो ॥ १४ ॥

संस्कृतम् भक्षाः ॥ १५ ॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे--यत् संस्कृतं भक्षाश्चेतेस्युः । यथा—भ्राष्ट्रे संस्कृताः--भ्राष्टाः- यवाः ॥

सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो १५

शूलोखाद् यत् ॥ १६ ॥

शूलशब्दादुखाशब्दाच्च सप्तमी समर्थात् संस्कृतं भक्षा इत्येतास्मिन्नर्थे यत् स्यात् । यथा—शूले संस्कृतं-शूल्यम्-मांसम् । उखायां संस्कृतम्-उख्यमोदनम् ॥

सप्तमी समर्थ शूल और उखा (हांडी) शब्द से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

दध्नष्ठक् ॥ १७ ॥

दधिशब्दात् सप्तमीसमर्थात् संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् स्यात् । यथा—दध्नि संस्कृतं दाधिकम् ॥

सप्तमी समर्थ दधि शब्द से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ॥ १८ ॥

उदश्वित्शब्दात् सप्तमीसमर्था त्संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे वा ठक् स्यात् । पक्षेऽण् । यथा—उदकेन श्वयति वर्धते इति उदश्वित् । तस्मिन् संस्कृतम्-औदश्वित्कम्-(७ । ३ । ५१ इति ठस्येकः) । औदश्वितम् ॥

सप्तमी समर्थ उदश्वित् (मट्ठा) शब्द से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में विकल्प से ठक् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

क्षीराड्ढञ् ॥ १९ ॥

क्षीरशब्दात् सप्तमी समर्थात् संस्कृत भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे ढञ् स्यात् । यथा—क्षीरेसंस्कृता क्षैरेयी यवागूः ॥

सप्तमी समर्थ क्षीरशब्द से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

सांऽस्मिन् पौर्णमासी इति ॥ २० ॥

सेति प्रथमा समर्था दस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, यत्प्रथमा समर्थं पौर्णमासी चेत्स्य त् । यथा—पौषी पौर्णमासी अस्मिन् पौषोमासः ॥

पुष्यनक्षत्र से युक्त पूर्णिमा जिसमास मे हो उसमासका नाम पौष है। प्रथमा समर्थ पौर्णमासी वाचीशब्द से सप्तम्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ २० ॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ॥ २१ ॥

आग्रहायणी शब्दादश्वत्थशब्दाच्च प्रथमा समर्थात्पौर्णमास्युपाधिकादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे ठक् स्यात् । यथा-अग्रे हायनमास्या इति-आग्रहायणी । प्रज्ञादेराकृतिगणत्वादण् । पूर्वपदात् सञ्ज्ञामिति (८।४।३) णत्वम् । आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन् आग्रहायणिकोमासः । अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमासी-अश्वत्थः । निपातात् पौर्णमास्यामपि लुक् । आश्वत्थिकः ॥

पौर्णमास्युपाधिक प्रथमा समर्थ आग्रहायणी और अश्वत्थ से सप्तम्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः ॥ २२ ॥

एभ्यष्ठग्वापक्षेऽण् । यथा-फाल्गुनिकः, फाल्गुनोमासः। श्रावणिकः, श्रावणः । कार्त्तिकिकः, कार्त्तिकः। चैत्रिकः, चैत्रः ॥

प्रथमा समर्थ पौर्णमासीवाची फाल्गुनी, श्रवणा, कार्त्तिकी और चैत्रीशब्द से सप्तम्यर्थ में विकल्प से ठक् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

सोऽस्य देवता ॥ २३ ॥

सेति प्रथमा समर्था दस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, यत् तत् प्रथमा समर्थं देवता चेत् स्यात्। यथा-इन्द्रोदेवताऽस्येति-ऐन्द्रमृक् ॥

प्रथमा समर्थ देवतावाची शब्द से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ २३ ॥

कस्येत् ॥ २४ ॥

कशब्दस्य इदादेशः स्यात् प्रत्ययसन्नियोगेन। यथा—को ब्रह्मा देवताऽस्य कायं—हविः ॥

प्रथमासमर्थ देवतावाची कशब्द से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

शुक्राद्घन् ॥ २५ ॥

यथा—शुक्रियम् (७ । १ । २ इतीयादेशः) ॥

प्रथमासमर्थ देवतावाची शुक्रशब्द से षष्ठ्यर्थ में घन् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घः ॥ २६ ॥

अपोनप्तृ अपान्नप्तृ इत्येताभ्यां घः स्यात् सास्यदेवतेत्यस्मिन् विषये। यथा—अपोनप्त्रियम्—हविः। अपान्नप्त्रियम् ॥

प्रथमासमर्थ देवतावाची अपोनप्तृ और अपान्नप्तृशब्दसे षष्ठ्यर्थमें घ प्रत्यय हो २६

छ च ॥ २७ ॥

योगविभागो यथा सङ्ख्यानिवृत्त्यर्थः। अपोनप्तृ अपान्नप्तृ इत्येताभ्यांछोऽपिऽस्यात् सास्यदेवतेत्यस्मिन् विषये। यथा—अपोनप्त्रीयम्—हविः। अपान्नप्त्रीयम् ॥

प्रथमा समर्थ देवतावाची अपोनप्तृ और अपान्नप्तृ शब्द से षष्ठ्यर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

महेन्द्राद् घाणौ च ॥ २८ ॥

महेन्द्रशब्दाद् घाणौ स्यातां चाच्छश्च सास्यदेवतेत्यस्मिन्विषये। यथा—महेन्द्रो देवताऽस्य महेन्द्रियम्—हविः। माहेन्द्रम्। महेन्द्रीयम् ॥

प्रथमा समर्थ देवता वाची महेन्द्र शब्द से षष्ठ्यर्थ में घ, अण् और छ प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

सोमाट्ट्यण् ॥ २९ ॥

सोमशब्दाद् ट्यण् स्यात् सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये। यथा-सोमोदेवताऽस्य स्योम्यम् सूक्तम्। टित्वान्ङीप् सौमी ऋक् ॥

प्रथमा समर्थ देवता वाची सोमशब्द से षष्ठ्यर्थ म ट्यण् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ॥ ३० ॥

वाय्वादिभ्यः शब्देभ्यो यत् स्यात-सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये। यथा-वायुर्देवतास्य वायव्यम्-सूक्तम्। ऋतव्यम्। (७।४। २७)। इतिरीङादेशं कृत्वा-(६।४।१४८ इति सू०) पित्र्यम् उषस्यम्-प्रत्यूपका ॥

सास्य देवता इस अर्थ में वायु आदि शब्दों से यत् प्रत्यय हो ॥ ३० ॥

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोम-वास्तोष्पतिगृहमेधात् छ च ॥३१॥

द्यावापृथिव्यादिभ्यश्छस्स्याद्यच्च। यथा-द्यौश्च पृथिवि च द्यावापृथिव्यौ देवतेऽस्य, द्यावापृथिवीयम्। द्यावापृथिव्यम्। सुनासीरियम्, सुनासीर्यम्। मरुत्वान् देवताऽस्य-मरुत्वीयम्, मरुत्त्वत्यम्। अग्नीषोमीयम्। अग्निसोम्यम्। वास्तोष्पतीयम्, वास्तोष्पत्यम्। गृहमेधीयम्, गृहमेध्यम् ॥

प्रथमा समर्थ देवतावाची द्यावापृथिवी, सुनासीर, मरुत्वत्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति और गृहमेध शब्द से षष्ठ्यर्थ में छ और यत् प्रत्ययहो ॥ ३१ ॥

अग्नेः ढक् ॥ ३२ ॥

अग्नि शब्दाद् ढक् स्यात् सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये। यथा—अग्निर्देवताऽस्य-आग्नेयम्।

प्रथमा समर्थ देवता वाची अग्नि शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ढक् प्रत्ययहो ॥ ३२ ॥

कालेभ्यो भववत् ॥ ३३ ॥

कालविशेषवाचिभ्यः शब्देभ्यो भववत् प्रत्ययाः स्युः, सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये। कालाट्ठञिति प्रकरणे भवे प्रत्यया विधास्यन्ते ते सास्यदेवतेत्यास्मिन् नर्थे तथैवेष्यन्ते। यथा—मासे भवम्—मासिकम्। सांवत्सरिकम्॥

प्रथमा समर्थ देवता वाची काल विशेष वाचक शब्दों से षष्ठ्यर्थ में भववत् (भावाधिकारके तुल्य) प्रत्ययहों ॥ ३३ ॥

महाराजप्रोष्ठपदात् ठञ् ॥ ३४ ॥

आभ्यांठञ्स्यात् सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये॥ यथा—महाराजो देवताऽस्य—माहाराजिकम्। प्रौष्ठपादिकम् * ॥

प्रथमासमर्थ देवता वाची महाराज और प्रोष्ठपद शब्दों से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ३५॥

पितृव्यादयश्शब्दा निपात्यन्ते। (पितुर्भ्रातरिव्यत्)। पितुर्भ्राता—पितृव्यः (मातुर्डुलच्)। मातुर्भ्राता—मातुलः। (मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्)। मातुः पिता—मातामहः। पितुः पिता—पितामहः (मातरिषिच्च) मातामही। पितामही * ॥

* (नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्) नावयज्ञिकः कालः। (पूर्णमासादण्) पूर्णमासोऽस्यां वर्त्तते-पौर्णमासी तिथिः)। * [अवेर्दुग्धे सोढ दूसमरीसचोवक्तव्याः) । अवेर्दुग्ध मविसोढम्। अविदूसम्। अविमरीसम् (तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ) निष्फलस्तिलस्तिलपिञ्जः। तिल पेजः। (पिञ्जश्छन्दसि डिच)। तिल—पिञ्जः॥

पिता का भाई वाच्य होने में पितृ शब्दसे व्यत् प्रत्ययान्त पितृव्य, माता के भाई में मातृ शब्दसे डुलच् प्रत्ययान्त मातुल एवं उक्त दोनों के पिता वाच्य होने पर दोनों से डामहच् प्रत्ययान्त मातामह तथा पितामह शब्द निपातित हैं ॥३५॥

तस्य समूहः ॥ ३६ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थात्समूह इत्येतस्मिन्नर्थे यथा विहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा—काकानां समूहः—काकम् । वकम् * ॥

षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से समूह अर्थ में यथा विहित प्रत्ययहो ॥ ३६ ॥

भिक्षादिभ्योऽण् ॥ ३७ ॥

समूहार्थे भिक्षादिभ्योऽण् स्यात् । यथा—भिक्षाणाम्—समूहः—भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहः—गार्भिणम् । युवतीनांसमूहः-यौवतम् ॥

षष्ठी समर्थ भिक्षादि शब्दों से समूह अर्थ में अण् प्रत्ययहो ॥ ३७ ॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ् ॥ ३८ ॥

समूहार्थे गोत्रादिभ्योवुञ् स्यात् । लौकिकमिह -गोत्रम् । तच्चापत्यमात्रम् (७ । १ । १ इत्यकादेशः) । यथा -औपगवानां समूहः--औपगवकम् । औक्षकम् । औष्ट्रकम-औरभ्रकम् । राजकम्, राजन्यकम् । राजपुत्रकम् । वात्सकम् । मानुष्यकम् । आजकम् * ॥

षष्ठी समर्थ गोत्र (अपत्यमात्र) उक्षन्-उष्ट्र, उरभ्र, (भेड़) राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज शब्द से समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो॥ ३८॥

केदाराद् यञ् च ॥ ३९ ॥

* [गुणादिभ्यो ग्रामज्वाच्यः]। गुणग्रामः । करणग्रामः । इन्द्रियग्रामः । तत्व । शब्द । आकृतिगणः ॥

* [वृद्धाच्चेति वाच्यम्] । वृद्धानां समूहः—वार्द्धकम् ।

समूहार्थे केदारशब्दा द्यञ् चाद् वुञ् । यथा--केदाराणां समूहः-कैदार्यम्, कैदारकम्* ॥

षष्ठीसमर्थ केदारशब्द से समूहार्थ में यञ् और वुञ् प्रत्यय हो ॥ ३९ ॥

ठञ् कवचिनश्च ॥ ४० ॥

समूहार्थे कवचिन् शब्दाट्ठञ् । यथा--कवचिनांसमूहः--कावचिकम् । चात्केदारादपि-कैदारिकम् ॥

षष्ठीसमर्थ कवचिन् और केदारशब्द से समूह अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ४० ॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद् यन् ॥ ४१ ॥

समूहार्थे ब्राह्मणादिभ्यः शब्देभ्यो यन् स्यात् । नकारः स्वरार्थः । यथा--ब्राह्मणानां समूहः-ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् * ॥

ब्राह्मण, माणव (बालक) और वाडव (ब्राह्मण) शब्द से समूहार्थ में यन् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ॥४२॥

समूहार्थे ग्रामादिभ्यस्तल् स्यात् । ग्रामाणां समूहः--ग्रामता । जनता । बन्धुता * ॥

षष्ठी समर्थ ग्राम, जन और बन्धु शब्दसे समूह अर्थ में तल् प्रत्ययहो ॥ ४२ ॥

अनुदात्तादेरञ् ॥ ४३ ॥

समूहार्थेऽनुदात्तादेरञ् स्यात् । यथा--कपोतानां समूहः--कापोतम् । मायूरम् ॥

---

१ * (गणिकाया यञिति वाच्यम्] । गाणिक्यम् । २ * [पृष्ठादुपसङ्ख्यानम्] । पृष्ठ्यम् ॥ (अह्नः खः क्रतौ] अह्नां समूहोऽहीनःक्रतुः । [वातादूलः] । वातानां समूहो वातूलः ॥

* गजसहायताभ्यां चेति वाच्यम् । गजानां समूहः-गजता । सहायता ।

षष्ठी समर्थ अनुदात्तादि शब्दसे समूहार्थ में अञ् प्रत्ययहो ॥ ४३ ॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥ ४४ ॥

समूहार्थे खण्डिकादिभ्योऽञ् स्यात् । यथा -खण्डिकानां समूहः-खाण्डिकम् । वाडवम् ॥

षष्ठी समर्थ खण्डिकादि शब्दों से समूहार्थ में अञ् प्रत्ययहो ॥ ४४ ॥

चरणेभ्यो धर्मवत् ॥ ४५ ॥

समूहार्थे चरणेभ्यो धर्मवत् प्रत्ययाः स्युः । कठानां धर्म्मः-काठकम् ॥

षष्ठीसमर्थ चरणवाची (कठकलापादि) शब्दों से समूहार्थ में धर्मवत् (धर्म-आम्नाय में कहे) प्रत्यय हों ॥ ४५ ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥ ४६ ॥

समूहार्थेऽचित्तार्थेभ्यो हस्तिधेनुशब्दाभ्यां च ठक् स्यात् । यथा-सक्तूनांसमूहः-साक्तुकम् । हास्तिकम् । धैनुकम् ॥

षष्ठी समर्थ अचित्तार्थ हस्तिन् और धेनुशब्द से समूहार्थ में ठक् प्रत्यय हो ४६

केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् ४७

समूहार्थे केश अश्व इत्येताभ्यां यथा सङ्ख्यं यञ् छौ स्याताम् । पक्षेठगणौ । यथा-केशानां समूहः-कैश्यम्, कैशिकम् । अश्वानां समूहः-आश्वम्, अश्वीयम् ॥

षष्ठीसमर्थ केश और अश्वशब्दों से समूहार्थ में विकल्प से यथासङ्ख्य यञ् और छ प्रत्यय हों ॥ ४७ ॥

पाशादिभ्यो यः ॥ ४८ ॥

समूहार्थे पाशादिभ्यो यः स्यात्। यथा—पाशानां समूहः-पाश्या॥
षष्ठीसमर्थ पाशादिशब्दों से समूहार्थ में य प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

खलगोरथात् ॥ ४९ ॥

समूहार्थे खलगोरथशब्देभ्यो यः स्यात्। यथा—खलानांसमूहः-खल्या। गव्या। रथ्या॥
षष्ठीसमर्थ खल, गो और रथ शब्द से समूहार्थ में य प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

इनित्रकट्यचश्च ॥ ५० ॥

समूहार्थे खल गोरथशब्देभ्यो यथासङ्ख्यमिनित्र कट्यच् इत्येते प्रत्ययाः-स्युः। यथा—खलिनी। गोत्रा। रथकट्या * ॥
षष्ठीसमर्थ खल गो और रथ शब्दों से समूहार्थ में यथाक्रम इनि. त्र और कट्यच् प्रत्यय हों ॥ ५० ॥

विषयो देशे ॥ ५१ ॥

षष्ठ्यन्तादणादयः स्युरत्यन्तपरिशीलितेऽर्थे स चेद्देशः। यथा—शिबीनां विषयोदेशः-शैबः। औष्ट्रः॥
षष्ठीसमर्थ देशवाची प्रातिपदिक से विषय अर्थ में अण् आदि प्रत्यय हो ५१

राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥ ५२ ॥

राजन्यानां विषयोदेशः-राजन्यकः। आकृति गणोऽयम्॥
षष्ठीसमर्थ देश वाची राजन्यादि शब्दों से विषयार्थ में वुञ् प्रत्यय हो ५२

भौरिक्याद्यैषुकार्य्यादिभ्योविधल्भक्तलौ

* [खलादिभ्य इनिर्वाच्यः]। डाकिनी। कुटुम्बिनी। आकृति गणोऽयम्॥

भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्य्यादिभ्यश्च यथासङ्ख्यं विधल् भक्तल् इतीमौ स्याताम् विषयोदेश इत्ये तस्मिन्विषये। यथा—भौरिकीणां विषयोदेशः--भौरिकिविधिम् । इषुकारस्या ऽपत्यानि--ऐषुकारयो राजानः। तेषां जनपदः । ऐषुकारिभक्तम् ॥

षष्ठीसमर्थ देशवाची भौरिक्यादि और ऐषुकार्य्यादि प्रातिपदिकों से विषयार्थ में यथाक्रम विधल् और भक्तल् प्रत्यय हो ॥ ५३ ॥

सोऽस्यादिरिति छन्दसः प्रगाथेषु ५४

स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्याच्छन्दसः प्रगाथेषु । यथा—पङ्क्तिरादिरस्य-पाङ्क्तः--प्रगाथः * ॥

प्रगाथवाच्य हों तो समानाधिकरण प्रथमासमर्थ छन्दोवाची प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

संग्रामेप्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥ ५५ ॥

संग्रामेऽभिधेये प्रयोजनवाचिभ्यो योद्धृवाचिभ्यश्च शब्देभ्यः प्रथमा समर्थेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा—सुभद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्येति—सौभद्रः संग्रामः। भरता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य—भारतः संग्रामः ॥

संग्राम वाच्य हो तो प्रथमा समर्थ प्रयोजन वाची और योद्धृवाची शब्दों से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५५ ॥

तदस्यांप्रहरणमितिक्रीडायांणः ॥५६॥

तदिति प्रथमा समर्थादस्यामिति सप्तम्यर्थे णः स्यात्, यत्तदिति निर्दिष्टं प्रहरणंचेत्स्यात्, यदस्यामिति निर्दिष्टं क्रीडाचेत् स्यात्।

* [स्वार्थे उपसङ्ख्यानम्] त्रिष्टुबेव—त्रैष्टुभम् । जागतम् ।

यथा—दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायाम्—दाण्डा, मौष्टा ॥

क्रीडा वाच्य होते प्रथमा समर्थ प्रहरण वाची प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में ण प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

घञः साऽस्यां क्रियेतिञः ॥ ५७ ॥

घञन्तात् क्रियावाचिनः प्रथमा समर्था दस्यामिति सप्तम्यर्थे स्त्री-लिङ्गे ञः स्यात्। घञिति कृद्ग्रहणम्। यथा—श्येनपातोऽस्यां वर्त्तते श्यैनंपाता (६।३।७१ इति मुमागमः)॥

प्रथमासमर्थ घञन्त क्रियावाची प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में ञ प्रत्यय हो ॥ ५७ ॥

तदधीते तद्वेद ॥ ५८ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थादधीते वेदइत्येतयो रर्थयो र्यथाविहितं प्र-त्ययः स्यात्। यथा—व्याकरणमधीते, वेदवा,—वैयाकरणः ॥

द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से अधीते (पढ़ने) और वेद (जानने) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ ५९ ॥

क्रतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यस्सूत्रान्ताच्च ठक् स्यात् तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये। यथा—अग्निष्टोममधीते वेदवा आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। उक्थादिभ्यः। औक्थिकः। सूत्रान्तात्। वार्त्तिकसूत्रिकः*।

* (मुख्यार्थात्तूक्थशब्दादुग्गणेनेष्यते)। न्यायम्-नैयायिकः। वृत्तिम्-वार्त्तिकाः। लोकायतम्—लौकायतिकः ॥ (सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते)। सांग्रहसूत्रिकः ॥ (विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेतिवाच्यम्) वायसविद्यिकः। सार्पविद्यिकः। आश्वलक्षणिकः। मातृकाल्पिक। पाराशरकल्पिकः ॥ (अङ्गक्षत्रधर्म्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वाच्यम्)॥ अंगविद्यामधीते वेदवा-आङ्गविद्यः। क्षात्त्रविद्यः। धार्म्मविद्यः। त्रिविधा विद्या त्रिविद्यामधीते वेदवा—त्रैविद्यः ॥ (आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्चठक् वाच्यः) ॥ यवक्रीतमधिकृत्यकृतमाख्यानमुपचाराद्यवक्रीतम्—तदधीते वेदवा—यावक्रीतिकः। वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिकावासवदत्ता। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यर्थे वृद्धाच्छः। तस्य लुबाख्यायिकाभ्योबहुलमिति लुप्। ततोऽनेनठक्। वासवदत्तिकः। ऐतिहासिकः। पौराणिकः। [सर्वादेः सादेर्द्विगोश्च लुग्वाच्यः]। सर्ववेदानधीते वेत्तिवा-सर्ववेदः। सवार्त्तिकः। द्विवेदः ॥ [शतषष्टेः षिकन् पथः]। शतपथिकः। शतपथिकी। षष्टिपथिकः। षष्टिपथिकी ॥ [इकन् पदोत्तरपदात्]। पूर्वपदिकः। उत्तरपदिकः ॥

द्वितीया समर्थ क्रतुवाची उक्थादि और सूत्रान्त प्रातिपदिकों से अधीते और वेद अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

क्रमादिभ्यः वुन् ॥ ६० ॥

क्रम इत्येव मादिभ्यश्शब्देभ्यो वुन् स्यात् । तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये । यथा-क्रमकः ॥

द्वितीया समर्थ क्रमादि प्रातिपदिकों से अधीते और वेद अर्थ में वुन् प्रत्यय हो

अनुब्राह्मणादिनिः ॥ ६१ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यर्थे । यथा-ब्राह्मणसदृशोग्रन्थः-अनुब्राह्मणम् । तदधीते-अनुब्राह्मणी ॥

द्वितीया समर्थ अनुब्राह्मण शब्द से अधीत और वेद अर्थ में इनि प्रत्यय हो॥

वसन्तादिभ्यः ष्ठक् ॥ ६२ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यर्थे । यथा-वसन्तसहचारितोऽयंग्रन्थोवसन्तः-तमधीते-वासन्तिकः ॥

द्वितीया समर्थ वसन्तादि प्रातिपदिकोंसे अधीत और वेद अर्थमें ठक् प्रत्ययहो ॥

प्रोक्ताल्लुक् ॥ ६३ ॥

प्रोक्तार्थ प्रत्ययात्परस्याध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा पाणिनिनाप्रोक्तम्-पाणिनीयम्, तदधीते पाणिनीयः ॥

प्रोक्तार्थ प्रत्यय से परे अध्येतृ और वेदितृ अर्थ में प्रत्ययका लुक्हो ॥ ६३ ॥

सूत्राच्च कोपधात् ॥ ६४ ॥

सूत्रवाचिनः ककारोपधादध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। अप्रोक्तार्थ आरम्भः। यथा—अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य-अष्टकम्—पाणिनेः सूत्रम्। तदधीयते, विदन्तिवा,अष्टकाः ॥

ककारोपध सूत्रवाची प्रातिपदिक से अध्येतृ और वेदितृ अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक्हो ॥ ॥ ६४ ॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ६५

छन्दांसि ब्राह्मणाणि च प्रोक्तप्रत्ययान्तानि तद्विषयाण्येव स्युः। यथा—कठेनप्रोक्तमधीयते, कठाःअध्येतृवेदितृ प्रत्ययेन विना न प्रयोज्यानीत्यर्थः। ब्राह्मणानि खल्वापि। ऐतरेयिणः ॥

प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण वाची शब्द अध्येतृवेदितृ विषयकहों ६९

कि० अ

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ६६ ॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, यत्प्रथमासमर्थस्तिचेत्स्यात्. यदस्मिन् निति निर्दिष्ट देशश्चेत् स तन्नामास्यात्। यथा—पर्वता अस्मिन् देशे सन्ति—पार्वतः ॥

प्रथमा समर्थ अस्ति समानाधिकरण प्रातिपदिक से तन्नाम वाच्य होतो अस्मिन्देशे इस अर्थ में यथा विहित प्रत्ययहो (चतुः सूत्रों में सम्बहोता है)॥६६॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ६७ ॥

तेनेति तृतीया समर्थान्निर्वृत्तमित्यस्मिन् विषये यथा विहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा—सहस्रेणनिर्वृता--साहस्री परिखा ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से देशनाम वाच्य होतो निर्वृत्त अर्थ में यथाविहित प्रत्ययहो ॥ ६७ ॥

तस्य निवासः ॥ ६८ ॥

तस्येतिषष्ठी समर्थान्निवास इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्याद्देशनामधेयेगम्ये । यथा-कुरूणां निवासोदेशः-कौरवः ॥

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से निवास अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो देशनामधेय गम्यमान होनेपर ॥ ६८ ॥

अदूरभवश्च ॥ ६९ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थाददूरभव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा-हिमालयस्याऽदूरभवो देशो हैमालयः ॥

अदूरभव (समीप अर्थ में षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित (अण्) प्रत्ययहो॥ इससूत्र से आगे चारों अर्थों में अनुवृत्ति (४ । २ । ९२) सूत्रतक चलती है इसलिये इसप्रकरण को चातुरर्थिक कहते हैं ॥ ६९ ॥

ओः अञ् ॥ ७० ॥

पूर्वोक्तचतुर्षु अर्थेषु उवर्णान्तात्प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा-अरडुः । आरडवम्-क्षत्रिय विशेषः । रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे रुरूणां निवासो देशोऽदूरभवोवा रौरवः ॥

उक्तचारों अर्थों में षष्ठीसमर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकसे अञ्प्रत्यय हो ॥ ७० ॥

मतोश्चबह्वजङ्गात् ॥ ७१ ॥

बह्वच् अङ्गं यस्य मतुपस्तदन्तादञ् नाऽण् । यथा-सैध्रकावतम् ॥

बह्वजङ्ग मतुबन्त प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

बह्वचः कूपेषु ॥ ७२ ॥

बह्वचः प्रातिपदिकाच्चातुरर्थिकोऽञ् स्यात् कूपेष्वभिधेयेषु । यथा-दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः दैर्घवरत्रः ॥

कूप वाच्य हो तो बह्वच् प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

उदक् च विपाशः ॥ ७३ ॥

विपाश उत्तरेकूले ये कूपा स्तेष्वभिधेषु चातुरर्थिकोऽञ् स्यात्। अबह्वजर्थः--आरम्भः। यथा--दत्तेन निर्वृतः दात्तः कूपः ॥

विपाशा (व्यासा) नदीके उत्तरकूल के कूपवाच्य होंतो समर्थ विभक्ति युक्त प्रातिपदिकसे चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

सङ्कलादिभ्यश्च ॥ ७४ ॥

कूपेष्विति निवृत्तम्। यथा--सङ्कलेननिर्वृत्तम्--साङ्कलम्।पौष्कलम् ॥

सङ्कलादिप्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु ॥ ७५ ॥

स्त्रीलिङ्गेषु एषु देशेषु वाच्येषु अञ् स्यात्।यथा--सौविरेतावत्--दत्तामित्रेण निर्वृत्तानगरी--दात्तामित्री। साल्वे। विधूमाग्निना निर्वृत्ता नगरी--वैधूमाग्नी। प्राचि। ककन्देन निर्वृत्ता--काकन्दी। माकन्दी ॥

स्त्रीलिङ्ग सौवीर, साल्व और प्राक् वाच्य होंतो अञ् प्रत्यय हो ॥ ७५ ॥

सुवास्त्वादिभ्योऽण् ॥ ७६ ॥

यथा--सुवास्तोरदूरभवं नगरं--सौवास्तवम् ॥

सुवास्तु आदिशब्दो से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय हो ॥ ७६ ॥

रोणी ॥ ७७ ॥

रोणीशब्दात्तदन्ताच्चाण् स्यात्। रौणः। आजकरौणः ॥

रोणी शब्द से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

कोपधाच्च ॥ ७८ ॥

ककारोपधात्प्रातिपदिकाच्चातुरर्थिकोऽण् स्यात्। यथा—कृकवाकुना निर्वृत्तम्—कार्कवाकवम् ॥

ककारोपध प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय हो ॥ ७८ ॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकः, अरीहणकृशाश्वर्श्य कुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ ७९ ॥

सप्तदशभ्यः सप्तदश क्रमात्स्युश्चातुरर्थ्याम्। यथा-अरीहणादिभ्योवुञ्। अरीहणेण निर्वृत्तम्—आरीहणकम्। कृशाश्वादिभ्यश्छण्। कृशाश्वेननिर्वृत्तम्—कार्शाश्वीयम्। ऋष्यादिभ्यः कः। ऋष्या अत्रदेशेसन्ति, ऋश्यैर्निर्वृत्तं वा—ऋष्यकम्। कुमुदादिभ्यष्ठच्। कुमुदान्यत्रदेशे सन्ति—कुमुदिकम्। काशादिभ्यइलः। काशस्तृणविशेषः। काशा अत्र सन्ति—काशिलम्। तृणादिभ्यः सः। तृणान्यस्मिन्देशेसन्ति—तृणसा नदी नगरीवा। प्रेक्षादिभ्य इनिः। प्रेक्षाबुद्धिः। तया हेतुना निर्वृत्तः। प्रेक्षीग्रामः। अथवा प्रेक्षा अत्र सन्ति-प्रेक्षीदेशः। अश्मादिभ्योरः। अश्मानोऽत्र देशे सन्ति—अश्मरम्। सख्यादिभ्यो ढञ्। सख्या पुरुष विशेषेण निर्वृतम्—साखेयं नगरं मण्डलं वा। सङ्काशादिभ्यो ण्यः। सङ्काशेन राज्ञा निर्वृत्तम्—सा-

ङ्काश्यम् । बलादिभ्यो यः । बलेन निर्वृत्ता—बल्यानामनगरी । पक्षादिभ्यःफक् । पक्षेण निर्वृत्तम्,पक्षस्य निवासोवा--पाक्षायणं नगरं राष्ट्रं वा । कर्णादिभ्यः फिञ् । कर्णेननिर्वृत्तः, कर्णस्य निवासोवा--कार्णायनिः--अर्कोगुल्मः स्फटिकश्च । सुतङ्गमादिभ्यइञ् । सुतङ्गमेन निर्वृत्तं सुतङ्गमस्य निवासो वा--सौतङ्गमिः । प्रगद्यादिभ्योञ्यः--प्रगाद्यम् । वराहादिभ्यः फक् । वराहा अत्रदेशेसन्ति--वाराहकम् । कुमुदादिभ्यष्ठक् । कौमुदिकम् ॥

अरीहणादि, कृशाश्वादि, ऋश्यादि, कुमुदादि, काशादि, तृणादि, प्रेक्षादि, अश्मादि, सख्यादि, सङ्काशादि, बलादि, पक्षादि, कर्णादि, सुतङ्गमादि , प्रगदिनादि, वराहादि, और कुमुदादि इन १७ प्रातिपदिकों से तथाक्रम वुञ्, छण्, क, ठच्, इल श, इनि, ढञ्, ण्य, य, फक्, फिञ् इञ्, ञ्य फक्, ठक् ये १७ चातुरर्थिक प्रत्यय हों ॥ ७९ ॥

जनपदे लुप् ॥ ८० ॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य लुप्स्यात् । यथा--ग्रामसमुदायोजनपदः । पञ्चालानां निवासो जनपदः—पञ्चालाः । कुरवः ॥

जनपद (ज़िला) वाच्य हो तो उत्पन्न चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् हो ॥ ८० ॥

वरणादिभ्यश्च ॥ ८१ ॥

वरण इत्येवमादिभ्य उत्पन्नस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्यस्य लुप्स्यात् । यथा—वरणानामदूर भवं नगरं—वरणाः ॥

वरण आदि प्रातिपदिकों से उत्पन्न चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् हो ॥ ८१ ॥

शर्करायां वा ॥ ८२ ॥

शर्करशब्दादुत्पन्नस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य वा लुप्स्यात् ।

कुमुदादौ, वराहादौ च पाठसामर्थ्यात्पक्षे ठच्ककौ। षड्रूपाणि। यथा-शर्करा, शार्करम्, शार्करिकम्, शर्करीयम्, शर्करिकम्, शार्करकम् ॥

शर्करा (चीनी) शब्द से उत्पन्न चातुरर्थिक प्रत्यय का विकल्प से लुप् हो ८२

ठक्छौ च ॥ ८३ ॥

शर्कराया इमौस्तः। शार्करिकम्, शर्करीयम् ॥

शर्कराशब्द से चातुरर्थिक ठक् और छ प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

नद्याम् मतुप् ॥ ८४ ॥

नद्यामभिधेयायां चातुरर्थिको मतुप्प्रत्ययः स्यात्। यथा-इक्षवो यस्यां सन्ति-इक्षुमती ॥

नदीवाच्य हो तो सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय हो ८४

मध्वादिभ्यश्च ॥ ८५ ॥

चातुरर्थिको मतुप् स्यात्। यथा--मधून्यत्रदेशे सन्ति-मधुमान्।

मधु आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ॥ ८६ ॥

यथा-कुमुद्वान्। नड्वान्। वेतस्वान् * ॥

कुमुद, नड और वेतस शब्दों से चातुरर्थिड्मतुप् प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

नडशादाड्ड्वलच् ॥ ८७ ॥

* (महिषाच्चेति वाच्यम्) ॥ महिषमान् नामदेशः ॥

यथा—नड्वलः । शाद्वलः ॥

नड और शाद शब्द से चातुरर्थिक ड्वलच् प्रत्यय हो ॥ ८७ ॥

शिखायां वलच् ॥ ८८ ॥

यथा—शिखावलं नाम नगरम् ॥

शिखा शब्द से चातुरर्थिक वलच् प्रत्यय हो ॥ ८८ ॥

उत्करादिभ्यश्छः ॥ ८९ ॥

उत्करो हृशतपांशु प्रचयः । सोऽस्यास्तीत्युत्करीयं नगरम् ॥

उत्कर आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक छ प्रत्यय हो ॥ ८९ ॥

नडादीनां कुक् च ॥ ९० ॥

नड इत्येवमादीनां कुगागमस्या चातुरार्थिकश्छश्चप्रत्ययः । यथा—नडकीयम् ॥

नड आदि शब्दों को कुक् का आगम हो और इनसे चातुरर्थिक छ प्रत्यय भी हो

शेषे ॥ ९१ ॥

शेष इत्यधिकारोऽयम् ॥

शेष अर्थों में (४ । ३ । १३१) सूत्र तक प्रत्यय विधान किया गया है यह अधिकार है ॥ ९१ ॥

राष्ट्रावारपाराद् घखौ ॥ ९२ ॥

आभ्यां शेषे क्रमाद् घखौ स्याताम् । यथा—राष्ट्रे भवो जातो वा राष्ट्रियः । अवारपारीणः । * ॥

राष्ट्र और अवारपार शब्दों से यथासङ्ख्य शैषिक घ और ख प्रत्यय हों ९२

* (विगृहीतादपि) । अवारीणः । पारीण । (विपरीताच्च) । पारावारीणः ।

ग्रामाद् यखञौ ॥ ९३ ॥

यथा-ग्रामे भवो जातः क्रीतो लब्धः कुशलो वा ग्राम्यः। ग्रामीणः ॥
ग्राम शब्द से शैषिक य और खञ् प्रत्यय हो ॥ ९३ ॥

कत्र्यादिभ्यो ढकञ् ॥ ९४ ॥

यथा-कुत्सिताः त्रयः-कत्रयः। कत्त्रयाणां कत्रेर्वा गर्दभ्या इदम्-कात्रेयकम् ॥
कत्रि आदि शब्दों से शैषिक ढकञ् प्रत्यय हो ॥ ९४ ॥

कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु ९५

कुल कुक्षि ग्रीवा शब्देभ्यो यथासङ्ख्यं श्वन् असि अलङ्कार इत्येतेषु जातादिश्वर्थेषु ढकञ् स्यात्। यथा-कौलेयकः-श्वा। कौलोऽन्यः। कौक्षेयकः-असिः। कौक्षोऽन्यः। ग्रैवेयकः-अलङ्कारः। ग्रैवोऽन्यः ॥
यथाक्रम श्वन्, असि और अलङ्कार वाच्य हों तो कुल कुक्षि और ग्रीवा शब्द से शैषिक ढकञ् प्रत्यय हो ॥ ९५ ॥

नद्यादिभ्यो ढक् ॥ ९६ ॥

यथा-नद्यां जातो भवो वा नादेयः ॥
नदी आदि प्राति पदिकों से शैषिक ढक् प्रत्यय हो ॥ ९६ ॥

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ॥ ९७ ॥

दक्षिणा इत्यजन्त मव्ययम्। यथा-दाक्षिणात्यः। पाश्चात्यः। पौरस्त्यः ॥
दक्षिणा, पश्चात् और पुरस शब्द से शैषिक त्यक् प्रत्यय हो ॥ ९७ ॥

कापिश्याः ष्फक् ॥ ९८ ॥

यथा–कापिश्यां जातादि–कापिशायनं-मधु। कापिशायनी द्राक्षा॥

कापिशी शब्द से शैषिक ष्फक् प्रत्ययहो ॥ ९८ ॥

रङ्कोरमनुष्येऽण् च ॥ ९९ ॥

अमनुष्येऽभिधेये रंकुशब्दाच्छैषिकोऽण् चात् ष्फक् स्यात्। यथा–राङ्कवः गौः, राङ्कवायणः ॥

मनुष्य भिन्न वाच्य होतो रंकु शब्द से शैषिक अण् और ष्फक् प्रत्ययहो ९९

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥ १०० ॥

यथा–दिविभवं–दिव्यम्। प्राच्यम्। अवाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम् ॥

दिव्, प्राच्,अवाच् उदच् और प्रत्यय शब्द से शैषिक यत् प्रत्ययहो ॥ १०० ॥

कन्थायाः ष्ठक् ॥ १०१ ॥

यथा–कान्थिकः ॥

कन्था (गुदड़ी) शब्द से शैषिक ठक् प्रत्ययहो ॥ १०१ ॥

वर्णौ वुक् ॥ १०२ ॥

वर्णुः–नदः तस्य समीपदेशः–वर्णुः। तद् विषयार्थ वाचिकन्था शब्दाद्वुक् स्यात्। यथा–तथाहि जातं हिमवत्सु कान्थकम् ॥

वर्णु देश में कन्था शब्दसे शैषिक वुक् प्रत्ययहो ॥ १०२ ॥

अव्ययात् त्यप् ॥ १०३ ॥

(अमेह क्कतसित्रेभ्य एव)। अमात्यः इह त्यः। क्वत्यः। तत्रत्यः। यत्रत्यम् *॥

अव्ययों से शैषिक त्यप् प्रत्ययहो ॥ १०३ ॥

ऐषमोह्यः श्वसोऽन्यतरस्याम् १०४

एभ्यो वा त्यप्। ऐषमस्त्यम्। ऐषमस्तनम्। ह्यस्त्यम्। ह्यस्तनम्, श्वस्त्यम्, श्वस्तनम् ॥

ऐषमस्, ह्यस् और श्वस् प्राति पदिक से शैषिक विकल्पसे त्यप् हो ॥ १०४॥

तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ ॥ १०५॥

यथासंख्येन। यथा--पाल्वलतीरम्। वार्करूप्यम् ॥

तीरोत्तरपद और रूपोत्तरपद प्रातिपदिकों से यथाक्रम शैषिक अञ् और ञ प्रत्ययहो ॥ १०५ ॥

दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ॥१०६॥

यथा-- पौर्वशालः। दाक्षिणशालः ॥

असंज्ञाविषयक दिक्पूर्व पद प्रातिपदिक से शैषिक ञ प्रत्ययहो ॥ १०६ ॥

मद्रेभ्यो ऽञ् ॥ १०७ ॥

दिक् पूर्व पदान्मद्रशब्दाच्छैषिकोऽञ् स्यात्। यथा–पौर्वमाद्रः आपरमाद्रः (७। ३। १३ इति वृद्धिः) ॥

दिक् पूर्वपद मद्र शब्दसे शैषिक अञ् प्रत्ययहो ॥ १०७ ॥

* (त्यबने ध्रुवे) ॥ नित्यम ध्रुवं—नित्यम् ॥ (निसो गते) ॥ निर्गतो वर्णा श्रमेभ्यो— निष्ट्यः चराण्डालादिः ॥ (आवि शच्छन्दसि ॥ आवि ष्टोयो वर्द्धते ॥ (अरण्याण्णः) ॥ आरण्याः सुमनसः ॥ (दूरादेत्यः) दूरेत्यः पथिकः ॥ (उत्तरा दाहञ् । औत्तराहः ॥

उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात् ॥

अञ् स्यात् । यथा—शैवपुरम् । माण्डवपुरम् ॥

अन्तोदात्त बह्वच उदीच्यग्राम वाची प्रातिपदिकों से शैषिक अञ् प्रत्ययहो ॥

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥

माद्रीप्रस्थः । पलद्यां जातो भवो वा--पालदः । नैलीनकः ॥

प्रस्थोत्तरपद, पलद्यादि और ककारोपध प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्ययहो ॥

कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ ११० ॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्योऽण् स्यात् । यथा--कण्वः । (गर्गादिः) । कण्वस्यच्छात्राः- काण्वाः ॥

गोत्र प्रत्ययान्त कण्वादि प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्ययहो ॥ ११० ॥

इञश्च ॥ १११ ॥

गोत्रे य इञ् तदन्तादण् स्यात् । यथा—दाक्षाः ॥

गोत्रमें विहित जो इञ् तदन्त प्रातिपदिक से शैषिक अण् प्रत्ययहो ॥१११॥

न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु ॥ ११२ ॥

यथा—पौष्कीयाः । काशीयाः ॥

प्राच्य भरत गोत्र में विहित जो इञ् तदन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से शैषिक अण् प्रत्यय न हो ॥ ११२ ॥

वृद्धाच्छः ॥ ११३ ॥

यथा-शालीयः । मालीयः । तदीयः ॥

वृद्ध संज्ञक प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्ययहो ॥ ११३ ॥

भवतष्ठक्छसौ ॥ ११४ ॥

वृद्धाद् भवत इमौ स्याताम् । यथा-भावत्कः । भवदीयः ॥

वृद्ध संज्ञक भवतु शब्दसे शैषिक ठक् और छस् प्रत्ययहो ॥ ११४ ॥

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ॥ ११५ ॥

काशयोजनपदाः । तेषु भवा जाता वा । यथा-काशिकी । काशिका। वैदिकी । वैदिका ॥

वृद्ध संज्ञक काशि आदि प्रातिपदिकों से शैषिक ठञ् और ञिठ् प्रत्ययहों ॥

वाहीकग्रामेभ्यश्च ॥ ११६ ॥

वाहीक ग्रामवाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ स्याताम् । यथा-कास्तीरं नाम-वाहीकग्रामः । कास्तीरिकी, कास्तीरिका ॥

वृद्ध संज्ञक वाहीक ग्रामवाचीय प्रातिपदिकोंमे शैषिक ठञ् और ञिठ् प्रत्ययहो

विभाषोशीनरेषु ॥ ११७ ॥

एषु ये ग्रामास्तदवाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ वा स्याताम् । यथा--सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका, सौदर्शनीया ॥

उशीनरों में वाहीक ग्राम वाचीय प्रातिपदिकों से विकल्प करके शैषिक ठञ् और ञिठ् प्रत्ययहो ॥

ओर्देशे ठञ् ॥ ११८ ॥

उवर्णान्ताद्देशवाचिनश्शैषिकष्ठञ् स्यात्। यथा-निषादकर्षुः—नैषादकर्षुकः ॥

देशवाचीय उवर्णान्त प्रातिपदिक से शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

वृद्धात् प्राचाम् ॥ ११९ ॥

उवर्णान्ताद् वृद्धात् प्राग्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छैषिकष्ठञ् स्यात्। यथा—आढकजम्बुकः। शाकजम्बुकः ॥

प्राग्देशवाचीय वृद्ध उवर्णान्त प्रातिपदिक से शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥

धन्वयोपधाद् वुञ् ॥ १२० ॥

धन्वविशेषवाचिनोयकारोपधाच्च देशवाचिनो वृद्धाद् वुञ् स्यात्। यथा—ऐरावतधन्व ऐरावतकः। योपधात्। सांकाश्यकः। काम्पिल्यकः ॥

धन्व वाचीय और यकारोपध देश वाचीय वृद्ध प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

प्रस्थपुरवहान्ताच्च ॥ १२१ ॥

एतदन्ताद्वृद्धाद् देशवाचिनो वुञ् स्यात्। यथा—मालाप्रस्थकः। नान्दीपुरकः। पैलुवहकः ॥

देश वाचीय वृद्ध संज्ञक प्रस्थान्त पुरान्त और वहान्त प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

रोपधेतोः प्राचाम् ॥ १२२ ॥

रोपधात् ईकारान्तात्प्राग्देशवाचिनश्च वृद्धात् वुञ् स्यात्। यथा-पाटलिपुत्रकः। ईतः। काकन्दी, काकन्दकः ॥

प्राग्देश वाचीय वृद्ध संज्ञक रोपध और ईकारान्त प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

जनपदतदवध्योश्च ॥ १२३ ॥

जनपदवाचिनस्तदवधि वाचिनश्च वृद्धाच्छैषिको वुञ् स्यात् । यथा--आदर्शकः । त्रैगर्त्तकः ॥

वृद्ध संज्ञक जनपद वाचीय और तदवधिवाचीय प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्ययहो ॥ १२३ ॥

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् १२४

अवृद्धाद्वृद्धाच्च जनपदतदवधिवाचिनो बहुवचनविषयात् प्रातिपदिकाच्छैषिको वुञ् स्यात् । यथा--अवृद्धाज्जनपादात्--अङ्गकः । अवृद्धाज्जनपदावधेः--आजमीढकः । वृद्धाज्जनपदात्-दार्वकः । वृद्धाज्जनपदावधेः- कालञ्जरकः ॥

बहुवचनविषयक वृद्ध अवृद्ध संज्ञक जनपद वाचीय और तदवधिवाचीय प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्ययहो ॥ १२४ ॥

कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात् ॥ १२५ ॥

देशवाचिनो वृद्धादवृद्धाच्च शैषिको वुञ् स्यात् । यथा—दारुकच्छकः । काण्डाग्नकः । सैन्धुवक्त्रकः । बाहुगर्त्तकः ॥

देशवाचीय वृद्ध अवृद्ध संज्ञक कच्छोत्तर पद अग्न्युत्तरपद वक्त्रोत्तरपद प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२५ ॥

धूमादिभ्यश्च ॥ १२६ ॥

देशवाचिभ्यो वुञ् स्यात् । यथा—धौमकः । द्वैपकः ॥

देशवाचीय धूमादि प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः ।१२७।

नगरशब्दाद् वुञ्स्यात् कुत्सनेप्रावीण्ये च गम्ये । यथा-कुत्सनम् निन्दनम् । प्रावीण्यम् नैपुण्यम् । नागरकः चौरः, शिल्पी वा

कुत्सन और प्रावीण्य गम्यमान हो तो नगरशब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥

अरण्यान् मनुष्ये ॥ १२८ ॥

वुञ्स्यात् । यथा-आरण्यको मनुष्यः * ॥

मनुष्यवाच्य हो तो अरण्य शब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ॥ १२९ ॥

वुञ् स्यात् । यथा-कौरवकः ।कौरवः । यौगन्धरकः । यौगन्धरः॥

देशवाचीय कुरु और युगन्धर शब्द से विकल्प करके शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥

मद्रवृज्योः कन् ॥ १३० ॥

यथा--मद्रेषु जातः-मद्रकः । वृजिकः ॥

देशवाचीय मद्र और वृजि शब्द से शैषिक कन् प्रत्यय हो ॥ १३० ॥

कोपधादण् ॥ १३१ ॥

यथा--माहिषिकः ॥

देशवाचीय ककारोपध प्रातिपदिक से शैषिक अण् प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

* (पन्थ्यध्यायन्याय विहारहस्तिष्विति वाच्यम्) ॥ आरण्यकः पन्थाः । आरण्यकोऽध्यायः । आरण्यको न्यायः । आरण्यको विहारः । आरण्यको हस्ती । (गोमयेषु वा) ।आरण्यकाः, आरण्या वा-गोमयाः ॥

कच्छादिभ्यश्च ॥ १३२ ॥

कच्छ इत्येवमादिभ्योदेशवाचिभ्योऽण् स्यात् । यथा-कच्छे भवः-काच्छः । सैन्धवः । काश्मीरः-कुङ्कुमः ॥

देशवाचीय कच्छ आदि प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्यय हो ॥ १३२ ॥

मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ॥ १३३ ॥

मनुष्ये मनुष्यस्थे च जातादौ प्रत्ययार्थे कच्छादिभ्योवुञ् स्यात् । यथा-काच्छको-मनुष्यः । काच्छकं हसितम् ॥

मनुष्य वा मनुष्यस्थ प्रत्ययार्थ हो तो कच्छादि प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १३३ ॥

अपदातौ साल्वात् ॥ १३४ ॥

साल्वशब्दस्य कच्छादित्वाद् वुञिसिद्धे नियमार्थमिदम् । अपदातावेवेति । यथा--साल्वको मनुष्यः ॥

अपदाति (पैदल) मनुष्यार्थ में देशवाचीय साल्वशब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १३४ ॥

गोयवाग्वोश्च ॥ १३५ ॥

आभ्यां वुञ् स्यात् । यथा-साल्वको गौः । साल्विका यवागूः ॥

गौ और यवागू प्रत्ययार्थ हों तो देशवाचीय साल्व शब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

गर्त्तोत्तरपदाच्छः ॥ १३६ ॥

गर्त्तोत्तरपदाद्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छैषिकश्छः स्यात् । यथा-वृकगर्त्तीयम् ॥

देशवाचीय गर्त्तोत्तरपद प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १३६ ॥

गहादिभ्यश्च ॥ १३७ ॥

यथा—गहे भवो जातोवा गहीयः * ॥

गहादि प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १३७ ॥

प्राचां कटादेः ॥ १३८ ॥

प्राग्देशवाचिनः कटादेश्शैषिकश्छः स्यात् । यथा—कटनगरीयम् । कटघोषीयम् । कटपल्वलीयम् ॥

प्राग्देश वाचीय कटादि प्रातिपदिकों से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

राज्ञः क च ॥ १३९ ॥

राज्ञः ककारश्चान्तादेशश्छश्च प्रत्ययः स्यात् । यथा—राजकीयम् ॥

राजन् शब्द को ककारान्त आदेश हो और राजन् शब्द से छ प्रत्यय हो ॥ १३९ ॥

वृद्धादकेकान्तखोपधात् ॥ १४० ॥

अक इक एतदन्तात् खोपधाच्च,—वृद्धाद्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छः स्यात् । यथा-ब्राह्मणको नाम जनपदः-यत्रब्राह्मणा आयुधजीविनः—तत्र जातोभवोवा—ब्राह्मणकीयः । शाल्मलिकीयः । अयोमुखीयः ॥

वृद्धसंज्ञक देशवाचीय अकान्त, इकान्त और खकारोपध प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

* (मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च) ॥ मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । (कुग्जनस्यपरस्यच) ॥ जनकीयम् । परकीयम् । (देवस्यच) ॥ देवकीयम् । (स्वस्यच) । स्वकीयम् । (वेणुकादिभ्यश्छण् वाच्यः) ॥ वेणुकीयम् । वैत्रकीयम् ॥

कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् १४१

कन्थादि पञ्चकोत्तरपदाद्देशवाचिनोवृद्धाच्छः स्यात् । यथा-दाक्षिकन्थीयम् । दाक्षिपलदीयम् । दाक्षिनगरीयम् । दाक्षिग्रामीयम् । दाक्षिह्रदीयम् ॥

देशवाचीय वृद्धसंज्ञक कन्थोत्तरपद, पलदोत्तरपद, नगरोत्तरपद, ग्रामोत्तरपद, और ह्रदोत्तरपद प्रातिपदिकों से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १४१ ॥ ॥

पर्वताच्च ॥ १४२ ॥

यथा-पर्वतीयो मनुष्यः ॥

पर्वत शब्दसे शैषिक छ प्रत्ययहो ॥ १४२ ॥

विभाषाऽमनुष्ये ॥ १४३ ॥

मनुष्यभिन्नार्थे पर्वताच्छो वा स्यात् । पक्षेऽण् । पर्वतीयानि, पार्वतानि वा, फलानि ॥

मनुष्य से भिन्न वाच्य होतो पर्वत शब्दसे शैषिक छ प्रत्यय विकल्प से हो ॥

कृकणपर्णाद् भारद्वाजे ॥ १४४ ॥

भारद्वाजे देशवाचिभ्यामाभ्यां छस्स्यात् । यथा-कृकणीयम् । पर्णीयम् ॥

भारद्वाज देशवाचीय कृकण और पर्ण शब्द से शैषिक छप्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयःपादः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ॥ १ ॥

चाच्छः । यथा-युष्माकमयम्-यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

युष्मद् और अस्मद् शब्द से शैषिक खञ् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ १ ॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥ २ ॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्यातां खञि, अणि च । यथा-यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

खञ् और अण् प्रत्यय परे हों तो युष्मद् और अस्मद् शब्दको यथासङ्ख्य युष्माक और अस्माक आदेश हों ॥ २ ॥

तवकममकावेकवचने ॥ ३ ॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मस्मदोस्तवकममकौ स्यातां खञि, अणि च । यथा-तावकीनः, तावकः । मामकीनः, मामकः ॥

खञ् और अण् प्रत्ययपरे होंतो एकवचन में युष्मद् और अस्मद् शब्दकोयथा सङ्ख्य तवक और ममक आदेश हो ॥ ३ ॥

अर्द्धाद् यत् ॥ ४ ॥

यथा-अर्द्ध्यम् ॥

अर्द्धशब्द से शैशिक यत् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

पराऽवराऽधमोत्तमपूर्वाच्च ॥ ५ ॥

यथा-परार्द्ध्यम् । अवरार्द्ध्यम् । अधमार्द्ध्यम् । उत्तमार्द्ध्यम् ॥

पर, अपर, अधम और उत्तमशब्द जिसके पूर्वहो ऐसे अर्धशब्द से शैषिक यत् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च ॥ ६ ॥

चाद्यत् । यथा-पौर्वार्द्धिकम्, पूर्वार्द्ध्यम् । दाक्षिणार्द्धिकम्, दक्षिणार्द्ध्यम् ॥

दिशावाचीय शब्द जिसके पूर्व हो ऐसे अर्द्धशब्द से शैषिक ठञ और यत्प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ ॥ ७ ॥

ग्रामैकदेशवाचिनः, जनपदैक देशवाचिनश्च,-दिक्पूर्वपदादर्द्धान्तादञ् ठञौ स्याताम् । यथा-इमेऽस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य-वा,-पौर्वार्द्धाः, पौर्वार्द्धिकाः ॥

ग्रामैकदेश देशवाचीय तथा जनपदैक देशवाचीय दिक्पूर्वपद अर्द्धान्त प्रातिपदिक से शैषिक अञ् और ठञ प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

मध्यान्मः ॥ ८ ॥

यथा-मध्यमः । * ॥

मध्यम शब्दसे शैषिक म प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

असाम्प्रतिके ॥ ९ ॥

मध्यशब्दादकार प्रत्ययः स्यात्साम्प्रतिकेऽर्थे । यथा-उत्कर्षापकर्षहीनः-मध्यः-वैयाकरणः।मध्यदारु । नातिह्रस्वंनातिदीर्घमित्यर्थः॥

साम्प्रातिक अर्थमें मध्यशब्द से अ प्रत्यय हो ॥ ९ ॥

द्वीपादनुसमुद्रंयञ् ॥ १० ॥

* (आदेश्चेतिवाच्यम्) ॥ आदिमः (अवोधसोर्लोपश्च] । अवमम् । अधमम् ॥

समुद्रस्य समीपे योद्वीपस्तस्माद्यञ् स्यात् । यथा-द्वैप्यं भवन्तोऽनुचरन्ति चक्रम् ॥

समुद्रसमीपीय द्वीपशब्द से शैषिक यञ् प्रत्यय हो ॥ १० ॥

कालाट्ठञ् ॥ ११ ॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात् । यथा-मासिकम् । सांवत्सरिकम् । सायम्प्रातिकः । पौनःपुनिकः ॥

कालवाचीय शब्दों से शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ ११

श्राद्धे शरदः ॥ १२ ॥

शरच्छब्दात् ठञ् स्यात् श्राद्धेऽभिधेये । यथा-शारदिकं-श्राद्धम् ॥

श्राद्धवाच्य होते शरद्शब्दसे शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

विभाषारोगातपयोः ॥ १३ ॥

रोगे आतपे चाभिधेये शरच्छब्दाट्ठञ् वा स्यात् । यथा-शारदिकः, शारदोवा-रोगः । आतपोवा ॥

रोग और आतपवाच्य होते शरद् शब्द से शैषिक ठञ्प्रत्यय विकल्पसे हो ॥ १३ ॥

निशाप्रदोषाभ्यांच ॥ १४ ॥

वाठञ् स्यात् । यथा-नैशिकम्, नैशम् । प्रादोषिकम्, प्रादोषम् ॥

निशा (रात्रि) और प्रदोष (रात्रिका पूर्वभाग) से शैषिक ठञ् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ १४ ॥

श्वसस्तुट्च ॥ १५ ॥

श्वस्शब्दाट्ठञ् वा स्यात् तस्यच तुडागमः । यथा—शौवस्तिकम् (७ । ३ । ४ । इत्यैजागमः) । श्वस्त्यम् ॥

श्वस् (आनेवालाकल) शब्द से शैषिक ठञ् प्रत्यय विकल्प से हो और श्वस् को तुट् आगम भी हो ॥ १५ ॥

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ १६ ॥

सन्धिवेलादिभ्यः, ऋतुभ्यः, नक्षत्रेभ्यश्च कालवृत्तिभ्योऽण् स्यात् । यथा—सन्धिवेलायां भवम्—सान्धिवेलम् । ग्रैष्मम् । तैषम् * ॥

कालवृत्ति सन्धिवेलादि (सन्धिकालादि) ऋतु और नक्षत्रों से शैषिक अण् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

प्रावृष एण्यः ॥ १७ ॥

यथा—प्रावृषेण्यो बलाहकः ॥

कालवाचीय प्रावृष् (वर्षाकाल) शब्द से शैषिक एण्य प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

वर्षाभ्यष्ठक् ॥ १८ ॥

यथा—वर्षासुसाधु-वार्षिकंवासः ॥

कालवाचीत वर्षाशब्द से शैषिक ठक् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

छन्दसि ठञ् ॥ १९ ॥

वर्षाशब्दाच्छन्दसि विषये ठञ् स्यात् । स्वरेभेदः । यथा—नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू ॥

छन्दोविषय में कालवाचीय वर्षा शब्द से शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

* [संवत्सरात् फलपर्वणोः] । सांवत्सरफलम्] सांवत्सरंपर्व ॥

वसन्ताच्च ॥ २० ॥

वसन्तशब्दाच्छन्दसि ठञ् स्यात् । यथा-मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ॥

वासन्त शब्द से छन्दसिविषय में शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ २० ॥

हेमन्ताच्च ॥ २१ ॥

हेमन्तशब्दाच्छन्दसिविषये ठञ् स्यात् । यथा-सहश्च सहस्यश्च-हैमन्तिकावृतू ॥

हेमन्त शब्द से छन्दो विषय में ठञ् प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

सर्वत्राऽण् च तलोपश्च ॥ २२ ॥

हेमन्तशब्दादण् स्यात् तलोपश्च वेदलोकयोः चातपक्षे ऋत्वण् । यथा-हैमनम्, हैमन्तम् * ॥

हेमन्त शब्द से सर्वत्र (वेद और लोक में) शैषिक अण् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

सायंचिरं प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ॥ २३ ॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्यः, अव्ययेभ्यश्च, कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्याताम्,तयोस्तुट् च । यथा-सायंभवम्-सायन्तनम्। चिरन्तनम् । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् । दिवातनम् * ॥

कालवाचीय सायम् चिरम् प्राह्णे प्रगे और अव्यय शब्दों से शैषिक ट्यु और ट्युल प्रत्यय हों और ट्यु और ट्युल् को तुडागम हो ॥ २३ ॥

* (चिरपरुत् परारिभ्यस्त्नो वाच्यः) ॥ चिरत्नम् । परुत्नम् । परारित्नम् ॥ (अग्रादिभ्यश्चाडिमच्) ॥ आग्रिमम् । आदिमम् । पश्चिमम् । (अन्ताच्च) ॥ अन्तिमः ॥

विभासा पूर्वाह्णाऽपराह्णाभ्याम् ॥ २४ ॥

आभ्यां वा ट्युट्युलौ स्याताम्, तयोस्तुट् च पक्षे ठञ् । यथा-पूर्वाह्णेतनम्, पौर्वाह्णिकम् । अपराह्णेतनम्, आपराह्णिकम् । घकालतनेषु (६ । ३ । १७) इत्यलुक् ॥

कालवाचीय पूर्वाह्ण और पराह्ण शब्दों से विकल्प से शैषिक ट्यु और ट्युल प्रत्यय हों ॥ २४ ॥

तत्र जातः ॥ २५ ॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थे यथाविहितं (अणादयः घादयश्च) प्रत्ययाः स्युः । यथा-स्रुघ्ने जातः-स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । अवारपारीणः । इत्यादि ॥

सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से जात अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय हों २५

प्रावृषष्ठप् ॥ २६ ॥

यथा--प्रावृषि जातः-प्रावृषिकः ॥

सप्तमीसमर्थ प्रावृष् शब्द से जात अर्थ में ठप् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

सञ्ज्ञायां शरदो वुञ् ॥ २७ ॥

यथा--शारदकाः-दर्भविशेषाः, मुद्गविशेषाश्च ॥

सप्तमीसमर्थ शरद् शब्द से जात अर्थ में संज्ञा गम्यमान होनेपर वुञ् प्रत्यय हो

पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करात् वुन् ॥ २८ ॥

यथा--पूर्वाह्णकः । अपराह्णकः । आर्द्रकः । मूलकः । प्रदोषकः । अवस्करकः ॥

संज्ञागम्यमान हो तो सप्तमी समर्थ पूर्वाह्ण, अपराह्ण, आर्द्रा, मूल, प्रदोष और अवस्कर शब्द से जात अर्थ में वुन प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

पथः पन्थ च ॥ २९ ॥

यथा--पथिजातः--पन्थकः ॥

सप्तमी समर्थ पथिन् शब्द से जात अर्थ में वुन् प्रत्यय और पथिन् शब्दको पन्थ आदेशहो ॥ २९ ॥

अमावास्याया वा ॥ ३० ॥

यथा--अमावास्यकः । आमावास्यः ॥

सप्तमी समर्थ अमावास्या शब्दसे जात अर्थ में विकल्प करके वुन् प्रत्ययहो ॥

अ च ॥ ३१ ॥

यथा-अमावास्यः ॥

सप्तमी समर्थ अमावास्या शब्द से जात अर्थ में अ प्रत्ययहो ॥ ३१ ॥

सिन्ध्वपकराभ्याम् कन् ॥ ३२ ॥

यथा--सिन्धौ जातः--सिन्धुकः । अपकरकः ॥

सप्तमी समर्थ सिन्धु और अपकर शब्दों से जात अर्थ में कन् प्रत्ययहो ३२

अणञौ च ॥ ३३ ॥

क्रमात् स्याताम् । यथा--सैन्धवः । आपकरः ॥

सप्तमी समर्थ सिन्धु और अपकर शब्दों से जात अर्थ में यथाक्रम अण और अञ् प्रत्यय हों ॥ ३३ ॥

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधा स्वातितिष्य पुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक् ॥

एभ्यो नक्षत्रवाचिभ्यः परस्य जातार्थप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा -श्रविष्ठासु जातः--श्रविष्ठः। फल्गुनः। अनुराधः। स्वातिः। तिस्यः। पुनर्वसुः। हस्तः। विशाखः। अषाढः। बहुलः * ॥

सप्तमी समर्थ श्रविष्ठादि नक्षत्र वाचीय शब्दों से जात अर्थ में प्रत्ययका लुक् हो॥

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ।३५।

एभ्यो जातार्थ प्रत्यस्य लुक् स्यात् । यथा-गोस्थाने जातः-गोस्थानः। गोशालः। खरशालः॥

सप्तमी समर्थ स्थानान्त, गोशाल और खरशाल प्रातिपदिकों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्ययका लुक् हो ॥ ३५ ॥

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजोवा

एभ्यो जातार्थस्य लुग्वा स्यात् । यथा-वत्साशाले जातः--वत्सशालः। वात्स शालः। अभिजित्। आभिजितः। अश्वयुक्। आश्वयुजः। शतभिक्। शातभिषजः॥

सप्तमी समर्थ वत्सशाल, अभिजित्, अश्वयुज और शतभिषज् शब्दों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्ययका लुक् विकल्प करके हो ॥ ३६ ॥

नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ॥ ३७ ॥

* [चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम्] ॥ चित्रायांजातः—चित्रा । रेवतीरोहिणीआभ्यां [लुक् तद्धितलुकि] इति लुकिकृतेपि पिप्पल्यादेराकृति गणत्वात्पुनर्ङीप् ॥ [फल्गुन्यषाढाभ्यां टा नौ वक्तव्यौ] स्त्रियामित्ये वा फल्गुनी । अषाढा ॥

जातार्थे प्रत्ययस्य बहुलं लुक् स्यात्। यथा-रोहिणः। रौहिणः। मृगशिरः। मार्गशीर्षः॥

सप्तमीसमर्थ नक्षत्र वाचीय शब्दों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्यय का बाहुल्य से लुक् हो॥ ३७॥

कृतलब्धक्रीतकुशलाः ॥ ३८ ॥

तत्रेत्येव। यथा-स्रुघ्ने कृतः, लब्धः, क्रीतः, कुशलो वा-स्रौघ्नः। माथुरः॥

सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से कृत, लब्ध, क्रीत और कुशल इन चारो अर्थों में यथा विहित प्रत्यय हो॥ ३८॥

प्रायभवः ॥ ३९ ॥

तत्रेत्येव। यथा-स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति-स्रौघ्नः। काश्मीरः॥

सप्तमी समर्थ ङ्यन्त आबन्त और प्रातिपदिक से प्राय भव अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो॥ ३९॥

उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् ॥४०॥

उपजान्वादिभ्यः शब्देभ्यः सप्तमी समर्थेभ्यः प्रायभव इत्यस्मिन् विषये ठक् स्यात्। यथा-औपजानुकः। औपकर्णिकः। औपनीविकः॥

सप्तमी समर्थ उपजानु, उपकर्ण और उपनीवि शब्दों से प्रायभव अर्थ में ठक् प्रत्यय हो॥ ४०॥

सम्भूते ॥ ४१ ॥

यथा-स्रुघ्ने सम्भवति-स्रौघ्नः॥

सप्तमी समर्थ ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से सम्भूत अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो॥ ४१॥

(श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण वाच्यः)॥ श्राविष्ठीयः। आषाढीयः॥

कोशाड्ढञ् ॥ ४२ ॥

यथा-कौशेयं वस्त्रम् ॥

सप्तमी समर्थ कोश (रेशम) शब्द से सम्भूत अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो ४२ ॥

कालात् साधुपुष्प्यत् पच्यमानेषु ॥४३॥

यथा-हेमन्ते साधुः-हैमन्तः--प्राकारः। वसन्ते पुष्यन्ति-वासन्त्यः-कुन्दलताः। शरदि पच्यन्ते--शारदाः शालयः ॥

सप्तमी समर्थ कालवाचीय प्रातिपदिक से साधु, पुष्प्यत् और पच्यमान अर्थों में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ४३ ॥

उप्ते च ॥ ४४ ॥

यथा-ग्रीष्मे उपयन्ते-ग्रैष्मा व्रीहयः ॥

सप्तमी समर्थ कालवाचीय प्रातिपदिक से उप्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ४४ ॥

आश्वयुज्या वुञ् ॥ ४५ ॥

यथा-आश्वयुज्यामुप्ताः-आश्वयुजकाः-माषाः ॥

सप्तमीसमर्थ आश्वयुजी (अश्विनी) शब्दसे उप्तार्थ (बोना) में वुञ्प्रत्यय हो ४५

ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ॥ ४६ ॥

पक्षेऋत्वण्। यथा-ग्रैष्मकम्, ग्रैष्मम्। वासन्तकम्, वासन्तम् ॥

सप्तमी समर्थ ग्रीष्म और बसन्त शब्दों से उप्तार्थ मे विकल्प से वुञ्प्रत्ययहो ४६

देयमृणे ॥ ४७ ॥

कालादित्येव । यथा—मासेदेयमृणं मासिकम् । सांवत्सरिकम् ॥
सप्तमीसमर्थ कालवाचीय प्रातिपदिकसे देय ऋण इसअर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन् ॥ ४८ ॥

यस्मिन् कालेमयूराः कलापिनो भवन्ति स उपचारात् कलापी । तत्रेदेयमृणं कलापकम् । अश्वत्थस्यफलम्—अश्वत्थः । तद्युक्तः कालः—अश्वत्थः । यस्मिन्कालेऽश्वत्थाः फलन्ति तत्रेदेयम्—अश्वत्थकम् । यस्मिन् यवबुसमुत्पद्यते तत्रेदेयं यवबुसकम् ॥
सप्तमी समर्थ कालवाचीय कलापि, अश्वत्थ और यवबुस शब्दसे देय ऋण इसअर्थ में वुन् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

ग्रीष्माऽवरसमाद् वुञ् ॥ ४९ ॥

यथा—ग्रीष्मेदेय मृणं—ग्रैष्मकम् । आवरसमकम् ॥
सप्तमी समर्थ कालवाचीय ग्रीष्म और अवरसम शब्द से देय ऋण इस अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

संवत्सराग्रहायणीभ्यांठञ्च ॥ ५० ॥

चाद्वुञ् । यथा—संवत्सरेदेयमृणम—सांवत्सरिकम्, सांवत्सरकम् । आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम् ॥
सप्तमी समर्थ कालवाचीय संवत्सर और आग्रहायणी शब्दों से देय ऋण इस अर्थ में ठञ् और वुञ् प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

व्याहरतिमृगः ॥ ५१ ॥

कालवाचिनः सप्तम्यन्ताद् व्याहरति मृग इत्येतस्मिन् विषये

यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा-निशायां व्याहरति-नैशः-मृगः, नैशिकः। प्रादोषः, प्रादोषिकः ॥

सप्तमी समर्थ कालवाचीय प्रातिपदिक से व्याहरति मृग इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

तदस्य सोढम् ॥ ५२ ॥

कालादित्येव। यथा-निशासहचरितमध्ययनं निशा। तत्सोढमस्यच्छात्रस्य-नैशिकः नैशः ॥

सोढ समानाधि करण प्रथमा समर्थ कालवाचीय प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थमें यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ५२ ॥

तत्रभवः ॥ ५३ ॥

यथा-स्रुघ्नेभवः-स्रौघ्नः। माथुरः ॥

सप्तमी समर्थ ङ्यन्त आवन्त और प्रातिपदिकसे भव अर्थ मेंयथाविहितप्रत्ययहो ५३

दिगादिभ्यो यत् ॥ ५४ ॥

यथा-दिशिभवम्-दिश्यम्। वर्ग्यम् ॥

सप्तमीसमर्थ दिगादि प्रातिपदिकों से भव अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

शरीरावयवाच्च ॥ ५५ ॥

यथा-दन्तेषु भवम्-दन्त्यम्। कर्ण्यम्। ओष्ठ्यम् ॥

सप्तमीसमर्थ शरीर अवयव वाचीय प्रातिपदिकों से भव अर्थ में यत् प्रत्यय हो ५५॥

इतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ५६

यथा—दृतौभवम्—दार्त्तेयम् । कौक्षेयम् । कालशेयम् । वास्तेयम् । आस्तेयम् । आहेयमजरं विषम् ॥

सप्तमीसमर्थ दृति, कुक्षि, कलशि, वस्ति, अस्ति, और अहि प्रातिपदिक से भव अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

ग्रीवाभ्योऽण् च ॥ ५७ ॥

चात् ढञ् । यथा—ग्रीवासुभवम्—ग्रैवेयम् । ग्रैवम् ॥

सप्तमीसमर्थ ग्रीवा शब्द से भव अर्थ में अण तथा ढञ् प्रत्यय हो ॥ ५७ ॥

गम्भीराञ्ञ्यः ॥ ५८

यथा—गम्भीरे भवम्—गाम्भीर्यम् * ॥

सप्तमीसमर्थ गम्भीर शब्द से भव अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

अव्ययीभावाच्च ॥ ५९ ॥

यथा—परिमुखं भवम्—पारिमुख्यम् ॥

सप्तमीसमर्थ अव्ययीभाव संज्ञक प्रातिपदिकों से भव अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो ॥

अन्तःपूर्वपदात् ठञ् ॥ ६० ॥

अव्ययीभावादित्येव । यथा-वेश्मनि-अन्तः-अन्तर्वेश्मम् । तत्र भवम्-आन्तर्वेश्मिकम् । आन्तर्गेहिकम् ¶ ॥

सप्तमी समर्थ अव्ययी भाव संज्ञक अन्तःपूर्वपद प्रातिपदिक से भव अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो ॥ ६० ॥

---

* (बहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्चेति वाच्यम्) ॥ बाह्यम् । दैव्यम् । पाञ्चजन्यम् ॥

¶ (समान शब्दाट्ठञ् वाच्यः)॥ समाने भवम्—सामानिकम् ॥ (तदादेश्च) ॥ सामानग्रामिकम् ॥ (अध्यात्मादिभ्यश्च) ॥ अध्यात्मं भवम्—आध्यात्मिकम् । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् ॥ ७ । ३ । २० इत्युभयपदवृद्धिः ॥

ग्रामात् पर्यनुपूर्वात् ॥ ६१ ॥

अव्ययीभावाट्ठञ् स्यात् । यथा—पारिग्रामिकः । आनुग्रामिकः ॥

सप्तमी समर्थ अव्ययी भाव संज्ञक परि अनु पूर्वक ग्राम शब्दान्त प्रातिपदिक से भव अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो ॥ ६१ ॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ॥ ६२ ॥

यथा—जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ॥

सप्तमी समर्थ जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्दसे भव अर्थ में छ प्रत्ययहो। ६२

वर्गान्ताच्च ॥ ६३ ॥

यथा—कवर्गीयम् । चवर्गीयम् । टवर्गीयम् । तवर्गीयम् ॥

सप्तमी समर्थ वर्गान्त प्रातिपदिक से छ प्रत्ययहो ॥ ६३ ॥

अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम् ६४

पक्षे छः । यथा—मद्वर्ग्यः । मद्वर्गीणः । मद्वर्गीयः ॥

शब्दसे भिन्न प्रत्ययार्थ हो तो सप्तमी समर्थ वर्गान्त प्राति पदिक से भव अर्थ में विकल्प से यत् और ख प्रत्ययहो ॥ ६४ ॥

कर्णललाटात् कनलङ्कारे ॥ ६५ ॥

यथा—कर्णिका । ललाटिका ॥

अलङ्कार (भूषण) वाच्य होतो सप्तमी समर्थ कर्ण और ललाट शब्दसे भव अर्थ में कन् प्रत्ययहो ॥ ६५ ॥

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥ ६६ ॥

यथा—सुपां व्याख्यानः-सौपो ग्रन्थः। तैङः। कार्त्तः। सुप्सु भवम्-सौपम्। तैङम्। कार्त्तम्॥

षष्ठी तथा सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से यथासंख्य व्याख्यान और भव अर्थ में यथाविहित प्रत्ययहो॥ ६६॥

बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्॥ ६७॥

यथा—षत्वणत्वयोर्विधायकं शास्त्रम्-षत्वणत्वम्। तस्य व्याख्यानः, तत्र भवो वा षात्वणत्विकम्॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ बह्वच अंतोदात्त व्याख्यातव्य नाम प्रातिपदिक से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो॥ ६७॥

क्रतुयज्ञेभ्यश्च॥ ६८॥

क्रतुभ्यो यज्ञेभ्यश्च व्याख्यातव्यनामभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोष्ठञ् स्यात्। यथा-क्रतुभ्यः। अग्निष्टोमस्य व्याख्यानस्तत्र भवः-आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। यज्ञेभ्यः। पाकयज्ञिकः। नावयज्ञिकः॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ क्रतुवाचीय और यज्ञ वाचीय व्याख्यातव्य नाम प्रातिपदिकों से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो॥ ६८॥

अध्यायेषु एव ऋषेः॥ ६९॥

ऋषिशब्देभ्यो लक्षणया व्याख्येयग्रन्थवृत्तिभ्यो भवे व्याख्याने चाध्याये ठञ् स्यात्। यथा—वसिष्ठस्य व्याख्यानस्तत्रभवो वा-वासिष्ठिकोऽध्यायः॥

अध्याय वाच्य हो तो षष्ठी और सप्तमी समर्थ ऋषिवाचीय शब्दों से यथासङ्ख्य व्याख्यान और भव अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो॥ ६९॥

पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन् ॥ ७० ॥

यथा-पुरोडाशसहचरितो मन्त्रः-पुरोडाशः । स एव पौरोडाशः । ततः ष्ठन् पौरोडाशिकः । पौरोडाशिकी ॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ पौरोडाश और पुरोडाश शब्द से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ ७० ॥

छन्दसो यदणौ ॥ ७१ ॥

यथा-छन्दस्यः । छान्दसः ॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ छन्दस् शब्द से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में यत् और अण् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरण-नामाख्याताट्ठक् ॥ ७२ ॥

यथा-ऐष्टिकः । पाशुकः । चातुर्होतृकः । ब्राह्मणिकः । आर्चिकः । प्राथमिकः । आध्वरिकः । पौरश्चरणिकः । नामिकः । आख्यातिकः । नामाख्यातिकः ॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ द्व्यच् ऋकारान्त, ब्राह्मण, ऋच् प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नाम, आख्यात इन शब्दों से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

अणृगयनादिभ्यः ॥ ७३ ॥

यथा-ऋचामयनम्-ऋगयनम् । नक्षुभ्नादिरित्यनेनणत्वाभावः । तस्य व्याख्यानस्तत्र भवोवा-आर्गयणः । रत्वनिमित्तं तु णत्वभवत्येव । आर्गयनइत्यन्ये । औपनिषदः । वैयाकरणः ॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ ऋगयनादि प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

तत आगतः ॥ ७४ ॥

तत इति पञ्चमीसमर्थादागत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा--स्रुघ्नादागतः- स्रौघ्नः। माथुरः ॥

पञ्चमी समर्थ प्रातिपदिक से आगत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

ठगायस्थानेभ्यः ॥ ७५ ॥

यथा शुल्कशालाया आगतः--शौल्कशालिकः। आकरिकम्। नागरिकम्।

पञ्चमीसमर्थ आयस्थानवाचीय प्रातिपदिकों से आगतअर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।७५।

शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥ ७६ ॥

आयस्थानठकोऽपवादः। यथा- शुण्डिकादागतः--शौण्डिकः। भौमः॥

पञ्चमी समर्थ शुण्डिकादि प्रातिपदिकोंसे आगतअर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ७६ ॥

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ॥७७॥

विद्यायोनि[illegible]तः सम्बन्धो येषां ते विद्यायोनिसम्बन्धाः। तद्वाचिभ्यः शब्देभ्यो वुञ् स्यात् तत आगत इत्येतस्मिन् विषये। यथा—उपाध्यायादागतम्—औपाध्यायकम्। [illegible] । मातामहकः। पैतामहकः ॥

पञ्चमीसमर्थ विद्या सम्बन्धीय और योनि सम्बन्धीय प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

ऋतष्ठञ् ॥ ७८ ॥

यथा-होतुरागतम्-हौतृकम् । पौतृकम् । योनिसम्बन्धवाचिभ्यः । भ्रातृकम् । मातृकम् ॥

पञ्चमीसमर्थ विद्यायोनि सम्बन्ध वाचीय ऋकारान्त प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ७८ ॥

पितुर्यच्च ॥ ७९ ॥

चाट्ठञ् । रीङ्तः । यस्येतिलोपः । यथा-पितुरागतम्-पित्र्यम्, पैतृकम् ॥

पञ्चमी समर्थ पितृशब्द से आगत अर्थ में यत् तथा ठञ् प्रत्यय हो ॥ ७९ ॥

गोत्रादङ्कवत् ॥ ८० ॥

अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रमपत्यमात्रं गृह्यते । अङ्कग्रहणेन तस्येदमर्थ सामान्यं लक्ष्येत । यथा-विदेभ्यआगतम्-वैदम् । गार्गम् । दाक्षम् । औपगवकम् ॥

पञ्चमीसमर्थ गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकसे आगतअर्थमें अङ्कवत् प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ॥ ८१ ॥

हेतुभ्यो मनुष्येभ्यश्च वा रूप्यः स्यात्तत आगतइत्येतस्मिन् विषये । यथा-हेतुभ्यः । समादागतम्-समरूप्यम् । समीयम् । विषमरूप्यम् विषमीयम् । गहादित्वाच्छः । मनुष्येभ्यः । देवदत्तरूप्यम्, दैवदत्तम् ॥

पञ्चमी समर्थ हेतु और मनुष्य वाचीय प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में विकल्पसे रूप्य प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

मयट् च ॥ ८२ ॥

यथा—सममयम् विषममयम्। देवदत्तमयम्। यज्ञदत्तमयम् ॥

पञ्चमी समर्थ हेतु और मनुष्य वाचीय प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में मयट् प्रत्यय भी हो ॥ ८२ ॥

प्रभवति ॥ ८३ ॥

तत इत्येव। यथा—हिमवतः प्रभवति—हैमवतीगङ्गा ॥

पञ्चमी समर्थ ङ्यन्त आबन्त और प्रातिपदिकों से प्रभवति अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

विदूराञ्ञ्यः ॥ ८४ ॥

यथा—विदूरात्प्रभवति—वैदूर्य्योमणिः ॥

पञ्चमी समर्थ विदूरशब्द से प्रभवति अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो ॥ ८४ ॥

तद् गच्छति पथिदूतयोः ॥ ८५ ॥

यथा—स्रुघ्नंगच्छति—स्रौघ्नः—पन्थाः, दूतोवा ॥

पन्था और दूतवाच्य होतो द्वितीया समर्थ शब्द से गच्छति अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ॥ ८६ ॥

तादित्येव। यथा—स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति—स्रौघ्नंकान्यकुब्जद्वारम् ॥

द्वारवाच्य होतो द्वितीया समर्थ शब्द से अभिनिष्क्रामति अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

अधिकृत्यकृतेग्रन्थे ॥ ८७ ॥

तदित्येव। यथा—कारकमधिकृत्यकृतोग्रन्थः—कारकीयः ॥

ग्रन्थवाच्य होतो द्वितीय समर्थ प्रातिपदिक से अधिकृत्य कृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यत हो ॥ ८७ ॥

शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ॥ ८८ ॥

यथा—शिशूनांक्रन्दनम्—शिशुक्रन्दः। तमधिकृत्य कृतोग्रन्थः—शिशुक्रन्दीयः। यमस्यसभा—यमसभम्—यमसभीयः। किरातार्जुनीयम्। इन्द्रजननीयम् ॥

ग्रन्थवाच्य होतो द्वितीया समर्थ शिशुक्रन्द, यमसभ, द्वन्द्व और इन्द्रजननादि प्रातिपदिकों से अधिकृत्यकृत अर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ ८८ ॥

सोऽस्यनिवासः ॥ ८९ ॥

यथा—वाराणसी निवासोऽस्य—वाराणसेयः। ग्राम्यः। ग्रामीणयः ॥

निवास समानाधिकरण प्रथमा समर्थसे षष्ठ्यर्थमें यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८९ ॥

अभिजनश्च ॥ ९० ॥

यथा—इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य—ऐन्द्रप्रस्थः। माथुरः ॥

अभिजन (जन्मभूमि बापदादे के रहने का स्थान) समानाधिकरण प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ९० ॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥ ९१ ॥

पर्वतवाचिनः प्रथमान्तादभिजनशब्दादस्येत्यर्थे छः स्यात् । यथा-हृद्गोलःपर्वतोऽभिजनो येषामायुधजीविनां ते हृद्गोलीयः ॥

आयुध जीवि (शस्त्रास्त्र विद्यासे जीविका करने वाले) वाच्य हों तो प्रथमा समर्थ पर्वतवाचीय प्रातिपदिक से अभिजन अर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ॥ ९२ ॥

शण्डिकोऽभिजनोऽस्य-सः शाण्डिक्यः ॥

अभिजन समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शाण्डिकादि प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में ञ्य प्रत्यय हो ॥ ९२ ॥

सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥ ९३ ॥

सिन्ध्वादिभ्योऽण् । तक्षशिलादिभ्योऽञ् स्यादुक्तेऽर्थे । यथा-सैन्धवः । तक्षशिला नगरी अभिजनोऽस्य-ताक्षशिलः ॥

अभिजन समानाधिकरण प्रथमा समर्थ सिन्ध्वादि और तक्ष शिलादि प्राति-पादिकों से षष्ठ्यर्थ में यथाक्रम अण् और अञ् प्रत्यय हों ॥ ९३ ॥

तूदीशलातुरवर्म्मतीकूचवाराड्ढक्-छण्ढञ्यकः ॥ ९४ ॥

तूद्यादिभ्यश्चतुर्भ्यश्शब्देभ्यो यथाक्रमं चत्वारो ढगादयः स्युः । यथा-तूदी अभिजनोऽस्य-तौदेयः । शालातुरीयः । वार्मतेयः । कौचवार्यः ॥

अभिजन समानाधिकरण प्रथमासमर्थ तूदी, शलातुर, वर्मती, कूचवार इन चार शब्दों से षष्ठ्यर्थ में यथाक्रम ढक्, छण्, ढञ्, यक् ये चार प्रत्यय हों ॥ ९४ ॥

भक्तिः ॥ ९५ ॥

सोऽस्येत्यनुवर्तत्ते । भज्यते सेव्यते इति भक्तिः । स्रुघ्नो भक्तिरस्य—स्रौघ्नः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो

अचित्ताददेशकालाट्ठक् ॥ ९६ ॥

देशकाल व्यतिरिक्तादचित्तवाचिनः प्रातिपदिकाट्ठक् स्यात् सोऽस्य भक्तिरित्येतस्मिन्विषये । यथा—अपूपाः भक्तिरस्य-आपूपिकः । शाष्कुलिकः । पायसिकः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ देशकाल व्यतिरिक्त अचित्तवाचीय प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो । ॥ ९६ ॥

महाराजाट्ठञ् ॥ ९७ ॥

यथा—महाराजो भक्तिरस्य--माहाराजिकः ॥

भक्तिसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ महाराज प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय हो

वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् ॥ ९८ ॥

यथा—वासुदेवो भक्तिरस्य--वासुदेवकः । अर्जुनकः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ वासुदेव और अर्जुन शब्द से षष्ठ्यर्थ में वुन् प्रत्यय हो । ॥ ९८ ॥

गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् ।९९।

यथा—ग्लुचुकायनि भक्तिरस्य--ग्लौचुकायनकः । औपगवकः । क्षत्रियाख्येभ्यः । नाकुलकः । साहदेवकः । बहुलग्रहणान्नेह--पाणिनो भक्तिरस्य-पाणिनीयः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ गोत्राख्य और क्षत्रियाख्य प्रातिपदिकों से बहुलता से षष्ठ्यर्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

जनपदिनां जनपदवत् सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥ १०० ॥

जनपद स्वामिवाचिनां बहुवचने जनपदवाचिनां समानश्रुतीनां जनपदवत् सर्वं स्यात्, प्रकृतिः प्रत्ययश्च । (जनपद तदवध्योश्च ४ । २ । १२४) इति प्रकरणे ये प्रत्यया उक्ता एतेऽत्रादिश्यन्ते । यथा–अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य-आङ्गकः । अङ्गाः क्षत्रिया भक्ति-रस्य -आङ्गकः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ बहुवचन में जनपद के समान शब्दवाले जनपदियों को जनपद के तुल्य कार्य्य हों ॥ १०० ॥

तेन प्रोक्तम् ॥ १०१ ॥

यथा–पाणिनिना प्रोक्तम्--पाणिनीयम् ॥

तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् १०२

यथा–तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते-तैत्तिरीयाः । वारतन्तवीयाः । खाण्डिकीयाः । औखीयाः ॥

तृतीयासमर्थ तित्तिर, वरतन्तु, खण्डिका और खा शब्द से प्रोक्त में छण् प्रत्यत हो

काश्यपकौशिभ्यामृषिभ्यां णिनिः १०३

काश्यपेन प्रोक्तमधीयते–काश्यपिनः । शौनकादिभ्यश्छन्दसी

त्यत्रानुवृत्तेश्छन्दोधिकारविहितानां च तत्र तद् विषयतेश्यते ॥

तृतीयासमर्थ ऋषिवाचीय क श्या और कौशिक प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय हो

कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च १०४

कलाप्यन्ते वासिनां वैशम्पायनान्ते वासिनां च ये वाचकाश्शब्दा स्तेभ्यो णिनिः स्यात् । यथा—हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते-हारिद्रविणः । वैशम्पायनान्ते वासिभ्यः । आलम्बिनः ॥

तृतीया समर्थ कलाप्यन्ते वासी तथा वैशम्पायनान्ते व सियों के वाचक शब्दों से प्रोक्त अर्थ मे णिनि प्रत्यय हो ॥ १०४ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ।१०५॥

तृतीयान्तात् प्रोक्तार्थे णिनिः स्यात् । यत्प्रोक्तं पुराणप्रोक्ताश्चेद् ब्राह्मणकल्पास्ते भवन्ति । यथा—पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना भल्लुना प्रोक्ताः—भाल्लविनः । शाट्यायनिनः । ऐतरेयिणः । कल्पेषु । पिङ्गेन प्रोक्तः—पैङ्गी कल्पः ॥

प्रोक्त अर्थ में जो प्राचीन लोगों के कहे ब्राह्मण और कल्पवाच्य हैं। तो तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से णिनि प्रत्यय हो ॥ १०५ ॥

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ १०६ ॥

छन्दस्यभिधेये एभ्यो णिनिः स्यात् यथा—शौनकेन प्रोक्त मधीयते—शौनकिनः ॥

तृतीया समर्थ शौनकादि प्राति पदिकों से छन्दो विषय में णिनि प्रत्यय हो १०६

कठचरकाल्लुक् ॥ १०७ ॥

आभ्यां प्रोक्तप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। यथा-कठेन प्रोक्तमधीयेत कठाः। चरकाः॥

तृतीय समर्थ कठ और चरक शब्दसे प्रोक्त अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक्हो॥

कलापिनोऽण् ॥ १०८ ॥

यथा-कलापिनाप्रोक्तमधीयते-कालापाः॥

तृतीया समर्थ कलापिन् शब्दसे प्रोक्त अर्थ में अण् प्रत्ययहो॥ १०८॥

छगलिनो ढिनुक् ॥ १०९ ॥

छगलिना प्रोक्तमधीयते-छागलेयिनः॥

तृतीया समर्थ छगलिन् शब्द से प्रोक्त अर्थ में ढिनुक् प्रत्यय हो १०९॥

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः

यथा--पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते -पाराशरिणो-भिक्षवः। शैलालिनो--नटाः॥

भिक्षुसूत्र और नटसूत्र वाच्यहोंतो तृतीया समर्थ पाराशर्य और शिलालिन् शब्द से प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय हो॥ ११०॥

कर्म्मन्दकृशाश्वादिनिः ॥ १११ ॥

भिक्षुनटसूत्रयोरित्येव। यथा--कर्म्मन्देन प्रोक्तमधीयते--कर्मन्दिनः-भिक्षवः। कृशाश्विनः- नटाः॥

भिक्षुसूत्र और नटसूत्र वाच्यहोंतो तृतीया समर्थ कर्मन्द और कृशाश्व शब्द से प्रोक्त अर्थ में इनि प्रत्यय हो॥ १११॥

१ इन ण्यन पत्ये इति प्रकृति भावे प्राप्ते, नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पि कलापि कौथुमि तैतिल आर्जलि लाङ्गलि शिलालि शिखण्डि सूकर सद्म सुपर्वणामुपसङ्ख्यानम्। इति टिलोपः॥

तेनैकदिक् ॥ ११२ ॥

यथा--वाराणस्या एकदिक्-वाराणसेयोग्रामः। सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक्-सौदामनी विद्युत् ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से एकदिक् अर्थमें यथा प्राप्त प्रत्यय हो ॥

तसिश्च ॥ ११३ ॥

स्वरादिपाठादव्ययत्वम्। यथा--इन्द्रप्रस्थेन एकदिक्-इन्द्रप्रस्थतः। हिमवतः। मुरादाबादतः ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से एकदिक् अर्थ में तसि प्रत्यय हो ॥ ११३ ॥

उरसो यच्च ॥ ११४ ॥

चात्तसिः। अणोऽपवादः। यथा--उरसा एकदिक्-उरस्यः। उरस्तः॥

तृतीया समर्थ उरस् शब्द से एकदिक् अर्थ में यत् और तसि प्रत्यय हो। ११४

उपज्ञाते ॥ ११५ ॥

तेनेत्येव। पाणिनोपज्ञातम्-पाणिनीयं व्याकरणम्। पातञ्जलं योगशास्त्रं ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से उपज्ञात (उपदेशक्रियेविना अपने आपही समझ लेना) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

कृते ग्रन्थे ॥ ११६ ॥

यथा--वररुचिना कृतावाररुचाःश्लोकाः। मानवोग्रन्थः ॥

यदि ग्रन्थवाच्य होतो तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से कृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ११६ ॥

सञ्ज्ञायाम् ॥ ११७ ॥

तेनेत्येव । अग्रन्थार्थमिदम् । यथा--माक्षिकाभिः कृतम्--माक्षिकंमधु ॥

यदि सञ्ज्ञा गम्यमान होतो तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से कृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो । ११७ ॥

कुलालादिभ्योवुञ् ॥ ११८ ॥

तेनकृतेसञ्ज्ञायाम् । यथा--कुलालेनकृतम् -कौलालकम् ॥

यदि सञ्ज्ञा गम्यमान होतो तृतीया समर्थ कुलालादि प्रातिपदिकों से कृतार्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् ॥ ११९ ॥

तेनकृते सञ्ज्ञायाम् । यथा--क्षुद्राभिःकृतम् -क्षौद्रम् । भ्रामरम् । वाटरम् । पादपम् ॥

संज्ञागम्यमान होतो तृतीया समर्थ क्षुद्रा (मक्खी) भ्रमर (भौंरा) वटर (कुक्कुट) और पादप (वृक्ष) प्रातिपदिक से कृतअर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

तस्येदम् ॥ १२० ॥

यथा—राज्ञः इदम् -राजकीयम् । उपगोरिदम्-औपगवम् * ॥

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

रथाद् यत् ॥ १२१ ॥

* (वहेस्तु रणिट् च) ॥ संवोढुः स्वं सांवहित्रम् ॥ (अग्नीधः शरणे रण् भं च) ॥ अग्निमिन्धे अग्नीत्, तस्य स्थान माग्नीध्रम् । तात् स्थ्यात् सोऽप्याग्नीध्रः । (समिधा माधाने षेण्यण्) सामिधेन्यो मन्त्रः । सामिधेनी ऋक् ॥

यथा—रथस्येदम्—रथ्यं चक्रम् ॥

षष्ठीसमर्थ रथ शब्द से इदम् अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

पत्रपूर्वादञ् ॥ १२२ ॥

पत्रं वाहनम् । यथा—अश्वरथस्येदम्—आश्वरथम् ॥

पत्र (सवारी) पूर्वक रथ शब्द से इदम् अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

पत्राध्वर्युपरिषदश्च ॥ १२३ ॥

अञ् (पत्राद् वाह्ये) ॥ अश्वस्येदं वहनीयम्-आश्वम् । आध्वर्यवम् । पारिषदम् ॥

षष्ठी समर्थ पत्र वाचीय प्रातिपदिक अध्वर्यु (ऋत्विज्) और परिषद् (सभा शब्द से इदम् अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १२३ ॥

हलसीराट्ठक् ॥ १२४ ॥

यथा—हलस्येदम्—हालिकम् । सैरिकम् ॥

षष्ठीसमर्थ हल और सीर (हल) शब्द से इदम् अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १२४ ॥

द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः ॥ १२५ ॥

यथा—अहिनकुलिका । काकोलूकिका । गर्गकुशिकिका । अत्रिभरद्वाजिका ॥

वैर और मैथुनिक अभिधेय हो तो षष्ठी समर्थ द्वन्द्व प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में वुन् प्रत्यय हो ॥ १२५ ॥

गोत्रचरणाद् वुञ् ॥ १२६ ॥

यथा—औपगवकम् (चरणाद् धर्म्माम्नाययो रितिवाच्यम्) ॥ औपगवकम् । काठकम् ॥

षष्ठीसमर्थ गोत्रवाचीय और चरणवाचीय प्रातिपदिकों से इदम् अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥ १२७ ॥

(घोषग्रहणमपि कर्त्तव्यम्) ॥ अञ्--वैदः-सङ्घः, अङ्कः, घोषो लक्षणं वा । यञ्--गार्गः--सङ्घः, अङ्कः, घोषो लक्षणं वा । इञ्-दाक्षः--सङ्घः, अङ्कः, घोषो लक्षणं वा ॥

सङ्घ, अङ्क, (परम्परासम्बन्ध) लक्षण और घोष वाच्य हों तो षष्ठीसमर्थ अञन्त, यञन्त और इञन्त प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ १२७ ॥

शाकलाद्वा ॥ १२८ ॥

अण् वा, इदमर्थे पक्षे चरणाद् वुञ् । यथा—शाकलस्य--सङ्घः, अङ्कः, घोषः, लक्षणंवेति--शाकलः, शाकलकः ॥

षष्ठीसमर्थ शकल शब्द से इदम् अर्थ में सङ्घादि वाच्य हों तो विकल्प से अण् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः

यथा--छन्दोगानाम्--धर्म्मः, आम्नायो वा--छान्दोग्यम् । औक्थिक्यम् । याज्ञिक्यम् । बाह्वृच्यम् । नाट्यम् ॥

षष्ठीसमर्थ छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, और नट शब्द से इदम् अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो

न दण्डमाणवान्तेवासिषु ॥ १३० ॥

दण्ड प्रधाना माणवा दण्डमाणवाः, अन्ते वासिनः तेषु शिष्येषु

च, वुञ् न स्यात् । यथा-गौ कक्षाः दण्डमाणवा अन्तेवासि ो वा दाक्षः । माहकः ॥

दण्डमाणव तथा अन्तेवासी वाच्य होतो षष्ठी समर्थ गोत्र वाचीय प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में वुञ् प्रत्यय न हो ॥ १३० ॥

रैवतिकादिभ्यश्छः ॥ १३१ ॥

तस्येदम्-इत्यर्थे । यथा- रैवतिकीयः । वैजवापीयः + ॥

षष्ठी समर्थ रैवतिक आदि प्रातिपदिकों से इदम् अर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

तस्य विकारः ॥ १३२ ॥

(अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः) ॥ यथा -अश्मनो विकारः आश्मः । भास्मनः । मार्त्तिकः ॥

षष्ठी समर्थ अश्मन्त आन्त और प्रातिपदिक से विकार अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ १३२ ॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ॥ १३३ ॥

चाद्विकारे । मयूरस्य-अवयवो विकारो वा-मायूरः । कापोतः । मौर्वम्-काण्डम्, भस्म । कारीरम्-काण्डम्, भस्मवा ॥

षष्ठी समर्थ प्राणी, ओषधि और वृक्ष वाचीय प्रातिपदिक स अवयव और विकार अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ १३३ ॥

बिल्वादिभ्योऽण् ॥ १३४ ॥

बिल्वस्याऽवयवो विकारो वा—बैल्वः ॥

षष्ठी समर्थ बिल्वादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥

+ (कौपिंजल हास्तिपदादण्वाच्यः) ॥ कुपिंजलस्याऽपत्यम् । इहैव निपातनादण् । तदन्तात्पुनरण्-कौपिंजलः । हस्तिपादस्याऽपत्यम्—हास्तिपादः । तस्यायम्—हास्तिपादः ॥ [आथर्वणिकस्येकलोपश्च] ॥ अण् स्यात् । आथर्वणिकस्यायम्-आथर्वणः—धर्मः, आम्नायोवा ॥

कोपधाच्च ॥ १३५ ॥

अण् । यथा—तर्कु—तार्कवम् । माण्डूकम् ॥

षष्ठी समर्थ ककारोपध प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ मे अण् प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

त्रपुजतुनोः षुक् ॥ १३६ ॥

आभ्यामण् स्याद् विकारे एतयोः षुगागमश्च । यथा—त्रपुणो विकारः—त्रापुषम् । जातुषम् ॥

षष्ठी समर्थ त्रपू (रांगा) और जतु (लाख) शब्द से विकार अर्थ में अण् प्रत्यय और दोनों शब्दों को षुक् का आगम हो ॥ १३६ ॥

ओरञ् ॥ १३७ ॥

विकाराऽवयवयोरर्थयो रुवर्णान्तात् प्रातिपदिकादञ् स्यात् । यथा—दैवदारवम् । भाद्रदारवम् ॥

षष्ठी समर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकसे विकार और अवयव अर्थमें अञ् प्रत्यय हो १३७

अनुदात्तादेश्च ॥ १३८ ॥

अञ् । यथा—दाधित्थम् । कापित्थम् ॥

षष्ठी समर्थ अनुदात्तादि प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

पलाशादिभ्यो वा ॥ १३९ ॥

यथा—पालाशम् । खादिरम् ॥

षष्ठी समर्थ पलाशादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से अञ् प्रत्यय हो ॥ १३९ ॥

शम्याष्ट्लञ् ॥ १४० ॥

यथा -शामीलम्--भस्म । पित्वान्ङीप् । शामीलीस्रुक् ॥

षष्ठी समर्थ शमीशब्द से विकार और अवयव अर्थ में ट्लञ् प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥ १४१ ॥

प्रकृतिमात्रान् मयड्वा स्याद् विकारावयवयोः । यथा-अश्ममयम्, आश्मनम् ॥

षष्ठी समर्थ प्रकृति मात्र से भक्ष्य और आच्छादन अर्थको छोड़कर विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से लोक में मयट् प्रत्ययहो ॥ १४१ ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः १४२

यथा-आम्रमयम् । शरमयम् * ॥

षष्ठी समर्थ वृद्धादि और शरादि प्रातिपदिकों से भक्ष्य और आच्छादन वर्जित विकार और अवयव अर्थ में लोक विषयक प्रयोग होने पर नित्य मयट् प्रत्ययहो

गोश्च पुरीषे ॥ १४३ ॥

यथा--गोः-पुरीषम्--गोमयम् ॥

षष्ठी समर्थ गो शब्दसे पुरीष वाच्य होतो इदम् अर्थ में मयट् प्रत्ययहो ।४३

पिष्टाच्च ॥ १४४ ॥

मयट् स्याद् विकारे । यथा--पिष्टमयम् भस्म ॥

षष्ठी समर्थ पिष्ट (सीसा) शब्दसे विकार अर्थ में मयट् प्रत्ययहो ॥ १४४ ॥

* [एकाचो नित्यम्] । त्वङ्मयम, वाङ्मयम् ॥

सञ्ज्ञायां कन् ॥ १४५ ॥

पिष्टादित्येव । यथा--पिष्टस्य विकार विशेषः–पिष्टकः । पूपोऽपूपी पिष्टकः स्यात् ॥

षष्ठी समर्थ पिष्ट शब्दसे सञ्ज्ञा विषय होतो विकार अर्थ में कन् प्रत्ययहो ॥

व्रीहेः पुरोडाशे ॥ १४६ ॥

मयट् स्यात् । यथा- व्राहिमयः पुरोडाशः । व्रैहमन्यत् ॥

यदि व्रीहि (चावल) का विकार पुरोडाश होतो षष्ठी समर्थ व्रीहि शब्द से मयट् प्रत्यय हो ॥ १४६ ॥

असञ्ज्ञायां तिलयवाभ्याम् ॥ १४७ ॥

यथा–तिलमयम् । यवमयम् । संज्ञायां तु -तैलम् । यावकः ॥

असंज्ञा विषय में षष्ठी समर्थ तिल और यव शब्द से विकार और अवयवअर्थ में मयट् प्रत्यय हो ॥ १४७ ॥

द्व्यचश्छन्दसि ॥ १४८ ॥

यथा शरमयं बर्हिः ॥

षष्ठी समर्थ द्व्यच् प्रातिपदिक से छन्दो विषय में विकार और अवयव अर्थ होनेपर मयट् प्रत्यय हो ॥ १४८ ॥

न उत्वद्वर्ध्रबिल्वात् ॥ १४९ ॥

उत्वतः प्रातिपदिकाद् वर्ध्रबिल्वशब्दाभ्यां चच्छन्दसि विषये मयण् न स्यात् । यथा–मौञ्जं शिक्यम् । वार्ध्रं चर्म्म । बैल्वो यूपः ॥

षष्ठी समर्थ द्व्यच् उकारवान वर्ध्र और बिल्व प्रातिपदिक से छन्दोविषय में विकार और अवयव अर्थ होनेपर मयट् प्रत्यय न हो ॥ १४९ ॥

तालादिभ्योऽण् ॥ १५० ॥

(तालाद् धनुषि)॥ तालम्-धनुः ॥ तालमयमन्यत् ॥

षष्ठीसमर्थ तालादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अण् प्रत्यय हो

जातरूपेभ्यः परिमाणे ॥ १५१ ॥

अण् स्यात् । बहुवचननिर्देशात्तद् वाचिनो विश्वे गृह्यन्ते । यथा-हाटकः तापनीयः सौपर्णो वा निष्कः ॥

षष्ठीसमर्थ जातरू (सुवर्ण) वाचीय प्रातिपदिकों से परिमाण गम्यमान होनेपर विकार अर्थ में अण प्रत्यय हो ॥ १५१ ॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥ १५२ ॥

यथा-मायूरम् । शौकम् । राजतीमुद्रा ॥

षष्ठीसमर्थ प्राणि वाचीय और रजतादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १५२ ॥

ञितश्च तत्प्रत्ययात् ॥ १५३ ॥

ञितोविकाराऽवयव प्रत्ययान्तादञ् स्याद् विकारावयवार्थे । यथा-दैवदारवस्य विकारोऽवयवो वा-दैवदारवम् । पालाशस्य-पालाशम् ॥

विकार और अवयव अर्थ में विहित ञित् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में ही अञ् प्रत्यय हो ॥ १५३ ॥

क्रीतवत् परिमाणात् ॥ १५४ ॥

(प्राग्वतेष्ठञ् ५ । १ । १८) इत्यारभ्यक्रीतार्थे ये प्रत्यया विहिता येनोपाधिना परिमाणाद् विहितास्ते तथैव विकारेऽतिदि-

श्यन्ते। यथा—निष्केणक्रीतम्-नैष्किकम्। एवं निष्कस्य विकारोऽपि-नैष्किकः। शतस्यविकारः-शत्यः, शातिकः॥

षष्ठीसमर्थ परिमाण वाचीय प्रातिपदिक से विकार अर्थ में क्रीत वत् प्रत्यय हो॥

उष्ट्राद् वुञ् ॥ १५५ ॥

यथा—उष्ट्रस्य विकारोऽवयवो वा-औष्ट्रकः॥

षष्ठीसमर्थ उष्ट्र शब्द से विकार और अवयव अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो॥ १५५॥

उमोर्णयोर्वा ॥ १५६ ॥

यथा—उमाया विकारोऽवयवो वा-औमम्। औमकम्। ऊर्णाया-विकारोऽवयवो वा-और्णम्, और्णकम्॥

षष्ठीसमर्थ उमा (हरिद्रा) और ऊर्णा (मेषादिलोम) शब्द से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से वुञ् प्रत्यय हो॥ १५६॥

एण्या ढञ् ॥ १५७ ॥

एण्या विकारोऽवयवो वा-ऐणेयम्॥

षष्ठीसमर्थ एणी (हरिणी) शब्द से विकार और अवयव अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो

गोपयसोर्यत् ॥ १५८ ॥

यथा—गोर्विकारोऽवयवो वा-गव्यम्। पयस्यम्॥

षष्ठीसमर्थ गो और पयस् शब्द से विकार और अवयव अर्थ में यत् प्रत्यय हो॥

द्रोश्च ॥ १५९ ॥

यथा—द्रुः-वृक्षः तस्य विकारोऽवयवो वा-द्रव्यम्॥

षष्ठीसमर्थ द्रु शब्द से विकार और अवयव अर्थ में यत् प्रत्यय हो॥ १५९॥

मानेवयः ॥ १६० ॥

द्रुशब्दान्माने विकारविशेषे वयः स्यात् । यथा-द्रुवयः ॥

षष्ठी समर्थ द्रुशब्दसे मान विकार अर्थ में वय प्रत्यय हो ॥ १६० ॥

फलेलुक् ॥ १६१ ॥

विकारावयव प्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा-आमलक्याः फलम्-आमलकम् ॥

फलविवक्षित होतो षष्ठी समर्थ ङ्यन्त आबन्त और प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो ॥ १६१ ॥

प्लक्षादिभ्योऽण् ॥ १६२ ॥

विधान सामर्थ्यान्नलुक् । यथा-प्लाक्षम् ॥

षष्ठी समर्थ प्लक्षादि प्रातिपदिकों से विकारावयवता से फल विवक्षित होनेपर अण् प्रत्यय हो ॥ १६२ ॥

जम्ब्वा वा ॥ १६३ ॥

जम्बूशब्दात् फले वाण् स्यात् । यथा-जाम्बवम् । पक्षे (ओरञ्) तस्यलुक्-जम्बु ॥

षष्ठी समर्थ जम्बू (जामुन) शब्द से फलवाच्य होतो विकल्प से अण् प्रत्यत हो ॥ १६१ ॥

लुप् च ॥ १६४ ॥

जम्ब्वा फलप्रत्ययस्य लुब् वा स्यात् । यथा-लुपियुक्तवत्-जम्ब्वाः फलम्-जम्बूः * ॥

षष्ठीसमर्थ जम्बूशब्दसे फलवाच्य होतो उत्पन्न प्रत्यय विकल्पसे लुक् हो ॥ १६४ ॥

* (फलपाकशुषामुपसङ्ख्यानम्] ॥ व्रीहयः । मुद्गाः ॥ [पुष्पमूलेषु बहुलम्] मल्लिकायाः पुष्पंमल्लिका। जात्याः पुष्पम्—जाती । विदार्या मूलम्—विदारी । बहुलग्रहणान्नेह--पाटलानि पुष्पाणि सालानिमूलानि ।

हरीतक्यादिभ्यश्च ॥ १६५ ॥

एभ्यःफल प्रत्ययस्य लुप् स्यात् । हरीतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत् । यथा—हरीतक्याः फलानि—हरीतक्यः ॥

षष्ठीसमर्थ हरीतकीआदि प्रातिपदिकोंसे फलवाच्य होता उत्पन्न प्रत्यय का लुप् हो ॥ १६५ ॥

कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च ॥ १६६ ॥

कंसीयपरशव्यशब्दाभ्यांयञञौस्याताम्, छयतोश्च लुक् । यथा—कंसायहितम्--कंसीयम् । तस्यविकारः--कांस्यम् । परशवेहितम्--परशव्यम् । तस्यविकारः--पारशवः ॥

षष्ठी समर्थ कंसीय और परशव्य शब्दसे विकार अर्थ में यथाक्रम यञ् और अञ् प्रत्यय और छ और यत् प्रत्यय का लुक् हो ॥ १६६ ॥

इति चतुर्थाऽध्यायस्य तृतीयःपादः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थाऽध्यायस्य चतुर्थः पादारम्भः ॥

प्राक् वहतेष्ठक् ॥ १ ॥

(तद्वहति ४ । ४ । ७६) इत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते * ॥

तद् वहति रथयुग प्रासङ्गम् ' इस सूत्र तक ठक् प्रत्ययका अधिकार है ॥ १ ॥

तेन दीव्यतिखनतिजयति जितम् ॥२॥

* (तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम्] ॥ माशब्दः कार इतिय अ ह स --म शाब्दिकः ॥ [आहौ प्रभूतादिभ्यः] । प्रभूतमाह— प्राभूतिकः । पार्याप्तिकः ॥ [पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः] सुस्नातं पृच्छतिसौस्नातिकः, सौखशायनिकः ॥ [गच्छतौ परदारादिभ्यः] परदारान् गच्छति पारदारिकः, गौरुतल्पिकः ॥

यथा-अक्षैर्दीव्यति-आक्षिकः। अभ्र्याखनाति-आभ्रिकः। अक्षैर्जयति-आक्षिकः। अक्षैर्जितम्-आक्षिकम् ॥

तृतीया समर्थ इन्यन्त आबन्त और प्रातिपदिक से दीव्यति खनति जयति और जित अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ २ ॥

संस्कृतम् ॥ ३ ॥

यथा-दध्ना संस्कृतम्-दाधिकम्। मारीचिकम् ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से संस्कृत अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ३ ॥

कुलत्थकोपधादण् ॥ ४ ॥

यथा-कुलत्थैः संस्कृतम्-कौलत्थम्। तैत्तिडीकम् ॥

तृतीया समर्थ कुलत्थ (खुर्त्ती) और ककारोपध प्रातिपदिक से संस्कृत अर्थ में अण् प्रत्ययहो ॥ ४ ॥

तरति ॥ ५ ॥

तेनेतितृतीयासमर्थात् तरतीत्येतस्मिन् नर्थेठक् स्यात्। उडुपेन तरति-औडुपिकः ॥

तृतीया समर्थ शब्द से तरति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ५ ॥

गोपुच्छाट्ठञ् ॥ ६ ॥

तरतीत्येतस्मिन्नर्थे। यथा-गोपुच्छेनतरति-गौपुच्छिकः ॥

तृतीया समर्थ गोपुच्छ शब्द से तरति इस अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो ॥ ६ ॥

नौद्व्यचष्ठन् ॥ ७ ॥

नौशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात्तरत्यर्थे ठन् स्यात्। यथा-नावा-तरति--नाविकः। घटिकः। बाहुभ्यां तरति- बाहुकः॥

तृतीया समर्थ नौ (नाव) और द्व्यच् प्रातिपदिक से तरति अर्थ में ठन् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

चरति ॥ ८ ॥

तृतीयान्ताद् गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोः ठक् स्यात् । हस्तिना चरति-हास्तिकः । शाकटिकः । दध्ना भक्षयति-दाधिकः ॥

तृतीया समर्थ शब्द से चरति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ८ ॥

आकर्षात् ष्ठल् ॥ ९ ॥

यथा-आकर्षेण चरति--आकर्षिकः। षित्वान्ङीष् । आकर्षिकी ॥

तृतीया समर्थ आकर्ष (कसौटी) शब्द से चरति अर्थ में ष्ठल् प्रत्ययहो ॥९॥

पर्पादिभ्यः ष्ठन् ॥ १० ॥

यथा--पर्पेणचरति--पर्पिकः । पर्पिकी । येनपीठेन पङ्गवश्चरन्ति सः--पर्पः । अश्विकः । रथिकः ॥

तृतीया समर्थ पर्पादि प्रातिपदिकों से चरति अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ १० ॥

श्वगणाट्ठञ् ॥ ११ ॥

चात्ष्ठन् । यथा-श्वगणेनचरति-श्वागणिकः। श्वागणिकी। श्वगणिकः। श्वगणिकी ॥

तृतीया समर्थ श्वगणशब्द से चरति अर्थ में ठञ् और ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

वेतनादिभ्योजीवति ॥ १२ ॥

यथा-वेतनेनजीवति--वैतानिकः कर्म्मकरः। उपदेशेनजीवन्ति - औपदेशिकाः ॥

तृतीया समर्थ वेतनादि प्रातिपदिकों से जीवति इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ॥ १३ ॥

यथा-वस्नेन-मूल्येनजीवति- वस्निकः। क्रयविक्रय ग्रहणं संघातविगृहीतार्थम् । क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः, विक्रयिकः ॥

तृतीया समर्थ वस्न (मूल्य) क्रयविक्रय (खरीदना और बेचना) वा क्रय और विक्रय शब्दसे जीवति अर्थ में ठन् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

आयुधाच्छच ॥ १४ ॥

चाट्ठन् । यथा- आयुधेनजीवति-आयुधीयः । आयुधिकः ॥

तृतीया समर्थ आयुध (हथियार) शब्द से जीवति अर्थ में छ और ठन् प्रत्यय हो ॥ १४ ॥

हरति उत्सङ्गादिभ्यः ॥ १५ ॥

यथा-उत्सङ्गेन हरति-औत्सङ्गिकः ॥

तृतीया समर्थ उत्सङ्ग (गोद) आदि प्रातिपदिकों से हरति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥

भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ॥ १६ ॥

यथा-भस्त्रया हरति--भस्त्रिकः । भस्त्रिकी ॥

तृतीयासमर्थ भस्त्रा (फूंकनी) आदि प्रातिपदिकों से हरति अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय हो ॥

विभाषा विवधात् ॥ १७ ॥

यथा--विवधेन हरति- विवधिकः । पक्षे ठक्-वैवधिकः । एकदेश विकृतस्याऽनन्यत्वाद्-वीवधादपि ष्ठन् वीवधिकः । वीवधिकी ॥

तृतीयासमर्थ विवध (डोली, पीनस) शब्द से हरति अर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

अण् कुटिलिकायाः ॥ १८ ॥

यथा--कुटिलिकाया हरति-मृगान्, अङ्गारान् वा-कौटिलिकः--व्याधः, कर्म्मारश्च ॥

तृतीयासमर्थ कुटिलिका (वक्र) शब्द से हरति अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ १९ ॥

यथा—अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्--आक्षद्यूतिकं वैरम् ॥

तृतीयासमर्थ अक्षद्यूतादि प्रातिपदिकों से निर्वृत्त (विराम) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो

त्रेर्मम् नित्यम् ॥ २० ॥

त्रिप्रत्ययान्तप्रकृतिकात्तृतीयान्तात्-निर्वृत्तेऽर्थे नित्यं मप् स्यात्। यथा—कृत्यानिर्वृत्तम्-कृत्रिमम् । पाक्त्रिमम् ॥ (भावप्रत्ययान्तादिमब्वाच्यः) ॥ पाकेन निर्वृत्तम्-पाकिमम् । त्यागिमम् ॥

तृतीया समर्थ क्त्र्यन्त प्रातिपदिकसे निर्वृत्त अर्थ में नित्य मप् प्रत्यय हो ॥ २० ॥

अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ॥ २१ ॥

अपमित्य याचितशब्दाभ्यां यथाक्रमं कक् कन् प्रत्ययौ स्यातां निर्वृत्तेऽर्थे । अपमित्येतिल्यबन्तम् । यथा--अपमित्य निर्वृत्तम्--आपमित्यकम् । याचितेन निर्वृत्तम -याचितकम् ॥

तृतीया समर्थ अपमित्य (ऋण) और याचित शब्द से निर्वृत्त अर्थ में यथाक्रम कक् और कन् प्रत्यय हों ॥ २१ ॥

संसृष्टे ॥ २२ ॥

यथा--दध्नासंसृष्टम्--दाधिकम् ॥
तृतीया समर्थ शब्द से संसृष्ट (मिश्रत) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

चूर्णादिनिः ॥ २३ ॥

यथा--चूर्णैःसंसृष्टाः--चूर्णिनः अपूपाः ॥
तृतीया समर्थ चूर्ण (चून) शब्दसे संसृष्ट अर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ २३ ॥

लवणाल्लुक् ॥ २४ ॥

यथा-लवणेन संसृष्टः-लवणःसूपः । लवणंशाकम् ॥
तृतीया समर्थ लवणशब्दसे संसृष्ट अर्थ में उत्पन्न ठक् प्रत्यय का लुक् हो ॥ २४ ॥

मुद्गादण् ॥ २५ ॥

यथा-मुद्गेनसंसृष्टः-मौद्गः-ओदनः । मौद्गीयवागूः ॥
तृतीया समर्थ मुद्ग (मूग) शब्दसे संसृष्ट अर्थ में अण प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ २६ ॥

ठक् स्यात् । यथा-दध्ना उपसिक्तम्-दाधिकम् ॥
तृतीया समर्थ व्यञ्जन (भोजनोपकरण) वाचीय प्रातिपदिकों से उपसिक्त (सेचन) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

ओजःसहोऽम्भसांवर्त्तते ॥ २७ ॥

ठक् स्यात् । यथा-ओजसावर्त्तते-औजसिकः शूरः । साहसिकश्चौरः । आम्भसिको मत्स्यः ॥

तृतीया समर्थ ओजस् (बल) सहस् (ज़ोर) और अम्भस् (जल) शब्द से वर्त्तत अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

तत्[२] प्रत्यनुपूर्वमीप[२]लोमकूलम्[२] ॥ २८ ॥

द्वितीयान्तादस्माद् वर्त्तते इत्यस्मिन्ननर्थेठक् स्यात् । क्रियाविशेषण मकर्म्मकाणामपिकर्म्मत्वम् । यथा-प्रतीपं वर्त्तते-प्रातीपिकः । आन्वीपिकः । प्रातिलोमिकः । आनुलोमिकः । प्रातिकूलिकः । आनुकूलिकः ॥

द्वितीया समर्थ प्रति अनुपूर्वक ईप लोम और कूल शब्द से वर्त्तत अर्थमें ठक् प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

परिमुखं[२] च[अ] ॥ २९ ॥

यथा-पारिमुखम् वर्त्तते-पारिमुखिकः । चात् । पारिपार्श्विकः ॥

द्वितीया समर्थ परिमुख शब्द से वर्त्तत अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

प्रयच्छ[क्रि]ति गर्ह्यम् ॥ ३० ॥

यथा-द्विगुणार्थं द्विगुणम् तत् प्रयच्छति-द्वैगुणिकः त्रैगुणिकः ॥ +

गर्ह्य समानाधिकरण द्वितीया समर्थ शब्द से प्रयच्छति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ३० ॥

कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ[५] ॥ ३१ ॥

गर्ह्यार्थाभ्यामाभ्यामेतौ स्याताम् प्रयच्छत्यस्मिन्नर्थे । कुसीदं वृद्धिः ।

+ (वृद्धेर्वृधुषि भावो वाच्यः) ॥ वार्धुषिकः ।

तदर्थद्रव्यम्—कुसीदम् । तत्प्रयच्छतीति—कुसीदिकः । कुसीदिकी । एकादशार्थत्वादेकादश । तेचते वस्तुतोदशचेति विग्रहेऽकारःसमासान्त इहैवसूत्रे निपात्यते । दशैकादशिकः । दशैकादशिकी ॥

गर्ह्य समानाधिकरण द्वितीया समर्थ कुसीद और दशैकादश शब्दसे प्रयच्छति अर्थ में यथाक्रम ष्ठन् और ष्ठच प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

उञ्छति ॥ ३२ ॥

यथा--वदराण्युञ्छति--वादरिकः ।कणानुञ्छति--काणिकः ॥

द्वितीया समर्थ शब्दसे उञ्छति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ३२ ॥

रक्षति ॥ ३३ ॥

समाजंरक्षति- सामाजिकः । सामाजिकी ॥

द्वितीया समर्थ शब्दसे रक्षति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ३३ ॥

शब्ददर्दुरंकरोति ॥ ३४ ॥

शब्ददर्दुरशब्दाभ्यां द्वितीयासमर्थाभ्यां करोत्यर्थे ठक् स्यात् । यथा--शब्दंकरोति--शाब्दिको वैयाकरणः । दार्दुरिकःकुम्भकारः ॥

द्वितीया समर्थ शब्द और दर्दुर शब्दसे करोति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ॥ ३५ ॥

स्वरूपस्य पर्यायाणम्, विशेषाणां च—ग्रहणम् । यथा—पक्षिणो हन्ति—पाक्षिकः । शाकुनिकः । मायूरिकः । मात्स्यिकः । मैनिकः । शाफरिकः । मार्गिकः । हारिणिकः । सारङ्गिकः ॥

द्वितीया समर्थ पक्षिन् मत्स्य और मृग शब्दसे हन्ति अर्थमें ठक् प्रत्ययहो ३५

परिपन्थं च तिष्ठति ॥ ३६ ॥

अस्माद् द्वितीयान्तात्तिष्ठति हन्तिचेत्यर्थे ठक् स्यात् । यथा—परिपन्थं तिष्ठति—पारिपन्थिकश्चौरः । परिपन्थं हन्ति—पारिपन्थिकः - उत्कोचः ॥

द्वितीया समर्थ परिपन्थ शब्द से तिष्ठति और हन्ति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ३७

यथा—विद्यामाथं धावति- वैद्यामाथिकः । धर्म्ममाथिकः । पदवीं धावति—पादविकः । आनुपदिकः ॥

द्वितीया समर्थ माथ (मार्ग) उत्तरपद, पदवी और अनुपद प्रातिपदिक से धावति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ३७ ॥

आक्रन्दाट्ठञ्च ॥ ३८ ॥

अस्माच्छब्दाट्ठञ् स्यात्, चाट्ठक् धावतीत्यर्थे । यथा—आक्रन्दं दुःखिनां रोदनस्थानं धावति- आक्रन्दिकः । आक्रन्दिकी । स्वरेविशेषः ॥

द्वितीया समर्थ आक्रन्द (ऊंचे स्वर से रोदन) शब्द से धावति अर्थ में ठञ् और ठक् प्रत्ययहो ॥ ३८ ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥ ३९ ॥

यथा—पूर्वपदं गृह्णाति—पौर्वपदिकः । औत्तरपदिकः ॥

द्वितीया समर्थ पदोत्तर पद प्रातिपदिक से गृह्णाति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ३९

प्रतिकण्ठार्थललामञ्च ॥ ४० ॥

एभ्योगृह्णात्यर्थे ठक् स्यात्। यथा–प्रतिकण्ठंगृह्णाति–प्रातिकण्ठिकः। आर्थिकः। लालामिकः॥

द्वितीया समर्थ प्रतिकण्ठ, अर्थ और ललाम शब्दसे गृ० अर्थ में ठक् प्रत्ययहो

धर्म्मं चरति॥४१॥

यथा–धर्मं चरति–धार्म्मिकः॥ (अधर्म्माच्चेति वक्तव्यम्)॥ अधर्म्मं चरति–आधर्म्मिकः॥

द्वितीया समर्थ धर्म शब्दसे चरति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो॥ ४१॥

प्रतिपथमेति ठन् च॥४२॥

चाट्ठक्। यथा–प्रतिपथमेति–प्रातिपथिकः। प्रतिपथिकः॥

द्वितीया समर्थ प्रतिपथ शब्दसे एति अर्थ में ठन् और ठक् प्रत्ययहो॥ ४२॥

समवायान् समवैति॥४३॥

समवायः समूह उच्यते। समवायवाचिभ्यःशब्देभ्यस्तादिति द्वितीया समर्थेभ्यः समवैतीत्यर्थे ठक् स्यात्। समवैति आगत्य तदेकदेशी भवतीत्यर्थः। यथा–समवायान् समवैति–सामवायिकः। सामाजिकः। सामूहिकः॥

द्वितीया समर्थ समवाय वाचीय शब्दों से समवैति अर्थों में ठक् प्रत्ययहो ४३

परिषदोण्यः॥४४॥

यथा–परिषदं समवैति–पारिषद्यः॥

द्वितीया समर्थ परिष (सभा) शब्दसे समवैति अर्थ में ण्य प्रत्ययहो ४४

सेनायां वा॥ ४५॥

ण्यः पक्षे ठक् स्यात् । यथा--सेनांसमवैति-सैन्यः । सैनिकः ॥

द्वितीया समर्थ सेनाशब्द से समवैति अर्थ में विकल्प से ण्य प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

सञ्ज्ञायांललाटकुक्कुट्यौपश्यति ॥ ४६ ॥

आभ्यां सञ्ज्ञागम्यमानायां पश्यत्यर्थे ठक् स्यात् । यथा--ललाटंपश्यति--लालाटिकः--सेवकः । कौक्कुटिकोभिक्षुः । कुक्कुटीशब्देनात्र कुक्कुटीपातो लक्ष्यते ॥

संज्ञा गम्यमान होतो द्वितीया समर्थ ललाट और कुक्कुटी शब्द से पश्यति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ४६ ॥

तस्य धर्म्यम् ॥ ४७ ॥

यथा--आपणस्यधर्म्यम्--आपणिकम् ॥

षष्ठी समर्थ से धर्म्य (न्याय, आचार युक्त) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

अण् महिष्यादिभ्यः ॥ ४८ ॥

यथा--महिष्याधर्म्यम्--माहिषम् । होतुर्धर्म्यम्--हौत्रम् ॥

षष्ठी समर्थ महिषी (रानी) आदि शब्दोंसे धर्म्य अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

ऋतोऽञ् ॥ ४९ ॥

यथा--यातुर्धर्म्यम्--यात्रम् * ॥

षष्ठी समर्थ ऋकारान्त शब्दसे धर्म्य अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

अवक्रयः ॥ ५० ॥

* (नराच्चेति वक्तव्यम्) ॥ नरस्य धर्म्या--नारी ॥ (विशसितुरिड्लोपश्चाऽञ्चवाच्यः) ॥ विशसितुः धर्म्यम्--वैशस्तम् ॥ (विभाजयितुर्णिलोपश्चाऽञ्चवाच्यः) ॥ विभाजयतुर्धर्म्यम्--वैभाजित्रम् ॥

षष्ठ्यन्ताट्ठक् स्यादवक्रयेऽर्थे। यथा-आपणस्य अवक्रयः-आपणिकः॥
षष्ठी समर्थ शब्द से अवक्रय (राजग्राह्यद्रव्य) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

तदस्य पण्यम् ॥ ५१ ॥

यथा शष्कुल्यः पण्यमस्य-शाष्कुलिकः । मौदकिकः ॥
पण्य (विक्रय) समानाधिकरण प्रथमा समर्थ से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ५१

लवणाट्ठञ् ॥ ५२ ॥

यथा-लवणं पण्यमस्य--लावणिकः । लावणिकी ॥
पण्य समानाधि करण प्रथमा समर्थ लवण शब्द से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्ययहो ५२

किशरादिभ्यष्ठन् ॥ ५३ ॥

किशरादयो गन्ध विशेषवचनाः । यथा किशराः पण्यमस्य-किशरिकः । किशरिकी ॥
पण्य समानाधि करण प्रथमा समर्थ किशरादि शब्दो से षष्ठ्यर्थ में ष्ठन प्रत्ययहो

शलालुनोऽन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

ष्ठन् पक्षेठक् स्यात् । यथा-शलालुकः।शलालुकी । शालालुकः। शालालुकी ॥
पण्यसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ शलालु (सुगन्धिद्रव्य) शब्द से षष्ठ्यर्थ में विकल्प से ष्ठन प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

शिल्पम् ॥ ५५ ॥

यथा--मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य--मार्दङ्गिकः । पाणविकः ॥
शिल्पसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ५५

मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम् ॥५६॥

यथा--मड्डुकवादनं शिल्पमस्य--माड्डुकः। माड्डुकिकः। झार्झरः। झार्झरिकः॥

शिल्प समानाधिकरण प्रथमा समर्थ मड्डुक (डमरू) और झर्झर (झांज) शब्द से षष्ठ्यर्थ में विकल्पसे अण् प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

प्रहरणम् ॥५७॥

तदस्येत्येव। यथा--असिःप्रहरणमस्य--आसिकः। धानुष्कः॥

प्रहरण (ताडनकरना) समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ५७ ॥

परश्वधाट्ठञ्च ॥५८॥

यथा--परश्वधः प्रहरणमस्य--पारश्वधिकः॥

प्रहरणसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ परश्वध (कुल्हाड़ा) शब्दसे ठञ् और ठक् प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

शक्तियष्ट्योरीकक् ॥५९॥

यथा--शक्तिः प्रहरणस्य-शाक्तीकः। याष्टीकः॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शक्ति (बर्छी) और यष्टि (लाठी) शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ईकक् प्रत्ययहो ॥ ५९ ॥

अस्तिनास्तिदिष्टम् मतिः ॥६०॥

यथा--अस्ति जगदीश्वरो जीवः परलोको वा--इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः। नास्तीति मतिर्यस्य सः--नास्तिकः॥ प्रमाणानुपातिनी मतिर्यस्य स दैष्टिकः॥

मति समानाधिकरण प्रथमा समर्थ अस्ति, नास्ति और दिष्ट शब्द से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ६० ॥

शीलम् ॥ ६१ ॥

यथा मोदक भक्षणं शीलम य-- मौदकिकः । शाष्कुलिकः ॥

शील समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

छत्रादिभ्योणः ॥ ६२ ॥

यथा-छत्रं गुरुस्तत्सेवन शीलमस्य--असौ छात्रः ॥

शील समानाधि करण प्रथमा समर्थ छत्र (गुरु) आदि शब्दों से षष्ठ्यर्थ में ण प्रत्यय हो ॥ ६२ ॥

कर्म्माऽध्ययने वृत्तम् ॥ ६३ ॥

तदितिप्रथमा समर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् स्यात्, यत्तत्प्रथमा समर्थकर्म चेद्वृत्तमध्ययनविषयं स्यात् । यथा-एकमन्यदध्ययने कर्म्म वृत्तमस्य-ऐकान्यिकः । द्वैयन्यिकः । यस्याऽध्ययने प्रवृत्तस्यपरीक्षा काल विपरीतोच्चारणरूपं स्खलितमेकं जातमसावुच्यते ॥

वृत्ताऽध्ययन विषयक कर्म्म समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् ॥ ६४ ॥

प्राग् विषये । यथा-द्वादशान्यानि कर्म्माणि अध्ययने वृत्तान्यस्य-द्वादशान्यिकः । द्वादशाऽपपाठा अस्यजाता इत्यर्थः ॥

वृत्ताऽध्ययन विषयक कर्म समानाधिकरण प्रथमा समर्थ बह्वच् पूर्वपद प्रातिपदिकसे षष्ठ्यर्थमें ठच् प्रत्यय हो ॥ ६४ ॥

हितम्भक्षाः ॥ ६५ ॥

यथा-अपूपभक्षणंहितमस्मै-आपूपिकः ॥

हितभक्ष समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

तदस्मै दीयते नियुक्तम् ॥ ६६ ॥

यथा--अग्रभोजनं नियुक्तमस्मै दीयते-आग्रभोजनिकः । केचित्तु नियुक्तं नित्यमाहुः ॥

दीयते नियुक्त समानाधिकरण प्रथमा समर्थ से चतुर्थ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥

श्राणामांसौदनाट्टिठन् ॥ ६७ ॥

यथा-श्राणानियुक्तमस्मै दीयते-श्राणिकः । श्राणिकी । मांसौदनग्रहणं सङ्घातविग्रहीतार्थम्-मांसौदनिकः । मांसिकः।औदनिकः॥

दीयते नियुक्त समानाधिकरण प्रथमा समर्थ श्राणा (खिचड़ी) और मांसौदन शब्दसे चतुर्थ्यर्थ में टिठन् प्रत्यय हो ॥ ६७॥

भक्तादणन्यतरस्याम् ॥ ६८ ॥

पक्षे ठक् स्यात् । यथा-भक्तं नियुक्तमस्मै दीयते-भाक्तः।भाक्तिकः॥

दीयते नियुक्त समानाधिकरण प्रथमा समर्थ भक्त (भात) शब्द से चतुर्थ्यर्थ में विकल्प से अण् प्रत्यय हो ॥ ६८ ॥

तत्र नियुक्तः ॥ ६९ ॥

तत्रेति सप्तमी समर्थान्नियुक्त इत्यर्थे ठक् स्यात् । यथा-शुल्कशालायां नियुक्तः-शौल्कशालिकः । दौवारिकः ॥

सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से नियुक्त (अधिकृत) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

अगारान्ताट्ठन् ॥ ७० ॥

यथा—धनागारे नियुक्तः—धनागारिकः । अश्वागारिकः ॥

सप्तमी समर्थ अगारान्त (गृहान्त) प्रातिपदिक से नियुक्त अर्थ में ठन् प्रत्यय हो॥

अध्यायिन्यदेशकालात् ॥ ७१ ॥

निषिद्ध देशकालवाचकाट्ठक् स्यादध्येतरि । यथा--चतुष्पथेऽधीते—चातुष्पथिकः । सन्धिवेलायामधीते--सान्धिवेलिकः ॥

सप्तमी समर्थ अदेश और अकालवाचीय प्रातिपदिक से अध्यायी (पढ़नेवाला) वाच्य हो तो ठक् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति

यथा--कुलकठिने व्यवहरति—कौलकठिनिकः।प्रस्तारे व्यवहरति—प्रास्तारिकः । सांस्थानिकः ॥

सप्तमी समर्थ कठिनान्त, प्रस्तार (फैलाव) और संस्थान शब्द से व्यवहरति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

निकटे वसति ॥ ७३ ॥

यथा—निकटे वसति—नैकटिकः ॥

सप्तमीसमर्थ निकट शब्द से वसति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

आवसथात् ष्ठल् ॥ ७४ ॥

यथा—आवसथे वसति--आवसथिकः । आवसथिकी ॥

सप्तमी समर्थ आवसथ (घर) शब्दसे वसति अर्थ में ष्ठल् प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

प्राग्घिताद् यत् ॥ ७५ ॥

तस्मैहितम् (५ । १ । ५) ॥ इतः प्राक् यदधिक्रियते ॥

तस्मैहितम्, इस सूत्रतक यत् प्रत्यय का अधिकार है ॥ ७५ ॥

तद् वहतिरथयुगप्रासङ्गम् ॥ ७६ ॥

तदिति द्वितीया समर्थेभ्योरथयुगप्रासङ्गेभ्यो वहतीत्यर्थे यत् स्यात् । यथा-रथं वहति-रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्यः ॥

द्वितीया समर्थ रथ, युग (जुआ) और प्रासङ्ग (काष्ठ विशेष जिस के द्वारा आरम्भ में बैलादि सिखाये जाते हैं) शब्दसे वहति अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥

धुरो यड्ढकौ ॥ ७७ ॥

यथा-धुरं वहति-धुर्यः । धौरेयः ॥

द्वितीया समर्थ धुर् (रथादि के आगे का भाग) शब्दसे वहति अर्थ में यत् और ढक् प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

खः सर्वधुरात् ॥ ७८ ॥

यथा-सर्वधुरंवहतीति-सर्वधुरीणः ॥

द्वितीया समर्थ सर्वधुर् शब्दसे उक्तार्थ में ख प्रत्यय हो ॥ ७८ ॥

एकधुराल्लुक्च ॥ ७९ ॥

यथा-एकधुरं वहतीति-एकधुरीणः । एकधुरः ॥

द्वितीया समर्थ एकधुर शब्द से वहति अर्थ में विधीयमान ख प्रत्यय का लुक् भी हो ॥ ७८ ॥

शकटादण् ॥ ८० ॥

यथा-शकटंवहतः-शाकटौ गावौ ॥

द्वितीया समर्थ शकट (गाड़ी) शब्दसे वहति अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

हलसीराट्ठक् ॥ ८१ ॥

यथा-हलंवहाति-हालिकः । सैरिकः ॥

द्वितीया समर्थ हल और सीर (हल) शब्दसे वहति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

संज्ञायांजन्याः ॥ ८२ ॥

यथा-जनी-वधूः । तांवहन्ति ये ते जन्याः ॥

यदि संज्ञावाच्य होतो द्वितीया समर्थ जनी शब्दसे यत् प्रत्यय निपातित है ॥ ८२ ॥

कि० विध्यत्यधनुषा ॥ ८३ ॥

द्वितीयान्ताद्विध्यतीत्यर्थेयत् स्यात् नचेत्तत्रधनुष्करणम् । यथा-पादौ विध्यति-पद्यादूर्वा । कण्ठंविध्यति-कण्ठ्योरसः ॥

यदि धनुष करण नहो तो द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से विध्यति अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

धनगणंलब्धा ॥ ८४ ॥

धनगणशब्दाभ्यां द्वितीया समर्थाभ्यां लब्धे इत्यर्थे यत् स्यात् । तृन्नन्तमेतत् । यथा-धनंलब्धा-धन्यः । गणंलब्धा-गण्यः ॥

द्वितीया समर्थ धन और गण शब्दसे लब्धार्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८४ ॥

अन्नाण्णः ॥ ८५ ॥

लब्धे इत्यर्थे । यथा-अन्नंलब्धा-आन्नः ॥

द्वितीया समर्थ अन्नशब्द से लब्धार्थ में ण प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

वशंगतः ॥ ८६ ॥

वशशब्दाद्द्वितीयासमर्थादिति गतोऽर्थे यत् स्यात्। यथा—वशं-गतः--वश्यः--परेच्छानुचारी ॥

द्वितीया समर्थ वश शब्दसे गत अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

पदमस्मिन् दृश्यम् ॥ ८७ ॥

यथा- पदंदृश्यमस्मिन्--पद्यः--कर्दमः । नास्तिशुष्क इत्यर्थः ॥

दृश्यसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ पद शब्दसे सप्तम्यर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८७ ॥

मूलमस्याऽऽबर्हि ॥ ८८ ॥

आबर्हणमाबर्हः--उत्पाटनम् । तदस्यातीति आबर्हि । मूलमाबर्हियेषां ते मूल्यामाषाः ॥

आबर्हिसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ मूल शब्दसे षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८८ ॥

सञ्ज्ञायांधेनुष्या ॥ ८९ ॥

धेनुशब्दस्य षुगागमो यप्रत्ययश्चस्वार्थे निपात्यते सञ्ज्ञायाम् । या धेनुरुत्तमर्णाय ऋणप्रदानाद्दोहनार्थं दीयते सा धेनुष्योच्यते । धेनुष्याबन्धकेस्थिता ॥

संज्ञा विषय में षुगागम युक्त य प्रत्ययान्त धेनुष्या निपातित है ॥ ८९ ॥

गृहपतिना संयुक्तेञ्यः ॥ ९० ॥

यथा—गृहपतिना संयुक्तः--गार्हपत्यः-- अग्निः ॥

तृतीया समर्थ गृहपति शब्द से संयुक्त अर्थ में ञ्यप्रत्ययहो ॥ ९० ॥

नौवयो धर्मविषमूलसीतातुलाभ्यः

तार्य्यतुल्य प्राप्य वध्यानाम्यसमसमित सम्मितेषु ॥ ९१ ॥

नावादिभ्योऽष्टभ्योऽष्टस्वेव तार्य्यादिष्वर्थेषु यत् स्यात् । यथा—नावा तार्य्यम्-नाव्यमुदकम् । वयसा तुल्यः-वयस्यः सखा । धर्म्मेण प्राप्यः-धर्म्मोऽपवर्गः । विषेण वध्यः-विष्यः पापी । मूलेन आनाम्यम्-मूल्यम् । मूलेन समः-मूल्यः पटः । सीतया समितम्-सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया सम्मितम्-तुल्यम् धान्यम् ॥

तृतीया समर्थ नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, (नवना) मूल (सम) सीता (पटेला) और तुला (तराजू) इन शब्दों से तार्य्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित और सम्मित अर्थों में यत् प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

धर्म्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ९२ ॥

यथा धर्म्मादनपेतम्-धर्म्यं कार्य्यम् । पथ्यम् । अर्थ्यम् । न्याय्यम् ॥

पञ्चमी समर्थ धर्म्म पथिन् अर्थ और न्याय शब्द से अनपेत (युक्त) अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९२ ॥

छन्दसो निर्म्मिते ॥ ९३ ॥

यथा—छन्दसा निर्मितम्-छन्दस्यम् । इच्छया कृतमित्यर्थः ॥

तृतीया समर्थ छन्दस् शब्द से निर्मित अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९३ ॥

उरसोऽण् च ॥ ९४ ॥

चाद्यत् । यथा-उरसा निर्मितः पुत्रः—औरसः । उरस्यः ॥

तृतीया समर्थ उरस् (छाती) शब्द से निर्मित अर्थ में अण् और यत् प्रत्यय हो ॥ ९४ ॥

हृदयस्य प्रियः ॥९५॥

हृदयशब्दात्षष्ठीसमर्थातप्रिय इत्यर्थे यत् स्यात् । यथा--हृद्यंव-नम् । हृदयस्य हृल्लेखेति (६ । ३ । ५०) हृदादेशः ॥

षष्ठी समर्थ हृदय शब्दसे प्रिय अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९५ ॥

बन्धने चर्षौ ॥९६॥

हृदयशब्दात् षष्ठ्यन्ताद् बन्धने यत् स्याद् वेदेऽभिधेये । यथा--हृदयस्य बन्धनम्--हृद्योमन्त्रः ॥

षष्ठी समर्थ हृदयशब्द से ऋषि (वेद) वाच्यहोतो बन्धन अर्थ में यत् प्रत्यय हो ९६

मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु ॥९७॥

मतादिभ्यस्त्रिशब्देभ्यस्त्रिष्वेव करणादिष्वर्थेषु यथासङ्ख्यं यत् स्यात् । यथा--मतम्--ज्ञानम् । तस्य करणं भावः, साधनं वा मत्यम् । जनस्य जल्पः-- जन्यः । हलस्य कर्षः-हल्यः ॥

षष्ठी समर्थ मत जन और हल शब्द से यथाक्रम करण जल्प और कर्ष अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९७ ॥

तत्र साधुः ॥ ९८॥

तत्रेति सप्तमी समर्थात् साधुरित्यर्थे यत् स्यात् । यथा--अग्रेसाधुः-- अग्र्यः । सामसुसाधुः-- सामन्यः । योग्य इत्यर्थः ॥

सप्तमी समर्थ शब्द से साधु (योग्य) अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ ९९ ॥

यथा--जनं जनंप्रति-प्रतिजनम् । तत्र साधुः-प्रातिजनीनः । जने जने साधुरित्यर्थः ॥

सप्तमी समर्थ प्रति जनादि शब्दों से साधु अर्थ में खञ् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

भक्ताण्णः ॥ १०० ॥

यथा--भक्तेसाधवः भाक्ताः शालयः ॥

सप्तमी समर्थ भक्त (भात) शब्द से साधु अर्थ में ण प्रत्यय हो ॥ १०० ॥

परिषदोण्यः ॥ १०१ ॥

यथा--परिषदि साधुः-पारिषद्यः । परिषद इति योगविभागाण्णो-ऽपि । पारिषदः ॥

सप्तमी समर्थ परिषद् शब्द से साधु अर्थ में ण्य प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

कथादिभ्यष्ठक् ॥ १०२ ॥

यथा--कथायां साधुः-काथिकः ॥

सप्तमी समर्थ कथादि प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १०२ ॥

गुडादिभ्यष्ठञ् ॥ १०३ ॥

यथा--गुडे साधुः- गौडिकः- इक्षुः ॥

सप्तमी समर्थ गुडादि प्रादिपदिकों से साधु अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ १०३ ॥

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ॥ १०४ ॥

यथा--पथि साधु-पाथेयम् । आतिथेयम् । वसनम्-वसातिः । तत्र साधुः-वासतेयी[1] रात्रिः । स्वापतेयं धनम् ॥

सप्तमी समर्थ पथिन्, अतिथि, वसति और स्वपति शब्द से साधु अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ १०४ ॥

१ निष्फली कृता इत्यर्थः ॥

सभायां यः ॥ १०५ ॥

यथा—सभायां साधुः— सभ्यः ॥

सप्तमी समर्थ सभा शब्द से साधु अर्थ में य प्रत्ययहो ॥१०५ ॥

ढ श्छन्दसि ॥ १०६ ॥

यथा--सभेयो ऽस्य युवा यजमानस्य वीरोजायताम् ॥

सप्तमी समर्थ सभा शब्द से छन्दो विषयमें साधु अर्थ होतो ढ प्रत्यय हो ॥ १०६

समानतीर्थे वासी ॥१०७॥

साधुरिति निवृत्तम् । यथा--वसतीति--वासी । समानेतीर्थे गुरौ वसतीति-सतीर्थ्यः -सहपाठीत्यर्थः । (६ । ३ । ८७) इति समानस्य स आदेशः ॥

सप्तमी समर्थ समानतीर्थ शब्द से वासी अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १०७ ॥

समानोदरे शयित ओ च उदात्तः ॥१०८॥

यथा--समाने उदरेशयितः स्थितः—समानोदर्यः—भ्रातोच्यते ॥

सप्तमी समर्थ समानोदर शब्द से शयित अर्थ में यत् प्रत्यय हो । और ओकार उदात्त हो ॥ १०८ ॥

सोदराद्यः ॥१०९॥

यथा-सोदर्यः । (६ । ३ । ८८) इतिसमानस्य स आदेशः ॥

सप्तमी समर्थ सोदर शब्दसे शयित अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १०९ ॥

भवे छन्दसि ॥११०॥

सप्तम्यन्ता भवार्थेछन्दसि यत् स्यात् । यथा-मेध्याय च विद्युत्यायच नमः ॥

छन्दो विषय में सप्तमी समर्थ शब्द से भव अर्थ में यत् प्रत्यय हो (इहां से लेकर छन्दोऽधिकार पादकी समाप्ति तक है ॥ ११० ॥

पाथोनदीभ्यां ड्यण् ॥१११॥

यथा -पाथसि भवः-पाथ्यः । नद्यांभवः-नाद्यः ॥

सप्तमी समर्थ पाथस् और नदी शब्द से भव अर्थमें ड्यण् प्रत्ययहो ॥ १११ ॥

वेशन्तहिमवद्भ्यामण् ॥ ११२ ॥

भवे । यथा--वैशन्तीभ्यः स्वाहा । हैमवतीभ्यः स्वाहा ।

सप्तमी समर्थ वेशन्त (अग्नि) और हिमवत् (हिमालय) शब्द से भव अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

स्रोतसोविभाषाड्यड्ड्यौ ॥ ११३॥

पक्षेयत् । ड्यड्ड्योस्तु स्वरे भेदः । यथा--स्रोतसिभवः-स्रोत्यः । स्रोतस्यः ॥

सप्तमी समर्थ स्रोतस् (स्वयंपानी का वेग से चलना) शब्द से भव अर्थ में विकल्प से ड्यत् और ड्य प्रत्यय हो । ११३ ॥

सगर्भसयूथसनुताद्यन् ॥ ११४ ॥

यथा--अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । योनः सनुत्यः ॥

सप्तमी समर्थ सगर्भ, सयूथ और सनुत शब्द से भव अर्थ में यन् प्रत्यय हो ११४

तुग्राद् घन् ॥ ११५ ॥

भवेऽर्थे । यथा—त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम् । अन्नाकाशयज्ञान्तरिक्षेषु तुग्रशब्दः ॥

सप्तमी समर्थ तुग्र शब्द से भव अर्थ में घन् प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

अग्राद्यत् ॥ ११६ ॥

यथा—अग्रेभवम्—अग्रयम् ॥

सप्तमी समर्थ अग्रशब्दसे भव अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

घच्छौच ॥ ११७ ॥

चाद्यत् । यथा—अग्रेभवः—अग्रयः । अग्रियः । अग्रीयः ॥

सप्तमी समर्थ अग्रशब्दसे भव अर्थ में घ छ और यत् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

समुद्राभ्राद्घः ॥ ११८ ॥

यथा—समुद्रियाणां नदीनाम् । अभ्रियस्येवघोषाः ॥

सप्तमी समर्थ समुद्र और अभ्रशब्दसे भव अर्थ में घप्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

बर्हिषिदत्तम् ॥ ११९ ॥

दत्तमित्यर्थे यत् स्यात् । यथा—बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ॥

सप्तमी समर्थ बर्हिष् शब्दसे दत्त अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

दूतस्यभागकर्मणी ॥ १२० ॥

दूतशब्दाद्भागेकर्मणिचाभिधेयेयत् स्यात् । भागोऽशः। दूत्यम् ॥

षष्ठी समर्थ दूत शब्दसे भाग और कर्म्म वाच्य होनेपर यत् प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

रक्षोयातूनांहननी ॥ १२१ ॥

यथा—हन्यतेऽनयेति हननी। यातेअग्ने रक्षस्यातनूः। यातव्या॥
षष्ठी समर्थ रक्षस् और यातु शब्द से हननी अर्थ में यत् प्रत्यय हो॥ १२१॥

रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये॥१२२॥

एभ्यः प्रशंसने यत् स्यात्। यथा- रेवत्यादीनां प्रशंसनं रेवत्यम्। जगत्यम्। हविष्यम्॥
प्रशस्य वाच्य होतो षष्ठी समर्थ रेवती जगती और हविष्या शब्द से यत् प्रत्यय हो॥ १२२॥

असुरस्यस्वम्॥१२३॥

असुरशब्दात् स्वमित्यर्थे यत् स्यात्। यथा—असुर्यम्॥
षष्ठी समर्थ असुर शब्दसे स्व अर्थ में यत् प्रत्यय हो॥ १२३॥

मायायामण्॥१२४॥

असुरशब्दा- मायायां स्वविशेषेऽण् स्यात्। यथा—आसुरीमाया॥
षष्ठी समर्थ असुर शब्दसे स्व विशेषमाया अर्थ में अण् प्रत्यय हो॥ १२४॥

तद्वानासामुपधानोमन्त्रइतीष्टकासुलुक् च मतोः॥१२५॥

मतुवन्तात् प्रातिपतिकात् प्रथमासमर्था दासामिति षष्ठ्यर्थे यत् स्यात्, यत् प्रथमा समर्थमुपधानो मन्त्रश्चेत् स्यात्। यथा-वर्चः शब्दो यास्मिन् मन्त्रेऽस्ति स वर्चस्वान् मन्त्रः। उपधीयते येनस उपधानः। वर्चस्वानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानां वर्चस्याः। ऋतव्याः॥

उपधान मन्त्र समानाधिकरण प्रथमा समर्थ सुबन्त प्रातिपदिक से इष्टका वाच्य होतो षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय और मतुप् प्रत्यय का लुक् हो ॥ १२५ ॥

आश्विमानण् ॥ १२६ ॥

अश्विशब्दो यस्मिन् मन्त्रेऽस्ति सोऽश्विमान् । तस्मादण् स्यात् । आश्विमानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति विगृह्याण् विधीयते । यथा--आश्विनीरुपदधाति ॥

पूर्व सूत्र विषयमें आश्विमान् शब्दसे अण् प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप् ॥ १२७ ॥

वयस्वानुपधातो मन्त्रो यासां तावयस्यास्तास्वभिधेयासु मूर्ध्नो मतुप् स्यात् । यथा—यस्मिन् मन्त्रे वयः शब्दः, मूर्ध्नन् शब्दश्च विद्यते ऽसौ वयस्वान् मन्त्रः । मूर्ध्नन्वान् मन्त्रः । मूर्द्धन्वती रुपदधाति ॥

वयस्या (समानवयस्क) वाच्य होतो मूर्द्धन् शब्द सेमतुप्प्रत्यय हो ॥१२७॥

मत्वर्थे मासतन्वोः ॥ १२८ ॥

नभोऽस्य । तदस्मिन्नस्तीति नभस्योमासः । ओजस्या तनूः ॥

प्रथमा समर्थ शब्द से मास और तनु प्रत्ययार्थ विशेषण होतो मत्वर्थ में यत् प्रत्ययहो ॥ १२८ ॥

मधोर्ञ च ॥ १२९ ॥

यथा--मत्वर्थे चायत् । माधवः । मधव्यः ॥

प्रथमा समर्थ मधुशब्द से मत्वर्थ ञ और यत् प्रत्यय हो ॥ १२९ ॥

ओजसोऽहनि यत्खौ ॥ १३० ॥

यथा--ओजस्यमहः । आजसीनमहः ॥

ओजस् शब्दसे अहन् वाच्य होतो मत्वर्थ में यत् और ख प्रत्यय हो ॥ १३० ॥

वेशोयशआदेर्भगाद्यल् ॥ १३१ ॥

वेशोयशसी आदौ यस्यप्रातिपदिकस्यतस्माद् वेशो यश आदेर्भगान्तात्प्रातिपदिकात् मत्वर्थे यल्स्यात् । वेशोबलं तदेवभग इति कर्मधारयः । वेशोभग्यः । यशोभग्यः ॥

वेशस् तथा यशस् जिस के आदिमें हों ऐसे भगान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में यल् प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

खच ॥ १३२ ॥

चाद्यत् । योगविभागो यथा सङ्ख्य निरासार्थ उत्तरार्थश्च । यथा--वेशो भग्यः, वेशोभगीनः । यशोभाग्यः । यशोभगीनः ॥

वेशस् तथा यशस् जिसके आदि मेंहों ऐसे भगान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में ख प्रत्यय भीहो । १३२ ॥

पूर्वैःकृतमिनयौच ॥ १३३ ॥

मत्वर्थे इतिनिवृत्तम् । पूर्वशब्दात्तृतीया समर्थात कृतमित्यर्थेइनयौस्याताम् । चात्खः । यथा--पूर्वैःकृतंकर्म--पूर्विं, पूर्व्यम्, पूर्वीणम् ॥

तृतीया समर्थ पूर्वशब्द से कृत अर्थ में इन य और ख प्रत्यय हो ॥ १३३ ॥

अद्भिःसंस्कृतम् ॥ १३४ ॥

यथा- अद्भिः संस्कृतम्--अप्यं हविः ॥

तृतीया समर्थ अप् शब्दसे संस्कृत अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १३४ ॥

सहस्रेण सम्मितौ घः ॥ १३५ ॥

सहस्रशब्दात्तृतीया समर्थात् सम्मितावित्यर्थे घःस्यात्। यथा- अयमग्निः सहस्रियः। सहस्रतुल्य इत्यर्थः ॥

तृतीयासमर्थ सहस्र शब्दसे सम्मित (सदृश) अर्थमें घ प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

मतौ च ॥ १३६ ॥

सहस्रशब्दान्मत्वर्थे घः स्यात्। यथा-सहस्रमस्यास्तीति-सहस्रियः ॥

प्रथमासमर्थ सहस्र शब्दसे मत्वर्थ में घ प्रत्यय हो ॥ १३६ ॥

सोममर्हति यः ॥ १३७ ॥

सोमशब्दाद्द्वितीयासमर्थादर्हतीत्यर्थे यः स्यात्। यथा-सोममर्हन्ति- सोम्या ब्राह्मणाः। यज्ञार्हा इत्यर्थः ॥

द्वितीया समर्थ सोम शब्दसे अर्हति (योग्यता) अर्थमें य प्रत्यय हो ॥ १३७ ॥

मये च ॥ १३८ ॥

सोमशब्दाद्यः स्यान्मयडर्थे। यथा-सोम्यंमधु। सोममयमित्यर्थः ॥

सोम शब्दसे मयडर्थ में भी य प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

मधोः ॥ १३९ ॥

मधुशब्दान्मयडर्थेयत् स्यात्। यथा-मधव्यः। मधुमय इत्यर्थः ॥

मधुशब्द से मयडर्थमें यत् प्रत्यय हो ॥ १३९ ॥

वसोः समूहे च ॥ १४० ॥

वसुशब्दात्समूहे वाच्ये यत् स्यात्, चान्मयडर्थे। यथा-वसव्यः- समूहः ॥ (अक्षरसमूहे छन्दस उपसङ्ख्यानम्) ॥ छन्दः शब्दा- क्षरसमूहे वर्त्तमानात्स्वार्थे यदित्यर्थः। आश्रावयेति चतुरक्षरमस्तु

श्रौषडिति चतुरक्षरं यजेति द्व्यक्षरं ये यजाम हइति पञ्चाक्षरं द्व्यक्षरो वषट्कार एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः ॥

वसु शब्द से समूह वाच्य होनेपर मयडर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

नक्षत्राद् घः ॥ १४१ ॥

स्वार्थे । यथा—नक्षत्रियेभ्यःस्वाहा ॥

नक्षत्र शब्द से स्वार्थ में घ प्रत्यय हो ॥ १४१ ॥

सर्वदेवात्तातिल् ॥ १४२ ॥

स्वार्थे । यथा—सर्वतातिः । देवतातिः ॥

सर्व और देव शब्दसे स्वार्थ में तातिल् प्रत्यय हो ॥ १४२ ॥

शिवशमरिष्टस्यकरे ॥ १४३ ॥

यथा—करोतीतिकरः । पचाद्यच् । शिवंकरोतीति—शिवतातिः । शन्तातिः । अरिष्टतातिः ॥

षष्ठी समर्थ शिव, शम् और अरिष्ट (अशुभ) शब्दसे कर (करने) अर्थ में तातिल् प्रत्यय हो ॥ १४३ ॥

भावेच ॥ १४४ ॥

शिवादिभ्यो भावे तातिल् स्यात् । शिवस्य भावः—शिवतातिः । शन्तातिः । अरिष्टतातिः ॥

षष्ठी समर्थ शिव, शम् और अरिष्टशब्द से भाव में तातिल् प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

इति जीवाराम शर्म्मकृतायां पाणिनि सूत्रवृत्तौ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः । चतुर्थाध्यायश्च समाप्तः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायारम्भः।

प्रथमः पादः ।

प्राक्क्रीताच्छः ॥ १ ॥

प्राक्, क्रीतात्, छः । तेनक्रीतमित्यतःप्राक्छोऽधिक्रियते ॥

तेन क्रीतम् (५। १। ३७) के अधिकारसे पूर्वतक छ प्रत्यय का अधिकार है ॥ १ ॥

उगवादिभ्योयत् ॥ २ ॥

उगवादिभ्यः, यत् । उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात् । यथा-शङ्कव्यंदारु । गव्यम् ॥ (नाभिनभंच) ॥ नभ्यः-अक्षः । नभ्यम्-अञ्जनम् । रथनाभावेवेदम् ॥ (शुनःसम्प्रसारणंवा-च दीर्घत्वम्) ॥ शून्यम्, शुन्यम् । (ऊधसोऽनङ्च)। ऊधन्यः ॥

उवर्णान्त और गवादि प्रातिपदिकोंसे प्राक् क्रीतीय अर्थों में यत् प्रत्यय हो ॥ २ ॥

कम्बलाच्चसञ्ज्ञायाम् ॥ ३ ॥

कम्बलात् । च, स०म् । यत् स्यात् । यथा-कम्बल्यम्-ऊर्णा-पलशतम् ॥

सञ्ज्ञाविषय में कम्बल शब्दसे प्राक्क्रीतीय अर्थों में यत् प्रत्यय हो ॥ ३ ॥

विभाषाहविरपूपादिभ्यः ॥ ४ ॥

यत् स्यात् । यथा-आमिक्ष्यं-दधि । आमिक्षीयम् । पुरोडाश्याः-तण्डुलाः । पुरोडाशीयाः । अपूप्यम् अपूपीयम् ॥

हविष् विशेषवाचक और अपूपादि प्रातिपदिकों से प्राक् क्रीतीय अर्थों में विकल्प से यत् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

तस्मै हितम् ॥ ५ ॥

चतुर्थी समर्थाद् धितमित्येतस्मिन्नर्थे यथा विहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा—वत्सेभ्योहितः-वत्सीयः गोधुक् ॥

चतुर्थी समर्थ शब्द से हित अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

शरीरावयवाद्यत् ॥ ६ ॥

शात्, यत्[1] । शरीरं-प्राणिकायः । शरीरावयव वाचिनो यत् स्यात् । यथा—दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । ओष्ठ्यम् । (नस् नासिकायाः) ॥ नस्यम् । नाभ्यम् ॥

शरीर अवयव वाचक प्रातिपदिक से हित अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ॥ ७ ॥

खणं, च । एभ्यो हितार्थे यत् स्यात् । यथा—खलाय हितम्-खल्यम् । यव्यम् । माष्यम् । तिल्यम् । वृष्यम् । ब्रह्मण्यम्[1] । चाद्-रथ्या ।

खल, यव माष, तिल, वृष और ब्रह्मन् शब्द से हित अर्थ में यत् प्रत्यय हो ७

अजाविभ्यां थ्यन् ॥ ८ ॥

आभ्यां थ्यन् स्याद्धिते । यथा—अजथ्या । अविथ्या ॥

चतुर्थी समर्थ अज (बकरा) और अवि (भेड़) शब्द से हित अर्थ में थ्यन् प्रत्यय हो ८

आत्मन् विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः ९

---

१ ब्रह्मन् शब्दो ब्राह्मण पर्यायः । प्रकृतिभावस्तु ये चाभावकर्मणोरिति ॥

आ०ते,खः। यथा-आत्मनेहितम्-आत्मनीनम्। विश्वजनीनम्॥ (कर्मधारयादेवेष्यते)॥ षष्ठीतत् पुरुषाद् बहुव्रीहेश्च छएव। विश्वजनीयम् ॥ (पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम्) ॥ पञ्चजनीनम् ॥ (सर्वजनाट्ठञ् खश्च)॥ सार्वजनिकम्। सर्वजनीनम्॥ (महाजनाट्ठञ्)॥ महाजनिकम्। मातृभोगीणाः। पितृभोगीणाः॥ (आचार्यादणत्वं च)॥ आचार्यभोगीनः॥

चतुर्थी समर्थ आत्मन् विश्वजन और भोगोत्तरपद प्रातिपदिक से हित अर्थ में ख प्रत्यय हो॥ ९॥

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ॥ १०॥

आभ्यां यथासङ्ख्यंणढञौ स्याताम्। यथा-सर्वस्मै हितम्-सार्वम्। पौरुषेयम्। (सर्वाण्णस्यवा वचनम्)॥ सर्वीयम्। (पुरुषाद् वधविकार समूहतेन कृतेषु वाच्यम्)॥ पौरुषेयो वधः, विकारः, समूहो वा। तेन कृते। पौरुषेयो ग्रन्थः॥

चतुर्थी समर्थ सर्व और पुरुष शब्द से हित अर्थ में यथा सङ्ख्य ण और ढञ् प्रत्यय हो॥ १०॥

माणवचरकाभ्यांखञ्॥ ११॥

यथा-माणवाय हितम्-माणवीनम्। चारकीणम्॥

चतुर्थी समर्थ माणव और चरक शब्द से हित अर्थ में खञ् प्रत्यय हो। ११।

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ॥ १२॥

विकृतिवाचकाच्चतुर्थ्यन्तात्तदर्थायां प्रकृतौ वाच्यायां छः

१—(६। ४। १६९) इति प्रकृतिभावः।

स्यात् । यथा-अङ्गारेभ्योहितान्येतानि काष्ठानि--अङ्गारीयाणि-काष्ठानि । प्राकारीयाः-इष्टकाः ॥

विकृतिवाचक प्रातिपदिक से विकृत्यर्थ प्रकृति वाच्य हो तो छ प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

छदिरुपधिबलेर्ढञ् ॥ १३ ॥

छ० लेः । ढञ् । छदिरादिभ्यः शब्देभ्यो ढञ् स्यात तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ । यथा--छादिषेयाणि-तृणानि । औपधेयम् । उपधि शब्दात् स्वार्थे इष्यते।उपधीयत इत्युपधिः-रथाङ्गम्।बालेयास्तण्डुलाः॥

विकृति वाचक छदिष् उपधि और बलि शब्द से विकृत्यर्थ प्रकृति में ढञ् प्रत्यय हो

ऋषभोपान होर्ञ्यः ॥ १४ ॥

यथा-आर्षभ्यः-वत्सः । औपानह्यः-मुञ्जः ॥

विकृति वाचक ऋषभ और उपानद् शब्द से विकृत्यर्थ प्रकृति में ञ्य प्रत्यय हो

चर्म्मणोऽञ् ॥ १५ ॥

च० णः, अञ् । चर्म्मणो या विकृति स्तद्वाचकादञ् स्यात् । यथा-वर्ध्र्या इदम्-वार्ध्रं-चर्म्म । वारत्रम्-चर्म्म ॥

विकृति वाचक चर्मन् शब्द से विकृत्यर्थ प्रकृति में अञ् प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

तदस्यतदस्मिन्स्यादिति ॥ १६ ॥

तद्, अस्य, तद्, अस्मिन्, स्यात्, इति । यथा-प्राकार आसामिष्टकानां स्यात्-प्राकारीयाइष्टकाः । प्रासादीयंदारु । सप्तम्यर्थे । प्राकारोऽस्मिन् देशे स्यात्-प्राकारीयोदेशः । प्रासादीयाभूमिः ॥

समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

परिखायांढञ् ॥ १७ ॥

यथा-पारिखेयी-भूमिः ॥ छयतोःपूर्णोविधिः ।

समानाधिकरण प्रथमा समर्थ परिखा (खाई) शब्दसे षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ में ढञ् प्रत्ययहो ॥ १७ ॥

प्राग्वतेष्ठञ् ॥ १८ ॥

प्राक्, वतेः, ठञ् । तेन (५ । १ । ११५) तुल्यमितिवर्त्ति वक्ष्यति ततःप्राक् ठञधिक्रियते ॥

तेनतुल्यं क्रियाचेद्वतिः, इस सूत्रपर्यन्त ठञ् प्रत्यय का अधिकार है ॥ १८ ॥

आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक् १९

आर्हात्, अ०त्, ठक् । तदर्हति (५ । १ । ६३) इत्येतदभिव्याप्य ठञधिकार मध्ये ठञोऽपवादः, ठगाधिक्रियते गोपुच्छादीन् विहाय ॥

तदर्हति, इस सूत्रतक गोपुच्छ सङ्ख्यावाचक और परिमाणवाचक शब्दों को छोड़कर समर्थ शब्दसे ठक् प्रत्यय हो यह अधिकार है ॥ १९ ॥

असमासेनिष्कादिभ्यः ॥ २० ॥

आर्हा दित्येतत् (तेनक्रीतम्) इति यावत् । निष्कादिभ्योऽसमासे ठक् स्यादार्हीयेष्वर्थेषु । यथा—नैष्किकम् ॥

समासभिन्न निष्कादि प्रातिपदिकों से आर्हीय अर्थों में ठक् प्रत्यय हो ॥ २० ॥

शताच्च ठन्यतावशते ॥ २१ ॥

शतात्, च, ठन्यतौ, अशते । यथा--शतेन क्रीतम्-शातिकम्, शत्यम् ॥

शत वाच्य न हो तो शत सब्द से आर्हीय अर्थों में ठन् और यत् प्रत्यय हो २१

सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन् ॥ २२ ॥

सङ्ख्यायाः कन् स्यादार्हीयेऽर्थेनतुत्यन्त शदन्तायाः । यथा--पञ्चभिर्मुद्राभिःक्रीतः पञ्चकः । बहुकः ॥

अत्यन्त और अशदन्त सङ्ख्या से आर्हीय अर्थों में कन् प्रत्यय हो २२

वतोरिड् वा ॥ २३ ॥

वतोः, इट्, वा । वत्वन्तात् कन् इड्वा स्यात् । यथा—तावतिकः । तावत्कः ॥

वत्वन्त सङ्ख्या से आर्हीय अर्थों में विहित कन् प्रत्यय को विकल्प से इट् का आगम हो ॥ २३ ॥

विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसञ्ज्ञायाम् ॥ २४ ॥

विं० भ्याम्, ड्वुन्, अ० म् । योगविभागोऽत्र कार्य्यः । आभ्यां कन् स्यात् असञ्ज्ञायाम् ड्वुन् स्यात् । यथा—विंशकः । त्रिंशकः । सञ्ज्ञायांतु । विंशतिकः । त्रिंशतिकः ॥

असंज्ञाविषय में विंशति और त्रिंशत् शब्द से आर्हीय अर्थों में ड्वुन् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

कंसाट्टिठन् ॥ २५ ॥

कंसात्, टिठन्, टोङीबर्थः । इकारउच्चरणार्थः । यथा—कंसिकः । कंसिकी ॥ (अर्द्धाच्चेति वाच्यम्) ॥ अर्द्धिकः । अर्द्धिकी ॥ (कार्षापणाट्टिठन् वक्तव्यः प्रतिरादेशश्चवा) ॥ कार्षापणिकः । कार्षापणिकी । प्रतिकः । प्रतिकी ॥

कंसशब्द से आर्हीय अर्थों में टिठन् प्रत्यय हो ॥ २५

१—(६ । ४ । १४२) डतातिलोपः ॥

शूर्पादञन्यतरस्याम् ॥ २६ ॥

शूर्पात्, अञ्, अ० म्। यथा—शूर्पेण क्रीतम्—शौर्पम्। शौर्पिकम्।
शूर्प शब्दसे आर्हीय अर्थों में विकल्प से अञ् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् ॥ २७

शत० तं. अण्। एभ्योऽण् स्यात्। यथा—शतमानेन क्रीतम्-शातमानम्। वैंशतिकम्। साहस्रम्। वासनम् ॥
शतमान, विंशतिक, सहस्र और वसन शब्द से आर्हीय अर्थों में अण् प्रत्ययहो

अध्यर्द्धपूर्वाद्द्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम् ॥ २८ ॥

अ० गो:, लुक्, अ० म्। अध्यर्द्धपूर्वात्, द्विगोश्चपरस्य आर्हीयस्य लुक् स्यात्। यथा—अध्यर्द्धकंसम्। द्विकंसम् ॥
असञ्ज्ञाविषय में अध्यर्द्ध पूर्व और द्विगु से परे आर्हीय प्रत्ययका लुक् हो ॥ २८ ॥

विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम् ॥ २९ ॥

आभ्यांलुग्वा स्यात्। यथा—अध्यर्द्धकार्षापणम्। अध्यर्द्धकार्षापणिकम्। द्विकार्षापणम्। द्विकार्षापणिकम्। औपसङ्ख्यानिकस्य टिठनोलुक्। पक्षे—अध्यर्द्धप्रतिकम्। द्विप्रतिकम्। अध्यर्द्धसहस्रम्। अध्यर्द्धसाहस्रम्। द्विसहस्रम्। द्विसाहस्रम् ॥
अध्यर्द्धपूर्व और द्विगुसंज्ञक कार्षापण और सहस्र शब्दसे आर्हीय प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो ॥ २९ ॥

द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् ॥ ३० ॥

द्वि० र्द्, निष्कात्। लुग्वा स्यात्। यथा—द्विनिष्कम्। द्विनै-

ष्किकम्। त्रिनिष्कम्। त्रैनैष्किकम्। (बहुपूर्वाच्चेतिवाच्यम्)॥ बहुनिष्कम्। बहुनैष्किकम् ॥

द्वित्रिपूर्व निष्कान्त (१६ मासे परिमाण) द्विगुसे आर्हीय प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो ॥ ३० ॥

विस्ताच्च ॥ ३१ ॥

विस्तात्, च। द्वित्रिबहुपूर्वाद् विस्तादार्हीयस्य प्रत्ययस्य वा लुक् स्यात्। यथा-द्विविस्तम्। द्विवैस्तिकम्। त्रिविस्तम्। त्रिवैस्तिकम्। बहुविस्तम्। बहुवैस्तिकम् ॥

द्वि त्रि बहुपूर्वक विस्तान्त (दशमासे) द्विगुसञ्ज्ञक शब्दसे आर्हीय प्रत्यय का विकल्प से लुक् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

विंशतिकात् खः ॥ ३२ ॥

अध्यर्द्ध पूर्वात्प्रातिपदिकाद् द्विगोश्च विंशतिकशब्दान्तादार्हीयेष्वर्थेषु खः स्यात्।यथा-अध्यर्द्धविंशतिकीनम्।द्विविंशतिकीनम्॥

अध्यर्द्धपूर्वविंशतिक और द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से आर्हीय अर्थों में ख प्रत्यय हो

खार्या ईकन् ॥ ३३ ॥

अध्यर्द्धपूर्वात् प्रातिपदिकाद् द्विगोश्च खारीशब्दान्ता दार्हीयेष्वर्थेषु ईकन् स्यात्। यथा-अध्यर्द्धखारीकम्। द्विखारीकम् ॥ (केवलाच्चेति वाच्यम्)॥ खारीकम् ॥ (काकिण्याश्चोप सङ्ख्यानम्)॥ अध्यर्द्ध काकिणीकम् ॥

अध्यर्द्धपूर्व और द्विगुसंज्ञक खारीशब्द से आर्हीय अर्थों में ईकन् प्रत्यय हो ॥

पणपादमाषशताद्यत् ॥ ३४ ॥

प० तं. यत्। अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोश्च पण पाद माष शत श-

र्द्धान्ता दार्हीयेष्वर्थेषु यत् स्यात् । यथा—अध्यर्द्धपण्यम् । द्विपण्यम् । अध्यर्द्धपाद्यम् । द्विपाद्यम् । अध्यर्द्धमाष्यम् । द्विमाष्यम् । अध्यर्द्धशत्यम् । द्विशत्यम् ॥

अध्यर्द्धपूर्व और द्विगुसंज्ञक पण पाद माष और शत शब्द से आर्हीय अर्थों में यत् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

शाणाद् वा ॥ ३५ ॥

शाणशब्दादध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोरार्हीयेष्वर्थेषु वा यत् स्यात् । पक्षे ठञ् तस्यलुक् । यथा—अध्यर्द्धशाण्यम् । अध्यर्द्धशाणम् । द्विशाण्यम् । द्विशाणम् ॥

अध्यर्द्धपूर्व और द्विगु संज्ञक शाण (सन) शब्द से अर्हीय अर्थों में विकल्प से यत् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

द्वित्रिपूर्वादण् च* ॥ ३६ ॥

द्वित्रिपूर्वाच्छाणान्तात् प्रातिपदिकादार्हीयेष्वर्थेषु अण् स्याद्यच्च वा । तेन त्रैरूपम् । (परि० ७ । ३ । १५) इतिपर्युदासादादिवृद्धिरेव । यथा—द्विशाण्यम् । द्वैशाणम् । द्विशाणम् । त्रिशाण्यम् । त्रैशाणम् । त्रिशाणम् ॥

द्वि और त्रि शब्द हैं पूर्व जिसके ऐसे शाण शब्द से आर्हीय अर्थों में अण और यत् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ ३६ ॥

तेन क्रीतम् ॥ ३७ ॥

तृतीयासमर्थात् क्रीतमित्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा—पणेन क्रीतम्-पाणिकम् । मुद्रयाक्रीतम्-मौद्रिकम् ॥

तृतीयासमर्थ से क्रीत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

* वार्त्तिकमिदं वृत्तिकृता सूत्रेषु प्रक्षिप्तम् ॥

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ॥ ३८ ॥

संयोगः-सम्बन्धः। उत्पातः—शुभाशुभसूचकः। यथा विहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा-शतस्य निमित्तं धनपतिना संयोगः---शत्यः। शतिको वा। शतस्य निमित्तमुत्पातो दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्- शत्यम्, शतिकं वा। शतस्यनिमित्यमित्यर्थः ॥ (वातपित्तश्लेष्मभ्यश्शमन कोपयोरुपसङ्ख्यानम्) ॥ वातस्य—शमनं कोपनं वा वातिकम्। पैत्तिकम्। श्लैष्मिकम्॥ (सन्निपाताच्चेतिवाच्यम्)॥ सान्निपातिकम् ॥

संयोग और उत्पात समानाधिकरण षष्ठी समर्थ शब्दसे निमित्त अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ३८ ॥

गोद्व्यचोऽसङ्ख्यापरिमाणाऽश्वादेर्यत्

गो०चः,अ०दे ः,यत्। गोशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात् सङ्ख्या परिमाणाश्वादि विवर्जिताद्यत् स्यात् तस्यनिमित्तं संयोगपाता वित्यर्थे। यथा-गोर्निमित्तं संयोगः,उत्पातो वा--गव्यः। द्व्यचः। धन्यः। यशस्यः ॥ (ब्रह्मवर्चसादुपसङ्ख्यानम्) ॥ ब्रह्मवर्चस्यम्

सङ्ख्या परिमाण और अश्वादि को छोड़कर संयोग और उत्पात समानाधिकरण षष्ठी समर्थ गो और द्व्यच् प्राति पदिक से निमित्त अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥

पुत्राच्छ च ॥ ४० ॥

पुत्रात्,छः,च। चाद्यत्। यथा--पुत्रस्य निमित्तं संयोगः,उत्पातो वा पुत्रीयः। पुत्र्यः ॥

संयोग और उत्पात समानाधिकरण षष्ठी समर्थ पुत्र शब्द से निमित्त अर्थ में छ और यत प्रत्यय हो ॥ ४० ॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ॥ ४१ ॥

स०भ्याम्, अ०ञौ । यथा—सर्वभूमेर्निमित्तं संयोगउत्पातोवा,—सार्वभौमः । पार्थिवः ॥

संयोग और उत्पात समानाधिकरण षष्ठी समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी शब्दसे निमित्त अर्थ में यथासङ्ख्य अण् और अञ् प्रत्यय हो ॥ ४१ ।

तस्येश्वरः ॥ ४२ ॥

तस्य, ईश्वरः । यथा—सर्वभूमेरीश्वरः—सार्वभौमः । पार्थिवः ॥

षष्ठी समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी शब्दसे ईश्वर अर्थ में यथाक्रम अण् और अञ् प्रत्यय हो ॥ ४२ ॥

तत्रविदितइतिच ॥ ४३ ॥

तत्र, वि०तः, इति, च । विदितोज्ञातः । प्रकाशित इत्यर्थः । यथा-- सर्वभूमौविदितः--सार्वभौमः । पार्थिवः ॥

सप्तमी समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी बब्दसे विदित अर्थ में यथाक्रम अण् और अञ् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

लोकसर्वलोकाट्ठञ् ॥ ४४ ॥

लो०तं, ठञ् । आभ्यां ठञ् स्यात् । यथा--लोकेविदितः--लौकिकः । सर्वलोकेविदितः--सार्वलौकिकः ॥

सप्तमी समर्थ लोक और सर्वलोक शब्दसे विदित अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ४४ ॥

तस्य वापः ॥ ४५ ॥

१—(७ । ३ । २०) इतिवृद्धिः ॥

उप्यते अस्मिन्निति-वापः-क्षेत्रम्। तस्येति षष्ठी समर्थाद् वाप इत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्।यथा-प्रस्थस्य वापः-क्षेत्रम्--प्रास्थिकम्। द्रौणिकम्। खारिकम् ॥

षष्ठी समर्थ शब्द से वाप अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

पात्रात् ष्ठन् ॥ ४६ ॥

यथा--पात्रस्य वापः-क्षेत्रम्-पात्रिकम्। पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः ॥

षष्ठी समर्थ पात्र शब्द से वाप अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ ४६ ॥

तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते

तद्, अ०न्, वृ० दाः, दीयते॰। प्रथमासमर्थात् सप्तम्यर्थे यथा विहितं प्रत्ययः स्यात्, यत् तत् प्रथमा समर्थं वृद्ध्यादि चेद्दीयते। वृद्धिर्दीयते, इत्यादि क्रमेण प्रत्येकं सम्बन्धा देक वचनम्। यथा-पञ्च अस्मिन्--वृद्धिः-आयः, लाभः,शुल्कम्, उपदा, वा दीयते पञ्चकः। शतिकः। शत्यः। साहस्रः। उत्तमर्णेन मूलातिरिक्तं ग्राह्यं वृद्धिः। ग्रामादिषु स्वामिग्राह्योभागः--आयः। विक्रेत्रा मूल्यादधिकग्राह्यम्-लाभः। रक्षानिर्वेशोराजभागः--शुल्कः। उत्कोचः-उपदा॥ (चतुर्थ्यर्थे उपसङ्ख्यानम्)॥ पञ्च अस्मैवृद्ध्यादि दीयते पञ्चकः यज्ञदत्तः ॥

दीयते क्रियायुक्त वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क, और उपदा समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे सप्तम्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

पूरणार्द्धाट्ठन् ॥ ४८ ॥

पू०तं, ठन् । अर्द्धशब्दो रूपकार्द्धस्यरूढिः । यथा--द्वितीयोवृध्या-दिरस्मिन्दीयते--द्वितीयिकः । तृतीयिकः । अर्धिकः ॥

दीयते क्रियायुक्त वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क, उपदा समानाधिकरण प्रथमा समर्थ पूरणवाचक और अर्ध शब्दसे सप्तम्यर्थ में ठन् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

भागाद्यच्च ॥ ४९ ॥

भा०तं. यत् । चाट्ठन् । भागशब्दोऽपिरूपकस्यार्द्धेरूढः । यथा--भागोवृध्यादिरस्मिन् दीयते--भाग्यम् । भागिकम् । शतम् । भाग्या । भागिका ।--विंशतिः ॥

दीयते क्रियायुक्त वृद्धि आय लाभ शुल्क और उपदा समानाधिकरण प्रथमा समर्थ भागशब्द से सप्तम्यर्थ में यत् और ठन् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

तद्धरतिवहत्यावहतिभाराद्वंशादिभ्यः

क्रि० क्रि० क्रि०

तद्द्वं, ह०ति, व०ति, आ०ति, भा०द्, वं०भ्यः । वंशादिभ्यःपरोयो भारशब्दः तदन्तं यत् प्रातिपदिकं तत्प्रकृतिकाद् द्वितीयान्तादि-त्यर्थः । यथा- वंशभारं हरति, वहति, आवहति, वा-वांशभारिकः । ऐक्षुभारिकः ॥

द्वितीया समर्थ वंशादि शब्दों से परे भारान्त प्रातिपदिक से हरति, वहति, आवहति अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ ॥ ५१ ॥

आभ्यां यथासङ्ख्य मिमौस्याताम् । यथा—वस्नं-हरति, वहति, आवहति वा--वस्निकः । द्रव्यकः ॥

द्वितीयासमर्थ वस्न (द्रव्य) और द्रव्य शब्द से हरति वहति और आवहति अर्थों में यथाक्रम ठन् और कन् प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

सम्भवत्यवहरतिपचति ॥ ५२ ॥

क्रि० क्रि० क्रि०
सं० ति, अ० ति, प० ति । सम्भवत्यादिष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा—प्रस्थंसम्भवति-प्रास्थिकः-कटाहः । प्रस्थं स्वस्मिन् समावेशयतीत्यर्थः । प्रास्थिकी पाचिका । प्रस्थमवहरति, पचति वेत्यर्थः ॥ (पत्पचतीति द्रोणादण् च) ॥ चाट्ठन् । द्रोणं पचति-द्रौणी । द्रौणिकी ॥

द्वितीयासमर्थ शब्द से सम्भवति अवहरति और पचति अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५२ ॥

आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम् ५३

आ० त्, खः, अ० म् । आढकाचित पात्रशब्देभ्योद्वितीयासमर्थेभ्यो-वा सम्भवत्यादिष्वर्थेषु खः स्यात् । पक्षे ठञ् । यथा--आढकं सम्भवति, अवहरति, पचति वा--आढकीना । आढकिकी । आचितीना । आचितिकी । पात्रीणा । पात्रिकी ॥

द्वितीयासमर्थ आढक ५४ आचित २९५ और पात्र शब्द से सम्भवति अवहरति और पचति अर्थ में विकल्प से ख प्रत्यय हो ॥ ५३ ॥

द्विगोः ष्ठंश्च ॥ ५४ ॥

द्विगोः ठन्, च । आढकाचित पात्रान्ताद् द्विगोः सम्भवत्यादिष्वर्थेषु ष्ठन्खौ वा स्याताम् । पक्षे ठञ् तल्लुक् । यथा द्व्याढकिकी द्व्याढकीना । द्व्याढकी । द्व्याचितिकी । द्व्याचितीना । द्व्याचिता । अपरिमाण बिस्ताचितेति ङीपःप्रतिषेधः । द्विपात्रिकी । द्विपात्रीणा । द्विपात्री ॥

द्वितीया समर्थ आढकान्त, आचितान्त, पात्रान्त द्विगु से सम्भवति अवहरति और पचति अर्थ में विकल्प से ठन् और ख प्रत्यय हों ॥ ५४ ॥

कुलिजाल्लुक्खौ च ॥ ५५ ॥

कु० तें, लु० खौ, च । कुलिजान्ताद् द्विगोः सम्भवत्यादिष्वर्थेषु लुक्खौ वा स्याताम् । चात् ष्ठंश्च । लुगभावे ठञः श्रवणम् । यथा—द्वे कुलिजे सम्भवत्यवहरति पचति वा द्विकुलिजिकी । द्विकुलिजीना । द्विकुलिजा । द्वैकुलिजिकी ॥

द्वितीयासमर्थ कुलिजशब्दान्त द्विगु से सम्भवति अवहरति और पचति अर्थ में लुक्, ख और ठन् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ ५५ ॥

सोऽस्यांशवस्नभृतयः ॥ ५६ ॥

सः, अस्य, अं० यः । अंशः-भागः । वस्नं-मूल्यम् । भृतिः—वेतनम् । प्रथमा समर्थात् षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, यत्तत् प्रथमासमर्थमंश वस्नभृतयश्चेमस्युः । यथा—पञ्च अंशो वस्नो भृतिर्वा यस्य--पञ्चकः ॥

अंश वस्न और भृति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ शब्द से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

तदस्यपरिमाणम् ॥ ५७ ॥

तत्, अस्य, प०म् । प्रथमा समर्थात् षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, यत्तत् प्रथमासमर्थं परिमाणंचेत् स्यात् । यथा—प्रस्थः परिमाणमस्य प्रास्थिकोराशिः ॥

परिमाण समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ५७

सङ्ख्यायाः सञ्ज्ञासङ्घसूत्राऽध्ययनेषु

एष्वर्थेषु सङ्ख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् परिमाणोपाधिकात् प्रथमा समर्थात् षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययःस्यात्। (तत्रसञ्ज्ञायां स्वार्थेप्रत्ययोवाच्यः) ॥ यथा-पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः। पञ्चपरिमाणमेषामितिवा। सङ्घे। पञ्चपरिमाणमस्य पञ्चकः-सङ्घः। सूत्रे। अष्टकंपाणिनीयम्। सङ्घशब्दस्य प्राणिसमूहे रूढत्वात् सूत्रं पृथगुपात्तम्। अध्ययने। पञ्चकम्-अध्ययनम्। (स्तोमेडविधिः)॥ पञ्चदशपरिमाणमस्य पञ्चदशः। सप्तदशः। एकविंशः। सोमयागेषु छन्दोगैः क्रियमाणा पृष्ठ्यादि सञ्ज्ञिका स्तुतिः-स्तोमः ॥

सञ्ज्ञा, सङ्घ, सूत्र, और अध्ययन प्रत्ययार्थ विशेषण होंतो परिमाणोपाधिक प्रथमा समर्थ सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिकसे षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

पङ्क्तिविंशति त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्

इमे रूढिशब्दा निपात्यन्ते ॥

परिमाण समानाधिकरण प्रथमा समर्थ पङ्क्ति (दश) विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, और शत ये दशशब्द षष्ठ्यर्थ में निपातन किये हैं ॥ ५९ ॥

पञ्चद्दशतौवर्गेवा ॥ ६० ॥

इमौवर्गे वा निपात्येते। यथा-पञ्चपरिमाणमस्य पञ्चद्-वर्गः। दशद्-वर्गः। पक्षे। पञ्चकः। दशकः ॥

षष्ठ्यर्थ में वर्गवाच्य होंतो परिमाणोपाधिक प्रथमा समर्थ पञ्चद् और दशद् शब्द विकल्प से निपातित हैं ॥ ६० ॥

सप्तनोऽञ् छन्दसि ॥ ६१ ॥

सप्तनः, अञ्, छन्दसि । तदस्य परिमाण मिति वर्ग इति च । सप्तन् शब्दाच्छन्दसि विषयेऽञ् स्याद् वर्गेऽभिधेये। यथा–सप्त साप्तान्यसृजन् ॥

वर्ग वाच्य हो तो छन्दो विषय में परिमाण समानाधिकरण प्रथमा समर्थ सप्तन् शब्द से षष्ठ्यर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे सञ्ज्ञायांडण्

त्रिं०तोः, ब्रा०णे, सं० मृ, डण् । ब्राह्मणेऽभिधेये त्रिंशच्चत्वारिशच्छब्दाभ्यां सञ्ज्ञायां विषयेडण् स्यात्, तदस्य परिमाण मिति विषये। यथा–त्रिंशदध्यायाःपरिमाणमेषां ब्राह्मणानां–त्रैंशानि। चात्वारिंशानि– ब्राह्मणानि ॥

संज्ञाविषय होनेपर ब्राह्मण वाच्य हो तो परिमाण समामानाधिकरण प्रथमासमर्थ त्रिंशत् और चत्वारिंशत् शब्द से षष्ठ्यर्थ में डण् प्रत्यय हो ॥ ६२ ॥

तदर्हति ॥ ६३ ॥

तद्, अर्हति । द्वितीयासमर्थादर्हतीत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययाःस्युः। यथा–श्वेतच्छत्रमर्हति-श्वैतच्छत्रिकः ॥

द्वितीयासमर्थ शब्द से अर्हति (प्राप्ति के योग्य) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों

छेदादिभ्यो नित्यम् ॥ ६४ ॥

छे० भ्यः, नि० म् । नित्यम्--आभीक्ष्ण्यम् । छेदादिभ्यो-द्वितीयासमर्थेभ्यो नित्यमर्हतीतिविषये यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा–छेदं नित्यमर्हति-छैदिकः-वेतसः । छिन्न प्ररूढत्वात् ॥ (विरागविरङ्गं च) ॥ विरागं नित्यमर्हति--वैरागिकः। वैराङ्गिकः ॥

द्वितीयासमर्थ छेदादि प्रातिपदिकों से नित्यमर्हति इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो

शीर्षच्छेदाद्यच्च ॥ ६५ ॥

शी० तँ, यतँ, चँ। यथा-शिरश्छेदं नित्यमर्हति-शीर्षच्छेद्यः। शैर्षच्छेदिकः ॥

द्वितीयासमर्थ शीर्षच्छेद शब्द से नित्य अर्हति इस अर्थ में यत् और यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

दण्डादिभ्यो यः ॥ ६६ ॥

द० भ्यः, यः। एभ्यो द्वितीया समर्थेभ्योऽर्हतीत्यर्थे यः स्यात्। यथा दण्डमर्हति-दण्ड्यः। वध्यः ॥

द्वितीया समर्थ दण्डआदि शब्दों से अर्हति अर्थ में य प्रत्यय हो ॥ ६६ ॥

छन्दसि च ॥ ६७ ॥

प्रातिपदिक मात्राच्छन्दसि विषये तदर्हतीत्यर्थे यःस्यात्। यथा-यूप्यः पलाशः ॥

छन्दो विषय में द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक मात्र से य प्रत्यय हो ॥ ६७ ॥

पात्राद् घंश्च ॥ ६८ ॥

पात्राद्, घन्, च। चाद्यस्त दर्हतीत्यर्थे यथा-पात्रियः। पात्र्यः ॥

द्वितीया समर्थ पात्र शब्द से अर्हति इस अर्थ में घन् और य प्रत्यय हो ॥६८॥

कडङ्करदक्षिणाच्छश्च ॥ ६९ ॥

क० तँ, छं, च। आभ्यां छः स्याच्चाद्यश्च तदर्हतीत्यर्थे। यथा-क·

ङ्करमर्हति-कडङ्करीयो गौः । कडङ्कर्य्यः । दक्षिणामर्हतीति–दाक्षिणीयः । दक्षिण्योविप्रः ॥

द्वितीया समर्थ कडङ्कर और दक्षिणा शब्द से अर्हति अर्थ में छ और य, प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

स्थालीबिलात् ॥ ७० ॥

अस्मादर्हतीत्यर्थेछयौ स्याताम् । यथा–स्थालीबिलमर्हन्ति स्थालीविलीयाः–तण्डुलाः । स्थालीविल्याः । पाकयोग्याइत्यर्थः ॥

द्वितीया समर्थ स्थालीबिल शब्दसे अर्हति इसअर्थमें छ और य प्रत्यय हो ॥ ७० ॥

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ॥ ७१ ॥

आभ्यां यथासङ्ख्यमिमौ स्याताम् । यथा–यज्ञम्, ऋत्विजं वा, अर्हति–यज्ञियः । आर्त्विजीनः ॥ (तत्कर्म्माहतीत्युपसङ्ख्यानम्) ॥ यज्ञमर्हति–यज्ञियः–देशः ॥ आर्त्विजीनं द्विजकुलम् ॥

द्वितीया समर्थ यज्ञ और ऋ*त्विज् शब्दसे अर्हति इस अर्थ में यथासङ्ख्य घ और खञ् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

पारायणतुरायणचान्द्रायणंवर्त्तयति ७२

यथा–पारायणं वर्तयति–पारायणिकः छात्रः । तौरायणिकः यजमानः । चान्द्रायणिकः तपस्वी ॥

द्वितीया समर्थ पारायण (जिस के द्वाराएक कार्य्य को समाप्तकरे) तुरायण (यज्ञविशेष) और चान्द्रायण (एक व्रत) शब्द स वर्त्तयति इस अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो ॥ ७२ ॥

संशयमापन्नः ॥ ७३ ॥

१—नीवारं पाकादि कडङ्करीयैः, इति रघुः ॥ * इत्यार्हीयाणां पूर्णोऽवधिः । अतः परं ठञेव ॥

संशयम्, आपन्नः। संशय शब्दाद् द्वितीया समर्थादापन्न इत्यर्थे ठञ् स्यात्। यथा-संशय विषयी भूतोऽर्थः। सांशयिकः--स्थाणुः।

द्वितीया समर्थ संशय शब्द से आपन्न (प्राप्त) अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥७३॥

योजनं गच्छति ॥७४॥

द्वितीया समर्थाद् योजन शब्दाद् गच्छतीत्यर्थे ठञ् स्यात्। यथा-योजनं गच्छति यौजनिकः ॥ (क्रोशशतयोजनशत योरुपसङ्ख्यानम्)॥ क्रोशशतंगच्छति-क्रौशशातिकः। यौजनशतिकः॥(ततोऽभिगमनमर्हतीति च वक्तव्यम्)॥ क्रोशशतादभि गमन मर्हतीति-क्रौशशातिकः भिक्षुः। यौजनशतिकः आचार्य्यः॥

द्वितीया समर्थ योजन (चार कोस) शब्द से गच्छति इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो

पथः ष्कन् ॥७५॥

षोडीषर्थः। यथा-पन्थानं गच्छति-पथिकः। पथिकी॥

द्वितीयासमर्थ पथिन् शब्द से गच्छति इस अर्थ में ष्कन् प्रत्यय हो ॥ ७५ ॥

पन्थोण्णो नित्यम् ॥७६॥

पन्थः, णः, नित्यम्। पथः पन्थ इत्ययमादेशः स्यात् णश्च प्रत्ययो नित्यम् गच्छतीत्यर्थे। यथा-पन्थानं नित्यं गच्छति-पान्थः। पान्था॥

द्वितीतासमर्थ पथिन् शब्द से नित्यं गच्छति इस अर्थ में ण प्रत्यय और पथिन् शब्द को पन्थ आदेश हो ॥ ७६ ॥

उत्तरपथेनाऽऽहृतं च ॥७७॥

उत्तरपथ शब्दातृतीया समर्थादाहृत मित्यर्थे ठञ् स्यात्। यथा-

उत्तरपथेन आहृतम्--औत्तरपथिकम् । उत्तरपथेन गच्छति--औत्तर पथिकः । (आहृत प्रकरणे वारिजङ्गलस्थल कान्तर पूर्वपदादुपसङ्ख्यानम्) ॥ वारि पथेनाहृतम्--वारिपथिकम् । वारि पथेन गच्छति--वारिपथिकः । जङ्गलपथेनाऽहृतम्--जाङ्गलपाथिकम् । जङ्गलपथेन--गच्छति--जाङ्गलपथिकः । स्थालपथिकम् । स्थाल पथिकः । कान्तारपथिकम् । कान्तारपथिकः ॥

तृतीया समर्थ उत्तरपथ शब्द से आहृत और गच्छति इस अर्थमें ठञ् प्रत्ययहो ॥

कालात् ॥ ७८ ॥

व्युष्टादिभ्योण् इत्यतः प्रागधिकारोऽयम् ॥

यहां से (५ । १ । ९७) यहांतक काल का अधिकार है ॥ ७८ ॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ७९ ॥

यथा--अह्ना निर्वृत्तम्--आह्निकम् ॥

तृतीयासमर्थ काल वाचक प्रातिपदिक से निर्वृत्त इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ॥ ८० ॥

तम्, अ० ष्ट, भृतः, भावी । अधीष्टः-सत्कृत्यव्यापारितः । भृतः-वेतनेन क्रीतः । भूतः-स्वसत्तया व्याप्तकालः । भावी-तादृश एवा नागतकालः । यथा--मास मधीष्टः-मासिकोऽध्यापकः । मासं भृतः-मासिकः कर्मकरः । मासं भूतः-मासिको व्याधिः । मासं भावी-मासिकः उत्सवः ॥

द्वितीयासमर्थ कालवाचीय प्रातिपदिक से अधीष्ट भृत भूत और भावी अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

मासाद् वयसि यत् खञौ ॥८१॥

भूतेर्थे मासशब्दाद् वयस्यभिधेये यत्खञौ स्याताम् । मासंभूतः मास्यः । मासीनः ॥

अवस्था वाच्य होतो प्रथमा समर्थ मास शब्दसे भूत अर्थ में यत् और खञ् प्रत्ययहो ॥ ८१ ॥

द्विगोर्यप् ॥८२॥

द्विगोः, यप् । वयस्यभिधेये मासान्ताद् द्विगोर्यप् स्यात् । यथा-द्वौ मासौ भूतः-द्विमास्यः । त्रिमास्यः ॥

अवस्थावाच्य हो तो द्वितीया समर्थ मासान्त द्विगु से भूत अर्थ में यप् प्रत्ययहो

षण्मासाण्ण्यच्च ॥८३॥

ष०त्, ण्यत्, च।वयस्यभिधेये षण्मासशब्दान्ण्यद्यप् ठञः स्युः । यथा-षाण्मास्यः । षण्मास्यः। षाण्मासिकः ॥

अवस्था वाच्य हो तो द्वितीया समर्थ षण्मासशब्द से भूत अर्थ में ण्यत् यप् और ठञ् प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

अवयसि ठंश्च ॥ ८४ ॥

अ० सिं, ठन्, च । षण्मासशब्दाद् वयस्यभिधेये ठन् स्याच्चान् ण्यत् । षण्मासिकोऽव्याधिः । षाण्मास्यः ॥

अवस्था भिन्न अर्थ वाच्य हो तो द्वितीयासमर्थ षण्मास शब्द से ठन् और ण्यत् प्रत्यय हो ॥ ८४ ॥

समायाः खः ॥ ८५

समाशब्दात् द्वितीया समर्थादधीष्टादिष्वर्थेषु खः स्यात्। यथा-समाम्-अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी वा,-समीनः ॥

द्वितीया समर्थ समा (वत्सर) शब्द से अधीष्टादि चार अर्थों में ख प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

द्विगोर्वा ॥ ८६ ॥

द्विगोः, वा । समायाः ख इत्येव । तेनपरिजय्येत्यतः-प्राङ्निर्वृत्तादिषु पञ्चस्वर्थेषु प्रत्ययाः । यथा-द्विसमीनः । द्वैसमिकः॥

द्वितीया समर्थ समाशब्दान्त द्विगुसे तेन (५ । १ । ९३) से पूर्व निर्वृत्तादि पांच अर्थोंमें विकल्प से ख प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

रात्र्यहः संवत्सराच्च ॥ ८७ ॥

रा०त्, च । रात्रिअहः संवत्सर इत्येवमन्ताद् द्विगोर्निर्वृत्तादिष्वर्थेषुखो वा स्यात् । यथा-द्विरात्रीणः । द्वैरात्रिकः । द्व्यहीनः । द्वैयह्निकः । द्विसंवत्सरीणः । द्विसांवत्सरिकः ॥

द्वितीया समर्थ रात्रि अहन् और संवत्सर ये हैं अन्त में जिसके ऐसे द्विगुसे निर्वृत्तादि अर्थों में विकल्प से ख प्रत्यय हो ॥ ८७ ॥

वर्षाल्लुक्च ॥ ८८ ॥

वर्षात्, लुक्, च । वर्षान्ताद् द्विगोर्निर्वृत्तादिष्वर्थेषुखो वा स्यात् । पक्षे ठञ् वा च लुक्।यथा-द्विवर्षीणो व्याधिः।द्विवार्षिको बालः।द्विवर्षः॥

द्वितीया समर्थ वर्षान्त द्विगुसे निर्वृत्तादि अर्थों में विकल्प से ख प्रत्यय और पक्ष में ठञ् उसका विकल्प से लुक् हो ॥ ८८ ॥

चित्तवति नित्यम् ॥ ८९ ॥

१—(७ । ३ । १५) इत्युत्तरपदवृद्धिः ॥ २—(७ । ३ । १५) इत्युत्तरपदस्य वृद्धिः ॥

वर्षशब्दान्ताद् द्विगोः प्रत्ययस्य नित्यं लुक् स्यात्, चेतनेप्रत्ययार्थे । यथा-द्विवर्षो दारकः ॥

चेतन अभिधेय होतो द्वितीया समर्थ वर्षान्त द्विगुसे निर्वृत्तादि अर्थों में उत्पन्न प्रत्यय का नित्य लुक् हो ॥ ८९ ॥

षष्टिकाः षष्टिरात्रेणपच्यन्ते ॥ ९० ॥

षष्टिकशब्दो निपात्यते । यथा-षष्टिरात्रेण पच्यन्ते-षष्टिकाः । सञ्ज्ञैषा धानविशेषस्य ॥

तृतीया समर्थ से कन् प्रत्यय और रात्रशब्द का लोप निपातन किया है ॥ ९० ॥

वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि ॥ ९१ ॥

व०तं, छंः, छं०सि । छन्दसिविषये वत्सर न्तात् प्रातिपदिकान् निर्वृत्तादिष्वर्थेषु छः स्यात् । यथा-इद्वत्सरीयः ॥

वत्सरान्त प्रातिपदिक से छन्दोविषय होनेपर निर्वृत्तादि अर्थोंमें छ प्रत्यय हो॥९१॥

संपरिपूर्वात्खवश्च ॥ ९२ ॥

स०तं, खंः, चं । चाच्छः । संवत्सरीणः । संवत्सरीयः । परिवत्सरीणः । परिवत्सरीयः ॥

सम्, परिपूर्वक वत्सरान्त प्रातिपदिक से निर्वृत्तादि अर्थों में ख और छ प्रत्यय हो ॥ ९२ ॥

तेनपरिजय्यलभ्यकार्य्यसुकरम् ॥९३॥

कालवाचिनस्तृतीया समर्थात् प्रातिपदिकात् परिजय्यादिष्वर्थेषु

ठञ् स्यात् । यथा—मासेन परिजय्यो जेतुंशक्यः-मासिको व्याधिः । सांवत्सरिकः । मासेन लभ्यः मासिकःपटः । मासेनकार्य्यं मासिकं चान्द्रायणम् । मासेन सुकरो मासिकः प्रसादः ॥

तृतीयासमर्थ काल वाचक प्रातिपदिक से परिजय्य, लभ्य, कार्य्य और सुकर अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ९३ ॥

तदस्य ब्रह्मचर्य्यम् ॥ ९४ ॥

तद्, अस्य, ब्र०म् । द्वितीयान्तात् कालवाचिनोऽस्येत्यर्थे ठञ् स्याद् ब्रह्मचर्य्येगम्ये । अत्यन्त संयोगे द्वितीया । यथा—मासं ब्रह्मचर्य्य मस्य—समासिको ब्रह्मचारी । सांवत्सरिकः । यद्वा प्रथमान्ता दस्ये त्यर्थे प्रत्ययः । मासोऽस्येति—मासिकं ब्रह्मचर्य्यम् ॥ (महानाम्नादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यउपसङ्ख्यानम्) ॥ महानाम्न्यो नाम "विदामघवन्" इत्याद्या ऋचः । तासां ब्रह्मचर्य्यमस्य—महानामिकः ॥ (अष्टाचत्वारिंशतोड्वुंश्चडिनिश्च वाच्यम्) ॥ अष्टाचत्वरिंशद् वर्षाणि व्रतं चरति—अष्टाचत्वारिंशकः । अष्टाचत्वारिंशी ॥ (चातुर्मास्यानांयलोपश्चड्वुंश्च डिनिश्च वाच्यम्) ॥ चातुर्मास्यानिचरति-चातुर्मासकः । चातुर्मासी ॥ (चतुर्मासाण् णो यज्ञे तत्र भव इत्यर्थे) ॥ चतुर्षु मासेषु भवानि-चातुर्मास्यानि ॥ (सञ्ज्ञायामण्वाच्यः) ॥ चतुर्षु मासेषु भवा-चातुर्मासी । पौर्णमासी । आषाढी । कार्त्तिकी । फाल्गुनी ॥

ब्रह्मचर्य्य गम्यमान हो तो द्वितीयासमर्थ कालवाचक प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ९४ ॥

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ॥ ९५ ॥

षष्ठी समर्थेभ्यो यज्ञाख्येभ्यो दक्षिणेत्यर्थे ठञ् स्यात् । यथा—अग्निष्टोमस्य दक्षिणा-आग्निष्टोमिकी। वाजपेयकी। राजसूयकी ॥

षष्ठिसमर्थ यज्ञाख्य प्रातिपदिकों से दक्षिणा इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ।।९५।।

तत्र च दीयते कार्य्यं भववत् ॥९६॥

कालवाचिनः सप्तमी समर्थाद् दीयते कार्य्यं चेत्यर्थे भववत् प्रत्ययः स्यात् । यथा—प्रावृषि-दीयते,कार्य्यं वा-प्रावृषेण्यम् । शारदम् ॥ *

सप्तमीसमर्थ काल वाचक प्रातिपदिक से दीयते और कार्य्य इस अर्थ में भववत् प्रत्यय हो ॥ ९६ ॥

व्युष्टादिभ्योऽण् ॥९७ ॥

व्यु० भ्यः, अण् । व्युष्टादिभ्यः सप्तमी समर्थेभ्योदीयते कार्य्यं चेत्यर्थेऽण् स्यात् । यथा—व्युष्टे—दीयते, कार्य्यं वा—वैयुष्टम् । नैत्यम् ॥

सप्तमी समर्थ व्युष्ट (प्रभात) आदि प्रातिपदिकों से ' दीयते, और कार्य्य अर्थ में अण् प्रत्ययहो ॥ ९७ ॥

तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ ९८

तृतीया समर्थभ्यां यथाकथाच हस्तशब्दाभ्यां यथासङ्ख्यं णयतौ स्याताम् , दीयते, कार्य्यं चेत्यर्थे। यथा कथाच—दीयते. कार्य्यं वा, याथाकथाचम् । अनादरेणदेयं, कार्य्यं वेत्यर्थः । हस्तेन—दीयते, कार्य्यं वा, हस्त्यम् ॥

तृतीया समर्थ यथाकथाच और हस्त शब्द से दीयते और कार्य्य अर्थ में यथा सङ्ख्य ण और यत् प्रत्ययहो !! ९८ ॥

* कालाधिकारस्य पूर्णोऽवधिः ॥

सम्पादिनि ॥ ९९ ॥

तृतीया समर्थात् सम्पादिन्यभिधेये ठञ् स्यात्। यथा—कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि-कार्णवेष्टकिकम् मुखम्। कर्णालङ्काराभ्या मवश्यं शोभते, इत्यर्थः ॥

सम्पादी वाच्य होतो तृतीया समर्थ शब्द से इनि प्रत्ययहो ॥ ९९ ॥

कर्म्मवेषाद्यत् ॥१००॥

क० तं, यत्। आभ्यां तृतीया समर्थाभ्यां सम्पादिनीत्यर्थे यत् स्यात्। यथा—कर्मणा सम्पादि—कर्म्मण्यं—शौर्यम्। वेषेण सम्पादी वेष्यः--नटः।

तृतीया समर्थ कर्म और वेष (कृत्रिम आकार) शब्द से सम्पादी अर्थ में यत् प्रत्ययहो । १०० ॥

तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः

सन्तापादिभ्यश्चतुर्थी समर्थेभ्यः प्रभवतीत्यर्थे ठञ् स्यात्। यथा—सन्तापाय प्रभवति--सांतापिकं दुर्जनसङ्गतं वै। सान्तापिको ग्रीष्म कालः। सान्तापिकी नीचसेवा ॥

चतुर्थी समर्थ सन्तापादि प्रातिपदिक से प्रभवति (समर्थ) इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

योगाद्य ॥१०२ ॥

यो० तं, यत्, चा०। योगाय प्रभवति--योग्यः। यौगिकः।

चतुर्थी समर्थ योग शब्द से यत् प्रत्ययहो और चकार से ठञ् भी हो॥१०२॥

कर्म्मण उकञ् ॥१०३॥

कर्मणः, उकञ् ।यथा--कर्म्मणे प्रभवति- कार्मुकं धनुः ॥

चतुर्थी समर्थ कर्मन् शब्द से प्रभवति इस अर्थ में उकञ् प्रत्ययहो ॥ १०३ ॥

समयस्तदस्य प्राप्तम् ॥१०४॥

समयः, तत्, अस्य, प्राप्तम् । प्रथमा समर्थात्समय शब्दात् षष्ठ्यर्थे ठञ् स्यात् । यत्तत् प्रथमा समर्थ प्राप्तं चेत् स्यात् । यथा- समयः प्राप्तोऽस्य--सामयिकं कार्य्यम् ॥

प्राप्त समानाधि करण प्रथमा समर्थ समय शब्द से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्ययहो ॥

ऋतोरण् ॥ १०५ ॥

ऋतोः, अण् । ऋतु-प्राप्तोऽस्य-आर्त्तवम्पुष्पम् ॥

प्राप्त समानाधिकरण प्रथमासमर्थ ऋतु शब्द से षष्ठ्यर्थ में अण् प्रत्यय हो १०५

छन्दसि घस् ॥ १०६ ॥

ऋतुशब्दाच्छन्दसि विषये घस् स्यात् तदस्य प्राप्तमित्यर्थे । यथा—ऋत्वियः ॥

छन्दोविषय में प्राप्त समानाधिकरण प्रथमा समर्थ ऋतु शब्द से षष्ठ्यर्थ में घस् प्रत्यय हो ॥ १०६ ॥

कालाद्यत् ॥ १०७ ॥

कालात्, यत् । कालशब्दाद्यत् स्यात्तदस्य प्राप्तमित्यर्थे ।यथा—कालः प्राप्तोऽस्य—काल्यं शीतम् । काल्यस्तापः ॥

प्राप्त समानाधिकरण प्रथमासमर्थ कालशब्द से षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय हो १०७

प्रकृष्टे ठञ् ॥ १०८ ॥

प्रकर्षे वर्त्तमानात् कालात् प्रथमा समर्थात् षष्ठ्यर्थे ठञ् स्यात् । यथा—प्रकृष्टो-दीर्घः कालोऽस्येति-कालिकं वैरम् । कालिकमृणम् ॥

प्रकर्ष में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ कालशब्द से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ।१०८।

प्रयोजनम् ॥ १०९ ॥

प्रथमासमर्थात् षष्ठ्यर्थे ठञ् स्यात्, यत्तत् प्रथमासमर्थ प्रयोजनं चेत् भवेत् । यथा—इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य-ऐन्द्रमहिकम् ॥

प्रयोजन समानाधिकरण प्रथमासमर्थ शब्द से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय हो १०९

विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः॥११०॥

वि०तं, अण्, मं०योः । आभ्यामण् स्यात् प्रयोजनमित्यर्थे-क्रमान्मन्थदण्डयोरर्थयोः । यथा--विशाखा प्रयोजनमस्य--वैशाखः--मन्थः । आषाढः--दण्डः ॥ (चूडादिभ्यउपसङ्ख्यानम्)॥

चूडाप्रयोजनमस्य--चौडम् ।श्रद्धाप्रयोजनमस्य--श्राद्धम् ।

यथासङ्ख्य मन्थ (मथनी) और दण्ड (मथनी) वाच्य होंतो प्रयोजन समानाधिकरण प्रथमा समर्थ विशाखा और आषाढा शब्दसे षष्ठ्यर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥ १११ ॥

अ०भ्यः, छः । अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य--अनुप्रवचनीयम् ॥

प्रयोजन समानाधिकरण प्रथमा समर्थ अनुवचनादि शब्दों से षष्ठ्यर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

समापनात् सपूर्वपदात् ॥ ११२ ॥

प्रयोजनमित्यर्थे छः स्यात् । यथा--व्याकरणसमापनं प्रयोजनमस्य--व्याकरणसमापनीयम् । न्यायसमापनीयम् ॥

प्रयोजन समानाधिकरण प्रथमा समर्थ सपूर्वपद समापन शब्दसे षष्ठ्यर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

ऐकागारिकट् चौरे ॥ ११३ ॥

ऐकागारिकट् इतिनिपात्यतेचौरेऽभिधेये । यथा--एकागारं प्रयोजनमस्य--ऐकागारिकः--चौरः । ऐकागारिकी ॥

चौर (चोर) वाच्य हो तो प्रयोजन अर्थ में ऐकागारिकट् शब्द निपातित है

आकालिकडाद्यन्तवचने ॥ ११४ ॥

आ० ई, आँ० ने । आद्यन्तवचने आकालिकड् इतिनिपात्यते । यथा--समानकालौ आद्यन्तौ यस्येति-आकालिकः । समानकालस्य आकालादेशः । आशु विनाशिनीत्यर्थः ॥ (आकालाट्ठंश्च) आकालिका विद्युत् ॥ *

आद्यन्त वचन में तदस्य प्रयोजन इस विषय के होनेपर आकालिक यह शब्द निपातित है ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः ॥ ११५ ॥

तृतीयासमर्थात्तुल्यमित्यर्थे वतिः स्यात् । यत्तुल्यं क्रिया चेत् सा भवेत् । यथा--ब्राह्मणेन तुल्यम्--ब्राह्मणवद्--अधीतेऽसौ ॥

तृतीया समर्थ शब्दसे क्रिया समानाधिकरण तुल्य अर्थ में वति प्रत्ययहो ॥

* इतो पूर्णोऽवधि ॥

तत्र तस्येव ॥ ११६ ॥

तत्र, तस्य, इव । सप्तमी समर्थात् षष्ठी समर्थाच्च वतिः स्यात्। यथा--मथुरायामिव--मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः। चैत्रस्येव चैत्रवत्--मैत्रस्य गावः

सप्तमी तथा षष्ठी समर्थ शब्दसे इवार्थ में वति प्रत्ययहो ॥ ११६ ॥

तदर्हम् ॥ ११७ ॥

तद्, अर्हति । द्वितीया समर्थादर्हतीत्यर्थेवतिः स्यात् । यथा--विधिमर्हति--विधिवत् ॥

द्वितीया समर्थ शब्दसे अर्ह इस अर्थमें वति प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

उपसर्गाच्छन्दसिधात्वर्थे ॥ ११८ ॥

धात्वर्थविशिष्टे साधने वर्त्तमानात्स्वार्थेवतिः स्यात्। यदुद्वतोनिवतः । उद्गतान्निर्गतानित्यर्थः ॥

धात्वर्थ में वर्त्तमान सोपसर्ग से छन्दोविषय होनेपर स्वार्थ में वति प्रत्यय हो ११८

तस्यभावस्त्वतलौ ॥ ११९ ॥

तस्य, भावः, त्वतलौ । षष्ठी समर्थाद्भाव इत्यर्थे त्वतलौ स्याताम् । प्रकृतिजन्यबोधेप्रकारो भावः। यथा--गोर्भावः--गोत्वम् । गोता । त्वान्तं क्लीबम् । तलन्तं स्त्रियाम् ॥

षष्ठी समर्थ शब्दसे भाव अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

आ च त्वात् ॥ १२० ॥

(ब्रह्मणस्त्वः) इत्यतः प्राक्त्वतलावधिक्रियेते ॥

ब्रह्मणस्त्वः (५ । १ । १३६) इससूत्र पर्यन्त त्व और तल् प्रत्यय का अधिकार है ॥ १२० ॥

न नञ् पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसंगत-लवणावटयुधकतरसलसेभ्यः १२१

न, न०त्, त०त्, अ०भ्यः । इतऽपरं ये भावप्रत्ययास्ते नञ् तत्पुरुषान्नस्युश्चतुरादीन् विहाय । यथा—अपतित्वम् । अपटुत्वम् ॥

चतुर, संगत, लवण वट युध, कत, रस, लस शब्दों को छोड़कर नञ्पूर्व तत्पुरुष से यहां से आगे विहित भाव प्रत्यय न हों ॥ १२१ ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ १२२ ॥

पृ० भ्यः, इ०च्, वा । वावचनम् अणादि समावेशार्थम् । यथा—पृथोर्भावः-प्रथिमा । पार्थवम् । म्रदिमा । मार्दवम् ॥

षष्ठीसमर्थ पृथ्वादि शब्दों से भाव में विकल्प से इमनिच् प्रत्यय हो ॥१२२॥

वर्णदृढादिभ्य ष्यञ्च ॥ १२३ ॥

व० भ्यः, ष्यञ्, च । चादिमनिच् । यथा—शुक्लस्य भावः—शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । शुक्लत्वम् । शुक्लता । दार्ढ्यम् । द्रढिमा । दृढत्वम् । दृढता ॥

षष्ठीसमर्थ वर्ण विशेष वाचक और दृढादि शब्दों से भाव में ष्यञ् और इमनिच् प्रत्यय हो ॥ १२३ ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च १२४

१-(६ । ४ । १६१) इति ऋकारस्य रः ॥ [६ । ४ । १५५] इति भस्य टेर्लोपः ॥

चाद् भावे । यथा—जडस्य भावः कर्म वा-जाड्यम् । मूढस्य भावः कर्म वा--मौढ्यम् । ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा--ब्राह्मण्यम् ॥ (अर्हतो नुम् च) ॥ अर्हतो भावः कर्म वा--आर्हन्त्यम् । आर्हन्ती । (चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसङ्ख्यानम्) ॥ चत्वार एव वर्णाः-चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रम्यम् । त्रैस्वर्यम् । षाड्गुण्यम् । सैन्यम् । सान्निध्यम् । सामीप्यम् । औपम्यम् ! त्रैलोक्यमित्यादि । सर्वे वेदाः-सर्ववेदाः । तानधीतेऽसौ-सार्ववैद्यः । (चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च) ॥ चतुरो वेदानधीते—चतुर्वेदः । सएव-चातुर्वैद्यः ॥

भाव और कर्मवाच्य हो तो षष्ठीसमर्थ गुण वचन और ब्राह्मणादि शब्दों से ष्यञ् प्रत्यय हो ॥ १२४ ॥

स्तेनाद्यन्नलोपश्च ॥ १२५ ॥

स्ते० तं, यत्, न० पः, च । स्तेन शब्दात् षष्ठी समर्थाद् भावकर्म्मणो यत् स्यात् नकारस्य च लोपः । स्तेन चौर्ये पचाद्यच् । यथा—स्तेनस्य भावः, कर्म वा, स्तेयम् । स्तेनाद् इति सूत्रं विभज्य--स्तैन्यमितिष्यञन्तमपि केचिदिच्छन्ति ॥

षष्ठी समर्थ स्तेन शब्द से भाव और कर्म में यत् प्रत्यय और स्तेन शब्द के नकार का लोप हो ॥ १२५ ॥

सख्युर्यः ॥ १२६ ॥

सख्युः, यः । यथा -सख्युर्भावः कर्म वा--सख्यम् ॥

षष्ठी समर्थ सखि शब्द से भाव और कर्म में य प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

कपिज्ञात्योर्ढक् ॥ १२७ ॥

क०त्योः,ढक् । अभ्यां भावकर्मणोरर्थयोर्ढक् स्यात् । यथा--कपेर्भावः कर्म्म वा--कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥

षष्ठी समर्थ कपि और ज्ञाति शब्द से भाव और कर्म में ढक् प्रत्यय हो ॥१२७॥

पत्यन्त पुरोहितादिभ्योयक् ॥१२८॥

प०भ्यः, यक् । पत्यन्तात् प्रातिपदिकात् पुरोहितादिभ्यश्च भावकर्मणो रर्थयोर्यक् स्यात् । यथा—सेनापतेर्भावः कर्म वा-सैनापत्यम् । प्राजापत्यम् । पौरोहित्यम् । राज्यम् ॥

षष्ठी समर्थ पत्यन्त और पुरोहितादि प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में यक् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ॥ १२६ ॥

प्रा०भ्यः, अञ् । यथा--अश्वस्य- भावः कर्म्म वा आश्वम् । औष्ट्रम् । वयोवचनेभ्यः । कौमारम् । कैशोरम् । उदगात्रादिभ्यः । औद्गात्रम् । औन्नेत्रम् ॥

षष्ठीसमर्थ प्राणभृज्जाति वाचक, वयोवचन और उद्गात्रादि शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १२९ ॥

हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ॥ १३० ॥

हा०भ्यः,अण् । हायनान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यःयुवादिभ्यश्चाण् स्याद् भाव कर्म्मणोरर्थयोः । द्विहायनस्य भावः कर्म वा-द्वैहायनम् । त्रैहायनम् । युवादिभ्यः । यूनोभावः, कर्म्म वा-यौवनम् । स्थाविरम् ॥ (श्रोत्रियस्य यलोपश्च) ॥ श्रोत्रियस्य भावः, कर्म वा-श्रौत्रम् ॥

षष्ठी समर्थ हायनान्त और युवन् आदि शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥१३०॥

इगन्ताच्चलघुपूर्वात् ॥ १३१ ॥

इ०तं, च, ल०तं। भावकर्मणो रिगन्ताच्च लघुपूर्वादण् स्यात्। यथा-लघुःपूर्वोऽवयवोऽस्येति-लघुपूर्वः। शुचेर्भावः, कर्म वा-शौचम्। मौनम्॥

षष्ठी समर्थ लघुपूर्वक इगन्त प्रातिपदिक से भाव और कर्म में अण् प्रत्यय हो

योपधाद् गुरुपोत्तमाद् वुञ् ॥ १३२ ॥

यो० तं, गु०तं, वुञ्। यथा-रमणीयस्य भावः कर्मवा-रामणीयकम्। आभिधानीयकम्॥ (सहायाद्वा)॥साहाय्यम्। साहायकम्॥

यकारोपध गुरु पोत्तम शब्द से भाव और कर्म में वुञ् प्रत्यय हो ॥ १३२ ॥

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ॥ १३३ ॥

द्व०भ्यः, च। भावकर्मणोर्द्वन्द्वसञ्ज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च वुञ् स्यात्। यथा-शिष्योपाध्यायानाम् भावः कर्मवा-शैष्योपाध्यायिका। मनोजानाति परितोषयतीति मनोज्ञं वस्तु। तस्य भावः, कर्म वा-मनोज्ञकम्॥

षष्ठी समर्थ द्वन्द्व संज्ञक और मनोज्ञादि शब्दों से भाव और कर्म में वुञ् प्रत्यय हो

गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु

गो०तं, श्ला०षु। गोत्र वाचिनश्चरणवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् वुञ् स्यात् भावकर्मणोरर्थयोः श्लाघादिषु विषयभूतेषु। यथा-श्लाघा-विकत्थनम् अत्याकारः पराधि क्षेपः। तदवेतस्तत् प्राप्तस्तज्ज्ञो वा।

गार्गिकया श्लाघते। गार्ग्यत्वेन विकत्थत इत्यर्थः। गार्गिकयाऽत्या कुरुते। गार्ग्यत्वेन नधि क्षिपतीत्यर्थः। गार्गिकामवेत्तः। गार्ग्यत्वं प्राप्त इत्यर्थः॥

श्लाघा, अत्याकार तदवेत विषयभूत हों तो षष्ठीसमर्थ गोत्र और चरणवाचक प्रातिपदिक से भाव और कर्ममें वुञ् प्रत्यय हो॥ १३४॥

होत्राभ्यश्छः॥ १३५॥

हो॰भ्यः, छः। होत्रशब्दः ऋत्विग्वाची। ऋत्विग् विशेषवाचिभ्यश्छः स्यात्। यथा—अच्छावाकस्य भावः कर्म वा—अच्छावाकीयम्। मैत्रावरुणीयम्॥

षष्ठी समर्थ ऋत्विग्विशेष वाचक शब्दोंसे भाव और कर्म में छ प्रत्यय हो॥ १३५॥

ब्रह्मणस्त्वः॥ १३६॥

ब्र॰णः, त्वः। ब्रह्मन् शब्दात् होत्रावाचिनस्त्वः स्यात् भावकर्मणोः। यथा—ब्रह्मणो भावः कर्म वा—ब्रह्मत्वम्॥

षष्ठी समर्थ होत्रवाचक ब्रह्मन् शब्दसे भाव और कर्म में त्व प्रत्यय हो॥ १३६॥

इति पञ्चमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः॥

अथ पञ्चमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः॥

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्॥ १॥

भवने क्षेत्रेऽभिधेये धान्यविशेषवाचिभ्यःषष्ठीसमर्थेभ्यः खञ् स्यात्। यथा—भवन्ति जायन्तेऽस्मिन्निति भवनम्। मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्—मौद्गीनम्॥

षष्ठीसमर्थ धान्य विशेष वाचक शब्दों से भवन क्षेत्र वाच्य होनेपर खञ् प्रत्यय हो

व्रीहिशाल्योर्ढक् ॥ २ ॥

व्री० ल्योः, ढक् । यथा–व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम् व्रैहेयम् । शालेयम् ॥
भवन क्षेत्र वाच्य हो तो षष्ठी समर्थ व्रीहि और शालि शब्द से ढक् प्रत्यय हो

यवयवकषष्टिकाद्यत् ॥ ३ ॥

य० त्, यत् । यथा–यवानां भवनं क्षेत्रम् यव्यम् । यवक्यम् । षष्टिक्यम् ॥

भवन क्षेत्र वाच्य हो तो षष्ठी समर्थ यव यवक (जौ) और षष्टिक शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ॥ ३ ॥

विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ॥ ४ ॥

वि० षा, ति० भ्यः । एभ्यो यद् वा स्याद् भवने क्षेत्रेऽभिधेये पक्षे खञ् । यथा–तिलस्य भवनं क्षेत्रं तिल्यम् । तैलीनम् । माष्यम् । माषीणम् । उम्यम् । औमीनम् । भङ्ग्यम् । भाङ्गीनम् । अणव्यम् । आणवीनम् ॥

भवन क्षेत्रवाच्य होतो षष्ठी समर्थ तिल, माष (उर्द) उमा (हल्दी) भङ्गा (सन) और अणु (कङ्गुनी) शब्दसे विकल्प करके यत् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

सर्वचर्म्मणः कृतः खखञौ ॥ ५ ॥

यथा–सर्वचर्म्मणा कृतः–सर्वचर्म्मीणः । सार्वचर्मीणः ॥

तृतीया समर्थ सर्वचर्मन् शब्दसे कृत् अर्थ में ख और खञ् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः ॥ ६ ॥

मुखस्यसदृशम्–यथामुखम्–प्रतिबिम्बम्। निपातनात् सादृश्येऽव्ययीभावः। समंसर्वं मुखं सम्मुखम्। समशब्दस्यान्तलोपो निपात्यते। यथामुखंदर्शनः–यथामुखीनः। सर्वस्य मुखस्य दर्शनः–सम्मुखीनः॥

षष्ठी समर्थ यथामुख और सम्मुख शब्दसे दर्शन अर्थ में ख प्रत्यय हो॥ ६॥

तत्सर्वादेःपथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रंव्याप्नोति ७

तत्, सं०देः, प०त्रम्, व्या०ति। सर्वादेः पथ्याद्यन्ताद् द्वितीयान्तात् खः स्यात्। यथा--सर्वपथान् व्याप्नोति--सर्वपथीनोरथः। सर्वाङ्गीणस्तापः। सर्वकर्मीणः पुरुषः। सर्वपत्रीणः सारथिः। सर्वपात्रीणमोदनम्॥

पथिन् अङ्ग कर्म्मन् पत्र और पात्र हैं अन्त में जिस के ऐसे सर्वादि प्रातिपदिक से व्याप्नोति इस अर्थ में ख प्रत्यय हो॥ ७॥

आप्रपदं प्राप्नोति॥ ८॥

द्वितीया समर्थादाप्रपदशब्दात्प्राप्नोतीत्यर्थे खः स्यात्। तथा--पादस्याग्रम्--प्रपदम्। तन्मर्यादीकृत्य--आप्रपदम्। आप्रपदीनःपटः

द्वितीयासमर्थ आप्रपद शब्द से प्राप्नोति इस अर्थ में ख प्रत्यय हो॥ ८॥

अनुपदसर्वान्नायानयंबद्धाभक्षयतिनेयेषु॥ ९॥

अनुपदादिभ्यो बद्धादिष्वर्थेषु यथासङ्ख्यं खः स्यात्। अनुः--आयामे, सादृश्येच। यथा--अनुपदं बद्धा- अनुपदीना--उपानत्।

सर्वान्नानि भक्षयति-सर्वान्नीनः-भिक्षुः अयानयः। स्थलविशेषः। तन्नेयः अयानयीनः शारः॥

द्वितीयासमर्थ अनुपद सर्वान्न और अयानय शब्द से यथाक्रम बद्धा भक्षयति और नेय अर्थ में ख प्रत्यय हो॥ ९॥

परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति॥ १०॥

प० त्रम्, अ० ति। परोवरादिभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्योऽनु भवतीत्यर्थे खः स्यात्। यथा—परांश्च अवरांश्च अनुभवति-परोवरीणः। अवरस्योत्वं निपात्यते। परांश्च परतरांश्च अनुभवति-परम्परीणः। प्रकृतेः परम्परभावो निपात्यते। पुत्रपौत्राननुभवति-पुत्रपौत्रीणः॥

द्वितीयासमर्थ परोवर परम्पर पुत्र पौत्र शब्द से अनुभवति इस अर्थ में ख प्रत्यय हो।

अवारपारात्यन्तानुकामंगामी॥ ११॥

अवारपार अत्यन्त अनुकाम इत्येभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यो गामीत्यर्थे खः स्यात्। यथा—गमिष्यतीति—गामी। अवारपारं गामी—अवारपारीणः। (विपरीताच्च)॥ पारावारीणः। (विगृहीतादपीष्यते)॥ अवारीणः। पारीणः। अत्यन्तगामी—अत्यन्तीनः। भृशंगन्तेत्यर्थः। अनुकामंगामी—अनुकामीनः। यथेष्टं गन्तेत्यर्थः॥

गामी अर्थ में द्वितीया समर्थ अवापार अत्यन्त और अनुकाम शब्दसे ख प्रत्यय हो॥ ११

समांसमां विजायते॥ १२॥

यलोपः अवशिष्टविभक्तेः, अलुक्च पूर्वपदे निपात्यते। यथा—समायां समायां विजायते—समांसमीना गौः। समां समीना—सा यैव प्रतिवर्षं प्रसूयते॥

विजायते (गर्भ धारण करने) अर्थ में द्वितीया समर्थ समां समां शब्दसे ख प्रत्यय हो॥

अद्यश्वीनावष्टब्धे ॥ १३ ॥

अ०नो, अं०ब्धे।अद्यश्वीन इति निपात्यते अवष्टब्धे।यथा- अद्य, श्वो वा विजायेत-अद्यश्वीना-वडवा। केचित्तु विजायेत इति नानुवर्त्तयन्ति। अद्यश्वीनं मरणम् ॥

अवष्टब्ध (आसन्नप्रसव) होतो अद्य श्वस् शब्दसे ख प्रत्ययान्त अद्यश्वीना शब्द निपातित है ॥ १३ ॥

आगवीनः ॥ १४॥

आङ्पूर्वाद्गोः कर्म्मकरे खप्रत्ययो निपात्यते। गोः प्रत्यर्पणपर्य्यन्तयः कर्म्मकरोति सः-आगवीनः ॥

कर्मकारी वाच्य होतो आङ्पूर्वक गोशब्द से ख प्रत्ययान्त आगवीन (गौओं का चरवाहा) शब्द निपातित है ॥ १४ ॥

अनुग्वलंगामी ॥ १५ ॥

अ०गु०अ०मी। अनुगुशब्दादलंगामीत्यर्थे खः स्यात्। अनुगु गोः पश्चात् पर्य्याप्तं गच्छति-अनुगवीनः-गोपालः ॥

अलंगामी अर्थ में अनुगु शब्दसे ख प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

अध्वनोयत्खौ ॥ १६

अ०नः य०खौ। अध्वन् शब्दात् द्वितीयासमर्थादलं गामीत्यर्थे यत्खौ स्याताम्। यथा--अध्वानमलं गच्छति--अध्वन्यः। अध्वनीनः। येचाऽभाव कर्मणोः, आत्माऽध्वानौखे, इत्याभ्यांप्रकृतिभावः॥

अलंगामी इस अर्थ में द्वितीया समर्थ अध्वन् शब्दसे यत् और ख प्रत्यय हो ॥१६॥

अभ्यमित्राच्छश्च ॥ १७ ॥

अ० तृ०, छः, च । अभ्यमित्रशब्दात् द्वितीयासमर्थादलं गामीत्यर्थे छः स्याच्चाद्यत्खौ । यथा--अभ्यमित्रीयः । अभ्यमित्र्यः । अभ्यमित्रीणः । अमित्राऽभिमुखं सुष्ठु गच्छतीत्यर्थः ॥

अलंगामी इस अर्थ में द्वितीया समर्थ अभ्यमित्र (शत्रु) शब्दसे छ, यत्, और ख प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे ॥ १८ ॥

गावस्तिष्ठन्त्यत्र गोष्ठम् । भूतपूर्वोपाधिकाद् गोष्ठशब्दात्स्वार्थे खञ् स्यात् । यथा—गोष्ठोभूतपूर्वः-गौष्ठीनः-देशः ॥

भूतपूर्वोपाधिक गोष्ठ शब्द से खञ् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

अश्वस्यैकाहगमः ॥ १९ ॥

अ० स्य, ए० मः । अश्वशब्दात् षष्ठी समर्थादेकाहगम इत्यर्थे खञ्स्यात् । यथा—एकाहेनगम्यते इति-एकाहगमः-आश्वीनः-अध्वा ॥

षष्ठी समर्थ अश्व शब्द से एकाहगम इस अर्थ में खञ् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः २०

शालीनकौपीनशब्दौ यथासङ्ख्यमधृष्टेऽकार्ये चाभिधेये निपात्येते । यथा—शाला प्रवेशमर्हति-शालीनः-अधृष्टः । कूपपतनमर्हति-कौपीनं-पापम् ॥

यथाक्रम अधृष्ट और अकार्य्य वाच्य हो तो खञ् प्रत्ययान्त शालीन और कौपीन शब्द निपातित हैं ॥ २० ॥

व्रातेन जीवति ॥ २१ ॥

यथा—व्रातेन जीवति--व्रातीनः ॥

तृतीया समर्थ व्रात (समूह) शब्द से जीवति अर्थ में खञ् प्रत्यय हो ॥२१॥

साप्तपदीनं सख्यम् ॥ २२ ॥

सख्येऽभिधेये साप्तपदीन मिति निपात्यते । यथा—सप्तभिः पदैर वाप्यते साप्तपदीनम् ॥

सख्य (मित्रता) वाच्य हो तो सप्तपद शब्दसे खञ् प्रत्ययान्त साप्तपदीन शब्द निपातित है ॥ २२ ॥

हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम् ॥ २३ ॥

संज्ञायां विषये हैयङ्गवीन मिति निपात्यते । यथा—हैयङ्गवीनम्-नवनीतम् ॥

संज्ञाविषय में हैयङ्गवीन शब्द निपातित है ॥ २३ ॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब् जाहचौ ॥ २४ ॥

पीलूनां वृक्षाणां फलानां वा पाकः-पीलुकुणः । कर्णस्य मूलम्-कर्णजाहम् ॥

षष्ठीसमर्थ पील्वादि और कर्णादि शब्दों से यथाक्रम पाक और मूल अर्थ में यथाक्रम कुणप् और जाहच् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

पक्षात्तिः ॥ २५ ॥

षष्ठीसमर्थात्पक्षशब्दान् मूलेऽभिधेयेतिः स्यात् । यथा—पक्षस्य मूलम्—पक्षतिः-प्रतिपद् ॥

षष्ठीसमर्थ पक्ष शब्द से मूल अर्थ में ति प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ॥ २६ ॥

तेन, वित्तः, चु० पौ । तृतीयासमर्थाद् वित्त इत्यर्थे चुञ्चुप् चणपौ स्याताम् । यथा—वित्तः प्रतीतो ज्ञात इत्यर्थः । विद्यया वित्तः-विद्याचुञ्चुः । विद्याचणः ॥

तृतीयासमर्थ शब्द से वित्त अर्थ में चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

विनञ्भ्यां नानाञौ न सह ॥२७॥

असहार्थे पृथग्भावे वर्त्तमानाभ्यां विनञ्भ्यां स्वार्थे नानाञौ स्याताम् । यथा—विना । नाना ॥

असहार्थ में वर्त्तमान वि और नञ् शब्द से स्वार्थ में यथाक्रम ना और नञ् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

वेः शालच्छङ्कटचौ ॥२८॥

विशब्दाच् शालच् शङ्कटच् इती मौ स्याताम् । क्रिया विशिष्ट साधन वाचकात् स्वार्थे । यथा—विस्तृतम् । विशालम् । विशङ्कटम् ॥

वि उपसर्ग पूर्वक स्वार्थ में शालच् और शङ्कटच् प्रत्ययहो ॥ २८ ॥

सम्प्रोदश्च कटच् ॥२९॥

सम्प्रोदः, च, कटच् । सम्, प्र, उद् इत्येभ्यः कटच् स्यात् । यथा—सङ्कटम् । प्रकटम् । उत्कटम् । चाद् विकटम् ॥ (अलाबूतिलोमा

मङ्गाभ्यो रजस्युपसङ्ख्यानम्) ॥ अलाबूनां रजः-अलाबूकटः । तिलकटः । उमाकटः । भङ्गकटः ॥ (गोष्ठादयः स्थानादिषु पशुनामादिभ्य उपसङ्ख्यानम्) ॥ गवां स्थानां-गोगोष्ठम् ॥ (सङ्घाते कटच्) ॥ अवीनां सङ्घातः- अविकटः ॥ (विस्तारे पटच्) ॥ आविपटः ॥ (द्वित्वेगोयुगच्) ॥ द्वावुष्ट्रौ-उष्ट्रगोयुगम् ॥ (षट्त्वेषड्गवच्) हस्तिषड्गवम् ! (स्नेहेतैलच्) । तिलतैलम् । सर्षपतैलम् । (भवने क्षेत्रे शाकट शाकिनौ) ॥ इक्षुशाकटम् । इक्षुशाकिनम् ॥

सम् प्र, उद् और वि शब्दसे कटच् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

अवात्कुटारच्च ॥ ३० ॥

अवात्, कु०च्, च । चात्कटच् । यथा-अवाचीनः--अवकुटारः । अवकटः ॥

अव शब्दसे कुटारच् और कटच् प्रत्यय हो ॥ ३० ॥

नतेनासिकायाः सञ्ज्ञायांटीटञ् नाटज् भ्रटचः ॥ ३१ ॥

नासिकायाः सम्बन्धिनि नतेऽभिधेयेटीटच्, नाटच् भ्रटच् इतीमे प्रत्ययाः स्युः सञ्ज्ञायां विषये । नमनम -नतम् । यथा--नासिकायां नतम्- अवटीटम् । अवनाटम् । अवभ्रटम् । तद्योगान्नासिका--अवटीटा । पुरुषोऽवटीटः ॥

नासिका सम्बन्धिनत वाच्य होतो संज्ञा विषय में अव शब्दसे टीटच्, नाटच् और भ्रटच् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

नेर्बिडज्बिरीसचौ ॥ ३२ ॥

ने ।, बि०चौ । निशब्दान्नासिकाया नतेऽभिधेये बिडच् बिरीसच् इतीमौ स्यातां सञ्ज्ञायां विषये । यथा--निबिडम् । निबिरीसम् । तद्योगान्नासिकापि । पुरुषोऽपि निबिडो निबिरीसः ॥

नासिका सम्बन्धि नत वाच्य हो तो सञ्ज्ञा विषय में निशब्द से बिडच् और बिरीसच् प्रत्ययहो ॥ ३२ ॥

इनच्पिटच्चिकचि च ॥ ३३ ॥

इनच्, पिटच्, चिक, चि, च । निशब्दान्नासिकायानतेऽभिधेये इनच् पिटच् इतीमौ प्रत्ययौ स्यातां तत्सन्नियोगेन च निशब्दस्य यथाक्रमं चिकचि इत्येतावादेशौ स्याताम् यथा-चिकिनः चिपिटः (क प्रत्ययचिकादेशौ च वक्तव्यौ)॥ चिक्कः ॥ (क्लिन्नस्य चिल्पिल् लश्चाऽस्य चक्षुषी) ॥ क्लिन्ने चक्षुषी यस्य चिल्लः, पिल्लः ॥ (चुल्च) ॥ चुल्लः ॥

नासिका सम्बन्धि नत वाच्य होतो सञ्ज्ञाविषय में नि शब्द से इनच् और पिटच् प्रत्यय हो ॥ ३३ ॥

उपाधिभ्यांत्यकन्नासन्नाऽरूढयोः

उ०भ्याम्, त्यकन्,आ०योः । संज्ञायां विषये उप आधि इत्याभ्यां यथासङ्ख्यमासन्नारूढयोर्वर्त्तमानाभ्यां स्वार्थेत्यकन् स्यात् यथा-पर्वतस्याऽसन्नं स्थलम्-उपत्यका । आरूढं स्थलम्-अधित्यका ॥

यथाक्रम आसन्न और आरूढ अर्थ में वर्त्तमान उप और अधि शब्द से संज्ञा विषय में त्यकन् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

कर्मणि घटोऽठच् ॥ ३५ ॥

कर्मणि, घटः, अठच् । कर्म्मशब्दात् सप्तमी समर्थाद् घट इत्यर्थे ऽठच् प्रत्ययः स्यात् । यथा—घटते इति-घटः-पचाद्यच् । कर्मणिघटते-कर्म्मठः पुरुषः ॥

सप्तमीसमर्थ कर्म्मन शब्द से घट अर्थ में अठच् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ॥३६॥

तद्, अस्य, सं० तम्, ता० भ्यः, इतच् । संजात प्रथमा समर्थेभ्य स्तारकादिभ्यः शब्देभ्यः षष्ठ्यर्थे इतच् प्रत्ययः स्यात् । यथा—तारकाः सञ्जाता अस्य-तारकिकं नभः ॥

संजात समानाधिकरण प्रथमा समर्थ तारकादि शब्दों से षष्ठी के अर्थ में इतच् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

प्रमाणे द्वयसज् दघ्नञ् मात्रचः ॥ ३७ ॥

प्रथमासमर्थात् षष्ठ्यर्थे द्वयसच् दघ्नच् मात्रच्इतिमेप्रत्ययाः स्युः, यत्तत् प्रथमासमर्थं प्रमाणं चेत् स्यात् । यथा—ऊरुः प्रमाणमस्य-ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम् । (प्रमाणेलः) ॥ शमः प्रमाणमस्य शमः । दिष्टिः, वितस्तिः ॥ (द्विगोर्नित्यम्) ॥ द्वौ शमौ प्रमाणमस्य-द्विशमः,त्रिशमः। द्विवितस्तिः॥(डट् स्तोमे-वाच्यः)॥पञ्चदशस्तोमः।पञ्चदशीरात्रिः॥ (शत्शतोर्डिनिः)॥ त्रिंशिनो मासाः । पञ्चदिशिनोऽर्द्धमासाः ॥ (विंशतेश्च)॥ विं-शिनः अङ्गिरसः ॥ (प्रमाणपरिमाणाभ्यां सङ्ख्यायाश्चापि संशयेमात्रच्वाच्यः) ॥ शममात्रम्, प्रस्थमात्रम्,

पञ्चमात्रम् ॥ (वत्वन्तात्स्वार्थेद्वयसज्मात्रचौ)॥ तावदेव-तावद्वयसम् । तावन्मात्रम् । एतावद्वयसम्, एतावन्मात्रम् ॥

प्रमाण समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्द से षष्ठ्यर्थ में द्वयसच् दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

पुरुषहस्तिभ्यामण् च ॥ ३८ ॥

पु० मृ, अण्, च । प्रथमासमर्थाभ्यां पुरुषहस्तिभ्यां प्रमाणोपाधिकाभ्यां षष्ठ्यर्थेऽण् स्याच्चाद् द्वयसजादयश्च । यथा-पुरुषः प्रमाणमस्य-पौरुषम् । पुरुषद्वयसम् । पुरुषदघ्नम् । पुरुषमात्रम् । हास्तिनम् । हस्तिद्वयसम् । हस्तिदघ्नम् । हस्तिमात्रम् ॥

प्रमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ पुरुष और हस्ति शब्द से षष्ठ्यर्थ में अण् द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ३९ ॥

प्रथमासमर्थेभ्यो यत्तदेतेभ्यः परिमाणोपाधिकेभ्यः षष्ठ्यर्थे वतुप् स्यात् । यथा-यत् परिमाणमस्य-यावान् । तावान् । एतावान् ॥

परिमाणोपाधिक प्रथमा समर्थ यद्, तद् और एतद् शब्द से षष्ठ्यर्थ में वतुप् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

किमिदंभ्यां वो घः ॥ ४० ॥

कि० मृ, वः, घः । किमिदम्भ्यामुत्तर वतुपो वकारस्य घकारादेशः स्यात् । यथा-कियान् । इयान् ॥

परिमाणोपाधिक प्रथमा समर्थ किम् और इदम् शब्द से वतुप् प्रत्यय हो और प्रत्यय के वकार को घकारादेश हो ॥ ४० ॥

१—(७ । १ । २) इति यादेशः । (४ । ६ । १४) इति दीर्घः । (७ । १ । ७०) इति नुमागमः ॥

किमः सङ्ख्यापरिमाणे डति च ॥४१॥

सङ्ख्यापरिमाणे वर्त्तमानात् किमः प्रथमासमर्थात् षष्ठ्यर्थे डतिः स्यात्। चाद् वतुप् तस्य च वस्य घः स्यात् । यथा—का सङ्ख्या येषां ते-कति। कियन्तः ॥

सङ्ख्या के परिमाण में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ किम् शब्द से षष्ठ्यर्थ में डति और वतुप् प्रत्यय हो और वतुप् के घकार को वकारादेश हो ॥ ४१ ॥

सङ्ख्याया अवयवे तयप् ॥ ४२ ॥

सङ्ख्याया अवयवे वर्त्तमानाया षष्ठ्यर्थे तयप् स्यात्। यथा—पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयं दारु। चतुष्टयम्। चतुष्टयी ॥

अवयव में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ सङ्ख्या वाचक शब्दों से षष्ठ्यर्थ में तयप् प्रत्यय हो ॥ ४२ ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज् वा ॥ ४३ ॥

द्वित्रिभ्यां परस्य तयस्य वाऽयजादेशः स्यात्। यथा—द्वावयवा वस्य-द्वयम्। द्वितयम्। त्रयम। त्रितयम् ॥

द्वि और त्रि शब्द से विहित तयप् प्रत्यय को विकल्प से अयज् आदेश हो ॥

उभादुदात्तो नित्यम् ॥ ४४ ॥

उ० तं. उ० त्तः, नित्यम्। उभशब्दात् परस्य तयपो नित्य मयजादेशः स्यात् स चोदात्तः। यथा—उभयम् ॥

उभ शब्द से विहित तयप् प्रत्यय को नित्य उदात्त अयच् आदेश हो ॥४४॥

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ॥४५॥

तदं, अ० नं, अ० मं, इति, द० तं, डः। सप्तम्यर्थे प्रथमासमर्थाद् दशान्तात् प्रातिपदिकाड्डः स्यात, यत्तत् प्रथमा समर्थ मधिकंचेत् स्यात्। यथा—एकादश अधिका अस्मिन् शते-एकादशं शतम्। एकादशं सहस्रम्। (शतसहस्रयोरेवेष्यते) ॥ नेह—एकादश अधिका अस्यां विंशतौ ॥ (प्रकृति प्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्वएवेष्यते)॥ नेह-एकादश मापा अधिका अस्मिन् सुवर्णशते ॥

अधिक समानाधिकरण प्रथमा समर्थ दशान्त प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में ड प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

शदन्तविंशतेश्च ॥ ४६ ॥

श० तेः, च। शदन्तात् प्रातिपदिकात्। विंशतेश्च डःस्यात्तदस्मिन्नधिकमित्यर्थे। यथा—त्रिंशदधिका अस्मिन् शते-त्रिंशंशतः। विंशतेश्च ॥ (तदन्तादपीति वक्तव्यम्) ॥ एकविंशं शतम् ॥

अधिक समानाधिकरणप्रथमा समर्थ शदन्त और विंशति प्राति पदिक से सप्तम्यर्थ में ड प्रत्यय हो ॥ ४६ ॥

सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट् ॥४७॥

भागस्य मूल्ये वर्त्तमानात् प्रथमान्तात् सङ्ख्यावाचिनः षष्ठ्यर्थे मयट् स्यात्। यथा—यवानांद्वौ भागौ निमानमस्योद श्विद् भागस्य—द्विमयम्—उदश्विद्यवानाम् ॥

गुण (भाग) के निमान (मूल्य) में वर्त्तमान प्रथमा समर्थ सङ्ख्यावाचक प्राति पदिक से षष्ठ्यर्थ में मयट् प्रत्यय हो ॥४७॥

तस्य पूरणे डट् ॥ ४८ ॥

षष्ठीसमर्थात् सङ्ख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् पूरणइत्यर्थेडट् स्यात्। यथा-पूर्यतेऽनेनेति पूरणम्। एकादशानाम् पूरणः। एकादशः। त्रयोदशः॥

षष्ठी समर्थ सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय हो॥४८॥

नान्तादसङ्ख्यादेर्मयट्॥ ४९॥

ना०तं, अ०देः, मयट्। नकारान्तात् सङ्ख्यावाचिनः प्रातिपतिकादसङ्ख्यादेः परस्य डटो मयडागमः स्यात्। यथा-पञ्चानां पूरणः-पञ्चमः। सप्तमः। दशमः॥

सङ्ख्या जिसके पूर्व नहीं ऐसे नकारान्त सङ्ख्यावाचक प्रातिपादिक से परे डट् को मयट् का आगम हो॥ ४९॥

थट् च छन्दसि॥ ५०॥

नान्तादसङ्ख्यादेः परस्य डटस्थट् स्यान् मयट्च। यथा-पञ्चथम्। पञ्चमम्॥

छन्दोविषय में असङ्ख्यादि नकारान्त सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिक से परे डट् प्रत्यय को थट् और मयट् का आगम हो॥ ५१॥

षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्॥ ५१॥

एषां थुगागमः स्याड्डति। यथा-षण्णां पूरणः-षष्ठः। कतिथः। कतिपयथः। चतुर्थः॥ (चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च)॥ तुरीयः। तुर्यः॥

डट् प्रत्यय परे होतो षट्, कति, कतिपय और चतुर् शब्दको थुक् का आगम हो॥ ५१॥

बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक्॥ ५२॥

एषां डटि तिथुगागमः स्यात्। यथा—बहूनांपूरणः—बहुतिथः। पूगतिथः। गणतिथः। सङ्घतिथः॥

डट् प्रत्यय परे होतो बहु, पूग (समूह) गण और सङ्घ (समूह) शब्दको तिथुक् का आगम हो ॥ ५२ ॥

वतोरिथुक् ॥ ५३ ॥

वतोः, इथुक्। वतेर्डटीथुगागमः स्यात्। यथा—यावतां पूरणः—यावतिथः। तावतिथः। एतावतिथः॥

डट् प्रत्यय परे होतो वत्वन्त सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिक को इथुक् आगम हो।५३।

द्वेस्तीयः ॥ ५४ ॥

द्वेः, तीयः। पूरणेऽर्थे द्विशब्दात्तीयः प्रत्ययः स्यात्। यथा-द्वयोः पूरणः—द्वितीयः॥

षष्ठी समर्थ द्वि शब्दसे पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

त्रेःसम्प्रसारणं च ॥ ५५ ॥

पूरणेऽर्थेत्रिशब्दात्तीय प्रत्ययस्तत् सन्नियोगेन त्रेः सम्प्रसारणं च स्यात्। यथा—त्रयाणां पूरणः--तृतीयः॥

षष्ठी समर्थ त्रि शब्दसे पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय और त्रि शब्दको सम्प्रसारण भी हो ॥ ५५ ॥

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥

विं॰भ्यः, तमट्, अ॰म्। एभ्यो डटस्तमडागमो वा स्यात्। यथा--विंशतेः पूरणः--विंशतितमः। विंशः। एकविंशतितमः। एकविंशः। एकत्रिंशत्तमः। एकत्रिंशः॥

विंशति आदि शब्दों से परे डट् प्रत्यय को विकल्प से तमट् आगम हो ५६

नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च

नित्यम्, श० त्, च । शताद्यादिभ्यो डटोनित्यं तमडागमः स्यात् । यथा—शतस्य पूरणः—शततमः । सहस्रतमः।मासस्य पूरणः—मासतमोदिवसः । अर्द्धमासतमः । संवत्सरतमः ॥

शतादि मास अर्द्धमास और संवत्सर शब्द से परे डट् प्रत्यय को नित्य तमट् आगम हो ॥ ५७ ॥

षष्ठ्यादेश्चाऽसंख्यादेः ॥५८॥

षष्ठ्यादेः संख्याशब्दादसंख्यादेर्डटोनित्यं तमडागमः स्यात् । यथा—षाष्टितमः । सप्ततितमः ॥

असंख्यादि षष्ठि आदि संख्या शब्दों से परे डट् प्रत्ययको तमट् आगमहो

मतौ छः सूक्तसाम्नोः ॥५९॥

मत्वर्थे छः स्यात् सूक्ते सामनि चाभिधेये । यथा—अच्छावाक शब्दोऽस्मिन्नस्ति—अच्छावाकीयं सूक्तम् । वारवन्तीयं साम ॥

सूक्त और साम वाच्य होतो प्रातिपदिक से मत्वर्थ में छ प्रत्ययहो ॥ ५९ ॥

अध्यायानुवाकयोर्लुक् ॥ ६० ॥

अ० योः, लुक् । मत्वर्थे उत्पन्नस्य छस्य वा लुक् स्यात्, अध्यायानुवाकयो रभिधेययोः । यथा—गर्दभाण्डः । गर्दभाण्डीयः ॥

अध्याय और अनुवाक्य वाच्य हो तो प्रातिपदिक से मत्वर्थ में उत्पन्न छ प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो ॥ ६० ॥

विमुक्तादिभ्योऽण् ॥ ६१ ॥

वि० भ्यः, अण् । मत्वर्थेऽण स्यादध्यायानुवाकयोः । यथा-विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नास्तिवैमुक्तोऽध्यायोऽनुवाको वा ॥

अध्याय और अनुवाक्य वाच्य हो तो मत्वर्थ में विमुक्तादि प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

गोपदादिभ्यो वुन् ॥ ६२ ॥

गो० भ्यः. वुन् । गोपदादिभ्यो वुन् स्याद् मत्वर्थेऽध्यायानुवाकयोः ।यथा-गोपदशब्दोऽस्मिन्नास्ति-गोपदकोऽध्यायोऽनुवाको वा ॥

अध्याय और अनुवाक्य वाच्य हो तो गोपदादि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में वुन् प्रत्यय हो ॥ ६२ ॥

तत्र कुशलः पथः ॥ ६३ ॥

सप्तमी समर्थात् पथिन् शब्दात् कुशल इत्यर्थे वुन् स्यात् । यथा-पथि कुशलः-पथिकः ॥

सप्तमीसमर्थ पथिन् शब्द से कुशल अर्थ में वुन् प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

आकर्षादिभ्यः कन् ॥ ६४ ॥

आकर्षादिभ्यः सप्तमी समर्थेभ्यः कुशल इत्यर्थे कन् स्यात् । यथा--आकर्षेकुशलः --आकर्षकः ॥

सप्तमी समर्थ आकर्षादि शब्दों से कुशल अर्थ में कन् प्रत्यय हो ॥ ६४ ॥

धनहिरण्यात् कामे ॥ ६५ ॥

धनहिरण्यशब्दाभ्यां सप्तमी समर्थाभ्यां काम इत्यर्थे कन् स्यात्। यथा--काम--इच्छा। धने कामः--धनको देवदत्तस्य। हिरण्यको देवदत्तस्य॥

सप्तमी समर्थ धन और हिरण्य शब्दसे काम अर्थ में कन् प्रत्यय हो॥ ६५॥

स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते॥ ६६॥

सप्तमी समर्थेभ्यः स्वाङ्गवाचिशब्देभ्यः प्रसित इत्यर्थे कन् स्यात्। यथा- केशेषु प्रसितः -केशकः। केशरचनायां तत्पर इत्यर्थः॥

सप्तमी समर्थ स्वाङ्ग वाचक शब्दों से प्रसित अर्थ में कन् प्रत्यय हो॥ ६६॥

उदराट्ठगाद्यूने॥ ६७॥

उ०तं, ठक्, आ०ने। सप्तमी समर्थादुदरशब्दात् प्रसित इत्यर्थे ठक् स्यात्। यथा- बुभुक्षया अत्यन्तपीडिते उदरेप्रसितः--औदरिकः॥

सप्तमी समर्थ उदर शब्दसे प्रसित अर्थ में आद्यून (पेटू) प्रत्ययार्थ होतो ठक् प्रत्यय हो॥ ६७॥

सस्येन परिजातः॥ ६८॥

सस्य शब्दात् तृतीया समर्थात्परिजात इत्यर्थे कन् स्यात्। सस्य शब्दः -गुणवाची न तु धान्यवाची। यथा--सस्येन गुणेन परिजातः सम्बद्धः--सस्यकः--साधुः॥

तृतीया समर्थ सस्य शब्द से परिजात इस अर्थ में कन् प्रत्ययहो॥ ६८॥

अंशं हारी॥ ६९॥

द्वितीया समर्थादंशशब्दाद्धारीत्यर्थे कन् स्यात्। यथा-अंशं हारी-अंशकोदायदः। अंशकः पुत्रः॥

द्वितीया समर्थ अंश शब्दसे हारी इस अर्थ में कन् प्रत्ययहो ॥ ६९ ॥

तन्त्रादचिरापहृते ॥७०॥

त० तृं, अ० ते । पञ्चमी समर्थात्तन्त्र शब्दादचिरापहृत इत्यर्थे कन् स्यात् । यथा--तन्त्रादचिरापहृतः--तन्त्रकः पटः । प्रत्यग्र इत्यर्थः

पञ्चमी समर्थ तन्त्र शब्द से अचिरापहृत अर्थ में कन् प्रत्ययहो ॥ ७० ॥

ब्राह्मणकोष्णिके सञ्ज्ञायाम् ॥७१ ॥

ब्राह्मणक उष्णिक इतीमौ कन् प्रत्ययान्तौ निपात्येते । यथा-आयुधजीविनो ब्राह्मणा यस्मिन् देशे सन्ति-स ब्राह्मणको देशः । अल्पमन्नं यस्यां सा-उष्णिका यवागूः ॥

सञ्ज्ञा विषय में कन् प्रत्ययान्त ब्राह्मणक और उष्णिक शब्द निपातित हैं ॥ ७१ ॥

शीतोष्णाभ्यां कारिणि ॥ ७२ ॥

कारिण्यभिधेये शीतोष्णाभ्यां कन् स्यात् । यथा-शीतं करोतीति-शीतकः-अलसो जडउच्यते । उष्णं करोतीति-उष्णकः-शीघ्रकारी दक्षउच्यते ॥

द्वितीया समर्थ शीत और उष्ण शब्दसे कारि अर्थ में कन् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

अधिकम् ॥ ७३ ॥

अध्यारूढशब्दात् कन् उत्तरपदलोपश्च । यथा--अधिकम् ॥

अध्यारूढ शब्दसे कन् प्रत्ययान्त अधिक शब्द निपातित है ॥ ७३ ॥

अनुकाभिकाभीकः कमिता ॥ ७४ ॥

कमितेत्यर्थे अनुक अभिक अभीक इतीमे कन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । यथा--अनुकामयते--अनुकः । अभिकामयते--अभिकः । अभीकः ॥

कमिता अर्थ में कन् प्रत्ययान्त अनुक अभिक और अभीक शब्द निपातित हैं ७४

पार्श्वेनाऽन्विच्छति ॥ ७५ ॥

पा०नै, अ०ति । तृतीयासमर्थात् पार्श्वशब्दादन्विच्छतीत्यर्थे कन् स्यात् । यथा-अनृजु रुपायः पार्श्वम् । तेनाऽर्थानन्विच्छति -पार्श्वकः--मायावी ॥

तृतीया समर्थ पार्श्व शब्द से अन्विच्छति इस अर्थ में कन् प्रत्यय हो ॥ ७५ ॥

अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ ७६

आभ्यां तृतीयासमर्थाभ्या मन्विच्छतीत्यर्थे ठक्ठञौ स्याताम् । यथा--तीक्ष्णउपायः--अयः शूलम् । तेनान्विच्छति--आयः शूलिकः । साहसिक इत्यर्थः । दण्डाजिनम्--दम्भः । तेनान्विच्छति--दाण्डाऽजिनिकः । दाम्भिक इत्यर्थः ॥

तृतीया समर्थ अयः शूल और दण्डाजिन शब्दों से अन्विच्छति अर्थ में यथाक्रम ठक् और ठञ् प्रत्यय हों ॥ ७६ ॥

तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा ॥ ७७ ॥

ता०मं, ग्रं० म्, इति, लुक्, वा पूरणप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् ग्रहणोपाधिकात्स्वार्थे कन् स्यात् पूरणप्रत्ययस्य च लुग्वा । यथा--द्वितीयकम् । द्विकंवा ॥ (तावतिथेन गृह्णाति कन् वक्तव्यो नित्यं च लुक्) ॥ षष्ठेन रूपेण गृह्णाति--षट्को देवदत्तः । पञ्चकः ॥

ग्रहणोपाधिक पूरण प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थमें कन् प्रत्यय हो और पूरण प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो ॥ ७७ ॥

स एषां ग्रामणीः ॥ ७८ ॥

प्रथमा समर्थात् षष्ठ्यर्थे कन् स्यात् यत्तत् प्रथमा समर्थं ग्रामणी-श्चेत् । यथा- देवदत्तो मुख्योऽस्य -देवदत्तकः । त्वत्कः । मत्कः ॥

ग्रामणी। समानाधिकरण प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में कन् प्रत्यय हो। ७८

शृङ्खल मस्य बन्धनं करभे ॥ ७९ ॥

शृ० मृ, अस्य, ब० मृ, करभे । शृङ्खलशब्दात् प्रथमासमर्थात् षष्ठ्यर्थे कन् स्यात् । यथा-शृङ्खलं बन्धनमस्य करभस्य-शृङ्खलकः । उष्ट्राणां बालकः करभ इत्युच्यते ॥

करभ वाच्य हो तो बन्धन समानाधिकरण प्रथमासमर्थ शृङ्खल शब्द से षष्ठ्यर्थ में कन् प्रत्यय हो ॥ ७९ ॥

उत्क उन्मनाः ॥ ८० ॥

उत्कः, उ० नाः । उत्क इति निपात्यते उन्मनाश्चेत् स्यात् । यथा-उद्गतं मनो यस्य स-उन्मनाः । उच्छब्दात् स्वार्थे कन् । उत्कः-उत्कण्ठितः ॥

उन्मना वाच्य हो तो उद् शब्द से कन् प्रत्ययान्त उत्क शब्द निपातित है ॥

कालप्रयोजनाद् रोगे ॥ ८१ ॥

कालवचनात् प्रयोजन वचनाच्च कन् स्याद् रोगे । यथा-द्वितीयेऽहनि भवः-द्वितीयकः ज्वरः । प्रयोजनं कारणम् रोगस्य फलं वा ॥

रोग वाच्य हो तो समर्थ विभक्ति युक्त काल (दिनादि) और प्रयोजन से कन् प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

तदस्मिन्नन्नं प्राये सञ्ज्ञायाम् ॥ ८२ ॥

तत्, अस्मिन्, अन्नम्, प्राये, सं० म् । प्रथमान्तात्सप्तम्यर्थे कन् स्यात् यत् प्रथमान्त मन्नं चेत् प्रायविषयं तत् । यथा--गुडापूपाः प्रायेणान्नमस्याम् पौर्णमास्याम्-गुडापूपिका-पौर्णमासी ॥

संज्ञावाच्य हो तो प्राय विषयक अन्न समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्द से सप्तम्यर्थ में कन् प्रत्यय हो ॥ ८२ ॥

कुल्मासादञ् ॥ ८३ ॥

कु० त्, अञ् । तदस्मिन्नन्नं प्राये सञ्ज्ञायामित्यर्थे । यथा--कुल्माषाः प्रायेणान्नमस्यां-कौल्यमाषी पौर्णमासी ॥

सञ्ज्ञा वाच्य हो तो प्राय विषयक अन्न समानाधिकरण प्रथमासमर्थ कुल्माष (जौ आदि) शब्द से सप्तम्यर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ॥ ८४ ॥

श्रो० न्, छन्दः, अधीते । श्रोत्रियन्निति वा निपात्यतेऽधीत इत्यर्थे । यथा-श्रोत्रियो विप्रः । छान्दसः ॥

अधीते इस अर्थ में छन्दस् शब्द से घ प्रत्यय करके श्रोत्रियन् यह शब्द विकल्प से निपातन किया है ॥ ८४ ॥

श्राद्धमनेनभुक्तमिनिठनौ ॥ ८५ ॥

श्राद्धम्, अनेन, भुक्तम्, इ० नौ । यथा-श्राद्धी । श्राद्धिकः । श्राद्ध भोजीत्यर्थः ।

भुक्तोपाधिक श्राद्ध शब्द से अनेन (इसने) इस अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हो

पूर्वादिनि ॥ ८६ ॥

पू० तं, इनिः । यथा—पूर्वं गत मनेन भुक्तं पीतं वा-पूर्वी । पूर्विणौ । पूर्विणः ॥

पूर्वशब्द से अनेन इस अर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

सपूर्वाच्च ॥ ८७ ॥

स० तं, च अ । सपूर्वात् प्रातिपदिकात् पूर्वशब्दान्ताद् अनेनेत्यर्थे इनिः स्यात् । यथा—पूर्वं कृतमनेन-कृतपूर्वी कटम् । भुक्तपूर्वी ओदनम् ॥

स पूर्व शब्द से अनेन इस अर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ ८७ ॥

इष्टादिभ्यश्च ॥ ८८ ॥

इ० भ्यः, च अ । इष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनेनेत्यर्थे इनिः स्यात् । यथा—इष्ट मनेन--इष्टी पूर्त्ती ॥

इष्टादि शब्दों से अनेन इस अर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ ८८ ॥

छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौपर्यवस्थातरि ॥ ८९ ॥

पर्यवस्थातरि वाच्ये परिपन्थिन् परिपरिन् इतीमौ शब्दौ छन्दसि निपात्येते-पर्यवस्थाता-प्रतिपक्षः सम्पन्न उच्यते ॥

पर्यवस्था वाच्य हो तो छन्दो विषय में इनि प्रत्ययान्त परिपन्थिन् और परिपरिन् शब्द निपातित हैं ॥ ८९ ॥

अनुपद्यन्वेष्टा ॥ ९० ॥

अ० दी, अ० ष्टा० अनुपदीति निपात्यतेऽन्वेष्टा चेत् स्यात् । पदस्य पश्चादनु पदम् । अनुपदी गवाम् ॥

अनु चेष्टा वाच्य हो तो इनि प्रत्ययान्त अनुपदी। (गौओं का अन्वेषणकर्त्ता) शब्द निपातित है ॥ ९० ॥

साक्षाद्द्रष्टरि सञ्ज्ञायाम् ॥९१॥

यथा-साक्षाद् द्रष्टा-साक्षी ॥

द्रष्टा वाच्य होतो साक्षात् शब्द से इनि प्रत्ययहो ॥ ९१ ॥

क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः ॥९२॥

क्षेत्रियजिति निपात्यते परक्षेत्रे चिकित्स्य इत्यर्थे। यथा-क्षेत्रियः व्याधिः। शरीरान्तरे चिकित्स्यः। अप्रतिकार्य्य इत्यर्थः ॥

सप्तमी समर्थ परक्षेत्र शब्द से चिकित्स्य इस अर्थ में घच् प्रत्यय करके क्षेत्रियच् शब्द निपातन किया है ॥ ९२ ॥

इन्द्रिय मिन्द्र लिङ्ग मिन्द्रदृष्टमिन्द्र सृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्र दत्तमिति वा ९३

इन्द्रिय मित्यन्तोदात्तं शब्दरूपं निपात्यते। इन्द्रस्य लिङ्ग मिन्द्रियम। इन्द्रेण दृष्टम्-इन्द्रियम्। इन्द्रेण सृष्टम्-इन्द्रियम्। इन्द्रेण जुष्टम्-इन्द्रियम्। इन्द्रेण दत्तम-इन्द्रियम् ॥

सप्तमी समर्थ इन्द्र शब्द से लिङ्ग अर्थ में घच् प्रत्यान्त एवं तृतीया समर्थ इन्द्र शब्द से दृष्ट, सृष्ट, जुष्ट, दत्त अर्थों में घच् प्रत्यय करके इन्द्रिय शब्द निपातित है॥

तदस्यास्त्यास्मिन्निति मतुप् ॥९४॥

तद्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्[1]। यथा-गावोऽस्य, अस्मिन् वा सन्ति-गोमान्। वृक्षवान् पर्वतः ॥

१—भूमनिन्दा प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। संसर्गेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥ १ ॥

अस्ति समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्द से अस्य अस्ति अथवा अस्मिन् अस्ति इस अर्थ में मतुप् प्रत्ययहो ॥ ९४ ॥

रसादिभ्यश्च ॥९५॥

र० भ्यः च । यथा—रसवान् रूपवान् ॥

अस्ति समानाधिकरण प्रथमा समर्थ रसादि शब्दों से अस्य अस्ति अथवा अस्मिन् अस्ति इस अर्थ में मतुप् प्रत्ययहो ॥ ९५ ॥

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ॥९६॥

प्रा० तः, आतः, लच् अ० म् । प्राणिस्थवाचिनः शब्दा दाकारान्ता ल्लज् वा स्यान्मत्वर्थे । यथा—चूडालः । चूडावान् ॥

प्राणिस्थ वाचक आकारान्त शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से लच् प्रत्ययहो ९६

सिध्मादिभ्यश्च ॥ ९७॥

सि० भ्यः. च । लज्वा स्यात् । यथा—सिध्मलः । सिध्मवान् ॥

सिध्मादि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में विकल्प से लच् प्रत्ययहो ॥ ९७ ॥

वत्सांसाभ्यां कामबले ॥ ९८ ॥

आभ्यां लज्वास्याद्यथा सङ्ख्यं कामवति बलवति चार्थे । यथा—वत्सलः । अंसलः ॥

यथाक्रम काम और बल अर्थ में वत्स और अंस शब्दसे लच् प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

फेनादिलच्च ॥ ९९ ॥

फेनाद्, इलच्. च । चाल्लच् । अन्यतरस्यां ग्रहणं मतुप् समुच्चयार्थमनुवर्त्तते । यथा—फेनिलः । फेनलः । फेनवान् ॥

फेन प्रातिपदिक से मत्वर्थ में विकल्प से इलच् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यःशनेलचः

लोमादिभ्यः पामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च त्रिभ्यो गणेभ्यो मत्वर्थे यथासङ्ख्यं श न इलच् इतीमे स्युः । मतुप्च । यथा--लोमशः । लोमवान् । रोमशः । रोमवान् । पामनः। पामवान् । पिच्छिलः । पिच्छवान् ॥

लोमादि पामादि और पिच्छादि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में यथाक्रम श,. न, और इलच् प्रत्यय हो पक्षमें मतुप् भी हो ॥ १०० ॥

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्योणः ॥ १०१ ॥

मतुप् सर्वत्र समुच्चीयते । यथा--प्राज्ञः । प्रज्ञावान् । श्राद्धः । श्रद्धावान् । आर्चः, अर्चावान् । (वृतेश्च) । वार्त्तः । वृत्तिमान् ॥

प्रज्ञा श्रद्धा और अर्चा शब्दों से मत्वर्थ में ण प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

तपः सहस्राभ्यां विनीनी ॥ १०२ ॥

आभ्यां विनि इनि प्रत्ययौ स्याताम् । यथा--तपोऽस्याऽस्मिन् वा विद्यते । तपस्वी । सहस्री ॥

तपस् और सहस्र शब्द से मत्वर्थ में विनि और इनि प्रत्ययहो ॥ १०२ ॥

अण् च ॥ १०३ ॥

तपः सहस्राभ्यामण् च स्यात् । यथा--तापसः । साहस्रः ॥ (ज्योत्स्नादिभ्य उपसङ्ख्यानम्)॥ज्योत्स्ना विद्यतेऽस्मिन् पक्षे--ज्योत्स्नः पक्षः । तामिस्रः ॥

तपस् और सहस्र शब्द से मत्वर्थ में अण्भीहो ॥ १०३ ॥

सिकताशर्कराभ्यां च ॥ १०४ ॥

आभ्यां मत्वर्थेऽण् स्यात् । यथा -सैकतो घटः । शार्करं मधु ॥

सिकता और शर्करा शब्दसे मत्वर्थ में अण् प्रत्ययहो ॥ १०४ ॥

देशे लुबिलचौ च ॥ १०५ ॥

चादण्, मतुप् च । यथा–सिकताः सन्त्यस्मिन्देशे–सिकता देशः। सिकतिलः। सैकतः । सिकतावान् । शर्करादेशः। शर्करिलः। शार्करः । शर्करावान् ॥

देशवाच्य होतो सिकता और शर्करा शब्दसे मत्वर्थ में इलच् अण् और मतुप् प्रत्यय हो और पक्ष में लुप् भी हो ॥ १०५ ॥

दन्तउन्नतउरच् ॥ १०६ ॥

दन्ते, उन्नते, उरच् । दन्तशब्दादुन्नतोपाधिकादुरच्स्यान्मत्वर्थे । यथा–उन्नतादन्ताः सन्त्यस्य–दन्तुरः ॥

उन्नतोपाधिक दन्त शब्दसे मत्वर्थ में उरच् प्रत्यय हो ॥ १०६ ॥

ऊषसुषिमुष्कमधोरः ॥ १०७ ॥

ऊ० धोः, रः । एभ्योः रः स्यात् । यथा–ऊषरंक्षेत्रम् । सुषिरंकाष्ठम् । मुष्करः पशुः । मधुरोगुडः ॥ (रप्रकरणेखमुखकुञ्जेभ्य-उपसङ्ख्यानम्) ॥ खरः । मुखरः । कुञ्जः–हस्तिहनुः–कुञ्जरः ॥ (नगपांसुपाण्डुभ्यश्च) ॥ नगरम् । पांसुरः । पाण्डुरः ॥ (कच्छ्वाह्रस्वत्वंच) ॥ कच्छुरः ॥

ऊष, सुषि, मुष्क और मधुर शब्दसे मत्वर्थ में र प्रत्यय हो ॥ १०७ ॥

द्युद्रुभ्यां मः ॥ १०८ ॥

आभ्यां मः स्यात् । यथा-द्युमः । द्रुमः ॥

द्यु और द्रु शब्दसे मत्वर्थ में म प्रत्यय हो ॥ १०८ ॥

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥ १०९ ॥

यथा-केशवः । केशी । केशिकः।केशवान्॥(अन्येभ्योऽपि-दृश्यते)॥ मणिवः । नागविशेषः । हिरण्यवः। निधिविशेषः॥ (अर्णसो लोपश्च)॥ अर्णवः ॥

केश शब्दसे मत्वर्थ में विकल्प से व प्रत्यय हो ॥ १०९ ॥

गाण्ड्यजगात्सञ्ज्ञायाम् ॥ ११० ॥

गाण्डी अजग इत्याभ्यां सञ्ज्ञायां विषये वःस्यान्मत्वर्थे । यथा-गाण्डीवंधनुः । अजगवंधनुः। ह्रस्वमपीष्यते। गाण्डिवम् ॥

सञ्ज्ञाविषय होनेपर गाण्डी और अजग शब्दसे मत्वर्थ में व प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

काण्डाऽण्डादीरन्नीरचौ ॥ १११ ॥

का०त्, ई०चौ । काण्ड अण्ड इत्याभ्या यथासङ्ख्यमीरन्नीर-चौ स्याताम् । यथा- काण्डीरः। अण्डीरः ॥

मत्वर्थ में काण्ड और अण्डशब्दसे यथाक्रम ईरन् और ईरच् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥ ११२ ॥

एभ्यो मत्वर्थे वलच् स्यात् । यथा--रजस्वलास्त्री । कृषीवलः ॥

(वले इति दीर्घः) ॥ आसुतीवलः--शौण्डिकः । परिषद्वलो राजा ॥ (अन्येभ्योऽपि दृश्यते) ॥ भ्रातृवलः । पुत्रवलः । शत्रुवलः । उत्साहवलः ॥

मत्वर्थ में रजस्, कृषि आसुति और परिषद् शब्दसे वलच् प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

दन्तशिखात् सञ्ज्ञायाम् ॥ ११३ ॥

आभ्यां सञ्ज्ञायाम् विषये मत्वर्थे वलच् स्यात् । यथा--दन्तावलः--हस्ती । शिखावलं--नगरम् ॥

सञ्ज्ञाविषय होनेपर मत्वर्थ में दन्त और शिखा शब्दसे वलच् प्रत्यय हो ॥ ११३ ॥

ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः ॥ ११४ ॥

ज्योत्स्नादयः शब्दा मत्वर्थे निपात्यन्ते सञ्ज्ञायां विषये । यथा--जोत्स्ना--चन्द्रप्रभा । तमिस्रा रात्रिः । शृङ्गिणः । ऊर्जस्वी । ऊर्जस्वलः । गोमी । मलिनः । मलीमसः ॥

संज्ञा विषय होनेपर मत्वर्थ में ज्योत्स्ना (चांदनीरात्रि) तमिस्रा (अन्धेरीरात) शृङ्गिण (सींगवाला) । ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल (बलवान्) गोमिन् (गौओंका स्वामी) मलिन (मलयुक्त) और मलीमस (मलिन) शब्द निपातित हैं ११४

अत इनिठनौ ॥ ११५ ॥

अतः, इ०नौ । अकारान्तात् प्रातिपदिका दिनठनौ स्याताम् । यथा--धनी । धनिकः ॥

अकारान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ ११६ ॥

व्री० भ्यः, च । इनिठनौ स्याताम् मत्वर्थे । यथा-व्रीही । व्रीहिकः । व्रीहिमान् ॥

व्रीही आदि शब्दों से मत्वर्थमें इनि और ठन् प्रत्यय हो और पक्षमे मतुप् भी हो ॥

तुन्दादिभ्य इलच्च ॥११७॥

चादिनिठनौ मतुप् च । यथा-तुन्दिलः । तुन्दी । तुन्दिकः । तुन्दवान् । उदरिलः । उदरी । उदरिकः । उदरवान् । (स्वाङ्गाद् विवृद्धौ) ॥ विवृद्धौ कर्णौ यस्य सः-कर्णिलः कर्णी । कर्णिकः । कर्णवान् ॥

तुन्द (तोन्द) आदि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इलच्, इनि, ठन् और मतुप् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् ॥११८॥

ए० र्त्, ठञ्, नित्यम् । एकपूर्वाद् गोपूर्वाच्च मत्वर्थे नित्यं ठञ् स्यात् । यथा--एकशत मस्यास्तीति-ऐकशतिकः । ऐकसहस्रिकः । गौशतिकः । गौसहस्रिकः ॥

एक पूर्व और गो पूर्व प्रातिपदिक से मत्वर्थ में नित्य ठञ् प्रत्यय हो ॥११८॥

शतसहस्रान्ताच्च निष्कात् ॥११९॥

श०र्त्, च,नि०त् । निष्कात्परौ यौ शतसहस्रशब्दौ तदन्तात्प्रातिपदिकाट्ठञ् स्यान्मत्वर्थे । यथा-निष्कशत मस्यास्ति-नैष्कशतिकः नैष्कसहस्रिकः ॥

निष्क (१६मासे परिमाण) पूर्व शत और सहस्र शब्द से मत्वर्थ में ठञ् प्रत्ययहो

रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् ॥१२०॥

रु० तं,आ० यौः यप् । आहत प्रशंसा विशिष्टार्थे वर्त्तमानात् रूपशब्दाद्यप्स्यान्मत्वर्थे । यथा-आहतंरूपमस्यास्तीति-रूप्यं कार्षापणम् । रूप्यो दीनारः । प्रशतं रूपमस्यास्तीति-रूप्य×पुरुषः ॥

आहत [ताडन किया गया] और प्रशंसा विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान रूप शब्द से मत्वर्थ में यप् प्रत्ययहो ॥ ११० ॥

अस्मायामेधा स्रजोविनिः ॥ १२१ ॥

अ० जः, विनिः । असन्तात् प्रातिपदिकान् माया मेधा स्रज् इत्येभ्यश्च विनिः स्यान्मत्वर्थे । यथा-यशस्वी । मायावी । मेधावी। स्रग्वी॥

असन्त माया मेधा और स्रज शब्दसे मत्वर्थ में विनि प्रत्ययहो ॥ १२१ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ १२२ ॥

छन्दसि विषये बहुलं विनिः स्यान्मत्वर्थे । यथा-तेजस्वी । न च भवति । वर्चस्वान् ॥ (आमयस्योपसङ्ख्यानं दीर्घश्च)॥ आमयावी ॥ (शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्) ॥ शृङ्गारकः । वृन्दारकः ॥ (फलबर्हाभ्यामिनच्) ॥ फलिनः । बर्हिणः ॥ (हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम्) ॥ इनिठनौ, मतुप् च । हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान् ॥ (शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने) ॥ शीतं न सहते-शीतालुः । उष्णालुः । तृप्रालुः ॥ (हिमाच्चेलुः) ॥ हिमं न सहते-हिमेलुः ॥ (बलादूलः) । बलं न सहते बलूलः ॥ (वातात् समूहे च) । वातं न सहते, वातानां समूहो वा-वातूलः ॥ (तप् पर्व मरुद्भ्याम्) ॥ पर्वतः । मरुत्तः ॥

छन्दोविषय में मत्वर्थ होनेपर बाहुल्य से विनि प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

ऊर्णाया युस् ॥ १२३ ॥

उ० र्णाः, युस्। सित्वात्पदत्वम्। ऊर्णास्यविद्यते-ऊर्णायुः ॥
मत्वर्थ में ऊर्णा (ऊन) शब्द से युस् प्रत्यय हो ॥ १२३ ॥

वाचोग्मिनिः ॥ १२४ ॥

वाचः, ग्मिनिः। वाक्छब्दाद् ग्मिनिः स्यात् मत्वर्थे। यथा—वाग्मी॥
वाक् शब्द से मत्वर्थ में ग्मिनि प्रत्यय हो ॥ १२४ ॥

आलजाटचौ बहुभाषिणि ॥ १२५ ॥

(कुत्सित इति वक्तव्यम्) ॥ यथा—कुत्सितं बहुभाषते-वाचालः। वाचाटः ॥
बहुभाषी शब्द वाच्य हो तो प्रथमासमर्थ वाक् शब्द से मत्वर्थ में आलच् और आटच् प्रत्यय हो ॥ १२५ ॥

स्वामिन्नैश्वर्ये ॥ १२६ ॥

स्वा० न्, ऐ० र्ये। ऐश्वर्यवाचकात्स्वशब्दान्मत्वर्थे आमिनच् स्यात्। यथा—स्वामी ॥
ऐश्वर्य गम्यमान होनेपर स्व शब्द से आमिनच् प्रत्ययान्त स्वामीशब्द निपातन किया गया है ॥ १२६ ॥

अर्श आदिभ्योऽच् ॥ १२७ ॥

अ० भ्यः, अच्। यथा—अर्शांसि अस्य विद्यन्ते-अर्शसः ॥
अर्शस् आदि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में अच् प्रत्यय हो ॥ १२७ ॥

द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः १२८

द्व० ते, प्रा० ते, इनिः । द्वन्द्वः-समासः । उपतापः रोगः । गर्ह्य-निन्द्यम् । तद्विषयेभ्यः शब्देभ्यःप्राणिस्थार्थवाचिभ्य इनिः स्यान्मत्वर्थे । यथा–कटकवलयिनी । कुष्ठी । काकतालुकी ॥

द्वन्द्व (समास) उपताप और गर्ह्य विषयक प्राणिस्थ अर्थवाचक शब्दों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

वातातिसाराभ्यांकुक्च ॥ १२९ ॥

चादिनिः । यथा-वातकी । अतीसारकी । (रोगेचायमिष्यते) ॥ नेहवातवतीगुहा ॥

वात और अतीसार शब्दसे मत्वर्थ में इनि प्रत्यय और उक्त दोनों शब्दों को कुक् का आगम हो ॥ १२९ ॥

वयसि पूरणात् ॥ १३० ॥

वयसि द्योत्ये पूरण प्रत्ययान्तान्मर्थे इनिः स्यात् । यथा--मासः संवत्सरोवा पञ्चमोऽस्यास्तीति-पञ्चमी उष्ट्रः ॥

अवस्थाद्योत्य होतो पूरण प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो । १३० ।

सुखादिभ्यश्च ॥ १३१ ॥

सु० भ्यः, च । सुखादिभ्यो मत्वर्थे इनिः स्यात् । यथा– सुखी । दुःख । शीली ।

सुखादि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

धर्म्मशीलवर्णान्ताच्च ॥ १३२ ॥

ध० ते, च । मत्वर्थे धर्म्माद्यन्तादिनिः स्यात् । विप्राणांधर्मः-विप्र

धर्म्मः । सोऽस्यास्तीति-विप्रधर्म्मी । ब्राह्मणशीली । ब्राह्मणवर्णी ॥

धर्म्मान्त शीलान्त और वर्णान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ १३२ ॥

हस्ताज्जातौ ॥ १३३ ॥

ह० तं, जातौ । इनिः स्यान्मत्वर्थे । यथा--हस्ती ॥

यदि समुदाय से जाति वाच्य हो तो हस्त शब्द से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो १३३

वर्णाद् ब्रह्मचारिणि ॥ १३४ ॥

इनिः स्यान्मत्वर्थे । यथा--वर्णी । ब्रह्मचारीत्यर्थः ॥

यदि समुदाय से ब्रह्मचारी वाच्य हो तो मत्वर्थ में वर्णशब्द से इनि प्रत्यय हो ॥

पुष्करादिभ्यो देशे ॥ १३५ ॥

पु० भ्यः, देशे । इनिः स्यान्मत्वर्थे । यथा--पुष्कराणि विद्यन्तेऽस्यामस्या वा--पुष्करिणी भूमिः । (बाहूरुपूर्वपदाद्बलात्) ॥ बाहुबली । ऊरुबली ॥ (सर्वादेश्च) ॥ सर्वधनी । सर्वबीजी ॥ (अर्थाच्चासन्निहिते) ॥ अर्थी ॥ [तदन्ताच्च] ॥ धान्यार्थी हिरण्यार्थी ॥

यदि समुदाय रूप से देश वाच्य हो तो पुष्कर आदि शब्दों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम ॥ १३६ ॥

ब० भ्यः, मतुप्, अ० म्, । यथा--बलवान् । बली । उत्साहवान् । उत्साही ॥

बलादि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में विकल्प से मतुप् प्रत्यय हो ॥ १३६ ॥

सञ्ज्ञायां मन्माभ्याम् । १३७

मन्नन्तात् मान्ताच्चेनिः स्यान्मत्वर्थे । यथा—प्रथिमिनी । दामिनी । मोहिनी । सोहिनी ॥

मन्नन्त और मान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में सञ्ज्ञा वाच्य हो तो इनि प्रत्यय हो ॥

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥ १३८ ॥

कं०मं, ब०सः । कंशमितिमान्तौ । कमित्युदकसुखयोः शमिति सुखे । आभ्यां बादयः सप्तप्रत्ययाः स्युः । यथा—कँव्वः । कम्भः । कँय्युः । कन्तिः । कन्तुः । कन्तः । कँय्यः । शम्बः । शम्भः । शंय्युः । शन्तिः । शन्तुः । शन्तः । शंय्यः । अनुस्वारस्य वैकल्पिकः परसवर्णः । यकार वकार परस्यानुनासिकौ यवौ ॥

कम् और शम् शब्दसे मत्वर्थ में ब , भ, युस्, ति, तु, त और यस्प्रत्यय हो १३८

तुन्दिवलिवटेर्भः ॥ १३९ ॥

तुं०टेः, भः । तुन्दि वलि वटि इत्येभ्यो भः स्यान्मत्वर्थे । यथा—वृद्धानाभिः—तुन्दिः । तुन्दिभः । वलिभः । वटिभः ॥

तुन्दि वलि और वटि शब्दसे मत्वर्थ में भ प्रत्यय हो !! १३९ ॥

अहंशुभमोर्युस् ॥ १४० ॥

अ०मोः, युस् । अहमिति मान्तमव्ययमहङ्कारे । शुभमिति—शुभे । यथा—अहंयुः—अहङ्कारवान् । शुभंयुः—कल्याणवान् ॥

अहम् और शुभम् शब्दसे मत्वर्थ में युस् प्रत्यय हो ॥ यहां मत्वर्थ समाप्त हुआ ॥

इति पञ्चमाऽध्यायस्य द्वितीयःपादः ॥

अथ तृतीयः पादारम्भः ॥

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥ १ ॥

प्राक्, दिशः, विभक्तिः । दिक्छब्देभ्यः (५ । ३ । २७) इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्ति सञ्ज्ञकाः स्युः । अथ स्वार्थिकाः प्रत्ययाः । समर्थानामिति प्रथमादितिच, निवृत्तम् । वेतित्वनु वर्त्तत एव ॥

दिक् श०इत्यादि सूत्रपर्यन्त विभक्ति का अधिकार है ॥ १ ॥

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ॥ २ ॥

कि०भ्यः, अ०भ्यः । किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ॥

द्व्यादि शब्दों को छोड़कर किम् सर्वनाम सञ्ज्ञक और बहु शब्दसे प्राग् दिशीय प्रत्यय हों ॥ २ ॥

इदमइश् ॥ ३ ॥

इ०मः, इश् । प्राग् दिशीयेपरे इदम इशादेशः स्यात् । यथा--इह ॥

प्राग् दिशीय प्रत्ययपरे होनो इदम् शब्दको इश आदेश हो ॥ १ ॥

एतेतौ रथोः ॥ ४ ॥

इदम् शब्दस्य एत इत इत्यादेशौ स्यातां रेफादौ थकारादौ च प्राग् दिशीये परे । इदमोर्हिल् । यथा--एतर्हि । इदमस्थः मुः । इत्थम् । इदानीम् ॥

१—(५ । ३ । ११) इतिहः ॥

रेफादि और थकारादि प्राग् दिशीय प्रत्यय परे हों तो इदम् शब्द को एत और इत् आदेश हो ॥ ४ ॥

एतदोऽन् ॥ ५ ॥

एतदः, अन् । योगविभागः कर्त्तव्यः एतदः । एतेतौ स्यातां रथोः । अन् एतद इत्येव । अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः । यथा—अतः । अत्र । एतर्हि । इत्थम् ॥

प्राग् दिशीय प्रत्यय परे हों तो एतद् शब्द को अन् आदेश हो और रेफादि तथा थकारादि प्रत्यय के परे इदम् को एत और इत् आदेश हो ॥ ५ ॥

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ॥ ६ ॥

स० स्य, सः, अ० म्, दि । प्राग्दिशीये दकारादौ प्रत्यये परे सर्वस्य सो वा स्यात् । यथा—सदा । सर्वदा ॥

प्राग्दिशीय दकारादि प्रत्यय परे हो तो सर्वशब्द को विकल्प से स आदेश हो ॥

पञ्चम्यास्तसिल् ॥ ७ ॥

प० म्याः, त० ल् । पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यः तसिल्वा स्यात् । यथा—कस्मात् कुतः । यतः । ततः । बहुतः ॥

पञ्चम्यन्त किम् सर्वनाम और बहुशब्द से तसिल् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

तसेश्च ॥ ८ ॥

तसेः, च । किं सर्वनामबहुभ्यः परस्य तसे स्तसिलादेशः स्यात् । यथा—कुत आगतः । बहुतः ॥

किं सर्वनाम और बहुशब्द से परे तसि प्रत्यय को तसिल् आदेश हो ॥ ८ ॥

१ (७ । २ । १०४) इति कुः ॥ २-(७ । २ । १०४) इति किमः कुः ।

पर्यभिभ्यां च ॥ ९ ॥

आभ्यां तासिल् स्यात् । (सर्वोभयार्थाभ्यामेव) । यथा-परितः । सर्वतः-इत्यर्थः । अभितः-उभयत इत्यर्थः ॥

परि और अभि शब्द से तसिल् प्रत्यय हो ॥ ९ ॥

सप्तम्यास्त्रल् ॥ १० ॥

स० म्याः, त्रल् । सप्तम्यन्तेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः त्रल् स्यात् । यथा-कुत्र । यत्र । तत्र । सर्वत्र ॥

सप्तम्यन्त किम् सर्व और बहुशब्द से त्रल् प्रत्यय हो ॥ १० ॥

इदमो हः ॥ ११ ॥

इ० हः । इदमः सप्तम्यन्ताद्धा स्यात् । यथा-अस्मिन्निति-इह ॥

इ० न्त इदम् शब्द से ह प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

किमोऽत् ॥ १२ ॥

किमः, अत् । सप्तम्यन्तात् किमोऽद् वा स्यात् पक्षे त्रल् । यथा-कस्मिन्निति-क्व । कुत्र ॥

सप्तम्यन्त किम् शब्द से अत् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

वा ह च च्छन्दसि ॥ १३ ॥

यथा-कुह । क्व । कुत्र ॥

छन्द विषय में विकल्प करके सप्तम्यन्त किम् शब्द से ह प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ १४ ॥

इ० भ्यः, अपि, दृ० न्ते । पञ्चमी सप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तासिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणाद् भवदादि योग एव । स भवान् । ततोभवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम् ॥

इतर अर्थात् सप्तमी पञ्चमी से भिन्न विभक्तिओं के स्थान में भी तासिलादि प्रत्यय दीखते हैं ॥ १४ ॥

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ॥१५॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् । यथा–सर्वस्मिन् काले-सदा । सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा ॥

सप्तम्यन्त सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् और तद् शब्दसे कालार्थमें दा प्रत्ययहो॥

इदमोर्हिल् ॥१६॥

इ० मः, र्हिल् । सप्तम्यन्तात् काले इदमोर्हिल् स्यात् । यथा–अस्मिन् काले -एतर्हि ॥ १६ ॥

काल अर्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त इदम् शब्दसे र्हिल् प्रत्ययहो ॥ १६ ॥

अधुना ॥१७॥

अधुनेति निपात्यते । इदमोऽश् भावोधुनाच प्रत्ययः । यथा–अस्मिन् काले इति-अधुना ॥

कालार्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त इदम् शब्द से धुना प्रत्यय करके अधुना यह शब्द निपातन किया है ॥ १७ ॥

दानीं च ॥१८॥

सप्तम्यन्तात्काले इदमो वर्त्तमानाद्दानीं स्यात् । यथा–अस्मिन् काले इदानीम् ॥

कालार्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त इदम् शब्द से दानीम् प्रत्ययहो ॥ १८ ॥

तदोदा च ॥१९॥

तदः, दा, च (अ)। तदः सप्तम्यन्तात्काले वर्त्तमानाद् दा स्याद्याद् दानीं च यथा—तस्मिन् काले -तदा। तदानीम्॥

कालार्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त तद् शब्द से दा और दानीम् प्रत्ययहो १९

तयोर्दार्हिलौ चच्छन्दसि ॥२०॥

तयोः. दा० लौ, च (अ), छं०सि। इदंतदोर्यथा सङ्ख्यंस्याताम्। यथा—अस्मिन् काले--इदा। तस्मिन् काले—तर्हि॥

छन्द विषय होतो कालार्थ में वर्त्तमान इदम् और तद् शब्दसे यथाक्रम दा और र्हिल् प्रत्ययहो ॥ २० ॥

अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ॥२१॥

अँ० ने,। र्हिल्, अ०म् (अ)। किंसर्वनाम बहुभ्यः सप्तम्यन्तेभ्योऽनद्यतने कालविशेषे वर्त्तमानेभ्योर्हिल्वा स्यात्। यथा—कर्हि। कदा। यर्हि। यदा। तर्हि तदा। एतस्मिन् काले--एतर्हि॥

अनद्यतन कालार्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त किम् सर्वनाम और बहुशब्द से विकल्प करके र्हिल् प्रत्ययहो ॥ २१ ॥

सद्यः परुत् परार्यैषमः परेद्यव्यद्य पूर्वेद्यु रन्येद्यु रन्यतरेद्यु रितरेद्यु रपरेद्यु-रधरेद्यु रुभयेद्यु रुत्तरेद्युः॥२२॥

इमे निपात्यन्ते। समानस्य सभावो द्यस् चाहनि--समानेऽहनि--सद्यः। पूर्वपूर्वतरयोः परः, उदारी च संवत्सरे--पूर्वस्मिन् वत्सरे--परुत्, पूर्वतरे--वत्सरे--परारि। (इदम इश्) समसण् प्रत्ययश्च--संवत्सरे--अस्मिन् संवत्सरे--ऐषमः। परस्माद्येद्यव्यहनि परस्मिन्नहनि परेद्यवि। इदमोऽश् द्युश्च, अस्मिन्नहनि--अद्य। पूर्वादिभ्योऽष्टभ्योऽहन्येद्युस्-पूर्वस्मिन्नहनि--पूर्वेद्युः। अन्यस्मिन्नहनि--अन्येद्युः। अन्यतरस्मिन्-नहनि--अन्यतरेद्युः। इतरस्मिन्नहनि--इतरेद्युः। अपरस्मिन्नहनि--अपरेद्युः। अधरस्मिन्नहनि--अधरेद्युः। उभयोरन्होः--उभयेद्युः। उत्तरस्मिन्नहनि--उत्तरेद्युः। (द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः)॥ उभयद्युः॥

काल विशेषार्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त समान आदि शब्दों से द्यस्, रुत्, उदारी, समसण्, एद्यवि, द्य और एद्युस प्रत्ययान्त सद्यः, परुत्, परारि, ऐषमः, परेद्यवि, अद्य, पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, और उत्तरेद्युः ये शब्द निपातित हैं॥ २२॥

प्रकारवचने थाल्॥ २३॥

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यः स्वार्थे थाल् स्यात्। यथा--तेन प्रकारेण- तथा। यथा। सर्वथा। इतरथा। अन्यथा। बहुथा॥

प्रकार वचन किम् सर्वनाम और बहु शब्दसे स्वार्थ में थाल् प्रत्यय हो॥ २३॥

इदमस्थमुः॥ २४॥

इदमः, थमुः। इदम् शब्दात् प्रकारवचने थमुः स्यात्। (एतदो-वाच्यः)। अनेन, एतेन वा प्रकारेण -इत्थम्॥

प्रकार वचन में इदम् शब्दसे थमु प्रत्यय हो॥ २४॥

किमश्च॥ २५॥

किमः, च, अ। किंशब्दात् प्रकारवचने थमुः स्यात्। यथा-केनप्रकारेण -कथम्॥

प्रकार वचन में किम् शब्दसे थमु प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

थाहेतौचच्छन्दसि ॥२६ ॥

किमस्थास्याद्धेतौ प्रकारेच । यथा--केन हेतुना--इति कथा । केन-प्रकारेण--इति कथा ॥

छंदोविषय होतो हेतु और प्रकार में वर्त्तमान किम् शब्दसे थ प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

दिक्छब्देभ्यःसप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्योदिग्देशकालेष्वस्तातिः ॥ २७ ॥

सप्तम्याद्यन्तेभ्यो दिशिरूढेभ्यो दिग्देशकाल बृत्तिभ्यः स्वार्थे अस्तातिः स्यात् । यथा-पूर्वस्यांदिशि, पूर्वस्मिन् देशेकाले वा--पुरस्तात् अधस्तात् पञ्चमी--पुरस्तादागतः । प्रथमा--पुरस्ताद्रमणीयम् ॥

दिशा देश और काल अर्थ में वर्त्तमान सप्तम्यन्त पञ्चम्यन्त और प्रथमा दिशा वाचक शब्दों से अस्ताति प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ॥२८॥

द० मं, अ० चं । दिग्देशकालेषु वर्त्तमानाभ्यां सप्तमी पञ्चमी प्रथमान्ताभ्यां स्वार्थेऽतसुच् स्यात् । यथा–दक्षिणतोवसति । दक्षिणत आगतः । दक्षिणतो रमणीयम् । उत्तरतो वसति । उत्तरत आगतः । उत्तरतो रमणीयम् ॥

दिक् देश और काल में वर्त्तमान सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दक्षिण और उत्तर दिक् शब्दसे स्वार्थ में अतसुच् प्रत्ययहो ॥ २८ ॥

विभाषा परावराभ्याम् ॥२९॥

आभ्यां वा तसुच् , पक्षेऽस्तातिः । यथा—परतः । अवरतः परस्तात् ॥ अवरस्तात् ॥

अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में पर और अवर शब्द से विकल्प से अतसुच् प्रत्यय हो ॥

अञ्चेर्लुक् ॥ ३० ॥

अञ्चेः, लुक् । अञ्चत्यन्ताद् दिक्शब्दादस्तातेर्लुक् स्यात् । (लुक् तद्धित लुकि) । यथा—प्राच्याम्, प्राच्याः, प्राची वा । दिक्—प्राक् । उदक् ॥

अञ्चत्यन्त दिक् शब्दों से परे अस्ताति प्रत्यय का लुक् हो ॥ ३० ॥

उपर्युपरिष्टात् ॥ ३१ ॥

उ॰रि, उ॰तं । इमौ निपात्येते । यथा- उपरि, उपरिष्टाद्वा,-वसति, आगतः, रमणीयंवा ॥

ऊर्ध्व शब्द को उपभाव और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय अस्ताति के अर्थ में निपातन किये हैं ॥ ३१ ॥

पश्चात् ॥ ३२ ॥

अयं निपात्यते । अपरस्य पश्चभावः, आतिश्चप्रत्ययः, अस्तातेर्विषये । यथा—अपरस्यां दिशि वसति—पश्चात् दिशिवसति । पश्चादागतः । पश्चाद् रमणीयम् ॥ (दिक्पूर्वपदस्यच) । दक्षिणपश्चात् । उत्तरपश्चात् ॥ (अर्द्धोत्तरपदस्यचसमासे) । यथा—दक्षिणपश्चार्द्धः । उत्तरपश्चार्द्धः ॥ (अर्द्धेच) । पश्चार्द्धः ॥

अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में पश्चात् शब्द निपातित है ॥ ३२ ॥

परश्च पश्चा च च्छन्दसि ॥ ३३ ॥

अवरस्य अस्तात्यर्थे निपातौ । यथा-पश्चसिंहः । पश्चासिंहः । पश्चात्सिंहः ॥

छन्द विषय होतो अस्ताति के विषय में पश्च और पश्चा शब्द निपातित हैं ॥ ३३ ॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥ ३४ ॥

उ०द्वं, आतिः । एभ्य आतिः स्यात् । यथा-उत्तरस्यांदिशि वसति-उत्तराद्वसति । अधरात् । दक्षिणात् ॥

अस्ताति के अर्थ में उत्तर अधर और दक्षिण शब्दसे आति प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ३५

एनप्, अ०म्, अ० रे, अ०म्याः । उत्तरादिभ्य एनब् वास्यादवध्यवधिमतोः सामीप्ये, पञ्चम्यन्तं विना । यथा-उत्तरस्यांदिशि वसति--उत्तरेण वसति । अधरेण । दक्षिणेन । पक्षेयथास्वं प्रत्ययाः ॥

पञ्चमीविभक्ति को छोड़कर उत्तर, अधर और दक्षिण शब्दसे अदूर अवधि होतो विकल्प से एनप् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

दक्षिणादाच् ॥ ३६ ॥

दक्षिणात्, आच् । अस्तातेर्विषये दक्षिणशब्दादाच् स्यात् । यथा--दक्षिणा वसति । दक्षिणारमणीयम् ॥

अस्ताति के विषय में अपञ्चम्यन्त दक्षिण शब्दसे आच् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

आहि च दूरे ॥ ३७ ॥

दक्षिणाद्दूरे आहिः स्यात्, चादाच् । यथा--दक्षिणाहि । दक्षिणा ॥

अस्ताति विषय में दक्षिण शब्दसे आहि और आच् प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

उत्तराच्च ॥ ३८ ॥

उत्तरात्. च । उत्तरशब्दादाजाही प्रत्ययौ स्याताम् । यथा--उत्तराहि, उत्तरा ॥

अस्ताति विषय में उत्तर शब्दसे आच् और आहि प्रत्यय हो ॥ ३८ ॥

पूर्वाधरावराणामसिपुरधवश्चैषाम् ३९

पू०म्,असि, पु०वः, च, एषाम् । अस्तात्यर्थे एभ्योऽसि प्रत्ययः स्यात्. तद्योगेचैषां क्रमात्--पुर्, अध्, अव् इत्यादेशाः स्युः । यथा--पूर्वस्यांदिशि वसति- पुरोवसति । पुरआगतः । पुरोरमणीयम् । अधोवसति । अधआगतः । अधोरमणीयम् । अवोवसति । अव आगतः । अवोरमणीयम् ॥

अस्ताति के विषय में पूर्व अधर और अवर शब्दसे असि प्रत्यय हो और उक्त शब्दों के स्थान में यथाक्रम पुर्, अध् और अव् आदेश हो ॥ ३९ ॥

अस्ताति च ॥ ४० ॥

अस्तातौ परे पूर्वादीनां परादयः स्युः । यथा--पूर्वस्यां, पूर्वस्याः, पूर्वा वा, दिक्पुरः, पुरस्तात् । अधः, अधस्तात् । अवः, अवस्तात् ॥

अस्ताति प्रत्यय परे होतो पूर्वादि शब्दों को यथाक्रम पुर् अध् और अव् आदेश हों ॥ ४० ॥

विभाषाऽवरस्य ॥ ४१ ॥

अवरस्याऽस्तातौपरेऽव्वा स्यात् । यथा--अवस्तात्, अवरस्तात् ॥

अस्ताति प्रत्यय परे होतो अवर शब्दको विकल्प से अव् आदेश हो ॥ ४१ ॥

सङ्ख्याया विधार्थेधा ॥ ४२ ॥

स०यां:, विधार्थे, धा। क्रियाप्रकारार्थे वर्त्तमानात् सङ्ख्याशब्दात्स्वार्थे धा स्यात्। यथा--एकधा भुङ्क्ते। द्विधा गच्छति। त्रिधा। चतुर्धा। पञ्चधा॥

क्रिया के प्रकार अर्थ में वर्त्तमान सङ्ख्यावाचक शब्दों से स्वार्थ में धा प्रत्यय हो॥ ४२॥

अधिकरणविचाले च ॥४३॥

द्रव्यस्य संख्यान्तरापादाने संख्याया धा स्यात्। यथा-एकंराशिं पञ्चधा कुरु। अष्टधा कुरु॥

अधिकरण (द्रव्य) विचाल (संख्यान्तरापादान) गम्यमान होतो सङ्ख्या वाचक प्रातिपदिक से स्वार्थ में धा प्रत्ययहो॥ ४३॥

एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ॥४४॥

एकात्, धः, ध्यमुञ्, अ०म्। एकशब्दात्परस्य धा प्रत्ययस्य ध्यमुञादेशो वा स्यात्। यथा-एकधा राशिं कुरु। ऐकध्यं कुरु॥

एक शब्द से परे अधिकरण विचाल और विधार्थ में विहित धा प्रत्यय को विकल्प से ध्यमुञ् आदेशहो॥ ४४॥

द्वित्र्योश्चधमुञ् ॥ ४५॥

द्वित्र्योः, च, धमुञ्। आभ्यां धा इत्यस्य धमुञ् वादेशः स्यात्। यथा-द्वैधम्। द्विधा। त्रैधम्। त्रिधा॥ (धमुञन्तरात्स्वार्थे डदर्शनम्) पथि द्वैधानि संश्रयन्ते॥

द्वि और त्रिशब्द से अधिकरण विचाल और विधार्थ में विहित धा प्रत्ययको विकल्प से धमुञ् प्रत्ययहो॥ ४५॥

एधाच्च ॥ ४६॥

एधाच्, अ च । द्वित्र्योः सम्बन्धिनो धा प्रत्ययस्य एधा जादेशो वा स्यात्, चाद् धमुञ् । यथा—द्वेधा । द्वैधम् । द्विधा ॥

द्वि और त्रि शब्द से विहित धा प्रत्ययको विकल्प से एधाच् आदेश हो और धमुञादेश भी हो ॥ ४६ ॥

याप्ये पाशप् ॥ ४७ ॥

याप्यः—कुत्सितः । याप्येवर्त्तमानात्प्रातिपदिकात्स्वार्थे पाशप् स्यात् । यथा—कुत्सितो भिषक्—भिषक्पाशः ।

याप्य (निन्दित) अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में पाशप् प्रत्यय हो ४७

पूरणाद् भागे तीयादन् ॥ ४८ ॥

पू० दे, भागे, तीयात्, अन् । पूरणप्रत्ययोयस्तीयस्तदन्तात्प्रातिपदिकाद् भागेऽन् स्यात् स्वार्थे । स्वरेविशेषः।यथा—द्वितीयो भागो द्वितीयः । तृतीयः ॥(तीयादीकक्स्वार्थे वा वाच्यः)॥ द्वैतीयीकः । द्वितीयः । तार्तीयीकः । तृतीयः ॥

भाग अर्थ में वर्त्तमान पूरण सञ्ज्ञक तीय प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में अन् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि ॥ ४९ ॥

प्राक्, ए० भ्यः, अ० सि । पूरण प्रत्ययान्ताद् भागेऽन् स्यात् । यथा—पञ्चमः । दशमः ॥

एकादश से जो पूर्व सङ्ख्यावाचक पूरण प्रत्ययान्त शब्द उन से परे भाग अर्थ में अन् प्रत्यय हो छन्द विषय को छोड़कर ॥ ४९ ॥

षष्ठाष्टमाभ्यां ञ अ च ॥ ५० ॥

भागेऽभिधेये षष्ठाष्टमाभ्यां ञः स्याच्चादन्। यथा–षष्ठोभागः–षाष्ठः, षष्ठः। आष्टमः। अष्टमः॥

भाग अभिधेय होतो षष्ठ और अष्टम शब्द से परे ञ और अन् प्रत्यय हो ५०

मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौच ।५१।

षष्ठाष्टमशब्दाभ्यां क्रमेण कन् लुकौ स्याताम् माने पश्वङ्गेच वाच्ये। यथा–षष्ठको भागः-मानंचेत्। अष्टमोभागः–पश्वङ्गं चेत्॥

मान और पश्वङ्ग अभिधेय होतो षष्ठ और अष्टमशब्द से यथाक्रम कन् और ञ अथवाअन्का लुक् हो ॥ ५१ ॥

एकादाकिनिच्चासहाये ॥ ५२ ॥

ए०तें, आ०तें, अँ० ये। एकशब्दादसहायवाचिनःस्वार्थेआकिनिच् स्यात्, चात् कन्लुकौ। यथा–एकाकी। एककः। एकः॥

असहाय वाचक एक शब्द से परे आकिनिच् और च से कन् पक्ष में कन् का लुक् भी हो ॥ ५२ ॥

भूतपूर्वेचरट् ॥ ५३ ॥

पूर्वं भूत इति विगृह्य सुप्सुपेति समासः। भूतपूर्वत्व विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे चरट् स्यात्। यथा–आढ्यो भूतपूर्वः–आढ्यचरः। सुकुमारचरः॥

भूत पूर्व विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में चरट् प्रत्ययहो ५३

षष्ठ्यारूप्यच ॥ ५४ ॥

षष्ठ्याः, रूप्य, च। षष्ठ्यन्ताद् भूतपूर्वेऽर्थेरूप्यः स्यात्, चाच्चरट्।

यथा—यज्ञदत्तस्य भूतपूर्वो गौः—यज्ञदत्तरूप्यः यज्ञदत्तचरः ॥

षष्ठ्यन्त प्रातिपादक से भूत पूर्व अर्थ में रूप्य और चरट् प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

अतिशायने तमबिष्ठनौ ॥ ५५ ॥

अतिशायन विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे तमबिष्ठनौ स्याताम् । यथा—अयमेषामतिशयेन आढ्यः—आढ्यतमः।सुकुमारतमः । अयमेषामतिशयेनपटुः—पटिष्ठः। लघिष्ठः ॥

अतिशायन विशिष्टार्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्ययहो ॥ ५५ ॥

तिङश्च ॥ ५६ ॥

तिङः, च । तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् । यथा—सर्वइमे पठन्तीति, अय मेषामतिशयेन पठति—पठतितमाम् ॥

अतिशायन द्योत्य होतो तिङन्त से भी तमप् प्रत्ययहो ॥ ५६ ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५७

द्वयो रेकस्याऽतिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादिमौ स्याताम् । यथा—अयमनयोरतिशयेन लघुः—लघुतरः लघीयान् । जल्पतितराम् । पठतितराम् ॥

द्विवचन से विभज्य उपपद होतो अतिशायन अर्थ में सुबन्त और तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्ययहो ॥ ५७ ॥

अजादीगुणवचनादेव ॥ ५८ ॥

अ०दी,गु०तं, एव।इष्ठन्नीयसुनौ गुणवचनादेव स्याताम् । यथा—पटिष्ठः । लघिष्ठः । पटीयान् । लघीयान् ॥

इष्ठन् और ईयसुन् जो पूर्व अजादी प्रत्यय कहे हैं वे गुण वचन से ही हों ५८

तुश्छन्दसि ॥ ५९ ॥

तुः, छन्दसि । तृन् तृजन्तादिष्ठन्नीय सुनौ स्याताम् । यथा—अतिशयेन कर्त्ता—करिष्ठः । दोहीयसी धेनुः ॥

त्रन्त प्रातिपदिक से छन्द विषय में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

प्रशस्यस्य श्रः ॥ ६० ॥

प्रशशब्दस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः । यथा--सर्वइमे प्रशस्या अयमेषामतिशयेन प्रशस्य--श्रेष्ठः । उभौ इमौ प्रशस्यौ अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः--श्रेयान् । प्रकृत्यैकाजिति (६ । ४ । १६३) प्रकृतिभावः ॥

अजादी प्रत्ययपरे होतो प्रशस्य शब्दको श्र आदेश हो ॥ ६० ॥

ज्य च ॥ ६१ ॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशःस्यादिष्ठेयसोः । यथा--सर्वइमे प्रशस्या अयमतिशयेन प्रशस्यः--ज्येष्ठः । द्वाविमौ प्रशस्यौ अयमतिशयेन प्रशस्यः--ज्यायान् ॥

अजादि प्रत्यय परे होतो प्रशस्य शब्दको ज्य आदेश हो ॥ ६१ ॥

वृद्धस्य च ॥ ६२ ॥

वृद्धशब्दस्यच ज्यादेशः स्यादजाद्योः । यथा--सर्वइमे वृद्धा अयमेषामतिशयेन वृद्धः--ज्येष्ठः । उभाविमौ वृद्धौ अयमनयोरतिशयेन वृद्धः--ज्यायान् ॥

अजादि प्रत्यय परे होतो वृद्ध शब्दको भी ज्या आदेश हो ॥ ६२ ॥

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ॥ ६३ ॥

अ०योः, ने० धौ । अन्तिक बाढयोर्यथा सङ्ख्यं नेद साध इती मावादेशौ स्यातामजाद्योः । यथा—सर्वाणी मान्यन्तिकानि इदमेषा मतिशयेनाऽन्तिकम्—नेदिष्ठम् । उभेइमे अन्तिके, इदमनयोरतिशयेनान्तिकम्-नेदीयः।सर्वइमे बाढमधीयते-अय मस्मात् साधीयोऽधीते॥

अजादि प्रत्यय परे होतो अन्तिक (पास) और बाढ (प्रतिज्ञा) शब्दको यथा क्रम नेद और साद आदेशहों ॥ ६३ ॥

युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ॥ ६४ ॥

यु०योः, कन्, अ०म् । एतयोः कनादेशो वा स्यादिष्ठेयसोः । यथा—सर्वइमे युवानः, अयमेषामतिशयेन युवा—कनिष्ठः, यविष्ठः । द्वाविमौ युवानावयमनयोरतिशयेन युवा—कनीयान्, यवीयान् । सर्वइमेऽल्पाः, अयमतिशयेनाल्पः--कनिष्ठः, अल्पिष्ठः । द्वाविमावल्पौ, अयमतिशयेनाल्पः--कनीयान्, अल्पीयान् ॥

अजादि प्रत्यय परे होतो युवन् और अल्प शब्दको कन् आदेश विकल्पसे हो ६४

विन्मतोर्लुक् ॥ ६५ ॥

वि०तोः, लुक् । विनोमतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः । यथा—अतिशयेन स्रग्वी—स्रजिष्ठः, स्रजीयान् । अतिशयेनत्वग्वान्--त्वचिष्ठः, त्वचीयान् । धनिष्ठः, धनीयान् ॥

अजादि प्रत्यय परे होतो विन् और मतुप् प्रत्यय का लुक् हो ॥ ६५ ॥

प्रशंसायांरूपप् ॥ ६६ ॥

प्रशंसायां विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे रूपप् स्यात् । यथा—प्रशस्तो वैयाकरणः—वैयाकरणरूपः । प्रशस्तंपचति—पचतिरूपं ॥

प्रशंसा विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थमें रूपप् प्रत्यय हो ॥ ६६ ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ६७

ईषदसमाप्ति विशिष्टेऽर्थेवर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् कल्पब् देश्य देशीयर् इतीमे प्रत्ययाः स्युः । यथा—ईषदूनो विद्वान्—विद्वत्कल्पः । यशस्कल्पम् । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः । पचतिकल्पम् ॥

ईषद् असमाप्ति विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कल्पप् देश्य और देशीयर् प्रत्यय हों ॥ ६७ ॥

विभाषासुपोबहुच्पुरस्तात्तु ॥ ६८ ॥

वि० षा, सुपः, ब० चू, पु० त्, तु । ईषदसमाप्ति विशिष्टेऽर्थे सुबन्तात् बहुज्वा स्यात्, स च प्रागेव नतुपरतः । यथा—ईषदसमाप्तो लेखः—बहुलेखः । लेखकल्पः ॥

ईषद् असमाप्ति विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान सुबन्त से पूर्व विकल्प से बहुच् प्रत्यय हो ॥ ६८ ॥

प्रकारवचनेजातीयर् ॥ ६९ ॥

प्रकारविशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात्प्रातिपदिकात् स्वार्थे जातीयर् स्यात् । प्रकारवतिचायं प्रत्ययः । यथा—एवंप्रकारः—एवंजातीयः । मृदुप्रकारः—मृदुजातीयः । प्रमाणजातीयः । प्रमेयजातीयः ॥

प्रकार (सादृश्य) वचन विशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

प्रागिवात् कः ॥७०॥

प्राक्, इवात्, कः। (इवे प्रतिकृतौ)इत्यतः प्राक् काधिकारोऽस्ति।

इवे प्रतिकृतौ। (५। ३। ९६) इस सूत्र से पूर्व २ क प्रत्यय का अधिकार है॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः ७१

अ० ष०, अ० च्, प्राक्, टेः। (तिङश्चेत्यनुवर्त्तते) अव्ययानां सर्वनाम्नां च प्रागिवीयेष्वर्थेष्वकच् स्यात्, स च प्राक्टेः, न परतः। यथा—उच्चकैः। नीचकैः। शनकैः। सर्वनाम्नः। सर्वके। विश्वके। युष्मकाभिः। अस्मकाभिः। युष्मकासु। अस्मकासु। युवकयोः। आवकयोः इत्यत्र प्रातिपदिकस्य। त्वयका। मयका। त्वयकि। मयकीत्यत्र सुबन्तस्य। (अकच् प्रकरणे तूष्णीमः काम)॥ आसितव्यं किल तूष्णीकाम्॥ (शीलेकोमलोपश्च) तूष्णींशीलः तूष्णीकः॥ तिङन्तात्। पठतकि। पचतकि। जल्पतकि॥

अव्यय और सर्वनाम संज्ञक प्रातिपदिक और तिङन्त से प्रागिवीय अर्थों में टि भाग से पूर्व अकच् प्रत्यय हो॥ ७१॥

कस्य च दः॥ ७२॥

कान्ताऽव्ययस्य दकारोन्तादेशः स्याद्, अकच्च। यथा—धिक्-धकिद्। हिरुक्। हिरकुत्। पृथक्। पृथकत्॥

प्रागिवीय अर्थों में विहित अकच् के योग में कान्त प्रातिपदिक को दकार आदेश हो

अज्ञाते॥ ७३॥

अज्ञातत्वोपाधिकेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथा—

विहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा-कस्यायमस्वः-अश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वके । पचतकि । जल्पतकि ॥

अज्ञात समानाधिकरण प्रातिपदिक और तिङन्त से स्वार्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

कुत्सिते ॥ ७४ ॥

कुत्सितत्वोपाधिकेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे यथा विहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा-कुत्सितोऽश्वः-अश्वकः । उष्ट्रकः ॥

कुत्सित (निन्दित) समानाधिकरण प्रातिपदिक से स्वार्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

सञ्ज्ञायां कन् ॥ ७५ ॥

सञ्ज्ञायां कुत्सिते कन् स्यात् । यथा-शूद्रकः । चूर्णकः ॥

संज्ञा गम्यमान होतो कुत्सित समानाधिकरण प्रातिपदिक से कन् प्रत्ययहो ॥

अनुकम्पायाम् ॥ ७६ ॥

अनुकम्पायां गम्यमानायां सुबन्तात्तिङन्ताच्च यथा विहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा-पुत्रकः । अनुकम्पितः पुत्र इत्यर्थः । विश्वसितकि ॥

अनुकम्पा गम्यमान होतो सुबन्त और तिङन्त से स्वार्थमें यथा विहित प्रत्ययहो

नीतौ च तद्युक्तात् ॥ ७७ ॥

सामदानादि रुपायो नीतिः । तस्यां च गम्यमानाया मनुकम्पा-नुक्तात्कः स्यात् । यथा-हन्त ते धनकाः । हन्त ते तिलकाः । एहकि । अद्धकि ॥

नीति गम्यमान हो तो अनुकम्पा मय शब्द से क प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा ॥ ७८ ॥

ब० चः, म० म्नः, ठच्, वा। अनुकम्पायां गम्यमानायां नीतौ च बह्वचः प्रातिपदिकान्मनुष्यनामधेयाद् वा ठच् स्यात्। यथा—देविकः। देवदत्तकः। यज्ञिकः। यज्ञदत्तकः॥

अनुकम्पा और नीति गम्यमान हो तो मनुष्यनाम वाचक बह्वच् प्रातिपदिक से विकल्पकरके ठच् प्रत्यय हो ॥ ७८ ॥

घनिलचौ च ॥ ७९ ॥

बह्वचो मनुष्यनाम्नो घन् इलच् इतीमौ स्याताम्। यथा—देवियः। देविलः। देविकः। देवदत्तकः॥

मनुष्यनाम वाचक बह्वच् प्रातिपदिक से घन् और इलच् प्रत्यय हो ॥ ७९ ॥

प्राचामुपादेरडज्वुचौ च ॥ ८० ॥

प्रा० मृ, उ० देः, अ० चौ, च। उपशब्द आदिर्यस्य तस्मादुपादेः प्रातिपदिकाद् बह्वचो मनुष्यनाम्नोऽडच् वुच् इतीमौ स्याताम्। चाद्यथा प्राप्तम्। प्राचां ग्रहणं सन्मानार्थम्। यथा—अनुकम्पितः-उपेन्द्रदत्तः-उपडः, उपकः, उपिकः, उपियः, उपिलः, उपेन्द्रदत्तकः॥

उपशब्द है आदि में जिसके ऐसे मनुष्यमान वाचक अनुकम्पायुक्त बह्वच् प्रातिपदिक से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में अडच्, वुच्, घन, इलच्। ठच् और कन् प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

जातिनाम्नः कन् ॥ ८१ ॥

जातिशब्दो यो मनुष्यनामधेयः तस्मात् कन् स्यादनुकम्पायां नीतौ च। यथा—व्याघ्रकः। सिंहकः। रासभकः॥

अनुकम्पा और नीति अर्थ में मनुष्यनामधेय प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो ॥

अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च ॥ ८२ ॥

अ० स्य, उ० पः, च । अजिनान्तान्मनुष्यनाम्नोऽनुकम्पायां कन् तस्य चोत्तरपदलोपः । यथा-अनुकम्पितोव्याघ्राजिनः-व्याघ्रकः । सिंहकः ॥

अनुकम्पा गम्यमान हो तो मनुष्यनाम वाचक अजिन शब्दान्त प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो और उसके उत्तर पदका लोप हो ॥ ८२ ॥

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ॥ ८३ ॥

ठा० दौ, उ० र्ध्वं, द्वि० त्, अचः । अस्मिन् प्रकरणे-यः ठः अजादि प्रत्ययश्चतस्मिन् प्रत्ययेपरे प्रकृतेर्द्वितीयादच ऊर्ध्वं सर्वं लुप्यते। यथा-अनुकम्पितो देवदत्तः--देविकः । देवियः । देविलः ॥ (चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपोवाच्यः) ॥ अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तः-बृहस्पतिकः ॥ (अनजादौ च वा लोपोवक्तव्यः) ॥ देवदत्तकः । देवकः ॥

नीति और अनुकम्पा अर्थ में ठ और अजादि प्रत्यय परे होतो प्रकृति के द्वितीय अच् से परे शेष सब का लोपहो ॥ ८३ ॥

शेवल सुपरि विशाल वरुणार्य मादीनां तृतीयात् ॥ ८४ ॥

एतेषां मनुष्यनाम्नां ठ जादौपरे तृतीयादच ऊर्ध्वं लोपः स्यात् । यथा--अनुकम्पितः शेवलदत्तः--शेवलिकः, शेवलियः, शेवलिलः। सुपरिकः, सुपरियः,सुपरिलः । विशालिकः,विशालियः, विशालिलः। वरुणिकः, वरुणियः, वरुणिलः । अर्य्यमिकः, अर्य्यमियः, अर्य्यमिलः॥

ठ और अजादि प्रत्यय परे होतो मनुष्य नाम वाचक शेवल (मनुष्य नाम) सुपरि, विशाल, वरुण और अर्यमा शब्दके तृतीया अच्‌सेपरे शेषांशका लोपहो ॥८४॥

अल्पे ॥ ८५ ॥

अल्पत्व विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकाद् यथा--विहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा--अल्पं घृतम्--घृतकम् । तैलकम् । सर्वकम् । उच्चकैः । पचतकि ॥

अल्पत्व द्योत्य होतो प्रातिपदिक से यथा विहित प्रत्ययहो ॥ ८५ ॥

ह्रस्वे ॥ ८६ ॥

ह्रस्वत्व विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकाद् यथा विहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा--ह्रस्वो वृक्षः--वृक्षकः ॥

ह्रस्व द्योत्य होतो प्रातिपदिक से यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

सञ्ज्ञायां कन् ॥ ८७ ॥

ह्रस्व हेतुका यासञ्ज्ञा तस्यां गम्यमानायां कन् स्यात् । यथा--वंशकः । वेणुकः । दण्डकः ॥

ह्रस्व विषयक संज्ञागम्यमान होतो प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो ॥ ८७ ॥

कुटी शमीशुण्डाभ्यो रः ॥ ८८ ॥

कु० भ्यः, रः । स्पष्टम् । यथा-ह्रस्वा कुटी--कुटीरः । शमीरः । शुण्डारः ॥

स्वार्थ में कुटी (कोठरी) शमी [छेंकुर] और शुण्डा [सूंड] शब्द से र प्रत्यय हो ॥ ८८ ॥

कुत्वा[२]डुपच्[१] ॥ ८९ ॥

यथा- ह्रस्वाकुतूः- कुतुपुः ॥

ह्रस्वार्थ द्योत्य होतो कुतू [कुप्पा] शब्द से डुपच् प्रत्यय हो ॥ ८९ ॥

कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ॥ ९० ॥

कासूगोणीशब्दाभ्यां ह्रस्वत्वेद्योत्येष्टरच् स्यात् । यथा--ह्रस्वा कासूः—कासूतरी । गोणीतरी । कासुरायुध विशेषः ॥

ह्रस्वार्थ द्योत्य होतो कासू और गोणी शब्दसे ष्टरच् प्रत्यय हो ॥ ९० ॥

वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्चतनुत्वे ॥ ९१ ॥

व०भ्यः, च, त०त्वे । वत्स उक्षन् अश्वऋषभ इत्येभ्यस्तनुत्वे द्योत्ये ष्टरच् स्यात् । यथा—वत्सतरः--द्वितीयंवयः प्राप्तः । उक्षतरः । अश्वतरः । ऋषभतरः ॥

तनुत्व द्योत्य हो तो वत्स (बछड़ा) उक्षन् (बैल) अश्व (घोड़ा) और ऋषभ (बैल) शब्द से ष्टरच् प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥.

किंयत्तदोनिर्द्धारणेद्वयोरेकस्यडतरच् ९२

कि० दः, नि० णे, द्वयोः, एकस्य, ड० च् । किम् यत् तत् इत्येतेभ्यो द्वयो रेकस्य निर्द्धारणे डतरच् । यथा—अनयोः--कतरः--आर्य्यः । यतरः । ततरः । महाविभाषयाकः, यः, सः ॥

दो में से एक का निर्द्धारण गम्यमान हो तो किम् यत् और तद् प्रातिपदिक से डतरच् प्रत्यय हो ॥ ९२ ॥

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ॥ ९३ ॥

बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे गम्यमाने जाति परिप्रश्न विषये-

भ्यः किमादिभ्यो वा डतमच् स्यात्। यथा--भवतां कतमः कठः। यतमः। ततमः। कः। यः। सः॥

बहुतों में से एकका निर्द्धारण होतो किम् यत् और तद् प्रातिपदिक से जाति परिप्रश्न अर्थ में विकल्प से डतमच् प्रत्यय हो॥ ९३॥

एकाच्च प्राचाम्॥९४॥

एकात्, च, प्राचाम्। एकशब्दात् प्राचांमतेन डतरच् डतमच् इतीमौ स्याताम्। यथा--अनयोः-एकतरः-मैत्रः। एषाम्-एकतमः-चैत्रः॥

प्राग्देशीय आचार्यों के मत में एक शब्दसे स्वीय २ विषय में डतरच् और डतमच् प्रत्यय हों॥ ९४॥

अवक्षेपणे कन्॥ ९५॥

अवक्षिप्यते येन तदवक्षेपणम्। तस्मिन् कन् स्यात्। यथा-व्याकरणेन गर्वितो व्याकरणकः। प्रागिवीयानां पूर्णोविधिः॥

अवक्षेपण अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो॥ ९५॥

इवे प्रतिकृतौ॥ ९६॥

इवार्थे यत् प्रातिपदिकं तस्मात् कन् स्यात्। अश्वइव प्रतिकृतिः—अश्वकः॥

इवार्थ में जो प्रातिपदिक उससे प्रतिकृति (तसवीर) गम्यमान होनेपर कन् प्रत्यय हो॥ ९६॥

सञ्ज्ञायाम् च॥ ९७॥

इवार्थे कन् स्यात्समुदायश्चेत् सञ्ज्ञा। यथा—अश्वसदृशस्यसञ्ज्ञा—अश्वकः। उष्ट्रकः॥

इवार्थे में सञ्ज्ञा गम्यमान होतो कन् प्रत्यय हो ॥ ९७ ॥

लुम्मनुष्ये ॥ ९८ ॥

लुप्, म०ष्ये । मनुष्ये वाच्ये सञ्ज्ञायांच विहितस्य कनो लुप् स्यात् । चञ्चा-तृणमयः पुमान् । चञ्चेव मनुष्यः-चञ्चा ॥

मनुष्यवाच्य होतो सञ्ज्ञा में जो विहित कन् उसका लुप् हो ॥ ९८ ॥

जीविकार्थेचाऽपण्ये ॥ ९९ ॥

जी०र्थे, च, अ०ण्ये । जीविकार्थं यदविक्रीयमाणं तस्मिन्वाच्ये कनो लुप् स्यात् । यथा-प्रतापः । गौतमः । चित्रजीविनां जीविकार्थासु नरोत्तम प्रतिकृतिष्विदम् ॥

जीविकार्थ में अपण्य (जो बेचा न जावे) अभिधेय होतो इवार्थ में विहित कन् प्रत्यय का लुप् हो । तात्पर्य यह है जैसे कि तमाशा दिखलाने वाले काष्ठ निर्मित यन्त्र को शिरपर रक्खेहुये घर २ तमाशा दिखलाते फिरते हैं परन्तु बेचते नहीं ऐसी प्रतिकृति में प्राप्त कन् प्रत्यय का लुप् होजाता है ॥ ९९ ॥

देवपथादिभ्यश्च ॥ १०० ॥

दे०भ्यः, च । कनो लुप् स्यात् । यथा-देवपथः । हंसपथः ॥

देवपथादि शब्दों से परे विहित कन् प्रत्यय का लुप् हो ॥ १०० ॥

वस्तेर्ढञ् ॥ १०१ ॥

वस्तेः, ढञ् । इतः प्रभृति सामान्येनप्रत्ययाः। वास्तिशब्दा दिवार्थे द्योत्ये ढञ् स्यात् । यथा-वस्तिरिव-वास्तेयम्, वास्तेयी ॥

इवार्थ द्योत्य होतो वस्ति (त्रास) शब्दसे ढञ् प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

शिलायाढः ॥ १०२ ॥

शि० यां:, ढः । (शिलायाः) इति योग विभागाड्ढञपीत्येके । यथा—शिलेव -शिलेयम् । शैलेयम् ॥

इवार्थ द्योत्य होतो शिला शब्दसे ढ और ढञ् प्रत्यय हो ॥ १०२ ॥

शाखादिभ्योयत् ॥ १०३ ॥

शा० भ्यें:, यत् । यथा--शाखेव--शाख्यः । मुख्यः । जघनमिव--जघन्यः । अग्र्यः ॥

इवार्थ द्योत्य होतो शाखादि प्रातिपदि कों से यत् प्रत्यय हो ॥ १०३ ॥

द्रव्यं च भव्ये ॥ १०४ ॥

द्रुशब्दादिवार्थे यत् प्रत्ययो निपात्यते । यथा—द्रव्यम्-अयं विप्रः ॥

भव्य (कल्याण) अभिधेय होनेपर द्रु शब्द से इवार्थ में यत् प्रत्ययान्त द्रव्य शब्द निपातित है ॥ १०४ ॥

कुशाग्राच्छः ॥ १०५ ॥

कु० तं, छः । यथा—कुशाग्रमिव-कुशाग्रीया बुद्धिः ॥

इवार्थ में कुशाग्र शब्द से छ प्रत्यय हो ॥ १०५ ॥

समासाच्च तद्विषयात् ॥ १०६ ॥

स० तं, च, त० तं । इवार्थविषयात्समासाच्छः स्यात् । यथा—काकश्च तालञ्च-काकतालमिति द्वन्द्वे लक्षणया पततः काकस्य निपतता तालेन चित्रीयमाण संयोग उच्यते । तत्तुल्यः काकतालीयः । अन्धकश्च वर्त्तका च-अन्धक वर्त्तकम् । अन्धकस्य वर्त्तका-

या उपर्यतर्कित पादन्यास उच्यते। तत्तुल्यम्। अन्धकवत्तर्कीयः॥

इवार्थ विषय समास में इवार्थ ही में छ प्रत्यय हो॥ १ १॥

शर्करादिभ्योऽण्॥ १०७॥

श० भ्यः, अण्। यथा-शर्करेव-शार्करम्॥

शर्करादि प्रातिपदिकों से इवार्थ में अण् प्रत्यय हो॥ १०७॥

अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्॥ १०८॥

अ० भ्यः, ठक्। यथा-अङ्गुलीव-आङ्गुलिकः॥

अङ्गुली आदि प्रातिपदिकों से इवार्थ में ठक् प्रत्यय हो॥ १०८॥

एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम्॥१०९॥

ए० यां:, ठञ्, अ० म्। एकशालाशब्दादिवार्थे ठञ्वा पक्षे ठक् स्यात्। यथा-एकशालेव-एकशालिकः। ऐकशालिकः॥

एक शाला शब्द से इवार्थ मे विकल्प से ठञ् प्रत्यय हो॥ १०९॥

कर्कलोहितादीकक्॥ ११०॥

कर्कलोहित शब्दाभ्यामिवार्थे ईकक् स्यात्। यथा-कर्कः शुक्लोऽश्वः-तेन सदृशः-कार्कीकः। लौहितीकः॥

इवार्थ में कर्क और लोहित शब्द से ईकक् प्रत्यय हो॥ ११०॥

प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि॥१११॥

प्र० तं, थाल्, छं० सि। प्रत्न पूर्व विश्व इम इत्येभ्य इवार्थे

थाल् स्याच्छन्दसिविषये । यथा—तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ॥

इवार्थ में प्रत्न, पूर्व, विश्व, और इम प्रातिपदिक से छन्दोविषय होनेपर थाल् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ॥ ११२ ॥

पू० तँ, ञ्यः, अ० तँ । इवार्थोनिवृत्तः । नाना जातीया अनियत वृत्तयोऽर्थ कामप्रधानाः सङ्घाः-पूगाः । तद् वाचकात् स्वार्थे ञ्यः स्यात् । यथा—लौहध्वज्यः ॥

ग्रामणी वर्जित पूग वाचक प्रातिपदिक से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ॥ ११३ ॥

व्रा० ञों, अ० मँ । नाना जातीया अनियत वृत्तय उत्सेधजीविनः सङ्घाः—व्राताः । व्रातवाचिभ्य च्फञन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च स्वार्थेञ्यः स्यादस्त्रियाम् । यथा—कापोतपाक्यः । कापोतपाक्यौ । कपोतपाकाः । कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । कौञ्जायनाः ॥

व्रात वाचक और च्फञन्त प्रातिपदिक से स्त्री लिङ्ग को छोडकर स्वार्थ में ञ्य प्रत्ययहो ॥ ११३ ॥

आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यड् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ॥११४॥

आ० तँ, ञ्यट्, वा० षुँ, अ० तँ । वाहीकेषु य आयुध जीविसङ्घस्तद्वाचिनःस्वार्थे ञ्यट् स्यात् यथा—क्षौद्रक क्यः।क्षौद्रक्यौ।क्षुद्रकाः॥

ब्राह्मण और राजन्यको छोडकर वाहीक अर्थ गम्यमान होनेपर आयुध जीवि सङ्घ वाचक प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्यट् प्रत्ययहो ॥ ११४ ॥

वृकाट्टेण्यण् ॥ ११५ ॥

वृ० तं, टे० णं । आयुधजीवि सङ्घ वाचकात् स्वार्थे ठेण्यण् स्यात् । यथा-वार्केण्यः । वार्केण्यौ । वृकाः ॥

आयुध जीवि सङ्घ वाचक वृक शब्दसे स्वार्थ में टेण्यण् प्रत्ययहो ॥ ११५ ॥

दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठाच्छः ॥११६॥

दा० तं, छंः । दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्त्तषष्ठेभ्यश्चायुधजीवि सङ्घवाचिभ्यः स्वार्थेछःस्यात् । यथा-त्रिगर्तः षष्ठो वर्गोयेषां ते त्रिगर्त्तषष्ठाः॥ (आहुस्त्रिगर्त्तषष्ठांस्तु कौण्डीपरथ दाण्डकी । कौष्ठकिर्ज्जालमानिश्च ब्रह्मगुप्तोथ जानकिः॥दामनयः-शस्त्र जीविसङ्घः । दामनीयः । दामनीयौ।दामनयः॥त्रिगर्त्तः-त्रिगर्त्तीय कौण्डोपरथीयः,दाण्डकीयः॥

आयुधजीवि सङ्घ वाचक दामन्यादि और त्रिगर्त्त षष्ठ प्रातिपदिकों से स्वार्थमें छ प्रत्ययहो ॥ ११६ ॥

पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ ॥११७॥

प० भ्यः, अ०ञौ । एभ्य आयुधजीविसङ्घ वाचिभ्यः स्वार्थे क्रमादणञौ स्याताम् । यथा-पार्शवः । पार्शवौ । पर्शवाः । यौधेयः । यौधेयौ । यौधेयाः ॥

आयुध जीविसङ्घ वाचक पर्श्वादि और यौधेयादि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अण और अञ प्रत्ययहो ॥ ११७ ॥

अभिजिद् विदभृच्छालावाच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छुमदणो यञ् ॥११८॥

अ० ५ः, यञ् । अभिजिदादिभ्योऽणन्तेभ्यः स्वार्थे यञ् स्यात् । यथा–अभिजितोऽपत्यम्–आभिजित्यः । वैदभृत्यः । शालावत्यः । शैखावत्यः । शमीवत्यः । और्णवत्यः । श्रौमत्यः । गोत्र प्रत्ययस्यात्राणो गृहणम् ॥

अभिजित्, विदभृत, शालावत्, शिखावत्, शमीवत्, ऊर्णावत्, और श्रुमत् इन अणन्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में यञ् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

ञ्यादयस्तद्राजाः ॥ ११९ ॥

ञ्या० यंः, त० जाः । पूगाञ्ञ्य इत्यारभ्य उक्ताः प्रत्यया तद्राज सञ्ज्ञकाः स्युः । तथा चैवोदाहृतम् ॥

पूगाञ्ञ्योऽग्रामणी पूर्वात् इस योग से लेकर जो प्रत्यय कहे हैं वे तद्राज संज्ञक हों

इति पञ्चमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अथ पञ्चमाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

पादशतस्यसङ्ख्यादेर्वीप्सायांवुन्लोपश्च

पा०स्यं, सं०देः, वी०मुँ, वुन्, लोपः, च । पादशतान्तस्य ससङ्ख्यादेः प्रातिपदिकस्य वीप्सायां द्योत्यायां वुन् स्यात् । तत्सन्नियोगेन चान्तस्य लोपः । लोपवचन मनैमित्तिकार्थम् । अतोऽनस्थानिवत् । (पादः पत्) तद्धितार्थे इतिसमासः । द्वौ द्वौ पादौ ददाति–द्विपदिकां ददाति । द्वे द्वे शते ददाति–द्विशतिकां ददाति ॥

वीप्सा (अतीच्छा) द्योत्य होतो सङ्ख्यादि पादान्त और शतान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में वुन् प्रत्यय हो और उसके संयोग से पाद और शतके अन्त का लोप हो ॥ १ ॥

दण्डव्यवसर्गयोश्च ॥ २ ॥

दण्डव्यवसर्गयोः च । दण्डः-दमनम् । व्यवसर्गः-दानम् । दण्डव्यवसर्गयोर्गम्यमानयोःपादशतान्तस्य प्रातिपदिकस्य सङ्ख्यादेर्वुन् स्यात्, अन्तलोपश्च । अवीप्सार्थमिदम् । यथा- द्वौ पादौ दण्डितः-द्विपदिकान् दण्डितः । द्वौ पादौ व्यवसृजति-द्विपदिकां व्यवसृजति । द्विशतिकां दाण्डितः । द्विशतिकां व्यवसृजति ॥

दण्ड और व्यवसर्ग गम्यमान होतो सङ्ख्यादि पादान्त और शतान्त प्रातिपदिक से वुन् प्रत्यय हो और अन्त्य का लोप हो ॥ २ ॥

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥ ३ ॥

स्थूलादिभ्यः प्रकार वचने द्योत्ये कन् स्यात् । प्रकारोविशेषः । यथा-स्थूलप्रकारः-स्थूलकः । अणुकः ॥ (चञ्चद् बृहतो रुपसङ्ख्यानम्) ॥ चञ्चत्प्रकारः-चञ्चत्कः । बृहत्कः ॥ (सुराया अहौ) ॥ सुरावर्णोऽहिः-सुरकः ॥

प्रकार वचन (विशेष) द्योत्य हो तो स्थूलादि प्रातिपदिका से कन् प्रत्यय हो ३

अनत्यन्तगतौ क्तात् ॥ ४ ॥

अत्यन्तगति रशेषेण सम्बन्धः । तदभावोऽनत्यन्तगतिः । अनत्यन्तगतौगम्ये क्तान्तात् कन् स्यात् । यथा-भिन्नकः । छिन्नकः ॥

अनत्यन्त गति गम्यमान हो तो क्तान्त प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

न सामिवचने ॥ ५ ॥

सामि पर्याये उपपदे क्तान्तान्नकन् । यथा-सामिकृतम् । अर्द्धकृतम् ॥

सामि (अर्द्ध) वचन उपपद हो तो क्तान्त प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय न हो ॥ ५ ॥

बृहत्या आच्छादने ॥ ६ ॥

बृ० त्यां॰, आँ०ने। आच्छादने वर्त्तमानात् बृहतीशब्दात्स्वार्थे कन् स्यात्। यथा—द्वौ प्रावारोत्तरा सङ्गौसमौ--बृहतिकः॥

आच्छादन अर्थ में वर्त्तमान बृहती प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो॥ ६॥

अषडक्षाशितङ्ग्वलंकर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् खः॥ ७॥

अ०तँ, खः। अषडक्ष आशितङ्गु अलङ्कर्म, अलम्पुरुष इत्येतेभ्योऽध्युत्तरपदाच्च स्वार्थे खःस्यात्। यथा—अषडक्षीणः मन्त्रः। द्वाभ्यामेव कृत इत्यर्थः आशिता गावोऽस्मिन्निति--आशितं गवीनम्--अरण्यम्। निपातनात् पूर्वस्यमुम्। अलंकर्म्मणे अलङ्कर्मीणः। अलम्पुरुषीणः। ईश्वराधीनः। नित्योऽयं खः॥

अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्म, अलम्पुरुष और अधिउत्तरपद प्रातिपदिक से स्वार्थ में ख प्रत्यय हो॥ ७॥

विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम्॥ ८॥

वि०षा, अञ्चेः, अ०मँ। अदिक्स्त्रीवृत्तेरञ्चत्यन्तात्प्रातिपदिकात् खोवा स्यात् स्वार्थे। यथा—प्राक्, प्राचीनम्। प्रत्यक्, प्रतीचीनम्। अर्वाक्, अर्वाचीनम्॥

अञ्चत्यन्त प्रातिपदिक से दिशा स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर स्वार्थ में विकल्प से ख प्रत्यय हो॥ ८॥

जात्यन्ताच्छोबन्धुनि॥ ९॥

जा०तँ, छः, बँ०नि। यथा—ब्राह्मण जातीयाः। क्षत्रियजातीयः। वैश्यजातीयः॥

बन्धु अर्थ में वर्त्तमान जात्यन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ म छ प्रत्यय हो ॥ ९ ॥

स्थानान्ताद्विभाषासस्थानेनेतिचेत् १०

स्था०द्, विभाषा, स०ने, इति, चेत् । स्थानान्तात्प्रातिपदिकाच्छो वा स्यात् । सस्थानेतुल्येन चेत् स्थानान्तमर्थ व दित्यर्थः। यथा—पित्रा तुल्यः—पितृस्थानीयः । पितृस्थानः । मातृस्थानीया । मातृस्थाना । राजस्थानीयः । राजस्थानः ॥

स्थानान्त प्रातिपादिक से विकल्प करके छ प्रत्ययहो यदि दोनों की सदृशता होतो १०

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे । ११ ।

कि०त्, आमु० अ० र्षे । किमः एदन्तात् तिङव्ययाच्च,- यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे । यथा—किन्तमाम् । किन्तराम् प्राह्णेतमाम् पचातितमाम् । उच्चैस्तमाम् ।

किम् एकारान्तानिपात तिङन्त और अव्यय शब्दों मे विहित जो घ सञ्ज्ञक प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिकों से अद्रव्य प्रकर्षमें आमु प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

अमु चच्छन्दसि ॥ १२ ॥

अमु, च, छन्दसि । किमेत्तिङव्ययघादद्रव्यप्रकर्षे अमुरामुश्चस्याच्छन्दसि विषये । यथा—प्रतरम् । प्रतरांनय ॥

किम्, एकारान्त, तिङन्त और अव्यय शब्दों से विहित जो घसञ्ज्ञक प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिक से अद्रव्य प्रकर्ष तथा छन्दविषय में अमु और आमु प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

अनुगादिनष्ठक् ॥ १३ ॥

अ०नः, ठक् । यथा—अनुगदतीति--अनुगादीसएवआनुगादिकः ॥

स्वार्थ में अनुगादिन् शब्द से ठक् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

णचः स्त्रियामञ् ॥ १४ ॥

णचः, स्त्रियाम्, अञ् । कर्म्मव्यतिहारे स्त्रियां णच् विहित स्तदन्तात् स्वार्थेऽञ् स्यात् स्त्रियाम् । यथा-व्यावक्रोशी । व्यावहासी ॥

णच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में स्त्री लिङ्ग विषयक अञ् प्रत्यय हो १४

अणिनुणः ॥ १५ ॥

अण्, इनुणः । अभिविधौ भावइनुण विहितस्तदन्तात्स्वार्थेऽण् स्यात् । यथा-सांराविणम् । सांकूटिनंवर्त्तते ॥

इनुण प्रत्ययान्त शब्दसे स्वार्थ में अण प्रत्ययहो ॥ १५ ॥

विसारिणो मत्स्ये ॥ १६ ॥

वि० णः, मत्स्ये । मत्स्ये वाच्ये विसारिन्शब्दात् स्वार्थेऽण् स्यात् । यथा-वैसारिणोमत्स्यः ॥

मत्स्य (मछली) वाच्य होतो विसारिन् शब्दसे स्वार्थ में अण् प्रत्ययहो १६

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणनेकृत्वसुच्

क्रियाभ्यावृत्तिगणने संख्याशब्दात् स्वार्थे कृत्वसुच् स्यात् । यथा-पञ्चवारान् भुङ्क्ते-पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते । सप्तकृत्वः। अष्टकृत्वः । दशकृत्वः ॥

क्रियाभ्यावृत्ति (बार २ गिनने) अर्थ में संख्या वाचक शब्दों से स्वार्थ में कृत्व सुच् प्रत्ययहो ॥ १७ ॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥ १८ ॥

द्वि० भ्यः, सुच् । क्रियाभ्यावृत्तिगणने द्वित्रि चतुर् इत्येभ्यः

संख्या शब्देभ्यः सुच् स्तात् । यथा—द्विः पठति । त्रिः स्नाति । चतुः पिबति ॥

क्रियाभ्यावृत्ति गणन अर्थ में वर्त्तमान द्वि, त्रि और चतुर संख्या वाचक शब्दों से सुच् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

एकस्य सकृच्च ॥ १९ ॥

एकस्य, सकृत्, च। क्रियागणने एकशब्दस्य सकृदित्ययमादेशः स्यात् सुच्प्रत्ययः। यथा—सकृद्ददाति । सकृदधीते ॥

क्रिया गणन अर्थ में एक शब्दसे सुच् प्रत्यय और एक शब्दको सकृत् आदेश भी हो ॥ १९ ॥

विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ॥ २० ॥

वि०षा, बहोः, धा, अ०ले । क्रियाभ्यावृत्तिगणने बहुशब्दाद् विप्रकृष्टकाले वा धा स्यात् । यथा—बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते । बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते ॥

अविप्रकृष्ट (आसन्न) काल क्रियाभ्यावृत्ति गणन अर्थ में वर्त्तमान बहु शब्द से विकल्प करके धा प्रत्यय हो ॥ २० ॥

तत् प्रकृतवचने मयट् ॥ २१ ॥

प्राचुर्येण प्रस्तुतम्-प्रकृतम् । तस्यवचनम्-प्रतिपादनम् । भावे, अधिकरणे वा, ल्युट् । यथा—आद्ये-प्रकृतमन्नम्-अन्नमयम् । आनन्दमयं ब्रह्म । जलमयी भूमिः ॥

प्रकृतवचन अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से स्वार्थ में मयट् प्रत्यय हो

समूहवच्च बहुषु ॥ २२ ॥

स० तॅ, च, ब० षुँ । बहुषुप्रकृतेषूच्यमानेषु समूहवत् प्रत्ययाः स्युः । चान्मयट् । यथा-मोदकाः प्राचुर्येण प्रस्तुताः-मौदकिकम् । मोदकमयम् । शाष्कुलिकम् । शष्कुलीमयम् ॥

बहुत प्रकृत वचन वाच्य हों तो प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से समूहवत् प्रत्यय हों पक्ष में मयट् भी हो ॥ २२ ॥

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ॥ २३ ॥

अ० तँ, ञ्यः । अनन्तादिभ्यः स्वार्थे ञ्यः स्यात् । यथा-अनन्त एव-आनन्त्यम् । आवसथ एव-आवसथ्यम् । इति ह-ऐतिह्यम् । निपातसमुदायोऽयमुपदेशपारम्पर्ये वर्त्तते । भेषजमेव-भैषज्यम् ॥

अनन्त (जिसका अन्त न हो) आवसथ (निवासस्थान) इति ह (इसप्रकार से सुनाजाता है) और भेषज (औषध) शब्द से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो २३॥

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ॥ २४ ॥

दे० तॅ, ताँ० र्थ्ये, यत् । तादर्थ्ये देवताशब्दान्तात् प्रातिपदिकाच्चतुर्थीसमर्थात् यत् स्यात् । तदर्थएव--तादर्थ्यम्, स्वार्थे ष्यञ् । यथा-अग्निदेवतायै इदम्-अग्निदेवत्यम् । वायुदेवत्यम् ॥

चतुर्थीसमर्थ देवता शब्दान्त प्रातिपदिक से तादर्थ्य में यत् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

पादार्घाभ्यां च ॥ २५ ॥

तादर्थ्ये वाच्ये पादार्घशब्दाभ्यां चतुर्थीसमर्थाभ्यां यत् स्यात् । यथा-पादार्थमुदकम्-पाद्यम् । अर्घ्यम् ॥ **(नवस्यनूआदेशः, त्नप्-तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः)** । नूत्नम् । नूतनम् । नवीनम् । **(नश्च पुराणे प्रात्)** । पुराणार्थे वर्त्तमानात्प्रशब्दान्नो वाच्यः

चात् पूर्वोक्ताः । प्रणम् । प्रत्नम् । प्रतनम् । प्रीणम् ॥ (भाग-रूपनामभ्यो धेयः) ॥ भागधेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् ॥ (आग्नीध्र साधारणादञ्) ॥ आग्नीध्रम् । साधारणम् । स्त्रियाम् ङीष्-आग्नीध्री । साधारणी ॥

चतुर्थी समर्थ पाद और अर्घ (पानार्थ जल) शब्द से तादर्थ्य वाच्य हो तो स्वार्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

अतिथेर्ञ्यः ॥ २६ ॥

अ० ५, ञ्यः । तादर्थ्ये वाच्ये अतिथिशब्दात् ञ्य स्यात् । यथा-अतिथये इदम्-आतिथ्यम् ॥

तादर्थ्य वाच्य हो तो चतुर्थी समर्थ अतिथि शब्द से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो॥

देवात्तल् ॥ २७ ॥

देवशब्दात् स्वार्थे तल् स्यात् । यथा-देव एव-देवता ॥

देवशब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

अवेः कः ॥ २८ ॥

अविशब्दात् स्वार्थे कः स्यात् । यथा-अविरेव-अविकः । अवि ॥

(भेड, मेढा) शब्द से स्वार्थ में क प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

यावादिभ्यः कन् ॥ २९ ॥

याव इत्येवमादिभ्यः स्वार्थे कन् स्यात् । यथा-याव एव-यावकः । मणिकः ॥ ॥

याव (लाक्षा) आदि शब्दों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

लोहितान्मणौ ॥ ३० ॥

लो० त्, मणौ । मणौ वर्त्तमानाल्लोहितशब्दात्स्वार्थे कन् स्यात् । यथा—लोहितोमणिः—लोहितकः ॥

मणि अर्थ वर्त्तमान लोहित शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो ॥ ३० ॥

वर्णे चानित्ये ॥ ३१ ॥

वर्णे, च, अ० त्ये । अनित्ये वर्णेवर्त्तमानाल्लोहितशब्दात् स्वार्थे कन् स्यात् । यथा—लोहितकः कोपेन । (लोहितालिङ्ग बाधनं वा) लोहितिका । लोहिनिका कोपेन ॥

अनित्य वर्ण अर्थ में वर्त्तमान लोहित शब्दसे स्वार्थ में कन् प्रत्ययहो ॥३१॥

रक्ते ॥ ३२ ॥

लाक्षादिना रक्तेयो लोहित शब्दः तस्मात् कन् स्यात् । यथा—लिङ्ग बाधनं वेत्येव—लोहितिका, लोहिनिका—शाटी ॥

रक्त अर्थ में वर्त्तमान लोहित शब्दसे कन् प्रत्ययहो ॥ ३२ ॥

कालाच्च ॥ ३३ ॥

का०त्,च । कालशब्दादनित्ये वर्त्तमानाद्रक्ते च कन् स्यात् । यथा—कालकम् -मुखं वैलक्ष्येण । कालकःपटः । कालिका—शाटी ॥

अनित्य और रक्त अर्थ मे वर्त्तमान काल (काला) शब्दसे कन् प्रत्ययहो ॥

विनयादिभ्यष्ठक् ॥ ३४ ॥

वि० भ्यः, ठक् । विनयइत्येवमादिभ्यः स्वार्थे ठक् स्यात् ।

यथा-विनय एव-वैनियकः । सामयिकः ॥

विनय आदि प्रातिपदिकों में स्वार्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ३४ ॥

वाचो व्याहृतार्थायाम् ॥ ३५ ॥

वाचः, व्या०म् । सन्दिष्टार्थायां वाचि वर्त्तमानाद् वाक् शब्दा त्स्वार्थे ठक् स्यात् । यथा-सन्देश वाग् वाचिकं स्यात् ॥

सन्देशार्थ में वर्त्तमान वाक् शब्दसे स्वार्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ३५ ॥

तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ॥ ३६ ॥

त०त्, क०णः, अण् । व्याहृतार्थया वाचा यत्कर्म युक्तं तदभिधायिनः कर्मशब्दात् स्वार्थेऽण् स्यात् । यथा--कर्म्मैव--कार्मणम् । वाचिकंश्रुत्वा तथैव यत्कर्म क्रियते तत्कार्मण मित्युच्यते ॥ (अण्प्रकरणेकुलालवरुडनिषादकर्मारचण्डालमित्रामित्रेभ्यश्छन्दस्युप सङ्ख्यानम्) ॥ कुलालएव--कौलालः । वारुडः । नैषादः । कार्मारः । चाण्डालः । मैत्रः । अमित्रः ॥

सन्देशार्थ वाणीसे युक्त जो कर्म शब्दहै उससे स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

ओषधेरजातौ ॥ ३७ ॥

ओ०धेः, अ०तौ । अजातौवर्त्तमानादोषधशब्दात्स्वार्थेऽण् स्यात् । यथा--औषधं पिबाति । औषधं ददाति ।

जाति अर्थ न होतो ओषधि शब्दसे स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

प्रज्ञादिभ्यश्च ॥ ३८ ॥

प्र०भ्यः, च । प्रजानानीति--प्रज्ञः । प्रज्ञइत्येव मादिभ्यः स्वार्थेऽण् स्यात् । यथा--प्रज्ञएव--प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री ॥

मन्न आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ३८ ॥

मृदस्तिकन् ॥ ३९ ॥

मृदः, तिकन् । मृच्छब्दात्स्वार्थे तिकन् स्यात् । यथा-मृदेव-मृत्तिका ॥

मृत् शब्दसे स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय हो ॥ ३९ ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ॥ ४० ॥

प्रशंसायां वर्त्तमानान् मृच्छब्दात् सस्नइतीमौ स्याताम् । यथा-प्रशस्तामृद्-मृत्सा । मृत्स्ना ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान मृत् शब्दसे स्वार्थ में स और स्न प्रत्यय हो ॥ ४० ॥

वृकज्येष्ठाभ्यांतिल्तातिलौचच्छन्दसि

स्वार्थे स्याताम् । यथा-वृकातिः । ज्येष्ठतातिः ॥

प्रशंसार्थ में वृक और ज्येष्ठ शब्दसे छन्दोविषय होने पर यथाक्रम तिल् और तातिल् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥

ब० तं, शस् , का० तं, अ० म् । बह्वर्थादल्पार्थाच्च कारकवाचिनः शब्दाच्छस् वा स्यात् । यथा-बहूनिददाति बहुशोददाति । अल्पं ददाति-अल्पशोददाति ॥

कारक वाचक बहु अर्थ और अल्प अर्थ शब्दों से विकल्प करके शस् प्रत्यय हो ॥ ४२ ॥

संख्यैकवचनाच्चवीप्सायाम् ॥ ४३ ॥

सं० तं, वी० म् । वीप्सायां द्योत्यायां सङ्ख्या वाचिभ्यः प्राति-

पदिकेभ्यः एकवचनाच्च शस् वा स्यात् । यथा-द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति-द्विशः । त्रिशः । माषं माषं ददाति-माषशः । प्रस्थशः । पादशः ॥

वीप्सा द्योत्य होतो सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिक और एकवचन से विकल्प करके शस् प्रत्यय हो ॥ ४३ ॥

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ॥ ४४ ॥

प्र०गे॰, प० म्याः, तसिः । प्रतिना कर्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात्तसिः स्यात् । यथा-अभिमन्युरर्जुनतःप्रति ॥ (आद्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्) ॥ आदौ-आदितः । मध्यतः । अन्ततः।पृष्ठतः पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण-स्वरतः।वर्णतः॥

कर्मप्रवचनीय प्रतिके योगमें पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक से तसि प्रत्यय हो ॥ ४४ ॥

अपादानेचाहीयरुहोः ॥ ४५ ॥

अ०ने॰, च, अ॰हीयरुहोः । अपादाने या पञ्चमी तदन्तात् तसिः स्यात् । यथा-ग्रामादायाति-ग्रामतः ॥

हीय और रुहको छोड़कर अपादान में जो पञ्चमी विधान कीगई है तदन्त से तसि प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

अतिग्रहाऽव्यथनक्षेपेष्वकर्त्तरितृतीयायाः

अ०षु, अ॰०रि, तृ०याः । अकर्त्तरि तृतीयान्ताद् वा तसिः स्यात् । यथा-अतिक्रम्यग्रहः-अतिग्रहः । चारित्रेण अतिगृह्यते । चारित्रतोऽति गृह्यते । चरित्रेणान्यानतिक्रम्य वर्त्तत इत्यर्थः । अव्यथनः-अचलनः । वृत्तेन--नव्यथते- वृत्ततो--नव्यथते । वृत्तेन नचलतीत्यर्थः । क्षेपोनिन्दा । वृत्तेन क्षिप्तः । वृत्ततः--क्षिप्तः--वृत्तेननिं[illegible]र्थः ॥

आतिग्रह, अव्यथन और क्षेप अर्थ में जो तृतीया तदन्त प्रातिपदिक से विकल्प करके तसि प्रत्यय हो यदि उक्त तृतीया कर्त्ता में न हो तो ॥ ४६ ॥

हीयमान पापयोगाच्च ॥ ४७ ॥

ही०र्तृ, च ! हीयमान पापयुक्तादकर्त्तरि तृतीयान्ताद् वा तसिः स्यात्। यथा--वृत्तेन हीयते--वृत्ततोहीयते। वृत्तेनपापः--वृत्ततःपापः॥

हीयमान और पाप के योग में जो तृतीया तदन्त प्रातिपदिक से विकल्प करके तसि प्रत्यय हो यदि उक्त तृतीया कर्त्ता में न हो तो ॥ ४७ ॥

षष्ठ्या व्याश्रये ॥ ४८ ॥

नानापक्षसमाश्रयो व्याश्रयः। व्याश्रये गम्ये षष्ठ्यन्ताद्वा तसिः स्यात्। यथा--देवाअर्जुनतोऽभवन्। अर्जुनस्य पक्षे इत्यर्थः ॥

व्याश्रय गम्यमान होतो षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से विकल्प करके तासि प्रत्यय हो ॥४८॥

रोगाच्चापनयने ॥ ४९ ॥

रो०र्तृ, च, अं०ने। रोगोव्याधिः। चिकित्सायां गम्यमानायां रोगवाचिनः षष्ठ्यन्ताद्वा तसिः स्यात्। यथा--प्रवाहिकातः कुरु। प्रतीकारमस्याकुर्वित्यर्थः ॥

अपनयन (चिकित्सा) गम्यमान हो तो रोग वाचक षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से विकल्प करके तसि प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः ॥५०॥

(अभूततद्भाव इति वाच्यम्) ॥ विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्त्तमानाद् विकारशब्दात्स्वार्थे च्विर्वा स्या त्करोत्यादिभि-

योगे। यथा-अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति कृष्णी करोति। अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति-शुक्ली करोति। शुक्ली भवति। शुक्ली स्यात् ॥

सम्पूर्वक पद धातु के कर्त्ता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कृ, भू और अस्ति धातु के प्रयोग में च्वि प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहो रजसां लोपश्च ५१

अ० मृ, लोपः, च। एषां लोपः स्यात् च्विश्च प्रत्ययः। यथा-अनरुः-रुः सम्पद्यते तं करोति-अरूकरोति। अरू भवति। अरू स्यात्। मनस्। उन्मनी करोति। उन्मनी भवति। उन्मनी स्यात्। चक्षुस्। उच्चक्षूकरोति। उच्चक्षूभवति। उच्चक्षू स्यात्। चेतस्। विचेती करोति। विचेती भवति। विचेती स्यात्। रहस्। विरही करोति। विरही भवति। विरही स्यात्। रजस्। विरजीकरोति। विरजी भवति। विरजी स्यात् ॥

अरुस् (रक्त खदिर) मनस् (मन) चक्षुस् (नेत्र) चेतस् (चित्त) रहस् (एकान्त) और रजस् (धूली) शब्द से विकल्प करके च्वि प्रत्यय हो और उक्त शब्दों के अन्त्य का लोप भी हो ॥ ५१ ॥

विभाषा साति: कार्त्स्न्ये ॥ ५२ ॥

च्विविषये साति वा स्यात् साकल्ये। यथा-अग्निसाद् भवति शस्त्रम्, अग्नी भवति शस्त्रम्। उदकसाद् भवति लवणम्, उदकी भवति लवणम् ॥

कार्त्स्न्य (सर्व) गम्यमान हो तो च्व्यर्थ में विकल्प से साति प्रत्यय हो ॥

अभिविधौ सम्पदा च ॥ ५३ ॥

१-(७।४।३२) इतीत्वम् ॥ २-(७।४।२६) इति पूर्वस्य दीर्घः ॥

अभिविधिरभिव्याप्तिः। अभिविधौ गम्ये च्विविषये सातिः स्यात्। सम्पदा योगे, चात् कृ भ्वस्तिभिश्च। यथा–अग्निसात् सम्पद्यते-अग्निसाद् भवति शस्त्रम्, अग्नी भवति। जलसात् सम्पद्यते, जलीभवति-लवणम् ॥

अभिविधि गम्यमान हो तो च्व्यर्थ में और सम्पदा तथा कृ, भू और अस्ति के योग में विकल्प से साति प्रत्यय हो ॥ ५३ ॥

तदधीनवचने ॥ ५४ ॥

सातिः स्यात् कृभ्वस्तिभिः, सम्पदा च-योगे। यथा–राजसात् करोति। राजसाद् भवति। राजसात् सम्पद्यते। राजाधीनं करोतीत्यर्थः॥

तदधीन वचन गम्य मान होतो कृ, भू और अस्ति तथा सम्पदा के योग में साति प्रत्ययहो ॥ ५४ ॥

देये त्रा च ॥५५॥

तदधीने देये त्रा स्यात् सातिश्च कृभ्वस्ति योगे। सम्पदा योगे यथा–च। विप्राधीनं देयं करोति–विप्रत्रा करोति। विप्रसात् करोति। विप्रत्रा भवति। विप्रत्रा स्यात्। विप्रत्रा सम्पद्यते ॥

दातव्य तदधीन वचन गम्यमान होतो कृ भू और अस्ति के योग में त्रा और साति प्रत्ययहो ॥ ५५ ॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीया सप्तम्यो र्बहुलम् ॥५६॥

दे० भ्यः, द्वि०योः, बं०म्। एभ्यो द्वितीयान्तेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च त्रा बहुलं स्यात्। यथा–देवान् गच्छति–देवत्रा गच्छति। देवेषु वसति–देवत्रा वसति। मनुष्यान् गच्छति–मनुष्यत्रा गच्छति।

मनुष्येषु वसति--मनुष्यत्रा वसति । पुरुषा- गच्छति--पुरुषत्रा गच्छति । पुरुषेषु गच्छति--पुरुषत्रा गच्छति । पुरून् गच्छति--पुरुत्रा गच्छति । पुरुषु वसति--पुरुत्रा वसति । मर्त्यान्, मर्त्येषु वसति--मर्त्यत्रा वसति । बहुलोके ऽन्यत्रापि बहुत्रा जीवतोमनः ॥

द्वितीयान्त और सप्तम्यन्त देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु(बहुत) और मर्त्य (नर) प्रातिपदिक से बहुल करके त्रा प्रत्ययहो ॥ ५६ ॥

अव्यक्तानुकरणाद्व्यजवरार्धाद नितौडाच् ॥ ५७ ॥

अ० तं, द्व्य० तं अ० तौं, डाचं । द्व्यजेव अवरं न्यूनम्, नतु ततो न्यूनम् । अनेकाजिति यावत् तादृशमर्धं यस्य तस्माद्व्यक्तानुकरणादनितिपराड् डाच् स्यात् कृभ्वस्ति योगे । (डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम) ॥ (नित्य मान्रेडिते डाचीति वाच्यम्) ॥ डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन् परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात् । इति तकार पकारयोः पकारः । यथा—पटपटा करोति । पटपटा भवति । पटपटा स्यात् ॥

जिस ध्वनि में अकारादि वर्ण पृथक् २ स्पष्ट नहीं जाने जाते उसे अव्यक्त कहते हैं । इति शब्द जिससे परे नहो और जिसके एक अर्ध भाग में दो अच् हों ऐसे अव्यक्तानुकरण प्रातिपदिक से कृ भू और अस्ति (अस) धातु के योग में डाच् प्रत्ययहो ॥ ५७ ॥

कृञो द्वितीय तृतीयशम्बबीजात् कृषौ

कृञः, द्वि० तं, कृषौ । कर्षणेऽर्थे द्वितीयादिभ्यो डाच् स्यात् कृञ एवयोगे । यथा—द्वितीयम्, तृतीयम्—कर्षणं करोति—द्वितीया करोति, तृतीयाकरोति । शम्बशब्दः प्रतिलोमः । अतिलोमंकृष्टंक्षेत्रं पुनः

प्रति लोमं कर्षति—शंबा करोति। बीजेन सह कर्षति—बीजा करोति॥

कृषि (खेती) अभिधेय होतो कृञ् के ही योग में द्वितीय, तृतीय और शम्ब (तिरछा) और बीज शब्दसे डाच् प्रत्ययहो ॥ ५८ ॥

सङ्ख्यायाश्चगुणान्तायाः ॥ ५९ ॥

स०यांः, च, गु०यांः। कृषौ कृञो योगे डाच् स्यात्। यथाः द्विगुणं विलेखनं करोति क्षेत्रस्य-द्विगुणाकरोति क्षेत्रम् ॥

कृषि अभिधेय होतो गुणशब्दान्त सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिक से कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

समयाच्चयापनायाम् ॥ ६० ॥

स०तं, च, या०मं। कृञोयोगे डाच् स्यात्। यथा--समया करोति। कालं यापयतीत्यर्थः ॥

यापना (निरर्थक खोना) गम्यमान होतो कृञ् योग में समय प्रातिपदिक से डाच् प्रत्यय हो ॥ ६० ॥

सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने ॥ ६१ ॥

स० तं, अं० ने। आभ्यामतिव्यथनेडाच् स्यात् कृञो योगे। सपत्रा करोति मृगं व्याधः। सपत्रं शरमस्यशरीरे प्रवेशयतीत्यर्थः। निष्पत्रा करोति। शरीराच्छरमपरपार्श्वे निष्क्रामयतीत्यर्थः ॥

अति व्यथन (अतिपीडन) गम्यमान होतो कृञ् के योगमें सपत्र (भयपरके) और निष्पत्र शब्द से डाच् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

निष्कुलान्निष्कोषणे ॥ ६२ ॥

नि० तं, निं० णे। निष्कोषणम्-अन्तर वयवानं बहिर्निष्कासनम्। यथा—निष्कुला करोति दाडिमम्। निष्कुष्णातीत्यर्थः ॥

निष्कोषण (भीतर के अवयवों को बाहर निकालना) अर्थ में वर्त्तमान निष्कुल शब्द से कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय हो ॥ ६२ ॥

सुखप्रियादानुलोम्ये ॥ ६३ ॥

सु० तं, आँ० म्ये । आभ्यामानुलोम्येवर्त्तमानाभ्यां कृञो-योगे डाच् स्यात् । यथा-सुखा करोति, प्रिया करोति गुरुम् । अ-नुकूलाचरणेनाऽनन्दयतीत्यर्थः ॥

आनुलोम्य अनुकूलता अर्थ में वर्त्तमान सुख और प्रिय शब्द से कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

दुःखात् प्रातिलोम्ये ॥ ६४ ॥

प्रातिलोम्ये दुःखशब्दाड् डाच् स्यात् कृञोयोगे । प्रातिलोम्यम्-प्रतिकूलत्वम् । यथा-दुःखा करोति भृत्यः । स्वामिनं पीडयतीत्यर्थः ॥

प्रातिलोम गम्यमान हो तो दुःखशब्द से कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय हो ॥

शूलात् पाके ॥ ६५ ॥

शूलशब्दात् पाकविषये डाच् स्यात् कृञो योगे । यथा-शूला करोति-मांसम् । शूलेन पचतीत्यर्थः ॥

पाक गम्यमान हो तो शूल (लोहेका कांटा) शब्दसे कृञ् के योगमें डाच् प्रत्ययहो॥

सत्यादशपथे ॥ ६६ ॥

स०तं, अँ०थे । अशपथे सत्यशब्दाड् डाच् स्यात् कृञोयोगे । यथा-सत्या करोति भाण्डं वणिक्क्रमयैतत् क्रेतव्यमिति तथ्यं करोति ॥

अशपथ (सत्य) अर्थ में वर्त्तमान सत्य शब्दसे कृञ् के योगमें डाच् प्रत्ययहो ६६

मद्रात् परिवापणे ॥ ६७ ॥

मद्रशब्दात् परिवापणे डाच् स्यात् कृञो योगे । मद्र्ल शब्दः मङ्गलार्थः । परिवापणम्- मुण्डनम् । मङ्गलं मुण्डनं करोति—मद्राकरोति । (भद्राचेति--वाच्यम्) । भद्रा करोति । अर्थः प्राग्वत् ॥

परिवापण अर्थ में वर्त्तमान मद्र शब्दसे कृञ् के योग में डाच् प्रत्ययहो ॥ ६७॥

समासान्ताः ॥ ६८ ॥

अधिकारोय मापाद परिसमाप्तेः ॥

इस पाद की समाप्ति तक समासान्त प्रत्ययों का अधिकार है ॥ ६८ ॥

न पूजनात् ॥ ६९ ॥

पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ताः न स्युः।यथा—सुराजा।अति राजा॥

पूजनवाचक शब्दों से परे समासान्त प्रत्यय न हों।।यह नियम सु,अति के लियेहै६९

किमः क्षेपे ॥ ७० ॥

क्षेपे यत्किं शब्द स्तस्मात् परं यत् तदन्तात् समासान्ता न स्युः । यथा—कुत्सितो-राजा-किं राजा । किं सखा योऽभिद्रुह्यति । किं गौर्यो न वहति ॥

क्षेप(निन्दा) अर्थ में जो किं शब्द उससे परे जो शब्द तिससे समासान्त प्रत्यय न हों॥

नञस्तत्पुरुषात् ॥ ७१ ॥

नञः, त० तं । समासान्तो न स्यात् । यथा—अराजा । असखा ॥

नञ् तत्पुरुष से परे समासान्त प्रत्यय न हो ॥ ७१ ॥

पथो विभाषा ॥ ७२ ॥

पथेः, वि० षा । नञ्पूर्वात् पथो वा समासान्तः स्यात्। यथा—अपथम् । अपन्थाः ॥

नञ् से परे जो पथिन् शब्द तदन्त तत्पुरुषसे समासान्त प्रत्यय विकल्पसे हो ७२

बहुव्रीहौ सङ्ख्येये डजबहुगणात् ७३

ब० हौ, सं० ये, डच्, अ० त्।सङ्ख्येये यो बहुव्रीहि स्ततः डच् स्यात्। यथा—उपदशाः । उपविंशाः । द्वित्राः । पञ्चषाः ॥ (सङ्ख्यायास्तत्पुरुषस्य वाच्यः) ॥ निर्गतानि त्रिंशतो निस्त्रिंशानि-वर्षाणि चैत्रस्य।निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यः निस्त्रिंशःखड्गः॥

बहुगणको छोड़कर सङ्ख्येय में जो बहुव्रीहि तदन्त शब्द से समासान्त डच् प्रत्यय हो॥ ७३ ॥

ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ॥ ७४ ॥

ऋ० मं, अं, अं० क्षे । ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः स्यात्, अक्षेया धूस्तदन्तस्यतु न। यथा—अर्द्धर्चः । धर्मस्य पूः-धर्म्मपुरम् । द्वीपम् । राजधुरा । जलपथः ॥

अक्ष वर्जित ऋक्, पुर्, अप्,धुर् और पथिन् शब्दान्त समास से अ प्रत्यय हो

अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ७५

अचं, अ० तं, सा० म्नः । इदं पूर्वात् सामलोमान्तात् समासादच् स्यात् । यथा—प्रतिसामम् ।अनुसामम् ।अवसामम् ।प्रतिलोमम् । अनुलोमम् । अवलोमम् ॥ (कृष्णोदक् पाण्डुसङ्ख्या पूर्वाया भूमे रजिष्यते) ॥ कृष्णभूमः । उदक्भूमः । पाण्डुभूमः । द्विभूमः-प्रसादः ॥ (सङ्ख्याया नदी गोदावरीभ्यां च) ॥ यथा—पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् ॥

आति, अनु और अवपूर्वक साम और लोम शब्दान्त समास से अच् प्रत्यय हो

अक्ष्णोऽदर्शनात् ॥ ७६ ॥

अक्ष्णः,अ०तृ०। अदर्शनादन्यत्र योऽक्षिशब्द स्तदन्तादच् स्यात्। यथा—गवामक्षीव--गवाक्षः ॥

दर्शनसे भिन्न अर्थ में जो अक्षि (आंख) शब्द तदन्त प्रातिपदिक से अच् प्रत्यय हो ॥

अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाऽक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाऽहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः ७७

इमे पञ्च विंशतिः अजन्ता निपात्यन्ते। आद्यस्त्रयो बहुव्रीहयः। यथा—अविद्यमानानि चत्वारि यस्य—असावचतुरः। विगतानि चत्वारि यस्य-सविचतुरः। शोभनानि चत्वारि यस्य—असौ सुचतुरः। एकादश द्वन्द्वाः। स्त्रीच पुमांश्च—स्त्रीपुंसौ। धेनुश्चाऽनड्वांश्च-धेन्वनडुहौ। ऋक् च सामच—ऋक्सामे। वाक् च मनश्च—वाङ्मनसे। अक्षि च भ्रुवौ च—आक्षिभ्रुवम्। दाराश्च गावश्च—दारगवम्। ऊरू च अष्ठीवन्तौ च--ऊर्वष्ठीवम्। पादौच अष्ठीवन्तौ च--पदष्ठीवम्। नक्तं च दिवा च--नक्तंदिवम्। रात्रौ च दिवा च--रात्रिन्दिवम्। अहनि च दिवा च--अहर्दिवम्। वीप्सायां द्वन्द्वो निपा-

त्यते। अहन्यह-नीत्यर्थः। सरजसमिति साकल्येऽव्ययीभावः। बहुव्रीहौ तुसरजः पङ्कजम्। निश्चितंश्रेयः--निश्श्रेयसम्। पुरुषस्यायुः--पुरुषायुषम्। द्वे आयुषी समाहृते--द्व्यायुषम्। त्र्यायुषम्। ऋक् च यजुश्च--ऋग्यजुषम्। उक्षशब्दान्तास्त्रयः कर्मधारयः। जातोक्षः। महोक्षः। वृद्धोक्षः। शुनः समीपम्--उपशुनम्, टिलोपाभावः,सम्प्रसारणञ्च निपात्यते। गोष्ठश्वा--गोष्ठश्वः॥ (त्र्युपाभ्यां चतुरो जिष्यते)। त्रिचतुराः चतुर्णां समीपे--उपचतुराः॥

अचतुर, विचतुर, सुचतुर, स्त्रीपुंस (स्त्रीपुरुष) धेन्वनडुह (गायबैल) ऋक्साम, वाङ्मनस (मनवाणी) अक्षिभ्रुव (आंख भौंह) दारगव (स्त्री गौ) ऊर्वष्ठीव (जानु जङ्घा) पदष्ठीव (पैर और जानु) नक्तंदिव (रात्रिदिन) रात्रिंदिव, अहर्दिव (दिन २ में) सरजस (सर्व) निश्श्रेयस, पुरुषायुष, द्व्यायुष, त्र्यायुष, ऋग्यजुष, जातोक्ष (युवा साँढ़) महोक्ष (बड़ाबैल) वृद्धोक्ष (बूढ़ाबैल) उपशुन और गोष्ठश्व शब्द समासमें अच् प्रत्ययान्त निपातित हैं॥ ७७॥

ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः॥ ७८॥

आभ्यां परो यो वर्च्चश्शब्दस्तदन्तात्समासादच् स्यात्। यथा–ब्रह्मवर्चसम्। हस्तिवर्चसम्॥ (पल्य राजभ्यां चेति वाच्यम्)॥ पल्यवर्चसम्। राजवर्चसम्॥

ब्रह्म और हस्ति शब्दसे परे जो वर्चस् (प्रकाश) शब्द तदन्त से समासान्त अच् प्रत्ययहो॥ ७८॥

अवसमन्धेभ्यस्तमसः॥ ७९॥

अ० भ्यः, तमसः। अव सम् अन्ध इत्येभ्यो यः परस्तमश्शब्दस्तदन्तात्समासादच् स्यात्। यथा–अवतमसम्। सन्तमसम्। अन्धतमसम्। महत्तम इत्यर्थः॥

अव, सम् और अन्ध शब्दसे परे जो तमस् शब्द तदन्त से समासान्त अच् प्रत्यय हो॥ ७९॥

श्वसोवसीयः श्रेयसः ॥ ८० ॥

श्वसेः,व०सेः । श्वसः परो यौ वसीयः श्रेयः शब्दौ तदन्तात्समासादच् स्यात् । यथा—श्वोवसीयसम्, श्वश्श्रेयसंते भूयात् ॥
श्वस् से परे जो वसीयस् और श्रेयस् शब्द तदन्त समाससे अच् प्रत्यय हो ॥

अन्ववतप्ताद्रहसः ॥ ८१ ॥

अ० तं, र० सेः । अनु अव तप्त इत्येभ्यः परो यो रहश्शब्दस्तदन्तात्समासादच् स्यात् । यथा—अनुरहसम् । अवरहसम् । तप्तरहसम् ॥
अनु, अव और तप्त शब्द से परे जो रहस् (एकान्त) शब्द तदन्त समाससे अच् प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ॥ ८२ ॥

प्रतेः,उरसेः,स० तं । सप्तम्यर्थे वर्त्तमानात् प्रतेः परे य उरः शब्दस्तदन्तात्समासादच् स्यात् । यथा—उरसि प्रति—प्रत्युरसम् । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः ॥
प्रति उपसर्ग से परे जो सप्तमीस्थ उरस् शब्द तदन्त समाससे अच् प्रत्यय हो ॥

अनुगवमायामे ॥ ८३ ॥

अ० मं, आं०मे । दीर्घत्वेऽनुगवमिदं निपात्यते । यथा—अनुगवं यानम् ॥ (यस्य चायामः) इति समासः ॥
दीर्घता वाच्य होतो अनुगव यह शब्द अच् प्रत्ययान्त निपातित है ॥ ८३ ॥

द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ॥ ८४ ॥

अच् प्रत्ययष्टिलोपः समासश्च निपात्यते । यावती प्रकृतौ वेदिः

ततोऽद्विगुणा, त्रिगुणा वा-अश्वमेधादौ । तत्रेदं निपातनम् ।
वेदि वाचक द्विस्तावा और त्रिस्तावा शब्द अच् प्रत्यान्त निपातित हैं ८४

उपसर्गादध्वनः ॥ ८५ ॥

उ० तं, अ०नः । उपसर्गात् परोयोऽध्वन् शब्दस्तदन्तात्समासादच् स्यात् । यथा—प्रगतोऽध्वानम्— प्राध्वोरथः प्राध्वम्-शकटम्
उपसर्ग से परे जो अध्वन् (मार्ग) शब्द तदन्त से समासान्त अच् प्रत्ययहो

तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः ८६

त० स्य, अ० लेः, सं० देः । सङ्ख्याव्ययादेः अङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच् स्यात् । यथा—द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य—द्व्याङ्गुलं दारु । निर्गतमङ्गुलिभ्यः-निरङ्गुलम् ॥
सङ्ख्यादि तथा अव्ययादि अङ्गुलि शब्दान्त तत्पुरुषसे समासान्त अच् प्रत्ययहो

अहस्सर्वैकदेश सङ्ख्यात पुण्याच्चरात्रेः

अ० तं, च, रात्रेः।एभ्यो रात्रेरच् स्यात्, चात् सङ्ख्याव्ययादेः । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् यथा--अहश्च रात्रिश्च- अहोरात्रः । सर्वा रात्रि-सर्वरात्रः । पूर्वं रात्रेः । पूर्वरात्रः । संख्याता रात्रिः-संख्यातरात्रः । पुण्यारात्रिः--पुण्यरात्रः । द्वयोरात्र्योः- समाहारः—द्विरात्रः । अतिक्रान्तो रात्रिम्—अतिरात्रः ॥
अहः (दिन) सर्व एकदेश संख्यात पुण्य से संख्यादि तथा अव्ययादि से परे रात्रि शब्दान्त तत्पुरुष से अच् प्रत्ययहो ॥ ८७ ॥

अह्नोऽह्न एतेभ्यः ॥ ८८ ॥

अह्नः, अह्नः, एतेभ्यः । सर्वादिभ्यः परस्याह्नशब्दस्याह्ना-

देशः स्यात्समासान्तेपरे । यथा--द्वयोरह्नोर्भवः--द्व्याह्नः । त्र्याह्नः अहरतिक्रान्तः--अत्यह्नः । सर्वाह्णः पूर्वाह्णः । अपराह्णः ॥

समासान्त अच् प्रत्यय परे होतो सर्वादि शब्दों से परे अहन् शब्द को अह्न आदेश हो ॥ ८८ ॥

न सङ्ख्यादेः समाहारे ॥ ८९ ॥

समाहारे वर्त्तमानस्याहः शब्दस्य सङ्ख्यादेरह्नादेशो न स्यात् । यथा -द्वयोरह्नोः समाहारः--द्व्यहः । त्र्यहः ॥

समाहार (एकत्र) अर्थ में वर्त्तमान सङ्ख्यादि तत्पुरुष के अहन् शब्द को अह्न आदेश न हो ॥ ८९ ॥

उत्तमैकाभ्यां च ॥ ९० ॥

आभ्यामह्ना देशो न स्यात् । यथा--पुण्याहः । एकाहः ॥

उत्तम (पवित्र) और एक शब्दसे परे अहन् शब्दको अह्न आदेश न हो ।९०।

राजाहस्सखिभ्यष्टच् ॥ ९१ ॥

रा०भ्यः, टच् । इदमन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् । यथा--महाराजः । परमाहः । राज्ञः सखा--राजसखः ॥

राजन् अहन् और सखिशब्दान्त प्रातिपदिक से टच् प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

गोरतद्धितलुकि ॥ ९२ ॥

गोः, अ० किं । गोशब्दान्तात् तत्पुरुषाट् टच् स्यात्समासान्तो न तद्धितलुकि । यथा—पञ्चगवधनः । पञ्चानां गवां समाहारः ॥

तद्धितलुक् विषयक समास वर्जित गो शब्दान्त तत्पुरुष से टच् प्रत्यय हो ॥

अग्राख्यायामुरसः ॥ ९३ ॥

अ० मूँ, उ० सं: । अग्राख्यायामुरः शब्दान्तात्तत्पुरुषाद् टच् स्यात् । यथा—अग्रम्-प्रधानम् । अश्वानामुर इव--अश्वोरसम् । मुख्योऽश्व इत्यर्थः ॥

अग्राख्या में वर्त्तमान उरस् शब्दान्त तत्पुरुष से टच् प्रत्यय हो ॥ ९३ ॥

अनोश्मायस्सरसां जातिसञ्ज्ञयोः ॥ ९४ ॥

अ० मूँ, जा० योः । अनस्, अश्मन् अयस् सरस् इत्येवमन्तात् तत्पुरुषाद् टच् स्यात्, जातौ, सञ्ज्ञायां च यथा--उपानसम् । अमृताश्मः । कालायसम् । मण्डूकसरसम् । इति जातिः । महानसम् । पिण्डाश्मः । लोहितायसम् । जलसरसम् । इतिसञ्ज्ञा ॥

जाति और सञ्ज्ञा विषयमें अनस् (शकट) अश्मन् (पत्थर) अयस् (लोहा) और सरस् (तालाब) शब्दान्त तत्पुरुष से टच् प्रत्यय हो ॥ ९४ ॥

ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ॥ ९५ ॥

ग्रामकौटाभ्यां परोयस्तक्षन् शब्दस्तदन्तात्तातत्पुरुषाट् टच् स्यात् । यथा--ग्रामस्य तक्षा--ग्रामतक्षः । बहूनांसाधारण इत्यर्थः । कुट्यांभवः कौटः--स्वतन्त्रः । स चासौ तक्षाच --कौटतक्षः । स्वतन्त्र कर्मजीवी न कस्यचित् प्रतिबद्ध इत्यर्थः ॥

ग्राम और कौट से परे तक्षन् (बढ़ई) शब्दान्त तत्पुरुषसे टच् प्रत्ययहो ९५

अतेः शुनः ॥ ९६ ॥

अतिशब्दात्परो यः श्वन् शब्दस्तदन्तात्तत्पुरुषात् टच् स्यात् । यथा--अतिक्रान्तः श्वानम्- अतिश्वोवराहः । जवव नित्यर्थः । अतिश्वः सेवकः सुष्टुस्वामिभक्त इत्यर्थः । अतिश्वी सेवा । अतिनीचेत्यर्थः ॥

अति शब्द से परे जो श्वन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से टच् प्रत्ययहो ॥ ९६ ॥

उपमानादप्राणिषु ॥ ९७ ॥

उ० तं, अ० षुं । अप्राणिविषयकोपमानवाचिनः शुनष्टच् स्यात् । यथा—आकर्षः श्वेव-आकर्षश्वः ॥

अप्राणी में वर्त्तमान जो उपमान वाचक श्वन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥ ९७ ॥

उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ॥ ९८ ॥

उ० तं, चं, सक्थ्नः । उत्तर मृग पूर्व इत्येभ्यः परो यःस क्थिशब्दश्चाद्उपमानाच्च तदन्तात् तत्पुरुषाट् टच् स्यात्। यथा—उत्तरसक्थः । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । फलकमिव सक्थि-फलकसक्थम् ॥

उत्तर मृग पूर्व और उपमानवाचक से परे जो सक्थिन् (ऊरु) शब्द तदन्त तत्पुरुष से परे टच् प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

नावो द्विगोः ॥ ९९ ॥

नावः, द्विगोः । नौशब्दान्ताद् द्विगोष्टच् स्यात्। यथा—द्वाभ्यां नौभ्यामागतम्-द्विनावरूप्यम् । द्विनावमयम् ॥

नौ (नाव) शब्दान्त द्विगु से समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

अर्द्धाच्च ॥ १०० ॥

अर्द्धात्, च । अर्द्धान्नावष्टच् स्यात्। यथा—नावोऽर्धम्-अर्धनावम्-क्लीबत्वं लोकतः ॥

अर्द्ध शब्द से परे जो नौ शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥

खार्याः प्राचाम् ॥ १०१ ॥

द्विगोरर्धाच्च खार्याष्टज्वा स्यात्। यथा—द्विखारम्। द्विखारि। अर्द्धखारम्। अर्धखारि॥

प्राग्देशियों के मत में अर्ध तथा द्विगु सञ्ज्ञक खारी शब्दान्त से परे समासान्त टच् प्रत्यय हो॥ १०१॥

द्वित्रिभ्यामञ्जलेः॥ १०२॥

द्वि० मँ, अञ्जेलेः। द्वित्रिभ्यां परो योऽञ्जलिशब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषात टच् स्यात्। यथा—द्वावञ्जली समाहृतौ-द्व्यञ्जलम्।त्र्यञ्जलम्॥

द्वि और त्रि शब्द से परे जो अञ्जलि शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो॥

अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि॥ १०३॥

अ० तँ, न० तँ, छन्दँसि। अन्नन्तादसन्ताच्च नपुंसकात्तत्पुरुषाच्छन्दसि टच् स्यात्। यथा—ब्रह्मसामं भवति। देवच्छन्दसानि॥

छन्द विषय में अन्नन्त और असन्त नपुंसकलिङ्ग तत्पुरुष से टच् प्रत्यय हो॥ १०३॥

ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्॥ १०४॥

ब्रह्मणः, जा० मँ। ब्रह्मान्तात्तत्पुरुषाट् टच् स्यात् समासेन जानपदत्वमाख्यायते चेत्। यथा—सुराष्ट्रे ब्रह्मा--सुराष्ट्रब्रह्मः॥

जनपद की आख्या गम्यमान हो तो ब्रह्मन् शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो॥ १०४॥

कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्॥ १०५॥

कु० मँ, अ० मँ। तत्पुरुषे समासे आभ्यां ब्रह्मणो वा टच् स्यात्। यथा—कुत्सितो ब्रह्मा-कुब्रह्मः। महाब्रह्मः।ब्राह्मणवाचको ब्रह्मन्शब्दः

कु और महत् शब्द से परे जो ब्रह्मन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ १०५ ॥

द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ॥ १०६ ॥

द्व० तें, चु० तें, सँ० रें। समाहारे चवर्गान्ताद् दषहान्ताच्च द्वन्द्वाद् टच् स्यात्। यथा—वाक् च त्वक् च-वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृशदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम् ॥

समाहार में चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त द्वन्द्व से समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥ १०६ ॥

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ॥ १०७ ॥

अव्ययीभावे शरदादिभ्यष्टच् स्यात्समासान्तः। यथा—शरदः समीपम्-उपशरदम्। प्रतिशरदम्। उपविपाशम्। प्रतिविपाशम् ॥

अव्ययीभाव समास में शरत् आदि प्रातिपदिकों से समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥

अनश्च ॥ १०८ ॥

अनः, च। अन्नन्तादव्ययीभावाट् टच् स्यात् समासान्तः। यथा—उपराजम्। अध्यात्मम्। प्रत्यात्मम् ॥

अन्नन्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥ १०८ ॥

नपुंसकादन्यतरस्याम् ॥ १०९ ॥

न० तें, अ० म। अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट् टज्वा स्यात्। यथा—उपचर्मम्। उपचर्म्म ॥

अन्नन्त नपुंसक अव्ययीभाव से विकल्प करके समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥

नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ॥ ११० ॥

एभ्यो वा टच् स्यात्। यथा—नद्याः समीपम्-उपनदम् । उपनदि। उपपौर्णमासम्। उपपौर्णमासि। उपाग्रहायणम्। उपाग्रहायणि ॥
नदी, पौर्णमासी और आग्रहायणी (मार्गशीर्ष की पूर्णिमा) शब्दान्त अव्ययीभाव से समासान्त विकल्प से टच् प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

झयः ॥ १११ ॥

झयन्तादव्ययीभावाट् टच् वा स्यात् । यथा—उपसमिधम्। उपसमित्।
झयन्त अव्ययीभाव से विकल्प करके समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

गिरेश्च सेनकस्य ॥ ११२ ॥

गिरेः, च, से० स्य । गिर्यन्तादव्ययीभावाद् टज्वा स्यात् । सेनकग्रहणं पूजार्थम्। यथा— उपगिरम्। उपगिरि।
सेनक जी के मत में गिरि शब्दान्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् प्रत्यय हो ॥ ११२

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच् ११३

स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात् । यथा—दीर्घे सक्थिनी यस्य—असौ दीर्घसक्थः। विशालाक्षः ॥
स्वाङ्ग वाचक सक्थि (ऊरु) और अक्षि शब्दान्त बहुव्रीहि समास से षच् प्रत्यय हो॥

अङ्गुलेर्दारुणि ॥ ११४ ॥

अ०ले:,दारुणि। दार्वर्थेऽङ्गुल्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात्।

यथा-पञ्चाङ्गुलयो यस्य तत् पञ्चाङ्गुलंदारु-अङ्गुलिसदृशावयवं धान्यादिविक्षेपणकाष्ठमुच्यते ॥

दारु अर्थ में अङ्गुलि शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त षच् प्रत्यय हो ॥११४॥

द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः ॥ ११५ ॥

बहुव्रीहावाभ्यां मूर्ध्नः षः स्यात् । यथा-द्विमूर्द्धः । त्रिमूर्धः ।

द्वि और त्रि शब्द से परे जो मूर्द्धन (मस्तक) तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त ष प्रत्ययहो ॥ ११५ ॥

अप्पूरणी प्रमाण्योः ॥ ११६ ॥

पूरणार्थप्रत्यान्तं यत् स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात् । यथा-कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः-कल्याणी पञ्चमा-रात्रयः । स्त्री प्रमाणी यस्य--सः स्त्री प्रमाणः ॥

पूरण प्रत्ययान्त और प्रमाण्यन्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्ययहो ११६

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ॥ ११७ ॥

बहुव्रीहावाभ्यां लोम्नोऽप् स्यात् । यथा-अन्तर्गतानि लोमान्यस्याऽन्तर्लोमः प्रावारः । बहिर्लोमः पटः ॥

बहुव्रीहि समास में अन्तर् (भीतर) और बहिस् शब्दसे परे जो लोमन् उससे समासान्त अप् प्रत्ययहो ॥ ११७ ॥

अञ् नासिकायाः सञ्ज्ञायां नसं चाऽस्थूलात् ॥ ११८ ॥

अच्, ना० याः, स० मं, नसम्, च, अ०लात् । नासिकान्ताद्

बहुव्रीहेरच् स्यात् । नासिकाशब्दश्च नसमापद्यते, न तु स्थूल पूर्वात् । यथा—द्रुरिवनासिकायस्य—द्रुणसः । खरणसः ॥ (खुरखराभ्यां नस् वक्तव्यः) ॥ खुरणाः । खरणाः । पक्षे—(अजपीष्यते) ॥ खुरणसः । खरणसः ॥

स्थूल शब्दसे परे न होतो सञ्ज्ञागम्यमान होनेपर नासिका शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय और नासिका शब्दको नस आदेश हो ॥ ११८ ॥

उपसर्गाच्च ॥ ११९ ॥

उ० तं, च । उपसर्गात् परोयो नासिकाशब्दस्तदन्ताद् बहुव्रीहेरच् स्यात् । नासिकाया नसादेशश्च । असञ्ज्ञार्थमिदं वचः । यथा–उन्नता-नासिका यस्यासावुन्नसः ॥ (वेग्रोवक्तव्यः) ॥ विगतानासिका, यस्य–विग्रः ॥

उपसर्ग से परे नासिका तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय और नासिका शब्द को नस आदेश हो ॥ ११९ ॥

सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणी पदाऽजपदप्रोष्ठपदाः ॥ १२० ॥

इमे बहुव्रीहयोऽच् प्रत्ययान्तानिपात्यन्ते। यथा-शोभनं प्रातरस्य—सुप्रातः । शोभनंश्वोऽस्य-सुश्वः । शोभनं दिवा यस्य—सुदिवः । शारेरिव कुक्षिरस्य–शारिकुक्षः । चतस्रोऽश्रयोऽस्य–चतुरश्रः । एण्याइव पादावस्य-एणीपदः । अजस्येव पादावस्य-अजपदः । प्रोष्ठः गौः तस्येव पादावस्य-प्रोष्ठपदः ॥

बहुव्रीहि समासमें सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, चतुरश्र, एणीपद, अजपद और प्रोष्ठपद अच् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥

१—(८।४।३) इति णत्वम् ॥

नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम्

न०भ्यः, ह०थ्योः, अ०म् । नञ् दुस् सु इत्येभ्यः परौ यौ हलि सक्थिशब्दौ तदन्ताद् बहुव्रीहेर्वाच् स्यात् । यथा—अविद्यमानो हलिरस्य-अहलः । अहलिः । दुर्हलः । दुर्हलिः । सुहलः । सुहलिः । अविद्यमानं सक्थ्यस्य--असक्थः । असक्थिः । दुःसक्थः । दुःसक्थिः सुसक्थः। सुसक्थिः। हलिशक्त्योरिति पाठान्तरम् अशक्तः, । अशक्तिः ॥

नञ्, दुस् और सु से परे जो हलि (हल) और सक्थि शब्द तदन्त बहुव्रीहि से विकल्प से अच् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ॥ १२२ ॥

नि०म्, असिच्, प्र०योः । नञ् दुस् सु इत्येभ्यः परौ यौ प्रजामेध शब्दौ तदन्ताद् बहुव्रीहेर्नित्यमसिच् स्यात् । यथा-अविद्यमाना प्रजाय चासौ अप्रजाः । दुष्प्रजाः । सुप्रजाः । अविद्यमाना मेधा यस्य स अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः ॥

नञ्, दुस् और सु से परे प्रजा और मेधा शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त नित्य असिच् प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

बहुप्रजाश्छन्दसि ॥ १२३ ॥

बहुप्रजाइति छन्दसि निपात्यते। यथा—बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश

बहुप्रजा शब्द छन्द विषय में असिच् प्रत्ययान्त निपातित है ॥ १२३ ॥

धर्म्मादनिच् केवलात् ॥ १२४ ॥

ध० त्, अनिच्, के०त् । केवलात् पूर्वपदात्परो यो धर्मशब्द-

स्तदन्ताद् बहुव्रीहेरनिच् स्यात्। यथा–कल्याणो धर्म्मो यस्यासौ–कल्याणधर्म्मा। प्रियधर्मा ॥

केवल (एक) पूर्वपद से ही परे जो धर्म शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अनिच् प्रत्यय हो ॥ १२४ ॥

जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः ॥१२५॥

जम्भेति कृतसमासान्तं निपात्यते । जम्भो–भक्ष्ये, दन्ते च । यथा–शोभनो जम्भो यस्यासौ–सुजम्भा।हरितजम्भा। तृणं भक्ष्यं यस्य, तृण मिव दन्ता यस्येति वा–तृणजम्भा। सोमजम्भा ॥

सु, हरित, तृण और सोम शब्दसे परे जम्भा शब्द कृत सामसान्त निपातित है॥

दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ॥ १२६ ॥

लुब्धयोगे बहुव्रीहौ समासे दक्षिणेर्मेति कृतसमासान्तं निपात्यते। लुब्धो व्याधः। दक्षिणमीर्मस्य दक्षिणेर्मा मृगः। ईर्म व्रण उच्यते। व्याधेन कृतव्रण इत्यर्थः ॥

कृतसमासान्त दक्षिणेर्मा यह लुब्ध योग तथा बहुव्रीहि समास में निपातित है॥

इच् कर्म्मव्यतिहारे ॥ १२७ ॥

कर्म्मव्यतिहारे यो बहुव्रीहिस्तस्मादिच् स्यात् समासान्तः यथा–केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदंयुद्धं प्रवृत्तम्–केशाकेशि। कचाकचि। दण्डा दण्डि ॥

कर्म्म व्यति हार (आपसमें ताडनकरना) में जो बहुव्रीहि तदन्तसे समासान्त इच् प्रत्यय हो ॥

द्विदण्ड्यादिभ्यश्च॥ १२८ ॥

द्वि० भ्यैं:, च । द्विदण्ड्यादयः शब्दा इच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । तादर्थ्ये चतुर्थ्येषा । यथा—द्वौ दण्डौ यस्मिन् प्रहरणे तद्—द्विदण्डि-प्रहरणम् । द्विमुसलि ॥

द्विदण्ड आदि शब्द इच् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ १२८ ॥

प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ॥ १२९ ॥

बहुव्रीहावाभ्यां परयोः जानुशब्दयोः ज्ञुरादेशः स्यात् । यथा-प्रकृष्टे जानुनी यस्य सः-प्रज्ञुः । सञ्ज्ञुः ॥

प्र, सम् उपसर्ग पूर्वक जानु शब्द को बहुव्रीहि समासान्त ज्ञु आदेश हो ॥१२९॥

ऊर्ध्वाद्विभाषा ॥ १३० ॥

ऊर्ध्व शब्दादुत्तरस्य जानुशब्दस्य वा ज्ञुरादेशः स्यात् । यथा-ऊर्ध्वे जानुनी यस्यासौ-ऊर्ध्वजाज्ञुः । ऊर्ध्वजानुः ॥

बहुव्रीहि समास में ऊर्ध्व शब्द से परे जानु शब्द को समासान्त विकल्प से ज्ञु आदेश हो ॥ १३० ॥

ऊधसोऽनङ् ॥ १३१ ॥

ऊ० सं:, अनङ् । ऊधोन्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशः स्यात् समासान्तः । यथा—घट इव ऊधो यस्याअसौ-घटोध्नी धेनुः ॥

बहुव्रीहि समास में ऊधस् शब्द को समासान्त अनङ् आदेश हो ॥ १३१ ॥

धनुषश्च ॥ १३२ ॥

धनुषः, च । धनुरन्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशः स्यात् । यथा-शार्ङ्ग धनुरस्य सः-शार्ङ्गधन्वा । गाण्डीव धन्वा ॥

धनुश्शब्दान्त बहुव्रीहि को समासान्त अनङादेश हो ॥ १३२ ॥

वा सञ्ज्ञायाम् ॥ १३३ ॥

धनुरन्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशो वा स्यात् सञ्ज्ञायां विषये। यथा-शतधन्वा। शतधनुः॥

सञ्ज्ञा विषय में धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को अनङ् आदेश हो विकल्प से॥

जायाया निङ् ॥ १३४ ॥

जा० याः, निङ्। जायान्तस्य बहुव्रीहेः निङादेशः स्यात। यथा-युवति जाया यस्याऽसौ-युवजानिः। वृद्धजानिः॥

जाया (स्त्री) है अन्त में जिसके ऐसे बहुव्रीहि को समासान्त निङ् आदेश हो

गन्धस्येदुत्पूति सुसुरभिभ्यः ॥ १३५ ॥

ग० स्य, इत्, उ० भ्यः। एभ्यो गन्धस्य इकारान्ता.शः स्यात समासान्तो बहुव्रीहौ। यथा-उद्गतोगन्धोऽस्य--उद्गन्धिः। पूतिगन्धिः। सुगन्धिः। सुरभिगन्धिः॥

बहुव्रीहि समास में उत्, पूति, सु और सुरभि (अच्छे गन्धवाला) शब्द से परे गन्ध शब्द को समासान्त इकारान्तादेश हो॥ १३५॥

अल्पाख्यायाम् ॥ १३६ ॥

अल्पख्यायां यो गन्धश.. स्तस्यैकारादेशः स्य त्समासान्तो बहुव्रीहौ। यथा-घृतस्य गन्धः लेशो यस्मिन् तत्-घृतगन्धि भोजनम्। अल्पं यस्मिन् भोजनेक्षीरम् तत् क्षीरगन्धि भोजन. ॥

अल्पाख्या गम्यमान हो तो बहुव्रीहि समास में गन्ध शब्द को इकारादेश हो

१—(६। १। ६६) इति यलोपः॥

उपमानाच्च ॥ १३७ ॥

उ० तं, च । उपमानात्परो यो गन्धशब्दस्तस्येकारादेशः स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ । यथा—पद्मस्येव गन्धोऽस्य-पद्मगन्धिः ॥

बहुव्रीहि समास में उपमान वाचक से परे समासान्त गन्ध शब्द को इकारादेश हो

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥ १३८ ॥

पा० स्य, लोपः,अ० भ्यः । बहुव्रीहौ हस्त्यादि वर्जितादुपमानात् परस्य पादशब्दस्य लोपः स्यात् । स्थानि द्वारेणायं समासान्तः । यथा—व्याघ्रस्येव पादावस्य-व्याघ्रपाद् । सिंहपात् ॥

बहुव्रीहि समास में हस्ति आदि वर्जित उपमान वाचक से परे समासान्त पाद शब्द का लोप हो ॥ १३८ ॥

कुम्भपदीषु च ॥ १३९ ॥

कुम्भपद्यादिषु पादस्य लोपो ङीप् च निपात्यते । (पादः पत्) यथा—कुम्भपदी ॥

कुम्भपदी गण में पाद शब्द का लोप और ङीप् प्रत्यय निपातित है ॥ १३९ ॥

सङ्ख्यासुपूर्वस्य ॥ १४० ॥

सङ्ख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ । यथा—द्वौ पादावस्य—द्विपात् । त्रिपात् । शोभनौ पादावस्य—सुपात् ॥

बहुव्रीहि समास में सङ्ख्या और सु है पूर्व जिस के ऐसे समासान्त पाद के अन्त्यका लोप हो ॥ १४० ॥

वयसि दन्तस्य दतृ ॥ १४१ ॥

वयसि गम्ये सङ्ख्या सु पूर्वस्य दन्तस्य दतृ इत्यादेशः स्यात्। यथा-दौ दन्तावस्य-द्विदन्। त्रिदन्। चतुर्दन्। षट् दन्ताः यस्य-षोडन्। शोभना दन्ता अस्य समस्ता जाताः-सुदन्। सुदती ॥

वयस् गम्यमान होतो बहुव्रीहि समास में संख्या और सु पूर्वक दन्त शब्दको समासान्त दतृ आदेश हो ॥ १४१ ॥

छन्दसि च ॥ १४२ ॥

बहुव्रीहौ छन्दसि च दन्तस्य दतृ इत्यादेशः स्यात्। यथा-पत्रदन् तमालभेत् ॥

बहुव्रीहि समास में छन्दोविषय होतो समासान्त दन्त शब्द को दतृ आदेशहो १४२

स्त्रियां सञ्ज्ञायाम् ॥ १४३ ॥

बहुव्रीहौ दन्तस्य दतृ स्यात् समासान्तः। यथा-अयोदती। फालदती ॥

स्त्रीलिङ्ग में संज्ञा गम्यमान होतो बहुव्रीहि समास में समासान्त दन्त शब्द को दतृ आदेशहो ॥ १४३ ॥

विभाषा श्यावारोकाभ्याम् १४४

श्याव अरोक इत्याभ्यां परस्य दन्तस्य दतृ वादेशः स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ। यथा-श्यावदन्। श्यावदन्तः। अरोकदन्। अरोकदन्तः ॥

बहुव्रीहि समास में श्याव (काला) और अरोक (दीप्तिरहित) शब्द से परे समासान्त दन्त शब्द को विकल्प से दतृ आदेश हो ॥ १४४ ॥

अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च १४५

अ० भ्यः, च। एभ्यो दन्तस्य दतृ वा स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। यथा–कुड्मलाग्रदन्। कुड्मलाग्रदन्तः। शुद्धदन्। शुद्धदन्तः। शुभ्रदन्। शुभ्रदन्तः। वृषदन्। वृषदन्तः। वराहदन्। वराहदन्तः॥

बहुव्रीहि समास में अग्रान्त (अग्र है अन्त में जिस के) शुद्ध, शुभ्र, वृष और वराह शब्द से परे समासान्तदन्त शब्द को विकल्प से दतृ आदेश हो॥१४५॥

ककुदस्यावस्थायां लोपः॥ १४६॥

क० स्य, अ० म्, लोपः। ककुदशब्दान्तस्य बहुव्रीहेर्लोपः स्यात् समासान्तोऽवस्थायां गम्ये। यथा--असञ्जातं ककुदमस्य--असञ्जातककुत्। बाल इत्यर्थः। पूर्णककुत्। मध्यमवया इत्यर्थः। उन्नतककुत्। वृद्धवया इत्यर्थः॥

बहुव्रीहि समास में अवस्था गम्यमान होतो ककुद शब्दान्त का लोप हो १४६

त्रिककुत् पर्वते॥ १४७॥

पर्वते त्रिककुदिति निपात्यते। यथा–त्रीणि ककुदानि यस्यासौ त्रिककुत्। सञ्ज्ञैषा पर्वत विशेषस्य॥

बहुव्रीहि समास में पर्वत विशेष वाच्य होतो समासान्त त्रिककुत् यह शब्द निपातित है॥ १४७॥

उद्विभ्यां काकुदस्य॥ १४८॥

बहुव्रीहावुद्भ्यां परस्य काकुदस्य लोपः स्यात्। यथा–उद्गतं काकुदमस्य–उत्काकुत्। विकाकुत्। काकुदं तालूच्यते॥

बहुव्रीहि समास में उद् और वि उपसर्ग पूर्वक काकुद शब्दके अंत्यका लोपहो॥

पूर्णाद्विभाषा॥ १४९॥

बहुव्रीहौ पूर्णात् परस्य काकुदस्य वा लोपः स्यात् । यथा-पूर्णं काकुदमस्य-पूर्णकाकुत्। पूर्णकाकुदः ॥

बहुव्रीहि समास में पूर्ण शब्द से काकुद शब्द के अन्त्य का विकल्पसे लोपहो ॥

सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः ॥१५०॥

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृद्--मित्रम् । दुर्हृत् अमित्रः ॥

बहुव्रीहि समास में मित्र और अमित्र वाच्य होतो सुहृत् और दुर्हृत् शब्द निपातित हैं ॥ १५० ॥

उरः प्रभृतिभ्यः कप् ॥ १५१ ॥

उरः प्रभृत्यन्ताद् बहुव्रीहेः कप् स्यात्। यथा-व्यूढमुरं यस्यासौ--व्यूढोरस्कः । प्रियसर्पिष्कः । अवमुक्ते उपानहौ येनाऽसौ अवमुक्तोपानत्कः ॥

उरस् आदि शब्दों से बहुव्रीहि समास में कप् प्रत्ययहो ॥ १५१ ॥

इनः स्त्रियाम् ॥ १५२ ॥

स्त्रियामिनन्ताद् बहुव्रीहेः कप् स्यात् । यथा-बहवो दण्डिनो यस्यां शालाया मसौ--बहुदण्डिका शाला । बहुस्वामिका नगरी॥

स्त्री लिङ्ग में इनन्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्ययहो ॥ १५२ ॥

नद्यृतश्च ॥ १५३ ॥

न० तः, च । नद्युत्तर पदादृदन्तोत्तरपदाच्च बहुव्रीहे कप् स्यात् । यथा बह्व्यः कुमार्यो यस्मिन् देशे असौ बहुकुमारीकोदेशः बहुकर्तृकः

नद्यन्त और ऋकारान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्ययहो ॥ १५३ ॥

शेषाद् विभाषा ॥ १५४ ॥

अनुक्त समासान्तच्छेषाधिकारस्थाद् बहुव्रीहेः कब्वा स्यात्। यथा—महायशस्कः। महायशाः ॥

शेष बहुव्रीहि से समासन्त विकल्पसे कप् प्रत्यहो ॥ १५४॥

न सञ्ज्ञायाम् ॥ १५५ ॥

सञ्ज्ञायां विषये कम् न स्यात्। यथा--विश्वेदेवा।अस्यविश्वदेवः। विश्वयशाः ॥

बहुव्रीहि समास में संज्ञा गम्यमान होतो कप् प्रत्यय न हो ॥ १५५ ॥

ईयसश्च ॥ १५६ ॥

ई० सः, च। ईयसन्तोत्तरपदान्न कप् स्यात्। यथा--वह्वः श्रेयांसोऽस्य बहुश्रेयान्। वह्व्यः श्रेयस्योऽस्यसौ--बहुश्रेयसी ॥

ईयस् प्रत्यनत बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो ॥ १५६ ॥

वन्दिते भ्रातुः ॥ १५७ ॥

पूजितेऽर्थेयो भ्रातृ शब्दस्तदन्तान्न कप् स्यात्। यथा—प्रशस्तो भ्राता यस्याऽसौ-प्रशस्तभ्राता ॥

पूजित अर्थ में जो भ्रातृ शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो॥

ऋतश्छन्दसि ॥ १५८ ॥

ऋतः, छं०सि। ऋदन्ताद् बहुव्रीहेः कम् न स्यात्। यथा--हता माता यस्याऽसौ--हतमता। हतपिता ॥

छन्दविषय में ऋकारान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो ॥ १५८ ॥

नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ॥ १५६॥

स्वाङ्गे यौ नाडीतन्त्री शब्दौ तदन्तान्न कप् स्यात् । यथा-- बह्व्यो नाड्यो यस्याऽसौ--बहुनाडिः- कायः । बहूतन्त्रीः--ग्रीवा ॥

स्वाङ्ग वाचक नाडी और तन्त्री शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो ॥ १५९ ॥

निष्प्रवाणिश्च ॥१६०॥

नि० णिः, च । निष्प्रवाणि रिति नदीलक्षणस्य कप्भावोऽत्र निपात्यते प्रपूर्वाद् वयतेर्ल्युट् प्रवाणी--तन्तुवायशलाका । यथा-- निर्गता प्रवाणी यस्यपटस्य--असौ -निष्प्रवाणिः पटः । समासान्तः प्रत्ययो नवक उच्यते ॥

बहुव्रीहि समास में निष्प्रवाणि शब्द निपातित है ॥ १६० ॥

इति जीवाराम शर्म्म कृतायां पाणिनि सूत्रवृत्तौ पञ्चमाऽध्यायस्य चतुर्थपादः समाप्तश्चायमध्यायः ॥

अथ षष्ठाऽध्यायारम्भः ॥

प्रथमः पादः ।

एकाचो द्वे प्रथमस्य ॥ १ ॥

एकाचः, द्वे, प्र०स्य । अधिकारोऽयम् ॥

हलादि धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व हो (यह अधिकार है)॥१॥

अजादेर्द्वितीयस्य ॥ २ ॥

अच् आदिर्यस्य धातोस्तदवयवस्य द्वितीयै काचो द्वे स्याताम् । यथा—अटिटिषति । अशिशिषति ॥

अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्वहो ॥ २ ॥

नन्द्राः संयोगादयः ॥ ३ ॥

अचः पराः संयोगादयो नदराद्विर्नस्युः । यथा—उन्दिदिषति । अड्डिडिषति । अर्चिचिषति ॥

संयोग के आदि न,द,और रेफ जो द्वितीयाथवाएकाच् अवयवस्थहैं उनको द्वित्वनहो

पूर्वोऽभ्यासः ॥ ४ ॥

पूर्वः, अभ्यासः । अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽवयवोऽभ्यास सञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—पपाच । पिपक्षति । पापच्यते । जुहोति । अपीपचत् ॥

द्वित्व किये हुये दो अवयवों का पूर्व भाग अभ्यास संज्ञक हो ॥ ४ ॥

उभे ऽभ्यस्तम् ॥ ५ ॥

ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसञ्ज्ञे स्याताम् । यथा-ददति । ददत् ॥

द्वित्व कियेहुये दोनों अभ्यस्त संज्ञक हों ॥ ५ ॥

जक्षित्यादयः षट् ॥ ६ ॥

जक्षिः षड्धातवश्चान्येऽभ्यस्तसंज्ञकाःस्युः । यथा- जक्षति । जाग्रति । दरिद्रति । चकासति । शासति । दीध्यते । वेव्यते ॥

जक्ष और इससे आगे छ धातु अभ्यस्त संज्ञक हों ॥ ६ ॥

तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ॥ ७ ॥

तु०म्, दीर्घः, अ०स्य । स्पष्टम् । यथा -तूतुजानः । मामहानः । स दाधार पृथिवीम् ॥

तुजादि (जिनको दीर्घ विधान नहीं कियागयाहै परन्तु दीर्घ प्रयोगमात्र होतेहैं उनको तुजादि समझना चाहिये) धातुओंके अभ्यास को दीर्घ हो ॥ ७ ॥

लिटि धातोरनभ्यासस्य ॥ ८ ॥

लिटि, धातोः, अ० स्य । लिटि परे ऽनभ्यास धात्ववयवस्य प्रथमस्यैकाचः द्वे स्याताम्, आदि भूताचः परस्य तु द्वितीयस्य । यथा-पपाठ । प्रोर्णुनाव ॥ (द्वित्वेछन्दसि वेति वाच्यम्)॥ यथा- यो जागार तमृचः कामयन्ते । दातिप्रयाणीति ॥

लिट् लकार परे होतो अनभ्यास धातुके प्रथम और अजादि धातुके द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो ॥ ८ ॥

सन्यङोः ॥ ९ ॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च । प्रथमस्यैकाचोद्वे स्याताम् अजादेस्तु द्वितीयस्य । यथा-पिपठिषति । उन्दिदिषति । पापठ्यते अटाट्यते ॥

सन्नन्त और यङन्त धातुके प्रथम और अजादि धातुके द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्त्व हो ॥ ९ ॥

श्लौ ॥ १० ॥

श्लौपरे धातोर्द्वे स्याताम् । यथा-जुहोति । बिभेति ॥

श्लु परे हो तो धातु को द्वित्त्व हो ॥ १० ॥

चँङि ॥ ११ ॥

चङिपरेऽनभ्यासस्य धात्ववयवस्य प्रथमस्यैकाचोद्वे स्याताम्, अजादेस्तु द्वितीयस्य । यथा-अपीपठत् । आशिशत् ॥

चङ् प्रत्यय परे हो तो अनभ्यास धातु के प्रथम और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्त्व हो ॥ ११ ॥

दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च ॥ १२ ॥

दाँश्वान्, साह्वान्, मीढ्वान्, च । इमे निपात्यन्ते ॥ (कृञा-दीनांके द्वे वक्तव्यम्) ॥ क्रियतेऽनेनेति-चक्रम् । चिक्किदम् । कृञः क्लिदेश्च घञर्थे कविधानमिति कः प्रत्ययः ॥ (चरि चालि पति-

* दाश्वानिति दाशृ दान इत्येतस्य धातोः क्वसावद्विर्वचन मनिट्त्वं च निपात्यते । दाश्वांसो दाशुषः सुतमिति । साह्वानिति षहमर्षण इत्येतस्य परस्मैपद मुपधादीर्घत्वमद्विर्वचन मनिट्त्वं च निपातनात् । साह्वान् बलाहकः । मीढ्वानिति मिहसेचने इत्येतस्माद् द्वित्व मनिट्त्व मुपधादीर्घत्वं ढत्वं च निपातनात् । मीढ्वस्तोकाये तनयाय ॥

वदीनां द्वित्त्वमच्याक् चाभ्यासस्य) ॥ चरादीनां धातूनामपि प्रत्यये परे द्वे भवतः । आभ्यासस्यागागमो भवति । आगागम विधान सामर्थ्याच्च हलादिशेषो नो भवति। यथा—चराचरः । चलाचलः। पतापतः। वदावदः । (वेतिवाच्यम्) तेन-चरः पुरुषः । चलोरथः । चलं यानम् । वदो मनुष्यः । (हन्तेर्धत्वं च) हन्तेरचिपरे द्वे भवतोऽभ्यासस्य च हकारस्य द्वित्व माक् चागमो भवति । परस्याऽभ्यासाच्चेति कुत्वम् । घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ॥ (पाटेर्णि लुक्च दीर्घश्चाभ्यासस्य) ॥ पाटेरचिपरे द्वे भवतो णि लुक् च । अभ्यासस्य चोगागमो दीर्घश्च भवति । पाटूपटः ॥

दाश्वान्, साह्वान् और मीढ्वान् ये शब्द निपातित हैं ॥ १२ ॥

ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे १३

ष्यङः, स०मं, पुं० त्योः, तं० पो। ष्यङन्तस्य सम्प्रसारणं स्यात् पुत्रपत्योरुत्तरपदयोस्तत्पुरुषे । यथा—कौमुदगन्ध्यायाः पुत्रः—कौमुदगन्धीपुत्रः। कौमुदगन्धी पतिः ॥

तत्पुरुष समास में पुत्र और पति शब्द उत्तर पद परे हों तो ष्यङ्को सम्प्रसारण हो॥

बन्धुनि बहुव्रीहौ ॥ १४ ॥

बन्धुशब्दे उत्तरपदे ष्यङः सम्प्रसारणं स्याद् बहुव्रीहौ । यथा—कारीषगन्ध्या बन्धुरस्येति—कारीषगन्धी बन्धुः ॥ (मातज्मातृकमातृषु वा) ॥ कारीष गन्धी मातः, कारीषगन्ध्या मातः । कारीषगन्धीमातृकः, कारीषगन्ध्या मातृकः । कारीषगन्धीमाता । कारीषगन्ध्यामाता । अस्मादेवनिपातनात् ॥ (मातृशब्दस्य मातजादेशः कश्चिकल्पश्च) ॥

१—(६ । ३ । १३९) इतिदीर्घत्वम् ॥

बहुव्रीहि समास में बन्धु शब्द परे होतो ष्यङ् को सम्प्रसारण हो ॥ १४ ॥

वचिस्वपियजादीनां किति ॥ १५ ॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति । यथा—उक्तः । उक्तवान् । सुप्तः । सुप्तवान् । इष्टः । इष्टवान् । हूतः । हूतवान् ॥

कित् प्रत्ययपरे होतो वचि, स्वपि और यजादि गणपठित धातुओंको सम्प्रसारणहो॥

ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च १६

किति ङिति चैषां सम्प्रसारणं स्यात् । यथा—गृहीतः । गृहीतवान् । गृह्णाति । जरीगृह्यते । ज्या । जीनः । जीनवान् । ल्वादिभ्य इति निष्ठा नत्वम् । जिनाति । जे जीयते । वयि । लिटिपरे वेञो वयिरादेश स्तस्यङिद्भावात् किदेवोदाह्रियते । ऊयतुः । ऊयुः । व्यध । विद्धः । विद्धवान् । विध्यति । वेविध्यते । वशः । उशितः । उशितवान् । ङिति । उष्टः । उशन्ति । व्यच । विचितः । विचितवान् । विचाति । वेविच्यते । वृश्चेः । वृक्णः । वृकणवान् । वृश्चाति । वरीवृश्चते । प्रच्छ । पृष्टः । पृष्टवान् । पृच्छति । परीपृच्छ्यते । भ्रस्ज । भृष्टः । भृष्टवान् । भृज्जति । बरीभृज्ज्यते ॥

कित् और ङित् प्रत्यय परे होतो ग्रहि आदि धातुओं को सम्प्रसारणहो ॥१६॥

लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ॥१७॥

लिटिपरे वच्यादीनां गृह्यादीनां चाऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् । यथा—उवाच । उवचिथ । स्वप्—सुष्वाप । सुष्वपिथ । यज—इयाज । इयजिथ । टुवप्—उवाप । उवपिथ । गृहादीनाम् । जग्राह । जग्रहिथ इत्यादि ।

लिट् लकार परे होतो वच्यादि और ग्रहादि धातुओं के अभ्यासको सम्प्रसारणहो

स्वापेश्चङि ॥ १८ ॥

स्वापेः, चङि । ण्यन्तस्यस्वापेश्चङि परे सम्प्रसारणं स्यात् । यथा–असूषुपत् । असूषुपातम् । असूषुपन् ॥

चङ् प्रत्यय परे होतो णिजन्त स्वप धातुको सम्प्रसारणहो ॥ १८ ॥

स्वपिस्यमिव्येञां यङि ॥ १९ ॥

एषां सम्प्रसारणं स्याद् यङिपरे । यथा–सोषुप्यते । सेसिम्यते । वेवीयते ॥

यङ्‌परे होतो स्वपि (ञिस्वप्, शये) स्यमि (स्यमु स्वन ध्वन शब्दे) और व्येञ् (व्येञ् संवरणे) धातु को सम्प्रसारण हो ॥ १९ ॥

न वशः ॥ २० ॥

यङिपरे वशेर्धातोः सम्प्रसारणं न स्यात् । यथा–वावश्यते । वावश्येते । वावश्यन्ते ।

यङ् प्रत्यय परे हो तो वश्य धातु को सम्प्रसारण न हो ॥ २० ॥

चायः की ॥ २१ ॥

यङि परे चायः कीत्यादेशः स्यात् । यथा– चेकीयते । चेकीयेते । चेकीयन्ते ॥

यङ् परे होतो चयृ धातु को की आदेश हो ॥ २१ ॥

स्फायः स्फी निष्ठायाम् ॥ २२ ॥

निष्ठायां परे स्फायः स्फीत्ययमादेशः स्यात् । यथा—स्फीतः । स्फीतवान् ॥

निष्ठा प्रत्यय परे हो तो स्फायी धातु को स्फी आदेश हो ॥ २२ ॥

स्त्यः[१] प्रपूर्वस्य ॥ २३ ॥

स्त्यः प्रपूर्वस्य निष्ठायां परे सम्प्रसारणं स्यात् । यथा—प्रस्तीतः । प्रस्तीमः । प्रस्तीतवान् । प्रस्तीमवान् ॥

निष्ठा प्रत्यय परे हो तो प्रपूर्वक स्त्या (स्त्यैष्ठ्यै शब्द सङ्घातयोः) धातु को सम्प्रसारण हो ॥ २३ ॥

द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः[२] श्यः[१] ॥ २४ ॥

द्रवस्य मूर्त्तौ-काठिन्ये स्पर्शे चार्थे श्यैङः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम् । यथा—शीनम्[२]—घृतम् । शीतो वायुः ॥

निष्ठा प्रत्यय परे हो तो द्रवमूर्त्ति और स्पर्श अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् (गतौ) धातु को सम्प्रसारण हो ॥ २४ ॥

प्रतेश्च ॥ २५ ॥

प्रतेः, च[अ] । प्रतिपूर्वस्य श्यः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम् परतः । यथा—प्रतिशीनः । प्रतिशीनवान् ॥

प्रतिपूर्वक श्यैङ् धातु को सम्प्रसारण हो निष्ठा प्रत्यय परे हो तो ॥ २५ ॥

विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य[१] ॥ २६ ॥

अभि अव इत्येवं पूर्वस्य श्यः सम्प्रसारणं वा स्यान्निष्ठायाम्परतः।

१—[८ । २ । ५४] इति निष्ठा तस्य मो वा ॥ २—[८ । २ । ४७] इति श्यैङो निष्ठातस्य नः । [६ । ४ । २] इति दीर्घत्वम् ॥

यथा-अभिश्यानं घृतमभिशीनं वा । अवश्यानः, अवशीनो वृश्चिकः॥

निष्ठा प्रत्यय परे होतो अभि और अव पूर्वक श्यैङ् धातु को विकल्प से सम्प्रसारण हो ॥ २६ ॥

शृतं पाके ॥ २७॥

पाकेऽभिधेये श्राति श्रपयत्योः क्ते शृभावोवानिपात्यते॥ (क्षीरहविषोः पाके) ॥ यथा-शृतं क्षीरं स्वयमेव । विक्लिन्नं पक्वं वेत्यर्थः। श्राणायवागूः ॥

पाक अभिधेय होतो निष्ठाप्रत्यय के परे होनेपर श्राधातु को शृ भाव विकल्पसे निपातन किया है ॥ २७ ॥

प्यायः पी ॥ २८ ॥

प्यायः पीवा स्यान्निष्ठायाम् । (व्यवस्थितविभाषेयम्)॥ स्वाङ्गे नित्यम् । यथा-पीनम् मुखम् । पीनौ बाहू । अन्यत्र-प्यानः, पीनः, स्वेदः ॥

निष्ठाप्रत्ययपरे होतो ओप्यायी (वृद्धौ) धातु को विकल्प से सम्प्रसारण हो २८

लिड्यङोश्च ॥ २९ ॥

लि० ङोः, च । लिटियङि च परेप्यायः पी स्यात् । यथा-पिप्ये। पिप्याते । पिप्यिरे । पेपीयते । पेपीयेते । पेपीयन्ते ॥

लिट् और यङ् प्रत्यय परे होतो ओप्यायी धातु को पी आदेश हो ॥ २९ ॥

विभाषा श्वेः ॥ ३० ॥

लिटि यङि च श्वयतेः सम्प्रसारणं वा स्यात् । यथा-शुशाव, शिश्वाय । शुशुवतुः, शिश्वियतुः । यङि । शोशूयते । शेश्वीयते ॥

लिट् और यङ् प्रत्यय परे होतो टु-ओश्वि (गतिवृद्धयोः) धातुको विकल्प से सम्प्रसारणहो ॥ ३० ॥

णौ च संश्चङोः ॥ ३१ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ श्वयतेः सम्प्रसारणं वा स्यात्।यथा-शुशावयिषति। शिश्वाययिषति। चङि। अशूशवत्। अशिश्वयत् ॥

सन और चङ् परकणि परे होतो टु-ओश्वि धातुको विकल्पसे सम्प्रसारणहो॥३१

ह्वः सम्प्रसारणम् ॥ ३२ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ परे ह्वः सम्प्रसारणं स्यात् । यथा-जुहावयिषति। जुहावयिषतः। जुहावयिषन्ति। अजूहवत्। अजूहवताम्। अजूहवन् ॥

सन् और चङ् परकणि परे हो तो ह्वेञ् (स्पर्द्धायां शब्दे च) धातु को सम्प्रसारणहो ॥ ३२ ॥

अभ्यस्तस्य च ॥ ३३ ॥

अभ्यस्ती भविष्यतो ह्वेञः सम्प्रसारणं स्यात् ततो द्विवः। यथा-जुहाव। जोहूयते। जुहूषति ॥

अभ्यस्त का जो ह्वेञ् धातु उसको सम्प्रसारण हो ॥ ३३ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ३४ ॥

ह्वः सम्प्रसारणं स्यात्।यथा-इन्द्राग्नी हुवे। हुयामि मरुतः शिवान्॥

छन्दोविषय में ह्वेञ् धातु को बहुलकरके सम्प्रसारण हो ॥ ३४ ॥

चायः की ॥ ३५ ॥

छन्दसि चायते धातो बहुलं कीत्ययमादेशः स्यात्। यथा—नान्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम्। अग्निर्ज्योतिर्निचाय्यः॥

छन्दविषय में चायृ धातु को बहुल करके की आदेश हो॥ १५॥

अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषे तित्याजश्राताः श्रितमाशीराशीर्त्ताः ३६

इमे छन्दसि निपात्यन्ते। यथा—अपस्पृधेथाम् (अस्पर्धेथाम्) आनृचुः (आनर्चुः) आनृहुः (आनहुः) चिच्युषे (चुच्युविषे) तित्याज (तत्याज) श्राताः (श्रीताः) श्रितम्। आशीः। आशीर्त्तः॥

अपस्पृधेथादि शब्द छन्दो विषय में निपातित हैं॥ १६॥

न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्॥ ३७॥

सम्प्रसारणे परे पूर्वस्य यणः सम्प्रसारणं न स्यात्। यथा—व्यध-विद्धः। व्येञ्-संवीतः॥

सम्प्रसारण परे हो तो पूर्व यण् को सम्प्रसारण न हो॥ ३७॥

लिटि वयो यः॥ ३८॥

लिँटि, वयँः, यँः। वयो यकारस्य सम्प्रसारणं न स्याल्लिटि। यथा—ऊयतुः। ऊयुः॥

लिट् लकार परे हो तो वय धातु के यकार को सम्प्रसारण न हो॥ १८॥

वश्चास्यान्यतरस्यां किति॥ ३९॥

वेंः, च, अ० म, कितिँ। वयो यस्य वो वा स्यात् किति लिटि

परे। यथा—ऊवतुः। ऊवुः। ऊयतुः। ऊयुः॥

कित् लिट् परे हो तो वय धातु के यकार को विकल्प से वकारादेश हो॥

वेञः॥ ४०॥

वेञो न सम्प्रसारणं स्याल्लिटि। यथा—ववौ। ववतुः। ववुः॥

लिट् लकार परे हो तो वेञ धातु को सम्प्रसारण न हो॥ ४०॥

ल्यपि च॥ ४१॥

ल्यपि वेञो न सम्प्रसारणं स्यात्। यथा—प्रवाय। उपवाय॥

ल्यप् प्रत्यय परे हो तो वेञ धातु को सम्प्रसारण न हो॥ ४१॥

ज्यश्च॥ ४२॥

ज्यः, च। ल्यपिपरे ज्या, वयोहानावित्यस्य धातोः सम्प्रसारणं न स्यात्। यथा—प्रज्याय। उपज्याय॥

ल्यप् प्रत्यय परे हो तो ज्या धातु को सम्प्रसारण न हो॥ ४२॥

व्यश्च॥ ४३॥

व्यः, च। ल्यपिपरे व्येञ्, संवरण इत्यस्य धातोः सम्प्रसारणं न स्यात्। यथा—प्रव्याय। उपव्याय॥

ल्यप् प्रत्यय परे हो तो व्येञ् (संवरणे) धातु को सम्प्रसारण न हो॥४३॥

विभाषा परेः॥ ४४॥

परे र्व्येञो वा सम्प्रसारणं स्याल्ल्यपि। तुकं बाधित्वा परत्वाद् हल इति दीर्घः। यथा—परिवीय। परिव्याय॥

ल्यप् परे हो तो परिपूर्वक व्येञ् धातु को विकल्प से सम्प्रसारण हो ॥४४॥

आदेच उपदेशेऽशिति ॥ ४५ ॥

आत्, एचः, उ० शे, अ० ति । उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं स्यान्नतु शिति । यथा–धेट्-दधौ।ग्लै-ग्लाता। शो-निशातुम् ॥

उपदेश में जो एजन्त धातु उनको आकारादेश हो शित् विषय को छोड़कर प्रत्यय परे हों तो ॥ ४५ ॥

न व्यो लिटि ॥ ४६ ॥

न, व्यः, लिटि । व्येञो नो आत्त्वं स्याल्लिटि । यथा–विव्याय। विव्यतुः । विव्युः ॥

लिट् लकार परे हो तो व्येञ् धातु को आकारादेश न हो ॥ ४६ ॥

स्फुरति स्फुलत्योर्घञि ॥ ४७ ॥

स्फु० योः, घञि । घञिपरेऽनयोरेच आत्त्वं स्यात् । यथा--स्फारः। स्फालः । उपसर्गस्य (६ । ३ । १२२) घञीतिदीर्घः--परीहारः ॥

घञ् प्रत्यय परे हो तो स्फुर और स्फुल धातुओं को आकारादेश हो ॥४७॥

क्रीङ्जीनां णौ ॥ ४८ ॥

एषामेच आत्त्वं स्याण् णौ । यथा–क्रापयति । अध्यापयति । जापयति ॥

णि प्रत्यय परे होतो डुक्रीञ् (द्रव्य विनिमये) इङ् (अध्ययने) और जि (जये) धातुके एच् को आकारादेशहो ॥ ४८ ॥

सिध्यतेरपारलौकिके ॥ ४९ ॥

सि०तेः, अं० के । ऐहलौकिकेऽर्थेवर्त्तमानस्यसिध्यतेरेच आत्वं स्याण्णौ । यथा–अन्नं साधयति । निष्पादयतीत्यर्थः ॥

णि प्रत्यय परे होतो अपार लौकिक अर्थ में वर्त्तमान सिधु धातु के एच् को आकारादेश हो ॥ ४९ ॥

मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ॥ ५० ॥

आत्वमेषांस्याल्ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते । यथा–प्रमाय । प्रमातुम् । निमाय । निमाता । उपदाय । उपदातव्यम् ॥

ल्यप् प्रत्यय के परे होनेपर और अशित् प्रत्यय के परे मीञ् (हिंसायाम्) डुमिञ् प्रक्षेपणे) औरदीङ् (क्षये) धातु के एच् को आकारादेश हो ॥ ५० ॥

विभाषा लीयतेः ॥ ५१ ॥

लीलीङो रात्वं वा स्यादेज् विषये ल्यपिपरेच । यथा–लाता। लेता। लाष्यते । लेष्यते । विलाय । विलीय ॥

ल्यप् प्रत्यय के परे होनेपर और अशित् प्रत्यय के परे ली, लीङ् धातुके एच् को विकल्प से आकारादेश हो ॥ ५१ ॥

खिदेश्छन्दसि ॥ ५२ ॥

खिदेः, छन्दसि । खिददैन्ये । अस्यैचः स्थाने वात्वं स्यात् । यथा-चिखाद । चिखेद ॥

छन्द विषय में खिद् धातु के एच् कोविकल्प से आकारादेश हो ॥ ५२ ॥

अपगुरोणमुलि ॥ ५३ ॥

अ०रेः, णमुलि । (गुरी–उद्यमने) इत्यस्यैचेवात्वं स्याण्णमुलि । यथा–अस्यपगारं युध्यन्ते, अस्यपगोरं वा ॥

णमुल् प्रत्यय परे हो तो अप पूर्वक गुरी धातु के एच्को विकल्पसे आकारादेशहो

चिस्फुरोर्णौ ॥ ५४ ॥

चि० रोः[६], णौ । चिस्फुरो णौ परे वात्त्वं स्यात् । यथा-चापयति । चाययति । स्फारयति । स्फोरयति ॥

णि प्रत्यय परे होतो चिञ् और स्फुर धातु के एच्को विकल्पसे आकारादेशहो

प्रजने[७] वीयतेः[६] ॥ ५५ ॥

प्रजनेऽर्थे वी धातो रेचो वात्त्वं स्याण् णौ । यथा-वापयति । वाययति वा गाः पुरोवातः । गर्भग्राहयतीत्यर्थः ॥

णि प्रत्यय परे होतो प्रजन अर्थ में वी धातु के एच्को विकल्पसे आकारादेशहो ॥

बिभेतेर्हेतुभये ॥ ५६ ॥

बि० तेः[६], हे०[७]ये । बिभेतेरेचो वाऽऽत्त्वं स्यात प्रयोजकाद् भयंचेत् । यथा-मुण्डोभापयते । भीषयते[२] वा ॥

णि प्रत्यय परे होतो हेतु भय अर्थ में वर्त्तमान भी धातु के एच्को विकल्प से आकारादेश हो ॥ ५६ ॥

नित्यं[२] स्मयतेः[६] ॥ ५७ ॥

स्मयते रेचो नित्यमात्त्वं स्याण् णौहेतोः स्मये । यथा-जटिलो विस्मापयते ॥

णि प्रत्यय परे होतो हेतु भय अर्थ में वर्त्तमान स्मिङ् धातु के एच् को नित्य आकारादेशहो ॥ ५७ ॥

सृजिदृशोर्झल्यमकिति ॥ ५८ ॥

१—(७ । ३ । ३६) इत्यात्त्वपक्षे पुगागमः । २-(७ । ३ । ४०) इतिषुक् ॥

सृ० शोः, झलिं, अम्, अं० ति । अनयो रमागमः स्याज् झलादा वकिति परे।यथा—स्रष्टा।स्रष्टुम्।स्रष्टव्यम्।द्रष्टा। द्रष्टुम्।द्रष्टव्यम् ॥

झलादि कित् भिन्न प्रत्यय परे होतो सृज और दृशिर् धातुको अम् का आगमहो

अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ५९

अ०स्यं, च, ऋ० स्यं, अ०म् । उपदेशेऽनुदात्तो यो धातुः ऋदुपधस्तस्याम्वास्याज् झलादावकिति परे । यथा—स्रप्ता । सर्प्ता । स्रप्स्याति । सर्प्स्यति ॥

झलादि कित् भिन्न प्रत्यय परे होतो उपदेश में अनुदात्त ऋकारोपध धातुको विकल्प से अम् आगमहो ॥ ५९ ॥

शीर्षश्छन्दसि ॥ ६० ॥

शीर्षन्, छ० सिं । शिरः शब्दस्य स्थाने शीर्षन्निति निपात्यते छन्दसि विषये । यथा—शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ॥

छन्द विषय में शिरस् शब्दके स्थान में शीर्षन् यह निपातित है ॥

ये च तद्धिते ॥ ६१ ॥

यादौ तद्धिते परे शिरश्शब्दस्य शीर्षन्नादेशः स्यात् । यथा—शीर्षण्यः॥(वा केशेषु) ॥ शीर्षण्याः,शिरस्या वा,केशाः॥(अचि-शीर्षइति वाच्यम्)॥ अजादौ तद्धिते परे शिरसःशीर्षादेश। स्थूल शिरस इदम्—स्थौलशीर्षम् ॥

यकारादि तद्धित प्रत्यय परे हो तो शिरस् शब्द को शीर्षन् आदेश हो ॥६१॥

पद्दन्नोमास हृन्निशसन्यूषन्दोषन्

यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु

प०नं, श०षुं । पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृग्, यूष, दोष, यकृत, शकृत, उदक, आस्य—इत्येतेषां शब्दानां स्थाने शस् प्रभृति प्रत्ययेषु परतः—पद्, दत्, नस्, मास्, हृत्, निश्, असन्, यूषन्, दोषन्, यकन्, शकन्, उदन्, आसन्—इतीमे यथा-सङ्ख्यमादेशाः स्युः ॥

शसादि प्रत्यय परे होतो पाद आदि शब्दों को पद् आदि शब्द यथाक्रम आदेश हों ॥ ६२ ॥

धात्वादेः षः सः ॥ ६३ ॥

धातोरादेः षस्य सादेशः स्यात् । यथा -षह। सहते।षिचू।सिञ्चति॥

धातु के आदि षकार को सकारादेश हो ॥ ६३ ॥

णो नः ॥ ६४ ॥

णः, नः । धातोरादेर्णस्य नकारादेशः स्यात् । यथा—णीञ्--नयति णम् । नमति ॥

धातुके आदि णकारको नकारादेशहो ॥ ६४ ॥

लोपो व्योर्वलि ॥ ६५ ॥

लोपः, व्योः, वलि । वलिपरे वकारयकारयोर्लोपः स्यात् । यथा--युवती।जीयायस्याऽसौ--युवजानिः (जीवेरदानुक्) जारदा...॥

वल् प्रत्याहार परे होतो वकार और यकारका लोपहो ॥ ६५ ॥

वेरपृक्तस्य ॥ ६६ ॥

वेः, अ० स्य अपृक्तस्य वेर्लोपः स्यात्। यथा--ब्रह्महा घृतस्पृक्॥

अपृक्त वि का लोप हो ॥ ६६ ॥

हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तंहल् ६७

ह० भ्यः, दी०तं, सु०म्, हल्। हलन्तात्परो। दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुति सीत्ये तदप्रक्तं हल् लुप्यते। यथा--राजा। कुमारी। यशोदा। तिलोपः सिलोपश्च। तिलोपस्तावत्। आबिभर्भवान्। सिलोपः। अभिनोऽत्र॥

हलन्त से परे दीर्घ ङ्यन्त और आबन्त से परे सु, ति और सि के अपृक्त हल् का लोप हो ॥ ६७ ॥

एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ॥ ६८ ॥

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्च प्रातिपादिकाद् धल् लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत्। यथा–हेकरे!। हे प्रभो!। हे देवदत्त!। हे देवि!। हेवधु!॥

एङन्त और ह्रस्वान्त प्रातिपदिक से परे संबुद्धि के हल् का लोप हो ॥६८॥

शेश्छन्दसि बहुलम् ॥ ६९ ॥

शेः, छन्दसि, ब० मं। शि इत्येतस्य छन्दसिविषये बहुलं लोपःस्यात्। यथा–याक्षेत्रा।या वना।या।नि क्षेत्राणि।यानि वनानि॥

छन्द विषय में शि का बहुल करके लोप हो ॥ ६९ ॥

ह्रस्वस्य पितिकृतिं तुक् ॥ ७० ॥

ह्रस्वस्य पितिकृति परे तुगागमःस्यात्। यथा–सोमसुत्। प्रकृत्य उपस्तुत्य॥

पित् कित् परे हो तो ह्रस्व को तुक् का आगम हो ॥ ७० ॥

संहितायाम् ॥ ७१ ॥

अधिकारोऽयमनुदात्तं पद मेकवर्जमिति यावत् ॥

यहां से (१५१) सूत्रतक संहिता का अधिकार है ॥ ७१ ॥

छे च ॥ ७२ ॥

छे परे ह्रस्वस्य तुगागमः स्यात् संहितायाम् । यथा-इच्छति । गच्छति । स्वच्छाया ॥

ह्रस्व को तुक् का आगम हो संहिता विषय में छकार परे हों तो ॥ ७२ ॥

आङ्माङोश्च ॥ ७३ ॥

आ० ङोः, च । छे परे एतयो स्तुगागमः स्यात् । यथा-आच्छादयति । माच्छिदत् ॥

छकार परे हो तो संहिता विषय में आङ् और माङ् को तुक का आगम हो॥

दीर्घात् ॥ ७४ ॥

दीर्घाच्छेपरे तुगागमः स्यात् । यथा-म्लेच्छति । चेच्छिद्यते ॥

संहिता विषय में छकार परे हो तो दीर्घ को तुक् का आगम हो ॥ ७४ ॥

पदान्ताद् वा ॥ ७५ ॥

दीर्घात्पदान्ताच्छेपरे तुगागमो वा स्यात् । यथा-कुटीच्छाया। या। कुटीछाया ॥ (विश्वजनादीनां छन्दसि वा.तुगागमो भवतीति वाच्यम्)॥ विश्वजन च्छत्रम्, विश्वजन छत्रम् ॥

संहिता विषय में छकार परे हो तो दीर्घपदान्त को तुक् का आगम हो ॥

इको यणचि ॥ ७६ ॥

इकः, यण्, अचि । अचिपरे इकः स्थाने यणादेशः स्यात् संहितायां विषये । यथा-पत्यालयः । कुमार्युपदेशः । साध्वाशा । वध्वाज्ञा । मात्रनुज्ञा । लनादरः ॥ (इकः प्लुतपूर्वस्य सवर्ण दीर्घ बाधनार्थं यणादेशो वक्तव्यः) ॥ अग्ना ३ इ इन्द्रम् । अग्ना ३ यिन्द्रम् । पटा ३ उ उदकम् । पटा ३ वुदकम् ॥

अच् परे हो तो इक् के स्थान में यण् आदेश हो सन्धि करने में ॥ ७६ ॥

एचोऽयवायावः ॥ ७७ ॥

एचः, अ० वः । अचि परे एचः क्रमादय् अव् आय् आव् इतीमे स्युः । यथा-चयनम् । लवनम् । चायकः । लावकः ॥

अच् परे होतो एच् को क्रमसे अय् अव् आय् और आव् आदेशहों संधि करनेमें

वान्तो यि प्रत्यये ॥ ७८ ॥

वान्तः, यि, प्रत्यये । यकारादौ प्रत्यये परे ओदोतोरवावौ स्याताम् । (गोपयसोर्यत्) यथा-गोर्विकारो गव्यम् । नावा तार्यं नाव्यम् (नौवयोध० ४ । ४ । ६१) इति यत् ॥ (गोर्यूतौ छन्दस्युपसङ्ख्यानम्) ॥ (अध्वपरिमाणे च) । गव्यूति ॥

यकारादि प्रत्यय परे होवे ओ और औ को अव् और आव् आदेश हों, संधि करने में ॥ ७८ ॥

धातोस्तन्निमित्तस्यैव ॥ ७९ ॥

धातोः, त० स्यं, एव । यकारादौ प्रत्यये परे धातो रेचश्चेद् वान्ता

देशस्तर्हि तन्निमित्तस्यैव नान्यस्य । यथा—लव्यम् । पव्यम् । अवश्यलाव्यम् । अवश्यपाव्यम् ॥

यकारादि प्रत्यय परे हो तो उसी निमित्त से हुआ जो धातु का एच् उसको वान्त आदेश हो ॥ ७९ ॥

क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ॥ ८० ॥

यतिपरे शक्यार्थे अनयो रेकारस्यायादेशो निपात्यते । यथा—क्षेतुं शक्यः—क्षय्यः । जेतुं शक्यः—जय्यः ॥

यत् प्रत्यय परे हो तो शक्यार्थ में क्षि और जि धातु के एकार को अय् आदेश करके क्षय्य और जय्य निपातित किये हैं ॥ ८० ॥

क्रय्यस्तदर्थे ॥ ८१ ॥

क्रय्यः, तदर्थे । क्रीणातेर्धातोस्तदर्थे यतिपरे अयादेशो निपात्यते । यथा—तस्मै प्रकृत्यर्थायेदं तदर्थम् । केतारः क्रीणीयुरिति बुद्ध्या आपणे प्रसारितं द्रव्यं क्रय्यम् । क्रेयमन्यत् । क्रयणार्हमित्यर्थः ॥

तदर्थ में डुक्रीञ् धातु से यत् प्रत्यय करके क्रय्य शब्द निपातित है ॥ ८१ ॥

भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि ॥ ८२ ॥

बिभेतेः प्रपूर्वस्य वीत्यस्य च यति परे छन्दसि विषयेऽयादेशो निपात्यते । यथा—बिभेत्यस्मादिति भय्यः । प्रवय्या ॥ (हृदय्या आप उपसङ्ख्यानम्)॥ हृदे भवा हृदय्या आपः । भवेच्छन्दसीति यत् ॥

छन्दो विषय में भी यत् प्रत्यय के परे और प्रपूर्वक वी धातु के एकार को अयादेश करके भय्य और प्रवय्य शब्द निपातित किये हैं ॥ ८२ ॥

एक: पूर्वपरयो: ॥ ८३ ॥

अधिकारोऽयम्, ख्यतात् परस्येति यावत् ॥

पूर्व और परके स्थान में एक आदेश हो यह ख्यतात् परस्य (६।१।१११) इस सूत्र तक अधिकार है ॥ ८३ ॥

अन्तादिवच्च ॥ ८४ ॥

अ०तु, च । योऽयमेकादेशोऽसौ पूर्वस्याऽन्तवत् परस्यादिवत् स्यात् । यथा–शिवेहि[1] ॥

यह एकादेश पूर्व को अन्तवत् और परको आदि वत् समझा जावे ॥ ८४ ॥

षत्वतुकोरसिद्धः ॥ ८५ ॥

ष०कोः, अ०द्धः । षत्वे, तुकिच, कर्तव्ये एकादेशशास्त्र मसिद्धं स्यात् । यथा–कोऽसिचत् । इत्यत्र एङः पदान्तादतीत्येकादेशस्य परं प्रत्यादिवत्वाद पदादेरिण परस्यादेशस्य सस्य षत्व मिहनो । अधीत्य । प्रेत्य । इत्यत्रैकादेशस्यासिद्धत्वात्, ह्रस्वस्यपिति कृति तुगिति ॥

षत्व और तुक् बिधि विधान में एकादेश असिद्ध हो ॥ ८५ ॥

आद् गुणः ॥ ८६ ॥

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात् । यथा–पुरुषेन्द्रः जायेशः । गङ्गोदकम् । ब्रह्मर्षिः । तवल्कारः ॥

अवर्ण से अच् परे होतो पूर्व परके स्थान में एक गुणादेश हो ॥ ८६ ॥

वृद्धिरेचि ॥ ८७ ॥

१—शिव+आङ्+इहि इति स्थितौ धातूपसर्ग कार्य्यत्वे नान्तरङ्गत्वात आद्गुणः इत्यनेन गुणे एहि इति सिद्धम

वृद्धिः, एँचि । अवर्णादेचि परे पूर्वपरयोर्वृद्धिरेकादेशः स्यात्। यथा-नरैनः । पण्डितौकः । आर्य्यैश्वर्य्यम् । वैद्यौषधम् ॥

अवर्ण से एच् परे होतो पूर्व परके स्थान में एक वृद्धि एकादेश हो ॥ ८७ ॥

एत्येधत्यूठ्सु ॥ ८८ ॥

अवर्णादेजाद्यो रेत्येधत्यो रूठिचपरे वृद्धिरेकादेशःस्यात्।पररूपगुणापवादः । यथा-सत्यमुपैमि प्रैधते । प्रष्ठौहः ॥ (अक्षादूहिन्यामुपसङ्ख्यानम्)॥अक्षौहिणीसेना॥(स्वादीरेरिणोः)॥स्वैरम्। स्वेनेरितुं शीलमस्येति-स्वैरी ।स्वैरिणी॥(प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु)॥ प्रौहः । प्रौढः । प्रौढिः । प्रैषः । प्रैष्यः ॥(ऋतेच तृतीयासमासे)॥ सुखेन ऋतः-सुखार्तः । (प्रवत्सतरकम्बलवसनार्ण दशानामृणे) ॥ प्रार्णम् । वत्सतरार्णम् । कम्बलार्णम् । वसनार्णम् । (ऋणदशाभ्यां वृद्धिर्वक्तव्यः)॥ ऋणार्णम् । दशार्णम् ॥

अवर्ण से एजादि एति, एधति और ऊठ् परे होतो पूर्व पर के स्थान में एक वृद्धि एकादेश हो। ॥ ८८ ॥

आटश्च ॥ ८९ ॥

आटः, च । आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । यथा-ऐक्षिष्ट । ऐक्षत । ऐक्षिष्यत ॥

आट् से अच् परे होतो पूर्वपरके स्थान में एक वृद्धि एकादेशहो ॥ ८९ ॥

उपसर्गादृति धातौ ॥ ९० ॥

उ० तँ, ऋँति, धाँतौ । अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । यथा-उपार्च्छति । प्रार्च्छति ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु परे होतो पूर्व पर के स्थान में एक वृद्धि एकादेश हो ॥ ९० ॥

वा सुप्यापिशलेः ॥ ९१ ॥

अ
वा, सुँपि, आं॰ ले । अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ सुब्धातौ परे वृद्धिर्वा स्यात् । यथा–प्रार्षभीयति । प्रर्षभीयति ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से सुप (धात्ववयव द्वारक) परे होतो आपिशलि आचार्य के मत में पूर्वपर के स्थान में एक वृद्धि एकादेश हो ॥ ९१ ॥

औतोऽम्शसोः ॥ ९२ ॥

अ
आ, ओतः, अ॰ सोः । ओकारादमि शसि च परे आकारादेशः स्यात् । यथा–गाम्, गो वा पश्य । द्यां, द्यावा पश्य ॥

ओकार से अम् और शस् परे हो तो पूर्वपर के स्थान में आकारादेश हो ॥

एँङि पररूपम् ॥ ९३ ॥

अकारादुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशःस्यात् । यथा–प्रेजते । उपोषति । (अत्र केचिद् वा सुपीत्यनुवर्त्तयन्ति) ॥ तेन एङादौ सुब्धातौ वा उपेडकीयति । उपैडकीयति । उपोदनीयति । उपौदनीयति ॥ (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) यथा–शक+अन्धुः=शकन्धुः । कुल+अटा=कुलटा ॥

अकार उपसर्ग से एङादि धातु परे होतो पूर्व परके स्थान में पररूप एकादेशहो

ओमाङोश्च ॥ ९४ ॥

अ
ओ॰ ङोः, च । ओमि, आमि चात् परे पररूपमेकादेशः स्यात् । यथा–जगदीश्वरायों नमः । आङि । आ+ऊढा=ओढा । अद्य+ओढा=अद्योढा । कदोढा ॥

अकार से ओम् और आङ् परे हो तो पूर्वपरके स्थान में पररूप एकादेश हो ॥

उस्यपदान्तात् ॥ ९५ ॥

उँसि, अं०त् । अपदान्तादवर्णादुसिपरे पररूपमेकादेशः स्यात् । यथा--भिन्द्युः । छिन्द्युः । अदुः ॥

पदान्त अवर्ण से उस् परे होतो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो ९५

अतो गुणे ॥ ९६ ॥

अतः, गुणे । अपदान्तादकाराद्गुणे परे पररूपमेकादेशः स्यात् । यथा–यजन्ति । पचन्ति ॥

अपदान्त अकार से गुणपरे होतो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो ९६

अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ ॥ ९७ ॥

अ०स्यं, अंतः, इतौ । ध्वनेरनुकरणस्य योऽच्छब्दस्तस्मादितौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । यथा–पटत्+इति= पटिति। घटत् + इति=घटिति । झटत्+ इति= झटिति ॥

अव्यक्तानु करण (ध्वनिअनुकरण) के अत् से इति शब्द परे होतो पूर्वपरके स्थान में पररूप एकादेश हो ॥ ९७ ॥

नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ॥ ९८ ॥

न, अ० स्य, अं० स्य, तु, वा । अव्यक्तानुकरणस्याऽम्रेडितस्य योऽच्छब्द इतौ परे पररूपं न स्यात् , अन्त्यस्य तु तकार मात्रस्य वा स्यात् । यथा–पटत्पटेति,पटत्पटदिति ॥

आम्रेडित संज्ञक अव्यक्तानु करण के अत् से इति शब्द परे होतो पूर्वपर के

१—(८ । २ । ३९] इति जश्त्वम् ॥

स्थान में पररूप एकादेश न हो परन्तु अन्त्यके तकारको तो विकल्पसे पररूपहो ९८

अकः सवर्णे दीर्घः ॥ ९९ ॥

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोः स्थाने दीर्घ एकादेशः स्यात्। यथा—आर्य्याज्ञा। श्रीशः। भानूदयः। वधूहा। (ऋति सवर्णे ऋ वा)। होतृकारः। होतॄकारः। (ऌति सवर्णे ऌ वा)। होत्ऌकारः। होतॄकारः ॥

अक् से सवर्णी अच् परे होतो पूर्वपर के स्थान में एक सवर्ण दीर्घादेशहो ९९

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ॥ १०० ॥

अकः प्रथमा द्वितीययोरचिपरेपूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेशः स्यात्। यथा—वायू। वृक्षाः। अग्नी वृक्षान्।

अक् से प्रथमा और द्वितीया विभक्ति सम्बन्धी अच् परे होतो पूर्वपर के स्थान में एक पूर्व सवर्ण दीर्घादेशहो ॥ १०० ॥

तस्माच्छसो नः पुंसि ॥ १०१ ॥

त० तं, शसः, नः, पुंसि। पूर्वसवर्ण दीर्घात्परो यः शसः सकारस्तस्य नकारादेशः स्यात्पुंसि। यथा—पुरुषान्। कवीन्। प्रभून्। कर्तॄन् ॥

पुल्लिङ्ग में पूर्वसवर्ण दीर्घ से परे जो शस् का सकार उसको नकारादेशहो १००

नादिचि ॥ १०२ ॥

न, आत्, इचि। अवर्णान्तादिचिपरे न पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः यथा—नरौ। यशोदे। कुण्डे।

अवर्ण से इच् परे होतो पूर्वपरके स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश नहो १०२

दीर्घाज्जसि च ॥ १०३ ॥

दीर्घात्, जसि, च । दीर्घाज्जसि, इचि च परे प्रथमयोः पूर्वसवर्ण दीर्घो न स्यात् । यथा—कुमार्य्यौ । कुमार्यः । वध्वौ । वध्वः ॥

दीर्घ से जस् और इच् परे होतो पूर्वपर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश नहो

वा छन्दसि ॥ १०४ ॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे पूर्वसवर्ण दीर्घो वा स्यात्। यथा—वाराही । वाराह्यौ । मारुतीश्वतस्रः । मारुत्यश्चतस्रः ॥

छन्द विषय में दीर्घ से जस् और इच् परे होतो पूर्वपरके स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश विकल्प से हो ॥ १०४ ॥

अमि पूर्वः ॥ १०५ ॥

अकोऽमिचि परे पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप मेकादेशः स्यात् । यथा—पुरुषम् । कविम् । वायुम् । (वा छन्दसीत्येव) शमीं च शम्यं च । गौरीं च । गौर्यं च ॥

अक् से अम् परे होतो पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेशहो ॥ १०५ ॥

सम्प्रसारणाच्च ॥ १०६ ॥

सं०त्, च । सम्प्रसारणादचि परे पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप मेकादेशाःस्यात् । यथा-(यजि) इष्टम् । (वपि) उप्तम् । (ग्रहि) गृहीतम् ॥

सम्प्रसारण से अच्परे होतो पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो ॥

एङः पदान्तादति ॥ १०७ ॥

एङः पदान्तात्, अति । पदान्तादेङोऽतिपरे पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप मेकादेशः स्यात् । यथा—कवेऽत्र । प्रभोऽत्र ।

पदान्त एङ् से अकार परे होतो पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो १०७

ङसिङसोश्च ॥ १०८ ॥

ङ०सोः, च । एङो ङसिङसो रतिपरे पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप मेकादेशः स्यात् । यथा--अग्नेः २ । वायोः २ ॥

एङ् से ङसिङस् सम्बन्धी अकार परे होतो पूर्वपर के स्थानमें पूर्वरूप एकादेश हो॥

ऋत उत् ॥ १०६ ॥

ऋतः, उत् । ऋदन्तान् ङसिङसोरति परे पूर्वपरयो रुकारादेशः स्यात् । यथा--होतुरागच्छति । होतुः स्वम् ॥

ऋकारान्त से ङसिङस् सम्बन्धी अकार परे होनो पूर्वपर के स्थानमें उकारादेश हो॥

ख्यत्यात् परस्य ॥ ११० ॥

खिति खीती शब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसो रत उकारादेशः स्यात् । यथा--सख्युरायामि सख्युर्गृहम् । पत्युरागच्छामि । पत्युराज्ञां मन्येऽहम् । खीशब्दः सहखेन वर्त्तत इति सख स्तमिच्छतीति क्यच् सखीयति । सखीयतः क्विप सखीस्तस्य ङसिङसोः सख्युरिति [तीशब्दः] लूनमिच्छति- लूनीयति । लूनीयतेः क्विपि लुप्त लून्युरायातिलून्युरपराधः ॥

कृत यणादेश ख्य और त्य से परे ङसिङस् सम्बन्धी अकारको उकारादेश हो ११०

आतोरोरप्लुतादप्लुते ॥ १११ ॥

अतः, रोः, अ० तु, अ० ते । अप्लुतादतः परस्यरोरुः स्यादप्लुते ऽतिपरे । यथा--पुरुषोऽत्र ॥

अप्लुत अकार से परे रु के रेफ को उकारादेश हो अप्लुत अकार परे होतो ॥ १११

हशि च ॥ ११२ ॥

अप्लुतादतः परस्यरोरुः स्याद्धशिपरे । यथा--पुरुषो वदति । बालो हसति ॥

हश् (प्रत्याहार) परे होतो अप्लुत अकार से परे रु को उकारादेश हो ११२

प्रकृत्याऽन्तः पादमव्यपरे ॥ ११३ ॥

प्र० त्या, अ० म, अ० रे । छन्दसि विषये एङ् प्रकृत्या स्यात् अतिपरे न तु वकारयकार परेऽति यथा--सुजाते अश्व सूनृते । उपप्रयन्तो अध्वरम् ॥

वकार यकार जिससे न परे हों ऐसा अकार परे होतो छन्दविषय में पाद के मध्य का एङ् प्रकृति से रहे ॥ ११४ ॥

अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च ॥ ११४ ॥

एषु व्यपरेऽप्यति एङ् छन्दसि प्रकृत्या स्यात् । यथा—वसुभिर्नो अव्यात् । मित्रमहो अवद्यात् । मा शिवासो अवक्रमुः । तेनो अव्रत । शतधारो अयं मणिः । तेनो अवन्तु । कुशिकासो अवस्यवः ॥

अव्यात्, अवद्यात्, अवक्रमु, अव्रत, अयम्, अवन्तु और अवस्यु ये परे हों तो छन्दविषय में पाद के मध्य का एङ् प्रकृति से रहे ॥ ११४ ॥

यजुष्युरः ॥ ११५ ॥

यजुँषि, उरः । उरुः शब्द एङन्तोऽतिपरे प्रकृत्या स्याद् यजुषि । यथा–उरोअन्तरिक्षम् ॥

अकार परे हो तो यजुर्विषय में एङन्त उरस् शब्द प्रकृति से रहे ॥ ११५ ॥

आपो जुषाणोवृष्णोवर्षिष्ठेम्बेम्बाले-म्बिकेपूर्वे ॥ ११६ ॥

यजुषि इमे अति प्रकृत्या स्युः । यथा–आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु । जुषाणो अग्निराज्यस्य । वृष्णो अंशुभ्याम् । वर्षिष्ठे अधिनाके । अम्बे अम्बाले अम्बिके नमानयति कश्चन (य० अ० २३ मं० १८) । अस्मादेव वचनादम्बा र्थेति ह्रस्वो नभवति ॥

अकार परे होतो यजुर्विषयमें आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठे, अम्बे, अम्बाले, और अम्बिके प्रकृतिसे रहे ॥ ११६ ॥

अङ्ग इत्यादौ च ॥ ११७ ॥

अँङ्गे,इति, अँादौ, च । अङ्गशब्दे य एङ् तदादौ चाकारे य एङ् पूर्वः सोऽति प्रकृत्या स्यात् यजुषि । यथा–प्राणोअङ्गे अङ्गे अदीध्यत्

अकार परे होतो अङ्ग शब्द में जो एङ् और उसके आदि अकारसे पूर्व जो एङ वह यजुर्वेद विषय में प्रकृति से रहे ॥ ११७ ॥

अनुदात्ते च कुधपरे ॥ ११८ ॥

कवर्ग धकारपरे अनुदात्तेऽति परे चैङ् प्रकृत्या स्यात् यजुषि । यथा–अयं सो अग्निः। अयं सो अध्वरः ॥

कवर्ग और धकार जिस से परे हो ऐसा अनुदात्त अकार परे होतो यजुर्वेद विषय में एङ् प्रकृति से रहे ॥ ११८ ॥

अवपथासि च ॥ ११९ ॥

अनुदात्ते अकारादौ अवपथाः शब्दे परे यजुषि एङ् प्रकृत्या स्यात्। यथा-त्री रुद्रेभ्यो अवपथाः। वपेस्थासि लङि। तिङ्ङतिङ इत्यनुदात्तत्वम् ॥

अनुदात्त अकारादि अवपथाः यह क्रियापद परे होतो यजुर्वेद में एङ् प्रकृतिसे रहे॥

सर्वत्र विभाषा गोः ॥ १२० ॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरिति वा प्रकृतिभावः स्यात् पदान्ते। यथा-गो अग्रम्। गोऽग्रम् ॥

लोक और वेद में एङन्त गो शब्द विकल्प से प्रकृति से रहे पदान्त में अकार परे होतो ॥ १२० ॥

अवङ् स्फोटायनस्य ॥ १२१ ॥

पदान्तेऽचिपरे गोरवङ् वा स्यात। यथा-गवाग्रम्। गोऽग्रम् ॥

पदान्त में अच्परे होतो गो शब्द को स्फोटायन के मतमें अवङ् आदेश हो १२१

इन्द्रे च ॥ १२२ ॥

गोरवङ् स्यादिन्द्रेपरे यथा-गवेन्द्रः ॥

गो शब्द को अवङ् आदेश हो इन्द्र शब्द परे होतो ॥ १२२ ॥

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ॥ १२३ ॥

प्लुताश्च प्रगृह्याश्चाऽचि नित्यं प्रकृत्या स्युः। यथा-एहि धर्म्मदत्त ३ अत्र होमो भवति। कन्वी इमौ ॥

अच् परे होतो प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक नित्य प्रकृति से रहें ॥ १२३ ॥

आङोऽनुनासिकश्छन्दसि ॥ १२४ ॥

आङः, अ० कः, छं०सि । छन्दसि आङोऽचिपरेऽनुनासिकः स्यात् स च प्रकृत्या स्यात् । यथा--अभ्र आँ अपः। गभीर आँ उग्रपुत्रे

छन्द विषय में अच् परे होतो आङ् को अनुनासिक हो और वह प्रकृतिसेरहे ॥

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ॥ १२५ ॥

इकः, अ० र्णे, शा०स्य, ह्रस्वः, च । पदान्ता इकोऽसवर्णेऽचि परे प्रकृत्या स्युः ह्रस्वश्च वा । यथा-(चक्री अत्र) चक्रि अत्र । चक्र्यत्र

असवर्णी अच् परे होतो शाकल्य के मत में पदान्त इक् प्रकृति से रहे और विकल्प से ह्रस्वादेशहो ॥ १२५ ॥

ऋत्यकः ॥ १२६ ॥

ऋति, अकः । ऋतिपरेऽकः प्रकृत्या स्युःह्रस्वश्चवा यथा--[ब्रह्मा ऋषिः] ब्रह्म ऋषि । ब्रह्मर्षि ।

ऋकार परे होतो शाकल्य के मत में अक् प्रकृति से रहे और उसको विकल्प से ह्रस्वादेशहो ॥ १२७ ॥

अप्लुतवदुपस्थिते ॥ १२७ ॥

अ० त, उं० ते । उपस्थितोऽनार्ष इति शब्दः तस्मिन् परे प्लुतो ऽप्लुतवत् स्यात् । यथा सुश्लोक ३ इति । सुश्लोकेति ॥

अनार्ष इति शब्द परे होतो प्लुतको अप्लुतके तुल्य कार्य हो ॥ १२७ ॥

ई ३ चाक्रवर्मणस्य ॥ १२८ ॥

इ ३ प्लुतोऽचि परे प्लुतवद्वा स्यात् । यथा-चिनुहि ३ इदम् । चिनुहीदम् । जुहुधि ३ इति । जुहुधीति ॥

अच् परे हो तो चाक्रवर्मण के मत में प्लुत इकार को अप्लुत के तुल्य कार्य हो १२८॥

दिव उत् ॥ १२९ ॥

दिवः, उत् । पदान्ते दिवोऽन्तादेश उः स्यात् । यथा-सुद्युभ्याम् । सुद्युभिः ।

पदान्त में दिव् प्रातिपदिक के अन्त को उकारादेश हो ॥ १२९ ॥

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि

ए० दोः, सु० पः, अकोः, अ० से, हलि । अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपः स्याद्धलि न तु नञ् समासे । यथा-एष यज्ञदत्तः । स रुद्रदत्तः ॥

अनञ् समास में हल् परे हो तो ककार भिन्न एतद् और तद् शब्द के सु का लोप हो ॥ १३० ॥

स्यश्छन्दसि बहुलम् ॥ १३१ ॥

स्यः, छ० सि, ब० म् । स्य इत्यस्य बहुलं सोर्लोपः स्याद्धलि । यथा-एषस्य भानुः । यत्रस्यो निपतेत् ॥

हल् परे हो तो छन्द विषय में स्य के सु का बहुल करके लोप हो ॥ १३१ ।

सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ॥ १३२ ॥

सः, अचि, लोपे, चेत्, पा० म् । स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत । यथा-सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे ।

पादशब्देन लोक वेदयो रुभयोर्ग्रहणम । तेनात्रापि । सैष दाशरथी रामः, सैषाराजा युधिष्ठिरः सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः ॥

अच् परे हो और यदि लोप होनेपर पाद की पूर्ति होती होतो तद् शब्द के सुका लोप हो ॥ १३२ ॥

सुट् कात् पूर्वः ॥ १३३ ॥

अधिकारोऽयं पारस्करप्रभृतिनि च संज्ञाया मिति यावत् ॥

ककार से पूर्व सुट् हो यह अधिकार पारस्करप्रभृतीनि (६ । १ । १५४) च संज्ञायाम् सूत्रा वधि है ॥ १३३ ॥

सम्पर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे ॥ १३४ ॥

सम् परि उप इत्येभ्यो भूषणेऽर्थे करोतौ परे कात् पूर्वः सुडागमः स्यात् । यथा-- संस्कर्त्ता । संस्कर्तुम् । संस्कर्त्तव्यम् । परिष्कर्ता । परिष्कर्तुम् । परिष्कर्त्तव्यम् । उपस्कर्ता । उपस्कर्तुम् । उपस्कर्त्तव्यम् ॥

डुकृञ् धातु परे होतो सम् परि और उप से परे भूषण अर्थ में ककार से पूर्व सुट् का आगम हो ॥ १३४ ॥

समवाये च ॥ १३५ ॥

समवायः समुदायः-तस्मिन्नर्थे करोतौ परे सम्पर्युपेभ्यः कात् पूर्वः सुडागमः स्यात् । यथा--तत्र न संस्कृतम् । तत्र न परिष्कृतम् । तत्र न उपस्कृतम् । समुदितमित्यर्थः ॥

समुदाय अर्थ में करोति धातु परे होतो सम् परि और उप उपसर्गो से परे क से पूर्व सुट् का आगम हो ॥ १३५ ॥

उपात् प्रतियत्न वैकृत वाक्याध्याहारेषु

१ (८ । ३ । ७०) इतिषत्वम् ॥

उपात्कृञः सुडागमः स्यादेष्वर्थेषु। प्रतियत्नो-गुणाधानम्। विकृतमेव-वैकृतम्। वाक्यस्याध्याहारः-आकाङ्क्षितैकदेश पूरणम्। यथा-उपस्कृता कन्या। अलंकृतेत्यर्थः। एधो दकस्योपकुरुते। गुणधानं करोतीत्यर्थः। उपस्कृतं भुङ्क्ते। विकृतमित्यर्थः। उपस्कृतं ब्रूते। वाक्यध्याहारेण ब्रूते इत्यर्थः॥

प्रतियत्न वैकृत और वाक्यध्याहार अर्थमें करोति धातु परे होतो उप उपसर्ग से परे कृ से पूर्व सुट् का आगम हो॥ १३६॥

किरतौ लवने॥ १३७॥

उपात् किरते स्सुडागमः स्याच्छेदेऽर्थे। यथा--उपस्किरति॥

लवन (छेद) विषय में कृ धातुपरे होतो उप उपसर्ग से परे कसे पूर्व सुट् का आगम हो॥ १३७॥

हिंसायां प्रतेश्च॥ १३८॥

हिं० म.प्रतेः, च। उपात्प्रतेश्च किरतेः सुडागमः स्याद् हिंसायाम् यथा--उपस्किरति। प्रतिस्किरति॥

हिंसार्थ में किरति (कृ) धातु परे होतो उप और प्रति उपसर्ग से परे कृ से पूर्व सुट् का आगम हो॥ १३८॥

अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने॥ १३९॥

अ० तु० च० पु आ० ने। अपात् किरतेः सुट् स्यात्। (सुडपि-हृषादिष्वेव वाच्यः) यथा—अपस्किरते—वृषो हृष्टः, कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थीच॥

चतुष्पाद् और शकुनि के आलेखन विषय में अप उपसर्ग से परे ककार से पूर्व कृ धातुके सुट् का आगमहो॥ १३९॥

कुस्तुम्बरूणि जातिः ॥ १४० ॥

अत्र सुडिनपात्यते जातिश्चेद् भवेत् । यथा—कुस्तुम्बुरु र्नामौषधिजातिः । धान्यकम् । तत्फलान्यपि कुस्तुम्बुरूणि ॥

जाति वाच्य होनेपर कुस्तुम्बुरूणि शब्द में सुट् का आगम निपातन किया गया है ॥ १४० ॥

अपरस्पराः क्रियासातत्ये ॥ १४१ ॥

अपरस्परा इति सुट् निपात्यते क्रिया सातत्येगम्ये । यथा—अपस्पराः—सार्था गच्छन्ति । सततमविच्छेदेन गच्छन्तीत्यर्थः ॥

क्रिया का सातत्य गम्यमान होनेपर अपरस्पर शब्द में सुट्का आगम निपातन किया गया है ॥ १४१ ॥

गोष्पदं सेविताऽसेवितप्रमाणेषु ॥ १४२ ॥

सुट् सस्य षत्वं चात्रनिपात्यते । गावः पद्यन्तेऽस्मिन् देशे स गोभिः सेवितो देशो गोष्पद इत्युच्यते । असेविते । अगोष्पदान्यरण्यानि । प्रमाणे । गोष्पदं पूरं वृष्टोदेवः ॥

सेवित असेवित और प्रमाण अर्थ में गोष्पद शब्दमें सुडागम निपातन कियाहै ॥

आस्पदं प्रतिष्ठायाम् ॥ १४३ ॥

आत्म यापनाय स्थाने सुट् निपात्यते । यथा—आस्पदम् ।

प्रतिष्ठा गम्यमान होतो आपद में सुट् का आगम निपातन किया है ॥१४३॥

आश्चर्य्यमनित्ये ॥ १४४ ॥

आ० र्य्र, अं० त्ये। अनित्ये आश्चर्यं निपात्यते। आश्चर्य-यदि स भुञ्जीत ॥

अनित्य (अद्भुत) अर्थ में आचर्य में सुट् करके आश्चर्य निपातित कियाहै॥

वर्चस्केऽवस्करः ॥ १४५ ॥

कुत्सितं वर्चः वर्चस्कम्। तस्मिन्नभिधेयेऽवस्कर इति निपात्यते। अवकीर्यते इति-अवस्करः--अन्नमलम् ॥

वर्चस्क अर्थ में अवकर में सुट् करके अवस्कर शब्द निपातन किया है १४५

अपस्करो रथाङ्गम् ॥ १४६ ॥

अ०रः, र०म्। अपस्कर इति निपात्यते रथाङ्गं चेत्स्यात्। यथा-अपस्करः--रथावयवः ॥

रथाङ्ग होनेपर अपकर में सुडागम करके अपस्कर शब्द निपातन कियागया है॥

विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा ॥ १४७ ॥

वि० रः, श० निः, वि०रः, वा। अत्र वेति सुट् निपात्यते। यथा-विष्किरः, विकिरः ॥

शकुनि (पक्षी) वाच्य होनेपर विकिर शब्द में विकल्पसे सुट् निपातन किया गया है ॥ १४७ ॥

ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे ॥ १४८ ॥

ह्र० ते, चं० दे, मन्त्रे। मन्त्रे ह्रस्वात्परस्य चन्द्रशब्दस्योत्तरपदस्य सुडागमः स्यात्। यथा-हरिश्चन्द्रोमरुद्गणः ॥

ह्रस्व से चन्द्रोत्तर परे हो तो मन्त्र विषय में चकार के पूर्व सुट् का आगम हो॥

प्रतिष्कशश्च कशेः ॥ १४९ ॥

प्र० शेः, च, कशेः । (कश गतिशासनयोः) इत्यस्य प्रतिपूर्वस्य पचाद्यचि सुट् निपात्यते, षत्वं च । सहायः, पुरोयायी वा,—प्रतिष्कशः-इत्युच्यते ॥

प्रतिपूर्वक कश धातु के प्रतिकश का स्थानी सुडागम सहित प्रतिष्कश निपातन किया गया है ॥ १४९ ॥

प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी ॥ १५० ॥

प्र० न्द्रौ, ऋषी । प्रस्कण्वो हरिश्चन्द्र इति सुण् निपात्यते ऋषी चेदभिधेयौ स्याताम् । यथा—प्रस्कण्व ऋषिः । हरिश्चन्द्र ऋषिः ॥

ऋषि अभिधेय हो तो प्रकण्व और हरिचन्द्र के स्थान में सुट् सहित प्रस्कण्व और हरिश्चन्द्र शब्द निपातित हैं ॥ १५० ॥

मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः ॥

मस्कर मस्करिन् इतीमौ यथासङ्ख्यं वेणौ परिव्राजके च निपात्येते । यथा—मस्करो वेणुः । मस्करी परिव्राजकः ॥

वेणु (बांस) और परिव्राजक (सन्यासी) अर्थ में मस्कर और मस्करिन् शब्द निपातन किये हैं ॥ १५१ ॥

कास्तीराजस्तुन्दे नगरे ॥ १५२ ॥

नगरेऽभिधेये कास्तीर अजस्तुन्द इतीमौ निपात्येते । यथा—ईषत्तीरमस्यास्तीति—कास्तीरं नाम नगरम् । अजस्येव तुन्दमस्येति-अजस्तुन्दं नाम नगरम् ॥

नगर अभिधेय हो तो कास्तीर और अजस्तुन्द शब्द निपातित हैं ॥१५२॥

पारस्करप्रभृतीनि च सञ्ज्ञायाम् ॥१५३॥

सञ्ज्ञायां विषये पारस्कर प्रभृतीनि च शब्द रूपाणि ससुट्कानि निपात्यन्ते । यथा—पारस्करो देशः । कारस्करो वृक्षः । आकृतिगणोऽयम् ॥ (तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः—सुट्, तलोपश्च) ॥ तस्करश्चोरः । बृहस्पतिर्देवता ॥ (प्रायस्य-चित्तिचित्तयोः) ॥ प्रायश्चित्तिः । प्रायश्चित्तम् ॥

संज्ञा गम्यमान हो तो पारस्कर आदि शब्द सुट् सहित निपातित हैं १५३

अनुदात्तं पदमेक वर्जम् ॥१५४॥

अ०मे,प०मे,ए० म् वं० म् । परिभाषेयं स्वरविधि विषया । यस्मिन् पदे यस्योदात्तः स्वरितो वाविधीयते तमेकमचं वर्जयित्वा शेषं तत्पदमनुदात्ताच्कं स्यात् । यथा—गोपायति ॥

जिसपद में जिस को उदात्त वा स्वरित विधान किया है उस एक अच् को छोड़ कर शेष वह पद अनुदात्त हो यह परिभाषा सूत्र है ॥ १५४ ॥

कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ॥१५५॥

क० तः, घञः, अन्तः, उ०तः । कर्षतेर्धातोराकारवतश्च घञन्तस्यान्त उदात्तः स्यात् । यथा—कर्षः । पाकः । त्यागः दायः ॥

घञन्त कर्ष और अकार वान् घञन्त धातु को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५५ ॥

उञ्छादीनां च ॥१५६॥

अन्त उदात्तः स्यात् । यथा— उञ्छः । म्लेच्छः ॥

उञ्छादि गण पठित शब्दों को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५६ ॥

अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः॥१५७॥

अ०स्यं, च, यत्र , उ०पः । यस्मिन्ननुदात्ते परे उदात्तो लुप्यते तस्योदात्तः स्यात् । कुमार शब्दोऽन्तोदात्तस्तस्य ङीप्यनुदात्ते उदात्तो लुप्यते । यथा--कुमारी ॥

जिस अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हुआहोतो उस को उदात्त हो ॥ १५७

धातोः ॥ १५८ ॥

धातोरन्त उदात्तः स्यात् । यथा- पटति पचति ॥

धातु को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५८ ॥

चितः ॥ १५९ ॥

चितोऽन्त उदात्तः स्यात् । यथा--भङ्गुरम् । भासुरम् । मेदुरम् ॥

चित् प्रत्यय को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५९ ॥

तद्धितस्य ॥ १६० ॥

चितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः स्यात् । यथा--कौञ्जायनाः ॥

तद्धित के चित् प्रत्ययको अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १६० ॥

कितः ॥ १६१ ॥

तद्धितस्य कितोऽन्तः उदात्तः स्यात्।यथा-नाडायनः।चारायणः॥

तद्धित के कित् प्रत्ययको अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १६१ ॥

तिसृभ्योजसः ॥ १६२ ॥

ति० भ्यः, जसः । तिसृभ्य उत्तरस्य जसोन्त उदात्तः स्यात् । यथा--तिस्रस्तिष्ठन्ति ॥

तिसृ शब्द से परे जस् विभक्ति को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १६२ ॥

चतुरः शसि ॥ ६३ ॥

शसिपरे चतुरोऽन्त उदात्तः स्यात् । यथा- चतुरः पश्य ॥

शस् विभक्ति परे होतो चतुर शब्दको अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १६३ ॥

सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्ति १६४

सौ, ए० चः, तृ० दिः, वि० क्तिः । साविति सप्तमी बहुवचनम् । यत्रसौ य एकाच् ततः परा तृतीयादिर्विभक्तिरुदात्ता स्यात् । यथा--वाचा । वाग्भ्याम् । वाग्भिः ॥

सु परे होतो एकाच से परे तृतीयादि विभक्ति उदात्तहो ॥ १६४ ॥

अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यमनित्य समासे ॥ १६५ ॥

अ० त्, उ० त्, अ०म्, अ० से । नित्याधिकारविहितसमासादन्यत्रयदुत्तरपदमन्तोदात्तमेकाच् तस्मात्परा तृतीयादिर्विभक्तिरन्तोदात्ता वास्यात् । यथा–परमवाचा२ ॥

अनित्य समास में अन्तोदात्त एकाच् उत्तरपद से परे तृतीयादि विभक्ति विकल्प से उदात्त हो ॥ १६५ ॥

अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनाम स्थानम् ॥ १६६ ॥

अञ्चेः, छं० सि, अं० ने । छन्दसि विषये अञ्चेः परा सर्वनाम विभक्ति रुदात्तास्यात् । यथा—इन्द्रो दधीचो अस्थभिः ॥

छन्द विषय में अञ्चु धातु से परे असर्वनाम स्थान विभक्ति उदात्त हो१६६

ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः ॥ १६७॥

ऊठ्, इदम्, पदादि, अप् , पुम्, रै, दिव् इत्येभ्योऽसर्वनामस्थान विभक्तिरुदात्ता स्यात् । यथा—ऊठ्—प्रष्ठौहः । प्रष्ठौहा । इदम्—आभ्याम् । एभिः । पदादयः—पद्दन्नोमास हृन्निश् इतिषट् । निपदश्चतरो जहि । या द्वतो धावति । असन् प्रभृतिभ्योविभक्ति रुदात्ता भवति । ग्रीवायां बद्धो अपि कक्षआसनि । मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् । (अप्) अपः पश्य । पुम्—पुंस । पुम्भ्याम् । रै—रायः पश्य । दिव्—दिवः पश्य । दिवा । दिवे ॥

ऊठ् इदम् पदादि अप् पुम् रै और दिव् शब्दसे परे असर्वनामस्थान विभक्ति उदात्त हो ॥ १६७ ॥

अष्टनोदीर्घात् ॥ १६८ ॥

अं० नः, दी०त् । अष्टनो दीर्घान्तादसर्वनाम स्थान विभक्ति रुदात्तास्यात् । यथा— अष्टाभ्यः । अष्टाभिः । अष्टासु ॥

दीर्घ अष्टन् शब्दसे परे असर्व नाम स्थान विभक्ति उदात्तहो ॥ १६८ ॥

शतुरनुमो नद्यजादी ॥ १६९ ॥

शतुः,अ०मः,नं० दी । अनुम् यः शतृप्रत्ययस्तदन्तोदन्तो दात्तात्परानदी अजादिश्च विभक्तिरसर्वनामस्थानमुदात्ता स्यात् । यथा— तुदती । नुदती । तुदता । नुदता ॥

नुन् भिन्न शतृप्रत्ययान्त अन्तोदात्त से परे नदी और अजादि असर्वनाम स्थान विभक्ति उदात्तहो ॥ १६९ ॥

उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥ १७० ॥

उ० ऐ, है० त । उदात्तस्थाने यो यण हल्पूर्वस्ततः परानदी अजादिरसर्वनामविभक्तिश्च उदात्ता स्यात् । यथा- चोदयत्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । कर्त्री । हर्त्री ॥

हल् है पूर्व जिसके ऐसे उदात्त के स्थान में हुये यण् से परे नदी और अजादि असर्वनाम स्थान विभक्ति उदात्तहो ॥ १७० ॥

नोङ्धात्वोः ॥ १७१ ॥

अ
मं० ऊ० त्वोः ऊङो धातोश्च य उदात्तयण् हल्पूर्वस्ततः पराजाद्य सर्वनाम स्थान विभक्तिर्नोदात्ता स्यात् । यथा-ब्रह्मबन्ध्वा । ब्रह्मबन्ध्वे । सकृल्ल्वा । सकृल्ल्वे ॥

हल् है पूर्व जिसके ऐसे उदात्त ऊङ् और धातुके स्थान में हुये यण् से परे अजादि असर्वनाम विभक्ति उदात्त न हो ॥ १७१ ॥

ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥ १७२ ॥

ह्रस्वान्तादन्तो दात्तान्नुटश्च परो मतुबुदात्तः स्यात् । यथा- अग्निमान् । वायुमान् । अक्षण्वता । शीर्षण्वता ॥

ह्रस्वान्त अन्तोदात्त और नुट् से परे मतुप् उदात्त हो ॥ १७२ ॥

नामन्यतरस्याम् ॥ १७३ ॥

अ
नाम्, अ० मं। मतुपि यो ह्रस्वस्तदन्तादन्तोदात्तात्परो नामुदा

त्तो वा स्यात्। यथा— अग्नीनाम् अग्नीनाम्। वायूनाम्। वायूनाम्

मतुप् प्रत्ययके परे जो ह्रस्वान्त अन्तोदात्त शब्द उससे परे नाम् विकल्प से उदात्त हो ॥ १७३ ॥

ङ्याश्छन्दसि बहुलम् ॥ १७४ ॥

ङ्याः, छं०सि, बं० म् । ङ्यन्ताच्छन्दसि नामबहुलमुदात्ता स्यात्। यथा—देवसेनानामभि भञ्जतीनाम्। नच भवति। नदीनां पारे जयन्तीनां मरुतः ॥

छन्द विषयमें ङ्यन्त से परे नाम् बहुलता से उदात्त हो ॥ १७४ ॥

षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः ॥ १७५ ॥

ष० भ्यः, हं०दिः। एभ्यो हलादि विभक्तिरुदात्ता स्यात्। यथा—षण्णाम्। षड्भिः। षड्भ्यः। पञ्चानाम्। दशानाम्। त्रिभिः। त्रिभ्यः। त्रयाणाम्। चतुर्णाम्। चतुर्भ्यः ॥

षट् संज्ञक त्रि और चतुर् शब्दसे परे हलादि विभक्ति उदात्त हो ॥ १७५ ॥

झल्युपोत्तमम् ॥ १७६ ॥

झलि, उ० मं । षट् त्रिचतुर्भ्यो या हलादि विभक्तिस्तदन्ते पदे उपोत्तममुदात्तं स्यात् । यथा—पञ्चभिस्तपस्तपति। सप्तभिः त्रिंशता। चतुर्भिः ॥

षट् संज्ञक त्रि और चतुर् शब्द से परे जो झलादि विभक्ति तदन्त पद में जो उपोत्तम वह उदात्तहो ॥ १७६ ॥

विभाषा भाषायाम् ॥ १७७ ॥

षट् त्रिचतुर्भ्यो या हलादिर्विभक्तिस्तदन्ते पदे उपोत्तममुदात्तं

वास्याद् भाषायाम् । यथा—पञ्चभिः । पञ्चभिः । तिसृभिः । तिसृभिः । चतसृभ्यः । चतसृभ्यः ॥

भाषा (लोक) में षट् संज्ञक त्रि और चतुर् शब्द से परे जो झलादि विभक्ति तदन्तपद में जो उपोत्तम वह विकल्प से उदात्तहो ॥ १७७ ॥

न गोश्वन्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः

एभ्यः प्रागुक्तं न स्यात् । यथा—गवा । गवे । सुगुना । सुगवे । शुना । शुने । श्वभ्याम् । परमशुना । साववर्णः । सौ प्रथमैकवचने यद्वर्णान्तं तस्य ग्रहणम् । येभ्यः । केभ्यः । तेभ्यः । राजा । परमराजा । प्राञ्चा । प्राङ्भ्याम् । कुञ्चा । परमकुञ्चा । कृता । परमकृता ॥

गो श्वन्, साववर्ण (प्रथमा के एक वचन में जो अवर्णान्त) राड्, अङ्क् क्रुङ् और कृत् से परे विभक्ति उदात्त न हो ॥ १७८ ॥

दिवो झल् ॥ १७९ ॥

दिवः, झल् । दिवः परा झलादि विभक्तिर्नोदात्ता स्यात् । यथा-द्युभ्याम् । द्युभिः ॥

दिव से परे झलादि विभक्ति उदात्त नहो ॥ १७९ ॥

नृ चान्यतरस्याम् ॥ १८० ॥

नृ च, अ० म् । नुः परा झलादिर्विभक्ति र्वोदात्ता स्यात् । यथा-नृभ्याम् । नृभ्याम् । नृभिः । नृभिः ॥

नृ शब्द से परे झलादि विभक्ति विकल्प से उदात्तहो ॥ १८० ॥

तित् स्वरितम् ॥ १८१ ॥

तित् स्वरितं स्यात्। यथा—चिकीर्ष्यम्। जिहीर्ष्यम्। कार्य्यम्। हार्य्यम्॥

तित् प्रत्यय स्वरितहो ॥ १८१ ॥

तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः ॥ १८२ ॥

तां० त्, ल० मे, अ० म्, अ० ङोः। अस्मात् परं लसार्वधातुकमनुदात्तं स्यात्। यथा—तासि—कर्त्ता। कर्त्तारौ। कर्त्तारः। अनुदात्तेतः। आस्ते। आसाते। आसते। ङित्। शेते। सूते। अनुपदेशात्। पठतः। पठन्ति॥

ह्नुङ् और इङ् वर्जित तास् प्रत्यय, अनुदात्तेत् धातु ङित् धातु तिङ् धातु और अनुपदेश धातु उक्त धातुओं से परे जो लसार्व धातुक संज्ञक लकार के स्थान में तिप् आदि प्रत्यय वे अनुदात्तहों ॥ १८२ ॥

आदिःसिचोऽन्यतरस्याम् ॥ १८३ ॥

आदिः, सिचः, अ० म। सिजन्तस्यादिरुदात्तो वा स्यात्। यथा-माहि कार्ष्टाम्। माहि कार्ष्टाम्॥

सिच् प्रत्यय के आदि को विकल्प से उदात्त हो ॥ १८३ ॥

स्वपादिहिंसामच्यनिटि ॥ १८४ ॥

स्व० मे, अचि, अ० टि। स्वपादीनां हिंसेश्चानिट्यजादौ लसार्वधातु के परे आदिरुदात्तो वा स्यात्। यथा—स्वपन्ति। स्वपन्ति। हिंसन्ति। हिंसन्ति॥

अजादि अनिट् लसार्वधातुक परे होतो स्वपादि और हिंस धातु के आदि को विकल्प से उदात्त हो ॥ १८४ ॥

अभ्यस्तानामादिः ॥ १८५ ॥

अ॰म्, आदिः। अनिट्यजादौ ल सार्वधातुके परे अभ्यस्ताना मादि रुदात्तः स्यात्। यथा-ददति। ददतु। जाग्रति॥

अजादि अनिट् ल सार्वधातु परे होतो अभ्यस्त संज्ञक धातुओं के आदि को उदात्त हो॥ १८५॥

अनुदात्ते च ॥ १८६ ॥

अविद्यमानोदात्ते ल सार्वधातु के परेऽभ्यस्तानामादिरुदात्तः स्यात्। यथा-ददाति। दधाति। मिमीते॥

उदात्त जिस में न हो ऐसा ल सार्वधातु के परे होतो अभ्यस्तों का आदि उदात्त हो॥ १८६॥

सर्वस्य सुपि ॥ १८७ ॥

सुपि परे सर्व शब्दस्यादि रुदात्तः स्यात्। यथा-सर्वः। सर्वौ सर्वे॥

सुप् परे होतो सर्वशब्द का आदि उदात्त हो॥ १८७॥

भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात् पूर्वं पिति ॥ १८८ ॥

भीप्रभृतीनामभ्यस्तानां पिति लसार्वधातु के परे प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तं स्यात्। यथा-बिभेति। जिह्रेति। बिभर्ति। जुहोति। ममत्तु नः परिज्मा। मदेर्बहुलं छन्दसीति विकरणस्य श्लुः। जजनद्दिन्द्रम्। दधनत्। दरिद्राति। जागर्ति॥

पित् सार्वधातुक परे होतो भी आदि अभ्यस्त संज्ञकों को प्रत्यय से पूर्व उदात्त हो ॥ १८८ ॥

लिति ॥ १८९ ॥

लिति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं स्यात्। यथा—चिकीर्षकः। जिहीर्षकः
लित प्रत्यय परे होतो प्रत्यय से पूर्व अक्षर उदात्त हो ॥ १८९ ॥

आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् ॥ १९० ॥

आदिः, णमुलि, अ०म् । णमुलि परे अभ्यस्तानामादिरुदात्तो वा स्यात्। यथा—लोलूयंलोलूयम् ।लोलूयं लोलूयम् ॥
णमुल प्रत्यय परे होतो अभ्यस्तों का आद् अक्षर उदात्त हो ॥ १९० ॥

अचः कर्तृयकि ॥ १९१ ॥

उपदेशेऽजन्तानां कर्तृयकि परे आदिरुदात्तो वा स्यात्। तथा—लूयते केदारः स्वयमेव । लूयते केदारः स्वयमेव ॥
कर्त्ता में यक् परे होतो उपदेश में जो अजन्त धातु उनका आदि विकल्प से उदात्त हो॥

थलि च सेटीडन्तो वा ॥ १९२ ॥

थलि, च सेटि, इट, अन्तः, वा। सेटि थलन्ते परे इडुदात्तः, अन्तो वा आदि वा स्यात्। यथा लुलविथ। अत्र चत्वारोऽपि पर्यायेणोदात्ताः। लुलविथ। लुलविथ लुलविथ ॥
सेट् थल् परे होतो इट् को उदात्तहो, अन्त और आदि को विकल्पसे हो १९२

अनित्यादिर्नित्यम् ॥ १९३ ॥

ञ्निति, आदिः, नि० मे । ञिति निति चादिरुदात्तो नित्यं स्यात् । यथा-(गर्गादिभ्यो यञ्) गार्ग्यः । वत्स्यः । (वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्) वासुदेवकः । अर्जुनकः ॥

ञित् और नित् प्रत्यय परे होतो आदि अक्षर उदात्तहो ॥ १६१ ॥

आमन्त्रितस्य च ॥ १६४ ॥

आमन्त्रितस्यादि रुदात्तः स्यात् । यथा--देवदत्तः । देवदत्तौ । देवदत्ताः ॥

आमन्त्रित का आदि उदात्तहो ॥ १९४ ॥

पथिमथोः सर्वनामस्थाने ॥ १६५ ॥

सर्वनामस्थाने परे पथिमथोरादिरुदात्तः स्यात् । यथा--पन्थाः मन्थानौ । पन्थानः ॥

सर्वनाम स्थान परे होतो पथिन् और मथिन् शब्दका आदि अक्षर उदात्तहो ॥

अन्तश्च तवै युगपत् ॥ १६६ ॥

अन्तः, च, हवै, यु० त् । तवै प्रत्यान्तस्याद्यन्तौ युगपदाद्यु दात्तौ स्याताम् । यथा- कर्त्तवै हर्त्तवै ॥

तवै प्रत्ययान्तके आदि और अन्तको एकसा थ आदि उदात्त हो ॥ १९१ ॥

क्षयो निवासे ॥ १६७ ॥

क्षयः, नि० सं० । निवासेऽर्थे क्षय आदि रुदात्तः स्यात् । यथा-क्षेये जागृहि प्रपश्यन् ॥

निवास अर्थमें क्षय शब्द आदि उदात्त हो ॥ १९७ ॥

जयः करणम् ॥ १९८ ॥

करणवाची जयशब्दः आद्युदात्तः स्यात् । यथा- जयत्यनेन जयोऽश्वः ॥

करण वाची जय शब्द आद्युदात्त हो ॥ १९८ ॥

वृषादीनां च ॥ १९९ ॥

आदि रुदात्तः स्यात् । यथा- वृषः । जनः । ज्वरः

वृष आदि गणपठित शब्दों का आदि उदात्त हो ॥ १९९ ॥

सञ्ज्ञायामुपमानम् ॥ २०० ॥

स० मूँ, उ० मू । उपमानशब्दः सञ्ज्ञाया माद्युदात्तः स्यात् । यथा- चञ्चेव-चञ्चा । दद्भ्रिका ॥

संज्ञाविषयमें उपमानशब्द आद्युदात्त हो ॥ २०० ॥

निष्ठा च द्व्यजनात् ॥ २०१ ॥

निष्ठा, च, द्व्यच्, अ० त् । निष्ठान्तस्य द्व्यचः संज्ञाया माद्युदात्तः स्या न्नत्वकारः । यथा- दत्तः । गुप्तः । बुद्धः ॥

निष्ठान्त द्व्यच् का संज्ञा विषयमें आदि अक्षर उदात्त हो ॥ २०१

शुष्कधृष्टौ ॥ २०२ ॥

इमावाद्युदात्तौ स्याताम् । संज्ञार्थमिदम् । यथा -शुष्कः । धृष्टः ॥

संज्ञार्थ में शुष्क और धृष्ट शब्द आद्युदात्त हो ॥ २०२ ॥

आशितः कर्त्ता ॥ २०३ ॥

कर्तृवाची आशित शब्द आद्युदात्तः स्यात्। यथा-आशितो देवदत्तः ॥

कर्तृवाची आशित शब्द आद्युदात्त हो ॥ २०३ ॥

रिक्ते विभाषा ॥ २०४ ॥

रिक्तशब्दे वादि रुदात्तः स्यात्। यथा- रिक्तः। रिक्तः॥

रिक्त शब्द में विकल्प से आद्युदात्त हो ॥ २०४ ॥

जुष्टार्पिते च च्छन्दसि ॥ २०५ ॥

इमे शब्दरूपे छन्दसि वाद्युदात्ते स्याताम्। यथा- जुष्टः। जुष्टः अर्पितः। अर्पितः॥

छन्द विषय में जुष्ट और अर्पित शब्द विकल्पसे आद्युदात्तहों ॥ २०५ ॥

नित्यं मन्त्रे ॥ २०६ ॥

जुष्ट अर्पित इमे शब्दरूपेमन्त्र विषये नित्यमाद्युदात्ते स्याताम्। यथा- जुष्टं देवानामर्पितं पितृणाम्॥

मन्त्र विषयमें जुष्ट और अर्पित शब्द नित्य आद्युदात्त हो ॥ २०६ ॥

युष्मादस्मदोर्ङसि ॥ २०७ ॥

यु० दोः, ङसि। आदिरुदात्तः स्यात्। यथा- तव स्वम्। मम स्वम्॥

ङस् विभक्ति परे हो तो युष्माद् और अस्माद् शब्दका आदि उदात्तहो ॥ २०७ ॥

ङयि च ॥ २०८ ॥

युष्मादष्मदोर्ङायि आदिरुदात्तः स्यात्। यथा- तुभ्यम्। मह्यम्॥

ङे विभक्ति परे होतो भी युष्मद् अस्मद् शब्द के आदि को उदात्त हो ॥ २०८ ॥

यतोऽनावः ॥ २०९ ॥

यतः, अनावः । यत्प्रत्यान्तस्य द्व्यचः आदि रुदात्तः स्यात् । नावंविना । यथा– चेयम् । जेयम् कण्ठ्यम् । ओष्ठ्यम् ॥

नौ शब्द से भिन्न शब्द परे होतो यत् प्रत्ययान्त का आदि उदात्तहो ॥ २०९ ॥

ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः ॥ २१० ॥

एषां ण्यदन्तानामादिरुदात्तः स्यात् । यथा– ईड्यः । वन्द्यम् । वार्यम् । शंस्यम् । दोह्या धेनुः ॥

ईड, वन्द, वृ, शंस और दुह इन ण्यत् प्रत्ययान्तो का आदि उदात्त हो २१०

विभाषा वेण्विन्धानयो ॥ २११ ॥

अनयोरादिरुदात्तोवा स्यात् । वेणुः । वेणुः । इन्धानः । इन्धानः ॥

वेणु और इन्धान शब्दका आदि उदात्तहो विकल्पसे ॥ २११ ॥

त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम् ॥ २१२ ॥

एषामादि रुदात्तो वा स्यात् । यथा–त्यागः । त्यागः । रागः । रागः । हासः । हासः । कुहः । कुहः । श्वठः । श्वठः । क्रथः । क्रथः ॥

त्यागादि शब्दों का विकल्प से आदि अक्षर उदात्तहो ॥ २१२ ॥

उपोत्तमं रिति ॥ २१३ ॥

रित्प्रत्ययान्तस्योपोत्तममुदात्तं स्यात् । यथा–करणीयम् । हरणीयम् । पटुजातीयः । मृदुजातीयः ॥

रित्प्रत्ययान्त में उपोत्तम (अन्त के समीपस्थ) उदात्तहो ॥ २१३ ॥

चङ्यन्यतरस्याम् ॥ २१४ ॥

चङि, अ०म । चङन्ते धातावुपोत्तममुदात्तो वा स्यात् । यथा-मा हि चीकरताम् २ ॥

चङ् प्रत्यय परे होतो उपोत्तम विकल्प से उदात्तहो ॥ २१४ ॥

मतोः पूर्वमात संज्ञायां स्त्रियाम् ॥ २१५ ॥

मतोः, पूर्वम्, आत्, सं०म, स्त्रियाम् । मतोः पूर्वमाकार उदात्तः स्यात् स्त्रीनाम्नि । यथा-उदुम्बरावती । पुष्करावती ॥

मतुप प्रत्यय से पूर्व अकार उदात्तहो यदि वह मत्वन्त स्त्री लिङ्ग संज्ञा होतो॥

अन्तोऽवत्याः ॥ २१६ ॥

अन्तः, अवत्यः । अवतीशब्दान्तस्य सञ्ज्ञायाः मन्त उदात्तः स्यात् । यथा- अजिरवती । खदिरवती । हंसवती ॥

संज्ञा विषय में अवती शब्दान्त का अन्त उदात्त हो ॥ २१६ ॥

ईवत्याः ॥ २१७ ॥

ईवत्यन्तस्यान्त उदात्तः स्यात् । यथा-अहीवती । मुनीवती ॥

ईवती शब्द का अन्त उदात्त हो ॥ २१७ ॥

चौ ॥ २१८ ॥

लुप्ताकारेऽञ्चतौपरे पूर्वस्यान्तोदात्तः स्यात् । यथा-दधीचः पश्य । दधीचा ॥

लुप्तनकार अञ्चति परे होतो पूर्व का अन्तोदात्त हो ॥ २१८ ॥

समासस्य ॥ २१९ ॥

समासस्यान्त उदात्तः स्यात् । यथा—राजपुरुषः । छात्रकम्बलः । राजदृषत् । ब्राह्मणसमित् ॥

समास का अन्त अक्षर उदात्त हो ॥ २१९ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

अथ द्वितीयः पादः ॥

बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ॥ १ ॥

बहुव्रीहौ समासे उदात्तस्वरित योगि पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा— सत्यश्चित्र श्रवस्ततः ॥

बहुव्रीहि समास में पूर्वपद प्रकृति से (ज्योंका त्यों) रहे ॥ १ ॥

तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ॥ २ ॥

सप्तेमे पूर्वपद भूतास्तत्पुरुषे प्रकृत्या स्युः । यथा—तुल्यश्वेतः । सदृश लोहितः । शङ्कुलाखण्डः । किरिकाणः । अक्षशौण्डः । पानशौण्डः । शस्त्रीश्यामा । न्यग्रोधपरिमण्डला । अब्राह्मणः । कुब्रपलः । पानीयंशीतम् । भोज्यंलवणम् ॥

तत्पुरुष समास में तुल्यार्थ (समनार्थ) तृतीयान्त सप्तम्यन्त उपमान वाचक अव्यय, द्वितीयान्त और कृत्य प्रत्ययान्त पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ २ ॥

वर्णो वर्णेष्वनेते ॥ ३ ॥

वर्णः, व० पुं, अ० ते । वर्णवाचिन्युत्तरपदे एतवर्जिते वर्णवाचि पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् तत्पुरुषे समासे । यथा—कृष्णसारङ्गः । लोहितसारङ्गः ॥

तत्पुरुष समास में एतवर्जित वर्णवाची उत्तरपद परे होतो वर्ण वाचक पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ ३ ॥

गाधलवणयोः प्रमाणे ॥ ४ ॥

अनयोरुत्तरपदयोः प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा—अरित्रगाधमुदकम् । गोलवणम् । तत्प्रमाणमित्यर्थः । यावद् गवेदीयते तावदित्यर्थः ॥

तत्पुरुष समास में गाध (थोडा गहरा) और लवण उत्तरपद परे होतो पूर्व पदको प्रकृति स्वरहो ॥ ४ ॥

दायाद्यं दायादे ॥ ५ ॥

तत्पुरुषसमासे दायादशब्द उत्तर पदे दायाद्यवाचि पूर्वपदं प्रकृत्यास्यात् । यथा—विद्यादायादः । धनंदायादः ॥

तत्पुरुष समास में दायाद उत्तर पद परे होतो दयाद वाचक पूर्वपद को प्रकृति स्वरहो ॥ ५ ॥

प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः ॥ ६ ॥

तत्पुरुषे समासे चिरकृच्छ्रयो रुत्तरपदयोः प्रतिबन्धिवाचि पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा—गमनचिरम् । गमनकृच्छ्रम् । गमनं हि कारण विकलतया चिरकाल भावि कृच्छ्रयोगि वा प्रतिबन्धि जायते॥

तत्पुरुष समास में चिर और कृच्छ्र उत्तर पद परे होतो प्रति बन्धिवाची पूर्व पद को प्रकृति स्वरहो ॥ ६ ॥

पदेँऽपदेशेँ ॥ ७ ॥

व्याजवाचिनि पदशब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् तत्पुरुषे। यथा—मूत्रपदेन प्रस्थितः। उच्चारपदेन प्रस्थितः॥

अपदेश (बहाना) वाची तत्पुरुष समास में पद शब्द उत्तरपद परे होतो पूर्व पद को प्रकृति स्वरहो ॥ ७ ॥

निवँते वातँत्राणे ॥ ८ ॥

निवातशब्दे परे वातत्राण वाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। यथा-- कुटीनिवातम् । शमीनिवातम् ॥

वातत्राण (समीप) वाचक तत्पुरुष समास में निवात शब्द उत्तर पद परे होतो पूर्वपद को प्रकृति स्वरहो ॥ ८ ॥

शाँरदेऽनाँर्त्तवे ॥ ९ ॥

ऋतौ भवमार्त्तवम्। तदन्यवाचिनि शारदशब्दे परे तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं स्यात्। यथा--रज्जुशारदमुदकम्। दृषत् शारदाः सक्तवः। शारदशब्दोऽयं नूतनार्थः। तस्यास्वपदविग्रहः। रज्जोः सद्य उद्धृतम्॥

अनार्त्त वाची तत्पुरुष समासमें शारद शब्द उत्तरपद परे होतो पूर्वपद को प्रकृति स्वरहो ॥ ९ ॥

अध्वर्यकषायोर्जातौ ॥ १० ॥

अ० योः, जाँतौ। अनयोः परतो जाति वाचिनि तत्पुरुषे समासे

पूर्वं पदं प्रकृति स्वरं स्यात्। यथा– प्राच्याध्वर्युः । कलापाध्वर्युः कुठाध्वर्यु दौवारिक कषायम् ॥

जाति वाची तत्पुरुष समासमें अध्वर्यु । और कषाय उत्तरपद परे होतो पूर्वपद को प्रकृति स्वरहो ॥ १० ॥

सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्यते ॥ ११ ॥

अनयोः सादृश्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वं पदं प्रकृत्या स्यात्। यथा– पितृसदृशः मातृसदृशः । पितृप्रतिरूपः । मातृप्रतिरूपः ॥

सादृश्य वाची तत्पुरुष समासमें सदृश और प्रतिरूप उत्तरपद परे होतो पूर्वपद को प्रकृति स्वरहो ॥ ११ ॥

द्विगौ प्रमाणे ॥ १२ ॥

द्विगावुत्तरपदे परे प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृति स्वरं स्यात्। यथा–प्राच्यसप्तसमः । गान्धारि सप्तसमः ॥

प्रमाणवाची तत्पुरुष समास में द्विगु उत्तरपद परे होतो पूर्वपदको प्रकृति स्वरहो॥

गन्तव्यपण्यं वाणिजे ॥ १३ ॥

वाणिजशब्देपरे तत्पुरुषे समासे गन्तव्यवाचि पण्यवाचिच पूर्वपदं प्रकृति स्वरं स्यात्। यथा–मद्रवाणिजः । काश्मीरवाणिजः । अश्ववाणिजः । सप्तमीसमासः ॥

तत्पुरुष समास में वाणिज शब्द उत्तरपद परे होतो गन्तव्य वाची और पण्य वाची पूर्व पद को प्रकृति स्वरहो ॥ १३ ॥

मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके ॥ १४ ॥

मात्रादिषु परतो नपुंसक वाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृति

स्वरं स्यात्। यथा--भिक्षायास्तुल्यप्रमाणम् भिक्षामात्रम्। भिक्षामात्रं न ददाति याचितः। समुद्रमात्रं न सरोऽस्ति किञ्चन। पाणिन्युपज्ञम्। आढ्योपक्रमं प्रासादः। इषुच्छायम् ॥

नपुंसक वाची तत्पुरुष समास में मात्रा, उपज्ञा, उपक्रम और छाया उत्तरपद परे होतो पूर्वपद को प्रकृति स्वरहो ॥ १४ ॥

सुखप्रिययोर्हिते ॥ १५ ॥

सु० यो॰,हिते। अनयोः परयो हितवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं स्यात्। यथा—गमनसुखम्। वचनसुखम्। गमनप्रियम्। वचनप्रियम् ॥

हितवाची तत्पुरुष समास में सुख और प्रिय शब्द परे होतो पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ १५ ॥

प्रीतौच ॥ १६ ॥

प्रीतौ गम्यमानायां सुख प्रिययोः परयोस्तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृति स्वरं स्यात्। यथा—ब्राह्मणसुखं पायसम्। छात्रप्रियोऽनध्यायः। ब्राह्मण छात्रशब्दौ प्रत्ययस्वरेणान्तो दात्तौ॥

तत्पुरुष समास में प्रीति गम्यमान होतो सुख और प्रिय शब्द परे होनेपर पूर्व पद को प्रकृति स्वरहो ॥ १६ ॥

स्वं स्वामिनि ॥ १७ ॥

स्वामि शब्दे परे स्ववाचि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृति स्वरं स्यात्। यथा—गोस्वामी। अश्वस्वामी ॥

तत्पुरुष समास में स्वामि शब्द उत्तरपद परे होतो स्व वाचक पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ १७ ॥

पत्यावैश्वर्ये ॥ १८ ॥

पत्यौ ० ए०र्ये । पति शब्दे परे ऐश्वर्य वाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृति स्वरं स्यात्। यथा-गृहपतिः । सेनापतिः ॥

तत्पुरुष समास में ऐश्वर्य वाचक पतिशब्द उत्तरपद परे हो तो पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ १८ ॥

न भूवाक्चिद्दिधिषु ॥ १९ ॥

पतिशब्दे परे ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे नेमानि पूर्वपदानि प्रकृतिस्वराणि स्युः । यथा-भूपतिः। वाक्पतिः । चित्पतिः । दिधिषूपतिः ॥

तत्पुरुष समास में ऐश्वर्य वाची पतिशब्द परे हो तो भू, वाक्, चित्, और दिधिषू इन के पूर्वपद को प्रकृति स्वर न हो ॥ १९ ॥

वा भुवनम् ॥ २० ॥

पति शब्दे परे ऐश्वर्य वाचिनि तत्पुरुषे समासे भुवन शब्दः पूर्वपदं वा प्रकृत्या स्यात् । यथा-भुवनपतिः । भुवनपतिः ॥

तत्पुरुष समास में ऐश्वर्यवाची पति शब्द परे हो तो भुवन शब्द का पूर्व पद विकल्प से प्रकृति स्वर हो ॥ २० ॥

आशङ्काबाधनेदीयस्सु सम्भावने २१

आशङ्क आबाध नेदीयस् इत्येतेषु परेषु सम्भावनवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात । अस्तित्वाध्यवसायः-सम्भावनम् । यथा-गमनाशङ्कं वर्त्तते । गमनाबाधम् । गमननेदीयः ॥

सम्भावन वाचक तत्पुरुष समास में आशङ्क, आबाध और नेदीयस् परे हो तो पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ २१ ॥

पूर्वे भूतपूर्वे ॥ २२ ॥

पूर्वशब्दे परे भूतपूर्ववाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा—आढ्यो भूतपूर्वः । आढ्यपूर्वः । दर्शनीयपूर्वः ॥

भूत पूर्व वाचक तत्पुरुष समास में पूर्वशब्द परे होतो पूर्वपदको प्रकृति स्वर हो ॥

सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये ॥ २३ ॥

सविधादिषु परेषु सामीप्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा—मद्रसविधम् । काश्मीरसनीडम् । गान्धारिसमर्यादम् । मद्रसवेशम् । काश्मीरसदेशम् ॥

तत्पुरुष समास में सामीप्यवाची सविध, सनीड, समर्याद, सवेश और सदेश परे होतो पूर्व पदको प्रकृति स्वर हो ॥ २३ ॥

विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु ॥ २४ ॥

विस्पष्टादीनि पूर्वपदानि गुणवचनेषु परेषु प्रकृतिस्वराणि स्युः । यथा—विस्पष्टकटुकम् । विचित्रकटुकम् । व्यक्तकटुकम् ॥

गुणवचन परे होतो विस्पष्टादिकों के पूर्वपदको प्रकृति स्वर हो ॥ २४ ॥

अज्यावमकन्पापत्सु भावे कर्मधारये

अज्य अवम कन् इत्यादेशवति पापवाचिनि चोत्तरपदे कर्मधारये समासे भाववाचि पूर्वपदं प्रकृति स्वरं स्यात् । यथा—गमनश्रेष्ठम् । गमनश्रेयः । वचनज्येष्ठम् । वचनज्यायः । गमनावमम् । गमनकनिष्ठम् । गमनपापिष्ठम् । गमनपापीयः ॥

कर्मधारय समास में श्र, ज्य, अवम कन् और पाप वाचक उत्तर पद परे होतो भाववाची पूर्वपदको प्रकृति स्वरहो ॥ २५ ॥

कुमारश्च ॥ २६ ॥

कुमारः, च । कर्मधारये समासे कुमारशब्दः पूर्वपदं प्रकृति स्वरं स्यात् । यथा-कुमारश्रमणा । कुमारतापसी ।

कर्मधारय समास में कुमार शब्द के पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ २६ ॥

आदिः प्रत्येनसि ॥ २७ ॥

प्रतिगत मेनो यस्य सः प्रत्येनाः । प्रत्येनसि परे कर्मधारये समासे कुमार शब्दस्यादि रुदात्तः स्यात् । यथा- कुमारप्रत्येनाः ॥

कर्मधारय समास में प्रत्येनस् उत्तरपद परे होतो कुमारशब्द को आद्युदात्त स्वर हो ॥ २७ ॥

पूगेष्वन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥

पू० षु, अ० म् । पूगवाचिन्युत्तरपदे कर्मधारये समासे कुमार शब्दस्य वादिरुदात्तः स्यात् । यथा-कुमारपातकः । कुमारचातकाः कुमारचातकाः ॥

पूग वाची उत्तरपद परे होतो कर्मधारय समास में कुमार शब्द को विकल्पसे आद्युदात्त स्वर हो ॥ २८ ॥

इगन्तकाल कपाल भगाल शरावेषु द्विगौ ॥ २९ ॥

एषु परेषु द्विगौ समासे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा-पञ्चारत्न

यः प्रमाणमस्य–पञ्चारत्निः । दशारत्निः । दशमासान् भूतो भावी वा दशमास्यः । पञ्चकपालः । पञ्चभगालः। पञ्चशरावः ॥

इगन्त कालवाची कपाल भगाल और शराव उत्तरपद परे हो तो द्विगु समास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर हो ॥ २९ ॥

बह्वन्यतरस्याम् ॥ ३० ॥

बहु, अ० म्। द्विगौसमासे पूर्वपदमिगन्तादिषूत्तरपदेषु बहुशब्दो वा प्रकृत्या स्यात। यथा–बहुरत्निः। बहुरत्निः। बहुमास्यः। बहुमास्यः। बहुकपालः। बहुकपालः। बहुभगालः। बहुभगालः। बहुशरावः। बहुशरावः ॥

इगन्त, काल कपाल भगाल और शराव उत्तरपद परे हो तो द्विगु समास में बहुपूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वर हो ॥ ३० ॥

दिष्टिवितस्त्योश्च ॥ ३१ ॥

दि० योः, च। द्विगौसमासेऽनयोः परतः पूर्वपदं प्रकृत्या वा स्यात। यथा–पञ्चदिष्टिः। पञ्चदिष्टिः। पञ्चवितस्तिः। पञ्चवितस्तिः ॥

द्विगु समास में दिष्टि और वितस्ति शब्द उत्तरपद परे हों तो पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वर हो ॥ ३१ ॥

सप्तमी सिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वकालात्

स० मी, सि० षु, अ० त्। अकालवाचि सप्तम्यन्तं पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् सिद्धादिषु परेषु। यथा-काम्पिल्यसिद्धः। निधनशुष्कः। भ्राष्ट्रपक्वः। चक्रबन्धः ॥

सिद्ध शुष्क पक्व और बन्ध उत्तरपद परे हों तो कालवाची से भिन्न सप्तम्यन्त पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ ३२ ॥

परिप्रत्युपापावर्ज्यमानाऽहोरात्रावयवेषु ॥ ३३ ॥

इमे प्रकृत्या स्युः, वर्ज्यमान वाचिनि अहोरात्रा वयववाचिनि चोत्तरपदे । यथा-परित्रिगर्तं वृष्टोदेवः।प्रतिपूर्वाह्णम् । उपापराह्णम् । अपत्रिगर्त्तम् ॥

वर्ज्यमान वाचक अहर वयव वाचक और रात्र्यवयव वाचक उत्तरपदपरे होंतो परि प्रति उप और अप पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ ३३ ॥

राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु

राजन्य वाचिनां बहुवचनान्तानामन्धक वृष्णिषु वर्त्तमाने द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा-श्वाफल्कचैत्रकरोधकाः । शिनिवासुदेवाः ॥

अन्धक और वृष्णि अर्थों में राजन्य वाचक बहुवचनान्तों का जो द्वन्द्व उस में पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ ३४ ॥

सङ्ख्या ॥ ३५ ॥

द्वन्द्वसमासे सङ्ख्यावाचि पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा-एकादश । द्वादश ॥

द्वन्द्व समास में सङ्ख्या वाचक पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ ३५ ॥

आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी ॥ ३६ ॥

आ० नः, चअ, अं० सी। अचार्योप सर्जनान्ते वासिनां द्वन्द्व पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। यथा-पाणिनीयरौढीयाः॥

आचार्य्य जिस में अमुख्य हो ऐसे अन्तेवासी वाचकों का जो द्वन्द्व उस में पूर्व पदको प्रकृति स्वर हो॥ ३६॥

कार्त्तकौजपादयश्च ॥ ३७ ॥

का० यः, चअ। एषां द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। यथा--कार्त्तकौजपौ। सावर्णिमाण्डूकेयौ॥

द्वन्द्व समास में कार्तकौजपादि गणपठित शब्दों के पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो॥

महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबाल-भार भारत हैलिहिल रौरवप्रवृद्धेषु ३८

व्रीह्यादिषु दशसु परेषु महच्छब्दः प्रकृत्या स्यात्। यथा-महाव्रीहिः। महापराह्णः। महागृष्टिः। महेष्वासः। महाजाबालः। महाभारः। महाभारतः। महाहैलिहिलः। महारौरवः महाप्रवृद्धः

व्रीहि अपराह्ण गृष्टि इष्वास जाबाल भार भारत हैलिहिल रौरव और प्रवृद्ध शब्द परे हों तो महान् पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो॥ ३८॥

क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे ॥ ३९ ॥

क्षु० कः, चअ, वै० वे। वैश्वदेवे परे क्षुल्लको महांश्च पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। यथा-क्षुल्लकवैश्वदेवम्। महावैश्वदेवम्॥

वैश्वदेव उत्तरपद परे हो तो क्षुल्लक (अल्प) और महान् पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो॥

उष्ट्रः सादिवाम्योः ॥ ४० ॥

सादिवाम्यो रुत्तरपदयोः उष्ट्रशब्दः पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा-उष्ट्रसादी । उष्ट्रवामी ।

सादिन् (सवार) और वामी (अश्वी) उत्तर पद परे होतो पूर्वपद उष्ट्रशब्द को प्रकृति स्वरहो ॥ ४० ॥

गोः सादसादिसारथिषु ॥ ४१ ॥

एषूत्तरपदेषु गोशब्दः पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा-गोसादः । गोसादिः । गोसारथिः ॥

साद सादि और सारथि उत्तरपद परे होतो पूर्वपद गो शब्दको प्रकृति स्वरहो॥

कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा. तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलोदासीभाराणां च ॥ ४२ ॥

एतेषां समानां समासानां दासीभारादेश्च पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । यथा-कुरूणां गार्हपतम्-कुरुगार्हपतम् । कुरुशब्दः कुप्रत्ययान्तोऽन्तोदात्तः । (वृजेरितिवाच्यम्) ॥ वृजीनां गार्हपतम् = वृजिगार्हपतम् । वृजिशब्दः आद्युदात्तः । रिक्तोगुरुः-रिक्तगुरुः । असूता जरती-असूत जरती । अश्लीला दृढरूपा-अश्लीलदृढरूपा । अश्लीलशब्दो नञ्समासत्वादाद्युदात्तः । श्रीर्यस्यास्ति तत् श्लीलम् । सिध्मादित्वाल्लच् । कपिलादित्वाल्लत्वम्पारेवडवेव-पारेवडवा। निपातनादिवार्थे समासो विभक्त्यलोपश्च । पारशब्दः घृतादित्वादन्तोदात्तः । तैतिलिनां कद्रूः । तितिलिनोऽपत्यं छात्रोवा तैतिलकद्रूः । इत्यणन्तः पण्यशब्दो यदन्तत्वादाद्युदात्तः । पण्यकम्बलः । पण्यशब्दः यदन्तत्वादाद्युदात्तः । (सञ्ज्ञायामिति वाच्यम्) अनत्र

पणितत्ये कम्बले समासन्तोदात्तत्वमेव । दास्या भारो दासीभारः। देवहूतिः। देवजूतिः। देवसूति आकृतिगणोऽयम् ॥

कुरुगार्हपत, रिक्तगुरु, असूत जरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रू, पण्यकम्बल, समासान्त शब्दों का और दासीभरादिकों के पूर्वपद का प्रकृति स्वर हो ४२

चतुर्थी तदर्थे ॥ ४३ ॥

चतुर्थ्यन्तार्थाययत्तयद्वाचिन्युत्तरपदे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्या स्यात्। यथा--यूपायदारु--यूपदारु । कुण्डलहिरण्यम् ॥

तदर्थ उत्तरपद परे हो तो चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को प्रकृति स्वर हो ॥ ४३ ॥

अर्थे ॥ ४४ ॥

अर्थेपरे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्यास्यात्।यथा—मात्रे इदम्—मात्रर्थम्।पित्रर्थम्॥
अर्थ शब्द उत्तरपद परे होतो चतुर्थ्यन्त पूर्व पद को प्रकृति स्वरहो ॥ ४४ ॥

क्ते च ॥ ४५ ॥

क्तान्ते परे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्या स्यात्।यथा--गोहितम्।मनुष्य हितम्॥
क्तान्त उत्तरपद परे होतो पूर्वपद प्रकृति स्वर से रहे ॥ ४५ ॥

कर्मधारयेऽनिष्ठा ॥ ४६ ॥

कर्म धारये समासे क्तान्ते पेर पूर्व मनिष्ठान्तं प्रकृत्या स्मात् । यथा-- श्रेणिकृताः । पूगकृताः ॥ श्रेणिशब्द आद्युदात्तः। पूगशब्दो ऽन्तोदात्तः ॥

कर्मधारय समासमें क्तान्त गत्तरपद परे होतो पूर्वपदको प्रकृति स्वरहो ॥ ४६ ॥

अहीने द्वितीया ॥ ४७ ॥

अहीनवाचिनि समासे क्तान्ते परे द्वितीयान्तं पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। यथा-- कृष्टश्रितः । ग्रामगतः । कष्टशब्दो । ऽन्तोदात्तः । ग्रामशब्द आद्युदात्तः ॥

अहीन वाची समासमें क्तान्त परे होतो द्वितीयान्त पूर्वपद को प्रकृति स्वरहो ४७

तृतीया कर्मणि ॥ ४८ ॥

कर्मवाचके क्तान्ते परे तृतीयान्तं प्रकृत्या स्यात्।यथा-अहिहतः। महाराजहतः ॥

कर्म वाचक क्तान्त परे होतो तृतीयान्त पूर्वपद को प्रकृतिस्वहो ॥ ४८ ॥

गतिरनन्तरः ॥ ४९ ॥

गतिः, अ० रः । कर्मवाचकेक्तान्ते परेऽव्यवहितो गतिः पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात्। यथा-- प्रकृतः । प्रहृतः ॥

कर्म वाचक क्तान्त परे होतो अव्यवहित गति संज्ञक पूर्वपदको प्रकृतिस्वरहो४९

तादौ च निति कृत्यतौ ॥ ५० ॥

तकारादौ निति तु शब्द वर्जिते कृतिपरेऽनन्तरोगतिः प्रकृत्या स्यात् । यथा-प्रकर्त्ता । प्रकर्त्तुम् । प्रकृतिः ॥

तु वर्जित तकारादि नित्,कित् प्रत्ययान्त परे होतो अनन्तर गतिको प्रकृति स्वरहो॥

तवै चान्तश्च युगपत् ॥ ५१ ॥

तवै , च, अन्तः, च, यु०त्।तवै प्रत्ययान्त स्यान्त उदात्तो गति-

अनन्तरः प्रकृत्या युगपच्चैतदुभयं स्यात्। यथा—अन्वेतवै। उपसर्गा आद्युदात्ता अभिवर्जम् ॥

तवै प्रत्ययान्त को अन्त उदात्त और अनन्तर गतिको प्रकृति स्वर उक्त दोनों एक समय में हों ॥ ५१ ॥

अनिगन्तोऽञ्चतौ व प्रत्यये ॥ ५२ ॥

अ०न्तः, अं०तौ, वं०ये। अनिगन्तो गतिर्वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे प्रकृत्या स्यात्। यथा—प्राञ्चौ। प्राञ्चः ॥

व प्रत्ययान्त अञ्चतिपरे होतो अनिगन्त गतिको प्रकृति स्वरहो ॥ ५२ ॥

न्यधी च ॥ ५३ ॥

नि, अधि इमौ चाञ्चतौ व प्रत्ययेपरे प्रकृत्या स्यात्। यथा—न्यङ्। न्यञ्चौ। न्यञ्चः। अध्यङ्। अध्यञ्चौ। अध्यञ्चः ॥

व प्रत्ययान्त अञ्चति परे होतो गति संज्ञक नि और अधि शब्द को प्रकृति स्वर हो॥

ईषदन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

ईषत्, अ०म्। ईषदिदं पूर्वपदं वा प्रकृत्या स्यात्। यथा—ईषत्कडारः। ईषत्कडारः ॥

ईषत्पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वर हो ॥ ५४ ॥

हिरण्यपरिमाणंधने ॥ ५५ ॥

सुवर्णपरिमाणवाचि पूर्वपदं धने वा प्रकृत्या स्यात्। यथा—द्विसुवर्णधनम्। द्विसुवर्णधनम्। द्वे सुवर्णे परिमाणमस्येति द्विसुवर्णं तदेव धनं द्विसुवर्णधनम् ॥

घनशब्दपरे होतो हिरण्य परिमाण वाचक पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वरहो॥

प्रथमोऽचिरोपसम्पत्तौ ॥ ५६ ॥

प्र० मः, अँ०तौ । प्रथमशब्दो वा प्रकृत्या स्यादभिनवत्वे । यथा-प्रथमवैयाकरणः । प्रथमवैयाकरणः।सम्प्रति व्याकरण मध्येतुं प्रवृत्त इत्यर्थः । प्रथमशब्दश्चित्वादन्तो दात्तः ॥

अभिनव गम्यमान होतो प्रथम पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वर हो ॥५६॥

कतरकतमौ कर्मधारये ॥ ५७ ॥

कर्म्म धारये समासे वेमौ पूर्वपदं प्रकृत्या स्याताम् । यथा-कतरकठः।कतरकठः ॥

कर्मधारय समास में कतर और कतम पूर्वपदको विकल्प से प्रकृति स्वरहो।५७

आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः ॥ ५८ ॥

आर्य्यः,ब्रा०योः । कर्म धारये समासे ब्राह्मणकुमारयो रार्य्यशब्दः पूर्वपदं वा प्रकृत्या स्यात् । यथा-आर्य्यब्राह्मणः । आर्य्यब्राह्मणः । आर्यकुमारः । आर्यकुमारः । आर्योण्यदन्तत्वादन्तस्वरितः ॥

कर्मधारय समास में ब्राह्मण और कुमार शब्द परे होतो आर्य पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वरहो ॥ ५८ ॥

राजा च ॥ ५९ ॥

कर्म्मधारये समासे ब्राह्मणकुमारयोः परतो राजाच पूर्वपदं वा प्रकृत्या स्यात् । यथा-राजब्राह्मणः । राजब्राह्मणः । राजकुमारः । राजकुमारः ॥

कर्मधारय समास में ब्राह्मण और कुमार शब्द परे होतो राज पूर्वपद को विकल्प से प्रकृति स्वरहो ॥ ५९ ॥

षष्ठी प्रत्येनसि ॥ ६० ॥

षष्ठ्यन्तोराजा प्रत्येनसि परे वा प्रकृत्या स्यात् । यथा—राजप्रत्येनाः । राजप्रत्येनाः ॥

प्रत्येनस् शब्द परे होतो षष्ठ्यन्त राज पूर्वपदको विकल्प से प्रकृति स्वरहो ॥

क्ते नित्यार्थे ॥ ६१ ॥

क्तान्तेपरे नित्यार्थे समासे पूर्वपदं वा प्रकृत्या स्यात् । यथा—नित्यप्रहसितः। नित्यप्रहसितः ।सततप्रहसितः२ । नित्यशब्द स्त्यबन्त आद्युदात्तः । हसित इति थाथादि स्वरेणान्तोदात्तः ॥

नित्यसमासमें क्तान्त उत्तरपद परे होतो पूर्वपदको विकल्पसे प्रकृति स्वरहो ६१

ग्रामः शिल्पिनि ॥ ६२ ॥

शिल्पिवाचिनि परे ग्रामशब्दः पूर्व पदं वा प्रकृत्या स्यात् । यथा—ग्राम नापितः । ग्रामनापितः । ग्रामशब्द आद्युदात्तः॥

शिल्पि वाचक परे होतो ग्राम पूर्व पद को विकल्पसे प्रकृति स्वरहो ॥ ६२ ॥

राजा च प्रशंसायाम् ॥ ६३ ॥

शिल्पिवाचिनि परे प्रशंसार्थे राजशब्दः पूर्व पदं वा प्रकृत्या स्यात् यथा— राजनापितः । राजनापितः। राजकुलालः । राजकुलालः ।

शिल्पि वाचक उत्तरपद परे होतो प्रशंसा गम्यमान होने पर राज पूर्वपदको विकल्प से प्रकृति स्वरहो ॥ ६३ ॥

आदिरुदात्तः ॥ ६४ ॥

आदिः, उ० त्तः । अधिकारोऽयम् । न भूताधिकसंजीव मद्राश्म कज्जलमिति यावत् ॥

पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो यह अधिकार है ॥ ६४ ॥

सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे ॥ ६५ ॥

सप्तम्यन्तं हारिवाचि च आद्युदात्तं स्याद् धर्म्ये परे । देयं यः स्वीकरोति स हारीत्युच्यते । धर्म्यं मित्याचारनियतं देयम् यथा-मुकुटे कार्षापणम् । हले द्विपदिका । याज्ञिकाश्वः । वैयाकरणहस्ती । संज्ञायामिति सप्तमी समासः । कारनाम्नि चेत्यलुक् ॥

हरण वर्जित धर्म्य वाचक उत्तरपद परे होतो सप्तम्यन्त और हारि वाचक पूर्वपद को आद्युदात्त हो ॥ ६५ ॥

युक्ते च ॥ ६६ ॥

युक्तवाचिनि समासे पूर्वपदमाद्युदात्तं स्यात् । यथा-गोबल्लवः अश्वबल्लवः । कर्त्तव्ये तत्परो युक्त इत्यर्थः ॥

युक्त वाची समास में पूर्वपद को आद्युदात्त हो ॥ ६६ ॥

विभाषाऽध्यक्षे ॥ ६७ ॥

अध्यक्षशब्दे परे वा पूर्वपदमाद्युदात्तं स्यात् । यथा-गवाध्यक्षः । गवाध्यक्षः ॥

अध्यक्षशब्द परे होतो पूर्वपद को विकल्प से आद्युदात्त स्वर हो ॥ ६७ ॥

पापं च शिल्पिनि ॥ ६८ ॥

शिल्पिवाचिनि परे पापशब्दो वाद्युदात्तः स्यात् । यथा-पापनापितः । पापनापितः । पापकुलालः । पापकुलालः ॥

शिल्पि वाचक उत्तरपद परे होतो पापशब्द को विकल्प से आद्युदात्त हो ६८

गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषुँ क्षेपेँ ६९

एषूत्तरपदेषु क्षेपवाचिनि समासे पूर्वपदमाद्युदात्तं स्यात्। यथा-भार्यासौश्रुतः। सुश्रुताऽपत्यस्य भार्या प्रधानतया क्षेपः। अन्तेवासी। कुमारीदाक्षाः। ओदनपाणिनीयाः। कुमार्यादिलाभकामा ये दाक्ष्यादिभिः प्रोक्तानि शास्त्राण्यधीयते त एवं क्षिप्यन्ते। भिक्षामाणवः। भिक्षां लप्स्येऽहमिति माणवः। भयब्राह्मणः। भयेन ब्राह्मणः सम्पद्यते॥

क्षेपवाचक समास में गोत्रवाची अन्तेवासिवाची माणव और ब्राह्मण परे होतो पूर्वपद को आद्युदात्त हो॥ ६९॥

अङ्गानि मैरेयेँ॥ ७०॥

मद्यविशेषो मैरेयः। मैरेयशब्दे परे तदङ्गवाचिनि पूर्व पदान्याद्युदात्तानि स्युः। यथा–गुडमैरेयः। मधुमैरेयः॥

मैरेयशब्द परे होतो तदङ्गवाची पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो॥ ७०॥

भक्ताख्यास्तदर्थेषु॥ ७१॥

भ० ख्याः, त० षु। भक्तमन्नं तदाख्यास्तद्वाचिनः शब्दास्तदर्थेषु परेषु आद्युदात्ताः स्युः। यथा–भक्तमन्नम्। भिक्षाकंसः। भाजीकंसः। भिक्षादयोऽन्नविशेषाः॥

तदर्थ उत्तरपद परे होतो भक्त वाचक पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो॥ ७१॥

गोविडालसिंहसैन्धवेषूपमाने॥ ७२॥

गो० षुँ, उँ० ने। गवादिषूपमान वाचिषूत्तरपदेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं स्यात्। यथा–धान्यगवः। गोविडालः। तृणसिंहः। सक्तु

सैन्धवः। धान्यं गौरिवेति विगृह्य व्याघ्रादेराकृति गणत्वाद् उपमितं व्याघ्रादिभिः समासः॥

उपमान वाचक गो, बिडाल, सिंह और सैन्धव परे होंतो पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो॥ ७१॥

अकें जीविकार्थे॥ ७३॥

अक प्रत्ययान्त उत्तरपदे जीविकार्थ वाचिनि समासे पूर्वपद माद्यु दात्तं स्यात्। यथा—दन्तलेखकः। अवस्कारशोधकः। रमणीय कारकः। दन्तलेखनादिभिर्येषां जीविका त एवोच्यन्ते। नित्यं क्रीडेति समासः॥

जीविकार्थ वाचक समास में अकप्रत्ययान्त उत्तरपद परे होतो पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो॥

प्राचां क्रीडायाम्॥ ७४॥

प्राग्देश वाचिनां या क्रीडा तद्वाचिनि समासे अकप्रत्ययान्ते परे पूर्व पद माद्युदात्तं स्यात्। यथा--उद्दालकपुष्पभञ्जिका। शालभञ्जिका॥

प्राग्देशियों के क्रीडा वाची समासमें अकप्रत्ययान्त उत्तरपद परे होतो पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो॥ ७४॥

अणि नियुक्ते॥ ७५॥

अणन्ते परे नियुक्तवाचिनि समासे पूर्व पदमाद्युदात्तं स्यात्। यथा-- छात्रधारः। तूणीधारः। कमण्डलुग्राहः॥

नियुक्त वाचक समास में अणन्त परे होतो पूर्वपद को आद्युदात्त स्वरहो॥ ७५॥

शिल्पिनि चा ऽकृञः॥ ७६॥

शिल्पिनि वाचिनि समासे अणन्ते पेर पूर्व पद माद्युदात्तं स्यात् चेदण् कृञः परो नो। यथा—तन्तुवायः। बालवायः॥

शिशि वाचक समासमें कृञ्से भिन्न अणन्त परे होतो पूर्वपदको आद्युदात्तस्वरहो।

संज्ञायाम् ॥ ७७ ॥

संज्ञायां विषयेऽणन्ते परे ऽकृञः पूर्वपद माद्युदात्तं स्यात् । यथा-- तन्तुवायो नाम कृमिः ॥

संज्ञा विषय में कृञ् से भिन्न अणन्त परे होतो पूर्वपदको आद्युदात्त स्वरहो ॥

गोतन्तियवं पाले ॥ ७८ ॥

पालशब्दे परे गवादीनि पूर्वपदान्याद्युदात्तानि स्युः । यथा- गोपालः । तन्तिपालः । यवपालः ॥

पाल शब्द परे होतो गो तन्ति और यव पूर्वपद को आद्युदात्त स्वरहो ७८

णिनि ॥ ७९ ॥

णिन्नन्ते परे पूर्वपद माद्युदात्तं स्यात् । यथा-पुष्पहारी । फलहारी पर्णहारी ॥

णिन्नन्त परे होतो पूर्वपद को आद्युदात्त स्वरहो ॥ ७९ ॥

उपमानं शब्दार्थ प्रकृतावेव ॥८०॥

उ० मं, श० तौ, एव । उपमान वाचि पूर्वपदं णिन्यन्ते आद्युदात्तं स्यात् । यथा-- उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । खरनादी ॥

शब्दार्थ प्रकृति ही में णिन्नत परे होतो उपमानवाची पूर्वपदको आद्युदात्त स्वरहो

युक्तारोह्यादयश्च ॥ ८१ ॥

यु० येः, च । इमे समासिता आद्युदात्ताः स्युः । यथा-युक्तारोही ।

आगतयोधी । आगतवञ्ची । आगतनर्दी । आगतप्रदारी ॥

युक्तारोहियादि गण पठित शब्दों को आद्युदात्त स्वर हो ॥ ८१ ॥

दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे ॥ ८२ ॥

इमानि जे परे आद्युदात्तानि स्युः । यथा—कुटीजः । काशजः । तुषजः । भ्राष्ट्रजः । वटजः ॥

जकार परे होतो दीर्घान्त,काश,तुष,भ्राष्ट्र और वटपूर्वपदको आद्युदात्त स्वर हो ८२

अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः ॥ ८३ ॥

बह्वच्पूर्वपदस्यान्त्यात पूर्वमुदात्तं स्याज्जे परे। यथा—उपसरजः। आमलकीजः ॥

जकार परे होतो बह्वच् पूर्वपद के अन्त्यचे पूर्व को उदात्त स्वर हो ॥ ८३ ॥

ग्रामेऽनिवसन्तः ॥ ८४ ॥

ग्रामे परे पूर्वपदमुदात्तं स्यात, तच्चेन्निवसद्वाचि न । यथा—मल्लग्रामः । छात्रग्रामः । वणिग्ग्रामः । ग्रामशब्दोऽत्रसमूहवाची ॥ देवग्रामः । देवस्वामिक इत्यर्थः ॥

ग्रामशब्द परे होतो निवसद्वाची से इतर पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो ॥८४॥

घोषादिषु च ॥ ८५ ॥

घोषादिषु परेषु पूर्वपद माद्युदात्तं स्यात् । यथा—दाक्षिघोषः । दाक्षिकटः । दाक्षिबदरी ॥

घोषादि गणपठित शब्द परे होतो पूर्व पद को आद्युदात्त स्वर हो ॥ ८५ ॥

छात्र्यादयः शालायाम् ॥ ८६ ॥

शालाया मुत्तरपदे छात्र्यादय आद्युदात्ताः स्युः। यथा-छात्रिशाला। व्याडिशाला॥

शाला उत्तरपद परे होतो छात्र्यादि गण पठित शब्दों को आद्युदात्त स्वर हो ८६

प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ॥ ८७ ॥

प्रस्थे, अ० म्, अ० म्। प्रस्थशब्दे उत्तरपदे कर्क्यादि वर्जितमवृद्धं पूर्वपदमाद्युदात्तं स्यात्। यथा-इन्द्रप्रस्थः। कुण्डप्रस्थः॥

प्रस्थ शब्द उत्तरपद परे होतो कर्क्यादि वर्जित अवृद्ध पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो॥

मालादीनां च ॥ ८८ ॥

प्रस्थउत्तरपदे मालादीनामाद्युदात्तः स्यात्। यथा-मालाप्रस्थः। शालाप्रस्थः॥

प्रस्थशब्द उत्तरपद परे होतो मालादि गणपठित शब्दों को आद्युदात्त स्वर हो ८८

अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम् ॥ ८९ ॥

नगरे परे महन्नवन् वर्जितं पूर्वपद माद्युदात्तं स्यात। तच्चेत् उदीचां नो। यथा-ब्रह्मनगरम्। विराटनगरम्॥

उत्तर देशीय वर्जित नगर परे होतो महत् और नव शब्द भिन्न पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो॥ ८९॥

अर्मे चाऽवर्णं द्व्यच् त्र्यच् ॥ ९० ॥

अर्मे परे द्व्यच् त्र्यच् पूर्वपद मवर्णान्तमाद्युदात्तं स्यात। यथा-दत्तार्मम्। गुप्तार्मम्। कुक्कुटार्मम्॥

अर्मशब्द परे होतो अवर्णान्त द्व्यच् और त्र्यच् पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर हो

न भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलम्

अर्मेपरे नेमान्याद्युदात्तानि स्युः। यथा-भूतार्मम्। अधिकार्मम्। सञ्जीवार्मम्। मद्राश्मग्रहणं सङ्घातविग्रहीतार्थम्। मद्रार्मम्। अश्मार्मम्। मद्राश्मार्मम्। कज्जलार्मम्। (आद्युदात्त प्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युप सङ्ख्यानम्)। दिवोदासाय गायत॥

अर्मशब्द परे होतो भूत, अधिक, संजीव, मद्र, अश्मन् और कज्जल पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर न हो॥ ९१॥

अन्तः॥ ९२॥

अधिकारोऽयम्। प्रागुत्तर पदादिरिति यावत्॥

पूर्वपदको अन्तोदात्त स्वर हो यह अधिकार उत्तरपदादि (६।२।११०) सूत्र पर्यन्त है॥ ९२॥

सर्वं गुणकार्त्स्न्ये॥ ९३॥

सर्वशब्दः पूर्वपदं गुणकार्त्स्न्ये वर्त्तमानमन्तोदात्तं स्यात्। यथा-सर्वश्वेतः। सर्वकृष्णः। सर्वमहान्। आश्रयव्याप्त्या परमत्वं श्वेतस्येति गुणकार्त्स्न्ये वर्त्तते॥

गुणकार्त्स्न्य अर्थ में वर्त्तमान सर्व पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो॥ ९३॥

संज्ञायां गिरिनिकाययोः॥ ९४॥

संज्ञायां विषये एतयोः परतः पूर्वपद मन्तोदात्तं स्यात्। यथा-अञ्जनागिरिः। मौण्डनिकायः। वनगिर्योः संज्ञायामिति दीर्घत्वम्॥

संज्ञा विषय में गिरि और निकाय पर होतो पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो ९४

कुमार्यां वयसि ॥ ९५ ॥

कुमार्यामुत्तर पदे वयसि गम्ये पूर्वपद मन्तोदात्तं स्यात्। यथा—वृद्धकुमारी। जरत्कुमारी। कुमारीशब्दः पुंसा सहासम्प्रयोगमात्रं प्रवृत्ति निमित्त मुपादाय प्रयुक्तो वृद्धादिभिः समानाधि करणः॥

कुमारी शब्द उत्तरपद परे होतो वयस् गम्यमान होने पर पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ ९५ ॥

उदकेऽकेवले ॥ ९६ ॥

अकेवलं मिश्रं तद्वाचिनि समासे उदके परे पूर्वपद मन्तोदात्तं स्यात्। यथा—गुडमिश्रमुदकम्—गुडोदकम्। तिलोदकम्॥

अकेवल (मिश्र) वाचक समास में उदक परे होतो पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर हो॥

द्विगौ क्रतौ ॥ ९७ ॥

द्विगावुत्तरपदे क्रतुवाचिनि समासे पूर्वपद मन्तोदात्तं स्यात्। यथा—गर्गत्रिरात्रः॥

क्रतुवाचि समास में द्विगुपरे होतो पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ ९७ ॥

सभायां नपुंसके ॥ ९८ ॥

सभायां परतो नपुंसकलिङ्गे समासे पूर्वपद मन्तोदात्तं स्यात्। यथा—पशुसभम्। स्त्रीसभम्॥

नपुंसक लिङ्ग समास में सभाशब्द परे होतो पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो ९८

पुरे प्राचाम् ॥ ९९ ॥

पुरशब्दे परे प्राचां देशे पूर्वपद मन्तोदात्तं स्यात्। यथा-शिवदत्तपुरम्। देवदत्तपुरम् ॥

पुरशब्द पर होतो प्राग्देशियों के मत में पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥९९॥

अरिष्टगौडपूर्वे च ॥ १०० ॥

पुरेपरे अरिष्ट गौडपूर्वे समासे पूर्वपदमन्तोदात्तं स्यात्। यथा-अरिष्टपुरम्। गौडपुरम् ॥

पुर परे होतो अरिष्ट और गौड पूर्वक समास में पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो

न हास्तिनफलकमार्देयाः ॥ १०१ ॥

पुरेपरे नेमान्यन्तोदात्तानि स्युः। यथा-हास्तिनपुरम्। फलकपुरम्। मार्देयपुरम्। मृदेरपत्यमिति शुभ्रादित्वात् ढक् ॥

पुर परे होतो हास्तिन फलक और मार्देय पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर न हो ? ०१

कुसूलकूपकुम्भशालं बिले ॥ १०२ ॥

इमानि पूर्वपदानि बिलेपरे, अन्तोदात्तानि स्युः। यथा-कुसूलबिलम्। कूपबिलम्। कुम्भबिलम्। शालाबिलम् ॥

बिलपरे होतो कुसूल (कुठिला) कूप, कुम्भ और शाला पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १०२ ॥

दिक्छब्दा ग्रामजन पदाख्यान चानराटेषु ॥ १०३ ॥

ग्रामादिषूत्तरपदेषु दिक्छब्दा अन्तोदात्ताः स्युः। यथा-पूर्वेषु

कामशमी। अपरकृष्ण मृतिका। जनपदे। पूर्वपञ्चालाः। आख्याने। पूर्वयायातम। चानराटे। पूर्वचानराटम्। शब्द ग्रहणं कालवाचि दिक्छब्दस्य परिग्रहार्थम्॥

ग्राम जनपद आख्यान और चानराट उत्तरपद परे होतो दिक् शब्द पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर हो॥ १०३॥

आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि १०४

आ० नः, च, अ० नि। आचार्योपसर्जनान्तेवासिनि परे दिक्छब्दा अन्तोदात्ताः स्युः। यथा—पूर्वपाणिनीयाः। अपरपाणिनीयाः॥

आचार्य जहां उपसर्जन (गौण) हो ऐसे अन्तेवासि वाची परे होतो दिग्वाचक शब्दों को अन्तोदात्त स्वर हो॥ १०४॥

उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च॥ १०५॥

उत्तरपदस्येत्यधिकृत्य या वृद्धि र्विहिता तद्वत्युत्तरपदे परे सर्व शब्दो दिक्छब्दाश्चान्तोदाः स्युः। यथा—सर्वपाञ्चालकः। अपरपाञ्चालकः॥

उत्तरपदस्य (७। ३। १०) इस अधिकार में कथित वृद्धि वाला उत्तरपद परे होतो सर्व और दिग्वाचक पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो॥ १०५॥

बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम्॥ १०६॥

बहुव्रीहौ समासे विश्वशब्दः पूर्वपदभूतः संज्ञायां विषयेऽन्तोदात्तः स्यात्। यथा—विश्वदेवः। विश्वयशाः। विश्वमहान्॥

बहुव्रीहि समास में संज्ञागम्यमान होनेपर विश्वशब्द पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो॥

उदराश्वेषुषु॥ १०७॥

उदर अश्वइषु इत्युत्तरपदेषु बहुव्रीहौ समासे संज्ञायां विषये पूर्वमन्तोदात्तं स्यात् । यथा—वृकोदरः । दामोदरः।यौवनाश्वः।महेषुः ॥

बहुव्रीहि समास में संज्ञा गम्यमान हो और उदर अश्व तथा इषु उत्तरपद परे होतो पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १०७ ॥

क्षेपे ॥ १०८ ॥

उदरादिषु परेषु पूर्वपद मन्तोदात्तं स्यात् बहुव्रीहौ निन्दायाम् । यथा—घटोदरः । कन्दुकाश्वः । अनिघातेषुः ॥

क्षेप गम्यमान हो और उदर अश्व तथा इषु उत्तरपद परेहोतो संज्ञाविषय होने पर बहुव्रीहि समासमें पूर्वपद को अन्तोदात्त दात्त स्वरहो ॥ १०८ ॥

नदी बन्धुनि ॥ १०९ ॥

बन्धुशब्दे परे नद्यन्तं पूर्वपदमन्तो दात्तं स्यात् बहुव्रीहौ समासे । यथा--गार्गीबन्धुः । वात्सीबन्धुः ॥

बहुव्रीहि समासमें बन्धु शब्द परे होतो नद्यन्त पूर्व पद को अन्तो दात्त स्वरहो १०९

निष्ठोपसर्ग पूर्वमन्यतरस्याम् ॥ ११० ॥

निष्ठा, उ० म, अ०म् । बहुव्रीहि समासे निष्ठान्तं पूर्वपदमन्तोदात्तं वा स्यात् । तथा-- प्रधौतमुखः । प्रधौतमुखः । प्रक्षालितपादः । प्रक्षालितपादः ॥

बहुव्रीहि समासमें उपसर्गहै पूर्व जिसके ऐसे निष्ठान्त पूर्वपदको अन्तो दात्त स्वरहो॥

उत्तरपदादिः ॥ १११ ॥

१ उदराश्वेषु इति उत्तर सूत्रेण सहैको योगो महाभाष्ये ॥

उत्तरपदाधिकारः, आपादान्तम् । आद्यधिकारस्तु प्रकृत्या भगालमित्यत्रावधिकः ॥

उत्तरपद को आद्युदात्त स्वरहो यह अधिकार कुण्डंवनम् (६ । २ । १३६) सूत्र तक है ॥ १११ ॥

कर्णो वर्णलक्षणात् ॥ ११२ ॥

कर्णः, वं०त् । बहुव्रीहौ समासे वर्णवाचिनो लक्षणवाचिनश्च परः कर्णशब्द आद्युदात्तः स्यात् । यथा—शुक्लकर्णः । कृष्णकर्णः । दात्रकर्णः । शङ्कुकर्णः ॥

बहुव्रीहि समास में वर्ण और लक्षण वाचक से परे कर्ण उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर हो ॥ ११२ ॥

संज्ञोपम्ययोश्च ॥ ११३ ॥

स० यो०ः, च । सञ्ज्ञायामौपम्ये च यो बहुव्रीहिस्तत्र कर्ण शब्द उत्तरपद माद्युदात्तं स्यात् । यथा—मणिकर्णः । गोकर्णः ॥

संज्ञा और औपम्य अर्थमें जो बहुव्रीहि उससमास में उत्तरपदको आद्युदात्त स्वरहो॥

कण्ठपृष्ठ ग्रीवाजङ्घं च ॥ ११४ ॥

सञ्ज्ञौपम्ययोर्बहुव्रीहौ समासे कण्ठादीन्युत्तरपदानि आद्युदात्तानि स्युः । यथा—शितिकण्ठः । काण्डपृष्ठः । सुग्रीवः । नाडिजङ्घः । औपम्ये । खरकण्ठः । गोपृष्ठः । अश्वग्रीवः । गोजङ्घ ॥

बहुव्रीहि समास में संज्ञा और औपम्यगम्यमान होतो कण्ठ पृष्ठ ग्रीवा और जङ्घा उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर हो ॥ ११४ ॥

शृङ्गमवस्थायां च ॥ ११५ ॥

शृ० म्, अ० म्, च । बहुव्रीहौ समासे शृङ्गशब्दोऽवस्थायां संज्ञोपम्ययेश्चाऽद्युदात्तः स्यात् । यथा-उद्गतशृङ्गः । द्व्यङ्गुलशृङ्गः । अत्र शृङ्गोद्गमनादि कृतो गवादेर्वयो विशेषोऽवस्था । संज्ञायाम् । ऋष्यशृङ्गः । उपमायाम् । मेषशृङ्गः ॥

बहुव्रीहि समास में अवस्था संज्ञा तथा उपमागम्यमान होतो शृङ्ग उत्तरपद को आद्युदात्त स्वरहो ॥ ११५

नञो जरमर मित्रमृताः ॥ ११६ ॥

नञः, ज० ताः । नञः पर इमे आद्युदात्ताः स्युः बहुव्रीहौ समासे यथा-अजरः । अमरः । अमित्रः । अमृतः ॥

बहुव्रीहि समासमें नञ् से परे जर मर मित्र और मृत उत्तरपदको आद्युदात्त स्वरहो

सोर्मनसी अलोमोषसी ॥ ११७ ॥

सोः, म०सी, अ०सी। सोः परं लोमोषसी वर्जयित्वा मन्नन्तमसन्तं चाद्युदात्तं स्याद् बहुव्रीहौ समासे। यथा-सुकर्म्मा। सुधर्म्मा। असन्तम् । सुपयाः। सुवर्चाः । सुयशाः ॥

बहुव्रीहि समासमें सु से परे लोमन् और उषस् शब्द को छोड़कर मन्नन्त और असन्तो को आद्यदात्त स्वरहो ॥ ११७ ॥

क्रत्वादयश्च ॥ ११८ ॥

क्र०यः, च। सोः पेर बहुव्रिहौ समासे क्रत्वादय आद्युदात्ताः स्युः। यथा-सुक्रतुः । सुदृशीकः ॥

बहुव्रीहि समासमें सु से परे क्रत्वादि गणपठित शब्दों को आद्युदात्त स्वरहो ११८

आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि ॥ ११९ ॥

आ० म, द्व्यच्, छं० सि । यदाद्युदात्तं द्व्यच् तत् सो रुत्तरं बहुव्रीहौ समासे आद्युदात्तं स्यात्। यथा—सुरथामाञ्जयेम। अधा स्वश्वाः॥

बहुव्रीहि समासमें तथा छन्दो विषय होनेपर सु से परे आद्युदात्त द्व्यच् उत्तर पद को आद्युदात्त स्वर हो ॥ ११९ ॥

वीरवीर्यौ च ॥ १२० ॥

सोः पराविमौ बहुव्रीहौ समासे छन्दस्याद्युदात्तौ स्याताम् । यथा—सुवीरेणते । सुवीर्यस्य पतयः ॥

बहुव्रीहि समासमें सुसे परे वीर और वीर्य्य शब्दों को छन्द विषय में आद्युदात्त स्वर हो ॥ १२० ॥

कूलतीरतूलमूलशालाऽक्षसममव्ययीभावे ॥ १२१ ॥

कू० म, अँ० वे । अव्ययीभावे समासे इमान्युत्तरपदान्याद्युदात्तानि स्युः । यथा—उपकूलम्। उपतीरम् उपतूलम् । उपमूलम्। उपशालम् । उपाक्षम् । सुषमम् ॥

अव्ययी भाव समासमें कूल तीर तूल मूल शाला अक्ष और सम उत्तरपदको आद्युदात्त स्वरहो ॥ १२१ ॥

कंस मन्थ शूर्प पाय्यकाण्डं द्विगौ १२२

द्विगौ समासे इमान्युत्तर पदान्याद्युदात्तानि स्युः । यथा—द्विकंसः।

द्विमन्थः । द्विशूर्पः । द्विपाय्यम् । द्विकाण्डम् ॥

द्विगुसमास में कंस मन्थ शूर्प पाय्य और काण्ड उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर हो

तत्पुरुषे शालायां नपुंसके ॥ १२३ ॥

शालाशब्दान्ते तत्पुरुषे नपुंसकलिङ्गे उत्तरपदमाद्युदात्तं स्यात् । यथा-पाठशालम् । ब्राह्मणशालम् ॥

नपुंसकलिङ्ग तत्पुरुष समास में शालान्त उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर हो १२३

कन्था च ॥ १२४ ॥

तत्पुरुषे नपुंसकलिङ्गे कन्थाशब्दे उत्तरपदमाद्युदात्तं स्यात् । यथा-सौशमिकन्थम् । आह्वरकन्थम् ॥

नपुंसकलिङ्ग तत्पुरुष समास में कन्था उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर हो ॥१२४॥

आदिश्चिहणादीनाम् ॥ १२५ ॥

कन्थान्ते तत्पुरुषे नपुंसक लिङ्गे चिहणादीनामादिरुदात्तः स्यात् । यथा-चिहणकन्थम् । मद्दुरकन्थम् ॥

कन्थान्त नपुंसक लिङ्ग समास में चिहणादियोंको आद्युदात्त स्वरहो ॥१२६॥

चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम् १२६

तत्पुरुषे गर्हायां चेलादीन्युत्तरपदान्याद्युदात्तानि स्युः । यथा-पुत्रचेलम् । भार्य्याचेलम् । उपानत्खेटम् । नगरखेटम् । दधिकटुकम् । उदश्वित्कटुकम् । प्रजाकाण्डम् ॥

तत्पुरुष समास में गर्हा गम्यमान होने पर चेल खेट कटुक और काण्ड उत्तरपद को आद्युदात्त स्वरहो ॥ १२६ ॥

चीरमुपमानम् ॥ १२७ ॥

ची० मुं, उ०मुं । चीरमुत्तरपद मुपमानवाचिनि तत्पुरुषे समासे आद्युदात्तं स्यात् । यथा—वस्त्रं चीरमिव—वस्त्रचीरम् । कम्बलचीरम् ॥

उपमान वाचक तत्पुरुष समास में चीर शब्द को आद्युदात्त स्वर हो ॥ १२७ ॥

पललसूपशाकं मिश्रे ॥ १२८ ॥

इमान्युत्तरपदानि मिश्रवाचिनि तत्पुरुषे समासे आद्युदात्तानि स्युः । यथा—घृतपललम् । घृतसूपः । घृतशाकम् ॥

मिश्रवाचक तत्पुरुष समास में पलल सूप और शाक उत्तर पद को आद्युदात्त स्वर हो ॥ १२८ ॥

कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम् ॥ १२९ ॥

एते तत्पुरुषे संज्ञायां विषये आद्युदात्ताः स्युः । यथा—दाक्षिकूलम् । शाण्डिसूदम् । दाण्डायनस्थलम् । दाक्षिकर्षः ॥

तत्पुरुष समास में संज्ञा गम्यमान होतो कूल सूद स्थल और कर्ष उत्तर पद को आद्युदात्त स्वर हो ॥ १२९ ॥

अकर्मधारये राज्यम् ॥ १३० ॥

कर्मधारयवर्जिते तत्पुरुषे राज्यमुत्तरपदमाद्युदात्तं स्यात् । यथा-ब्राह्मणराज्यम् । क्षत्रियराज्यम् ॥

कर्म धारय वर्जित तत्पुरुष समास में राज्य उत्तर पद को आद्युदात्त स्वर हो ॥

वर्ग्यादयश्च ॥ १३१ ॥

व०र्ग्यः, च । वर्ग्यादय उत्तरपदाऽकर्मधारये तत्पुरुषे आद्युदात्ताः स्युः । आर्य्य वर्ग्यः । आर्य्यपद्यः । दस्युवर्ग्यः । दस्युपद्यः ॥

कर्म धारय वर्जित तत्पुरुष समास में वर्ग्यादि (दिगाद्यन्तर्गत)गण पठित उत्तर पद को आद्युदात्त स्वर हो ॥ १३१ ॥

पुत्रः पुम्भ्यः ॥ १३२ ॥

पुम् शब्देभ्यःपरः पुत्रशब्द आद्युदात्तः स्यात् तत्पुरुषे । यथा- दाशकिपुत्रः । माहिषपुत्रः ॥

तत्पुरुष समास में पुलिङ्ग शब्दों से परे पुत्र शब्दों आद्युदात्त स्वर हो ॥ १३२ ॥

नाचार्यराजर्त्विक् संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः

न०,आ० भ्यः।एभ्यः परः पुत्रो नाद्युदात्तः स्यात् आख्याग्रहणात् पर्यायाणां तद् विशेषणानां च ग्रहणम् । यथा-आचार्यपुत्रः । उपाध्यायपुत्रः । शाकटायनपुत्रः । राजपुत्रः । ईश्वरपुत्रः । नन्दपुत्रः । ऋत्विक्पुत्रः । याजकपुत्रः । होतुःपुत्रः । संयुक्तः-सम्बन्धी । श्यालपुत्रः ज्ञातयो मातापितृ सम्बन्धेन बान्धवाः । ज्ञातिपुत्रः । भ्रातुः पुत्रः ॥

आचार्य्य राजा ऋत्विक् संयुक्त और ज्ञाति वाचकों से परे पुत्र शब्द को आद्युदात्त स्वर हो ॥ १३३ ॥

चूर्णादीन्य प्राणिषष्ठ्याः ॥ १३४ ॥

चू०नि, अ० ष्ठ्याः।इमानि प्राणिभिन्न षष्ठ्यन्तात् पराण्याद्युदात्तानि स्युस्तत्पुरुषे समासे । यथा-गोधूमचूर्णम्।मुद्गचूर्णम् ॥

तत्पुरुष समास में प्राणिभिन्न षष्ठ्यन्त से परे चूर्णादि गणपठित उत्तरपदको आद्युदात्त स्वर हो ॥ १३४ ॥

षट् च काण्डादीनि ॥ १३५ ॥

षट्पूर्वोक्तानि काण्डादीन्युत्तरपदानि अप्राणिषष्ठ्या आद्युदात्तानि स्युः। यथा--दर्भकाण्डम्। दर्भचीरम्। तिलपललम्। मुद्गसूपः मूलकशाकम्। समुद्रकूलम्॥

प्राणिवर्जित षष्ठ्यन्तसे परे पूर्वोक्त काण्डादि छह उत्तरपद को आद्युदात्तस्वर हो

कुण्डं वनम् ॥ १३६ ॥

कुण्डमाद्युदात्तं स्याद् वनवाचिनि तत्पुरुषे समासे। यथा--दर्भकुण्डम्। शरकुण्डम्। कुण्डशब्दोऽत्रसादृश्ये॥

वनवाचि तत्पुरुष समासमें कुण्ड उत्तरपदको आद्युदात्त स्वरहो ॥ ११६ ॥

प्रकृत्या भगालम् ॥ १३७ ॥

भगालवाच्युत्तरपदं तत्पुरुषे समासे प्रकृत्या स्यात्। यथा-- कुम्भीभगालम्। कुम्भीनदालम्। कुम्भीकपालम्। इमेमध्योदात्ताः॥

तत्पुरुष समासमें भगाल वाचक उत्तरपदको प्रकृति स्वरहो ॥ १३७ ॥

शितेर्नित्याबह्वज्बहुव्रीहावभसत् १३८

शितेः, नि० च, बं० हौ, अ० त्। बहुव्रीहौ समासे शितेः परं नित्याबह्वच्कं भसच्छब्दवर्जितं प्रकृत्या स्यात्। यथा-- शितिपादः। शित्यंसः। शित्योष्ठः॥

बहुव्रीहि समासमें शिति (काला) से परे भसत् वर्जित नित्यअबहन् उत्तरपदको प्रकृति स्वरहो ॥ ११८ ॥

गतिकारकोपपदात् कृत् ॥ १३९ ॥

एभ्यःपरं कृदन्तं प्रकृतिस्वरं स्यात्तत्पुरुषे समासे । यथा—प्रकारकः । प्रकरणम् । कारकात् । इध्मव्रश्चनः । उपपदात् । ईषत्करः । सर्वत्रैवात्र ञ्नित्स्वरः ॥

तत्पुरुष समास में गति, कारक और उपपद से परे कृत्यप्रत्ययान्त उत्तर पदको प्रकृति स्वर हो ॥ ११९ ॥

उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ १४० ॥

एषु पूर्वोत्तरपदे उभेयुगपत् प्रकृति स्वरेस्याताम् । यथा—वनस्पतिः । बृहस्पतिः ॥

वनस्पति आदि समास में पूर्वोत्तरपद दोनो को प्रकृति स्वर हो ॥ १४० ॥

देवताद्वन्द्वे च ॥ १४१ ॥

देवता वाचिनि द्वन्द्वे च समासे युगपदुभे प्रकृत्या स्याताम् । यथा—इन्द्रावरुणौ । इन्द्रासोमौ । इन्द्राबृहस्पतिः ॥

देवता वाचियों के द्वन्द्व समास में पूर्व और उत्तरपद दोनों को एक साथ प्रकृति स्वर हो ॥ १४१ ॥

नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवी रुद्रपूष मन्थिषु ॥ १४२ ॥

न०, उ० दे, अ० दौ, अ०षु । पृथिव्यादि वर्जितेऽनुदात्ता

त्तरपदे देवता द्वन्द्वे नोभे युगपत् प्रकृतिस्वरे स्याताम् । यथा—इन्द्राग्नी । इन्द्रवायू । अग्निवायु शब्दावन्तोदात्तौ ॥

देवता द्वन्द्व समास में पृथिवी, रुद्र, पूषन् और मन्थिन् शब्द को छोडकर अनुदात्तादि उत्तरपद परे हो तो पूर्व और उत्तरपद दोनो को एक साथ प्रकृतिस्वर न हो॥

अन्तः ॥ १४३ ॥

अधिकारोऽयम् । परादिश्छन्दसि बहुल मितियावत् ॥

उत्तर पद को अन्तोदात्त स्वर हो यह अधिकार इस पादकी समाप्तितक है १४३

थाथघञ्क्ताजवित्रकाणाम् ॥ १४४ ॥

थ अथ घञ् क्त अच् अप् इत्र क एतदन्तां गति कारकोप पदात् परेषामन्त उदात्तः स्यात् । यथा—सुनीथः । अथ । आवसथः । घञ् । प्रभेदः । क्तः । दूरादागतः । प्रक्षयः । अप् । प्रलवः । इत्र । प्रलवित्रम् । कः । गोवृषः ॥

गति, कारक और उपपदसे परे थादि प्रत्ययान्तोके उत्तरपदको अन्तोदात्त स्वर हो॥

सूपमानात् क्तः ॥ १४५ ॥

सोरुपमानाच्च परं क्तान्तमन्तोदात्तं स्यात् । यथा—सुकृतम् । सुभुक्तम् । सुपीतम् । उपमानात् । वृकावलुप्तम् । शशप्लुतम् । सिंहविनर्दितम् ॥

सु और उपमान वाचक से परे क्तान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर हो १४५

संज्ञायामनाचितादीनाम् ॥ १४६ ॥

स० मूँ, अ० मूँ । संज्ञायां विषये गतिकारकोपपदात् क्तान्त-

न्तो दात्तं स्या दाचितादीन् वर्जयित्वा। यथा—संभृतो रामायणः। उपहूतःशाकल्यः। परिजग्धः कौण्डिन्यः॥

संज्ञाविषयमें गतिकारक और उपपदसे परे आचितादि वर्जित क्तान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर हो॥ १४६॥

प्रवृद्धादीनां च ॥ १४७ ॥

एषां क्तान्त मुत्तरपदमन्तो दात्तं स्यात्। यथा-प्रवृद्धंयानम्। प्रवृद्धो वृषलः॥

प्रवृद्धादियों के क्तान्त उत्तरपदको अन्तो दात्तस्वरहो॥ १४७

कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि॥ १४८ ॥

का० त, द० योः, एव, आ० षि। संज्ञायां विषये आशिषि गम्ये कारका दुत्तरयो र्दत्तश्रुतयो रेव क्तान्तयो रन्त उदात्तः स्यात्। यथा—देवा एनं देयासुर्देवदत्तः। विष्णुरेनं श्रूयाद् विष्णुश्रुतः॥

संज्ञा विषय में आशीर्वाद गम्यमान होने पर कारकसे परे दत्त और श्रुतही क्तान्तों को अन्तो दात्त स्वर हो॥ १४८॥

इत्थम्भूतेन कृतमिति च ॥ १४९ ॥

इ० न, कृम् इति च। इमं प्रकारमापन्नः-इत्थम्भूतः इत्थम्भूतेन कृत मित्येतास्मिन्नर्थे यः समासस्तत्र क्तान्त मुत्तरपद मन्तोदात्तं स्यात्। यथा—सुप्तप्रलपितम्। उन्मत्तप्रलपितम्। प्रमत्तगीतम्। विपन्नश्रुतम्

इस प्रकारके पुरुषने किया इस अर्थ में वर्त्त मान जो समास उस में क्तान्त उत्तर पद को अन्तो दात्त स्वर हो॥ १४९॥

अनो भावकर्म वचनः ॥ १५० ॥

अनः, भा नेः । कारकात्परमनप्रत्ययान्तं भाववचनं कर्म वचनं चान्तो दात्तं स्यात् । यथा—पयः पानं सुखम् । राज भोजना शालयः

कारक से परे भाव और कर्म वाचक अनप्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तो दात्त स्वर हो॥

मनक्तिन्व्याख्यनशयनासनस्थानयाजकादिक्रीताः ॥ १५१ ॥

कारकात् पराणीमान्युत्तरपदा न्यन्तो दात्तानि स्युस्तत्पुरुषे । यथा- रथवर्त्म । पाणिनिकृतिः । छन्दो व्याख्यानम् । राज शयनम् । ब्राह्मणासनम् । अश्वस्थनम् । क्षत्रिययाजकः । क्षत्रियपूजकः गोक्रीतः

कारक से परे मन्नन्त, क्तिन्नन्त, व्याख्यान, शयन आसन, स्थान, याजकादि और क्रीत शब्द उत्तरपद को अन्तो दात्त स्वरहो हो ॥ १५१ ॥

सप्तम्याः पुण्यम् ॥ १५२ ॥

सप्तम्यन्तात् परं पुण्यमुत्तरपदमन्तो दात्तं स्यात् । यथा-- अध्ययने पुण्यम्--अध्ययनपुण्यम् ।

सप्तमी से परे पुण्य उत्तर पद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १५२ ॥

ऊनार्थकलहं तृतीयायाः ॥ १५३ ॥

ऊनार्थान्युत्तरपदानि कलह शब्दश्च तृतीयान्तात्पराण्यन्तोदात्तानि स्युः । यथा—माषोनम् । माषविकलम् । वाक्कलहः । असिकलहः ॥

तृतीयान्त से परे ऊनार्थ और कलह शब्द को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५३ ॥

मिश्रं चानुपसर्गमसन्धौ ॥ १५४ ॥

मिश्रम्, च, अ० म्, अ० धौ। असन्धौ गम्ये मिश्र मेतदुत्तरपद मनुपसर्गं तृतीयान्तात्परमन्तोदात्तं स्यात् । यथा-गुडमिश्राः । सर्पिर्मिश्राः ॥

असन्धि गम्यमान होतो तृतीयान्त से परे उपसर्गरहित मिश्र उत्तरपदको अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५४ ॥

नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिताः ॥ १५५ ॥

नञः, गु० धे, स० र्थाः, त० ताः । सम्पाद्याद्यर्थ तद्धितान्तान्नञो गुणप्रतिषेधे वर्त्तमानात्परे अन्तोदात्ताः स्युः । यथा-कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कर्णवेष्टकिकम् । न कार्णवेष्टकिकम्-अकार्णवेष्टकिकम । छेदमर्हति-छैदिकः । न छैदिकः-अछैदिकः । न वत्सेभ्यो हितः अवत्सीयः । न सन्तापाय प्रभवति-असान्तापिकः ॥

वर्त्तमान नञसे परे गुण प्रतिषेध अर्थ में सम्पादि अर्ह हित और अलमर्थ तद्धितान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५५ ॥

ययतोश्चातदर्थे ॥ १५६ ॥

य० तोः, च, अ० र्थे ययतौ यौ तद्धितौ तदन्तस्योत्तरपदस्य नञोगुणप्रतिषेधविषयात् परस्यान्त उदात्तः स्यात्। यथा-पाशानां समूहः-पाश्या । न पाश्या-अपाश्या । दन्तेषु भवम्, दन्त्यम, नदन्त्यम्-अदन्त्यम् ॥

गुण प्रतिषेध विषयक नञ् से परे जो अतदर्थ में वर्त्तमान तद्धितान्त य और यत् प्रत्यय तदन्त उत्तरपदको अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५६ ॥

अचूकावशक्तौ ॥ १५७ ॥

अं० कौ, अं० क्तौ । अशक्तौ गम्यायामजन्तं कान्तं च नञः परमन्तोदात्तं स्यात् । यथा-अपचः । पक्तुमशक्तः । अविलिखः ॥

अशक्ति गम्यमान हो तो नञ् से परे अच् और क प्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५७ ॥

आक्रोशे च ॥ १५८ ॥

आक्रोशे गम्ये नञः परावच्क्रावन्तोदात्तौ स्यताम् । यथा-अपचो जाल्मः । अपठोऽयं जाल्मः । पक्तुं पठितुं शक्तोऽप्येवं माक्रुश्यते ॥

आक्रोश गम्यमान हो तो नञ् से परे अच् और क प्रत्ययान्त को अन्तोदात्त स्वर हो ॥

सञ्ज्ञायाम् ॥ १५९ ॥

सञ्ज्ञाया माक्रोशे गम्येनञः परमुत्तरपदमन्तोदात्तं स्यात् । यथा-अदेवदत्तः । अविष्णुमित्रः ॥

नञ् से परे संज्ञा विषय में आक्रोश गम्यमान होनेपर उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १५९ ॥

कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च ॥ १६० ॥

कृ०यं:,च । इमे नञ × परेऽन्तोदात्ताः स्युः । यथा-अकर्त्तव्यम् अकरणीयम् । (उक्) अनागामुकम् । (इष्णुच्) अनलंकरिष्णुः ॥ इष्णुच् ग्रहणे खिष्णुचोद्यनुबन्ध कस्यापि ग्रहण मिकारादेर्विधान

सामर्थ्यात् । यथा-अनाढ्यभाविष्णुः।चर्वादिः । अचारुः।असाधुः॥

नञ् से परे कृत्य उक् इष्णुच् प्रत्यय हैं अन्त में जिसके ऐसे शब्द और चर्वादि गण पठित शब्दों को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १६० ॥

विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु ॥१६१॥

एषूत्तरेषु वाऽन्त उदात्तः स्यात् । यथा-तृन् । अकर्ता । अन्न । अनन्नम् । तीक्ष्ण । अतीक्ष्णम् । शुचि । अशुचिः । पक्षेऽव्ययस्वरः

नञ् से परे तृन्नन्त अन्न तीक्ष्ण और शुचि उत्तरपदको विकल्पसे अन्तोदात्त स्वरहो॥

बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथमपूरणयोः क्रियागणने ॥ १६२ ॥

ब० हौ, इ० भ्यः, प्र०योः, क्रि०ने । बहुव्रीहौ समासे इदम्, एतद्, तदित्येतेभ्य उत्तरस्य प्रथम शब्दस्य पूरणप्रत्ययान्तस्य च क्रिया गणने वर्त्तमानस्यान्त उदात्तः स्यात् । यथा-इदं प्रथमं गमनं भोजनं वा यस्य, स-इदं प्रथमः । एतद्द्वितीयः । तत्पञ्चमः ॥

बहुव्रीहि समास में इदम् एतद् और तद् से परे क्रिया गणनमें वर्त्तमान प्रथम और पूरण प्रत्ययान्त शब्दको अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १६२ ॥

संख्यायाः स्तनः ॥ १६३ ॥

बहुव्रीहौ संख्यायाः परः स्तनशब्दोऽन्तोदात्तस्स्यात् । यथा-द्विस्तना । त्रिस्तना । चतुः स्तना ॥

बहुव्रीहि समास में संख्या से परे स्तन शब्दको अन्तोदात्त स्वरहो ॥१६३॥

विभाषा छन्दसि ॥ १६४ ॥

बहुव्रीहौ छन्दसि विषये सङ्ख्यायाः परः स्तनशब्दो वाऽन्तोदात्तः स्यात् । यथा—द्विस्तना । द्विस्तना ॥

बहुव्रीहि समास में छन्दो विषय होनेपर संख्यासे परे स्तन शब्द को विकल्प से अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १६४ ॥

संज्ञायां मित्राजिनयोः ॥ १६५ ॥

बहुव्रीहौ संज्ञायां विषये मित्रा जिनयो रुत्तरपदयोरन्तःउदात्तः स्यात् । यथा-- देवमित्रः । ब्रह्ममित्रः । कृष्णाजिनः । वृकाजिनः । ऋषिप्रतिषेधो मित्रे । विश्वामित्र ऋषिः ॥

बहुव्रीहि समासमें संज्ञा विषय होने पर मित्र और अजिन उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १६५ ॥

व्यवायिनोऽन्तरम् ॥ १६६ ॥

व्य०नः,अ०रम् । बहुव्रीहौ व्यवधानवाचकात्परमन्तो दात्तं स्यात् यथा--वस्त्रमन्तरं व्यवधायकं यस्याऽसौ--वस्त्रान्तरः कम्बालन्तरः ॥

बहुव्रीहि समासमें व्यवधान (बीच) वाचक से परे अन्तर शब्द को अन्तो दात्त स्वरहो ॥ १६६ ॥

मुखं स्वाङ्गम् ॥ १६७ ॥

स्वाङ्गवाचि बहुव्रीहौ मुखमुत्तरपद मन्तोदात्तं स्यात् यथा-- गौरमुखः । भद्रमुखः ॥

बहुव्रीहि समासमें स्वाङ्ग वाचक मुख उत्तर पद को अन्तो दात्त स्वरहो ॥ १६७ ॥

नाव्ययदिक्छब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः ॥ १६८ ॥

न० अ०भ्यः । स्वाङ्ग वाचिबहुव्रीहौ एभ्यः परंमुख मन्तोदात्तं स्यात् । यथा--उच्चैर्मुखः । प्राङ्मुखः । गोमुखः

महामुखः । स्थूलमुखः । मुष्टिमुखः । पृथुमुखः । वत्समुखः ॥

बहुव्रीहि समास में अव्यय, दिक्शब्द, गो, महत्, स्थूल, मुष्टि, पृथु और वत्स से परे स्वाङ्ग वाचक मुख उत्तरपदको अन्तोदात्त स्वर न हो ॥ १६८ ॥

निष्ठोपमानादन्यतरस्याम् ॥ १६९ ॥

नि० तं, अ० म । बहुव्रीहौ निष्ठान्तादुपमानवाचिनश्च परं मुखं स्वाङ्गं वाऽन्तोदात्तं स्यात् । यथा—प्रक्षालितमुखः । पक्षे निष्ठोपसर्ग पूर्वमन्यतरस्यामिति पूर्वपदमन्तोदात्तत्वम् प्रक्षालितमुखः । उपमानात् । सिंहमुखः २ । व्याघ्रमुखः २ ।

बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त और उपमान वाचक से परे स्वाङ्ग वाचक मुख, उत्तर पद को विकल्पसे अन्तो दात्त स्वर हो ॥ १६९ ॥

जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तोऽकृतमितप्रतिपन्नाः ॥ १७० ॥

जा० भ्यः, अ० तं, क्तः, अ० न्नाः । बहुव्रीहावाच्छादन वर्जिता ज्जाति वाचिनः कालवाचिनः सुखादिभ्यश्च परं क्तान्तं कृत मित प्रतिपन्नान् विहायाऽन्तोदात्तं स्यात् यथा—सारङ्गजग्धः मासजातः । : । सुखजातः । दुःखजातः ॥

बहुव्रीहि समासमें आच्छादन वर्जित जातिवाचक कालवाचक और सुखादि गणपठितसे परे कृत मित और प्रति पन्नों को छोड़ कर क्तान्त उत्तर पद को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १७० ॥

वा जाते ॥ १७१ ॥

बहुव्रीहौ जातिकाल सुखादिभ्यःपरो जातशब्दो वान्तोदात्तः स्यात् । यथा-दन्तजातः । दन्तजातः । मासजातः । मासजातः । सुखजातः । सुखजातः । दुःखजातः । दुःखजातः ॥

बहुव्रीहि समास में जाति काल और सुखादि गण पठित से परे जात उत्तर को विकल्प से अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १७१ ॥

नञ् सुभ्याम् ॥ १७२ ॥

आभ्यां परं बहुव्रीहावुत्तरपदमन्तोदात्तं स्यात् । यथा-अव्रीहिः सुमाषः ।

बहुव्रीहि समास में नञ् और सु से परे उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर हो १७२॥

कपि पूर्वम् ॥ १७३ ॥

नञ्सुभ्यां परं यदुत्तरपदं तदन्तस्य समासस्य कपिपरे पूर्वमुदात्तं स्यात् । यथा-अब्रह्मबन्धुकः । सुकुमारीकः ॥

नञ् और सु से परे जो उत्तरपद तदन्त समास को कप् से पूर्व उदात्त स्वर हो।

ह्रस्वान्तेऽन्त्यात्पूर्वम् ॥ १७४ ॥

नञ्सुभ्यां परं बहुव्रीहौ ह्रस्वान्ते उत्तरपदे समासे चान्त्यात् पूर्वमुदात्तं स्यात् कपिपरे । यथा-अव्रीहिकः । सुमाषकः ॥

बहुव्रीहि समास में कप् परे होतो नञ् और सु से परे ह्रस्वान्त में अन्तसे पूर्व वर्णको उदात्त स्वरहो ॥ १७४ ॥

बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि ॥ १७५ ॥

बहो॑ः, नञ्वत्, उ०म्निँ। उत्तरपदार्थ बहुत्ववाचिनो बहोः परस्य पदस्य नञः परस्येव स्वरःस्यात्।यथा—बहुव्रीहिकः।बहुमित्रकः।

उत्तर पदार्थ के बहुत्व में वर्त्तमान बहुशब्द से परे नञ् के सदृश स्वरहो ॥

न गुणादयोऽवयवाः ॥ १७६ ॥

न, गु० यें:, अ०र्याः। बहुव्रीहौऽवयव वाचिनो बहोः परे गुणादयो नान्तो दात्ताः स्युः। यथा—बहुगुणारज्जुः। बह्वक्षरं पादम्। गुणादिराकृतिगणः ॥

बहुव्रीहि समास में अवयव वाचक बहुसे परे गुणादि गण पठितों को अन्तोदात्त स्वर न हो ॥ १७६ ॥

उपसर्गात् स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु ॥ १७७ ॥

उ०त्, स्वाङ्गम्, ध्रुवम्, अपर्शु। बहुव्रीहावुपसर्गात् स्वाङ्गं ध्रुवं पर्शुवर्जित मन्तोदात्तं स्यात्। यथा—प्रपृष्ठः प्रललाटः ॥

बहुव्रीहि समास में उपसर्ग से परे पर्शुवर्जित ध्रुव (अचल) स्वाङ्ग वाचक शब्दो को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १७७ ॥

वनं समासे ॥ १७८ ॥

समासमात्रे उपसर्गादुत्तरं वनमन्तोदात्तं स्यात्। यथा—प्रवणे यष्टव्यम्। निर्वणे प्रणिधीयते ॥

समास मात्र में उपसर्ग से परे वन उत्तर पदको अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १७८ ॥

अन्तः ॥ १७९ ॥

असमात् परं वनमन्तोदात्तं स्यात्। यथा—अन्तर्वणोदेशः ॥

अन्तर् शब्द से परे वनको अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १७९ ॥

अन्तश्च ॥ १८० ॥

अन्तः, च । उपसर्गादन्तः शब्दोऽन्तोदात्तः स्यात् । यथा—प्रान्तः । पर्यन्तः ॥

उपसर्ग से परे अन्तर् शब्दको अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १८० ॥

न निविभ्याम् ॥ १८१ ॥

आभ्यामुत्तरोऽन्तशशब्दो नान्तोदात्तः स्यात् । यथा—न्यंतः । व्यंतः ॥

नि और वि से परे अन्तर शब्द को अन्तोदात्त स्वर न हो ॥ १८१ ॥

परेरभितो भावि मण्डलम् ॥ १८२ ॥

परेः, अ०ति, म०म् । परेः परमभित उभयतो भावो यस्यास्ति, तत्कूलादि मण्डलं चान्तोदात्तं स्यात् । यथा--परिकूलम् । परितीरम् । परिमण्डलम् ॥

परि से परे अभितः और उभयतः भाव जिसका हो वह कूलादि तथा मण्डल को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १८२ ॥

प्रादस्वाङ्गं सञ्ज्ञायाम् ॥ १८३ ॥

संज्ञायां विषये प्रात् परं स्वाङ्गवाचि अन्तो दात्तं स्यात् । यथा—प्रकोष्ठम् । प्रगृहम् ॥

संज्ञा विषय में प्र उपसर्गसे परे अस्वाङ्ग वाचक शब्द को अन्तो दात्त स्वरहो १८३

निरुदकादीनि च ॥ १८४ ॥

इमानि चान्तोदात्तानि स्युः । यथा—निरुदकम् । निरुपलम् ॥
निरुदकादि गणपठित शब्दों को अन्तो दात्त स्वर हो ॥१८४॥

अभे मुखम् ॥ १८५ ॥

अभेः, मुखम् । अभेः परम्मुखमन्तो दात्तं स्यात् । यथा—अभिमुखः॥
अभि उपसर्ग से परे मुख को अन्तो दात्त स्वर हो ॥ १८५ ॥

अपाच्च ॥ १८६ ॥

अपात्, च । अपात् परं मुखमन्तो दात्तं स्यात् । यथा—अपमुखः। अपमुखम् ।
अप उपसर्ग से परे मुख को अन्तो दात्त स्वर हो ॥ १८६ ॥

स्फिगपूतवीणाञ्जोध्वकुक्षिसीरनामनाम च ॥१८७॥

अपादीमान्यन्तो दात्तानि स्युः । यथा—अपस्फिगम् । अपपूतम् अपवीणम् । अपाञ्जः । अपाध्वा । अपकुक्षिः । अपसीरः । अप हलम् । अपनाम ॥
अप उपसर्ग से परे स्फिग पूत वीणा, अञ्जस्, अध्वन् कुक्षि सीर (हल) नाम और नाम उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १८७ ॥

अधेरूपरिस्थम् ॥ १८८ ॥

अधेः, उ०म् । अधेः परमुपरिस्थवाचि अन्तोदात्तं स्यात् । यथा—अधिदन्तः । अधिकर्णः ॥

अधि उपसर्ग से परे उपरिस्थ वाचक उत्तर पद को अन्तोदात्त स्वर हो १८८

अनोरप्रधान कनीयसी ॥ १८९ ॥

अनोः, अ॰सी । अनोः परमप्रधान वाचिकनीयश्चान्तोदात्तं स्यात् । यथा—अनुगतो ज्येष्ठम्-अनुज्येष्ठः । अनुमध्यमः ॥

अनुउपसर्ग से परे अप्रधान वाचक और कनीयस् उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १८९ ॥

पुरुषश्चान्वादिष्टः ॥ १९० ॥

पुरुषः, च, अ॰ ष्टः । अनोः परोऽन्वादिष्टवाची पुरुषोऽन्तोदात्तः स्यात् । यथा—अन्वादिष्टः पुरुषः—अनुपुरुषः ॥

अनु उपसर्ग से परे अन्वादिष्ट वाचक पुरुष शब्द को अन्तोदात्त स्वर हो १९०

अतेरकृतपदे ॥ १९१ ॥

अतेः, अ॰ दे । अतेः परमकृदन्तं पदशब्दश्चान्तोदात्तः स्यात् । यथा— अत्यङ्कुशो नागः । अतिपदा शक्करी ।

अति उपसर्ग से परे अकृदन्त और पदशब्द को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १९१ ॥

नेरनिधाने ॥ १९२ ॥

नेः, अ॰ने । निधानमप्रकाशता ततोऽन्यदनिधानं प्रकाशनमित्यर्थः । तस्मिन् नेः परमुत्तरपदमन्तोदात्तं स्यात् । यथा— निमूलम् । न्यक्षम् । नितृणम् ॥

अनिधान अर्थ में नि उपसर्गसे परे उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १९२ ॥

प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ॥ १९३ ॥

प्रतेः, अं० थः, त० षे। तत्पुरुषे प्रतेः परेऽश्वादयोऽन्तो दात्ताः स्युः। यथा--प्रतिगतोंऽशुः-प्रत्यंशुः। प्रतिजनः। प्रतिराजा ॥

तत्पुरुष समास में प्रतिउपसर्ग से परे अंश्वादि गणपठित शब्दों को अन्तो दात्त स्वरहो ॥ १९३ ॥

उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः ॥ १९४ ॥

उपात्, द्व्य०म्, अ०यः। तत्पुरुषे उपात्परं यद् द्व्यच्कमजिनं चान्तोदात्तं स्याद् गौरादीन् विहाय। यथा- उपगतो देवम्--उपदेवः। उपेन्द्रः। उपाजिनम् ॥

तत्पुरुष समासमें उपउपसर्ग से परे गौरादि गणपठित शब्दों को छोड़ कर द्व्यच्‌ और अजिन उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १९४ ॥

सोरवक्षेपणे ॥ १९५ ॥

सोः, अं० णे। अवक्षेपणे सुशब्दात्परमुत्तरपदमन्तोदात्तं स्यात्तत्पुरुषे। अवक्षेपणम्--निन्दा। यथा--सुप्रत्यवसितः। सुरत्रपूजायामेव। वाक्यार्थ स्त्वत्र निन्दा असूयया तथाभिधानात् ॥

तत्पुरुष समास में अवक्षेपण गम्यमान होतो सु उपसर्ग से परे उत्तर पद को अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १९५ ॥

विभाषोत्पुच्छे ॥ १९६ ॥

विभाषा, उत्पुच्छे। उत्पुच्छे तत्पुरुषे वाऽन्त उदात्तः स्यात्। यथा--उत्क्रान्तः पुच्छाद्--उत्पुच्छः। उत्पुच्छः ॥

तत्पुरुष समास किये उत्पुच्छ शब्द में उत्तर पद को विकल्प से अन्तोदात्त स्वर हो ॥

द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ १९७

आभ्यां परेष्वेषु वाऽन्तोदात्तः स्याद् बहुव्रीहौ । यथा--द्वौपादौ यस्य, सः -द्विपात् । द्विपाद् । त्रिपाद् । त्रिपात् । द्विदन् । द्विदन् । द्विमूर्द्धा । द्विमूर्द्धा । त्रिमूर्द्धा । त्रिमूर्द्धा ॥

बहुव्रीहि समास में द्वि और त्रि से परे पात्, दत् और मूर्द्धन् उत्तरपदको विकल्प से अन्तोदात्त स्वरहो ॥ १९७ ॥

सक्थं चाक्रान्तात् ॥ १९८ ॥

सक्थम्, च, अ० त् । सक्थमिति कृतसमासान्तः, सोऽक्रान्ताद् वाऽन्तोदात्तः स्यात् । यथा—गौरसक्थः । गौरसक्थः । श्लक्ष्णसक्थः । श्लक्ष्णसक्थः ॥

अक्रान्त से परे सक्थ शब्द को विकल्प से अन्तोदात्त स्वर हो ॥ १९८ ॥

परादिश्छन्दसि बहुलम् ॥ १९९ ॥

परादिः, छं०सि, ब० म् । छन्दसि परस्य सक्थ शब्दस्यादि रुदात्तो वा स्यात् । यथा—अञ्जिसक्थमालभेत । अत्र वार्त्तिकम् । परादिश्च परान्तश्च पूर्वान्तश्चापि दृश्यते । पूर्वादयश्च दृश्यन्ते व्यत्ययो बहुलं ततः ॥ परादिः-तुविजाता उरुक्षया । परान्तः नियेन मुष्टिहत्यया । यस्त्रिचक्रः । पूर्वान्तः—विश्वायुर्धेहि ॥

छन्दो विषय में सक्थ शब्द के आदि को विकल्प से उदात्त स्वर हो ॥ १९९ ॥

इति षष्ठाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

अथ षष्ठाऽध्यायस्य तृतीयः पदारम्भः।

अलुगुत्तरपदे ॥ १ ॥

अ० क्, उ० दे । अलुगधिकारः प्रागानङ इति यावत्, उत्तरपदाधिकार स्त्वापादपरिसमाप्तेः ॥

प्रानङ् ऋतो द्वन्द्वे इस सूत्रके पूर्व २ अलुक् का धिकार और इसपादकी समाप्ति पर्यन्त उत्तर पद का अधिकार है ॥ १ ॥

पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ॥ २ ॥

एभ्यः पञ्चम्या अलुक् स्यादुत्तरपदे । यथा- स्तोकान्मुक्तः। अल्पान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्यासादागतः । दूरादागतः। विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रान्मुक्तः ॥ (ब्राह्मणाच्छंसिन उपसङ्ख्यानम्)॥ ब्राह्मणे विहितानि शस्त्राणि उपचाराद् ब्राह्मणानि । तानि शंसतीति--ब्राह्मणाच्छंसी--ऋत्विग्विशेषः ॥

उत्तरपद परे होतो स्तोकादि से परे पञ्चमी का अलुक् हो ॥ २ ॥

ओजः सहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः ॥ ३ ॥

ओ० सः, तृ० याः । एभ्यस्तृतीयाया अलुक् स्यादुत्तरपदे । यथा--ओजसाकृतम् । सहसाकृतम् । अम्भसाकृतम् । तमसाकृतम्। (अञ्जस्यउपसङ्ख्यानम्)॥ अञ्जसाकृतम् । आर्जवेन कृतमित्यर्थः । (पुंसानुजो जनुषान्ध इति च)॥ यस्य अग्रजः पुमान् स पुंसानुजः। जनुषान्धः--जात्यंधः ॥

उत्तरपद परे होतो ओजस् सहस्, अम्भस्, और तमस् से परे तृतीया का अलुक् हो ॥ ३ ॥

मनसः संज्ञायाम् ॥ ४ ॥

संज्ञायां मनसस्तृतीयाया अलुक् स्यादुत्तरपदे। यथा–मनसागुप्ता॥

संज्ञाविषय में मनस् शब्द से परे तृतीया का अलुक् हो ॥ ४ ॥

आज्ञायिनि च ॥ ५ ॥

आज्ञायिन्युत्तरपदे मनसस्तृतीयाया अलुक् स्यादुत्तरपदे। यथा–मनसा आज्ञातुं शीलमस्य मनसाज्ञायी ॥

आज्ञायिन् उत्तरपद परे हो तो मनस् शब्द से परे तृतीया का अलुक् हो ॥५ ॥

आत्मनश्च पूरणे ॥ ६ ॥

आ०नः, च, पू० णे। पूरणप्रत्ययान्ते उत्तरपदे आत्मनस्तृतीया या अलुक् स्यात्। यथा–आत्मना पञ्चमः। आत्मनाषष्ठः ॥

पूरण प्रत्ययान्त उत्तरपद परे होतो आत्मन् शब्द से परे तृतीया का अलुक्हो

वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ॥ ७ ॥

वैयाकरणस्याख्या- वैयाकरणाख्या। आख्या सञ्ज्ञा। यया संज्ञया वैयाकरणा एव व्यवहरन्ति तस्याऽत्मनश्चतुर्थ्या अलुक्स्यात्। यथा–आत्मनेपदम्। आत्मनेभाषा ॥

उत्तरपद परे हो वैयाकरणों की आख्यामें चतुर्थी का अलुक् हो ॥ ७ ॥

परस्य च ॥ ८ ॥

परस्य च या चतुर्थी तस्या वैयाकरणाख्यायां लुक् स्यात्। यथा–परस्मैपदम्। परस्मैभाषा ॥

वैयाकरणों की आख्यामें पर शब्द की चतुर्थी का भी अलुक् हो ॥ ८ ॥

हलदन्तात् सप्तम्याः सञ्ज्ञायाम् ।९।

संज्ञायां विषये हलन्ताद दन्ताच्च सप्तम्या अलुक् स्यात् । यथा-- युधिष्ठिरः । अरण्येतिलकाः ॥

संज्ञाविषय में हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो ॥ ९ ॥

कारनाम्नि च प्राचां हलादौ ॥ १० ॥

प्राचां देशे यत् कारनाम तत्र हलादावुत्तरपदे हलदन्तात् सप्तम्या अलुक् स्यात् । यथा-- मुकुटे कार्षापणम् । दृषदिमाषकः ॥

प्राग्देशियोंके मतमें कारनाम वाचक हलादि उत्तरपद परे होंतो सप्तमीका अलुक् हो॥

मध्याद् गुरौ ॥ ११ ॥

मध्यादुत्तरस्याः सप्तम्या अलुक् स्याद् गुरावुत्तरपदे । यथा-- मध्येगुरुः । (अन्ताच्च) अन्ते गुरुः ॥

गुरु उत्तरपद परे होतो मध्य से परे सप्तमी का अलुक् हो ॥ ११ ॥

अमूर्द्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे ॥ १२ ॥

अ०तं, स्वा०दं, अं०मे । अकाम उत्तरपदे मूर्द्धमस्तक वर्जितात् स्वाङ्गादुत्तरस्याः सप्तम्या अलुक् स्यात् । यथा-कण्ठे कालो यस्य सः-कण्ठेकालः । उरसिलोमः ॥

अकाम उत्तरपद परे होंतो मूर्द्ध मस्तक वर्जित स्वाङ्गवाचक शब्द से परे सप्तमी का अलुक् हो ॥ १२ ॥

१ (८ । ३ । ९५) इति षत्वम् ॥

बन्धे चँ विभाषाँ ॥ १३ ॥

बन्धे हलदन्तात्सप्तम्या वाऽलुक् स्यात् । यथा—हस्ते बन्धः । हस्तबन्धः । चक्रेबन्धः । चक्रबन्धः ॥

बन्ध उत्तरपदपरे होतो हलन्त और अदन्तसे परे सप्तमीका विकल्प से अलुक्हो

तत्पुरुँषे कृँति बहुलम् ॥ १४ ॥

तत्पुरुषे कृदन्त उत्तरपदे सप्तम्या बहुलमलुक् स्यात् । यथा— स्तम्बेरमः । स्तम्बरमः । कर्णेजपः । कर्णजपः ॥

तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तर पद परे होतो सप्तमीका बहुल करके अलुक् हो॥

प्रावृट् शरत् कालदिवां जेँ ॥ १५ ॥

ज उत्तरपदे एषां सप्तम्या अलुक् स्यात् । यथा—प्रावृषिजः । शरदिजः । कालेजः । दिविजः ॥

ज उत्तर पद परे होतो प्रावृट् शरद्, काल और दिव् की सप्तमी का अलुक् हो॥

विभाषा वर्षक्षरशरवरात् ॥ १६ ॥

एभ्यः सप्तम्या अलुग्वाजे । यथा—वर्षेजः । वर्षजः । क्षरेजः । क्षरजः । शरेजः । शरजः । वरेजः । वरजः ॥

ज उत्तर पद परे होतो वर्ष क्षर शर और वर से परे सप्तमी का विकल्प से अलुक् हो ॥ १६ ॥

घकालतनेषु कालनाम्नः ॥ १७ ॥

घकालतनेषु कालनाम्नः सप्तम्या वाऽलुक् स्यात् । यथा—घे— पूर्वाह्णेतरे । पूर्वाह्णतरे पूर्वाह्णेतमे । पूर्वाह्णतमे । काले—पूर्वाह्णेकाले । पूर्वाह्णकाले । तने—पूर्वाह्णेतने पूर्वाह्णतने ॥

घ संज्ञक प्रत्यय और काल तथा [illegible] प्रत्यय परे होंतो काल नाम वाचक से परे सप्तमी का विकल्प से अलुक् हो ॥ १७ ॥

शयवास वासिष्वकालात् ॥ १८ ॥

श०षुँ, अँ०त् । सप्तम्या वाऽलुक् स्यात् । यथा-खेशयः।खशयः ग्रामेवासः । ग्रामवासः । ग्रामेवासी । ग्रामवासी ॥

शयवास तथा वासिन् परे होंतो अकाल वाचक से परे सप्तमी का विकल्प से अलुक् हो ॥ १८ ॥

नेन् सिद्ध बध्नातिषु च ॥ १९ ॥

नँ, इ०षुँ, चँ । इन्नन्तादिषु सप्तम्या अलुङ् न स्यात् । यथा-स्थण्डिलशायी । काम्पिल्यसिद्धः । चक्रबन्धः ॥

इन्नन्त सिद्ध तथा बध्नाति परे होतो सप्तमी का लुक् हो ॥ १९ ॥

स्थेँच भाषायाम् ॥ २० ॥

स्थे चोत्तरपदे भाषायां सप्तम्या अलुङ् न स्यात् । यथा-समस्थः विषमस्थः । पर्वतस्थः ॥

स्थ उत्तरपद परेहोतो भाषा में सप्तमी का लुक् हो ॥ २० ॥

षष्ठ्याः, आँक्रोशे ॥ २१ ॥

आक्रोशे गम्ये षष्ठ्या अलुक् स्यात् । यथा-चोरस्य कुलम् । वृषलस्य कुलम् । (वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्ति दण्डहरेषु) ॥ वाचो युक्तिः । दिशो दण्डः । पश्यतोहरः ॥ (**आमुष्यायणाऽऽमुष्यपुत्रिकाऽऽमुष्य कुलिकेति च**) ॥ अमुष्यापत्यम्-आमुष्यायणः नडादित्वात् फक् । अमुष्य पुत्रस्य भावः- आमुष्यपुत्रि

का मनोज्ञादित्वाद् वुञ् । एवम् आमुष्य कुलिका (देवानां प्रिय इति च मूर्खे) ॥ अन्यत्र देवप्रियः ॥ (शेपपुच्छलाङ्गुलेषु-शुनः) ॥ शुनः शेपः । शुनः पुच्छः । शुनो लाङ्गूलः ॥ (दिवश्चदासे) दिवोदासः ॥

आक्रोश गम्यमान होतो षष्ठी का अलुक् हो ॥ २१ ॥

पुत्रेऽन्यतरस्याम् ॥ २२ ॥

पुत्रेपरेषष्ठ्याअलुग्वा स्यात् निन्दायाम् । यथा—दास्याः पुत्रः । दासीपुत्रः ॥

पुत्र शब्द उत्तरपद परे होतो निन्दागम्यमान होनेपर षष्ठी का विकल्पसे लुक्हो॥

ऋतो विद्यायोनि सम्बन्धेभ्यः ॥ २३ ॥

ऋतेः, वि० भ्यः । विद्यासम्बन्ध योनि सम्बन्ध वाचिन ऋद-न्तात् षष्ठ्या अलुक् स्यात् । यथा—होतुरन्तेवासी । होतुः पुत्रः । पितुरन्तेवासी । पितुः पुत्रः ॥ (विद्यायोनि सम्बन्धेभ्यस्तत् पूर्वोत्तर पदग्रहणम्)॥ नेह । होतृधनम् । पितृगृहम् ॥

विद्या सम्बन्ध यथा योनि सम्बन्ध वाचक ऋदन्त शब्दों से परे षष्ठी का अलुक् हो ॥ २३ ॥

विभाषा स्वसृपत्योः ॥ २४ ॥

स्वसृपत्योः परयोः ऋदन्तात् षष्ठ्या अलुग्वा स्यात् । यथा—मातुःष्वसा । मातुः स्वसा मातृस्वसा । पितुःष्वसा । पितुःस्वसा पितृ ष्वसा ॥

स्वसृ तथा पति शब्द परे होतो ऋदन्त शब्दों से परे षष्ठी का विकल्प से अलुक् हो ॥ २४ ॥

१-(८ । ३ । ८५) इति विकल्पेन षत्वम् । पक्षे समासे तु (८ । ३ । ८४) इति नित्यं षत्वम् ॥

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ॥ २५ ॥

आनङ्, ऋतः, द्वन्द्वे । विद्यायोनि सम्बन्धवाचि नाम् ऋदन्तानां द्वन्द्वे आनङ् स्यादुत्तरपदे । यथा- होतापोतारौ । होतृपोतृनेष्टोद्गातारः । मातापितरौ ॥ (पुत्रेऽन्यतरस्याम्) इत्यतो मण्डूकप्लुत्या पुत्र इत्यनुवृत्तेः--पिता पुत्रौ सहासीताम् ॥

विद्या सम्बन्ध तथा योनि सम्बन्ध वाचक ऋदन्तों के द्वन्द्व समास में उत्तरपद परे होतो पूर्व को आनङ् आदेश हो ॥ २५ ॥

देवताद्वन्द्वे च ॥ २६ ॥

देवता वाचिनां द्वन्द्वे चानङादेशः स्या दुत्तरपदे । यथा-- मित्रावरुणौ । इन्द्रावरुणौ ॥ (उभयत्र वायो प्रति षेधः) ॥ अग्निवायू । वाय्वग्नी ॥

देवता वाचकों के द्वन्द समासमें उत्तरपद परे होतो पूर्वपद को आनङ् आदेशहो॥

ईदग्नेः सोमवरुणयोः ॥ २७ ॥

ईत्, अग्नेः, सो० योः । सोमवरुणयोः परयोर्देवता द्वन्द्वेऽग्नेरीकारादेशः स्यात् । यथा-- अग्नीषोमौ । अग्नीवरुणौ ॥

सोम और वरुण परे होंतो देवता द्वन्द्व समास मे अग्नि शब्दको ईकारादेशहो

इद् वृद्धौ ॥ २८ ॥

कृतवृद्धावुत्तर पदेऽग्नेरिकारादेशः स्याद् देवताद्वन्द्वे । यथा- आग्नि वारुणी मनड्वाही मा लभेत । (देवता द्वन्द्वेच) इत्युभय पद वृद्धिः ॥

१ —(८ । ३ । ८२) इति षत्वम् ॥

कृत वृद्धि उत्तर पद परे होतो देवता द्वन्द्व समास में अग्निशब्दको इकारादेश हो

दिवो द्यावा ॥ २९ ॥

दिवः, द्यावा । दिवोद्यावा स्याद् देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे । यथा--द्यावाभूमी । द्यावाक्षामा ॥

देवता द्वन्द्व समास में उत्तर पद परे होतो दिव् शब्द को द्यावा आदेशहो २९

दिवसश्च पृथिव्याम् ॥ ३० ॥

दिवसः, च, पृ०म् । पृथिव्यामुत्तर पदे देवता द्वन्द्वे दिवो दिवसादेशः स्यात्, चाद्द्यावा । यथा--द्यौश्च पृथिवी च--दिवस्पृथिव्यौ । द्यावा पृथिव्यौ ॥

पृथिवी उत्तर पद परे होतो देवता द्वन्द्व समास में दिव् शब्द को दिवस् तथा द्यावा आदेशहो ॥ ३० ॥

उषासोषसः ॥ ३१ ॥

उषासा, उषसः । उषस् शब्दस्य उषासादेशः स्याद् देवताद्वन्द्वे यथा--उषासा सूर्यं । उषासा नक्तं ॥

देवता द्वन्द्व समास में उत्तरपद परे होतो उषस् शब्द को उषासा देश हो ३१

मातरपितरावुदीचाम् ॥ ३२ ॥

मा० रौ, उ० म् । मातरपितरा वुदीचामाचार्याणां मतेना रङादेशो मातृशब्दस्य निपात्यते । यथा- मातरपितरौ ॥

उत्तर देशीय आचार्यों के मत में मातृ शब्द को अरङ् आदेश करके मातर शब्द निपातन किया है ॥ ३२ ॥

पितरामातरा च छन्दसि ॥ ३३ ॥

पितरा मातरा इति छन्दसि निपात्यते। यथा-आमा गन्तां पितरा मातराच। चाद् विपरीतमपि। मातरा पितरा ॥

छन्द विषय में मातरा और पितरा निपातित हैं ॥ ३३ ॥

स्त्रियाः पुंवद् भाषित पुंस्कादनूङ समानाधि करणे स्त्रिवाम पूरणी प्रियादिषु ॥ ३४ ॥

स्त्रियाः, पुंवत्, भा० द्, अ० ङ्, स०णे स्त्रि०म्, अ० षु। भाषित पुंस्का दनूङ् ऊङोऽभावोस्यामिति। बहुव्रीहिः। निपातनात् पञ्चम्या अलुक् षष्ठयश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात् पर ऊङः भावो यत्र तथा भूतस्य स्त्री वाचकस्य शब्दस्य वाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधि करणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे पूरणी प्रियादि वर्जिते यथा—दर्शनीयभार्य्यः। दीर्घचूडः ॥

पूरणी और प्रियादि वर्जित समानाधि करण स्त्री लिङ्ग उत्तरपद परे होतो भाषित पुंस्क परे ऊङ् वर्जित स्त्री लिङ्गको पुंवत् कार्य्यहो ॥ ३४ ॥

तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ॥ ३५ ॥

त०षु, अ०चः। तसिलादिषु कृत्व सुजन्तेषु परेषु स्त्रियाः पुंवत् स्यात्। यथा-तस्याः शालायाः-ततः। तस्यां शालायां तत्र। तसिलादिषु परिगणन मत्रकार्य्यम्। तत्रसौ, तरप्तमपौ, चरट्जातीयरौ, कल्पदेशीयरौ, रूपप्पाशपौ थलथालौ दाहिलौ, तिल्तातिलौ (शसि बह्वल्पार्थस्य पुंवद् भावो वाच्यः) ॥ बह्वीभ्यो देहि बहु

शोदेहि। अल्पाभ्यो देहि। अल्पशोदेहि। (त्वतलोर्गुणवचनस्य) ॥ शुक्लाया भावः-- शुक्लत्वम्। शुक्लता ॥ (भस्याऽढे तद्धिते) ॥ हस्तिनीनांसमूहः हास्तिकम् ॥ (ठक्छसोश्च) ॥ भवत्याश्छात्राः- भावत्काः। भवदीयाः ॥

पञ्चम्यास्तसिल् इससूत्र से लेकर सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगण ने कृत्वसुच इससे पूर्व २ जो प्रत्यय हैं उनमें भाषित पुंस्क से परे ऊङ् वर्जित स्त्री लिङ्ग को पुंवत् कार्य्यहो ॥ ३५ ॥

क्यङ्मानिनोश्च ॥ ३६ ॥

क्यँ०नोः, चँ। एतयोः परयोः पुंवत्कार्यं स्यात्। यथा-एनीवाचरति- एतायते। श्येनीवाचरति- श्येतायते। स्वभिन्नां कञ्चिद् दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते--दर्शनीयमानिनी। दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते दर्शनीयमानी मैत्रः ॥

क्यङ् और मानिन् प्रत्यय परे होतो भाषित पुंस्कसे परे स्त्री लिङ्ग को पुंवत् कार्य हो ॥ ३६ ॥

नँ कोपधायाः ॥ ३७ ॥

कोपधायाः स्त्रिया न पुंवत् कार्य्यं स्यात्। यथा—पाचिका भार्य्यः। कारिका भार्यः। मद्रकायते। माद्रिका मानिनी ॥ (कोपध प्रतिषेधे तद्धित वुग्ग्रहणम्) ॥ नेह। पाकाभार्या यस्य सः—पाक भार्यः ॥

ककार जिसकी उपधा में हो ऐसे स्त्री लिङ्गको पुंवत् कार्य नहो ॥ ३७ ॥

संज्ञापूरण्योश्च ॥ ३८ ॥

सं०योः, चँ। अनयोः पुंवन्न कार्यं स्यात्। यथा—दत्ताभार्यः।

दत्तामानिनी । पञ्चमी भार्य्यः । पञ्चमीपाशा ॥

संज्ञा तथा पूरण प्रत्ययान्त स्त्री लिङ्ग शब्दों को पुंवत् कार्य नहो ॥ ३८ ॥

वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्याऽरक्तविकारे ॥ ३९ ॥

वृद्धिशब्देन विहिता या वृद्धिः तद्धेतुर्यस्तद्धितः अरक्तविकारार्थस्तदन्ता स्त्री न पुंवत् स्यात् । यथा-स्रौघ्नी भार्य्यः । माथुरी भार्यः । स्रौघ्नीयते । माथुरीयते । स्रौघ्नीमानिनी ॥

वृद्धिका निमित्त जिस में हो ऐसे रक्त तथा विकार वर्जित अर्थमें विहित तद्धितान्त स्त्री लिङ्ग शब्दको पुंवत् कार्य नहो ॥ ३९ ॥

स्वाङ्गाच्चेतः ॥ ४० ॥

स्वाङ्गात्, च, इतः । स्वाङ्गाद्यः, ईकारः तदन्ता स्त्री न पुंवत् स्यात् । यथा-सुकेशी भार्यः । दीर्घकेशी भार्यः ॥ (अमानिनीतिवक्तव्यम्)॥ दीर्घकेशमानिनी ॥

स्वाङ्ग वाचक से परे ईकारान्त स्त्री लिङ्ग को पुंवत् कार्य नहो ॥ ४० ॥

जातेश्च ॥ ४१ ॥

जातेः, च । जातेः परो यः स्त्री प्रत्ययस्तदन्तं न पुंवत् । यथा-ब्राह्मणीभार्य्यः । क्षत्रिया भार्यः ॥

जाति वाचक स्त्री लिङ्ग को पुंवत् कार्य नहो ॥ ४१ ॥

पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ४२

कर्मधारये समासे जातीयदेशीययोश्च परतोभाषित पुंस्कात् पर ऊङ् भावः यस्मिंस्तथाभूतं पूर्वं पुंवत् स्यात । यथा—पूरणी प्रि-यादिष्वप्राप्तः पुंवद् भावोऽनेन विधीयते—महानवमी । कृष्ण चतुर्दशी । महाप्रिया । तथा कोपधादेः प्रतिषिद्धः पुंवद् भावः । कर्मधारयादौ प्रतिप्रसूयते—पाचकस्त्री । दत्तभार्या । पञ्चमभार्या । स्रौघ्नभार्या । सुकेश भार्या । ब्राह्मणभार्या । एवं पाचक् जातीया । पाचक देशीया ॥

कर्म धारय समास में जातीय तथा देशीय प्रत्यय परे होंतो भाषित पुंस्क से परे ऊङ् वर्जित स्त्री लिङ्ग को पुंवत् कार्यहो ॥ ४२ ॥

घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचोह्रस्वः ॥ ४३ ॥

घ०षु, ङ्यः, अ०चः, ह्रस्वः । भाषित पुंस्काद्यो ङी तदन्तस्याऽनेकाचोह्रस्वः स्यात् घादिषु परेषु । यथा—ब्राह्मणितरा, ब्राह्मणितमा । ब्राह्मणिरूपा । ब्राह्मणिकल्पा । ब्राह्मणिचेली । ब्राह्मणिब्रुवा । ब्राह्मणिगोत्रा । ब्राह्मणिमता । ब्राह्मणिहता । ब्रूञः पचाद्यचि वच्यादेश गुणयो रभावश्च निपात्यते । चेलडादीनि वृत्ति विषये कुत्सनवाचीनि । तैः (कुत्सितानि कुत्सनैः) इति समासः ॥

घ संज्ञक, रूप, कल्प, चेलड्, ब्रुव, गोत्र, मत तथा हत परे होंतो भाषित पुंस्क से परे ङी प्रत्ययान्त अनेकाच् स्त्री वाचक शब्दको ह्रस्वादेशहो ॥ ४३ ॥

नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥

नद्याः, शेषस्य, अ०म् । अङ्यन्तनद्या ङ्यन्तस्यैकाचश्च, घादिषु ह्रस्वो वा स्यात । यथा—ब्रह्मबन्धुतरा । ब्रह्मबन्धूतरा । स्त्रितरा । स्त्रीतरा ॥

पूर्व सूत्रोक्त घादि परे होंतो अङ्यन्त नदी संज्ञक तथा अन्त एकाच् को विकल्प से ह्रस्व हो ॥ ४४ ॥

उगितश्च ॥ ४५ ॥

उ० तः, च । उगितश्च परया नदी तदन्तस्य घादिषु परेषु ह्रस्वो वा स्यात् । यथा-विदुषितरा । विद्वत्तरा । ह्रस्वाभावपक्षे तसिलादिष्विति पुंवद्भावः ॥

पूर्वोक्त घादि प्रत्यय परे होंतो उगित से परे नद्यन्तको विकल्पसे ह्रस्व हो ४५

आन्महतःसमानाधिकरणजातीययोः॥

आत्, म० तः, स० योः । समानाधि करणे उत्तरपदे जातीये चपरे महत आकारोऽन्तादेशः स्यात् । यथा-महादेवः । महाबलः । महाजातीयः ॥ (महदात्वे घासकरविशिष्टेषूप संख्या नं पुंवद्भावश्च)॥ महतो महत्या वा घासः-महाघासः । महाकरः । महाविशिष्टः ॥ (अष्टनः कपाले हविषि) ॥ अष्टाकपालः । (गवि च युक्ते)॥ गोशब्दे परे युक्त इत्यर्थे गम्ये अष्टन आत्वं स्यात् यथा-अष्टागवं शकटम् ॥

समानाधि करण उत्तरपद तथा जातीयर् प्रत्यय परे होंतो महत् शब्द को आकारा देश हो ॥ ४६ ॥

द्व्यष्टनःसङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः॥

द्व्य० नः, स० म्, अ० त्योः । द्वि अष्टन् इत्येतयोराकारादेशः स्यादबहुव्रीह्यशीत्योः सङ्ख्यायामुत्तरपदे । यथा-द्वौ च दश च-द्वादश । द्वाविंशतिः । अष्टादश । अष्टाविंशतिः ॥ (प्राक्श-

ताद्वक्तव्यम्) ॥ नेह—द्विशतम् । द्विसहस्रम् । अष्टशतम् । अष्टसहस्रम् ॥

बहुव्रीहि समास और अशीति को छोड़कर सङ्ख्यावाचक उत्तरपद परे हों तो द्वि और अष्टन् शब्द को आकारादेश हो ॥ ४७ ॥

त्रेस्त्रयः ॥ ४८ ॥

त्रेः, त्रयः । त्रिशब्दस्य त्रयःस्यादबहुव्रीह्यशीत्योः सङ्ख्याया मुत्तरपदे । यथा—त्रयोदश । त्रयोविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् ॥

बहुव्रीहि समास और अशीति वर्जित सङ्ख्यावाचक शब्द परे हों तो त्रि शब्द को त्रय आदेश हो ॥ ४८ ॥

विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् ॥

चत्वारिंशत् प्रभृतौ सङ्ख्यायामुत्तरपदेऽबहुव्रीह्यशीत्योः । सर्वेषां द्व्यष्टनो त्रेश्च प्रागुक्तं वा स्यात् । यथा—द्विचत्वारिंशत् । द्वाचत्वारिंशत् । अष्टचत्वारिंशत् । अष्टाचत्वारिंशत् । त्रिचत्वारिंशत् त्रयश्चत्वारिंशत् । एवं पञ्चाशत् षष्टि सप्तति नवतिषु ॥

बहुव्रीहि समास और अशीति वर्जित चत्वारिंशत् आदि सङ्ख्यावाचक उत्तर पद परे होतो द्वि अष्टन् और त्रि शब्दको आकार तथा त्रय आदेश विकल्पसेहों ४९

हृदयस्यहृल्लेखयदण्लासेषु ॥ ५० ॥

हृ०स्य हृत्, ले०षु । हृदयस्य हृदादेशः स्यात् लेखादिषु परेषु यथा—हृदयं लिखतीति-हृल्लेखः । हृदयस्यप्रियम्--हृद्यम् । हृदयस्येदम्—हार्दम् हृदस्य लासः-हृल्लासः । लेखेत्यणन्तस्य ग्रहणम् । घञि तु हृदयलेखः ॥

लेख, यत्, अण तथा लास उत्तरपद परे होतो हृदय शब्द को हृत् आदेशहो ५०

वा शोकष्यञ्रोगेषु ॥ ५१ ॥

शोकष्यञ् रोगेषु परेषु हृदयस्य हृदादेशो वा स्यात् । यथा--हृच्छोकः।हृदयशोकः । सौहार्द्यम्।सौहृदय्यम् । हृद्रोगः । हृदयरोगः॥

शोक, ष्यञ् तथा रोग उत्तरपद परे होतो हृदय शब्द को विकल्पसे हृत् आदेशहो ५१

पादस्य पदाऽऽज्यातिगोपहतेषु ५२

पादस्य, पद, आँ० पु । एषूत्तरपदेषु पादस्य पदेति अदन्त आदेशः स्यात् । यथा—पादाभ्यामजतीति--पदाजिः । पदातिः । (अज्यातिभ्यां पादे च) ॥ इतीण् प्रत्ययः । अजेर्व्यभावो निपातनात् । पदगः । पदोपहतः । पदोपहतः ॥

आजि, आति ग और उपहत उत्तरपद परे हों तो पाद शब्द को पद आदेश हो

पद्यत्यतदर्थे ॥ ५३ ॥

पद्, यति, अं०र्थे । अतदर्थे यति परे पादस्य पत् स्यात् । यथा—पादौ विध्यन्ति--पद्याः शर्कराः । पद्याः कण्ठकाः॥(इके चरतावुपसङ्ख्यानम्) ॥ पादाभ्यां चरति—पदिकः । पर्पादित्वाद् ष्ठन् ॥

अतदर्थ यत्प्रत्यय परे हों तो पाद शब्द को पद् आदेश हो ॥ ५३ ॥

हिमकाषिहतिषु च ॥ ५४ ॥

एषूत्तरपदेषु पादस्य पत् स्यात्।यथा—पद्धिमम्।पत्काषी । पद्धतिः॥

हिम, काषिन और हति परे हों तो पाद शब्द को पद् आदेश हो ॥ ५४ ॥

ऋचः शे ॥ ५५ ॥

ऋचः पादस्य पत् स्याच्छे परे । यथा—गायत्रीं—पच्छः—शंसति। पादम्पादमित्यर्थः ॥

शकारादि प्रत्यय परे हो तो ऋक् सम्बन्धी पाद शब्द को पत् आदेश हो॥५५॥

वा घोषमिश्रशब्देषु ॥ ५६ ॥

एषूत्तरपदेषु पादस्यपद् वा स्यात् । यथा--पद्घोषः । पादघोषः । पन्मिश्रः, पादमिश्रः । पच्छब्दः। पादशब्दः।(निष्केचेति वाच्यम्) ॥ पन्निष्कः । पादनिष्कः ॥

घोष (शब्द) मिश्र तथा शब्द उत्तरपद परे होतो पाद शब्द को विकल्प से पद् आदेशहो ॥ ५६ ॥

उदकस्योदः संज्ञायाम् ॥५७॥

उ०स्य, उदः, स०म् । यथा--उदमेघः । उदवाहः । (उत्तरपदस्य चेति वाच्यम्)॥ क्षीरोदः । नीलोदः ॥

संज्ञा विषय में उत्तरपद परे होतो उदक शब्दको उद आदेशहो ॥ ५७ ॥

पेषंवासवाहनधिषु च ॥ ५८ ॥

एषूत्तर पदेषूदकस्योदः स्यात् । यथा--उदपेषं पिनष्टि (स्नेहने पिष इतिणमुल्) उदकस्यवासः--उदवासः । उदकस्य वाहनः--उदवाहनः । उदकं धीयते यस्मिन् स उदधिर्घटः ॥

पेषम्, वास, वाहन तथा धि उत्तरपद परे होंतो उदक शब्दको उदआदेशहो

एकहलादौ, पूरयितव्येऽन्यतरस्याम्॥

पूरयितव्ये हलादौ वोदकस्योदः स्यात् । यथा--उदकुम्भः । उदककुम्भः । उदपात्रम्। उदकपात्रम् ॥

पूरयितव्य वाचक एक हलादि उत्तरपद परे होतो उदक शब्दको विकल्प से उद आदेश हो ॥ ५९ ॥

मन्थौदनसक्तुविन्दुवज्रभारहारवविध गाहेषु च ॥ ६० ॥

एषूत्तर पदेषूदकस्योदो वाऽऽदेशः स्यात् । यथा–उदकेन मन्थः उदमन्थः । उदकमन्थः । उदकेनौदनः–उदौदनः । उदकौदनः । उदसक्तुः । उदकसक्तुः । उदकस्यविन्दुः–उदविन्दुः । उदकाविन्दुः । उदकस्यवज्रः– उदवज्रः । उदकवज्रः । उदकं विभर्त्तीति -उदभारः । उदकभारः । उदकं हरतीति– उदहारः । उदकहारः । उदकस्य वीवधः– उदवीवधः । उदकवीवधः । उदकं गाहत इति–उदगाहः । उदकगाहः ॥

मन्थ, ओदन, सक्तु, विन्दु, वज्र, भार, हार, वीवध (बैंगी) तथा गाह उत्तर पद परे होतो उदक शब्द को विकल्प से उद आदेश हो ॥ ६० ॥

इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य ॥ ६१ ॥

इकः, ह्रस्वः, अङ्यः, गा० स्य । इगन्तस्य अङ्यन्तस्य ह्रस्वो वा स्या दुत्तरपदे । यथा–ग्रामणिपुत्रः । ग्रामणीपुत्रः । ब्रह्मबन्धुपुत्रः । ब्रह्मबन्धू पुत्रः । (इयुवङ् भाविनामव्ययानां च नेति वाच्यम्) ॥ यथा–श्रीमदः । भ्रूभङ्गः । शुक्लीभावः ॥ (अ-भ्रुकुंसादीनामितिवक्तव्यम्) ॥ भ्रुकुंसः । भ्रुकुटिः । भ्रूकुंसः । भ्रूकुटिः । अकारोऽनेन विधीयत इति व्याख्यान्तरम् । भ्रकुंसः । भ्रकुटिः । भ्रुवा कुंसो भाषणं शोभा वा यस्यसः–स्त्रीवेष-धारी नर्तकः । भ्रुवः कुटिः–कौटिल्यम् ॥

उत्तरपद परे होतो अङ्यन्त इन्तको विकल्प से ह्रस्वहो ॥ ६१ ॥

एक तद्धिते च ॥ ६२॥

एकशब्दस्य ह्रस्वः स्यात्तद्धिते उत्तरपदे च । यथा--एकस्या आगतम्--एकरूप्यम् । उत्तरपदे । एकस्याः क्षीरम्--एकक्षीरम् ॥

तद्धित और उत्तरपद परे होतो एक शब्दको ह्रस्वादेश हो ॥ ६२ ॥

ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् ६३

ङ्यन्तस्याबन्तस्य च संज्ञा छन्दसोर्बहुलं ह्रस्वः स्यात् । यथा--अजक्षीरम् । रेवति पुत्रः । न च भवति । नान्दीकरः । छन्दसि । न च भवति । फाल्गुनी पौर्णमासी ॥

संज्ञा तथा छन्द विषय में ङ्यन्त तथा आबन्त को बहुलकरके ह्रस्वहो ६३

त्वे च ॥ ६४ ॥

त्वप्रत्यये परे ङ्यापोर्बहुलं ह्रस्वः स्यात् । यथा--अजायाभावः--अजत्वम् । अजात्वम् । रोहिण्याभावः--रोहिणित्वम् । रोहिणीत्वम् ॥

त्व प्रत्यय परे हो तो ङ्यन्त और आबन्त को बहुल करके ह्रस्व हो ॥ ६४ ॥

इष्टकेषीकामालानांचिततूलभारिषु ६५

चितादिषूत्तरपदेषु इष्टकादीनां यथासङ्ख्यं ह्रस्वः स्यात् । यथा--इष्टकचितम् । इषीकतूलम् । मालभारी ॥

चित, तूल तथा भारी उत्तरपदपरे होतो यथा सङ्ख्य इष्टका, इषीका और मालाको ह्रस्वा देश हो ॥ ६५ ॥

खित्यनव्ययस्य ॥ ६६ ॥

खिति, अ० स्य । खिदन्ते परेऽनव्ययस्य ह्रस्वः स्यात् । यथा—कालिंमन्या । हारिणिंमन्या ॥

खिदन्त उत्तरपद परे होतो अव्यय वर्जित इतर शब्द को ह्रस्वा देश हो ॥ ६६ ॥

अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ॥ ६७ ॥

खिदन्ते उत्तरपदे अव्ययवर्जितस्य अरुषो द्विषतः अजन्तस्य च मुमागमः स्यात् । यथा—अरुन्तुदः । द्विषन्तपः । कालिंमन्या ॥

खिदन्त उत्तरपद परे होतो अव्यय वर्जित अरुष् द्विषत् और अजन्तो को मुम का आगमहो ॥ ६७ ॥

इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च ॥ ६८ ॥

इचः, एकाचः, अम् ०प्र०वत्, च । इजन्तादेकाचोऽम् स्यात् स च स्वद्यम्वत् खिदन्ते पेर । यथा—(औतोम् शसोः) गाम्मन्यः । (वाम्शसोः) स्त्रियम्मन्यः, स्त्रीम्मन्यः । नृ- नरम्मन्यः । भ्रुवम्मन्यः श्रियमात्मानं मन्यतेश्रियम्मन्यं कुलम् । भाष्यकारवचनात् । श्रीशब्दस्य ह्रस्वो मुममो रभावश्च ॥

खिदन्त उत्तरपद परे होतो एकाच् इजन्त को मुम्का आगम हो और वह अम् प्रत्यय के सदृशहो ॥ ६८ ॥

वाचंयमपुरंदरौ च ॥ ६९ ॥

वाचंयम पुरन्दराविति निपात्येते । यथा- वाचंयमः--मौनव्रती, मितभाषी वा । पुरंदारयतीति--पुरंदरः ॥

वाचंयम् और पुरन्दर शब्द निपातितहैं ॥ ६९ ॥

कारे सत्यागदस्य ॥ ७० ॥

कारे उत्तरपदे सत्यस्य अगदस्यच मुमागमः स्यात् । यथा--सत्यंकरोतीति सत्यस्य वा कारः-सत्यंकारः । अगदंकारः ॥ (अस्तोः श्चेति वक्तव्यम्) ॥ अस्तुङ्कारः (धेनोर्भव्यायाम्) ॥ धेनुम्भव्या ॥ (लोकस्यपृणे) ॥ लोकम्पृणः । पृण इति-मूलविभुजादित्वात् कः (इत्येऽनभ्याशस्य) ॥ अनभ्याशमित्य । दूरतः परिहर्त्तव्य इत्यर्थः ॥ (भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे) ॥ भ्राष्ट्रमिन्धः । अग्निमिन्धः ॥ (गिलेऽगिलस्य) ॥ तिमिङ्गिलः ॥ (गिलगिले च) ॥ तिमिङ्गिलगिलः ॥ (उष्णभद्रयोः करणे) ॥ उष्णंकरणम् । भद्रंकरणम्

कार शब्द उत्तरपद परे होतो सत्य और अगद शब्द को मुमागम् हो ॥ ७० ॥

श्येनतिलस्य पाते ञे ॥ ७१ ॥

श्येन तिल--एतयो मुमागमः स्यात् ञ प्रत्यये परे पातशब्दे उत्तरपदे । यथा—श्येनपातोऽस्यां क्रीडायां वर्त्तते—श्यैनम्पाता—मृगया । तिलपातोऽस्यां वर्त्तते—तैलम्पाता ॥

ञ प्रत्यय परे होतो पातशब्द के उत्तर पद होने पर श्येन और तिल शब्दको मुम् का आगम हो ॥ ७१ ॥

रात्रेः कृति विभाषा ॥ ७२ ॥

रात्रेः कृदन्त उत्तरपदे मुमागमो वा स्यात् । यथा—रात्रिञ्चरः । रात्रिचरः । रात्रिमटः । रात्र्यटः ॥

कृदन्त उत्तरपद परे होतो रात्रि शब्दको विकल्प से मुम् का आगमहो ॥७२॥

नलोपोनञः ॥ ७३ ॥

नञो नस्य लोपः स्यादुत्तरपदे । यथा—न ब्राह्मणः—अब्राह्मणः ॥

उत्तर पद परे होतो नञ् के नकार का लोपहो ॥ ७३ ॥

तस्मान्नुडचि ॥ ७४ ॥

तस्मात्, नुट्, अचि । लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात् । यथा—अनश्वः । अनुष्ट्रः ॥

उस लुप्त नकार नञ् से परे अजादि उत्तरपद को नुट् का आगमहो ॥ ७४ ॥

नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या ॥ ७५ ॥

एषु नञ् प्रकृत्या स्यात् । यथा—न भ्राजत इति—नभ्राट् । भ्राजते क्विबन्तस्य नञ्समासः । न पातीति—नपात् । शत्रन्तः । न वेत्तीति-न वेदाः । इत्यसुन्नन्तः । सत्सु साधवः—सत्याः । नसत्याः—असत्याः । न असत्याः—नासत्याः । न मुञ्चतीति—नमुचिः । न कुलमस्य—नकुलः । नास्य खमस्तीति—नखम् । न स्त्री न पुमान् नपुंसकम् । नक्षरते क्षीयते वा—नक्षत्रम् । नक्रामतीति—नक्रः । नास्मिन्नकमिति—नाकम् ॥

नभ्राट्, नपात्, न वेदाः, नासत्या, नमुचि, नकुल, नख, नपुंसक, नक्षत्र, नक्र तथा नाक शब्दों में नञ् प्रकृति से रहे ॥ ७५ ॥

एकादिश्चैकस्य चादुक् ॥ ७६ ॥

एकादिः, च, एकस्य, च, आदुक् । एकादिर्नञ् प्रकृत्या स्यात् । एक शब्दस्यादुगागमः । नञो विंशत्या समासे कृते एकशब्देन

सह (तृतीया) इति योगविभागात् समासः । अनुनासिक विकल्पः । यथा—एकेन न विंशतिः—एकान्नविंशतिः । एकाद्नविंशतिः । एकोनविंशतिरित्यर्थः ॥

एकशब्द जिस के आदि में हो ऐसा नञ् प्रकृति से रहे और एक शब्द को आदुक् का आगम हो ॥ ७६ ॥

नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् ॥ ७७ ॥

नगः, अ०षु, अ०म् । नग इत्यत्र नञ् प्रकृत्या वा स्यात् । यथा—नगाः, अगाः—पर्वताः । नगाः, अगाः—वृक्षाः ॥

प्राणिवर्जित उत्तरपद परे हों तो नगका नञ् विकल्प से प्रकृति से रहे ॥ ७७ ॥

सहस्य सः संज्ञायाम् ॥ ७८ ॥

संज्ञायां विषये सहस्य सः स्यादुत्तरपदे । यथा—सपलाशम् । सशिंशपम् ॥

संज्ञाविषय में सहशब्द को स आदेश हो उत्तरपद परे होतो ॥ ७८ ॥

ग्रन्थान्ताधिके च ॥ ७९ ॥

अनयोः परयोः सहस्य सः स्यादुत्तरपदे । यथा—ससंग्रहं व्याकरणमधीते । सद्रोणाखारी ॥

ग्रन्थ तथा अधिक अर्थमें वर्त्तमान सह शब्द को स आदेश हो ॥ ७९ ॥

द्वितीये चाऽनुपाख्ये ॥ ८० ॥

अनुमेये द्वितीये सहस्य सः स्यात् । यथा—साग्निः कपोतः ॥

परोक्षार्थ बोधक द्वितीय परे होतो सह शब्द को स आदेश हो ॥ ८० ॥

अव्ययीभावे चाऽकाले ॥ ८१ ॥

अकालेऽव्ययीभावे सहस्य सः स्यात् । यथा-सचक्रम् ॥
कालवाचक से भिन्न उत्तरपद परे होतो अव्ययीभाव समास में सह शब्द को स आदेश हो ॥ ८१ ॥

वोपसर्जनस्य ॥ ८२ ॥

वा० उ० स्य । बहुव्रीह्यवयवस्य सहस्य सः वा स्यात् । यथा-पुत्रेण सह-सपुत्रः, सहपुत्रो वा, आगतः ॥
बहुव्रीहि अवयव वाचक सह शब्द को विकल्प से स आदेश हो ॥ ८२ ॥

प्रकृत्याऽऽशिषि ॥ ८३ ॥

आशिषि विशेषे सहशब्दः प्रकृत्या स्यात् । यथा स्वस्ति राज्ञे सह पुत्राय । सहाऽमात्याय ॥ (अगोवत्सहलेष्विति वाच्यम्)॥ सगवे । सवत्साय । सहलाय ॥
आशीर्वाद विषय में सहशब्द प्रकृति से रहे ॥ ८३ ॥

समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु ८४

स० स्य, छं० सि, अं० षु । छन्दसि विषये मूर्द्धादि वर्जितेषु उत्तरपदे समानस्य सः स्यात्-यथा--अनुसखा--सयूथ्यः । योनः स-नुत्यः-तत्रभव इत्यर्थे (सगर्भ सयूथ सनुताद्यत्)॥
छन्द विषय में मूर्द्धादि गणपठित तथा उदर्क से भिन्न उत्तरपद परे होतो समान शब्द को सकारादेश हो ॥ ८४ ॥

ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्र रूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु ८५

एषु द्वादशसूत्तरपदेषु समानस्य सस्स्यात् । यथा- सज्योतिः । सजनपदः । सरात्रिः । सनाभिः । सनामा । सगोत्रः । सरूपः । सस्थानः । सवर्णः । सवयाः । सवचनः । सबन्धुः ॥

ज्योतिस् आदि उत्तरपद परे होतो सह शब्दको सकारादेशहो ॥ ८५ ॥

चरणे ब्रह्मचारिणि ॥ ८६ ॥

चरणे समानत्वेनगम्ये ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे समानस्य सः स्यात्। चरणः--शाखा । ब्रह्म—वेदः । तदध्ययनार्थं व्रतमपि—ब्रह्म । तच्चरतीति—ब्रह्मचारी । यथा—समानो ब्रह्मचारी—सब्रह्मचारी ॥

चरण गम्य मानहो तथा ब्रह्मचारिन् शब्द भी परे होतो समान शब्द को सकारादेश हो ॥ ८६ ॥

तीर्थे ये ॥ ८७ ॥

तीर्थे उत्तरपदे यादौ प्रत्यये विवक्षिते समानस्य सः स्यात् । यथा--सतीर्थ्यः--एकगुरुक इत्यर्थः । (समानतीर्थे वासी)इतियत्॥

यत् प्रत्ययान्त तीर्थ उत्तरपद परे होतो समानशब्द को सकारादेशहो ॥ ८७ ॥

विभाषोदरे ॥ ८८ ॥

विभाषा, उँ० रे। यादौ प्रत्यये विवक्षिते समानस्य वा सः स्यात्। यथा--सोदर्यः । समानोदर्यः । समानोदरे शयित इतियत ॥

यत् प्रत्ययान्त उदर शब्द परे होतो समान शब्द को विकल्प से सकारादेशहो

दृग्दृशवतुषु ॥ ८९ ॥

एषुपरेषु समानस्य सः स्यात् । यथा--सदृक् । सदृशः ॥ (दृक्षेचेति वक्तव्यम्)॥ सदृक्षः । वतुरुत्तरार्थः॥

दृक्, दृश तथा वतु प्रत्यय परे होंतो समान शब्द को सकारा देशहो ॥ ८९ ॥

इदंकिमोरीश्की ॥ ९० ॥

दृक्दृशवतुषु परेषु इदम ईश्, किमः की, स्यात्। यथा—ईदृक्। ईदृशः। इयान्। कीदृक्। कीदृशः। कियान्। किमिदंभ्यां वोघइति वतुप्। (दृक्षे चेतिवक्तव्यम्)॥ ईदृक्षः। कीदृक्षः ॥

दृक् दृशयथा वतु प्रत्यय परे होंतो इदम् और किम् शब्द को याथाक्रम ईश और की आदेशहो ॥ ९० ॥

आसर्वनाम्नः ॥ ९१ ॥

सर्वनाम्न आकारादेशः स्याद् दृक्दृशवतुषु । यथा- तादृक् । तादृशः । तावान् । यादृक् । यादृशः । यावान् ॥ (दृक्षे च) ॥ तादृक्षः । यादृक्षः ॥

दृक् दृश तथा वतु प्रत्यय परे होंतो सर्वनाम को आकारादेशहो ॥ ९१ ॥

विष्वग्देवयोश्चटेरद्र्यञ्चतौवप्रत्यये ९२

वि०योः, च, टेः, अद्रि, अ० तौ, व०ये। विष्वग्देवयोः, सर्वनाम्नश्चटेरद्र्यादेशः स्याद् वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे। यथा-विष्वगञ्चतीति- विष्वद्र्यङ्। देवद्र्यङ्। सर्वनाम्नः। तद्र्यङ्। यद्र्यङ् ॥

वप्रत्ययान्त आञ्चति उत्तरपद परे होतो विष्वक्, देव तथा सर्वनाम के टिको अद्रि आदेश हो ॥ ९२ ॥

समः समि ॥ ९३ ॥

व प्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे समः सम्यादेशः स्यात्। यथा—सम्यक्। सम्यञ्चौ। सम्यञ्चः ॥

वप्रत्ययान्त अञ्चति परे होतो सम् को समि आदेश हो ॥ ९३ ॥

तिरसस्तिर्यलोपे ॥ ९४ ॥

तिरसः, तिरि, अलोपे । अलुप्ताऽकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्तेपरे तिरसस्तिर्यादेशः स्यात् । यथा--तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिर्यञ्चः ॥

वप्रत्ययान्त अञ्चति उत्तरपद परे होतो अलोप विषय में तिरस् शब्द को तिरि आदेश हो ॥ ९४ ॥

सहस्य सध्रिः ॥ ९५ ॥

वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे सहस्य सध्रिः स्यात् । यथा-सध्र्यङ् । सध्र्यञ्चौ । सध्र्यञ्चः ॥

वप्रत्ययान्त अञ्चति उत्तरपद परे होतो सह को सध्रि आदेश हो ॥ ९५ ॥

सधमादस्थयोश्छन्दसि ॥ ९६ ॥

छन्दसि विषये एतयोरुत्तरपदयोः सहस्य सध आदेशः स्यात् । यथा--सोमः सधस्थम् । इन्द्रत्वास्मिन्त्सधमादे ॥

छन्द विषय में माद तथा स्थ उत्तरपद परे होतो सह शब्दको सध आदेशहो ९६

द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् ॥ ९७ ॥

अप इति कृतसमासान्तस्यानुकरणम् । षष्ठ्यर्थे प्रथमा । एभ्योऽपस्य चेत् स्यात् । यथा--द्विगता आपो यस्मिन्निति-द्वीपम् । आन्तरीयम् । प्रतीपम् । समीपम् । समापोदेवयजनम्, इति तु समा आपो यस्मिन्निति बोध्यम् । (अवर्णान्ताद् वा) प्रेपम् । परेपम् प्रापम् । परापम् ॥

द्वि, अन्तर और उपसर्ग से परे तथा अप् शब्द को ईकारादेश हो ॥ ९७ ॥

ऊदनोर्देशे ॥ ९८ ॥

उत्, अनोः, देशे । अनोः परस्य–अपस्य ऊत् स्याद् देशाभिधाने । यथा--अनूपो--देशः ॥

देश अर्थ में अनु से परे अप शब्द को ऊकारादेश हो ॥ ९८ ॥

अषष्ठ्यतृतीयास्थस्याऽन्यस्यदुगाशीराशास्थाऽऽस्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ॥ ९९ ॥

अ० स्थं, अन्यस्य, दुक्, आ०षु । अन्यशब्दस्य दुगागमः स्यादाशीरादिषु परेषु । यथा –अन्यदाशीः । अन्यदाशा । अन्यदास्था । अन्यदास्थितः । अन्यदुत्सुकः । अन्यदूतिः । अन्यत्कारकः । अन्यद्रागः । अन्यदीयः ॥

आशिष, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति, कारक, राग और छ प्रत्यय परे हों तो अषष्ठीस्थ तथा अतृतीयास्थ अन्य शब्द को दुक् का आगम हो ॥ ९९ ॥

अर्थे विभाषा ॥ १०० ॥

अर्थे शब्दे परे अन्यस्य वा दुगागमः स्यात् । यथा--अन्यदर्थः । अन्यार्थः ॥

अर्थ शब्द उत्तरपद परे हो तो अन्य शब्द को विकल्प से दुक् आगम हो १००

कोः कत् तत्पुरुषेऽचि ॥ १०१ ॥

अजादावुत्तरपदे कु इत्येतस्य कत् स्यात् तत्पुरुषे समासे ।

यथा—कुत्सितोऽश्वः—कदश्वः।कदन्नम्।(त्रौच)कुत्सिता त्रयः कत्त्रयः॥
तत्पुरुष समास में अजादि उत्तरपद परे होतो कु शब्दको कत् आदेशहो १०१

रथवदयोश्च ॥ १०२ ॥

एतयोरुत्तरपदयोः कोः कदादेशः स्यात् । यथा—कद्रथः।कद्वदः॥
रथ और वद उत्तरपद परे होतो कुशब्द को कत् आदेशहो ॥१०२॥

तृणे च जातौ ॥ १०३ ॥

तृणे उत्तरपदे जातौ चाभिधेयायां कोः कदादेशः स्यात् । यथा—कत्तृणम् ॥
जाति अभिधेय हो और तृण उत्तरपद परे होतो कु शब्दको कत् आदेशहो ॥

का पथ्यक्षयोः ॥ १०४ ॥

अनयोरुत्तरपदयो कोः काऽऽदेशःस्यात्।यथा—कापथः।काक्षः॥
पथिन् तथा अक्ष उत्तरपद परे होतो कु शब्दको का आदेशहो ॥ १०४ ॥

ईषदर्थे ॥ १०५ ॥

ईषद् ,अर्थे । ईषदर्थे वर्त्तमानस्य । कोः काऽऽदेशः स्यात् । यथा—ईषज्जलम्—काजलम्।कामधुरम्।अजादावपि परत्वात् कादेशः-काम्लः॥
ईषद् (कुछ) अर्थ में वर्त्तमान कु शब्दको का आदेशहो ॥ १०५ ॥

विभाषा पुरुषे ॥ १०६ ॥

पुरुषशब्द उत्तरपदे कोःका वादेशःस्यात्।यथा—कापुरुषः।कुपुरुषः
पुरुष उत्तरपद परे होतो कु शब्दको विकल्प से का आदेशहो ॥ १०६ ॥

कवञ्चोष्णे ॥ १०७ ॥

कवङ्, च, ऊँष्णे।उष्णशब्दे उत्तरपदे कोः कवं काच वा स्यात्। यथा—कवोष्णम्। कोष्णम्। कदुष्णम् ॥

उष्ण उत्तर पद परे होतो कु शब्दको कवङ् तथा का विकल्प से आदेश हो। १०७

पथि च च्छन्दसि ॥१०८॥

छन्दसि विषये पथि उत्तरपदे कोः कवं काच वा स्यात्। यथा-कवपथः। कापथः। कुपथः ॥

छन्द विषय में पथिन् शब्द उत्तर पद परे होतो कु शब्द को कवङ् तथा का आदेश विकल्प से हो ॥ १०८ ॥

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ॥ १०९ ॥

पृषोदर प्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनिस्युः। यथा—पृषद् उदरंपृषोदरम्—त लोपः। वारिवाहको—बलाहकः—पूर्वपदस्य वः, उत्तरपदा देश्च लत्वम् ॥

पृषोदरादि गणपठित शिष्ट यथोपदिष्ट निपातित हैं ॥ १०९ ॥

सङ्ख्याविसायपूर्वस्या ह्नस्याहनन्यतरस्यां ङौ ॥ ११० ॥

सङ्० स्यं, अह्नस्य, अहन्, अ० म्, ङौ। सङ्ख्यादि पूर्वस्या ह्न स्याहनादेशो वा स्यात् ङौ परे। यथा—द्व्यह्नि। द्व्यहनि। द्व्यह्ने। व्यगतमहः-व्यह्नः-व्यह्नि। व्यहनि। व्यह्ने। सायमह्नः-सायाह्नः। सायाह्नि। सायाहनि। सायाह्ने ॥

ङि विभक्ति परे होतो सङ्ख्यादि तथा साय पूर्व हैं जिसके ऐसे अह्न शब्द के स्थान में विकल्प से अहन् आदेश हो ॥ ११० ॥

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ १११ ॥

ढकार रेफयोर्लोपो यस्मिन् सढ्रलोपः—तत्र पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात्। यथा—लीढम् । मीढम् । पुनारमते । अग्नीरथः ॥

लोप निमित्त ढ और रेफ परे होतो पूर्व अण् को दीर्घ हो ॥ १११ ॥

सहिवहोरोदवर्णस्य ॥ ११२ ॥

स० हो ः, ओ त्, अ० स्य । ढ्रलोपे सति अनयोरवर्णस्य ओत् स्यात् । यथा—सोढा। सोढुम्। सोढव्यम्। वोढा। वोढुम्। वोढव्यम् ।

लोप निमित्त ढकार तथा रेफ परे होतो सह और वह के अवर्ण को ओकारादेश हो ॥ ११२ ॥

साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे ॥ ११३ ॥

साढ्यै, साढ्वा, साढा, इति, निगमे । इमे शब्दा निगमे निपात्यन्ते । साढ्यै समन्तात् । साढ्वा शत्रून् । सहेः क्त्वा प्रत्यये ओत्वाभावः । पक्षे क्त्वाप्रत्ययस्य ध्वोभावः । साढेति तृचिरूपम् ॥

निगम (वेद) विषय में साढ्यादि शब्द निपातित हैं ॥ ११३ ॥

संहितायाम् ॥ ११४ ॥

अधिकारोऽयम् । ड्यचो तस्तिङ इति यावत् ॥

इसके आगे (६ । ३ । १३५) सूत्र तक जो कथन किया जावगा वह संहिता में होगा यह अधिकार है ॥ ११४ ॥

कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्ट पञ्चमणिभिन्न छिन्नाच्छिद्र स्रुव स्वस्ति कस्य ॥ ११५ ॥

कर्णशब्दे परे लक्षणवाचकस्य दीर्घः स्याद् विष्टादीन् विहाय यथा-द्विगुणाकर्णः। त्रिगुणाकर्णः ॥

कर्ण शब्द उत्तरपद परे होतो विष्ट, अष्टन्, पञ्चन्, मणि, भिन्न, छिन्न, छिद्र, स्रुव और स्वस्तिक को छोड़कर लक्षण वाचकको दीर्घहो ॥ ११५ ॥

नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ॥

एषु क्विबन्तेषु परेषु पूर्वपदस्य दीर्घः स्यात्। यथा-उपानत्। नीवृत्। प्रावृट्। मर्मावित्। नीरुक्। ऋतीषट्। तरीतट् ॥

नहि, वृत्ति, वृषि, व्यधि, रुचि, सहि, तथा तनि क्विप् प्रत्ययान्त उत्तरपद परे होतो पूर्वपदको दीर्घहो ॥ ११६ ॥

वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम् ॥ ११७ ॥

संज्ञायां विषये कोटरादीनां वने परे किंशुलुकादीनां गिरौ परे दीर्घः स्यात्। यथा-कोटरावणम्। मिश्रकावणम्। सिध्रकावणम्। सारिकावणम्। गिरौ। किंशुलुकागिरिः। अञ्जनागिरिः ॥

संज्ञा विषय में वन तथा गिरिपरे होतो यथाक्रम कोटरादि तथा किंशुलुकादि गणपठित शब्दों को दीर्घहो ॥ ११७ ॥

वले ॥ ११८ ॥

संज्ञायां विषये वलप्रत्ययपरे पूर्वस्य दीर्घः स्यात्। यथा-कृषीवलः ॥

संज्ञा विषय में वलप्रत्यय परे होतो पूर्वको दीर्घहो ॥ ११८ ॥

मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ॥ ११९ ॥

संज्ञायां विषये मतौ परे बह्वचोऽजिरादि वर्जितस्य दीर्घः स्यात्। यथा- उदुम्बरावती । अमरावती ॥

संज्ञा विषय में मतुप् प्रत्ययपरे होतो अजरादि गणपठित वर्जित बह्वचको दीर्घहो ॥

शरादीनां च ॥ १२० ॥

संज्ञायां विषयेशरादीनां च मतौदीर्घः स्यात्। शरावती । वंशावती।

संज्ञा विषय में मतुप् प्रत्यय परे होतो दीर्घहो ॥ १२० ॥

इको वहेऽपीलोः ॥ १२१ ॥

इकः, वहे, अपीलोः । पीलु वर्जि तस्येगन्तस्य दीर्घः स्याद् वहे । ऋषीवहम् । कपीवहम् । (अपील्वादीनामिति वाच्यम्) तेनेहनो । दारुवहम् ॥

वह उत्तरपद परे होतो पीलु वर्जित इगन्त पूर्व पद को दीर्घहो ॥ १२१ ॥

उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् १२२

उ०स्य, घञि, अ०ष्ये, ब०म् । घञन्ते परे उपसर्गस्य बहुलं दीर्घः स्यात, न मनुष्ये । यथा—परीपाकः । परिपाकः ॥

घञन्त परे होतो उपसर्ग को बहुल करके दीर्घ हो मनुष्य परे होतो नहो १२२

इकः काशे ॥ १२३ ॥

उपसर्गस्येगन्तस्य दीर्घः स्यात् काशे । यथा—वीकाशः । नीकाशः । अनूकाशः ॥

काश उत्तरपदपरे होतो इगन्त उपसर्गको दीर्घहो ॥ १२३ ॥

दस्ति ॥ १२४ ॥

दः, तिँ । इगन्तस्योपसर्गस्य दीर्घस्स्याद् दादेशो यस्तकारस्त दादावुत्तरपदे । (खरिच)-इति चर्त्वमाश्रयात् सिद्धम् । यथा-नीत्तम् । वीत्तम् । परीत्तम् ॥

दा धातु के स्थान में हुआ त् परे होतो इगन्त उपसर्ग को दीर्घ हो ॥ १२४ ॥

अष्टनः सञ्ज्ञायाम् ॥ १२५ ॥

संज्ञायां विषयेऽष्टनो दीर्घः स्यात् । यथा-अष्टावक्रः । अष्टापदम् ॥

संज्ञाविषय में उत्तरपद परे होतो अष्टन् शब्द को दीर्घादेश हो ॥ १२५ ॥

छन्दसिँ चँ ॥ १२६ ॥

छन्दसिचाऽष्टनो दीर्घः स्यात् । यथा-अष्टापदी ॥

उत्तर पदपरे होतो छन्दो विषय में भी अष्टन् शब्द को दीर्घा देश हो ॥१२६॥

चितेः कपिँ ॥ १२७ ॥

कपि परेचितेर्दीर्घः स्यात् । यथा-एकचितीकः ॥

कप् प्रत्यय परे होतो चिति शब्द को दीर्घादेश हो ॥ १२७ ॥

विश्वस्य वसुराटोः ॥ १२८ ॥

वसुराटोः परयोः विश्वशब्दस्य दीर्घः स्यात् । यथा-विश्वावसुः । विश्वाराट् ॥

वसु तथा राट् परे होता विश्व शब्द को दीर्घादेश हो ॥ १२८ ॥

नरे संज्ञायाम् ॥ १२९ ॥

संज्ञायां विषये नरे परे विश्वस्य दीर्घः स्यात्। यथा-विश्वानरः॥
नर शब्दपरे होतो संज्ञा विषयमें विश्व शब्दको दीर्घादेशहो ॥ १२९ ॥

मित्रे चर्षौ ॥ १३० ॥

मित्रे चोत्तरपदे ऋषावभिधेये विश्वस्य दीर्घः स्यात्। यथा--विश्वामित्रः॥
मित्र शब्द उत्तरपद परे होतो ऋषि वाच्य होने पर विश्वशब्दको दीर्घादेशहो १३०

मन्त्रेसोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ

एषां दीर्घः स्यान्मन्त्रे,मतौपरे। यथा-सोमावती। अश्वावती। इन्द्रियावती। विश्वदेव्यावती॥
मन्त्र विषय में मतुप् प्रत्ययपरे होतो सोम, अश्व, इन्द्रिय और विश्वदेव्य शब्द को दीर्घादेश हो ॥ १३१ ॥

ओषधेश्चविभक्तावप्रथमायाम्॥१३२॥

ओषधेः, च, वि० तौ, अ० म्। ओषधीशब्दस्य विभक्तावप्रथमायां परतो दीर्घः स्यान्मन्त्रे। यथा-ओषधीषु। ओषधीभ्यः॥
प्रथमा वर्जित विभक्ति परे होतो ओषधि शब्द को दीर्घादेशहो ॥ १३२ ॥

ऋचितुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् १३३

ऋचि विषये एषां दीर्घः स्यात्। यथा-आतूनइन्द्र। नूमर्तः। उतवा घा स्यालात्। मक्षूगोमन्तमीमहे। भरता जातवेदसम्। तंगितिथा देशस्य डित्वपक्षे अ णम्। कूमनः। अत्रागोः। उरूष्याणः॥
ऋग्वेद विषय में तु, नु, घ, मक्षु, तङ्, कु, त्र और उरुष्य शब्दको दीर्घादेशहो

इकः सुञि ॥ १३४ ॥

मन्त्रे इगन्तस्य सुञि परे दीर्घः स्यात् । यथा-अभीषुणः सखीनाम् । सुञ इति षः । नश्च धातुस्थोरुषुभ्य इतिणः ॥

सुञ (निपात) परेहो तो ऋचा विषय में इगन्त को दीर्घ हो ॥ १३४ ॥

द्व्यचोऽतस्तिङः ॥ १३५ ॥

द्व्यचः अतः, तिङः । ऋग्विषये द्व्यचस्तिङन्तस्यातो दीर्घः स्यात् । यथा--विद्मा हित्वा सत्पतिं शरणोनाम ॥

ऋचा विषय में द्व्यच् तिङन्त के अकार को दीर्घादेश हो ॥ १३५ ॥

निपातस्य च ॥ १३६ ॥

ऋग्विषये निपातस्य च दीर्घः स्यात् । यथा--एवाते । अच्छाते

ऋग्विषय में निपात को दीर्घ हो ॥ १३६ ॥

अन्येषामपि दृश्यते ॥ १३७ ॥

अ० मे, अपि, दृ० ते । अन्येषामपि दीर्घो दृश्यते स शिष्टप्रयोगा दनु गन्तव्यः । यत्र दीर्घत्वं नविहितं दृश्यते च तत्राऽनेन गृहीतव्योमीत । यथा-केशाकेशि । दण्डादण्डि । मुष्टी मुष्टि । पूरुषः । श्वापदः ॥

दीर्घ विधान से भिन्न इतरों को भी दीर्घ देखा जाता है ॥ १३७ ॥

चौ ॥ १३८ ॥

चौ परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात् । यथा-दधीचः पश्यामधूचः मधूचे ॥

अञ्चति का अकार परे होतो पूर्वपद को दीर्घादेश हो ॥ १३८ ॥

सम्प्रसारणस्य ॥ १३९ ॥

अस्य दीर्घः स्यात् । यथा—कारीष गन्धीपुत्रः ॥
उत्तरपद परे होतो सम्प्रसारणान्त पूर्वपद को दीर्घ हो ॥ १३९ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अङ्गस्य ॥ १ ॥

अधिकारोऽयमासप्तमाऽध्याय परिसमाप्तेः ॥
इस के आगे जो कुछ कथन किया जायगा वह अंग को हो यह अधिकार सप्तमाध्याय की समाप्ति पर्यन्त जानना चाहिये ॥ १ ॥

हलः ॥ २ ॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत् सम्प्रसारणं तदन्तस्याङ्गस्य दीर्घः । स्यात् । यथा—हूतः । जीनः ॥
अङ्गावयव हल् से परे सम्प्रसारण अंग को दीर्घादेश हो ॥ २ ॥

नामि ॥ ३ ॥

नामि परेऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घःस्यात् । यथा—बालानाम् । अग्नीनाम् । वायूनाम् । कर्तॄणाम् ॥
नाम् (नुट् सहित आम्) परे होतो अङ्ग को दीर्घादेश हो ॥ ३ ॥

नतिसृचतसृ ॥ ४ ॥

अनयोर्नामि दीर्घो न स्यात् । यथा—तिसृणाम् । चतसृणाम् ॥
नाम परे होतो तिसृ और चतसृ अङ्गों को दीर्घादेश न हो ॥ ४ ॥

छन्दस्युभयथा ॥ ५ ॥

छं०सि, उ०था । छन्दसि विषये तिसृ चतसोर्नामि दीर्घो वा स्यात् । यथा-तिसृणाम् । तिसॄणाम् । चतसृणाम् । चतसॄणाम् ॥

छन्दो विषय में नाम् परे होतो तिसृ तथा चतसृ अङ्गों को विकल्प से दीर्घ हो ॥

नृ च ॥ ६ ॥

नृ इत्यस्य नामि दीर्घो वा स्यात् । यथा-नृणाम् । नॄणाम् ॥

नाम् परे होतो नृ शब्द को विकल्प से दीर्घादेश हो ॥ ६ ॥

नोपधायाः ॥ ७ ॥

नान्तस्याऽङ्गस्योपधाया दीर्घः स्यान्नामि परे । यथा-पञ्चानाम् । सप्तानाम् । अष्टानाम् । नवानाम् । दशानाम् ॥

नाम् परे होतो नान्त अङ्ग की उपधाको दीर्घादेश हो ॥ ७ ॥

सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ ॥ ८ ॥

नान्तस्याङ्गस्योपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने च परे यथा-राजा । राजानौ । राजानः । राजानम् । राजानौ । सामानि सन्ति । सामानिपश्य ॥

सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान परे होतो नान्त अङ्गकी उपधाको दीर्घ देशहो ८

वा षपूर्वस्य निगमे ॥ ९ ॥

निगमे षपूर्वस्याचो नोपधाया वा दीर्घस्यादसम्बुद्धौ सर्वनाम स्थाने परे । यथा-तक्षाणम् । तक्षणं ॥

सम्बुद्धि वर्जित सर्वनाम स्थान परे होतो षकार है पूर्व जिसके ऐसे नान्त अङ्ग की उपधा को विकल्प से दीर्घा देशहो ॥ ९ ॥

सान्तमहतः संयोगस्य ॥ १० ॥

सान्त संयोगस्य महतश्च यो नकारस्तयोपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सर्वनाम स्थाने परे । यथा—श्रेयान् । श्रेयांसौ । श्रेयांसः । श्रेयांसम् । श्रेयांसौ । श्रेयांसि । यशांसि । महतः । महान् । महान्तौ । महान्तः । महान्तम् । महान्तौ ॥

सम्बुद्धि वर्जित सर्वनाम स्थान परे होतो सान्त संयोग और महत् शब्द की उपधाको दीर्घादेशहो ॥ १० ॥

अप्तृन् तृच् स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ॥ ११ ॥

एषामुपधाया दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सर्वनाम स्थाने परे । यथा—आपः सन्ति । तृन् । कर्त्ता , कर्त्तारौ, कर्त्तारः—कटान् । तृच् । कर्त्ता, कर्त्तारौ, कर्त्तारः—कटस्य । स्वरेविशेषः । स्वसृ । स्वसा । स्वसारौ । स्वसारः । स्वसारम् । स्वसारौ । नप्तृ । नप्ता । नप्तारौ । नप्तारः । नप्तारम् । नप्तारौ । नेष्टृ । नेष्टा । नेष्टारौ । नेष्टारः । त्वष्टृ । त्वष्टा । त्वष्टारौ । त्वष्टारः । क्षत्तृ । क्षत्ता । क्षत्तारौ । क्षत्तारः । होतृ । होता । होतारौ । होतारः । पोतृ । पोता । पोतारौ । पोतारः । प्रशास्तृ । प्रशास्ता । प्रशास्तारौ । प्रशास्तारः ॥

सम्बुद्धि वर्जित सर्वनाम स्थान परे होतो अप् तृन्नन्त,तृजन्त, स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ और प्रशास्तृ अङ्गों की उपधा को दीर्घादेशहो ॥ ११ ॥

इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ॥ १२ ॥

एषामन्तानामङ्गाना मुपधाया दीर्घः स्याच्छौ परे। यथा—बहुदण्डीनि। बहुवृत्रहाणि। बहुपूषाणि। बह्वर्यमाणि॥

शि परे होते इन्, हन्, पूषन् तथा अर्यमन्नान्त अङ्गों की उपधाको दीर्घादेश हो॥

सौ च ॥ १३ ॥

इन्नादीना मुपधाया दीर्घः स्याद सम्बुद्धौ सौ परे। यथा—धनी। वृत्रहा। पूषा। अर्य्यमा॥

सम्बुद्धि वर्जित सु परे होते भी इन् हन् पूषन् तथा अर्यमन् अङ्गों की उपधाको दीर्घादेश हो॥ १३॥

अत्वसन्तस्य चाऽधातोः ॥ १४ ॥

धातुभिन्नस्याऽत्वसन्तस्य चाऽसम्बुद्धौ सौ परे दीर्घः स्यात्। यथा—भवान्। कृतवान्। असन्तस्य। सुपयाः। सुयशाः॥

सम्बुद्धि वर्जित सु परे होने धातु वर्जित अत्वन्त और असन्त अङ्गों की उपधा को दीर्घादेश हो॥ १४॥

अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति १५

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति परे। यथा—प्रशान्। शान्तिः। शंशान्तः यङ्लुगन्तादयं तस्॥

क्विप् और झलादि कित् तथा। ङित् प्रत्यय परे होते अनुनासिकान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घादेश हो॥ १५॥

अज्झनगमां सनि ॥ १६ ॥

अजन्ता नां हन्तेः अजादेश गमेश्च दीर्घः स्याज् झलादौ सनि परे। यथा—चिकीर्षति। जिघांसति। अधिजिगांसते—पठितुमिच्छतीत्यर्थः॥

झल्आदि सन् परे होते। अजन्त हन् तथा इङ् धातु के स्थान में आदेश हुए गमि अङ्ग को दीर्घहो ॥ १६ ॥

तनोतेर्विभाषा ॥ १७ ॥

ते०तेः, वि०षा । तनोतेरङ्गस्योपधाया दीर्घो वा स्याज् झलादौ सनिपरे । यथा–तितांसति । तितंसति । तितनिषति ॥

झलादि सन् प्रत्ययपरे होतो तनोति अङ्गकी उपधाको दीर्घादेशहो ॥ १७ ॥

क्रमश्चक्त्वि ॥ १८ ॥

क्रमः, च, क्त्वि । क्रम उपधाया दीर्घो वा स्याज् झलादौ क्त्वि परे । यथा–क्रान्त्वा । क्रन्त्वा । झलिकिम् । क्रमित्वा ॥

झलादि क्त्वा प्रत्यय परे हो तो क्रम अङ्गकी उपधाको विकल्पसे दीर्घादेशहो॥

च्छ्वोःशूडनुनासिके च ॥ १९ ॥

च्छ्वोः, शूट्,अ०के,च । सतुकस्य छस्य वस्य च क्रमात्-श ऊठ् इ-मावादेशौ स्यातामनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति । यथा–प्रश्नः । स्योनः । सिवेरौणादिके नप्रत्यये लघुपधगुणात् पूर्वमूट् क्रियते । क्वौछस्य । शब्दप्राट् । वकारस्याअक्षद्यूः । झलादौ छस्य पृष्टः । पृष्टवान् । पृष्टा । वकारस्य । द्यूतः । द्यूतवान् । द्यूत्वा ॥

अनुनासिक, क्विप् और झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे होतो तुक सहित छकार तथा वकार के स्थानमें क्रमसे श और ऊठ् आदेशहों ॥ १९ ॥

ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च २०

ज्व० मः, उप०याः, च । ज्वरादीनामुपधावकारयोरूठ स्यात्, क्वौ, झलादावनुनासिकादौ च प्रत्यपरे । यथा–जूः । जुरौ । जुरः । जूर्त्तिः । तूः । तुरौ।तुरः।तूर्त्तिः। स्रूः । स्रुवौ । स्रुवः । स्रूतः । स्रूतवान् ।

स्रूतिः।ऊः। उवौ।उवः।ऊतिः। मूः। मुवौ। मुवः। मूतः। मूतवान्। मूतिः॥

क्वि और झलादि अनुनासिकादि प्रत्ययपरे होंतो ज्वर, त्वर, स्रिवि, अव और मव अङ्गकी उपधा तथा वकार के स्थान में ऊठ् आदेश हो ॥ २० ॥

राल्लोपः ॥ २१ ॥

रात्, लोपः। रेफात् परयोश्छ्वोर्लोपः स्यात् क्वौ, झलादावनुनासिके च प्रत्ययेपरे। यथा—मूर्छा। मूः, मुरौ, मुरः। मूर्त्तः, मूर्त्तवान्। मूर्त्तिः। वकारस्य। तूः, तुरौ, तुरः। तूर्णः, तूर्णवान।तूर्त्तिः॥

क्विप् और झलादि अनुनासिक प्रत्यय परे होंतो रेफ से परे छकार तथा वकार का लोप हो ॥ २१ ॥

असिद्धवदत्राऽऽभात् ॥ २२ ॥

असिद्धवत्, अत्र, आभात्। अधिकारोऽयम् ॥

इस पादकी समाप्ति तक असिद्धवत् का अधिकार है अर्थात् उत्तरोत्तर की अपेक्षा पूर्व किया कार्य असिद्ध हो ॥ २२ ॥

श्नान्नलोपः ॥ २३ ॥

श्नात्, नं०पः।श्नमःपरस्य नस्य लोपः स्यात्।यथा—अनक्ति भनक्ति॥

श्नम् से परे नकारका लोप हो ॥ २३ ॥

अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ॥ २४ ॥

अ०म्, हलः, उ०याः क्ङिति। अनिदितामङ्गानां हलन्तानामुपधाया नकारस्य लोपः स्यात् क्ङिति परे। यथा—स्रस्तः, ध्वस्तः। स्रस्यते। ध्वस्यते। सनीस्रस्यते। दनीध्वस्यते॥

कित्ङित् प्रत्यय परे होतो अनि दित और हलन्त अङ्गों की उपधा नकारका लोपहो॥

दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ २५॥

एषां शपि परे उपधाया नकारस्य लोपः स्यात्। यथा- दशति। सजति। परिष्वजते॥

शप् प्रत्यय परे होतो दंश सञ्ज और स्वञ्ज अङ्गों के उपधा नकारका लोपहो॥

रञ्जेश्च ॥ २६॥ ॥

रञ्जेः, च। रञ्जेश्च शपि परे उपधाया नकारस्य लोपः स्यात्। यथा- रजति। रजतः। रजन्ति॥

शप् परे होतो रञ्ज अङ्ग के उपधा नकार का लोप हो॥ २६॥

घञि च भावकरणयोः ॥ २७॥

भावकरणवाचिनि घञि परे रञ्जेरुपधाया नकारस्य लोपः स्यात्। यथा-भावे-आश्चर्योरागः।विचित्रोरागः। करणे।रज्यतेऽनेनेति-रागः॥

भाव तथा करण वाचक घञ् प्रत्यय परे होतो रञ्जअङ्गके उपधा नकारका लोप हो॥

स्यदो जवे ॥ २८ ॥

स्यदः, जवे। जवे वाच्येस्यद इति घञि निपात्यते।स्यन्देर्नलोपो वृद्ध्यभावश्च। यथा-स्यदोवेगः। अन्यत्र स्यन्दः॥

जव वाच्य होतो नकार का लोपकरके घञ् प्रत्ययान्त स्यद यह निपातन कियाहै

अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ॥ २९॥

इमे निपात्यन्ते। अवोदः--अवक्लेदनम्। एधः-इन्धनम्। ओद्मः--

उन्दनम् । प्रश्रथः--विमोचनम् । हिमश्रथः--हिमविमोचनम् ॥

अवोद्, एध, ओद्म, प्रश्रथतथा हिम श्रतघञ् प्रत्ययान्त निपातितहैं ॥ २९ ॥

नाञ्चेः पूजायाम् ॥ ३० ॥

न, अञ्चेः, पूँ० म् । पूजायामर्थे अञ्चेर्नकारस्य लोपो न स्यात् यथा-आञ्चिता अस्य गुरवः ॥

पूजार्थ में अञ्चति अङ्गके उपधा नकार का लोप न हो ॥ ३० ॥

क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः ॥ ३१ ॥

क्त्विपरे अनयोर्न लोपो न स्यात् । यथा-स्कन्त्वा । स्यन्त्वा । स्यन्दित्वा । ऊदित्वादिट्त्वा ॥

क्त्वा प्रत्यय परे होंतो स्कन्द और स्यन्द के नकार का लोप नहो ॥ ३१ ॥

जान्तनशां विभाषा ॥ ३१ ॥

क्त्वि प्रत्यये परे जान्तानां नशेश्च न लोपो वा स्यात् । यथा-भक्त्वा । भङ्क्त्वा।रक्त्वा । रङ्क्त्वा।नष्ट्वा।नंष्ट्वा।इट्पक्षे नशित्वा॥

क्त्वा प्रत्यय परे हों तो जकारान्त और नश् अङ्गके नकारका विकल्पसे लोपहो॥

भञ्जश्च चिणि ॥ ३३ ॥

भञ्जः, च, चिणि । चिणिपरे भञ्जेश्च नलोपो वा स्यात् । यथा-अभाजि । अभञ्जि ॥

चिण् प्रत्यय परे होतो भञ्ज अङ्ग के नकार का लोप विकल्प से हो ॥ ३३ ॥

शास इदङ्हलोः ॥ ३४ ॥

शासः,इत्,अं०लोः । शास उपधाया इत्स्यादङि, हलादौ क्ङिति च परे । यथा—अशिषत् । अशिषताम् । अशिषन् । हलादौ किति शिष्टः । शिष्टवान् । ङिति । शिष्टस्तौ । वयं शिष्मः (क्वौ च शास इत्वं भवतीति वाच्यम्) ॥ आर्यान्-शास्तीति-आर्यशीः । मित्रशीः ॥

अङ् तथा हलादि कित् ङित् प्रत्यय परे होतो शास अङ्ग की उपधा को इकारादेशहो ॥

शा हौ ॥ ३५ ॥

हौ परे शासः शा इत्यादेशः स्यात् । यथा—अनुशाधि । प्रशाधि ॥

हि परे होतो शास् अङ्गको शा आदेशहो ॥ ३५ ॥

हन्तेर्जः ॥ ३६ ॥

हन्तेः, जः । हौ परे हन्तेर्ज इत्यादेशः स्यात् । यथा—जहि शत्रून् ॥

हि परे होतो हन् धातु के स्थान में ज आदेशहो ॥ ३६ ॥

अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीना-मनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ॥ ३७ ॥

अ०म्,अनु०पः,झलि,क्ङिति । अनुदात्तोपदेशानां वनते स्तनोत्यादीनां चानुनासिकलोपः स्याज् झलादौ क्ङिति प्रत्यये परे । यथा—यमु—यत्वा । यतः । यतवान् । यतिः । रमु—रत्वा । रतः रतवान् । रतिः । यमि, रमि, गमि, नमि, हनि, मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः । तनु, षणु, क्षणु, क्षिणु, ऋणु, तृणु, घृणु, वनु, मनु, तनोत्यादयः ॥

झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे होतो अनुदात्तोपदेश वनति और तनोत्यादिकों के अनुनासिक का लोपहो ॥ ३७ ॥

वा ल्यपि ॥ ३८ ॥

अनुदात्तोपदेशानां वनाति तनोत्यादीनामनुनासिकलोपो वास्या-ल्ल्यपि परे।यथा-प्रयत्य।प्रयम्य। प्ररत्य। प्ररम्य। प्रणत्य। प्रणम्य। आगत्य। आगम्य। आहत्य। मकारान्त मन्तरा नित्यलोपः॥

ल्यप् प्रत्यय परे होतो अनुदात्तोपदेश वनति तथा तनोत्यादि अंगो के अनुनासिक का लोप विकल्प से हो ॥ ३८ ॥

नक्तिचि दीर्घश्च ॥ ३९ ॥

न, क्तिचि, दीर्घः, च। क्तिचि प्रत्यये परेऽनुदात्तोपदेशादीनां दीर्घानुनासिक लोपौ न स्याताम्। यथा-यन्तिः। वन्तिः। तन्तिः॥

क्तिच् प्रत्ययपरे होतो अनुदात्तोपदेशादि अङ्गों के अनुनासिक का लोप और इन को दीर्घा देश न हो ॥ ३९ ॥

गमः क्वौ ॥ ४० ॥

गमः क्वौ परेऽनुनासिक लोपः स्यात्। यथा-अङ्गगत्। कलिङ्गत्। (गमादीनामिति वक्तव्यम्)॥ संयत्। परीतत ॥ (ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यम्)॥ लोपश्च। अग्रेगूः। भ्रमु-अग्रेभ्रूः॥

क्विप् प्रत्यय परे होतो गम् धातु के अनुनासिक का लोप हो ॥ ४० ॥

विड्वनोरनुनासिकस्यात् ॥ ४१ ॥

विटिवनिच परे, अनुनासिकस्य आत स्यात। यथा-विजायत इति-विजावा। ओणृ-अवावा। विटि। अब्जाः। गोजाः॥

विट् तथा वन् प्रत्यय परे होतो अनुनासिकान्त अङ्ग को आकारान्ता देश हो ४१

जनसनखनां सञ्झलोः ॥ ४२ ॥

एषामाकारोऽन्तादेशः स्याज्झलादौ सनि जलादौ च क्ङिति । यथा–जातः । जातवान् । जातिः । सिषासति । सातः । सातवान् सातिः । खातः । खातवान् । खातिः ॥

झलादि सन् और झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे हो जन् सन तथा खन् अङ्गों को आकारादेश हो ॥ ४२ ॥

ये॑ऽविभाषा॒ ॥ ४३ ॥

यादौ क्ङिति परे जनसनखनामात्वं वा स्यात् । यथा–जायते । जन्यते । जाजायते । जञ्जन्यते । सायते । सन्यते । सासायते । संसन्यते । खायते । खन्यते । चाखायते । चङ्खन्यते ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे होतो जन्, सन् तथा खन् अङ्गोंको विकल्प से आकारादेश हो ॥ ४३ ॥

तनोतेर्यकि ॥ ४४ ॥

तनोते॑:, यकि॑ । यकि परे तनोते राकारोऽन्तादेशो वा स्यात् । यथा–तायते । तन्यते ॥

यक् प्रत्यय परे होतो तनु अंग को विकल्प से आकारादेश हो ॥ ४४ ॥

सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ४५

सन॑:, क्ति॑चि, लोप॑:, च, अस्य॑, अ०म् । सनोतेः क्तिचिप्रत्यये परे आत्वं वा लोपश्च वा स्यात् । यथा–सातिः । सतिः । सन्तिः ॥

क्तिच् प्रत्यय परे होतो सन् अंग को आकारादेश तथा नकार का लोप विकल्पसेहो॥

आर्द्धधातुके॑ ॥ ४६ ॥

अधिकारोऽयं न ल्यपीति यावत् ॥

न ल्यपि (६ । ४ । ६९) इस सूत्रतक जो कथन किया जायगा वह आर्द्ध धातुक विषय में हो यह अधिकार है ॥ ४६ ॥

भ्रस्जोरोपधयोरमन्यतरस्याम् ॥४७॥

भ्रस्जः, रोऽयोः, रम्, अ०म् । भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यात् । यथा–भ्रष्टा । भर्ष्टा । भ्रष्टुम्, भर्ष्टुम्, भ्रष्टव्यम् । भर्ष्टव्यम् । भ्रज्जनम्, भर्ज्जनम् ॥

भ्रस्ज अंग के रेफ और उपधा को विकल्प से रम् का आगमहो ॥ ४७ ॥

अतो लोपः ॥ ४८ ॥

अतः, लोपः । आर्द्धधातुके परे अकारान्तस्याङ्गस्य लोपः स्यात् । यथा–चिकीर्षिता । चिकीर्षितुम् । चिकीर्षितव्यम् ॥

आर्ध धातुक परे होतो अकारान्त अङ्गका लोपहो ॥ ४८ ॥

यस्य हलः ॥ ४९ ॥

हलः परस्य यस्य लोपः स्यादार्धधातुके । यथा–बेभिदिता । बेभिदितुम् । बेभिदितव्यम् ॥

आर्द्ध धातुकपरे होतो हल से उत्तर यकार का लोप हो ॥ ४९ ॥

क्यस्य विभाषा ॥ ५० ॥

हलः परस्य क्यस्य लोपो वा स्यादार्धधातु के । क्यच् क्यङोः सामान्येन ग्रहणम् । यथा–समिध्यिता । समिधिता । दृषद्यिता । दृषदिता । समिधमात्मन इच्छति, समिधइवाचरति वा क्यच् क्यङौ यथायोगं कर्त्तव्यौ ॥

आर्द्ध धातुक परे होंतो हल्--से उत्तर क्य प्रत्यय के यकारका विकल्पसे लोप हो॥

णेरनिटि ॥ ५१ ॥

णेः, अ०टि । अनिडादावार्धधातुके परेणेर्लोपस्स्यात् । यथा–अततक्षत् । अररक्षत् । आशिशत् । आटिटत् । कारणा । हारणा । कारकः । हारकः । कार्यते । हार्यते ॥

अनिडादि आर्द्ध धातुक परे होंतो णि का लोपहो ॥ ५१ ॥

निष्ठायां सेटि ॥ ५२ ॥

निष्ठायां सेटि णेर्लोपः स्यात् । यथा--कारितम् । हारितम् । गणितम् । लक्षितम् ॥

सेट् निष्ठा प्रत्यय परे होंतो णि का लोपहो ॥ ५२ ॥

जनिता मन्त्रे ॥ ५३ ॥

मन्त्रविषये इडादौ तृचि णि लोपो निपात्यते।यथा–योनः पिता जनिता। लोके जनयिता ॥

मन्त्र विषय में जनिता यह शब्द निपातित है ॥ ५३ ॥

शमिता यज्ञे ॥ ५४ ॥

यज्ञकर्म्मणि शमितेति इडादौ णि लोपो निपात्यते। यथा–शमिता । शमयितेत्यर्थः ॥

यज्ञ कर्म्म में शमिता शब्द निपातित है ॥ ५४ ॥

अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ॥ ५५ ॥

अयः, अ०षु । आम, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु, इष्णु, ए

णेरयादेशः स्यात् । यथा-कारयाञ्चकार । मण्डयन्तः । स्पृहयालुः । गृहयाय्यः । स्तनयित्नुः । पोषयिष्णवः ॥

आमादि प्रत्यय परे होंतो णि को अय् आदेश हो ॥ ५५ ॥

ल्यपि लघुपूर्वात् ॥ ५६ ॥

ल्यपि परे लघुपूर्वात् परस्य णेरयादेशः स्यात् । यथा-प्रशमय्य । विगणय्य । प्रणमय्य । प्रबेभिदय्य । लघुपूर्वात् किं सम्प्रधार्य ॥

ल्यप् परे होतो लघुपूर्व स परे णि को अय् आदेश हो ॥ ५६ ॥

विभाषापः ॥ ५७ ॥

वि॰पा, आपः । ल्यपि परे आप्नोतेर्णेरयादेशो वा स्यात् । यथा-प्रापय्य । प्राप्य ॥

ल्यप् परे होतो आप्लृ अङ्ग से परे णि को अय् आदेश विकल्प से हो ॥ ५७ ॥

युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि ॥ ५८ ॥

यु॰ वोः, दीर्घः, छ॰सि । छन्दसि ल्यपि परे अनयोर्दीर्घः स्यात् । यथा-वियूय । विप्लूय ॥

छन्दविषय में ल्यप् परे होतो यु तथा प्लु अङ्ग को दीर्घादेश हो ॥ ५८ ॥

क्षियः ॥ ५९ ॥

ल्यपि परे क्षियो दीर्घः स्यात् । यथा-प्रक्षीय । उपक्षीय ॥

ल्यप् परे होतो क्षि अङ्ग को दीर्घादेश हो ॥ ५९ ॥

निष्ठायामण्यदर्थे ॥ ६० ॥

नि॰ म्, अ॰ र्थे । ण्यदर्थो भावकर्मणी ततोऽन्यत्रनिष्ठायां क्षियो दीर्घः स्यात् । यथा--आक्षीणः । प्रक्षीणः । परिक्षीणः । (८।२।४६) इति निष्ठा तस्य नः ॥

अण्यदर्थ निष्ठा प्रत्यय परे होतो क्षि अंगको दीर्घादेशहो ॥ ६० ॥

वाऽऽक्रोशदैन्ययोः ॥ ६१ ॥

आक्रोशे, दैन्ये च गम्ये क्षियोनिष्ठायां दीर्घो वा स्यात्। यथा-क्षीणायुर्भव, क्षितायुर्वा । क्षीणोऽयं ब्रह्मचारि, क्षितोवा ॥

आक्रोश तथा दैन्य गम्यमान होवो क्षि अंगको निष्ठा प्रत्यय के परे दीर्घादेशहो ॥

स्यसिच् सीयुट् तासिषु भावकर्मणो-रुपदेशेऽज् झन् ग्रहदृशां वा चिण्व-दिट् च ॥ ६२ ॥

स्यँ॰ षु, भा॰ र्णोः, उ॰ शे, अ॰ म्, वा, चि॰ त्, इट्, च। स्यादिषु भावकर्मविषयेषु परेषु, उपदेशे योऽच् तदन्तानां हना-दीनां च, चिणीवाङ्ग कार्य्यं वा स्यात्. यदाचिण्वत् तदा इडागमश्च । यथा-चायिष्यते । चेष्यते । दायिष्यते । दास्यते । शामिष्यते । शमिष्यते । शमयिष्यते । घानिष्यते । हनिष्यते । ग्राहिष्यते । ग्रहीष्यते । ग्रहोऽलिटि दीर्घ इति प्रकृतस्येटोदीर्घत्वम्। दर्शिष्यते । द्रक्ष्यते । सिच्यजन्तानां । अचायिषाताम् । अचेषाताम् । अदा-यिषाताम् । अदिषाताम् । अशामिषाताम् । अशमिषाताम् । अघानिषाताम् । अवधिषाताम् । अहषाताम् । अग्राहिषाताम् । अग्रहिषाताम् । अग्रहीषाताम् । अदर्शिषाताम् । अदृक्षाताम् । सीयुटि । चायिषीष्ट । चेषीष्ट । दायिषीष्ट । दासीष्ट । शामिषीष्ट ।

शमिषीष्ट । घानिषीष्ट, वधिषीष्ट । ग्राहिषीष्ट, ग्रहिषीष्ट । दार्शिषीष्ट, दृक्षीष्ट । तासौ । चायिता, चेता । दायिता, दाता । शामिता । शमिता । घानिता । हन्ता । ग्राहिता । ग्रहीता । दर्शिता । दृष्टा ॥

भाव तथा कर्म वाचक स्य, सिच्, सीयुट् तथा तासि परे हो तो उपदेश में अजन्त, हन्, ग्रह और दृश अङ्गको विकल्प से चिण्वत् कार्य्य तथा इडागम हो ॥

दीङोयुडचि क्ङिति ॥ ६३ ॥

दीङः, युट्, अचि, क्ङिति । दीङो युडागमः स्यादजादौ क्ङिति परे । यथा—उपदिदीये । उपदिदीयाते । उपदिदीयिरे ॥

अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे होतो दीङ् धातु को युट् का आगमहो ॥ ६१ ॥

आतोलोप इटि च ॥ ६४ ॥

आतः, लोपः, इटि, च । अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङितोः इटि च परतः आकारस्य लोपः स्यात् । यथा—पपिथ । तस्थिथ । पपतुः । पपुः । धनदः । बलदः । प्रदा । प्रधा ॥

अजादि तथा इडादि कित् ङित् आर्द्ध धातुकपरे हों तो आकारान्त अङ्गका लोपहो ॥

ईद्यति ॥ ६५ ॥

ईत्, यति । यति परे आतः ईत् स्यात् । यथा—देयम् । धेयम् । पेयम् । हेयम् ॥

यत् प्रत्यय परे होतो आकारान्त अङ्गको ईकारादेशहो ॥ ६१ ॥

घुमास्थागापाजहातिसां हलि ॥ ६६ ॥

एषामातः ईत् स्यात् हलादौ क्ङित्यार्धधातुके परे । यथा—

दीयते। धीयते। देदीयते। देधीयते। मीयते। मेमीयते। स्थीयते। तेष्ठीयते। गीयते। जेगीयते। अध्यगीष्ट। पीयते। पेपीयते। हीयते। जेहीयते। अवसीयते। अवसेसीयते॥

हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो घु संज्ञक मा, स्था, गा, पा, जहाति तथा स अङ्गों को ईकारादेश हो॥ ६६॥

एर्लिङि ॥ ६७ ॥

एः, लिङि। घुसंज्ञकानां, मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके कृङति लिङि परे। यथा–देयात्। धेयात्। मेयात्। स्थेयात्। गेयात्। पेयात्। हेयात्। अवसेयात्॥

कित् ङित् लिङ् परे हो तो घुसंज्ञक तथा मादि अङ्गों को एकारादेश हो॥ ६७॥

वाऽन्यस्य संयोगादेः ॥ ६८ ॥

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरातो वैत्वं स्यादार्धधातुके क्ङिति लिङि परे। यथा–ग्लेयात् ग्लायात्। म्लेयात्। म्लायात्

कित् ङित् सम्बन्धी लिङ् परे हो तो घु आदि से भिन्न इतर संयोगादि आकारान्त अङ्गों को विकल्प से एकारादेश हो॥ ६८॥

न ल्यपि ॥ ६९ ॥

ल्यपि परे घुमादेरीत्वं न स्यात्। यथा–प्रदाय। प्रधाय। प्रमाय। प्रस्थाय। प्रगाय। प्रपाय। प्रहाय। अवसाय॥

ल्यप् परे हो तो घु संज्ञक तथा मा आदि अङ्गों को ईकारादेश न हो॥ ६९॥

मयतेरिदन्यतरस्याम् ॥ ७० ॥

मयतेः, इत्, अ०म। मेङ इकारोऽन्तादेशो वा स्याल्ल्यपि। यथा–अपमित्य याचते। अपमाय्य॥

स्यप् परे होतो मयति अङ्ग को विकल्प से इकारादेश हो ॥ ७० ॥

लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्तः ॥ ७१ ॥

एतेषु परेषु अङ्गस्याडागमः स्यात् सचोदात्तः । यथा—अकार्षीत् अकरोत् । अकरिष्यत् ॥

लुङ् लङ् तथा लृङ् परे हो तो अङ्ग को अट् का आगम हो और वह उदात्त हो ७१

आडजादीनाम् ॥ ७२ ॥

आट्, अ०म् । अजादीनामाडागमः स्याल्लुङादिषु परेषु । यथा ऐहिष्ट । ऐहत । ऐहिष्यत ॥

अजादि अङ्गों को आट् का आगम हो लुङ् लङ् तथा लृङ् परे होतो ॥७२॥

छन्दस्यपि दृश्यते ॥ ७३ ॥

छन्दसि ७, अपि अ, दृश्यते क्रि० । छन्दसि विषयेऽप्याडागमो दृश्यते । अनजादीनामित्यर्थः । आनक् । आवः । आनगिति नशेः । आवइति वृञोलुङि मन्त्रे घसह्वरेति लेर्लुक् ॥

अजादि अङ्गों के अन्यत्र भी छन्दविषय में आट् का आगम देखाजाता है ७३

न माङ्योगे ॥ ७४ ॥

लुङ् लङ् लृङ्क्षु परेषु माङ्योगे अडाटौ न स्याताम् । यथा— माभवान् कार्षीत् । मास्मकरोत् । अप्रयोगाल्लुङ् उदाहरणं न ॥

लुङ् लङ् तथा लृङ् परे हों तो माङ् के योग में अट् और आट् का आगम न हो ॥

बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि ॥ ७५ ॥

ब० मृं । छं० सि, अं० गे, अपि । छन्दसि विषये माङ्योगे ऽमाङ् योगेपि बहुलमडाटौ स्तः । यथा—जनिष्ठा उग्रः । मावः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः ॥

छन्दविषय में माङ् का योग होनेपर तथा न होनेपर बहुलकरके अट् और आट् का आगम होता है ॥ ७५ ॥

इरयोरे ॥ ७६ ॥

इ० यं:, रे । छन्दसि विषये इरे इत्यस्य स्थाने रे इत्ययमादेशः स्यात् । यथा—प्रथमं दध्रे आपः ॥

छन्दविषय में इरेको बहुल करके रे आदेश हो ॥ ७६ ॥

अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ॥ ७७ ॥

अंचि, श्नुं० भ्रु, य्वोः, इं० ङौ । श्नु प्रत्ययान्तस्य इवर्णोवर्णान्त धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्यइयङुवङौ स्यातामजादौ प्रत्यये परे । यथा—प्राप्नुवन्ति । चिक्षियतुः । चिक्षियुः । लुलुवतुः । लुलुवुः । भ्रुवौ । भ्रुवः ॥

अजादि प्रत्यय परे होतो श्नुप्रत्ययान्त इवर्णान्त तथा उवर्णान्त धातु और भ्रू इस अङ्ग को इयङ् उवङ् आदेश हों ॥ ७७ ॥

अभ्यासस्याऽसवर्णे ॥ ७८ ॥

असवर्णेऽचिपरेऽभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्याताम् ।यथा-इयेष । उवोष ॥

असवर्णी अच् परे होतो अभ्यास के इवर्ण तथा उवर्ण को इयङ् और उवङ् आदेश हो ॥ ७८ ॥

स्त्रियाः ॥ ७९ ॥

स्त्रीशब्दस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्ययेपरे । यथा-स्त्रियौ । स्त्रियः ॥
अजादि प्रत्यय परे हो तो स्त्री शब्द को इयङ् आदेश हो ॥७९ ॥

वाऽम्शसोः ॥ ८० ॥

अमि शसि च परे स्त्रिया इयङादेशो वा स्यात् । यथा-स्त्रियम् । स्त्रीम् । स्त्रियः । स्त्रीः ॥
अम् तथा शस् परे होतो स्त्री शब्द को विकल्प से इयङ् आदेश हो ॥ ८० ॥

इणोयण् ॥ ८१ ॥

इणः, यण् । अजादौ प्रत्यये परे इणोयण् स्यात् । यथा-यन्ति यन्तु । आयन् ।
अजादि प्रत्यय परे होतो इण अङ्गको यण आदेशहो ॥ ८१ ॥

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ॥ ८२ ॥

एः, अ०चः, अ०स्य । धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तोयोधातुस्तदन्तस्याऽनेकाचोऽङ्गस्य यणादेशः स्यादजादौ प्रत्यये परे । यथा-कुमार्यौ । कुमार्य्यः ॥
धातु का अवयव संयोग पूर्व जिसके न हो ऐसे अनेकाच् अङ्ग के इवर्णको यण आदेशहो अजादि प्रत्यय पर होतो ॥ ८२ ॥

ओः सुपि ॥ ८३ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वोन भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्याऽनेकाचोऽङ्गस्य यणादेशः स्यादजादौ सुपि परे । यथा-खलप्वौ । खलप्वः ॥

अजादि सुप् परे होतो धातुका अवयव संयोग पूर्व जिस के न हो ऐसे अनेकाच् अङ्गके उवर्ण को यण् आदेशहो ॥ ८३ ॥

वर्षाभ्वश्च ॥ ८४ ॥

वर्षाभ्वः, च । वर्षाभ्व उवर्णस्य यण् स्यादचि सुपि । यथा—वर्षाभ्वौ । वर्षाभ्वः ।(दृन्करपुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः)॥ दृन्भ्वम् । दृन्भ्वः । इत्यादि । खलपूवत् ॥

अजादि सुप् परे हो तो वर्षाभू अंग को यण् आदेश हो ॥ ८४ ॥

न भूसुधियोः ॥ ८५ ॥

अनयोर्यण् न स्यादचि सुपि । यथा—प्रतिभुवौ । प्रतिभुवः । सुधियौ । सुधियः ॥

अजादि सुप् परे हो तो भू और सुधी अंग को यण् आदेश न हो ॥ ८५ ॥

छन्दस्युभयथा ॥ ८६ ॥

छं० सि, उभयथा । भूसुधियोर्यण् स्यादियङुवङौ च । यथा—वनेषु चित्रं विभ्वम् विभुवं वा सुध्यो नव्यमग्ने,सुधियो वा ।(तन्वादीनां छन्दसि बहुलम्)॥ तन्वं पुषेम तनुवं वा । त्र्यम्बकम् त्रियम्बकम् ॥

छन्द विषय में भू तथा सुधी अंग को यण् और इयङ् तथा उवङ् आदेश हों ॥

हुश्नुवोः सार्वधातुके ॥ ८७॥

जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्याऽनेकाचोऽङ्गस्य चासंयोग पूर्वोवर्णस्य यण् स्यादजादौ सार्वधातुके परे । यथा—जुह्वति । जुह्वतु । अजुह्वन् । सुन्वन्ति । सुन्वन्तु । असुन्वन् ॥

अजादि सार्वधातुक परे होतो संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसे अनेकाच् हु और श्नु अङ्ग को यण् आदेश हो ॥ ८७ ॥

भुवोवुग्लुङ्लिटोः ॥ ८८ ॥

भुवः, वुक्, लु०टोः । भुवोवुगागमः स्याल्लुङिलिटि चाजादौ परे । यथा-अभूवन् । अभूवम् । लिटि । बभूव । बभूवतुः बभूवुः ॥

अजादि लुङ् तथा लिट् परे होतो भू अङ्ग को वुक् का आगम हो ॥ ८८ ॥

ऊदुपधायागोहः ॥ ८९ ॥

ऊत्, उ० याः, गोहः । गुह उपधाया ऊत् स्यादजादौ प्रत्यये परे । यथा-गूहति । गूहते ॥

अजादि प्रत्यय परे होतो गुह अङ्ग की उपधा को ऊकारादेश हो ॥ ८९ ॥

दोषोणौ ॥ ९० ॥

दोषः, णौ । दुष्यतेरुपधाया ऊत् स्याण्णौपरे । यथा-दूषयति

णिपरे होतो दोष (दुष) अंगकी उपधा को ऊकारादेश हो ॥ ९० ॥

वाचित्तविरागे ॥ ९१ ॥

चित्तविकारेऽर्थे दोष उपधाया वोत् स्याण्णौ परे । यथा-चित्तं दूषयति, दोषयति वा ॥

णि परे होतो चित्त विराग (अप्रीतता) अर्थ में दोष अंग की उपधा को विकल्प से ऊकारादेशहो ॥ ९१ ॥

मितां ह्रस्वः ॥ ९२ ॥

मितामुपधाया ह्रस्वः स्याण् णौ परे । यथा-घटयति।व्यथयति ।

जनयति । रजयति । शमयति । ज्ञपयति ॥

णि परे होतो मितादिगण पठित अङ्गों की उपधाको ह्रस्वहो ॥ ९२ ॥

चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् ९३

चिं०लोः, दीर्घः, अ०म्। चिण्परे णमुल्परे च णौ परे मितामुपधाया दीर्घो वा स्यात् । यथा--अशमि । अशामि । अतमि । अतामि । शमं शमम् । शामं शामम् । तमंतमम् । तामंतामम् ॥

चिण और णमुल् परे है जिससे ऐसा णि परे होतो मितादि गण पठित अङ्गों की उपधाको विकल्प से दीर्घहो ॥ ९३ ॥

खचि ह्रस्वः ॥ ९४ ॥

खच्परे णौपरे उपधाया ह्रस्वः स्यात् । यथा—द्विषन्तं परं वा तापयतीति--द्विषन्तपः । परन्तपः ॥

खच् है परे जिससे ऐसा णि परे होतो अङ्गकी उपधा को ह्रस्वहो ॥ ९४ ॥

ह्लादो निष्ठायाम् ॥ ९५ ॥

ह्लादः, निं० म । ह्लादोऽङ्गस्योपधाया निष्ठायां ह्रस्वः स्यात् यथा—प्रह्लन्नः । प्रह्लन्नवान् ॥

निष्ठापरे होतो ह्लादि अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश हो ॥ ९५ ॥

छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ॥ ९६ ॥

छादेः, घे, अं० स्य । द्विप्रभृत्युपसर्ग हीनस्य छादेर्ह्रस्वः स्याद् घे परे । यथा—छाद्यन्तेऽनेनेति—दन्तच्छदः । प्रच्छदः ॥

घ प्रत्यय परे होतो दो उपसर्ग रहित छादि अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेशहो ९६

इस्मन्त्रन्क्विषु च ॥ ९७ ॥

एषु परेषु छादेरुपधाया ह्रस्वः स्यात् । यथा—छदिः । छद्म । छत्रम् । तनुच्छत् ॥

इस्, मन्, त्रन् तथा क्विप् परे होंतो छादि अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश हो ॥

गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि

ग० म्, लोपः, क्ङिति, अ० ङि । एषा मुपधाया लोपः स्याद जादौ क्ङिति परे, न त्वङि । यथा—जग्मतुः । जग्मुः । जघ्नतुः । जघ्नुः । जज्ञे । जज्ञाते । जज्ञिरे । चख्नतुः, चख्नुः । जक्षतुः, जक्षुः ॥

अङ् वर्जित अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे होंतो गम, हन, जन, खन तथा घस् अङ्गों की उपधाका लोप हो ॥ ९८ ॥

तनिपत्योश्छन्दसि ॥ ९९ ॥

त० त्योः, छ० सि । अनयो श्छन्दसि विषये उपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङिति । यथा—वितत्निरे कवयः । शकुना इवपप्तिम ॥

अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे होंतो छन्द विषयमें तन तथा पत अङ्गों की उप धाका लोपहो ॥ ९९ ॥

घसिभसोर्हलि च ॥ १०० ॥

घ० सोः, हलि, अ० च । छन्दसि विषयेऽनयो रुपधाया लोपः स्याद् धलादावजादौच क्ङिति परे। यथा—सग्धिश्च मे । बब्धान्तेहरी धाना॥

हलादि तथा अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो छन्द विषय में घस् तथा भस् अङ्गों की उपधा का लोप हो ॥ १०० ॥

हुझल्भ्यो हेर्धिः ॥ १०१ ॥

हु० भ्यः, हेः, धिः । होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् । यथा—जहुधि । भिन्द्धि । छिन्द्धि । आद्धि ॥

हु और झलन्त अङ्गों से परे हि को धि आदेश हो ॥ १०१ ॥

श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि ॥ १०२ ॥

श्रु० भ्यः, छन्दसि । एभ्य उत्तरस्य छन्दसि विषये हेर्धिः स्यात् । यथा—श्रुधीहवम् । शृणुधी गिरः । पूर्द्धि । कृधि । वृधि ॥

छन्द विषय में श्रु शृणु, पॄ,कृ तथा वृ अङ्गों से परे हि को धि आदेश हो १०२

अङितश्च ॥ १०३ ॥

अङितः, च । छन्दसि अङितश्च हेर्धिः स्यात् । यथा—रारन्धि । रमेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम् । शपः श्लुरभ्यासदीर्घश्च । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः ॥

छन्द विषय में अङित अङ्ग से परे हि को धि आदेश हो ॥ १०३ ॥

चिणो लुक् ॥ १०४ ॥

चिणः, लुक् । चिणः परस्य प्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा—अकारि । अहारि । अलावि । अपाठि ॥

चिण् से परे प्रत्यय का लुक् हो ॥ १०४ ॥

अतो हेः ॥ १०५ ॥

अतः, हेः । अतः परस्य हेर्लुक् स्यात् । यथा-भव । पठ । गच्छ । पिब ॥

अदन्त अंग से परे हि का लुक् हो ॥ १०५ ॥

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ॥ १०६ ॥

उतः, च, प्रत्ययात्, अ०त् । असंयोग पूर्वो यः प्रत्ययोकारस्तदन्तादंगात परस्य हेर्लुक् स्यात् । यथा-कुरु । धिनु । सुनु । शृणु ॥

संयोग जिसके पूर्व न हो ऐसा जो उकार प्रत्यय तदन्त अङ्गसे परे हि का लुक् हो॥

लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ॥ १०७॥

लोपः, च, अस्य, अ०म्, म्वोः । असंयोगपूर्वोयः प्रत्ययोकारस्तदन्तस्यांगस्य लोपो वा स्यान्म्वोः परयोः । धिन्वः, धिनुवः । धिन्मः, धिनुमः ॥

व तथा म प्रत्ययपरे होंतो असंयोग पूर्वक उकार प्रत्ययका विकल्प से लोपहो १०७

नित्यं करोतेः ॥ १०८ ॥

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपः स्याद् म्वोः परयोः । यथा-कुर्वः । कुर्मः ॥

व तथा म प्रत्ययपरे होंतो डुकृञ् धातु से परे उकार प्रत्यय का नित्य लोपहो ॥

ये च ॥ १०९ ॥

कृञ उलोपःस्याद् यादौ प्रत्ययेपरे।यथा-कुर्यात् ।कुर्याताम्।कुर्युः॥

यकारादि प्रत्ययपरे होंतो कृञ् अङ्गसे परे उकार प्रत्ययका लोपहो ॥१०९॥

अत उत् सार्वधातुके ॥११०॥

अतः, उत्, सा०के । उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत् स्यात्सार्वधातु के क्ङिति परे । यथा-कुरुतः । कुर्वन्ति ॥

कित् ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होंतो उप्रत्ययान्त कृञ अङ्ग के अकार के स्थानमें उकारा देश हो ॥ ११० ॥

श्नसो रल्लोपः ॥ १११ ॥

श्नसोः, अ०पेः । श्नस्याऽस्ते आकारस्य लोपस्स्यात् सार्वधातुके क्ङिति परे । यथा—रुन्धः । रुन्धन्ति । भिन्तः । भिन्दन्ति । स्तः । सन्तिः ॥

कित् ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होंतो श्नम् और अस्ति के अकारका लोपहो

श्नाभ्यस्तयोरातः ॥ ११२ ॥

श्ना०योः, आतः । अनयो रातो लोपः स्यात् । क्ङिति सार्व धातुके परे । यथा—लुनते । लुनताम् । मिमते । मिमताम् ॥

कित् ङित् सार्व धातुक प्रत्यय परे होंतो श्ना प्रत्यय तथा अभ्यस्त संज्ञक धातु ओं के आकारका लोपहो ॥ ११२ ॥

ईहल्यघोः ॥ ११३ ॥

ई, हलि, अघोः । श्नाभ्यस्तयो रात ईत स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातु के परे नतु घुसंज्ञकस्य। यथा—लुनीतः । पुनीतः । लुनीते। अभ्यस्तानाम् । मिमीते मिमीसे । मिमीध्वे ॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होंतो श्ना प्रत्यय तथा अभ्यस्त संज्ञक अङ्गों के आकार को ईकारादेश हो ॥ ११३ ॥

इद्दरिद्रस्य ॥ ११४ ॥

दरिद्रातेरिकारः स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातु के परे । यथा—दरिद्रितः । दरिद्रिथः । दरिद्रितः । दरिद्रिमः ॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे होतो दरिद्रा धातु के आकार को इकारादेशहो

भियोऽन्यतरस्याम् ॥ ११५ ॥

भियः, अ॰म्र। भियो वेकरः स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातु के परे। यथा—बिभितः, बिभीतः। बिभिथः, बिभीथः। बिभिवः, बिभीवः। बिभिमः, बिभीमः॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होतो भी अङ्गको विकल्पसे इकारादेशहो॥

जहातेश्च ॥ ११६ ॥

जहातेः, च। जहातेश्चेत् स्याद् वा हलादौ क्ङिति सार्वधातु के परे। यथा—जहितः, जहीतः। जहिथः, जहीथः॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे होतो जहाति अङ्गको विकल्पसे इकारादेशहो

आ च हौ ॥ ११७ ॥

जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ। यथा—जहाहि, जहिहि, जहीहि॥

हि परे होतो जहाति(ओहाक्) अंगको आ, इ तथा ईकार आदेशहो ॥११२॥

लोपो यि ॥ ११८ ॥

लोपः, यि। जहातेरालोपः स्याद्यादौ सार्व धातुकेपरे। यथा—जह्यात्। जह्याताम्। जह्युः॥

यकारादि कित् ङित् सार्वधातुक प्रत्ययपरे होतो जहातिअंगके आकारका लोपहो

घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ॥ ११९ ॥

घ्वसोः, एत्, हौ, अ॰पः, च। घोरस्तेश्च एत्वं स्याद् हौपरे अभ्यासलोपश्च। यथा—देहि। धेहि। एधि॥

हि परे होतो घु संज्ञक तथा अस्ति अङ्गको एत्व और अभ्यस का लोपहो ॥११९॥

अत एक हलमध्येऽनादेशादेर्लिटि १२०

अतः, एँ०ध्ये, अं०देः, लिँटि । लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्याऽसंयुक्तहल् मध्यस्थस्याऽकारस्य एकारः स्यादभ्यासलोपश्च किति लिटि परे । यथा—देधे । देधाते । देधिरे । पेचतुः । पेचुः ॥

कित् लिट् परे होतो अनादेशादि अङ्ग के एक हल् मध्यस्थ अकारको एकार देश तथा अभ्यास का लोपहो ॥ १२० ॥

थँलि चँ सेटिँ ॥ १२१ ॥

थलिचसेटि परेऽनादेशा देरङ्गस्य एक हल्मध्यगतस्यातः स्थाने एकारादेशः स्यात्, अभ्यास लोपश्च । यथा—पेचिथ । शेकिथ ॥

सेट् थल्परे होतो अनादेशादि अङ्गके एक हल्मध्यस्थ अकार को एकारा देश तथा अभ्यासका लोपहो ॥ १२१ ॥

तॄफलभजत्रपश्च ॥ १२२ ॥

तॄ०पः, चँ । एषा मातः स्थाने एकारोऽभ्यास लोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च। यथा—तेरतुः । तेरुः।तेरिथ। फेलतुः।फेलुः । फेलिथ । भेजतुः । भेजुः । भेजिथ । त्रेपे । त्रेपाते । त्रेपिरे ॥

कित् लिट् तथा सेट् थल् परे होतो तॄ, फल, भज और त्रपूष अङ्ग के अकार को एकारा देश तथा अभ्यास का लोपहो ॥ १२ ॥

राधो हिंसायाम् ॥ १२३ ॥

राधँः, हिंसायाम् । राधोहिंसायाम्एत्वाभ्यासलोपौ स्याताम्—किति लिटि, सेटि थलिच । यथा—अपेरधतुः । अपेरधुः । अपेरधिथ ॥

कित् लिट् तथा सेट् थल् परे होतो हिंसाअर्थ में वर्त्तमान राधधातु के अकार को एकारा देश और अभ्यासका लोप हो ॥ १२३ ॥

वा जृभ्रमुत्रसाम् ॥ १२४ ॥

एषा मेत्वाभ्यासलोपे वा स्यातां किति लिटि सेटि थलि च परे। यथा--जेरतुः। जेरुः। जेरिथ। जजरतुः। जजरुः। जजरिथ। भ्रेमतुः। भ्रेमुः। भ्रेमिथ। बभ्रमतुः। बभ्रमुः। बभ्रमिथ। त्रेसतुः। त्रेसुः। त्रेसिथ। तत्रसतुः। तत्रसुः। तत्रसिथ॥

कित् लिट् तथा सेट् थल् परे होतेः जृ भ्रमु तथा त्रस अङ्गों के अत् को विकल्प से एकारादेश और अभ्यासका लोप हो ॥ १२४ ॥

फणां च सप्तानाम् ॥ १२५ ॥

एषामेत्वाभ्यास लोपौ वा स्याताम्--किति लिटि सेठिथलि च परे। यथा--फेणतुः। फेणुः। फेणिथ। पफणतुः। पफणुः। पफणिथ। रेजतुः। रेजुः। रेजिथ। रराजतुः। रराजुः। रराजिथ। भ्रेजे। भ्रेजाते। भ्रेजिरे। बभ्राजे। बभ्राजाते। बभ्राजिरे। भ्रेशे। भ्रेशाते। भ्रेशिरे। बभ्राशे। बभ्राशाते। बभ्राशिरे। भ्लेशे। भ्लेशाते। भ्लेशिरे। बभ्लाशे। बभ्लाशाते, बभ्लाशिरे। स्येमतुः। स्येमुः। स्येमिथ। सस्यमतुः। सस्यमुः। सस्यमिथ। स्वेनतुः। स्वेनुः। स्वेनिथ। सस्वनतुः। सस्वनुः। सस्वनिथ॥

कित् लिट् तथा सेट् थल् परे होतो फणादि सात धातुओं के अवर्ण को विकल्प से एत्व तथा अभ्यास का लोप हो ॥ १२५ ॥

न शसददवादिगुणानाम् ॥ १२६ ॥

शसेर्ददेर्वकारादीनाम्, गुण शब्दे न भावितस्य च योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यास लोपौ न स्याताम्। यथा--विशशसतुः, विशशसुः। विशशसिथ। दददे, दददाते, दददिरे। ववमतुः, ववमुः। ववमिथ। गुणस्य। विशशरतुः, विशशरुः। विशशरिथः॥

कित् लिट् तथा सेट् थल् परे हों तो शस, दद, वादि और गुण भूत अङ्गों के अकारको एत्त्व तथा अभ्यासका लोप न हो ॥ १२६ ॥

अर्वणस्त्रसावनञः ॥ १२७ ॥

अवर्णः, तृ, असौ, अनञः। नञा रहितस्यार्वान्नित्यस्य तृइत्यन्तादेशः स्यात, न तु सौपरे। यथा—अर्वन्तौ, अर्वन्तः ॥

सुसेभिन्न प्रत्यय परे हो तो नञ् वर्जितसे परे अर्वन् शब्द को तृ आदेश हो १२७॥

मघवा बहुलम् ॥ १२८ ॥

मघवञ्शब्दस्य तृवेत्यन्तादेशः स्यात्। यथा—मघवान्। मघवन्तौ मघवन्तः। मघवा, मघवानौ। मघवानः ॥

मघवन् शब्द को विकल्प से तृ आदेश हो ॥ १२८ ॥

भस्य ॥ १२९ ॥

अधिकारोऽयम्। आ अध्याय परिसमाप्तेः ॥

इस अध्याय की समाप्तितक भसंज्ञा का अधिकार है ॥ १२९ ॥

पादः पत् ॥ १३० ॥

पाच्छब्दान्तं भसंज्ञकं यदङ्गं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः स्यात्। यथा—सुपदः पश्य ॥

भ संज्ञक पादन्त अंग को पत् आदेशहो ॥ १३० ॥

वसोः सम्प्रसारणम् ॥ १३१ ॥

वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात्। यथा—विदुषः। विदुषा ॥

वस्वन्त भ संज्ञक अङ्गको सम्प्रसारणहो ॥ १३१ ॥

वाह ऊठ् ॥ १३२ ॥

वाहः, ऊठ् । भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ् स्यात् । यथा-विश्वौहः । प्रष्ठौहः ॥

वाह् अन्त भसंज्ञक अङ्गको ऊठ् सम्प्रसारणहो ॥ १३२ ॥

श्वयुवमघोनामतद्धिते ॥ १३३ ॥

श्व०म्, अ०ते । श्वन्, युवन्, मघवन् इत्येतेषां भसञ्ज्ञकाना मतद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात् । यथा-शुनः । शुना । शुने । यूनः । यूना । यूने । मघोनः । मघोना । मघोने ॥

तद्धित वर्जित प्रत्यय परे होतो भसंज्ञक श्वन्, युवन् तथा मघवन् अङ्ग को सम्प्रसारण हो ॥ १३३ ॥

अल्लोपोऽनः ॥ १३४ ॥

अ०पः, अनः । अनित्येवमन्तस्य भस्य अकारलोपः स्यात् । यथा-राज्ञः । राज्ञा । राज्ञे ॥

अन्नन्त भसंज्ञक अङ्ग के अकार का लोपहो ॥ १३४ ॥

षपूर्वहन् धृत राज्ञामणि ॥ १३५ ॥

ष०म्, अणि । षपूर्वोयोऽन्-तस्य हनादेश्च,-भस्यातो लोपः स्यादणिपरे । यथा-औक्ष्णः । ताक्ष्णः । भ्रौणघ्नः । धृतराज्ञोऽपत्यम्-धार्त्तराज्ञः ॥

अण् प्रत्यय परे होतो षकार है पूर्व जिस के ऐसे अन्नन्त, हनन्त तथा धृतराजन् भसंज्ञक अङ्गों के अकार का लोपहो ॥ १३५ ॥

विभाषा ङिश्योः ॥ १३६ ॥

ङिश्योः परयोः अनोवाऽकार लोपः स्यात् । यथा—राज्ञि, राजनि । साम्नि, सामनि ॥

ङि और शी विभक्ति परे होतो अन्नन्त अङ्ग के अकारका लोप विकल्प से हो

न संयोगाद् वमन्तात् ॥ १३७ ॥

वकारमकारान्तसंयोगात्परस्यानोऽकारलोपो न स्यात् । यथा-यज्वनः । यज्वना । ब्रह्मणः । ब्रह्मणा ॥

वकारान्त और मकारान्त संयोग से परे अन्नन्त अङ्गके अकारका लोप न हो॥

अचः ॥ १३८ ॥

लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याऽकारस्य लोप स्यात् । यथा—दधीचः पश्य॥

लुप्तनकार भसंज्ञक अञ्चति धातु के अकारका लोपहो ॥ १३८ ॥

उद ईत् ॥ १३९ ॥

उदः, ईत् । उच्छब्दात् परस्य लुप्तनकारस्याऽञ्चते भस्याकारस्य ईत् स्यात् । यथा—उदीचः । उदीचा ॥

उत् शब्द से परे लुप्तनकार भसंज्ञक अञ्चति धातुके अकारको ईकारादेशहो ॥

आतो धातोः ॥ १४० ॥

आतः, धातोः।आकारान्तो यो धातु स्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः स्यात् । यथा—विश्वपः । विश्वपा । विश्वपे ॥

भसंज्ञक आकारान्त धातुका लोपहो ॥ १४० ॥

मन्त्रे ष्वाङ्यादेरात्मनः ॥ १४१ ॥

मन्त्रेषुँ, आँङि, आँदेः, आत्मनः । मन्त्रेषु आङि परे आत्मशब्दस्यादेर्लोपः स्यात् । यथा-त्मना देवेषु ॥

मन्त्र विषय में आङ् (टा) विभक्ति परे हो तो आत्मन शब्द के आदि का लोप हो ॥ १४१ ॥

तिविंशतेर्डिति ॥ १४२ ॥

ति, विंशतेः, डितिँ । विंशते भस्य तिशब्दस्य लोपःस्याड्डिति । यथा-विंशत्या क्रीतः-विंशकः । विंशशतम् ॥

डित् प्रत्यय परे हो तो भसंज्ञक विंशति शब्द के ति का लोप हो ॥ १४२ ॥

टेः ॥ १४३ ॥

डिति परे भस्य टेर्लोपः स्यात् । यथा-कतरत्, द् । कुमुद्वान् ॥

डित् प्रत्यय परे हो तो भसंज्ञक टि का लोप हो ॥ १४३ ॥

नस्तद्धिते ॥ १४४ ॥

नः, तँ० ते । नान्तस्य भस्य टेर्लोपः स्यात् तद्धिते परे । यथा-उपराजम् । अध्यात्मम् ॥

तद्धित प्रत्यय परे हो तो नकारान्त भसंज्ञक अङ्ग के टि भाग का लोप हो ॥

अह्नष्टखोरेव ॥ १४५ ॥

अह्नः, टखोः, एव । टिलोपः स्यात् । नान्यत्र । यथा-उत्तमाह्नः । द्वे अहनी भृतः-द्व्यहीनः क्रतुः । तद्धितार्थे द्विगुः ॥

ट तथा ख प्रत्यय के ही परे अहन शब्द के टिभाग का लोप हो ॥ १४५ ॥

ओर्गुणः ॥ १४६ ॥

ओः, गुणः । उवर्णान्तस्य भस्य गुणः स्या ताद्धिते परे । यथा—शङ्कव्यंदारू । पिचव्यः कर्पासः । कमण्डलव्यम् पित्तलम् ॥

तद्धित प्रत्यय परे होतो उवर्णान्त भसंज्ञक अङ्गको गुण देश हो ॥ १४६ ॥

ढे लोपेऽकद्रा ॥ १४७ ॥

कद्रू भिन्नस्य उवर्णान्तस्य भस्य लोप स्स्याड्ढे पेरे। यथा—कामण्डलेयः । कमण्डलुशब्दश्चतुष्पाज्जातिविशेषे ॥

ढ प्रत्यय परे होतो कद्रू शब्द वर्जित भसंज्ञक उवर्णान्त अङ्गका लोपहो ॥ १४७

यस्येति च ॥ १४८ ॥

यस्य, ईति, च । भस्येवर्णाऽवर्णयोर्लोपः स्यादीकारेताद्धिते च परे । यथा—इवर्णान्तस्य-ईकारे-दाक्षी । इवर्णान्तस्य ताद्धिते-दुलि-दौलेयः। अवर्णान्तस्य ईकारे-कुमारी।अवर्णान्तस्यताद्धिते-दाशरथिः॥

ईकार और ताद्धित प्रत्यय परे होंतो भसंज्ञक इवर्णान्त और उवर्णान्त अङ्गकालोपहो

सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां यः, उपधायाः

एषामङ्गस्यो पधाया यस्य लोपः स्यादीकारे ताद्धितेच परे। यथा--सूर्ये णैकादिक्-सौरी । तैषमहःतैषीरात्रीः। अगस्ती। मत्सी।
(मत्स्यस्य ङ्याम्)॥(सूर्यागस्त्ययो श्छेचङ्यांम्)॥
सौरियः, सौरी । आगस्तीयः । आगस्ती ॥(तिष्यपुष्ययो नक्षत्राणि)॥ तिष्येण नक्षत्रेण युक्तः कालः तैषः । पौषः ॥

ईकार और तद्धित प्रत्यय परे होतो भसंज्ञक सूर्य, तिष्य, अगस्त्य तथा मत्स्य अङ्गों के उपधा यकार का लोप हो ॥ १४९ ॥

हलस्तद्धितस्य ॥ १५० ॥

हलः, तं० स्य । हलःपरस्य तद्धित यकारस्योपधाभूतस्य लोपः स्यादीति परे । यथा-गार्गी । वात्सी ॥

ई परे होतो हल्से परे तद्धित के उपधा यकार का लोपहो ॥ १५० ॥

आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति ॥ १५१ ॥

हल उत्तरस्याऽऽपत्ययकारस्य लोपः स्या त्तद्धिते परे नत्वाकारे यथा-गर्गाणं समूहः-गार्गकम् ॥

अकार भिन्न तद्धित प्रत्यय परे होतो हल् से परे अपत्यन्त सम्बन्धी यकार का लोप हो ॥ १५१ ॥

क्यच्व्योश्च ॥ १५२ ॥

क्यच्व्योः, च । हलउत्तरस्य आपत्ययकारस्य लोपः स्यात्- क्ये च्वौ च परे । यथा-वात्सीयति । गार्गीयति । गार्गीभवति । वात्सीभवति ॥

क्य और च्वि प्रत्यय परे हो तो हल् से उत्तर अपत्य सम्बन्धी यकार का लोप हो॥

बिल्वकादिभ्य श्छस्य लुक् ॥ १५३ ॥

वि० भ्यः, छस्य, लुक् । नडाद्यन्तर्गताबिल्वकादयः । तेभ्य श्छस्य लुक् स्यात्तद्धिते परे । यथा--बिल्वायस्यां सन्ति सा--बिल्वकीया । तस्यांभवा बैल्वकाः । वेत्रकीयाः--वैत्रकाः ॥

तद्धित प्रत्यय परे हो तो बिल्वादि गणपठित से परे छकार का लुक् हो ॥१५३॥

तुरिष्ठे मेयस्सु ॥ १५४ ॥

तुः, इ० सुँ । तृशब्दस्य लोपः स्यादिष्ठेमेयस्सुः परेषु । यथा--अतिशयेन कर्त्ता--करिष्ठः । दोहीयसी धेनुः । इमनिज्ग्रहण मुत्तरार्थम् ॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो तृ शब्द का लोप हो ॥१५४॥

टेः ॥ १५५ ॥

भस्य टेर्लोपः स्यादिष्ठेमेस्सु परेषु । यथा--पटिष्ठः । पटिमा । पटीयान् । लघिष्ठः । लघिमा । लघीयान् ॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे होंतो भसंज्ञक टिका लोपहो ॥१५५॥

स्थूल दूरयुवह्रस्व क्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ॥ १५६ ॥

एषां यणादि परं लुप्यते, पूर्वस्य च गुणः स्यादिष्ठादिषु परेषु । यथा-स्थूल-स्थविष्ठः।स्थवीयान्।इमनिच् तु पृथ्वादिष्वपठितेभ्यो न भवत्यनभिधानात् । दूर--दविष्ठः, दवीयान् । युवन्--यविष्ठः, यवीयान् । ह्रस्व-ह्रसिष्ठः, ह्रसिमा, ह्रसीयान् । क्षिप्र--क्षेपिष्ठः, क्षेपिमा, क्षेपीयान् । क्षुद्र-क्षोदिष्ठः, क्षोदिमा, क्षोदीयान् ॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो स्थूल, दूर, युवन, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र अंगों के यणादि परका लोप तथा पूर्व इक् को गुणादेश हो ॥१५६॥

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घ वृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वषित्रब्द्राघिवृन्दाः ॥ १५७ ॥

प्रियादीनां क्रमात् प्रादयः स्युः रिष्ठादिषु परेषु । यथा—प्रिय-प्रेष्ठः, प्रेमा, प्रेयान् । स्थिर-स्थेष्ठः, स्थेमा, स्थेयान् । स्फिर-स्फेष्ठः, स्फेयान् । उरु-वरिष्ठः, वरिमा, वरीयान् । बहुल- बंहिष्ठः, बंहिमा, बंहीयान् । गुरु-गरिष्ठः, गरिमा, गरीयान् । वृद्ध--वर्षिष्ठः, वर्षीयान् । तृप्र--त्रपिष्ठः, त्रपीयान् । दीर्घ-द्राघिष्ठः, द्राघिमा, द्राघीयान् । वृन्दारक--वृन्दिष्ठः, वृन्दीयान् । प्रियोरुगुरुबहुलदीर्घाः पृथ्वादिषु पठ्यन्ते, तत्रान्येषामिमनिच् न भवतीति नोदाह्रियते ॥

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे होंतो प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ और वृन्दारक अङ्गों को क्रमशः प्र, स्थ, स्फ, वर, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि, और वृन्द आदेशहों ॥ १५७ ॥

बहोर्लोपो भू च बहोः ॥ १५८ ॥

बहोः, लोपः, भू, च, बहोः । बहोः परयोरिमेयसो र्लोपः स्याद् बहोश्च भूरादेशः । यथा—भूमा । भूयान् ॥

बहुशब्द से परे इमनिच् तथा ईयसुन् प्रत्ययोंका लोप हो और बहु शब्द को भू आदेश हो ॥ १५८ ॥

इष्ठस्य यिट् च ॥ १५९ ॥

बहोःपरस्य इष्ठस्य लोपः स्यात्, यिडागमश्च । यथा—भूयिष्ठः ॥

बहु शब्दसे इष्ठन् प्रत्यय को यिट् का आगम और बहुके स्थानमें भू आदेशहो

ज्यादादीयसः ॥ १६० ॥

ज्यात्, आत्, ईयसः । ज्यादुत्तरस्यईयसआत्स्यात् । यथा—ज्यायान् ॥

ज्य शब्द से परे ईयसुन् प्रत्यय के ईकारको आकारादेशहो ॥ १६० ॥

र~~ तो हलादेर्लघोः ॥ १६१ ॥

रः, ऋतः, हलादेः, लघोः । हलादेर्लघो ऋकारस्य रः स्यात् इष्ठे मेयस्सुपरेषु । यथा—पृथोर्भावः—प्रथिष्ठः । प्रथिमा । प्रथीयान् ॥

इष्ठन्, इम निच् और ईयसुन् प्रत्यय परे होतो हलादि अङ्ग के लघु ऋकारको र आदेश हो ॥ १६१ ॥

विभाषर्जोश्छन्दसि ॥ १६२ ॥

विभाषा, ऋजोः, छन्दसि । छन्दसिविषये ऋजुशब्दस्य ऋतः स्थाने रोवा स्याद् इष्ठेमेयस्सु परेषु । यथा—रजिष्ठम् । ऋजिष्ठं वा ॥

छन्द विषय में इष्ठनादि प्रत्यय परे हों तो ऋजु शब्द के ऋकार को विकल्प से र आदेश हो ॥ १६२ ॥

प्रकृत्यैकाच् ॥ १६३ ॥

प्रकृत्या, एकाच् । इष्ठादिषु परेषु एकाच् प्रकृत्या । स्यात् यथा— श्रेष्ठः । श्रेयान् ।

इष्ठनादि प्रत्यय परे होतो एकाच् प्रकृति से रहे ॥ १६३ ॥

इनण्यनपत्ये ॥ १६४ ॥

इन्, अणि, अनपत्ये । अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात् । यथा—युवतीनां समूहः—यौवनम् ॥

अपत्यसे भिन्न अर्थमें अण् प्रत्ययपरे होतो इनन्त अङ्ग प्रकृति से रहे ॥ १६४

गाथि विदथि केशि गणिपणिनश्च ॥

गा०नः, च । इमे चाऽणि प्रकृत्या स्युः । यथा—गाथिनोऽपत्यम्— गाथिनः । वैदथिनः । कैशिनः । गाणिनः । पाणिनः ॥

अण् प्रत्यय परे होतो गाथिन्, विदाथिन्, केशिन, गणिन्, और पणिन् प्रकृतिसे रहें॥

संयोगादिश्च ॥ १६६ ॥

संंदिः, च। संयोगादि श्चेन् प्रकृत्या स्यादणि परे। यथा-चाक्रिणोऽपत्यम्-चाक्रिणः॥

अण् प्रत्यय परे होतो संयोगादि इन्नन्त अङ्ग प्रकृति से रहे ॥ १६६ ॥

अन् ॥ १६७ ॥

अणि अन् प्रकृत्या स्यात्। यथा-राजनः॥

अण् प्रत्यय परे होतो अन् प्रकृति से रहे ॥ १६७ ॥

ये चाऽभावकर्मणोः ॥ १६८ ॥

यादौ तद्धिते परे अन प्रकृत्या स्यान्नतु भावकर्मणोः। यथा-राजन्यः॥

भाव कर्म वर्जित यकारादि प्रत्यय परे होतो अन्नन्त अङ्ग प्रकृति से रहे॥

आत्माध्वानौ खे ॥ १६९ ॥

इमौ खे प्रकृत्या स्याताम्। यथा-आत्मनेहितम्-आत्मनीनम्। अध्वानमलङ्गामी-अध्वनीनः॥

ख प्रत्यय परे होतो आत्मन् और अध्वन् शब्द प्रकृति से रहें॥ १६९॥

न मपूर्वोऽपत्येऽवर्म्मणः ॥ १७० ॥

न, मपूर्वः, अपत्ये, अ०र्णः। मपूर्वोऽन् प्रकृत्या न स्यादपत्ये-ऽणि परे। यथा-भाद्रसामः॥

वर्मन् शब्दको छोड़कर मकार जिसके पूर्व हो ऐसा अन्नन्त प्रकृति से न रहे अण् प्रत्यय परे होतो ॥ १७० ॥

ब्राह्मोऽजातौ ॥ १७१ ॥

ब्राह्मः, अजातौ । योगविभागोऽत्र क्रियते । (ब्राह्मः) इति निपात्यते अनपत्येऽणि । ब्राह्मं—हविः । ततः (अजातौ) । अपत्ये जातावणि ब्रह्मणोष्टिलोपो न स्यात् । ब्रह्मणोऽपत्यं—ब्राह्मणः ॥

अजाति अपत्यार्थ में अण् प्रत्ययान्त ब्राह्मशब्द निपातित है ॥ १७१ ॥

कार्मस्ताच्छील्ये ॥ १७२ ॥

कार्मः, ता० ल्ये । कार्म इति ताच्छील्ये णे टिलोपो निपात्यते । यथा—कर्मशीलः- कार्म्मः ॥

ण प्रत्ययान्त ताच्छील्य अर्थ में कार्म शब्द निपातित है ॥ १७२ ॥

औक्षमनपत्ये ॥ १७३ ॥

औक्षम्, अनपत्ये । अत्राऽणि टिलोपो निपात्यते । यथा—औक्षम्पदम् ॥

अनपत्य अर्थ में औक्ष यह निपातित है ॥ १७१ ॥

दाण्डिनायनहास्तिनायनाऽऽथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनि भ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि

इमानि निपात्यन्ते ॥

दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वासिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय और हिरण्मय शब्द निपातित हैं ॥ १७४ ॥

ऋत्व्यवास्त्व्यावास्त्वमाध्वीहिरण्ययानिच्छन्दसि ॥ १७५ ॥

ऋ०नि, छं०सि । छन्दसीमानि निपात्यन्ते । यथा-ऋतौभवम्-ऋत्व्यम् । वास्तुनि भवम् -वास्त्व्यम् । वास्त्वं च । मधुशब्दस्यापि स्त्रियां यण् देशो निपात्यते । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । हिरण्य शब्दाद् विहितस्य मयटो मशब्दस्य लोपो निपात्यते। हिरण्ययेनसवितारथेन॥

छन्दविषयमें ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी और हिरण्य शब्द निपातितहैं ॥

इति जीवाराम शर्म्म कृतायां पाणिनि सूत्रवृत्तौ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थःपादःसमाप्तोऽयमध्यायः.

अथ सप्तमाध्यायारम्भः

प्रथमः पादः ।

युवोरनाकौ ॥ १ ॥

युवोः, अनाकौ । यु वु - एतयोरनुनासिकयोः क्रमादन, अक, इमावादेशौ स्याताम् । यथा—नन्दनः । रमणः । सायंतनः चिरन्तनः । राबुल्तृचौ । कारकः । हारकः । वासुदेवकः । आर्जुनकः वासुदेवार्जुनाभ्या मिति वुन् ॥

अङ्गसे परे यु और वु को यथा क्रम अन और अक आदेश हों ॥ १ ॥

आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ॥ २ ॥

प्रत्ययादि भूतानां फादीनां क्रमादायन्नादय आदेशाः स्युः। यथा—नाडायनः । सौपर्णेयः । आत्मनीनम् । त्वदीयम् । क्षात्रियः ॥

अङ्गसे परे प्रत्ययके आदि फ, ढ, ख, छ और घ को यथा क्रम आयन् एय्, ईन्, ईय् और इय् आदेशहों ॥ २ ॥

झोऽन्तः ॥ ३ ॥

झः, अन्तः । प्रत्ययावयस्य झस्यान्तादेशः स्यात् । यथा—भवन्ति । (अतोगुणे) ॥

अङ्गसे परे प्रत्यय के आदि झकार को अन्त आदेशहो ॥ ३ ॥

अदभ्यस्तात् ॥ ४ ॥

अत्, अ०तं । अभ्यस्तादङ्गादुत्तरस्य झकारस्य अदादेशः स्यात् । यथा—ददति । ददतु । दधति । दधतु ॥

अभ्यस्त अङ्गों से परे झकार को अत् आदेश हो ॥ ४ ॥

आत्मनेपदेष्वनतः ॥ ५ ॥

आ०पु, अ०तंः । अनकारात् परस्याऽऽत्मनेपदेषु झस्य अदादेशः स्यात् । यथा—चिन्वते । चिन्वताम् ॥

आत्मनेपद विषय में अकार भिन्न अंग से परे प्रत्ययके झकारको अकारादेशहो

शीङो रुट् ॥ ६ ॥

शीङः, रुट् । शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात् । यथा—शेरते । शेरताम् । अशेरत ॥

शीङ् अङ्ग से परे झकारके स्थान में आदेश हुये अकारको रुट्का आगमहो ६

वेत्तेर्विभाषा ॥ ७ ॥

वेत्तेः, वि०षा । वेत्तेः परस्य झादेशस्यातो वा रुडागमः स्यात् । यथा—संविद्रते । संविदते ॥

वेत्ति अङ्ग से परे झकार के स्थान में हुये अकार को विकल्प से रुट् का आगम हो ॥ ७ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ८ ॥

छन्दसि विषये बहुलं रुडागमः स्यात् । लोपस्त आत्मने पदेष्वि

ति पक्षे तलोपः। यथा—धेनवे दुहे। लोपाभावे घृतं दुह्रते। न च भवति। अदुहत॥

छन्दोविषय में प्रत्यय को रुडागम बहुलता से हो॥ ८॥

अतो भिस ऐस ॥ ९ ॥

अतः, भिसः, ऐस्। अकारान्तादङ्गात परस्य भिस ऐस्स्यात्। यथा--पुरुषैः॥

अकारान्त अङ्ग से परे भिस् प्रत्यय को ऐस् आदेश हो॥ ९॥

बहुलं छन्दसि ॥ १० ॥

छन्दसि बहुलं भिसऐसादेशः स्यात्।यथा—नद्यैः देवेभिः सर्वेभिः

छन्दविषय में बाहुल्य से भिस् को ऐस् आदेश हो॥ १०॥

नेदमदसोरकोः ॥ ११ ॥

न, इ०सोः, अकोः। अककारयोरिदमदसोर्भिस् ऐस् न स्यात्। यथा—एभिः। अमीभिः॥

ककार भिन्न इदम् और अदस् शब्द के भिस् को ऐस् आदेश न हो॥११॥

टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ १२ ॥

टा०म्, इ० स्याः। अकारान्तादङ्गात्परेषां टाङसिङसाम् क्रमादिनादयः स्युः। यथा—वृक्षेण। वृक्षात्। वृक्षस्य॥

अकारान्त अङ्ग से परे टा, ङसि और ङस् को यथा क्रम इन आत् और स्य आदेश हों

ङेर्यः ॥ १३ ॥

ङे:, यः । अकारान्तादङ्गस्य परस्य ङे इत्येतस्य य इत्ययमादेशः स्यात् । यथा--धर्म्माय । पण्डिताय ॥

अकारान्त अङ्ग से परे ङे को य आदेश हो ॥ १३ ॥

सर्वनाम्नः स्मै ॥ १४ ॥

अतः सर्वनाम्नः, उत्तरस्य ङेः स्मै स्यात् । यथा--सर्वस्मै । विश्वस्मै । यस्मै । कस्मै ॥

अकारान्त सर्वनाम से परे ङे को स्मै आदेश हो ॥ १४ ॥

ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ॥ १५ ॥

अतः सर्वनाम्नः, उत्तरयोरेतयोरेतौ स्याताम् । यथा--सर्वस्मात् सर्वस्मिन् ॥

अकारान्त अङ्ग से परे ङसि और ङि को यथाक्रम स्मात् और स्मिन् आदेश हों

पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ॥ १६ ॥

पू० भ्यः, न० भ्यः, वा । एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्याताम् यथा--पूर्वस्मात्, पूर्वात् । पूर्वस्मिन्, पूर्वे ॥

पूर्वादि (पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर) नव सर्वनाम शब्दों से परे ङसि और ङि को यथाक्रम स्मात् और स्मिन् आदेश हों ॥

जसः शी ॥ १७ ॥

अदन्तात् सर्वनाम्नः परस्य जसः शी स्यात् । (अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः) यथा--सर्वे । विश्वे । ये । के । ते ॥

अदन्त सर्वनाम से परे जस् को शी आदेश हो ॥ १७ ॥

औङ आपः ॥ १८ ॥

औङः, आपः । आबन्तादङ्गात् परस्य, औङः शी स्यात् । औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा प्राचाम् । यथा—यशोदे । गङ्गे ।

आबन्त अंग से परे औङ् को शी आदेश हो ॥ १८ ॥

नपुंसकाच्च ॥ १९ ॥

न०तं, च । अस्मात् परस्य औङः शी स्यात् । यथा—पुस्तके पात्रे ॥

नपुंसक अङ्ग से परे औङ् को शी आदेश हो ॥ १९ ॥

जश्शसोः शिः ॥ २० ॥

क्लीबादुत्तरस्याऽनयोः शिः स्यात् । यथा—पुस्तकानि सन्ति । पुस्तकानि पश्य ॥

नपुंसक अङ्ग से परे जस् और शस् को शि आदेश हो ॥ २० ।

अष्टाभ्य औश् ॥ २१ ॥

अ०भ्यः, औश् । कृताकारादष्टनः परयोर्जश्शसोरौश् स्यात् । यथा—अष्टौ सन्ति । अष्टौ पश्य ॥

कृताकार अष्टन् शब्द से परे जस् और शस् को औश् आदेश हो ॥ २१ ॥

षड्भ्यो लुक् ॥ २२ ॥

षड्भ्यः, लुक् । षट्संज्ञकेभ्यः परयोर्जश्शसोर्लुक् स्यात् । यथा-षट् सन्ति । षट् पश्य । पञ्च सन्ति । पञ्च पश्य ॥

षट् संज्ञक से परे जस् और शस् का लुक् हो ॥ २२ ॥

स्वमोर्नपुंसकात् ॥ २३ ॥

स्वमोः, न० तं। क्लीबादङ्गात् परयोः स्वमोर्लुक स्यात्। यथा-दध्यस्ति। दध्यानय। मध्वस्ति। मध्वानय॥

नपुंसक अंग से परे सु और अम् का लुक् हो॥ २३॥

अतोऽम्॥ २४॥

अतः, अम्। अतोऽङ्गात् क्लीबात् परयोः स्वमोरम् स्यात्। यथा-पुस्तकमस्ति। पुस्तकं पश्य॥

अदन्त नपुंसक अङ्ग से परे सु और अम् को अम् आदेश हो॥२४॥

अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः॥ २५॥

एभ्यः क्लीबेभ्यः परयोः स्वमोरद्डादेशः स्यात्। यथा-कतरत् तिष्ठति। कतरत् पश्यति। कतमत्। इतरत्। अन्यतरत् अन्यत्॥

डतरादि पञ्च सर्व नामों से परे सु तथा अम् को अद्ड् आदेश हो॥ २५॥

नेतराच्छन्दसि॥ २६॥

न, इ० तं छं०सि। इतरशब्दात् परयोः स्वमोश्छन्दसि अद्डादेशो न स्यात्। यथा-वार्त्रघ्नमितरम्॥

छन्द विषयमें इतर शब्द से परे सु तथा अम् को अद्ड् आदेश न हो॥ २६॥

युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्॥ २७॥

यु० मं, ङसः, अश्। स्पष्टम्। यथा-तव। मम॥

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे ङस् विभक्ति को अश् आदेश हो॥ २७॥

ङे प्रथमयोरम्॥ २८॥

ङे प्र० योः, अम् । युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्ये तस्यप्रथमा द्वितीययोश्चाऽमादेशः स्यात् । यथा-तुभ्यम् । मह्यम् । त्वम् । अहम् । युवाम् । आवाम् । यूयम् । वयम् । त्वाम् । माम् । युवाम् । आवाम् ॥

युष्मद् और अस्मद् शब्द से परे ङे तथा प्रथमा, द्वितीया विभक्तिओं के स्थान में अम् आदेश हो ॥ २८ ॥

शसो नः ॥ २९ ॥

शसः, नः। युष्मदस्मद्भ्यां परस्य शसो नकारादेशः स्यात्। यथा-युष्मान् ब्राह्मणान् । अस्मान् क्षत्रियान् । युष्मान् कुलानि । अस्मान् कुलानि ॥

युष्मद् तथा अस्मद् से परे शस् विभक्ति को नकारादेश हो ॥ २९ ॥

भ्यसोऽभ्यम् ॥ ३० ॥

भ्यसः, अभ्यम् , भ्यसोऽभ्यम, आदेशः स्यात्। यथा-युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ॥

युस्मद् तथा अस्मद् से परे भ्यस् को अभ्यम् आदेश हो ॥ ३० ॥

पञ्चम्या अत् ॥ ३१ ॥

प०म्याः, अत्। युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य पञ्चम्या भ्यसोऽत्स्यात्। यथा-युष्मत् । अस्मत् ॥

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे पञ्चमी विभक्ति के भ्यस् को अकारादेश हो॥

एकवचनस्य च ॥ ३२ ॥

युष्मदस्मद्भ्या मुत्तरस्य पञ्चम्येकवचनस्य अत् स्यात् । यथा-त्वत् । मत् ॥

युष्मद् और अस्मद् से परे पञ्चमी के एक वचन को अकारा देश हो ॥ ३२ ॥

सामः, आकम् ॥ ३३ ॥

युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य साम आकम स्यात्। यथा-युष्माकम् अस्माकम् ॥

युष्मद् और अस्मद् से परे साम (सुट् सहित आम्) को आकम् आदेश हो ॥

आत औ णलः ॥ ३४ ॥

आतः, औ, णलः। आकारान्तादङ्गात् परस्य णल् औकारादेशः स्यात्। यथा-दधौ। पपौ ॥

आकारान्त अङ्ग से परे णल् को औकारादेश हो ॥ ३४ ॥

तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ॥ ३५ ॥

तुह्योः, तातङ्, आशिषि, अ॰म्। आशिषि तुह्योस्तातङादेशो वा स्यात्। यथा-जीविताद् भवान्, जीवतु वा। जीवतात् त्वम्, जीव वा ॥

आशीर्वाद अर्थ में तु और हि को विकल्प से तातङ् आदेश हो ॥ ३५ ॥

विदेः शतुर्वसुः ॥ ३६ ॥

विदेः, शतुः, वसुः। वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा स्यात्। यथा—विदन्। विद्वान् ॥

ज्ञानार्थ विद धातु से परे शतृ प्रत्यय को विकल्प से वसु आदेश हो ॥ ३६ ॥

समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ॥ ३७ ॥

समासे, अं०वें, क्त्वः, ल्यप् । अनञ् पूर्वे समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात् । यथा—प्रकृत्य।प्रहृत्य।पार्श्वतःकृत्य।नानाकृत्य।द्विधाकृत्य ॥

अनञ् पूर्व समास में अङ्ग से परे क्त्वा प्रत्ययको ल्यप् आदेश हो ॥ १७ ॥

क्त्वापिच्छन्दसि ॥ ३८ ॥

क्त्वा, अपि, छन्दसि । छन्दसि विषये अनञ् पूर्वे समासे क्त्वा इत्येतस्य स्थाने वा क्त्वा, स्यात् । यथा—यजमानं परिधापयित्वा। उद्धृत्य जुहोति ॥

छन्द विषय में अनञ् पूर्व समास होतो क्त्वा के स्थान में विकल्प से क्त्वा आदेश हो ॥ १८ ॥

सुपांसुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्या याजालः ॥ ३९ ॥

छन्दसि विषये सुपां स्थाने सु, लुक्, पूर्वसवर्ण, आ, आत, शे, या, डा, ड्या, याच्, आल्, इतीमे, आदेशाः स्युः । यथा—सु, पन्थाः । पन्थान इति स्थाने । लुक्,परमे व्योमन् । व्योमनि इति प्राप्ते। पूर्वसवर्ण,मती । मत्या, इति प्राप्ते । आ, उभा यन्तारौ । उभौ यन्तारौ इति प्राप्ते । आत्, न नाद् ब्राह्मणाद् । न तान् ब्राह्मणान् इति प्राप्ते । शे, न युष्मे वाजबन्धवः । अस्मे इन्द्राबृहस्पती । युष्मासु, अस्मभ्यमिति प्राप्ते । या, उरुया । धृष्णुया । उरुणा । धृष्णुनेति प्राप्ते। डा,नाभा पृथिव्याम् । नाभाविति प्राप्ते । ड्या, अनुष्ठ्या च्यावयतात् । अनुष्ठानमनुष्ठेति प्राप्ते। याच्, साधुया । साध्विति सोर्लुक् प्राप्ते । आल्, वसन्ता यजेत् । वसन्ते इति प्राप्ते। (इयाडि याजी काराणामुपसङ्ख्यानम्) इया,उर्विया । दार्विया ।

उरुणा । दारुणेति प्राप्ते । डियाच्, सुक्षेत्रिया । सुगात्रिया । सुक्षेत्रिणा, सुगात्रिणेति प्राप्ते । ईकारः, दृतिं न शुष्कसरसी शयानम् । सरसि इति प्राप्ते । (आङ्याजयारामुपसङ्ख्यानम्)॥ आङ्, ॥ प्रबाहवा । प्रबाहुनेति प्राप्ते । अयाच्, स्वप्नया । स्वप्नेनेति प्राप्ते । अयार, सिन्धुमिव नावया । नावेति प्राप्ते ॥

छन्द विषय में सुपों के स्थान पर सु, लुक्, पूर्वसवर्ण, आ, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, और आल् आदेश हों ॥ ३९ ॥

अमो मश् ॥ ४० ॥

अमः, मश् । छन्दसि विषये मिबादेशस्यामो मशादेशः स्यात् । शित्वात्सर्वादेशः । आस्तिसिच इति ईट् । यथा—वधीं वृत्रम् । अवधिषमिति प्राप्ते ॥

छन्द विषय में मिप् के स्थान में हुये अम् को मश् आदेश हो ॥ ४० ॥

लोपस्त आत्मनेपदेषु ॥ ४१ ॥

लोपः, तः, आ० पु । छन्दसि विषये आत्मनेपदेषु यस्तकारस्तस्य लोपः स्यात् । यथा—अदुह्र । अदुह्रतेति प्राप्ते । दक्षिणतःशये । शेते इति प्राप्ते ॥

छन्द विषय में आत्मने पद के तकार का लोप हो ॥ ४१ ॥

ध्वमो ध्वात् ॥ ४२ ॥

ध्वमः, ध्वात् । छन्दसि विषये ध्वमोध्वादादेशः स्यात् । यथा—अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात् । वारयध्वमिति प्राप्ते ॥

छन्दविषय में अङ्गसे परे ध्वम् को ध्वात् आदेश हो ॥ ४२ ॥

यजध्वैनमिति च ॥ ४३ ॥

यजध्वम्, इति, च । एनामित्यस्मिन् परे ध्वमोऽन्तलोपो निपात्यते। यथा—यजध्वैनम् । यजध्वनमैनमिति प्राप्ते ॥

छन्द विषय में एनम् के परे यजध्वम् के मकार का लोप करके यजध्वैनम्, निपातित किया है ॥ ४३ ॥

तस्य तात् ॥ ४४ ॥

लोण्मध्यम पुरुष बहुवचनस्य स्थाने तात् आदेशः स्यात् । यथा—सूर्यं चक्षुर्गमयतात् । गमयतेतिप्राप्ते ॥

छन्द विषय में लोट् के मध्यम पुरुष के तकार के स्थान में तात् आदेशहो ॥

तप्तनप्तनथनाश्च ॥४५॥

तप्तनप्तनथनाः, च । छन्दसि विषये तस्थाने इमे स्युः । यथा—शृणोतु ग्रावाणः । शृणुत इति प्राप्ते । संवरत्रा दधातन । धत्तेतिप्राप्ते । जुजुष्टन । जुषध्वमिति प्राप्ते । छान्दसात्वात् श्लुः । विश्वे देवासो मरुतो यतिष्ठन ॥

छन्द विषय में तकार के स्थान में तप्, तनप्, तन और थन आदेशहों ४५

इदन्तो मसि ॥ ४६ ॥

इदन्तः, मसि । छन्दसि विषये मस् शब्द इकारान्तः स्यात् । इकार उच्चारणार्थः । यथा—नमोभरन्त एमसि । त्वमस्माकं तवस्मसि इमः स्म इति प्राप्ते ॥

छन्द विषय में मस् शब्द इकारान्तहो ॥ ४६ ॥

क्त्वो यक् ॥ ४७ ॥

क्त्वः, यक् । छन्दसि विषये क्त्वो यक् स्यात् । यथा-दत्वाय सविता धियः । दत्वा इतिप्राप्ते ॥

छन्द विषय में क्त्वा के स्थान में यक् आगमहो ॥ ४७ ॥

इष्ट्वीनमिति च ॥ ४८ ॥

इष्ट्वीनम्, इति, च । छन्दसि विषये क्त्वाप्रत्ययस्य ईनम् अन्तादेशो निपात्यते । यथा-इष्ट्वीनं देवान् । इष्ट्वा इति प्राप्ते ॥

छन्द विषय में क्त्वाप्रत्ययान्त यज धातु के अन्त्य को ईन् आदेश करके इष्ट्वीनम् निपातनकियाहै ॥ ४८ ॥

स्नात्व्यादयश्च ॥ ४९ ॥

स्ना०यः, च । आदिशब्दः प्रकारार्थः । आकारस्य ईकारो निपात्यते । यथा-स्नात्वी । पीत्वी । स्नात्वा । पीत्वेति प्राप्ते ॥

छन्द विषय में स्नात्वी सदृश शब्दों के आकारको ईकार निपातित किया है ४९

आज्जसेरसुक् ॥ ५० ॥

आत्, जसेः, असुक् । छन्दसि विषयेऽवर्णान्तादङ्गात् परस्य जसेरसुभागमःस्यात् । यथा- देवासः । ब्राह्मणासः । देवाः । ब्राह्मणइतिप्राप्ते ॥

छन्द विषय में अवर्णान्त अंग से परे जस् विभक्तिको असुक् का आगमहो ॥

अश्वक्षीर वृषलवणानामात्मप्रीतौ-क्यचि । ५१ ॥

अ०म्, आ० तौ, क्यचि । एषांक्वाचि परे असुगागमः स्यात् । (अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम्) ॥ यथा-अश्वस्यति वडवा ।

वृषस्यति–गौ॥(क्षीरलवणयोर्लालसायाम्)॥ क्षीरस्यति–बालकः।लवणस्यति–उष्ट्रः।(सर्वप्रातिपदिकानां क्यचि लालसायां सुगसुकौ) दधिस्यति,दध्यस्यति। मधुस्यति, मध्वस्यति॥

आत्म प्रीति विषय में क्यच् प्रत्यय परे होतो अश्व, क्षीर, वृष और लवण अङ्ग को असुक् का आगम हो॥ ५१॥

आमि सर्वनाम्नः सुट् ॥ ५२ ॥

अवर्णान्तात् सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः स्यात्। यथा–सर्वेषाम्। विश्वेषाम्। येषाम्। तेषाम्। सर्वासाम्। विश्वासाम्। यासाम्। तासाम्॥

अवर्णान्त सर्वनाम से विहित आम् को सुट् का आगम हो॥ ५२॥

त्रेस्त्रयः ॥ ५३ ॥

त्रेः,त्रयः। त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि परे। यथा-त्रयाणाम्॥

आम् विभक्ति परे होतो त्रिशब्द को त्रय आदेश हो॥ ५३॥

ह्रस्वनद्यापो नुट् ॥ ५४ ॥

ह्र०पः, नुट्। ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गादुत्तरस्याऽऽमो नुडागमः स्यात्। यथा–बालानाम्। अग्नीनाम्। भानूनाम्। कर्तॄणाम्। कुमारीणाम्। वधूनाम्। यशोदानाम्॥

ह्रस्वान्त नद्यन्त और आबन्त अङ्ग से परे आम् को नुट् का आगम हो॥५४॥

षट् चतुर्भ्यश्च ॥ ५५ ॥

षट्, चतुर्भ्यः, च। षट्सञ्ज्ञकेभ्यश्चतुरश्चोत्तरस्यामो नुडागमः स्यात्।

यथा—षण्णाम्। पञ्चानाम्। सप्तानाम्। अष्टानाम्। नवानाम्। दशानाम्। चतुर्णाम्॥

षट् संज्ञक और चतुर् शब्द से परे आम् विभक्ति को नुट् का आगमहो ॥५५॥

श्रीग्रामण्योश्छन्दसि ॥५६॥

श्री०ण्योः, छं०सि। छन्दसि विषये श्रीग्रामण्योरामोनुडागमः स्यात्। यथा—श्रीणाम्। ग्रामणीनाम्॥

छन्द विषय में श्री और ग्रामणी की आम् विभक्ति को नुट् का आगम हो५६

गोः पादान्ते ॥ ५७ ॥

छन्दसि गोः पादान्ते वर्त्तमानादुत्तरस्यामो नुडागमः स्यात्। यथा—विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम्॥

छन्दविषय में वर्त्तमान् पादान्त में गो शब्द से परे आम् को नुट् का आगमहो

इदितो नुम् धातोः ॥ ५८ ॥

इदितः, नुम्, धातोः। इदितो धातोर्नुमागमः स्यात्। यथा—निन्दति। निन्दतः। निन्दन्ति॥

इदित् धातुको नुम् का आगमहो ॥ ५८ ॥

शे मुचादीनाम् ॥ ५९ ॥

शे परे मुचादीनां नुमागमः स्यात्। यथा—मुञ्चति, मुञ्चतः, मुञ्चन्ति। लुम्पति, लुम्पतः, लुम्पन्ति। लिम्पति, लिम्पतः, लिम्पन्ति॥

श प्रत्यय परे होतो मुचादि गण पठित धातुओं को नुम् का आगम हो ५९

मस्जिनशोर्झलि ॥ ६० ॥

म० शोः, झलि । अनयोर्झलादौ प्रत्यये परे नुमागमः स्यात् । यथा--मङ्क्त्वा । मङ्क्तुम् । मङ्क्तव्यम् । नंष्ट्वा । नंष्टुम् । नंष्टव्यम् ॥

झलादि प्रत्यय परे होतो मस्जि और नश् अङ्ग को नुम् का आगम हो ॥६०॥

रधिजभोरचि ॥ ६१ ॥

र० भोः, अचि । अनयोर्नुमागमः स्यादजादौ प्रत्यये परे । यथा--रन्धयति-रन्धकः । जम्भयति-जम्भकः ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो रधि और जभि अङ्ग को नुम् का आगम हो ॥ ६१ ॥

नेट्यलिटि रधेः ॥ ६२ ॥

न, इटि, अ० टि, रधेः । लिड्वर्जे इटि परे रधेर्नुमागमो न स्यात् । यथा-रधिता । रधितुम् । रधितव्यम् ॥

लिट् वर्जित इडादि प्रत्यय परे होतो रध अङ्ग को नुम् का आगम नहो ॥ ६२ ॥

रभेरशब्लिटोः ॥ ६३ ॥

रभेः, अ० टोः । रभेर्नुमागमः स्यादाचिपरे नतुशब्लिटोः । यथा-आरम्भयति । आरम्भकः ॥

शप् और लिट् प्रत्यय को छोड़कर अजादि प्रत्यय परे होतो रभअङ्ग को नुम् का आगम हो ॥ ६३ ॥

लभेश्च ॥ ६४ ॥

लभेः, च । शब्लिड्वर्जितेऽजादौ प्रत्यये परे लभेश्च नुमागमः स्यात् । यथा-लम्भयति । लम्भकः ॥

शप् तथा लिट् भिन्न अजादि प्रत्यय परे होतो लभ अंग को नुम् का आगमहो ६४

आङो यि ॥ ६५ ॥

आङः, यि । आङः परस्य लभेर्नुम् स्याद्यादौ प्रत्यये परे । यथा—आलम्भ्यो—गौः । आलम्भ्या—वडवा ॥

यकारादि प्रत्यय परे होतो आङ् से परे लम्भ अङ्ग को नुमागम हो ॥ ६५ ॥

उपात् प्रशंसायाम् ॥ ६६ ॥

प्रशंसायां गम्यमानायामुपादुत्तरस्य लभेर्नुमागमः स्याद्यकारादौ विवक्षिते । यथा—उपालम्भ्यः साधुः । उपालम्भ्या भवता विद्या । उपालम्भ्यानि धनानि ॥

प्रशंसा गम्यमान होतो यकारादि प्रत्ययपरे होनेपर लभ अङ्गको नुम्का आगमहो॥

उपसर्गात् खल्घञोः ॥ ६७ ॥

उपसर्गात् खलघञोः परयो र्नुमागमः स्यात् । यथा—ईषत् प्रलम्भः । दुष्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः। घञि । प्रलम्भः। विप्रलम्भः। उपालम्भः॥

खल् और घञ् प्रत्यय परे होंतो उपसर्ग से परे लभ अङ्गको नुम् का आगमहो ॥

न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ॥ ६८ ॥

उपसर्गान्तर रहिताभ्यां सुदुर्भ्यां लभेर्नुमागमो न स्यात् खल्घञोः परतः । यथा—सुलभम् । दुर्लभम् । घञि । सुलाभः। दुर्लाभः ॥

खल् और घञ् प्रत्यय परे हों तो उपसर्गान्तर रहित सु तथा दुर् से परे लभ अङ्ग को नुम् का आगमनहो ॥ ६८ ॥

विभाषा चिण्णमुलोः ॥ ६९ ॥

चिण्णमुलो र्लभेर्नुमागमो वा स्यात्। यथा—अलम्भि । अलाभि । लम्भं लम्भम् । लाभं लाभम् ॥

चिण् और णमुल् परे होतो लभ अङ्गको विकल्पसे नुम् का आगमहो ॥६९॥

उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७०

उगितामङ्गानां धातुवर्जितानामञ्चतेश्च नुमागमः स्यात् सर्वनामस्थाने परे । यथा—भवतु—भवान्, भवन्तौ, भवन्तः । भवन्तम्, भवन्तौ । ईयसुन्-श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः । श्रेयांसम्, श्रेयांसौ । शतृ—पठन्, पठन्तौ, पठन्तः । पठन्तम्, पठन्तौ । अञ्चतेः—प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्चः । प्राञ्चम्, प्राञ्चौ ॥

सर्वनाम स्थान परे होतो धातु वर्जित उगित् तथा अञ्चति अङ्गको नुमागमहो ॥

युजेरसमासे ॥ ७१ ॥

युजेः, असमासे । युजेरसमासे सर्वनामस्थाने परे नुमागमः स्यात् । यथा—युङ्, युञ्जौ, युञ्जः । युञ्जम्, युञ्जौ ॥

सर्वनाम स्थान परे होतो समास वर्जित युज् अङ्गको नुम् का आगमहो ७१

नपुंसकस्य झलचः ॥ ७२ ॥

झलन्तस्याऽजन्तस्य च क्लीबस्य नुमागमः स्यात् सर्वनामस्थाने परे । यथा-यशांसि । पयांसि । फलानि । त्रपूणि । वारीणि ॥

सर्वनाम स्थान परे होतो झलन्त और अजन्त नपुंसक अङ्गको नुम् का आगमहो ॥

इकोऽचि विभक्तौ ॥ ७३ ॥

इकः, अचि, विभक्तौ । इगन्तस्य क्लीबस्याऽङ्गस्य नुमागमः स्यादचिविभक्तौ परे । यथा—त्रपुणी । जतुनी । एवमजादौ सर्वत्र ॥

अजादि विभक्ति परे होतो इगन्त नपुंसक अङ्गको नुम् का आगमहो ॥ ७३ ॥

तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य ॥

प्रवृत्ति निमित्तैक्ये भाषितपुंस्कामिगन्तं क्लीबं पुंवद् वा स्याद् टादावचि परे। यथा—अनादये। अनादिने। इत्यादि। शेषंवार्त्तिवत् ॥

तृतीयादि अजादि विभक्ति परे होतो भाषित पुंस्क नपुंसक अङ्गको विकल्प से नुमागम हो ॥ ७४ ॥

अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ॥७५॥

अ० म्, अनङ्, उ० त्तः । एषामनङादेशः स्याट् टादावचि विभक्तौ, सचोदात्तः । अल्लोपो नः। यथा—अस्थ्ना । अस्थ्ने । अस्थ्नः। अस्थ्नोः २ । अस्थनि, अस्थ्नि। एवं दधि सक्थ्यक्षि ॥

तृतीयादि अजादि विभक्ति परे हों तो अस्थि, दधि, सक्थि और अक्षि नपुंसक अङ्ग को अनङ् आदेशहो और वह उदात्त भी हो ॥ ७५ ॥

छन्दस्यपि दृश्यते ॥ ७६ ॥

छन्दसि, अपि, दृश्यते। अस्थ्यादीनामनङ् छन्दस्यपि दृश्यते। यथा--इन्द्रोदधीचो अस्थभिः। भद्रंपश्येमाक्षभिः ॥

छन्द विषय में भी अस्थि आदि शब्दो को अनङ् आदेश दीखताहै॥ ७६ ॥

ई च द्विवचने ॥ ७७ ॥

द्विवचने परे छन्दसि विषयेऽस्थ्यादीनामीकारादेशः स्यात्। सचोदात्तः। यथा--अक्षीभ्यांते ॥

छन्दविषय में द्विवचन विभक्ति परे होतो अस्थ्यादि अङ्गों को ईकारादेश हो ७७

नाभ्यस्ताच्छतुः ॥ ७८॥

न, अ०त्, शतुः। अभ्यस्तादुत्तरस्य शतुर्नुम न स्यात्। यथा- ददत्, ददतौ, ददतः। दधत्, दधतौ, दधतः, ॥

अभ्यस्त संज्ञक से परे शतृप्रत्यय को नुम् का आगम न हो ॥ ७८ ॥

वा नपुंसकस्य ॥ ७९ ॥

अभ्यस्तादुत्तरोयः शता तदन्तस्य क्लीबस्य नुमागमो वा स्यात् सर्वनामस्थाने। यथा-ददन्ति, ददति-कुलानि। जाग्रन्ति, जाग्रति-कुलानि ॥

अभ्यस्त संज्ञक से परे शतृ प्रत्ययान्त नपुंसक अङ्ग को विकल्प से नुम् का आगम हो॥

आच्छीनद्योर्नुम् ॥ ८० ॥

आत्, शी०द्योः, नुम्। अवर्णा दुत्तरस्य शतुर्वानुमागमः स्याच्छी नद्योःपरतः यथा- तुदन्ती, तुदती -कुलानि। तुदन्ती, तुदती—धीवरी॥

शी और नदी परे होतो अवर्णान्त अङ्गसे परे शतृ प्रत्ययको विकल्पसे नुमागमहो॥

शप्श्यनोर्नित्यम् ॥८१॥

श०नोः, नित्यम्। शप्श्यनो रात् परस्य शतुर्नित्यं नुमागमः स्याच्छीनद्योः परतः। यथा—पचन्ती कुले। दीव्यन्ती धीवरी ॥

शी तथा नदीपरे होतो शप् और श्यन् के शतृ प्रत्ययको नित्य नुम्का आगमहो ॥

सावनडुहः ॥ ८२ ॥

सौ, अ०हः। अनडुहो नुम् स्यात् सौपरे। यथा--अनड्वान्। अनड्वन्॥

सु परे होतो अनडुह अंग को नुम् का आगमहो ॥ ८२ ॥

दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ॥ ८३ ॥

छन्दसि विषये एषां नुम्स्यात् सौपरे। यथा–ईदृङ्। स्वावान् सुतवान्॥
छन्द विषयमें सु परे होतो दृक्, स्ववस् तथा स्वतवस अंगोंको नुमागमहो ८३

दिव औत् ॥ ८४ ॥

दिवः, औत्। दिविति प्रातिपदिकस्य औत् स्यात् सौ परे। यथा-द्यौः॥
सु विभक्ति परे होतो दिव इस प्रातिपदिक को औ आदेशहो ॥ ८४ ॥

पथिमथ्यृभुक्षामात् ॥ ८५ ॥

प०क्षाम्, आत्। एषामाकारान्तोदेशः स्यात् सौ परे। यथा—पन्थाः। मन्थाः। ऋभुक्षाः॥
सु परे होतो पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् अंगोंको आकारादेशहो ॥८५॥

इतोऽत्सर्वनामस्थाने ॥ ८६ ॥

इतः, अत्, स० ने। पथ्यादे रिकारस्य स्थानेऽकारः स्यात् सर्वनाम स्थाने परे। यथा–पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः। पन्थानम्, पन्थानौ एवंमन्थाः, ऋभुक्षाः॥
सर्वनाम् स्थान परे होतो पथिन् मथिन् यथा ऋभुक्षिन् अङ्गों के इकार को अकारादेश हो ॥ ८६ ॥

थो न्थः ॥ ८७ ॥

थः, न्थः। पथिमथोस्थस्यन्थादेशः स्यात् सर्वनामस्थाने परे। यथा पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः। पन्थानम्, पन्थानौ। एवम्। मन्थाः॥
सर्वनाम स्थान परे होतो पथिन् तथा मथिन् अङ्गों के थकार न्थ आदेश हो॥

भस्यटेर्लोपः ॥ ८८ ॥

भस्य, टेः, लोपः । भसञ्ज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात् । यथा-पथः । पथा । पथे । एवम्-मथ्पृभुक्षोः ॥

भसंज्ञक पथ्यादिकों की टि का लोप हो ॥ ८८ ॥

पुंसोऽसुङ् ॥ ८९ ॥

पुंसः, असुङ् । सर्वनामस्थानेपरेपुंसोऽसुङादेशः स्यात् । यथा-पुमान्, पुमांसौ, पुमांसः । पुमांसम्, पुमांसौ ॥

सर्वनाम स्थान परेहोतो पुंस शब्द को असुङ् आदेश हो ॥ ८९ ॥

गोतो णित् ॥ ९० ॥

गोतः, णित् । गोशब्दात् परं सर्वनाम स्थानं णितवत् स्यात् । यथा-गौः, गावौ, गावः । गावम्, गावौ ॥

गो शब्द से परे सर्वनाम स्थान णित्वत् हो ॥ ९० ॥

णलुत्तमो वा ॥ ९१ ॥

णल्, उत्तमः, वा । उत्तमोणल्वा णित् स्यात् । यथा-अहं चकर-चकार वा

उत्तम पुरुष का णल् विकल्प से णित्वत् हो ॥ ९१ ॥

सख्युरसम्बुद्धौ ॥ ९२ ॥

सख्युः, असम्बुद्धौ । सख्युरङ्गात् परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनाम स्थानं णिद्वत् स्यात्[1] । यथा-सखायौ, सखायः । सखायम्, सखायौ ॥

सम्बुद्धि वर्जित सर्वनाम स्थान परे होतो सखि अंगको णिद्वत् कार्यहो ९२

१—(७।२।११५) इति वृद्धिः ।

अनङ् सौ ॥ ९३ ॥

सख्युरङ्गस्यानङादेशः स्या दसम्बुद्धौ सौ परे। यथा—सखा ॥
सम्बुद्धि वर्जित सु परे हो तो सखि अङ्ग को अनङ् आदेश हो ॥ ९१ ॥

ऋदुशनस्पुरुदंशोनेहसां च ॥ ९४ ॥

ऋदन्तानामुशनसादीनां चाऽनङादेशः स्यादसम्बुद्धौ सौ परे। यथा—कर्त्ता। हर्त्ता। माता। पिता। उशना। पुरुदंशा। अनेहा ॥
सम्बुद्धि वर्जित सु परे हो तो ऋकारान्त, उशनस् पुरुदंशस् और अनेहस् अङ्ग को अनङ् आदेश हो ॥ ९४ ॥

तृज्वत् क्रोष्टुः ॥ ९५ ॥

असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते। क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दो भवतीत्यर्थः। यथा—क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ ॥
सम्बुद्धि वर्जित सर्वनाम स्थान परे हो तो क्रोष्टु शब्द को तृजन्तवत् कार्य्य हो ९५

स्त्रियां च ॥ ९६ ॥

स्त्रियां च क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते। यथा—क्रोष्ट्री, क्रोष्ट्र्यौ, क्रोष्ट्र्यः।
स्त्री लिङ्ग में भी क्रोष्टु शब्द को तृजन्त वत् कार्य हो ॥ ९६ ॥

विभाषा तृतीयादिष्वचि ॥ ९७ ॥

वि० षा, तृ०षु अचि। अजादिषु तृतीयादिषु विभक्तिषु परेषु, क्रोष्टुर्वा तृज्वत्कार्यं स्यात्। यथा—क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना। क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे। क्रोष्टुः, क्रोष्ट्रोः २। क्रोष्ट्वोः। क्रोष्टरि, क्रोष्टौ ॥

अजादि तृतीयादि विभक्ति परे होतो क्रोष्टु शब्दको विकल्पसे तृज्वत् कार्य्यहो

चतुरनडुहोरामुदात्तः ॥ ९८ ॥

च०हो:, आम्, उदात्तः । अनयोरामस्यात् सर्वनामस्थाने परे, सचोदात्तः । यथा—चत्वारः । अनड्वान्, अनड्वाहौ, अनड्वाहः । अनड्वा हम् । अनड्वाहौ ॥

सर्व नाम स्थान परे होतो चतुर् और अनडुह् अंग को आम्का आगमहो ९८

अम् सम्बुद्धौ ॥ ९९ ॥

चतुरनडुहोरम् स्यात् सम्बुद्धौ परे।यथा—हे प्रिय चत्वः हे अनड्वन् ॥

सम्बुद्धि परे होतो चतुर् और अनडुह् अङ्गको अम् का आगमहो ॥ ९९ ॥

ऋत इद्धातोः ॥ १०० ॥

ऋतः, इत्, धातोः । ऋदन्तस्य धातो रङ्गस्य इकारादेशः स्यात् । यथा—किरति । गिरति । आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् ॥

ऋदन्त धातुके अङ्गको इकारादेशहो ॥ १०० ॥

उपधायाश्च ॥ १०१ ॥

उ०याः, च । धातोरुपधा भूतस्य ऋत इत् स्यात् । रपरत्वम् । (उपधायांच) इति दीर्घः । यथा—कीर्त्तयति, कीर्त्तयतः, कीर्त्तयन्ति॥

धातु के उपधा भूत ऋकारको भी इकारादेशहो ॥ १०१ ॥

उदोष्ठ्यपूर्वस्य ॥ १०२ ॥

१—हलश्चेति दीर्घः । रदाभ्यामिति निष्ठानत्वम् ।

उर्द्, ओ०स्यं। ओष्ठ्य पूर्वो यस्माद्, ऋकाराद्, असावोष्ठ्यपूर्वः तदन्तस्य धातो रङ्गस्योकारादेशः स्यात्। यथा-पिपूर्त्तः। पिपुरति॥

ओष्ठ्यपूर्व है जिस वर्ण के ऐसे ऋदन्त अंग को उकारादेशहो॥ १०२॥

बहुलं छन्दसि॥ १०३॥

छन्दसि विषये बहुलमृकारान्तस्य धातो रङ्गस्योकारादेशः स्यात्। यथा-ततुरिः। जगुरिः। पपुरिः। न च। पप्रितमम्॥

छन्दो विषय में ऋकारान्त अंग को बाहुल्य से उकारादेशहो॥ १०३॥

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः॥

द्वितीयः पादारम्भः॥

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु॥ १॥

इगन्तस्याङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदेषु सिचि। यथा-अचैषीत्। अलावीत्। अकार्षीत्॥

परस्मैपद में सिच् प्रत्यय परे होतो इगन्त अंग को वृद्धिहो॥ १॥

अतोल्रान्तस्य॥ २॥

अतः, ल्रा०स्यं। ल्रान्तस्यातो वृद्धिः स्यात् परस्मैपदेषु सिचि। यथा-क्षर, अक्षारीत्। ज्वल, अज्वालीत्॥

परस्मैपद में सिच् प्रत्यय परे होतो रेफ और लकार जिस के समीप हों ऐसे अकारको वृद्धि हो॥ २॥

वदव्रजहलन्तस्याचः॥ ३॥

२—(हलिचेति) दीर्घः॥

व०स्य, अचः । वदेर्व्रजेर्हलन्तस्य चाङ्गस्याचः स्थाने वृद्धिः स्यात् सिचि परस्मैपदेषु । यथा—अवादीत् । अव्राजीत् । हलन्तानाम् । अभैत्सीत् । अपाक्षीत् । अच्छैत्सीत् । अरौत्सीत् ॥

परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे होतो वद, व्रज तथा हलन्त अंगों के अच् को वृद्धि हो ॥ ३ ॥

नेटि ॥ ४ ॥

न, इटि । इडादौ सिचि हलन्तस्याङ्गस्य वृद्धिर्न स्यात् । यथा—अदेवीत् । असेवीत् । अकोषीत् । अमोषीत् ॥

परस्मैपद विषय में इडादि सिच् प्रत्ययपरे होतो हलन्त अंगको वृद्धि नहो ॥४॥

ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ५

ह्मकान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानां क्षणश्वश जागृणिश्वि इत्येषां मेदितां च वृद्धिर्नस्यादिडादौसिचि परस्मै पदेषु यथा— अग्रहीत् । अस्यमीत् । अव्ययीत् । अक्षणीत् । अश्वसीत् । अजागरीत् । ऐलयीत् । अश्वयीत् । अकटीत् ॥

परस्मै पद विषय में इडादि सिच् प्रत्यय परे होतो हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, णि, श्वि और एदित् अङ्गों को वृद्ध्यादेश न हो ५

ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ ६ ॥

ऊ०तेः, वि०षा । ऊर्णोतेरिडादौ सिचि परस्मैपदेषु वा वृद्धिः स्यात् । यथा—और्णावीत् । और्णवीत् ॥

परस्मै पद विषय में इडादि सिच् परे होतो ऊर्णुञ् धातु को विकल्प से वृद्धिहो

अतोहलादेर्लघोः ॥ ७ ॥

अतः, हलादेः, लघोः, । हलादेर्लघोरकारस्य इडादौ सिचि परस्मै पदेषु वृद्धिर्वा स्यात । यथा—अखदीत्, अखादीत् । अवदीत्, अवादीत् ॥

परस्मैपद विषय में इडादि सिच् परे होतो हलादि अंग के लघु अकार को विकल्प से वृद्धि हो ॥ ७ ॥

नेड्वशि कृति ॥ ८ ॥

न, इट्, वशि, कृति । वशादौ कृति प्रत्यये परे इडागमो न स्यात । यथा—ईश्वरः ॥

वशादि कृत् प्रत्यय परे होतो अंग को इट् का आगम न हो ॥ ८ ॥

तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ॥ ९ ॥

एषां दशानां कृत् प्रत्ययानामिडागमो न स्यात् । क्तिन्क्तिचोः सामान्येन ग्रहणमिति । यथा—दीप्तिः । तन्तिः । तु । सक्तुः । त्र । पत्रम् । त । हस्तः । थ । कुष्ठम् । सि । कुक्षिः । सु । इक्षुः । सर । अक्षरम् । शल्कः । स । वत्सः ॥

ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क और सकृत् प्रत्ययान्तों को इट् आगम न हो ॥

एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ॥ १० ॥

ए० चः, उ० शे, अ० त् । उपदेशेयो धातुरेकाजनुदात्तश्च तस्मादिडागमो न स्यात् । के पुनरुपदेशेऽनुदात्ता ये तथा पठ्यन्ते । त एवाऽनिट् कारिकास्वत्र विभक्ताः प्रदर्श्यन्ते । यथा—अनिट्

स्वरान्तो भवतीति दृश्यतामिमांस्तु सेटः प्रवदन्तितद्विदः। अदन्त
मूदन्त मृतां च वृङ् वृञौ, श्विडी ङिवर्णेष्वथ शीङ् श्रिञावपि॥१॥
गणस्थ मूदन्त मृतां च रुस्नुवौ, क्षुवन्तथोर्णोति मथो युणुच्णवः।
इति स्वरान्तानिपुणैः समुच्चिता,स्ततो हलन्तानपि सान्निबोधत॥२॥
शकिस्तुकान्तेष्वनिडेक इष्यते, घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी।
रभिस्तु भान्तेष्वथ मैथुने यभि, स्ततस्तृतीयोलभिरेव नेतरे॥ ३ ॥
यमिर्यमन्तेष्वनिडेक इष्यते, रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः।
नमिश्चतुर्थो हनिरेव पञ्चमो, गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम्॥ ४ ॥
दिहिर्दुहिर्मेहति रोहती वहिर्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः।
इमेऽनिटोष्टा विहमुक्त संशया, गणेषु हान्ताःप्रविभज्य कीर्त्तिताः॥५॥
दिशिं दृशिं दंशि मथो मृशिंस्पृशिं रिशिं रुशिं क्रोशातिमष्ठमं विशिम्
लिशं च शान्ताननिटः पुराणगा, पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान्॥६॥
रुधिः सराधिर्युधिबन्धि साधयः, क्रुधि क्षुधी शुध्यति बुध्यती व्यधिः।
इमेतु धान्तादशयेऽनिटो मता, स्ततः परं सिध्यतिरेव नेतरे॥ ७ ॥
शिषिं पिषिं शुष्यति पुष्यतीत्विषिं,विषिं श्लिषिं तुष्यति दुष्यतीद्विषिम्
इमान् दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ, गणेषु षान्तान् कृषिकर्षती तथा॥८
तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं,लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यती सृपिम्।
स्वरेण नीचेन शपिं छुपिं क्षिपिंप्रतीहि पान्तान् पठितांस्त्रयोदश॥९॥
अदिंहदिं स्कन्दिभिदि च्छिदिक्षुदीन्,शदिंसदिंस्विद्यतिपद्यतीखिदिम्
तुदिं नुदिं विद्यति विन्त इत्यपि,प्रतीहि दान्तान् दशपञ्चचानिटः॥१०
पचिं वचिं विचि रिचि रंजिपृच्छतीन्, निजिं सिचिं मुचिभजि
भञ्जि भृञ्जतीन्। त्यजिं यजिं युजि रुजि सञ्जि मज्जतीन्, भुजिं स्वजिं
सृजि मृजी विध्यनिट्स्वरान्॥ ११ ॥

उपदेश में जो एकाच् अनुदात्त धातु उस से परे प्रत्यय को इट् का आगम न हो

श्र्युकः किति ॥ ११ ॥

श्रिञ एकाच् उगन्ताच्च कितोनेडागमः स्यात् । यथा-श्रित्वा । श्रितः । श्रितवान् । उगन्तानाम् । युत्वा । युतः । युतवान् । लूत्वा । लूनः । लूनवान् । वृत्वा । वृतः । वृतवान् ॥

श्रिञ् और उगन्त धातुओं से परे कित् प्रत्यय को इट् का आगम न हो ११

सनिग्रहगुहोश्च ॥ १२ ॥

सनि, ग्र०होः,च । ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सनोनेडागमः स्यात् । यथा-जिघृक्षति । जुघुक्षति । उगन्तानाम् । रुरूषति । लुलूषति ।

ग्रह और गुह तथा उवर्णान्त धातुओं से परे सन् प्रत्यय को इट् का आगमनहो॥

कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ॥ १३ ॥

कृ० वः, लिटि । एभ्यो लिटोनेडागमः स्यात् । यथा-चकृव । चकृम ससृव । ससृम । बभृव । बभृम । ववृव । ववृम । ववृवहे । ववृमहे । तुष्टुव । तुष्टुम । दद्रुव । दद्रुम । सुस्रुव । सुस्रुम । शुश्रुव । शुश्रुम ।

कृ, सृ, भृ, (वृञ्, वृङ्) स्तु द्रु, स्रु और श्रु धातु से परे लिट् प्रत्यय को इट् का आगम न हो ॥ १३ ॥

श्वीदितोनिष्ठायाम् ॥ १४ ॥

श्वी०तः, नि० म् । श्वयते रीदितश्च निष्ठाया नेडागमः स्यात् । यथा-शूनः । शूनवान् । ईदितः । ओलजी । ओविजी । लग्नः । उद्विग्नः ॥

श्वि तथा ईदित धातुओं से परे निष्ठा प्रत्यय को इट् का आगम न हो ॥१४॥

यस्य विभाषा ॥ १५ ॥

यस्य क्वचिद् वेड् विहत स्ततो निष्ठाया नेडागमः स्यात्। यथा-विधूतः । विधूतवान् ॥

जिस धातु को कहीं विकल्प से इडागम कहा हो वह निष्ठा प्रत्यय को न हो।

आदितश्च ॥ १६ ॥

आ०तः,च । आदितश्च निष्ठाया नेडागमः स्यात्। यथा-ञिमिदा-भिन्नः । मिन्नवान् । ञिक्ष्विदा । क्ष्विण्णः । क्ष्विण्णवान् ॥

आकार जिस का इत् हो ऐसे धातु से परे निष्ठा प्रत्यय को इट् का आगम न हो।

विभाषा भावादिकर्म्मणोः ॥ १७ ॥

भावे, आदि कर्माणि च, आदितो निष्ठाया वेडागमः स्यात्। यथा-मिन्नमनेन । मेदितमनेन । प्रमिन्नः । प्रमेदितः । शक्तो घटः कर्त्तुम्, शकितो वा ॥

आदित धातु से परे भाव तथा आदिकर्म में विहित निष्ठा को विकल्प से इट् का आगम हो ॥ १७ ॥

क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि, मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु ॥ १८ ॥

क्षुब्धादीन्यष्टावनिट्कानि मन्थादिष्वर्थेषु निपात्यन्ते ॥

मन्थ आदि अर्थों में क्षुब्ध आदि आठ शब्द अनिडात्मक निपातन किये हैं १८

धृषिशसी वैयात्ये ॥ १९ ॥

इमौ निष्ठायामविनये एवाऽनिटौ स्याताम्। यथा–धृष्टः। विशस्तः॥
वैयात्य (निर्लज्जता) अर्थ में धृष और शसु धातु से परे निष्ठा को इट् का आगम नहो॥

दृढः स्थूलबलयोः ॥ २० ॥

स्थूले बलवति च दृढ इति निपात्यते। दृढोऽतवाऽश्वो भवन्?॥
स्थूल तथा बल अर्थ में इट् का निषेध करके दृढ यह निपातन किया है॥ २०॥

प्रभौ परिवृढः ॥ २१ ॥

प्रभावर्थे परिवृढ इति निपात्यते। यथा–परिवृढे भवतो गतिरीदृशी॥
प्रभु अर्थ में परि वृढ शब्द निपातित है॥ २१॥

कृच्छ्रगहनयोः कषः ॥ २२ ॥

एतयोरर्थयोः कषेर्निष्ठाया इण् न स्यात्। यथा–कष्टो मोहः।
कष्टं शास्त्रम्। दुःखगाहमित्यर्थः॥
कृच्छ्र और गहन अर्थ में कष धातु से परे निष्ठा प्रत्यय को इट् का आगम नहो

घुषिरविशब्दने ॥ २३ ॥

घुषिः, अ०ने। अविशब्दनेऽर्थे घुषेर्निष्ठाया नेडागमः स्यात्।
यथा–घुष्टारज्जुः। घुष्टौपादौ॥
घुष धातु से परे निष्ठ प्रत्यय को इट् का आगम नहो॥ २३॥

अर्देः सन्निविभ्यः ॥ २४ ॥

एतत् पूर्वादर्देर्निष्ठाया नेडागमः स्यात्। यथा–समर्णः। न्यर्णः। व्यर्णः॥
सम्, नि, और विपूर्वक अर्द धातु से परे निष्ठा प्रत्यय का इडागम नहो॥२४॥

अभेश्चाविदूर्यो ॥ २५ ॥

अभेः, च, आ०र्ये । आविदूर्येऽर्थेऽभिशब्दात्परस्यार्देर्निष्ठाया नेडागमः स्यात् । यथा-अभ्यर्णम्-नातिदूरम् । आसन्नं वा ॥

आविदूर्य अर्थमें अभि पूर्वक अर्द धातु से परे निष्ठा प्रत्यय को इडागम न हो ॥

णेरध्ययने वृत्तम् ॥ २६ ॥

णेः, अ० ने, वृत्तम् । ण्यन्ताद् वृत्तेः क्तस्येडभावो णिलुक् च अधीयानेऽर्थे निपात्यते । यथा-वृत्तं छन्दश्शास्त्रेण-सम्पादितम् । अधीतमिति यावत् ॥

अध्ययन अर्थ में ण्यन्त वृतु धातु से परे निष्ठा प्रत्यय को इट् का अभाव और णि का लुक् करके वृत्तम् यह शब्द निपातित किया है ॥ २६ ॥

वा दान्त शान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः

सर्वैते णिचि निष्ठान्ता वा निपात्यन्ते । यथा-दान्तः । दमितः । शान्तः । शमितः । पूर्णः । पूरितः । दस्तः । दासितः । स्पष्टः । स्पाशितः । छन्नः । छादितः । ज्ञप्तः । ज्ञपितः ॥

दम्, शम्, पूरी, दस, स्पश, छद और ज्ञप् ण्यन्त धातुओं से परे निष्ठा प्रत्ययको विकल्प से इट्का अभाव करके दान्तादि शब्द निपातित किये हैं ॥ २७ ॥

रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ॥ २८ ॥

एभ्योनिष्ठाया इड्वा स्यात् । यथा-रुष्टः । रुषितः । आन्तः । अमितः । तूर्णः । त्वरितः । संघुष्टः । संघुषितः । आस्वान्तः । आस्वनितः ॥

रुषि, अम, त्वर, संघुष और आस्वन अङ्ग से परे निष्ठा प्रत्यय को विकल्प से इट् का आगम हो ॥ २८ ॥

हृषेर्लोमसु ॥ २९ ॥

हृषेः, लोमसु । लोमसु विषये हृषेर्निष्ठाया वेडागमः स्यात् । यथा-हृष्टानि हृषितानि-लोमानि॥ (विस्मित प्रतिघातयोश्च)॥ हृष्टो हृषितो-मैत्रः । विस्मितः प्रतिहतो वेत्यर्थः ॥

लोम विषय में वर्त्तमान हृष धातु से परे निष्ठा प्रत्ययको विकल्प से इडागमहो ॥

अपचितश्च ॥ ३० ॥

अ०तः, च । चायते र्निपातोऽयं वा।यथा-अपचितः।अपचायितः॥

अप पूर्वक चायृ धातु से निष्ठा प्रत्यय में चि भाव और इट् का विकल्प से निषेध करके अपचित शब्द निपातन किया है ॥ ३० ॥

हृह्वरेश्छन्दसि ॥ ३१ ॥

हु. ह्वरेः, छन्दसि । छन्दसि विषये ह्वरेर्निष्ठायां हु आदेशः स्यात्। यथा-अहृतमसि हविर्द्धानम् ॥

छन्द विषय में निष्ठा प्रत्ययपरे होतो ह्वृ (कौटिल्ये) धातु को हु आदेशहो। ३१

अपरिह्वृताश्च ॥ ३२ ॥

अ०ताः, च । छन्दसि विषये अपरि ह्वृता इति निपात्यते।यथा-अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ॥

छन्द विषय में अपरि ह्वृताः शब्द निपातन किया है ॥ ३२ ॥

सोमे ह्वरितः ॥ ३३ ॥

छन्दसि सोमे ह्वरित इति निपात्यते । यथा-मानःसोमोह्वरितः ॥

छन्द विषय में सोम गम्यमान हो तो हृ धातु से परे निष्ठा प्रत्ययको इडागम तथा गुण करके हरित शब्द निपातित किया है ॥ ११ ॥

ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ता विशस्तृ शंस्तृ शास्तृ तरुतृ तरूतृ वरुतृ वरूतृ वरूत्री रुज्ज्वलिति क्षरिति क्षमिति वमित्यमितीति च ॥

ग्र० ति, इति, च। इमान्यष्टादश निपात्यन्ते। यथा—ग्रसितम्। ग्रस्तम् भाषायाम्। विष्कभिते, विष्कब्धे इति भा०। येनस्वस्तभितम्, स्तब्धमिति भा०। सत्येनोत्तभिता भूमिः, उत्तब्धेति भा०। चत्तावर्षेण विद्युत्, चतितेति भा०। उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्, विकासितमिति भा०। एकस्त्वष्टुरश्वस्याविशस्ता, विशसितेति भा०। उत शंस्ता, शंसितेति भा०। प्रशास्ता, प्रशासितेति भा०। तरुतारं रथानाम्, तरूतारम्। तरितारम्, तरीतारमिति भा०। वरुतारम्। वरूतारम्। वरितारम्। वरीतारमिति भा०। वरूत्रीभिः। अग्निरुज्ज्वलिति, उज्ज्वलतीति भा०। स्तोकं क्षरिति, क्षरतीति भा०। स्तोमं क्षमिति, क्षमतीति भा०। यः सोमं वमिति, वमतीति भा०। अभ्यमिति, अभ्यमतीति भा० ॥

छन्द विषय में ग्रसितं, स्कभितं, स्तभितं, उत्तभितं, चत्तं, विकस्ताः, विशस्तृ, शंस्तृ, शास्तृ, तरुतृ, तरूतृ, वरुतृ, वरूत्री, उज्ज्वलिति, क्षरिति, क्षमिति, वमिति, और अमिति निपातन किये हैं ॥

आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः ॥ ३५ ॥

आ० स्य, इट्, वलादेः। वलादेरार्द्धधातुकस्येडागमः स्यात्। यथा—पविता। पवितुम्। पवितव्यम् ॥

वलादि आर्धधातु को इट् का आगम हो ॥ ३५ ॥

स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते ॥ ३६ ॥

स्नु० मोः, आ०त्ते । अनात्मने पदनिमित्तेऽनयोर्वलादेरार्द्धधातुकस्येडागमः स्यात् । यथा—प्रस्नविता । प्रस्नवितुम् । प्रस्नावितव्यम् । प्रक्रमिता । प्रक्रमितुम् । प्रक्रमितव्यम् ॥

आत्मने पद निमित्त प्रत्यय न परे होंतो स्नु और क्रम अङ्ग से परे वलादि आर्धधातु को इडागम हो ॥ ३६ ॥

ग्रहोऽलिटि दीर्घः ॥ ३७ ॥

ग्रहः, अ०टि, दीर्घः । ग्रहः परस्येटो दीर्घः स्यान्नतु लिटि । यथा ग्रहीतुम् । ग्रहीता । ग्रहीतव्यम् ॥

लिट् वर्जित प्रत्यय परे होंतो ग्रह धातु से परे इट् प्रत्यय को दीर्घादेश हो ३७

वृतो वा ॥ ३८ ॥

वृतः, वा । वृङ् वृञ्भ्यामृदन्तेभ्यश्चेटो वा दीर्घः स्यान्नतुलिटि । यथा—वरीता, वरिता । प्रावरीता, प्रावरिता । ऋकारान्तेभ्यः । तरीता तरिता । आस्तरीता, आस्तरिता ॥

लिट् वर्जित प्रत्यय परे होंतो वृङ् और वृञ तथा ऋदन्त धातुओं से परे इट् प्रत्यय को विकल्प से दीर्घ हो ॥ ३८ ॥

न लिङि ॥ ३९ ॥

वृतः परस्येटो लिङि दीर्घो न स्यात् । यथा—वरिषीष्ट । प्रावरिषीष्ट । आतरिषीष्ट । विस्तरिषीष्ट ॥

लिङ् परे होंतो पूर्वोक्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ न हो ॥ ३९ ॥

सिचि च परस्मैपदेषु ॥ ४० ॥

अत्र वृतः परस्येटो दीर्घो न स्यात्। यथा—प्रावारिष्टाम्, प्रावारिषुः अतारिष्टाम्, अतारिषुः ॥

परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो वृङादि अङ्गों से परे इट् को दीर्घादेश न ॥ ४० ॥

इट् सनि वा ॥ ४१ ॥

वृङ् वृञ्भ्यामृदन्तेभ्यश्च सनो वेडागमः स्यात्। यथा—वुवूर्षते, विवरिषते, विवरीषते। प्रावुवूर्षति, प्राविवरिषति, प्राविवरीषति। ॠदन्तेभ्यः। तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति। तिस्तीर्षति, तिस्तरिषति, तिस्तरीषति ॥

वृङादि धातुओं से परे सन् प्रत्यय को विकल्प से इडागम हो ॥ ४१ ॥

लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ॥ ४२ ॥

लि० चोः, आ० षु। वृङ् वृञ्भ्या मृदन्तेभ्यश्च परयोर्लिङ्सिचो र्वेडागमः स्यात्तङि। यथा—वृषीष्ट, वरिषीष्ट। प्रावृषीष्ट, प्रावरिषीष्ट। आस्तीर्षीष्ट, आस्तरिषीष्ट। सिचि। अवृत, अवरिष्ट अवरीष्ट। प्रावृत्त, प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट। आस्तीर्ष्ट, आस्तरिष्ट, आस्तरीष्ट ॥

आत्मनेपद विषय में वृङादि धातुओं से परे लिङ् और सिच् प्रत्यय को विकल्प से इडागम हो ॥ ४२ ॥

ऋतश्च संयोगादेः ॥ ४३ ॥

ऋतः, च, सं० देः। ऋदन्तात् संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचो र्वेडागमः स्यात्तङि। यथा—स्तृषीष्ट, स्तरिषीष्ट। अस्तृत, अस्तरिष्ट ॥

आत्मनेपद विषय में संयोगादि ऋदन्त धातुओं से परे लिङ् और सिच् को विकल्प से इडागम हो ॥ ४३ ॥

स्वरति सूति सूयति धूञूदितो वा॥४४॥

स्व० तेः, वा । स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादे रार्ध धातुकस्य वेडागमः स्यात् । यथा-स्वर । स्वर्त्ता, स्वरिता । सूति । प्रसोता, प्रसविता । सूयति । सोता, सविता । धूञ् । धोता, धविता । ऊदिद्भ्यः । गाहू । विगाढा, विगाहिता । गुपू । गोप्ता, गोपिता ॥

स्वरति, सूति, सूयति, धूञ् और ऊदित धातुओं से परे वलादि आर्ध धातु को विकल्प से इडागमहो ॥ ४४ ॥

रधादिभ्यश्च ॥ ४५ ॥

र० भ्यः, च । रध, नश, तृप, दृप, द्रुह, मुह, ष्णुह, ष्णिह, एभ्यो वलादेरार्द्ध धातुकस्य वेडागमः स्यात । यथा—रद्धा, रधिता । नंष्ठा, नशिता । त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिता । द्रप्ता, दर्प्ता, दर्पिता । द्रोग्धा, द्रोढा, द्रोहिता । मोग्धा, मोढा, मोहिता । स्नोग्धा, स्नोढा, स्नोहिता । स्नेग्धा, स्नेढा, स्नेहिता ॥

रधादि आठ धातुओं से परे वलादि आर्ध धातुको विकल्पसे इडागमहो ॥ ४५ ॥

निरः कुषः ॥ ४६ ॥

निरः परात् कुषो वलादेरार्ध धातुकस्य वेडागमः स्यात् । यथा—निष्कोष्टा, निष्कोषिता ॥ निष्कोष्टुम्, निष्कोषितुम् । निष्कोष्टव्यम्, निष्कोषितव्यम ॥

निर् उपसर्ग पूर्वक कुष धातु से परे वलादि आर्ध धातु को विकल्पसे इडागमहो ४६॥

इण्निष्ठायाम् ॥ ४७ ॥

निरः कुषो ।निष्ठाया इडागमः स्यात्।यथा-निष्कुषितः।निष्कुषितवान्॥

निर् उपसर्ग पूर्वक कुष धातु से परे निष्ठा प्रत्यय को इडागम हो ॥ ४७ ॥

तीषसह लुभरुषरिषः ॥ ४८ ॥

तिं, ई० षः । इषादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्य वेडागमः स्यात् । यथा—एष्टा, एषिता । सोढा, सहिता । लोब्धा, लोभिता । रोष्टा, रोषिता । रेष्टा, रेषिता ॥

इषु, सह, लुभ, रुष और रिष अङ्ग से परे तकारादि आर्ध धातु को विकल्प से इडागम हो ॥ ४८ ॥

सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् ॥ ४९ ॥

सनि, इ० म् । इवन्तेभ्यः ऋधादिभ्यश्च सनो वेडागमः स्यात् । इड भावे (हलन्ताच्च)-इति कित्वम् । च्छ्वोरिति वस्य ऊठ् । यण् । द्वित्वम् । यथा—दुद्यूषति । दिदेविषति।सुस्यूषति।सिसेविषति।ऋधु । अर्दिधिषति । ईर्त्सति । भ्रस्ज । बिभ्रज्जिषति । बिभर्क्षति । दम्भु । दिदम्भिषति । धिप्सति । धीप्सति । श्रि । उच्छिश्रयिषति । उच्छिश्रीषति । स्वृ । सिस्वरिषति । सुस्वूर्षति । यु । यियविषति । युयूषति । ऊर्णु । प्रोर्णुनविषति । प्रोर्णुनुविषति । प्रोर्णुनूषति । भर । भृज्भ्वा, बिभरिषति । बुभूर्षति । ज्ञपि । जिज्ञपयिषति । ज्ञीप्सति । सन् । सिसनिषति । सिषासति ॥

इवन्त, ऋधु, भ्रस्ज, दम्भु, श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भर, ज्ञपि और सन् धातु से परे सन् प्रत्यय को विकल्प से इडागम हो ॥ ४९ ॥

क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ॥ ५० ॥

वेडागमः स्यात् । (क्लिश, उपतापे)--नित्यम्प्राप्ते (क्लिश, विबाधने)--अस्य क्त्वायां विकल्पे सिद्धेऽपि निष्ठायां निषेधेप्राप्ते विकल्पोज्ञेयः। यथा-क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा। क्लिशितः, क्लिशितवान्। क्लिष्टः, क्लिष्टवान् ॥

क्लिश धातु से परे क्त्वा तथा निष्ठा प्रत्यय को विकल्प से इडागम हो ॥५०॥

पूङश्च ॥ ५१ ॥

पूङः, च । पूङश्च क्त्वानिष्ठयोर्वेडागमः स्यात् । यथा-पवित्वा । पूत्वा । पवितः । पूतः । पूतवान् । पवितवान् ॥

पूङ् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा प्रत्यय को विकल्प से इडागम हो ॥५१॥

वसतिक्षुधोरिट् ॥ ५२ ॥

व० धोः, इट् । आभ्यां क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिडागमः स्यात् । यथा-उषित्वा । उषितः । उषितवान् । क्षुधित्वा । क्षुधितः । क्षुधितवान् ॥

वस और क्षुध धातु से परे क्त्वा और निष्ठा प्रत्यय को नित्य इडागम हो ॥

अञ्चेः पूजायाम् ॥ ५३ ॥

पूजार्थादञ्चेः[×]क्त्वानिष्ठयोरिडागमः स्यात् । यथा-अञ्चित्वा जानुजुहोति । अञ्चिता गुरवः ॥

पूजार्थक अञ्चु धातु से परे क्त्वा और निष्ठा प्रत्यय को इडागम हो ॥ ५३ ॥

लुभोऽविमोहने ॥ ५४ ॥

लुभः, वि० ने[1] । लुभ[×]क्त्वा निष्ठयोरिडागमः स्यान्नतु गार्ध्ये । यथा-लुभित्वा, लोभित्वा लुभितः । गार्ध्ये-लुब्धः ॥

१-लुभ, विमोहने, इति तुदादौ । लुभ गार्ध्ये इति दिवादौ ॥

अविमोहन (आकुलीकरण) अर्थ में वर्त्तमान लुभ धातु से परे क्त्वा तथा निष्ठा प्रत्यय को इडागम हो ॥ १४ ॥

जॄव्रश्च्योः क्त्वि ॥ ५५ ॥

आभ्यां परस्य क्त्व इडागमः स्यात्।यथा-जरीत्वा।जरित्वा।व्रश्चित्वा॥

जॄ और व्रश्चि धातु परे क्त्वा प्रत्यय को इडागम हो ॥ ५५ ॥

उदितो वा ॥ ५६ ॥

उ० तः, वा । उदितः परस्य क्त्वो वेडागमः स्यात् । यथा— शमित्वा। अनुनासिकस्य क्वीति दीर्घः—शान्त्वा । देवित्वा । द्यूत्वा । तमित्वा । तान्त्वा । दमित्वा॥ दान्त्वा ॥

उदित धातु से परे क्त्वा प्रत्यय को विकल्प से इडागम हो ॥ ५६ ॥

सेऽसिचिकृतचृतच्छृदतृदनृतः ॥५७॥

से, अ० चि, कृ० तः । एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्य वेडागमः स्यात् । यथा—कर्त्तिष्यति । कर्त्स्यति । चर्त्तिष्यति । चर्त्स्यति । छर्दिष्यति । छर्त्स्यति । तर्दिष्यति।तर्त्स्यति । नर्त्तिष्यति । नर्त्स्यति ॥

कृत, चृत, छृद, तृद, और नृत्, धातु से परे सिच् वर्जित सकारादि आर्द्ध धातु के प्रत्यय को विकल्प से इडागम हो ॥ ५७ ॥

गमेरिट् परस्मैपदेषु ॥५८॥

गमेः, इट्, पं० षु । गमेरुत्तरस्य सकारादेरार्द्धधातुकस्येडागमः स्यात् परस्मैपदेषु । । यथा—गमिष्यति । जिगमिषामि । अगमिष्यः॥

परस्मै पद विषय में सकारादि आर्ध धातुका इडागम हो ॥ ५८ ॥

न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ॥ ५९ ॥

न, वृद्भ्यः, च०, ४भ्यः । एभ्यः परस्य सकारादेरार्द्ध धातुकस्य परस्मैपदेषु नेडागमः स्यात् । यथा—वृत--विवृत्सति । वृधु--विवृत्सति । शृधु-शिशृत्सति । स्यन्दू--स्यन्त्साति ॥

परस्मैपद विषय में वृतु (वर्त्तने) वृधु (वृद्धौ) शृधु (शब्दकुत्सायाम्) और स्यन्दू (प्रस्रवणे) धातु से परे सकारादि आर्ध धातु को इडागम न हो ॥ ५९ ॥

तासि च क्लृपः ॥ ६० ॥

क्लृपेरुत्तरस्य तासेः सकारादेरार्द्धधातुकस्य च परस्मैपदेषु नेडागमः स्यात् । यथा--कल्प्ता । कल्प्स्यति । चिक्लृप्साति ॥

परस्मैपद विषय में क्लृप् धातु से परे तासि तथा सकारादि आर्ध धातुक प्रत्यय को इडागम न हो ॥ ६० ॥

अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ॥ ६१ ॥

अचः, ता० त्, थलि, अ० टः, नित्यम् । उपदेशेऽजन्तोयो धातुस्तासौ नित्यानिट् तस्मात् परस्य थलोनेडागमः स्यात् । यथा—याता । ययाथ । चेता । चिचेथ । नेता । निनेथ ॥

उपदेशमें जो अजन्तधातु तासिमें नित्य अनिट् उससेपरे थलको इडागम न हो ॥

उपदेशेऽत्वतः ॥ ६२ ॥

उपदेशेऽकारवांस्तासौ नित्यानिट् तस्मात् परस्यथलो नेडागमः स्यात् । यथा—पक्ता । पपक्थ । यष्टा । इयष्ट । शक्ता । शशक्थ ॥

उपदेश में जो अकारवान् धातु तासि में नित्य अनिट् उससे परे थलको इडागम न हो ॥ ६२ ॥

ऋतो भारद्वाजस्य ॥ ६३ ॥

ऋतः, भा०स्य । तासौ नित्यानिटः ऋदन्तादेव थलोने डागमो भारद्वाजस्य मतेन । यथा–स्मर्त्ता । सस्मर्थ । ध्वर्त्ता । दध्वर्थ ॥

तासि में नित्य अनिट् ऋदन्त धातुसे ही परे थल्‌को भरद्वाज के मत में इडागम न हो ॥ ६३ ॥

बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेतिनिगमे ॥ ६४ ॥

बे०र्थ, इति । एषां वेदे इडभावो निपात्यते । तेन लोके, थलीट् । त्वंहिहोता प्रथमो बभूथ । बभूविथेति लोके । येनान्तरिक्षमुर्वा-ततन्थ । आततिनिथेति लोके । जगृम्भाते दक्षिणमिन्द्र हस्तम् । जगृहिमेति लोके । ववर्थ त्वंहि ज्योतिषा । वविरिथेति लोके ॥

वेद विषयमें बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ और ववर्थ निपातितहैं ॥ ६४ ॥

विभाषा सृजिदृशोः ॥ ६५ ॥

आभ्यां थलो वेडागमः स्यात् । यथा–सस्रष्ठ, ससर्जिथ । दद्रष्ठ, ददर्शिथ ॥

सृज् और दृश् धातु से परे थल् प्रत्ययको विकल्पसे इडागमहो ॥ ६५ ॥

इडत्त्यर्त्तिव्ययतीनाम् ॥ ६६ ॥

इट्, अ०नाम् । अद्, ऋ, व्येञ्, एभ्यस्थलो नित्यमिडागमः स्यात् । यथा–आदिथ । आरिथ । विव्ययिथ ॥

अद्, ऋ और व्येञ् धातु से परे थल् को नित्य इडागमहो ॥ ६६ ॥

वस्वेकाजाद्घसाम् ॥ ६७ ॥

वसु, ए०मं। कृत द्वित्वानामेकाचाम् आदन्तानाम् घसेश्च वसो रिडागमः नेतरेषाम्। यथा—एकाच। आदिवान्। आरिवान्। आत्-ददिवान्। तास्थिवान्। घस्-जक्षिवान्॥

कृतद्विर्वचन एकाच्, आकारान्त और घस् धातु से परे वसु प्रत्ययको इडागमहो

विभाषा गमहन विदविशाम्॥ ६८॥

एभ्यो वसोर्वेडागमः स्यात्। यथा—जाग्मिवान्। जगन्वान्। मोनो धातोरिति नकारः। जघ्निवान्। जघन्वान्। विविदिवान्। विविद्वान्। विविशिवान्। विविस्वान्॥

गम हन् विद और विश् धातु से परे वसु प्रत्यय को विकल्प से इडागमहो ६८

सनिंससनिवांसम्॥ ६९॥

सनिमित्येतत् पूर्वात् सनतेः सनोतेर्वा क्वसो रिडागमः एत्वा भ्यासलोपाभाश्च निपात्यते॥

सनिं ससनिवांसम् यह शब्द छन्द विषयमें निपातितहै॥ ६९॥

ऋद्धनोः स्ये॥ ७०॥

ऋतो हन्तेश्चस्यस्येडागमः स्यात्। यथा—करिष्यति। भरिष्यति। हनिष्यति॥

ऋदन्त और हन् धातु से परे स्य प्रत्यय को इडागम हो॥ ७०॥

अञ्जेः सिचि॥ ७१॥

अञ्जेः सिचो नित्य मिडागमः स्यात्। यथा—आञ्जीत्। आञ्जिष्टाम्। अञ्जिषुः॥

अञ्जू धातु से परे सिच् प्रत्यय को नित्य इडागमहो ॥ ७१ ॥

स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ॥ ७२ ॥

एभ्यः सिच इडागमः स्यात् परस्मैपदेषु । यथा—अस्तावीत् । असावीत् । अधावीत् ॥

परस्मैपद विषय में स्तु, सु, और धूञ् धातु से परे सिच् प्रत्यय को इडागमहो

यमरमनमातां सक् च ॥ ७३ ॥

एषां सगागमः स्यात् सिच इडागमश्च परस्मैपदेषु । यथा—अयंसीत् । अयंसिष्टाम् । अयंसिषुः । व्यरंसीत् । व्यरंसिष्टाम् । व्यरंसिषुः । अनंसीत् अनंसिष्टाम् । अनंसिषुः । अकारान्तस्य । अयासीत् । अयासिष्टाम् । अयासिषुः ॥

परस्मैपद विषयमें यम, रम, नम और आकारान्त धातु को सक्का आगमहो और उक्त धातु ओं से परे सिच् प्रत्यय को इडागमहो ॥ ७१ ॥

स्मिपूङ्रञ्ज्वशांसनि ॥ ७४ ॥

स्मि, पूङ्, ऋ, अञ्जू, अश्, एभ्यः सन इडागमः स्यात् । यथा—सिस्मयिषते । पिपविषते । अरिरिषति । अञ्जिजिषति । अशिशिषते ॥

स्मिङ्, पूङ्, ऋ, अञ्जू और अशू धातु से परे सन् प्रत्यय को इडागम हो ॥

किरश्च पञ्चभ्यः ॥ ७५ ॥

किरः च पञ्चभ्यः । कृ, गृ, दृङ्, धृङ्, प्रच्छ, एभ्यस्सन इडागमः स्यात् । चिकरिषति । जिगरिषति । दिदरिषते । दिधरिषते । पिप्रच्छिषति ॥

किरादि (कॄ–विक्षेपे । गॄ–निगरणे । दृङ्–अनादरे । धृङ्–अवस्थाने । प्रच्छ–ज्ञीप्सायाम् ।) पांच धातुओं से परे सन् प्रत्यय को इडागम हो ॥ ७५ ॥

रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ ७६ ॥

रुद्, स्वप्, श्वस्, अन, जक्ष्, एभ्यो वलादेः सार्वधातुकस्येडागमः स्यात् । यथा–रोदिति । स्वपिति।श्वसिति । प्राणिति । जक्षति ॥

रुदादि (रुदिर्-अश्रुविमोचने । ञिष्वप्-शये । श्वस-प्राणने । अन च । जक्ष-भक्षहसनयोः) पांच धातुओं से परे वलादि आर्द्ध धातुको इडागम हो ॥ ७६ ॥

ईशः से ॥ ७७ ॥

ईशः परस्य सस्य सार्वधातुक स्येडागमः स्यात्।यथा-ईशिषे।ईशिष्व॥

ईश् धातु से परे सार्वधातुक सकार को इडागम हो ॥ ७७ ॥

ईडजनोर्ध्वे च ॥ ७८ ॥

ईड, जन, आभ्या मुत्तरस्य सेध्वेशब्दयोः सार्वधातुकयो रिडागमः स्यात् । यथा–ईडिषे । ईडिष्व । ईडिध्वे । ईडिध्वम् । जनिषे । जनिष्व । जनिध्वे । जनिध्वम् ॥

ईड और जन् धातु से परे से ध्वे शब्दों को इडागमहो ॥ ७८ ॥

लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ॥ ७९ ॥

लिङः, स०पः, अ० स्य । सार्वधातुकलिङोऽन्त्यस्य सस्य लोपः स्यात्।यथा-कुर्यात्।कुर्याताम् । कुर्युः।कुर्वीत कुर्वीयाताम्।कुर्वीरन् ॥

सार्वधातुक सम्बन्धी लिङ् लकारके अनन्त्य (अन्तिसकार वर्जित)सकार का लोपहो

अतो येयः ॥ ८० ॥

अतः, यः, इयः । अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य या इत्यस्य इयादेशः स्यात् । यथा–भवेत् । भवेताम् । भवेयुः ॥

अदन्त अङ्ग से परे सार्वधातुक के या को इय् आदेश हो ॥ ८० ॥

आतो ङितः ॥ ८१ ॥

आतः, ङितः । अतः परस्य सार्वधातुकङिता माकारस्य इयादेशः स्यात् । यथा–यजेते । यजेथे । यजेथाम् ॥

अकारान्त अङ्ग से परे सार्वधातुक सम्बन्धी ङित् आकार को इय् आदेशहो ८१

आने मुक् ॥ ८२ ॥

अङ्गस्यातो मुगागमःस्यादाने परे । यथा–पचमानं चैत्रंपश्य ॥

आनपरे होतो अङ्ग के अकार को मुक्का आगम हो ॥ ८२ ॥

ईदासः ॥ ८३ ॥

ईत्, आसः । आसःपरस्य आनस्य ईत् स्यात् । आदेपरस्य यथा–आसीनोयजते ॥

आस धातु से परे आन को ईकारादेश हो ॥ ८३ ॥

अष्टन आविभक्तौ ॥ ८४ ॥

अष्टनः, आ, विभक्तौ । हलादौ विभक्तौ अष्टन आत्वं स्यात् । यथा–अष्टाभिः । अष्टाभ्यः २ । अष्टानाम् । अष्टासु ॥

हलादि विभक्ति परे हो तो अष्टन् शब्द को आकारादेश हो ॥ ८४ ॥

रायो हलि ॥ ८५ ॥

रायँः, हँलि। रैशब्दस्याऽऽकारोन्तादेशस्स्याद्धलादौ विभक्तौ। यथा-राः। राभ्यः३। राभिः। राभ्यः२॥

हलादि विभक्ति परे हो तो रै (धन) शब्द को आकारादेश हो ॥ ८१ ॥

युष्मदस्मदोरनादेशे ॥ ८६ ॥

यु० दोः, अँ० शे। युष्मदस्मदोराकारादेशः स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ। यथा-युष्माभिः। अस्माभिः। युष्मासु। अस्मासु॥

अनादेश (आदेशरहित) विभक्ति परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्द को आकारादेश हो ॥ ८७ ॥

द्वितीयायां चँ ॥ ८७ ॥

युष्मदस्मदोर्द्वितीयायां चाऽऽकारोन्तादेशः स्यात्। यथा-त्वाम्। युवाम्। युष्मान्। माम्। आवाम्। अस्मान्। आदेशार्थं वचनम्॥

द्वितीया विभक्ति परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्द को आकारान्तादेश हो ॥

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ८८

प्र० याः, च, द्विँ० ने, भाँ० म्। अत्र युष्मदस्मदोराकारोन्तादेशः स्यात्। यथा-युवाम्। आवाम्॥

लोकमें प्रथमा द्विवचन विभक्ति परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्दको आकारादेशहो

योऽचि ॥ ८९ ॥

यः, अँचि। अनादेशेऽजादौ विभक्तौ युष्मदस्मदोर्यकारादेशः स्यात्। यथा-त्वया। मया। युवयोः। आवयोः। त्वयि। मयि॥

अनादेश अजादि विभक्ति परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्द को यकारादेश हो॥

शेषे लोपः ॥ ९० ॥

आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतो युष्मदस्मदोरन्त्यस्य लोपः स्यात् । यथा-त्वम् । अभिपूर्वः । अहम् । यूयम । वयम । तुभ्यम । मह्यम् । युष्मभ्यम । अस्मभ्यम् । त्वत् । मत् । युष्मत् । अस्मत । तव । मम । युष्माकम् । अस्माकम् ॥

आत्व यत्व वर्जित शेष विभक्ति परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के अन्त्य का लोप हो ॥ ९० ॥

मपर्यन्तस्य ॥ ९१ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहां से (७ । २ । ९८) तक मपर्यन्त का अधिकार है, अर्थात् मपर्यन्त को कार्य हो ॥ ९१ ॥

युवावौ द्विवचने ॥ ९२ ॥

द्वयोरुक्तौ युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य युवाऽऽवौ स्यातां विभक्तौ परतः । यथा-युवाम् । आवाम् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युवयोः । आवयोः ॥

द्विवचन विभक्ति परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को युव् तथा आव् आदेश हो ॥ ९२ ॥

यूयवयौ जसि ॥ ९३ ॥

मपर्यंतस्य युष्मदस्मदोर्जसि यूयवयौ स्याताम् । यथा-यूयम् । वयम् । परमयूयम । परमवयम् । अतियूयम । अतिवयम् ॥

जस् विभक्ति परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्दके मपर्यन्त भागको यूय और वय् आदेश हों ॥ ९३ ॥

त्वाहौ सौ ॥ ९४ ॥

युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य त्व अह इतीमावादेशौ स्यातां सौपरे। यथा—त्वम्। अहम्। परमत्वम्। परमाहम्। अतित्वम्। अत्यहम्॥

सुविभक्तिपरे होतो युष्मद् अस्मद् शब्दके मपर्यन्त भाग को त्व और अह आदेश

तुभ्यमह्यौ ङयि ॥ ९५ ॥

युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ स्यातां ङयि। यथा—तुभ्यम्। मह्यम् ॥

ङे विभक्ति परे होतो युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को तुभ्य और मह्य आदेशहो ॥ ९९ ॥

तवममौ ङसि ॥ ९६॥

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तवममावादेशो स्यातां ङसि। यथा—मव। मम। परम तव। परममम। अतितव। अतिमम॥

ङस् विभक्ति परे हो युष्मद् और अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भागको तव और मम आदेशहो ॥ ९९ ॥

त्वमावेकवचने ॥ ९७ ॥

त्वमौ, ए० ने। एकस्योक्तौ युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्यातां विभक्तौ। यथा—त्वाम्। माम्। त्वया। मया। त्वत्। मत्। त्वयि मयि॥

एक वचन विभक्ति परे होतो युष्मद् और अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को त्व और म आदेशहो ॥ ९७ ॥

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ॥ ९८ ॥

प्र०योः, च। मपर्यन्तयोरेकार्थयोस्त्वमावादेशौ स्यातां प्रत्यये

उत्तरपदेच । यथा—तवेदम् त्वदीयम्।मदीयम्। उत्तरपदे। तवपुत्रः—त्वत् पुत्रः। मत्पुत्रः। त्वं नाथोस्य—त्वन्नाथः। मन्नाथः॥

प्रत्यय और उत्तरपदपरे होतो एक वचन में वर्त्तमान युष्मद् और अस्मद् अस्मद् शब्दके मपर्यन्त भागको त्व और म आदेशहो ॥ ९८ ॥

त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ॥ ९९ ॥

स्त्रीलिङ्गयोस्त्रिचतुरोस्तिसृचतसृ इत्येतावादेशौ स्यातां विभक्तौ। यथा–तिस्रः। चतस्रः। तिसृभिः। चतसृभिः॥

विभक्ति परे होतो स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान त्रि और चतुर् शब्द को तिसृ और चतसृ आदेशहो ॥ ९९ ॥

अचिरऋतः ॥ १०० ॥

अचि, रः, ऋतः। तिसृ चतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादजादौ विभक्तौ। यथा–तिस्रस्तिष्ठन्ति। तिस्रः पश्य। चतस्रः पठन्ति चतस्रः पाठय॥

अजादि विभक्तिपरे होतो तिसृ और चतसृ शब्द के ऋकार को रेफादेशहो

जराया जरसन्यतरस्याम् ॥ १०१ ॥

जरायाः, जरस्, अ० म्। जराशब्दस्य जरस् वादेशः स्यादजादौ विभक्तौ। यथा–निर्जरसौ, निर्जरौ। निर्जरसः, निर्जराः॥

अजादि विभक्ति परे होतो जरा शब्द को जरस् विकल्प से आदेशहो ॥ १०१ ॥

त्यदादीनामः ॥ १०२ ॥

त्य० म्, अः। एषामकारोऽन्तादेशः स्याद् विभक्तौ॥ (द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः)। यथा–त्यद्-स्यः, त्यौ, त्ये। तद्-सः, तौ, ते।

यद् यः, यौ, ये । एतद् एषः, एतौ, एते । इदम्-अयम्, इमौ, इमे । अदस्--असौ, अमू, अमी । द्वि-द्वौ २ ॥

बिभक्ति परे होतो त्यदादिकों को अकारादेश हो ॥ १०२ ॥

किमः कः ॥ १०३ ॥

किमः क आदेशः स्याद् विभक्तौ।अकच् सहितस्याप्ययमादेशः। यथा-कः, कौ, के ॥

विभक्ति परे होतो किम् शब्दको क आदेशहो ॥ १०३ ॥

कु तिहोः ॥ १०४ ॥

किमः कुरादेशः स्यात्तादौ हादौ च,-विभक्तौ।यथा-कुतः।कुत्र। कुह ॥

तकारादि तथा हकारादि विभक्ति परे होतो किम् शब्द को कु आदेशहो १०४

क्वाति ॥ १०५ ॥

क्व, अति । किम × क्वादेशः स्यादति । यथा-क्वगच्छन्ति भवन्तः । क्व पठान्यहम् ॥

अत् परे हो तो किम् शब्द को क्व आदेश हो ॥ १०५ ॥

तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥ १०६ ॥

तदोः, सः, सौ, अ० योः । त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात् सौ परे । यथा-त्यद्-स्यः । तद्-सः । एतद्-एषः । अदस्-असौ ॥

सु विभक्ति परे हो तो त्यदादि शब्दों के अनन्त्य तकार, दकार को सकारादेश हो॥

अदस औ सुलोपश्च ॥ १०७ ॥

अदसः, औ, सुलोपः, च । अदस औकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे, सुलोपश्च । यथा–असौ ॥

सुविभक्ति परहो तो अदस् शब्दके अन्त को औकारादेश और सु का लोपहो १०७

इदमो मः ॥ १०८ ॥

इदमः, मः । इदमो मस्य मः स्यात् सौ परे । यथा–अयम् । इयम् ॥

सु परे हो तो इदम् शब्द के मकार को मकार ही आदेश हो ॥ १०८ ॥

दश्च ॥ १०९ ॥

दः, च । इदमोदस्य मः स्याद् विभक्तौ । यथा–इमौ, इमे । इमम्, इमौ, इमान् ॥

विभक्ति परे हो तो इदम् शब्द के दकार को मकारादेश हो ॥ १०९ ॥

यः सौ ॥ ११० ॥

इदमोदस्य यकारादेशः स्यात् सौ परे । यथा–इयम् ॥

सु परे होतो इदम् शब्द के मकारको यकारादेशहो ॥ ११० ॥

इदोऽय् पुंसि ॥ १११ ॥

इदः, अय्, पुंसि । इदम इद स्थानेऽयादेशः स्यात् सौ परे पुंसि । यथा–अयम् ॥

पुल्लिङ्ग में सु परे होतो इदम् शब्द के इद भागको अय् आदेशहो ॥ १११ ॥

अनाप्यकः ॥ ११२ ॥

अन, अपि, अकः । अककारस्येदम इदस्थोदऽनादेशः स्यादा-

पि विभक्तौ। आबिति टा इत्यारभ्य सुप ४ पकारेण प्रत्याहारः। यथा-अनेन। अनयोः २ ॥

आप् (तृतीयादि) विभक्ति परे होतो ककार भिन्न इदम् शब्द के इद् भागको अन् आदेशहो ॥ ११२ ॥

हलि लोपः ॥ ११३ ॥

अक्कारस्येदम इदो लोपः स्यादापि हलादौ विभक्तौ । यथा-आभ्याम्।एभिः । एभ्यः२ । एषाम् । एषु ॥

आप् (तृतीयादि) हलादि विभक्ति परे होतो ककार भिन्न इदम् शब्दके इद भागका लोपहो ॥ ११३ ॥

मृजेर्वृद्धिः ॥ ११४ ॥

मृजेः, वृद्धिः । मृजेरिकोवृद्धिः स्याद्धातुप्रत्ययेपरे । यथा-मार्ष्टि । मार्ष्टा । मार्ष्टुम् । मार्ष्टव्यम् ॥

मृज धातु के इक् को वृद्धि हो धातु प्रत्यय परे हो तो ॥ ११४ ॥

अचोऽञ्णिति ॥ ११५ ॥

अचः, ञ्णिति । ञिति, णिति च,-प्रत्यये परे ऽजन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् । यथा-कारः । हारः । इति । सखायौ । सखायः ॥

ञित्, णित् प्रत्यय परे हों तो अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो ॥ ११५ ॥

अत उपधायाः ॥ ११६ ॥

अतः, उ० याः । उपधाया अतोवृद्धिः स्यात्-ञिति, णिति च,-प्रत्यये परे। यथा-पाकः, त्यागः, यागः । पाचयतीति--पाचकः। पाठयतीति--पाठकः ॥

ञित्, णित् प्रत्यय परे हों तो अङ्ग के उपधा अकार को वृद्धि हो ॥ ११६ ॥

तद्धितेष्वचामादेः ॥ ११७ ॥

त० पुं, अचाम्, आदेः । ञिति, णिति च,- तद्धिते परे, अचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । यथा–गार्ग्यः । औपगवः ॥

ञित्, णित्, तद्धित प्रत्यय परे हों तो अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ११७

किति च ॥ ११८ ॥

किति च तद्धिते परे अचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। यथा–नाडायनः॥

कित् तद्धित प्रत्यय परे हो तोभी अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥११८॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादारम्भः ॥

देविका शिंशपादित्यवाड् दीर्घ सत्र श्रेयसा मात् ॥ १ ॥

दे०मं, आत् । एषां पञ्चाना मात् स्यात् ञिति णिति किति च तद्धिते परे । यथा–देविकाकूले भवाः–दाविकाशालयः । शिंशपाया विकारः-शांशपं शकटचक्रम् । (पलाशादिभ्यो वा)- इत्यञ् । दित्यौह इदम्-दात्यौहम् । दीर्घसत्रे भवम्–दार्घसत्रम् । श्रेयसिभवम्-श्रायसम् ॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित् प्रत्यय परे होतो देविका, शिंशपा, दित्यवाड्, दीर्घ सत्र और श्रेयस् अङ्ग के अचों के आदि अच् को आकारादेश हो ॥ १ ॥

केकय मित्रयु प्रलयानां यादेरियः ॥ २ ॥

के०म्,याँदेः, इयँः । एषां यकारादे रिय् आदेशः स्यात्-ञिति णिति किति च तद्धिते परे । यथा-केकयस्यापत्यम्--कैकेयः मैत्रेयः मलयादागतम्-मालेयम् ॥

ञित् णित्, कित् ताद्धित प्रत्यय परे हो तो केकय, मित्रयु और मलय अङ्ग के यकारादि भागको इय आदेश हो ॥ २ ॥

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ॥ ३ ॥

न, य्० मृ॰ पूर्वौ, तु, ताभ्याम्, ऐच् । पदान्ताभ्यां यकार वकाराभ्यां परस्य वृद्धिर्न किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैजागमौ स्याताम् ञिति णिति किति च तद्धिते परे । यथा-व्यसने भवम्-वैयसनम् । व्याकरणमधीते वेत्ति वा वैयाकरणः ॥

ञित्, णित्, कित् ताद्धित प्रत्यय परे हो तो यकार तथा वकार से परे अचों के आदि अच् को वृद्धि न हो अपितु उन यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो ॥ ३ ॥

द्वारादीनां च ॥ ४ ॥

एषां वृद्धिर्न अपितु, ऐजागमः स्यात् । यथा-द्वारेनियुक्तः-दौवारिकः । द्वारपालस्येदम्--दौवारपालम् । स्वरमाधिकृत्य कृतो ग्रन्थः-सौवरः ॥

द्वारादि गणपठित अङ्गों से परे अचों के आदि अच् को वृद्धि न हो अपितु यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो ॥ ४ ॥

न्यग्रोधस्य च केवलस्य ॥ ५ ॥

अस्य वृद्धिर्न अपितु ऐजागमः स्यात् । यथा—न्यग्रोधस्य विकारः—नैयग्रोदश्चमसः ॥

केवल न्यग्रोध (वट) शब्द के यकार से परे अचों के आदि अच् को वृद्धि न हो अपितु यकार से पूर्व ऐच् का आगम हो ॥ ५ ॥

न कर्मव्यतिहारे ॥ ६ ॥

नात्र ऐच् स्यात् । यथा—व्यावक्रोशी । व्यावहासी ॥

कर्मव्यतिहार अर्थ में ऐच् न हो ॥ ६ ॥

स्वागतादीनां च ॥ ७ ॥

एषामैच् न स्यात् । यथा—स्वागतमित्याह—स्वागतिकः । स्वध्वरेण चरति—स्वाध्वरिकः । स्वङ्गस्याऽपत्यम्-स्वाङ्गिः । व्यङ्गस्याऽपत्यम्-व्याङ्गिः । व्यडस्यापत्यम्—व्याडिः । व्यवहारेण चरति—व्यावहारिकः । स्वपतौ साधुः- स्वापतेयः ॥

स्वागतादि गणपठित शब्दों को ऐच् का आगम न हो ॥ ७ ॥

श्वादेरिञि ॥ ८ ॥

श्वादेः, इञि । नात्र ऐजागमः स्यात् । यथा—श्वभस्त्रस्यापत्यम्-श्वाभस्त्रिः । श्वादंष्ट्रिः । (तदादिविधौ चेदमेवज्ञापकम्) । (इकारादावितिवाच्यम्) ॥ श्वगणेन चरति—श्वागणिकः । श्वागणिकी

इञ् प्रत्यय परे हो तो श्वादि अङ्ग को ऐच् का आगम न हो ॥ ८ ॥

पदान्तस्याऽन्यतरस्याम् ॥ ९ ॥

श्वादेरङ्गस्य पदशब्दान्तस्य ऐज्वास्यात् । यथा—श्वापदस्येदम्—श्वापदम् । शौवापदम् ॥

पद शब्द जिस के अन्त में हो ऐसे श्वादि अङ्ग को विकल्प से ऐच् का आगम हो ॥

उत्तरपदस्य ॥ १० ॥

आधिकारोऽयम् । हनस्तोचिण्णलोरिति प्राक् ॥

उत्तर पद का अधिकार है यहां से (७।३।३२) सूत्रतक, उत्तरपद को कार्य हो ॥

अवयवादृतोः ॥ ११ ॥

अ०द्, ऋतोः । अवयववाचिनः पूर्वपदा दृतुवाचिनोऽचा-मादे रचो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च तद्धिते परे । यथा-पूर्ववार्षिकः । अपरहैमनः ॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होंतो अवयव वाचक से परे ऋतु वाची उत्तर पद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ ११ ॥

सुसर्वार्द्धाज्जनपदस्य ॥ १२ ॥

सु०त्, ज०स्य । उत्तर पदस्य वृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च-तद्धित परे।यथा-सुपाञ्चालकः।सर्वपाञ्चालकः।अर्द्धपाञ्चालकः॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होंतो सु, सर्व और अर्द्ध शब्दसे जन पद वाची उत्तर पदके अचों के आदि अच् को वृद्धिहो ॥ १२ ॥

दिशोऽमद्राणाम् ॥ १३ ॥

दिशः, अ०णाम् । दिग्वाचकाज् जनपदवाचिनोऽमद्राणां वृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च तद्धिते परे । यथा-पूर्वपाञ्चालकः । दक्षिणपाञ्चालकः ॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो दिग्वाचक से परे मद्र वर्जित जन

पद वाची उत्तर पद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ ११ ॥

प्राचां ग्रामनगराणाम् ॥ १४ ॥

दिशऽपरेषां नगर वाचिनां ग्रामवाचिनां चाङ्गानामवयवस्य च वृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च तद्धित परे। यथा–पूर्वेषु कामशम्यां भवः–पूर्वेषुकामशमः। पूर्वस्मिन् पाटलिपुत्रे भवः–पूर्वपाटलिपुत्रकः॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो प्राग्देशियों के मत में दिग्वाचक से परे ग्राम और नगर वाचक अङ्ग के अवयव को वृद्धि हो ॥ १४ ॥

सङ्ख्यायाः संवत्सरसङ्ख्यस्य च १५

सङ्ख्याया उत्तरपद संवत् सर शब्दस्य संख्यायाश्चाचामादेरचः स्थाने वृद्धिः स्यात्–ञिति णिति किति च तद्धित परे। यथा–द्वौ संवत् सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–द्विसांवत्सरिकः। त्रिसांवत्सरिकः। संख्यायाः।द्वे षष्ठी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–द्विषाष्ठिकः। द्विसाप्ततिकः॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो सङ्ख्या वाचक से परे संवत् सर और संख्या वाचक उत्तरपद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ १९ ॥

वर्षस्याभविष्यति ॥ १६ ॥

व०स्य, अ०ति। अभविष्यति काले सङ्ख्याया उत्तरस्य वर्षस्याचामादेरचो वृद्धिः स्यात्–ञिति णिति किति तद्धित परे।यथा-द्विवर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वा–द्विवार्षिकः। त्रिवार्षिकः॥

भावीकाल से भिन्न अर्थ में ञित्, णित्, कित् तद्धित परे होतो सङ्ख्यावाचक से परे वर्ष उत्तर पद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ १६ ॥

परिमाणान्तस्या सञ्ज्ञाशाणयोः १७

प०स्य, अ० योः। परिमाणान्तस्य सङ्ख्यायाः परं यदुत्तरपदं तस्याचामादेरचो वृद्धि स्यात् -ञिति णिति किति च तद्धिते परे सञ्ज्ञाशाणयोरुत्तरपदयोः। यथा—द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविकः। द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यांक्रीतम्-द्विसौवर्णिकम्। द्विनैष्किकम् ॥

सञ्ज्ञा और शाण को छोड़कर ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो संख्या वाचक से परे परिमाणान्त उत्तरपद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ ७ ॥

जे प्रोष्ठपदानाम् ॥ १८ ॥

प्रोष्ठ पदानामुत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिः स्याज्ज जातार्थे-ञिति णिति कितिच तद्धिते परे।यथा--प्रोष्ठपदासु जातः--प्रोष्ठपादः माणवकः ॥

जात अर्थ मे ञित् णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो प्रोष्ठपद उत्तरपदके अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ १८ ॥

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ॥ १९ ॥

हृदाद्यन्ते पूर्वोत्तरपदयोरचामादेरचोवृद्धिः स्यात्--ञिति णिति किति च तद्धिते परे। यथा—सुहृदोऽपत्यम्—सौहार्दः। सुभगाया अपत्यम्—सौभा गिनेयः। सक्तुप्रधानाः सिन्धवः—सक्तुसिन्धवः। तेषुभवः—साक्तु सैन्धवः ॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो हृद्, भग और सिन्धु (नदी, या देश) हैं अन्त में जिस के ऐसे पूर्वपद और उत्तर पद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ १९ ॥

अनुशतिकादीनां च ॥ २० ॥

एषामुभयपद वृद्धिः स्यात्--ञिति णिति किति च--तद्धिते परे

यथा—शतेनक्रीतः—शतिकः । अनुगतः शतिकेन—अनुशातिकः । तस्येदम्—आनुशातिकम् । परस्य स्त्री—परस्त्री । तस्या अपत्यम्—पारस्त्रैणेयः । सर्वलोके विदितः—सार्वलौकिकः । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । सर्वभूम्यां विदितः—सार्वभौमः । प्रयोगमर्हति प्रयोगे भवं वा—प्रायोगिकम् ॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो अनु शतिकादि गण पठित पूर्व-पद और उत्तर पद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ २० ॥

देवताद्वन्द्वे च ॥ २१ ॥

इहपूर्वोत्तर पदयोरचामादेरचो वृद्धिः स्यात्—ञिति णिति किति च तद्धिते परे । यथा—आग्निमारुतीम् । आग्निमारुतम् ॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो देवता द्वन्द्व समास में पूर्वपद और उत्तर पद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो ॥ २१ ॥

नेन्द्रस्य परस्य ॥ २२ ॥

न, इन्द्रस्य, परस्य, । परस्येन्द्रस्य वृद्धिर्नस्यात् देवताद्वन्द्वे । यथा—सोमेन्द्रः । आग्नेन्द्रः ॥

देवता द्वन्द्व में परे इन्द्रशब्द को वृद्धि न हो ॥ २२ ॥

दीर्घाच्च वरुणस्य ॥ २३ ॥

दीर्घात्, च, वं० स्य । देवता द्वन्द्वे दीर्घात् परस्य वरुणस्य वृद्धिर्नस्यात् । यथा—ऐन्द्रावरुणम् । मैत्रावरुणम् ॥

देवता द्वन्द्व में दीर्घ से परे वरुण शब्द को वृद्धि न हो ॥ २३ ॥

प्राचां नगरान्ते ॥ २४ ॥

प्राचां देशे नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तर पदस्य चाऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात्-ञिति णिति किति च-तद्धिते परे। यथा-सुह्मनगरे भवः-सौह्मनागरः। पौर्वनागरः॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो प्राग्देशियों के मतमें नगरान्त पूर्वपद और उत्तरपद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो॥ २६॥

जङ्गल धेनुवलजान्तस्य विभाषित मुत्तरम्॥ २५॥

ज० स्यं, वि० म्, उ० म्। जङ्गलाद्यन्तस्याङ्गस्य पूर्व पदस्याचामादेरचो वृद्धिः स्यात्-उत्तरपदस्य वा ञिति किति च तद्धिते परे। यथा-कुरुजङ्गले भवम्-कौरु जङ्गलम्। कौरुजाङ्गलम्। वैस्व धेवनम्। वैस्व धैनवम्। सौवर्णवलजम्। सौवर्णवालजम्॥

ञित्, णित् कित् तद्धित् प्रत्यय परे होतो जङ्गल, धेनु और वलज हैं अन्त में जिसके ऐसे पूर्व पद के अचों के आदिअच् कोवृद्धिहो और उत्तर पदको विकल्प से

अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा २६

अर्द्धात्परिमाण वाचकस्योत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिः स्यात् पूर्वपदस्य तु वा ञिति णिति कितिच तद्धिते परे। यथा-अर्धद्रोणेन क्रीतम्- अर्द्धद्रौणिकम्। आर्धद्रौणिकम्॥

ञित् णित्,कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो अर्ध शब्दसे परे परिमाणवाचक उत्तर-पदके अचों के आदि अच् को वृद्धिहो और पूर्वपद को विकल्पसेहो॥ २६॥

नातः परस्य॥ २७॥

न. अतः, परस्यं। अर्धात्परस्यातः परिमाणाकारस्य— वृद्धिः

ने, पूर्वस्य तु वा, ञिति णिति किति च तद्धिते परे। यथा—अर्धप्रस्थिकम्। आर्धप्रास्थिकम्॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे हो तो अर्ध शब्द से परे परिमाण वाचक अकार को वृद्धि न हो और पूर्व पद को विकल्पसे हो ॥ २७ ॥

प्रवाहणस्य ढे ॥ २८ ॥

प्रवाहणस्योत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिः स्यात् पूर्वस्य तु वा-ढे परे। यथा--प्रवाहणस्यापत्यम्--प्रावाहणेयः। प्रवाहणेयः॥

ढ प्रत्यय परे होतो प्रवाहण शब्द के उत्तर पद के अचों के आदि अच् को वृद्धि हो और पूर्वपद को विकल्पसे ॥ २८ ॥

तत्प्रत्ययस्य च ॥ २९ ॥

ढान्तस्य प्रवाहणस्योत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिः स्यात् पूर्वपदस्य तु वा। यथा--प्रवाहणेयस्यापत्यम् -प्रावाहणेयिः।प्रवाहणेयिः॥

ढान्त प्रवाहण शब्द के उत्तरपद के अचों के आदि अच् को वृद्धिहो और पूर्वपद को विकल्प से ॥ २९ ॥

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्

नञः परेषां शुच्यादि पञ्चानामचामादेरचो वृद्धिः स्यात्, पूर्वस्य तु-वा, ञिति, णिति, किति च तद्धिते परे। यथा--अशौचम्। आशौचम्। अनैश्वर्यम्। आनैश्वर्यम्। अक्षैत्रज्ञम्। आक्षैत्रज्ञम्। अकौशलम्। आकौशलम्। अनैपुणम् आनैपुणम्॥

ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे होतो नञ् से परे शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल और निपुण अङ्ग के अचों के आदि अच् को वृद्धिहो और पूर्वपद को विकल्प से॥

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ॥ ३१ ॥

नञः परयोरेतयोः पूर्वोत्तरपदयोः पर्यायेणाचामादेरचो वृद्धिः स्यात्-ञिति, णिति, किति च तद्धिते परे। यथा-अयथातथाभावः-आयथातथ्यम् । अयाथातथ्यम् । आयथापुर्यम् । अयथापुर्यम् ॥ (चतुर्वर्णादीनास्वार्थ उपसङ्ख्यानम्) ॥चत्वारोवर्णाः-चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रम्यम् । त्रैस्वर्यम् । षाड्गुण्यम् । सैन्यम् । सान्निध्यम् । सामीप्यम् । औपम्यम् । त्रैलोक्यम्, इत्यादि ॥

ञित्, णत्, कित् तद्धित प्रत्यय परे हो तो नञ् से परे यथातथ और यथापुर पूर्वपद तथा उत्तरपद के अचों के आदि अच् को पर्याय (पारी) से वृद्धि हो ॥

हनस्तोऽचिण्णलोः ॥ ३२ ॥

हनः, तः, अ०लोः । हन्तेस्तकारोऽन्तादेशः स्याच्चिण् णल् वर्जे ञित, णिति परतः । यथा-घातयतीति-घातकः । साधुघाती॥

चिण् और णल् को छोड़कर ञित्, णित् प्रत्यय परे होतो हन् धातु के अन्त को तकारादेश हो ॥ ३२ ॥

आतो युक् चिण्कृतोः ॥ ३३ ॥

आतः, युक्, चिं०तोः । आकारान्तस्याङ्गस्य युगागमःस्यात्-चिणि, ञिति णिति-कृति च परतः । यथा-अदायि । अधायि । अपायि । अलायि । कृति । दायः-दायकः । धायः-धायकः । पायः-पायकः । लायः-लायकः ॥

चिण् और ञित् णित् कृत् प्रत्यय परेहोंतो आकारान्त अङ्गको युक् का आगमहो

नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः ३४

न, उ०स्य, मा०स्य, अ०मेः । उपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि, ञिति णिति-कृति च । यथा-अशमि।अतमि। कृतिःशमकः।तमकः॥

चिण् और ञित् णित् कृत् प्रत्यय परे होतो आङ्‌ पूर्वक चम् वर्जित् उदात्तोपदेश मान्त अङ्गको वृद्धि नहो ॥ ३४ ॥

जनिवध्योश्च ॥ ३५ ॥

जनिवध्योः, च । अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि, ञिति णिति कृति च । यथा—अजनि । अवधि । जनकः । वधकः ॥

चिण् और ञित् णित् कृत् प्रत्यय परे होतो जनि और वधि अङ्ग की उपधा को वृद्धि न हो ॥ ३५ ॥

अर्त्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ ॥

अर्त्यादीनामादन्तानां च पुगागमः स्यान्णौ परे । यथा—अर्पयति । ह्रेपयति । व्लेपयति । रेपयति । क्नोपयति । क्ष्मापयति । दापयति । धापयति । यापयति । मापयति ॥

णि (णिच्) प्रत्यय परे होतो अर्त्ति (ऋ) ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त अङ्गको पुक्का आगमहो ॥ ३६ ॥

शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ॥ ३७ ॥

एषां युगागमः स्यान्णौ । यथा—निशाययति । अवच्छाययति । अवसाययति । आह्वाययति । संव्याययति । वाययति । पाययति । (पातेर्णौ लुग्वाच्यः) ॥ पालयति ॥

णि परे होतो शा, छ, सा, ह्वा, व्या, वे और पा अङ्गको युक् का आगमहो ॥

वो विधूनने जुक् ॥ ३८ ॥

वेः, विधूनने, जुक् । कम्पेऽर्थे वातेर्जुगागमः स्यान्णौ । यथा—वाजयति ॥

णि परे होतो विधूनन (कम्प) अर्थ में वा अङ्गको जुक् का आगमहो १८

लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने

लीलोः, नुं०कौ, अ०म्, स्ने०ने । लीयतेर्लातेश्च क्रमान्नुग्लुकावागमौ वा स्यातां णौ स्नेहद्रवे । यथा—विलीनयति । विलाययति । विलालयति । विलापयति ॥

णि परे होतो स्नेह विपातन अर्थ में वर्त्तमान ली और ला अङ्गको विकल्पसे नुक् तथा लुक् का यथाक्रम आगमहो ॥ ३९ ॥

भियो हेतुभये षुक् ॥ ४० ॥

भियः, हे०ये, षुक् । भी ई इति ईकारः प्रश्लिष्यते । ईकारान्तस्य भियः षुगागमः स्यान् णौ हेतुभयेर्थे । यथा—भीषयते ॥

णि परे हो तो हेतु भय अर्थ में ईकारान्त भी अङ्ग को षुक् का आगम हो ४०

स्फायो वः ॥ ४१ ॥

स्फायः, वः । णौ स्फायो वकारादेशः स्यात् । यथा—स्फावयति॥

णिपरे होतो स्फाय् अङ्ग को वकारादेश हो ॥ ४१ ॥

शदेरगतौ तः ॥ ४२ ॥

शदेः, अ० तौ, तः । शदे णौ तोऽन्तादेशः स्यान्नतु गतौ । यथा—शातयति ॥

णि परे होतो गत्यर्थ से भिन्न शद् अङ्ग के अन्त को तकारादेश हो ॥ ४२ ॥

रुहः पोऽन्यतरस्याम् ॥ ४३ ॥

रुहः, पः, अ० म् । रुहेर्वा पकारादेशः स्यान् णौ । यथा—व्रीहीन् रोपयति । रोहयति वा ॥

णि परे होतो रुह अङ्ग को विकल्प से पकारादेश हो ॥ ४३ ॥

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः

प्र० तः, कात्, पू० स्य, अतः, इत्, आपि, अ० पः । प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याऽतः इकारादेशः स्यादापि परे—स आप् सुपः परो न चेत् । यथा—कारिका । पाचिका ॥

जो सुप् से परे न होतो ऐसा आप् परे होतो प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार को इकारादेश हो ॥ ४४ ॥

न यासयोः ॥ ४५ ॥

यत्तदोरस्येन्न स्यात् । यथा—यका । सका ॥ (त्यकनश्च निषेधः) ॥ उपत्यका । अधित्यका ॥ (आशिषि चोपसङ्ख्यानम्) ॥ जीवताद् जीवका । भवका ॥ (उत्तर पद लोपे न) ॥ देवदत्तिका—देवका ॥ (क्षिपकादीनां च) ॥ क्षिपका । ध्रुवका । कन्यका । चटका ॥ (तारका ज्योतिषि) ॥ तारका । अन्यत्र तारिका । (वर्णका तान्तवे) ॥ वर्णका । अन्यत्र वर्णिका ॥ (वर्त्तका शकुनौ प्राचाम्) ॥ उदीचां तु वर्त्तिका ॥ (अष्टका पितृदेवत्ये) ॥ अष्टिका अन्यत्र । (सूतका पुत्रिका वृन्दारकाणां वेति वाच्यम्) ॥ सूतिका । सूतका । पुत्रिका । पुत्रका । वृन्दारिका । वृन्दारका ॥

असुप् आप परे होतो प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व या और सा के अकार को इकारादेश न हो ॥ ४५ ॥

उदीचामातः स्थानेयकपूर्वायाः ।४६।

उ० म्, आतः, स्थाने, यं० याः। यकपूर्वस्य स्त्रीप्रत्ययाऽऽकारस्य स्थानेयोऽकारस्तस्य कात् पूर्वस्येद् वा स्यादापि परे। (केणः) इति ह्रस्वः। यथा—आर्य्यका। आर्यिका। चटकका। चटकिका। क्षत्रियका। क्षत्रियिका॥

यकार तथा ककार जिस के पूर्वहों ऐसे स्त्री प्रत्यय आकार के स्थान में हुये अकारको उत्तरदेशियों के मत में इकारादेशहो ॥ ४६ ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि

भस्त्रे, नं० म्, अपि। एषामतः स्थाने वेत् स्यात्। यथा—अभस्त्रिका। अभस्त्रका। भस्त्रिका। भस्त्रका। एषिका। एषका। आजिका। अजका। ज्ञिका। ज्ञका। द्विके। द्वके। अस्विका। अस्वका॥

नञ् पूर्वक भी भस्त्रा (धौकनी) एषा, जा, ज्ञा, द्वा और स्वा के आकार के स्थान में हुये अकारको विकल्प से इकारादेशहो ॥ ४७ ॥

अभाषित पुंस्काच्च ॥ ४८ ॥

अं० त, च। अस्माद् विहितस्याऽऽतो वेत् स्यात्। यथा—गङ्गका गङ्गिका। यदा बहुव्रीहौ कपि ह्रस्वः क्रियते तदानेन विधिना भवितव्यम्॥

अभाषित पुंस्क से विहित आकारके स्थानमें हुये अकार को विकल्प से इकारदेशहो

आदाचार्याणाम् ॥ ४९ ॥

आत्, अं० म। अभाषित पुंस्कादातः स्थाने योऽकारस्तस्याचार्याणामात् स्यात्। यथा—गङ्गाका। यमुनाका॥

अभाषित् पुंस्कसे विहित अकार के स्थान में हुये अकारको आचार्यों के मत में आकारादेशहो ॥ ४९ ॥

ठस्येकः ॥ ५० ॥

ठस्य, इकः। अङ्गात् परस्य ठस्य इकादेशः स्यात्। यथा—रैवतिकं ददर्श। रेवत्यादिभ्य इतिठक् ॥

अङ्गसे परे प्रत्यय के ठकारको इक् आदेशहो ॥ ५० ॥

इसुसुक्तान्तात्कः ॥ ५१ ॥

इस्, उस्, उक् त्—एतदन्तात् परस्य ठस्य कादेशः स्यात्। यथा—सर्पिषा संस्कृतः सूपः—सार्पिष्कः। धानुष्कः। शाबरजम्बुकः। मातृकम्। पैतृकम् उदकेन श्वयाति वर्धते इति-उदश्वित्। तत्रसंस्कृतः-औदश्वित्कः। (दोष उपसङ्ख्यानम्) ॥ दोर्भ्यां चरतीति-दौष्कः ॥

इसन्त, उसन्त उगन्त और तान्त अङ्ग से परे ठकार को ककारादेशहो ॥ ५१ ॥

चजोः कुघिण्यतोः ॥ ५२ ॥

चजोः, कु, घिण्तोः। चस्य जस्य च कुत्वं स्यात्। घिति ण्यति चप्रत्यये परे। यथा—पाकः। त्यागः। रागः। पाक्यम्। वाक्यम्। रेक्यम् ॥

घित् और ण्यत् प्रत्यय परे होंतो चकार तथा जकारको कवर्ग आदेशहो ॥५२॥

न्यङ्क्वादीनां च ॥ ५३ ॥

कुत्वं स्यात्। यथा—न्यङ्कुः। नावञ्चेरित्युप्रत्ययः ॥

न्यङ्क्वादि गण पठित अङ्गों को कवर्गादेश हो ॥ ५३ ॥

होहन्तेर्ञ्णिन्नेषु ॥ ५४ ॥

हः, हन्तेः, ञ्णिँ०षु । ञिति णिति च प्रत्यये नकारे च, परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वंस्यात् । यथा-घातयतीति- घातकः । घातं घातम् । घ्नन्ति ॥

ञित् णित् प्रत्यय और नकार परे होतो हन् धातु के हकार को कुत्वादेश हो॥

अभ्यासाच्च ॥ ५५ ॥

अँ० त्, च । अभ्यासात् परस्य हन्तेर्हकारस्य कुत्वं स्यात् । यथा-जिघांसति । जङ्घन्यते । अहं जघान ॥

अभ्यास से परे हन् धातु के हकार को कुत्व हो ॥ ५५ ॥

हेरचङि ॥ ५६ ॥

हेः,अँ०ङि । अभ्यासात् परस्य हिनोतेर्हकारस्य कुत्वं स्यादचङि । यथा-जिघीषति । प्रजेघीयते ॥

चङ् वर्जित प्रत्यय परे होतो अभ्यास से परे हि अङ्ग के हकार को कुत्वादेश हो॥

सन्लिटोर्जेः ॥ ५७ ॥

सँ०टोः, जेः । सनि लिटि च प्रत्यये परे जयतेर्योऽभ्यासस्ततः परस्य कुत्वं स्यात् । यथा-जिगीषति । जिगीषतः । जिगीषन्ति । जिगाय । जिग्यतुः । जिग्युः ॥

सन् और लिट् प्रत्यय परे हो तो अभ्यास से उत्तर जि अङ्गको कुत्वादेशहो ॥

विभाषा चेः ॥ ५८ ॥

अभ्यासात् परस्य चिञो वा कुत्वं स्यात्-सनि लिटि च प्रत्यये परे । यथा-चिकीषति । चिचीषति । चिकाय । चिचाय ॥

सन् और लिट् प्रत्यय परे हो तो अभ्यासमे परे चिञ् अंगको विकल्पसे कुत्वादेश हो॥

न क्वादेः ॥ ५९ ॥

क्वादेर्धातोः कुत्वं न स्यात् । यथा-गर्ज्यम् । खर्ज्यम् ॥
कवर्गादि धातु को कुत्वादेश न हो ॥ ५९ ॥

अजिव्रज्योश्च ॥ ६० ॥

अजिव्रज्योः च । कुत्वं न स्यात् । यथा-समाजः । परिव्राजः ॥
अजि और व्रजि अंगको पूर्वप्राप्त कुत्वादेश न हो ॥ ६० ॥

भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः ॥ ६१ ॥

एतयोरेतौ निपात्यौ स्तः । यथा-भुज्यते अनेनेति-भुजः-पाणिः । (हलश्च) इतिघञ् । न्युब्जन्त्यस्मिन्निति-न्युब्जः-उपतापोरोगः ॥
पाणि और उपताप अर्थ में कुत्व का अभाव करके भुज और न्युब्ज शब्द निपातन किये हैं ॥ ६१ ॥

प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे ॥ ६२ ॥

यज्ञाङ्गे इमौ निपात्यौ स्तः । यथा--पञ्चप्रयाजाः । त्रयोऽनुयाजाः ॥
कुत्वाभावकरके यज्ञाङ्ग वाचक प्रयाज और अनुयाज शब्द निपातितहैं ॥ ६२ ॥

वञ्चेर्गतौ ॥ ६३ ॥

वञ्चेः, गतौ । कुत्वं न स्यात् । यथा--वञ्च्यं वणिजो वञ्चन्ति । गतौ किम् । वङ्क्यंकाष्ठम् । कुटिलमित्यर्थः ॥
गति अर्थ में वर्तमान वञ्च अङ्ग को कुत्वादेश हो ॥ ६३ ॥

ओक उचः के ॥ ६४ ॥

ओकः, उचः, के। उचेर्गुणकुत्वे निपात्येते-के परे। यथा—ओकः—शकुन्तवृषलौ ॥

क प्रत्यय के परे उच धातु से ओक निपातन किया है ॥

ण्य आवश्यके ॥ ६५ ॥

ण्ये, आ० के। आवश्यकेऽर्थे ण्यप्रत्यये परे कुत्वं न स्यात्। यथा—अवश्यवाच्यम्। अवश्यपाच्यम् ॥

आवश्यक अर्थ में ण्य प्रत्यय परे होतो कुत्वादेश न हो ॥ ६० ॥

यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ॥ ६६ ॥

य० र्चः, च। एषां कुत्वं न ण्ये परे। यथा—याज्यम्। याच्यम्। रोच्यम्। प्रवाच्यम्। अर्च्यम् ॥ (त्यजेश्च) ॥ त्याज्यम् ॥

ण्य प्रत्यय परे होतो यज, याच, रुच, प्रवच और ऋच अंगको कुत्वादेश न हो ॥

वचोऽशब्द संज्ञायाम् ॥ ६७ ॥

वचः, अ० म्। ण्यति कुत्वं न स्यात्। यथा—वाच्यम्। शब्दाख्यायांतु वाक्यम् ॥

शब्द संज्ञा विषय में ण्यत् प्रत्यय परे होतो वच धातु को कुत्वादेश न हो ॥ ६७ ॥

प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे ॥ ६८ ॥

इमौ शक्यार्थे निपात्येते। यथा—प्रयोक्तुं शक्यः-प्रयोज्यः। नियोक्तुं शक्यः—नियोज्यो भृत्यः ॥

शक्य अर्थ में प्र और नि पूर्वक युज धातु से कुत्वाभाव करके प्रयोज्य तथा नियोज्य शब्द निपातित किये हैं ॥ ६८ ॥

भोज्यं भक्ष्ये ॥ ६९ ॥

शक्यार्थे भक्ष्ये भोज्यं निपात्यते । यथा-भोज्य ओदनः ॥

शक्यार्थ में भक्ष्य अभिधेय होतो कुत्वाभाव करके भोज्य निपातन कियागयाहै

घोर्लोपो लेटि वा ॥ ७० ॥

घोः, लोपः, लेटि, वा । घुसंज्ञकानां लेटि वा लोपः स्यात् । यथा-दधद्रत्नानि दाशुषे । सोमो ददद्गन्धर्वाय । न च भवति । यदग्निरग्नये ददात्

लेट् लकार परे होतो घु संज्ञक अङ्गों का विकल्प से लोप हो ॥ ७० ॥

ओतः श्यनि ॥ ७१ ॥

ओकारान्तस्याङ्गस्य लोपः स्याच्छ्यनि । यथा-शो तनूकरणे-श्यति । श्यतः । श्यन्ति । दो-द्यति । सो-स्यति ॥

श्यन् प्रत्यय परे होतो ओकारान्त अङ्ग का लोपहो ॥ ७१ ॥

क्सस्याचि ॥ ७२ ॥

क्सस्य, अचि । क्सस्य लोपः स्यादजादौ तङि । (अलोऽन्त्यस्य) यथा-अधुक्षाताम् । अधुक्षाथाम् । अधुक्षि ॥

अजादि प्रत्यय परे होतो क्स प्रत्यय का लोपहो ॥ ७२ ॥

लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ॥ ७३ ॥

लुक्, वा, दुह्, आं०दे, दन्त्ये। एषां क्सस्य लुग्वा स्याद् दन्त्ये तङि। यथा- अदुग्ध। अधुक्षत। अदुग्धाः। अधुक्षथाः। अदुग्ध्वम्। अधुक्षध्वम्। अदुह्वहि, अधुक्षावहि। दिह-अदिग्ध। अधिक्षत। लिह-अलीढ। अलिक्षत। गुह-अगूढ। अधुक्षत॥

आत्मनेपद विषय में दन्त्य अक्षर परे होतो दुह, दिह, लिह और गुह अङ्ग के क्सप्रत्यय का विकल्प से लुक् हो॥ ७३॥

शमामष्टानां दीर्घः श्यनि॥ ७४॥

शमादीनामष्टानां दीर्घः स्याच्छ्यनि। यथा-शाम्यति। ताम्यति। दाम्यति। श्राम्यति। भ्राम्यति। क्षाम्यति। क्लाम्यति। माद्यति॥

श्यन् प्रत्यय परे होतो शम् आदि आठ धातुओं को दीर्घादेश हो॥ ७४॥

ष्ठिवुक्लमु चमां शिति॥ ७५॥

एषामचो दीर्घः स्याच्छिति। यथा-ष्ठीवति। क्लामति। (आङि चम इति वाच्यम्)॥ आचामति॥

शित् प्रत्यय परे होतो ष्ठिवु, क्लमु और आङ् युक्त चम् धातु को दीर्घादेश हो॥ ७५

क्रमः परस्मैपदेषु॥ ७६॥

क्रमेर्दीर्घः स्यात् परस्मैपदेषु शिति। यथा-क्रामति। क्रामतः। क्रामन्ति॥

परस्मैपद विषय में शित् प्रत्यय परे होतो क्रम् धातु को दीर्घादेश हो॥ ७६॥

इषुगमियमां छः॥ ७७॥

एषां छादेशः स्याच्छिति परे। यथा-इच्छति। गच्छति। यच्छति॥

शित् प्रत्यय परे होतो इषु गमि और यम धातु को छकारादेश हो॥ ७७॥

पाघ्राध्मास्थाम्नादाण् दृश्यर्तिसर्त्ति शदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठ मन यच्छ पश्यर्च्छ धौ सीयसीदाः ॥ ७८ ॥

पादीनां पिबादय आदेशाः स्यु शिशति परे। यथा—पा-पिबति। घ्रा–जिघ्रति। ध्मा—धमति। स्था—तिष्ठति। म्ना—मनति। दाण्—यच्छति। दृशिर्—पश्यति। अर्त्ति–ऋच्छति। सर्त्ति—धावति। शद—शीयते। सद्—सीदति॥

शित् प्रत्यय परे होतो पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशिर्, अर्त्ति, सर्त्ति, शद और सद् अंगको यथा क्रम पिव, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय, और सीद आदेशहो ॥ ७८ ॥

ज्ञाजनोर्जा ॥ ७९ ॥

ज्ञा०नोः, जा। अनयोर्जादेशः स्याच्छिति परे। यथा—जानाति। जायते॥

शित् प्रत्यय परे होतो। ज्ञा और जन अङ्गको जा आदेशहो ॥ ७९ ॥

प्वादीनां ह्रस्वः ॥ ८० ॥

प्वादयः क्र्यादिषु पठ्यन्ते। पूञ्—पवने इत्यतः,प्ली—गताविति धातूनां ह्रस्वः स्याच्छिति परे। यथा—पूञ्—पुनाति। लूञ्—लुनाति। स्तॄञ्—स्तृणाति। कॄञ्—कृणाति। वॄञ्। वृणाति। धूञ्—धुनातीत्यादयः॥

शित् प्रत्यय परे हो तो प्वादि गणपाठित अङ्गों को ह्रस्वादेश हो ॥ ८० ॥

मीनातेर्निगमे ॥ ८१ ॥

मी० ते०, नि० मे । शिति परे ह्रस्वः स्यात् । यथा—प्रमिणन्ति व्रतानि । लोके प्रमीणन्ति ॥

शित् प्रत्यय परे हो तो निगम (वेद) विषय में मीनाति अङ्ग को ह्रस्वादेश हो ॥

मिदेर्गुणः ॥ ८२ ॥

मिदेः, गुणः । मिदेरिको गुणः स्याच्छिति । यथा—मेद्यति । मेद्यतः । मेद्यन्ति ॥

शित् प्रत्यय परे हो तो मिदि अङ्ग को गुणादेश हो ॥ ८२ ॥

जुसि च ॥ ८३ ॥

अजादौ जुसि परे इगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । यथा—अजागरुः । अबिभयुः । अबिभरुः ॥

अजादि जुस् प्रत्यय परे हो तो इगन्त अङ्ग को गुणादेश हो ॥ ८३ ॥

सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ॥ ८४ ॥

सार्वधातुके आर्द्धधातुके च प्रत्यये परे-इगन्तस्याङ्गस्य गुणः स्यात् । यथा—भवति । नयति । तरति । चेता । स्तोता । कर्त्ता ॥

सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्यय परे हों तो इगन्त अङ्ग को गुण हो ॥८४॥

जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ॥ ८५ ॥

जाग्रः, अ० सु । जागर्त्तेर्गुणः स्याद्विचिण्णल्ङिद्भ्यो ऽन्यस्मिन् वृद्धिविषये प्रतिषेध विषये च । यथा—जागरयति । जागरं जागरम् । जागरः । जागरितः । जागरितवान् । जागरकः । साधुजागरी ॥

ञि, णिन्, णल् और कित् वर्जित प्रत्यय परे हों तो जागृ अङ्ग को वृद्धि अथवा प्रतिषेध विषय में गुणादेश हो ॥ ८५ ॥

पुगन्तलघूपधस्य च ॥ ८६ ॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः स्यात् सार्वधातुके आर्द्धधातुके च प्रत्यये परे। यथा--ब्लेपयति। ह्रेपयति। क्नोपयति। लघूपधस्य-भेदनम्। छेदनम्। भेत्ता। छेत्ता ॥

सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्यय परे हों तो पुगन्त और लघूपद अङ्ग को गुणादेश हो ॥ ८६ ॥

नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ८७

न, अ०स्य, अचि, पिति, सा० के। अभ्यस्तसंज्ञकस्याङ्गस्य लघूपधस्याजादौ पिति सार्वधातु के गुणो न स्यात्। यथा-नेनिजानि। अनेनिजम्। परिवेविषाणि। पर्यवेविषम् ॥ (बहुलं छन्दसीति वाच्यम्) ॥ जुजोषद् ॥

अजादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो अभ्यस्त संज्ञक लघूपध अङ्ग को गुणादेश न हो ॥ ८७ ॥

भूसुवोस्तिङि ॥ ८८ ॥

भू०वोः, तिङि। भू सू अनयोः सार्वधातु के तिङि परे गुणो न स्यात्। यथा-अभूत्। अभूः। अभूवम्। सुवै। सुवावहै। सुवामहै॥

तिङ् सार्वधातुक प्रत्यय परे होतो भू और सू अङ्ग को गुणादेश न हो ॥ ८८ ॥

उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ ८९ ॥

उतः, वृद्धिः, लुकि, हलि। लुग् विषये उकारान्तस्याङ्गस्य वृद्धि

स्यात् पितिहलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य। यथा-यौति । यौषि। यौमि । नौति । नौषि । नौमि । स्तौति । स्तौषि । स्तौमि ॥

लुक् विषय में हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होतो अभ्यस्त वर्जित उकारान्त अङ्ग को वृद्धि आदेश हो ॥ ८९ ॥

ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ ९० ॥

ऊर्णोतेः, वि० षा । ऊर्णोतेर्वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातु के । यथा-ऊर्णौति । ऊर्णोति । ऊर्णौषि । ऊर्णोषि । ऊर्णौमि । ऊर्णोमि ॥

हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होतो ऊर्णुञ् अंग को विकल्प से वृद्धि हो ॥

गुणोऽपृक्ते ॥ ९१ ॥

गुणः, अपृक्ते। ऊर्णोतेर्गुणः स्यादपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । यथा--और्णोत्, और्णोः ॥

हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो ऊर्णुञ् अंग को गुणादेश हो ९१

तृणह इम् ॥ ९२ ॥

तृणहः, इम् । तृहः श्नमि कृते इमागमः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके । यथा--तृणेढि । तृणेक्षि । तृणेह्मि ॥

हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो तृह अंग को इम् का आगम हो ॥

ब्रुव ईट् ॥ ९३ ॥

ब्रुवः, ईट् । ब्रुवः परस्येहलादेः पितः सार्वधातुकस्येडागमः स्यात् । यथा -ब्रवीति । ब्रवीषि । ब्रवीमि ॥

ब्रूञ् अङ्ग से परे हलादि पित् सार्वधातु को ईट् का आगम हो ॥ ९३ ॥

यङो वा ॥ ९४ ॥

यङः, वा । यङन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य वेडागमः स्यात् । यथा—बोभवीति । बोभोति । बोभवीषि । बोभोषि । बोभवीमि । बोभोमि ॥

यङ् प्रत्यय से परे हलादि पित् सार्व धातुक को विकल्प से ईडागम हो। ॥ ९४ ।

तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ॥ ९५ ॥

एभ्यः परस्य सार्वधातुकस्य हलादेस्तिङो वेडागमः स्यात् । यथा--उत्तवीति । उत्तोति । रवीति । रौति । स्तवीति । स्तौति । शमीध्वम् । शाम्यध्वम् । अभ्यमीति । अभ्यमाति ॥

तु (गत्यर्थक सौत्र धातु) रु, स्तु, शम् और अम् धातु से परे हलादि तिङ् सार्वधातुक को विकल्प से इडागम हो ॥ ९५ ॥

अस्तिसिचोऽपृक्ते ॥ ९६ ॥

अ०चः, अ०क्तो विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तहल ईडागमः स्यात् । यथा-आसीत् । आसीः । सिजन्तात्-अकार्षीत् । असावीत् ॥

विद्यमान अस् और सिजन्त अंग से परे अपृक्त हल् अंग को ईट् का आगम हो।

बहुलं छन्दसि ॥ ९७ ॥

छन्दसि विषये अस्तिसिचोरपृक्तस्य सार्वधातुकस्य बहुलमीडागमः स्यात् । यथा-सर्वमाः । आसीदिति स्थाने । अक्षाः ॥

छन्द विषय में अस्ति (अस) और सिजन्त अंग से परे अपृक्त सार्वधातुक प्रत्यय को बाहुल्य से ईट् का आगम हो ॥ ९७ ॥

१—आ इति, ।. अस्ते लङ् तिप् शपो लुक् हत्व विसर्जनीयौ ॥

रुदश्च पञ्चभ्यः ॥ ९८ ॥

रुदः, च, पञ्चभ्यः। रुदादिभ्यः पञ्चभ्यः परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्यापृक्तस्य ईडागमः स्यात्। यथा-अरोदीत्। अरोदीः। अस्वपीत्। अस्वपीः। अश्वसीत्। अश्वसीः। प्राणीत्। प्राणीः। अजक्षीत्। अजक्षीः॥

रुदादि पञ्च धातुओं से परे अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक को ईट् का आगम हो॥

अड् गार्ग्यगालवयोः ॥ ९९ ॥

रुदादिभ्यः पञ्चभ्यः परस्य हलादेः पितः सार्वधाकस्य अपृक्तस्य गार्ग्यगालवमतेन अडागमः स्यात्। यथा-अरोदत्। अरोदीत्। अरोदः। अरोदीः। अस्वपत्। अस्वपीत्। अस्वपः। अस्वपीः। अश्वसत्। अश्वसीत्। अश्वसः। अश्वसीः। प्राणत्। प्राणीत्। प्राणः। प्राणीः। अजक्षत्। अजक्षीत्। अजक्षः। अजक्षीः॥

रुदादि पञ्च धातुओं से परे गार्ग्य और गालवजी के मत में अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुको अट् का आगम हो॥ ९९॥

अदः सर्वेषाम् ॥ १०० ॥

अदः परस्या पृक्तसार्वधातुकस्याडागमः स्यात् सर्वमतेन। यथा-आदत्। आदः॥

अद धातु से परे सर्व आचार्यों के मत में अपृक्त हलादि सार्वधातुक को अट् का आगम हो॥ १००॥

अतोदीर्घो यञि ॥ १०१ ॥

अतः, दीर्घः, यञि । अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्याद् यञादौ सार्वधातुके परे । यथा—भवामि । भवावः । भवामः । पच्यामि । पच्यावः । पच्यामः ॥

यञ् आदि सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश हो ॥

सुपि च ॥ १०२ ॥

यञादौ सुपि परेऽतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात् । यथा—बालकाभ्याम् ३ । बालकाय ॥

यञ् आदि सुप् परे हो तो अदन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो ॥ १०२ ॥

बहुवचने झल्येत् ॥ १०३ ॥

ब० ने, झलि, एत् । झलादौ बहुवचने सुपि परेऽतोऽङ्गस्यैकारादेशः स्यात् । यथा—बालकेभ्यः २ । बालकेषु ॥

बहुवचन में झलादि सुप् परे हो तो अदन्तअङ्ग को एकारादेश हो ॥ १०३ ॥

ओसि च ॥ १०४ ॥

ओसिपरेऽतोऽङ्गस्यैकरादेशः स्यात् । यथा—बालकयोः २ ॥

ओस् परे हो तो अदन्त अङ्ग को एकारादेश हो ॥ १०४ ॥

आङि चापः ॥ १०५ ॥

आङि, च, आपः । आङिति टासञ्ज्ञा प्राचाम् । आङि ओसि च परे आबन्ताङ्गस्यैकारादेशः स्यात् । यथा—यशोदया । यशोदयोः २ ॥

आङ् (या) और ओस् परे हो तो आबन्त अङ्ग को एकारादेश हो ॥ १०५ ॥

सम्बुद्धौ च ॥ १०६ ॥

आबन्तस्याङ्गस्यैत्वं स्यात्। एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धि लोपः। यथा-हे यशोदे!। प्रमोदे!॥

सम्बुद्धि परे होतो आबन्त अङ्ग को एत्व हो ॥ १०६ ॥

अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ॥ १०७ ॥

अं०द्योः, ह्रस्वः। अम्बार्थानां नद्यन्तानां चाङ्गानां ह्रस्वः स्यात् सम्बुद्धौ परे। यथा-हेऽम्ब!। हेऽक्क!। हेऽल्ल!। नद्याः। हे कुमारि!। वीरबन्धु!॥ (डलकवतीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः)॥ यथा-हेऽम्बाडे। हेऽम्बाले। हेऽम्बिके। (छन्दसि वेति वाच्यम्)॥ हेऽम्बाड। हेऽम्बाडे। हेऽम्बाल। हेऽम्बाले। (तको ह्रस्वो वाडि सम्बुद्धयोरिति वक्तव्यम्)॥ देवतेभाक्तिः, देवतायां वा। हे देवते॥ हे देवत॥ (मातृणां मातच् पुत्रार्थमहते)। गार्गीमात। वात्सीमात॥

सम्बुद्धि परे होतो अम्बार्थ (माता के वाचक, और नद्यन्त अङ्गको ह्रस्वादेश हो

ह्रस्वस्य गुणः ॥ १०८ ॥

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणःस्यात् सम्बुद्धौ परे। यथा-हे अग्ने!। हेप्रभो!॥

सम्बुद्धि परे होतो ह्रस्वान्त अङ्गको गुणादेश हो ॥ १०८ ॥

जसि च ॥ १०९ ॥

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः स्याज्जसिपरे। यथा-कवयः। साधवः। मतयः। धेनवः॥ (जसादिषुच्छन्दसि वेति वाच्यम्)॥ किं प्रयोजनम्। अम्बे दर्विशतक्रत्वः पश्वे किकिदीव्या। अम्बे, अम्ब। दर्वे, दर्वि। शतक्रत्वः, शतक्रतवः। पश्वे, पशवे। किकिदीव्या। किकिदीविना॥

जस् परे होतो ह्रस्वान्त अङ्गको गुणादेश हो ॥ १०९ ॥

ऋतोङिसर्वनामस्थानयोः ॥ ११० ॥

ऋतः, ङि०योः । ङौ सर्वनाम स्थाने च परे ऋदन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । यथा–ङौ–मातरि । पितरि । भ्रातरि । जामातरि । कर्त्तरि । सर्वनामस्थाने--मातरौ । मातरः । पितरौ । पितरः । भ्रातरौ। भ्रातरः। कर्त्तारौ । कर्त्तारः ॥

ङि और सर्वनाम स्थान परे होतो ऋदन्त अङ्गको गुणादेशहो ॥ ११० ॥

घेर्ङिति ॥ १११ ॥

घेः, ङिति । घ्यन्ताङ्गस्य ङिति सुपि परे गुणः स्यात् । यथा–कवये । कवेः २ । प्रभवेददामि । प्रभोरायामि । प्रभोराज्ञांपालयामि॥

ङित् सुप् विभक्ति परे होतो घ्यन्त अङ्गको गुण आदेशहो ॥ १११ ॥

आण्नद्याः ॥११२॥

आट्, नद्याः । नद्यन्ताङ्गात्परेषां ङितामाडागमः स्यात् । यथा–कुमार्यै । वध्वै । कुमार्याः २ । वध्वाः २ ॥

नद्यन्त अङ्ग से परे ङित् सुप् प्रत्ययों को आट् का आगम हो ॥ ११२ ॥

याडापः ॥ ११३ ॥

याट्, आपः । आबन्ताङ्गात् परेषां ङितां याडागमः स्यात् । यथा–यशोदायै । यशोदायाः २ ॥

आबन्त अंग से परे ङित् प्रत्ययों को याट् का आगम हो ॥ ११३ ॥

सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ॥ ११४ ॥

स० म्नः, स्याट्, ह्रस्वः, च । आबन्तात् सर्वनाम्नः परस्य ङितः स्याडागमः स्याद् आपश्च ह्रस्वः । यथा—सर्वस्यै । सर्वस्याः २ । भवत्यै । भवत्याः ॥

आबन्त सर्वनाम से परे ङित् सुप् प्रत्यय को स्याट् का आगम हो और आप् को ह्रस्वादेश हो ॥ ११४ ॥

विभाषा द्वितीया तृतीयाभ्याम् ११५

आभ्यां परस्य ङितो वा स्याडागमः स्यात्, आपश्च ह्रस्वः । यथा—द्वितीयस्यै, द्वितीयायै । तृतीयस्यै, तृतीयायै । द्वितीयस्याः २ । द्वितीयायाः २ । तृतीयस्याः २ । तृतीयायाः २ ॥

द्वितीया और तृतीया शब्द से परे ङित् प्रत्यय को विकल्प से स्याट् का आगम हो॥

ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ॥ ११६ ॥

ङेः, आम्, नं० भ्यः । नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेरामादेशः स्यात् । यथा—कुमार्याम् । वध्वाम् । गङ्गायाम् । ग्रामण्याम् ॥

नद्यन्त और आबन्त तथा नी शब्द से ङि विभक्ति को आम् आदेश हो ॥ ११६ ॥

इदुद्भ्याम् ॥ ११७ ॥

इदुद्भ्यां नदीसञ्ज्ञकाभ्यां परस्य ङेरामादेशः स्यात् । यथा—मत्याम् । धेन्वाम् ॥

नदीसञ्ज्ञक इकार उकार से परे ङि को आम् आदेश हो ॥ ११७ ॥

औत् ॥ ११८ ॥

इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत् स्यात् । यथा—सख्यौ । पत्यौ ॥

इकार उकार से परे ङि विभक्ति को औकारादेश हो ॥ ११८ ॥

अच्च घेः ॥ ११९ ॥

अत्, च, घेः । इदुद्भ्यांपरस्य ङेरौत् घेरत् । यथा--कवौ । प्रभौ । मतौ । धेनौ ॥

इकार उकार से परे ङि को औकारादेश और घिसंज्ञक को अकार हो ११९

आङो नाऽस्त्रियाम् ॥ १२० ॥

आङः, ना, अं० म् । घेः परस्याऽऽङोना स्यादस्त्रियाम् । यथा-- कविना । प्रभुणा ॥

घि संज्ञक से परे आङ् (टा विभक्ति) को ना आदेश हो ॥ १० ॥

इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्थःपादः

णौचङ्युपधाया ह्रस्वः ॥ १ ॥

णौ, चङि, उ०याः, ह्रस्वः । चङ् परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात् । यथा-अचीकरत्।अजीहरत्। अलीलवत्। अपीपठत्॥

चङ् है परे जिससे ऐसा णि प्रत्यय परे होतो अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेशहो

नाग्लोपि शास्वृदिताम् ॥ २ ॥

न, अं० म् । अग्लोपिनः शास्तेर्ऋदितां चोपधाया ह्रस्वो न स्यात् । यथा-अग्लोपिनः-मातरमाख्यत्-अममातरत् । राजनमति क्रान्तवान्-अत्यरराजत् । लोमान्यनुमृष्टवान्-अन्वलुलोमत् ।

१ प्रगेव यत्रकेवलोलुप्यते तत्र स्थानिवद्भावे नैवसिद्धम्,हलचोरादेशार्थमिदं वचः ॥

अशशासत् । बाधृ–अबबाधत्। याचृ–अययाचत् । ढौकृ-अडुढौकत्॥

चङ् है परे जिससे ऐसा णि परे होतो अग्लोपीशास तथा ऋदित् अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश न हो ॥ २ ॥

भ्राज भास भाष दीप जीव मील पीडा मन्यतरस्याम् ॥ ३ ॥

भ्रा०म्६, अ० म्अ । एषामुपधाया ह्रस्वो वा स्याच्चङ् परे णौ । यथा–अबभ्राजत्, अबिभ्रजत् । अबभासत्, अबीभसत् । अबभाषत्, अबीभषत् । अदिदीपत्, अदीदिपत् । अजीजिवत्, अजिजीवत् । अमीमिलत्, अमिमीलत् । अपीपिडत्, अपिपीडत् ॥

चङ् परक णि परे होतो भ्राज, भास, भाष, दीप, जीव, मील और पीड अङ्ग की उपधा को विकल्प से ह्रस्वादेश हो ॥ ३ ॥

लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ॥ ४ ॥

लोप१ः, पिबते६ः, ईत्१ च, अ०स्य६ । पिबतेरुपधाया लोपः स्यादभ्यासस्य ईदादेशश्च चङ् परे णौ । यथा–अपीप्यत् । अपीप्यताम् । अपीप्यन् ॥

चङ्परक णि प्रत्यय परे होतो पिबति अङ्ग की उपधा का लोप और अभ्यास को ईकारादेश हो ॥ ४ ॥

तिष्ठतेरित् ॥ ५ ॥

तिष्ठते६ः, इत् । तिष्ठतेरुपधाया इदादेशः स्याच्चङ् परे णौ । यथा अतिष्ठिपत् । अतिष्ठिपताम् । अतिष्ठिपन् ॥

चङ् परक णि प्रत्यय परे होतो तिष्ठति (ष्ठा) अङ्ग की उपधा को इकारादेश हो

जिघ्रते र्वा ॥ ६ ॥

जिघ्रतेः, अ । जिघ्रते रुपधाया वेदादेशः स्याच्चङ्परे णौ । यथा—अजिघ्रिपत् । अजिघ्रिपताम् । अजिघ्रिपन् । अजिघ्रपत् । अजिघ्रपताम् । अजिघ्रपन् ॥

चङ् परक णि परे होतो जिघ्रति (घ्रा) अङ्ग की उपधा को विकल्प से इकारादेश हो ॥ ६ ॥

उर्ऋत् ॥ ७ ॥

उः, ऋत् । उपधाया ऋवर्णस्य स्थाने ऋद्वा स्याच्चङ् परेणौ । यथा—पृथ—प्रक्षेपे । अपीपृथत्, अपपर्थत् । अवीवृतत्, अववर्तत् । अमीमृजत्, अममार्जत् ॥

चङ् परक णि परे होतो अङ्ग की उपधा ऋवर्ण के स्थान में ऋकारादेश हो ७

नित्यं छन्दसि ॥ ८ ॥

छन्दसि विषये उपधाया ऋवर्णस्य स्थाने नित्यमृत् स्याच्चङ् परेणौ ॥ यथा—अवीवृधत् ॥

छन्दो विषय में चङ् परक णि परे होतो अङ्ग की उपधा ऋवर्ण को नित्य ऋकारादेश हो ॥ ८ ॥

दयतेर्दिगि लिटि ॥ ९ ॥

दयतेः, दिगि, लिटि । दयतेर्दिगि आदेशः स्याल्लिटि । यथा—दिग्ये । दिग्याते । दिग्यिरे ॥

लिट् लकार परे होतो दयति (देङ्—रक्षणे) अङ्गको दिगि आदेश हो ॥ ९ ॥

ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ॥ १० ॥

ऋतः, च, संयोगादेः, गुणः । संयोगादेर्ऋदन्तस्याङ्गस्य गुणः स्या-

ल्लिटि । यथा—हृ-जह्वरतुः । जह्वरुः । स्मृ-सस्मरतुः, सस्मरुः ॥

लिट् लकार परे होतो संयोगादि ऋदन्त अंगको गुणादेशहो ॥ १० ॥

ऋच्छत्यृताम् ॥ ११ ॥

तौदादिकऋच्छतेः, ऋधातोः ऋतामङ्गानां च गुणः स्याल्लिटि । यथा-आनर्च्छ । आनर्च्छतुः।आनर्च्छुः ऋ-आर।।निचकरतुः।।

लिट् लकार परे होतो ऋच्छति (ऋच्छ-गतीन्द्रिय प्रलय मूर्त्ति भावेषु) ऋ और ऋदन्त अङ्गों को गुणादेशहो ॥ ११ ॥

शृदृपां ह्रस्वो वा ॥ १२ ॥

एषां लिटि ह्रस्वो वा स्यात् । पक्षे गुणः । यथा-विशश्रतुः, विशशरतुः । विशश्रुः, विशशरुः । विदद्रतुः, विददरतुः । विदद्रुः, विददरुः । पप्रतुः, पपरतुः । पप्रुः, पपरुः॥

लिट् लकार परे हो तो शृ दृ और पृ अङ्ग को विकल्प से ह्रस्वादेश हो १२

केऽणः ॥ १३ ॥

के, अणः । के प्रत्यये परेऽणो ह्रस्वः स्यात् । यथा—ज्ञका । कुमारिका ॥

क प्रत्यय परे हो तो अण् को ह्रस्वादेश हो ॥ १३ ॥

न कपि ॥ १४ ॥

कपिप्रत्यये परेऽणो ह्रस्वो न स्यात् । यथा—बहुकुमारीकः । बहुवधूकः । बहुलक्ष्मीकः ॥

कप् प्रत्यय परे हो तो अण् को ह्रस्वादेश न हो ॥ १४ ॥

आपोऽन्यतरस्याम् ॥ १५ ॥

आपः, अ० म् । कपि परे आबन्तस्य ह्रस्वो वा स्यात् । यथा- बहुमालाकः, मालकः ॥

कप् प्रत्यय परे हो तो आबन्त अङ्ग को विकल्प से ह्रस्वादेश हो ॥ १५ ॥

ऋदृशोऽङि गुणः ॥ १६ ॥

ऋदृशः, अङि, गुणः । अङि परे ऋवर्णान्तानां दृशेश्च गुणः स्यात् । यथा-अहं तेभ्योऽकरं नमः । असरत् । आरत् । अदर्शत्, अदर्शताम्, अदर्शन् ॥

अङ् प्रत्यय परे हो तो ऋवर्णान्त और दृशिर् अङ्ग को गुणादेश हो ॥ १६ ॥

अस्यतेस्थुक् ॥ १७ ॥

अस्यतेः, थुक् । अङि परेऽस्यतेस्थुगागमः स्यात् । यथा-आस्थत्, आस्थताम्, आस्थन् ॥

अङ् प्रत्यय परे हो तो अस्यति (असु क्षेपणे) अङ्ग को थुक् का आगम हो ॥

श्वयतेरः ॥ १८ ॥

श्वयतेः, अः । श्वयतेरिकारस्य अकारादेशः स्यादङि परे । यथा-अश्वत्, अश्वताम्, अश्वन् ॥

अङ् प्रत्यय परे हो तो श्वयति (टु-ओश्वि- गतिवृद्ध्योः) अङ्ग को अकारादेश हो ॥

पतः पुम् ॥ १९ ॥

अङि परे पतः पुगागमः स्यात् । यथा-अपप्तत्, अपप्तताम्, अपप्तन् ॥

अङ् परे हो तो पत्लृ धातु को पुम् का आगम हो ॥ १९ ॥

वच उम् ॥ २० ॥

वचः, उम्। अङि परे वचेरुमागमः स्यात्। यथा-अवोचत्, अवोचताम् अवोचन्॥

अङ् परे हो तो वच धातु को उम् का आगम हो ॥ २० ॥

शीङः सार्वधातुके गुणः ॥ २१ ॥

स्पष्टम्। यथा-शेते, शयाते, शेरते ॥

सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो शीङ् अङ्ग को गुणादेश हो ॥ २१ ॥

अयङ् यि क्ङिति ॥ २२ ॥

शीङोऽयङादेशः स्याद्यादौ क्ङिति। यथा-शय्यते। शाशय्यते। प्रशय्य। उपशय्य ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हो तो शीङ् धातु को अयङ् आदेश हो ॥

उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ॥ २३ ॥

उ० द्, ह्रस्वः, ऊ० तः। यादौ क्ङिति परे उपसर्गादुत्तरस्योहते ह्रस्वः स्यात्। यथा-समुह्यते। अग्निं समुह्य ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हो तो उपसर्ग से पर ऊहति (वह) अङ्ग को ह्रस्वादेश हो ॥ २३ ॥

एतेर्लिङि ॥ २४ ॥

एतेः, लिङि। उपसर्गादुत्तरस्य इणोऽणो ह्रस्वः स्यादार्धधातुके

यादौ क्ङिति लिङि। यथा—निरियात्। उदियात्॥

यकारादि सार्वधातुक कित् लिङ् परे हो तो उपसर्ग से परे इण धातु को ह्रस्व हो॥

अकृत् सार्वधातुकयोर्दीर्घः ॥ २५ ॥

अ०यो०:, दीर्घः। क्ङिति यादौ प्रत्यये परेऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घः स्यात्, न तु कृत् सार्वधातुकयोः। यथा—भृशायते। सुखायते। दुःखायते। चीयते। चेचीयते। स्तूयते। तोष्टूयते। चीयात्। स्तूयात्॥

कृत् और सार्वधातुक वर्जित यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे होतो अजन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो॥ २५॥

च्वौ च ॥ २६ ॥

च्वि प्रत्यये परेऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घः स्यात्। यथा—शुची करोति। शुची भवति। शुची स्यात्। पटूकरोति। पटूभवति। पटूस्यात्॥

च्वि प्रत्यय परे होतो अजन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो॥ २६॥

रीङ् ऋतः ॥ २७ ॥

अकृत् सार्वधातुक यकारे च्वौ च, परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः स्यात्। यथा—मात्रीयते, मात्रीयति। पित्रीयते, पित्रीयति। मात्रीभूता। पित्रीभूतः। (यस्येतिच) पितुरागतम्—पित्र्यम्॥

कृत् और सार्वधातुक वर्जित यकारादि तथा च्वि प्रत्यय परे होतो ऋदन्त अङ्ग को रीङ् आदेश हो॥ २७॥

रिङ् शयग्लिङ्क्षु ॥ २८ ॥

से, यकि, यादावार्धधातुके लिङि च, परेऽऋदन्तस्याङ्गस्य रिङादेशः स्यात्। यथा—शे—आद्रियते। आध्रियते। यकि—क्रियते।

ह्रियते । म्रियते । लिङि- क्रियात् । ह्रियात् । म्रियात् ।

श, यक् और यकारादि आर्ध धातुक लिङ् परे होतो ऋदन्त अङ्ग को रिङ् आदेशहो ॥ २८ ॥

गुणोऽर्त्ति संयोगाद्योः ॥ २९ ॥

गुणः, अं०द्योः । अर्त्तेः, संयोगादे ऋदन्तस्य च गुणः स्याद्यकि, यादावार्ध धातुके लिङि च परे । यथा–अर्यते । स्मर्यते । अर्यात् । स्मर्यात् ॥

यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे होतो अर्त्ति (ऋ) और संयोगादि ऋदन्त अङ्ग को गुणादेशहो ॥ २९ ॥

यँङि चँ ॥ ३० ॥

यङि च परे अर्त्तेः, संयोगादे श्च, ऋतो गुणः स्यात् । (यकार पर रेफस्य न द्वित्व निषेधः) यथा–अरार्यते । सास्मर्यते ॥

यङ् परे होतो अर्त्ति और संयोगादि ऋदन्त अङ्गको गुणादेशहो ॥ ३० ॥

ई घ्राध्मोः ॥ ३१ ॥

यङि परे घ्राध्मोरीत् स्यात् । यथा–जेघ्रीयते । देध्मीयते ॥

यङ् प्रत्यय परे होतो घ्रा और ध्मा धातु को ईकारादेशहो ॥ ३१ ॥

अस्यँ च्वौँ ॥ ३२ ॥

अवर्णस्य ईत् स्यात् च्वौ परे । वेर्लोपः । च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम् । यथा--अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति--शुक्ली करोति । कृष्णी भवति । गङ्गी स्यात् ॥

च्वि प्रत्यय परे होतो अवर्णान्त अङ्गको ईकारादेशहो ॥ ३२ ॥

क्यचि च ॥ ३३ ॥

क्यचि च परे अवर्णस्य ईत् स्यात्। यथा--पुत्रमात्मन इच्छति - पुत्रीयति। घटीयति। मालीयति। वस्त्रीयति ॥

क्यच् प्रत्यय परे होतो भी अवर्णको ईकारादेशहो ॥ ३३ ॥

अशनायोदन्य धनाया बुभुक्षा पिपासागर्द्धेषु ॥ ३४ ॥

अं०याः, बु०पुं। क्यजन्ता इमे निपात्यन्ते बुभुक्षादिषु गम्यमानेषु। यथा--अशनायति। बुभुक्षमाणोऽन्नमिच्छतीत्यर्थः। उदकीयति। स्नानाद्यर्थमुदकमिच्छतीत्यर्थः। धनायति। सत्येवधने भूयोऽपि धनमिच्छतीत्यर्थः। उदन्येति उदकशब्दस्य उदन्नादेशो निपात्यते ॥

बुभुक्षा (भूख) पिपासा और गर्द्ध (अतिशय स्पृहा) अर्थ में अशनाय, उदन्य और धनाय शब्द क्यजन्त निपातन किये हैं ॥ ३४ ॥

न छन्दस्यपुत्रस्य ॥ ३५ ॥

न, छं०सि, अ०स्य। छन्दसि विषये पुत्राभिन्नस्यादन्तस्य क्यचि ईत्वदीर्घौ न स्याताम्। यथा--मित्रयुः। क्याच्छन्दसीति उः॥ (अपुत्रादीनामिति वाच्यम्)॥ जनीयन्तोन्वग्रवः। जनमिच्छन्त इत्यर्थः॥

छन्द विषय में क्यच् प्रत्यय परे होतो पुत्र शब्द वर्जित अदन्त अङ्गको ईत्व और दीर्घादेश न हो ॥ ३५ ॥

दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति

छन्दसी मे क्यचि निपात्यन्ते । भाषायांतु उप्रत्ययाभावः । यथा–दुष्टीयति । द्रविणीयति । वृषीयति । रिष्टीयति ॥

छन्द विषय में क्यच् प्रत्यय के परे दुरस्युः, द्रविणस्युः वृषण्यति और रिषण्यति ये निपातित हैं ॥ ३६ ॥

अश्वाघस्यात् ॥ ३७ ॥

अ० ६स, आत् । क्यचिपरे अश्व अघ एतयो रात् स्याच्छन्दसि । यथा–अश्वायन्तो मघवन् । मात्वा वृका अघायवोविदन् ॥

क्यच प्रत्यय परे हो तो छन्दविषय में अश्व और अघ शब्द को आकारादेशहो

देवसुम्नयोर्यजुषिकाठके ॥ ३८ ॥

दे० योः६, यं०षि, कां० के । अनयोः क्यचि आत् स्याद् यजुषि कठशाखायाम् । यथा–देवायन्तो यजमानाः । सुम्नायन्तो हवामहे ॥

युजुर्वेदकी कठशाखा में क्यच् प्रत्यय परे होतो देव और सुम्न शब्दों को आकारादेश हो ॥ ३८ ॥

कव्यध्वरपृतनस्यर्चिलोपः ॥ ३९ ॥

क०स्य६, ऋचि७, लोपः । क्यचिपरे एषामङ्गानां लोपः स्यादृचि । यथा–कव्यन्तः सुमनसः । अध्वर्यन्तः । पृतन्यन्तास्तिष्ठन्ति ॥

क्यच् प्रत्यय परे होतो ऋग्वेद में कवि अध्वर और पृतन अङ्ग के अन्तका लोपहो

द्यतिस्यतिमास्थामित्तिकिति ॥ ४० ॥

द्य० ६म, इत् १, ति७, किति । एषामिदन्तादेशः स्यात्तादौकिति । यथा–दितः । सितः । मा, माङ् । मेङ्–मितः । स्थितः ॥

१ कठानामिदं-काठकम् । गोत्रचरणाद्वुञ् ॥

तकारादि कित् प्रत्यय परे होतो द्यति, स्यति, मा और स्था अङ्ग के अंत को इकारादेशहो ॥४०॥

शाच्छोरन्यतरस्याम् ॥ ४१ ॥

शाच्छोः, अ०म् । अनयोर्वेदन्तादेशः स्यात् तादौकिति । यथा–शितः, शातः । छितः, छातः । व्यवस्थित विभाषात्वाद् व्रतविषये श्यतेर्नित्यम्--संशितं व्रतम् । सम्यक् सम्पादित मित्यर्थः । संशितोविप्रः । व्रतविषयक यत्नवानित्यर्थः ॥

तकारादि कित् प्रत्यय परे होतो शा (शो-तनूकरणे) और छा (छो-छेदने) अङ्ग को विकल्प से इकारादेश हो ॥ ४१ ॥

दधातेर्हिः ॥ ४२ ॥

द० तेः, हिः । तादौ किति दधातेर्हिरादेशः स्यात् । यथा–अभिहितम् । निहितम् । हितः । हितवान् । हित्वा ॥

तकारादि कित् प्रत्यय परे होतो दधादि धातुको हि आदेश हो ॥ ४२ ॥

जहातेश्च क्त्वि ॥ ४३ ॥

ज०तेः,च, क्त्वि ॥ क्त्वाप्रत्यये परे जहातेर्हिरादेशः स्यात् । यथा–हित्वाराज्यं वनंगतः । ओ हाङस्तु हात्वा ॥

क्त्वा प्रत्यय परे होतो जहाति (ओ-हाक्) धातु को हि आदेश हो ॥ ४३ ॥

विभाषा छन्दसि ॥ ४४ ॥

छन्दसि विषये जहातेर्वाहिरादेशः स्यात् क्त्वा प्रत्यये परे । यथा--हित्वा, हात्वावा ॥

छन्द विषय में क्त्वा प्रत्यय परे होतो जहाति अङ्गको विकल्प से हि आदेशहो॥

सुधित वसुधित नेम धित धिष्वधिषीय च ॥

छन्दसि सु वसु नेम एतत् पूर्वस्य दधातेः क्तप्रत्यये परे इत्त्वं निपात्यते । यथा—सुधितम् । सुहितं लोके । वसुधितम् । वसुहितं लोके । नेमधिता । नेमहिता लोके । धिष्व । धित्स्व लोके । लोण्मध्यमैकवचने दधाते रित्वमिडागमो वा द्विर्वचनाभावश्च निपात्यते । धिषीय । धासीय लोके । आशीर्लिङि । इट् । इटोऽत् ॥

छन्दविषयमें स वसुनेम पूर्वकक्त प्रत्ययकेपर दधाति अंगको इत्त्व निपातन कियागया है

दोदद्घोः ॥ ४६ ॥

दः, दत्, घोः । दा इत्यस्य घु संज्ञकस्य ददादेशः स्यात्तादौ किति । खरिचेतिचर्त्वम् । यथा—दत्तः । दत्तवान् । दत्तिः ॥

तकारादि कित् प्रत्यय परे हो तो घुसंज्ञक दा अङ्ग को दत् आदेश हो ॥४६॥

अच उपसर्गात्तः ॥ ४७ ॥

अचः, उं० त, तः । अजन्तादुपसर्गात्परस्य दा इत्यस्य घोरचः तः स्यात्तादौ किति । यथा—प्रत्तः, अवत्तः । अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादि कर्मणि । सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥

तकारादि कित् प्रत्यय परे हो तो अजन्त उपसर्ग से परे घुसंज्ञक दा धातु को तकारादेश हो ॥ ॥ ४७ ।

अपो भि ॥ ४८ ॥

अपः, भि । अपस्तकारादेशः स्याद् भादौ प्रत्यये परे । यथा—अद्भिः, अद्भ्यः ॥

झकारादि प्रत्यय परे हो तो अप् अङ्ग को तकारादेश हो ॥ ४८ ॥

सः स्यार्धधातुके ॥ ४९ ॥

सः, सि, आ० के । सस्य तकारादेशः स्याद् सादवार्धधातुके परे । यथा—घत्स्यति । जिघत्सति । वत्स्यति । विवत्सति ॥

सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय परे हों तो सकारान्त अङ्ग को तकारादेश हो ॥

तास स्त्योर्लोपः ॥ ५० ॥

ता० स्त्योः, लोपः । तासेरस्तेश्च सकारस्य लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे । यथा—कर्त्तासि । कर्त्तासे । त्वमसि ॥

सकारादि प्रत्यय परे हों तो तास् और अस्ति के सकार का लोप हो ॥ ५० ॥

रि च ॥ ५१ ॥

रादौ प्रत्यये परे तासस्त्योः सकारस्य लोपः स्यात् । यथा—कर्त्तारौ, कर्त्तारः । अध्येतारौ, अध्येतारः। भवितारौ, भवितारः ॥

रादि प्रत्यय परे हो तो तास् और अस्ति (अस) के सकार का लोप हो ॥

ह एति ॥ ५२ ॥

हः, एति । तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे । यथा—एधिताहे । कर्त्ताहे । व्यतिहे । कर्त्तरिकर्म व्यतिहार इत्यात्मनेपदम् ॥

एति (इट्) प्रत्यय परे हो तो तास् और अस्ति के सकार को हकारादेश हो ॥

यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ॥ ५३ ॥

यी० योः, दी० व्योः । दीधीवेव्योरन्तस्य लोपः स्याद्यकारे

इवर्णे च परे। यथा—आदीध्य। आवेव्य। आदीधिता। आवेविता॥

यकारादि और इवर्णादि प्रत्यय परे हों तो दीधीङ् और वेवीङ् धातु के अन्त्य का लोप हो॥ ५३॥

सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्॥ ५४॥

सनि, मी० म्, अचः, इस्। एषामचः स्थाने इसादेशः स्यात् सादौ सनि परे। यथा—मित्सति। मित्सते। दित्सति। धित्सति। आरिप्सते। लिप्सते। शिक्षति। पित्सति। प्रपित्सते॥

सकारादि सन् प्रत्यय परे हो तो मी (मीञ्, डुमिञ्) मा (मा, माङ्, मेङ्) घु (डु-दाञ्, डु-धाञ्) रभ, लभ, शक पत और पद धातु के अच् के स्थान में इस् आदेश हो॥ ५४॥

आप्ज्ञप्यृधामीत्॥ ५५॥

आ० म्, ईत्। एषामचः स्थाने ईदादेशः स्यात्सादौ सनिपरे। यथा—ईप्सति। ज्ञीप्सति। ईर्त्सति। रपर ईकारः धकारस्य चर्त्वम्॥

सकारादि सन् प्रत्यय परे हो तो आप (आप्लृ-व्याप्तौ) ज्ञपि (ज्ञा-अवबोधने) और ऋध अङ्ग के अच् के स्थान में ईकारादेश हो॥ ५५॥

दम्भ इच्च॥ ५६॥

दम्भः, इत्, च। दम्भेरचः स्थाने इत् स्यादीच्च सादौ सनि परे। यथा—धिप्सति। धीप्सति। हलन्ताच्चेति सनः कित्वादुपधालोपः, भकारस्य चर्त्वम्॥

सकारादि सन् प्रत्यय परे होतो दम्भ अङ्ग के अच् को इ तथा ईकारादेश हो॥ ५६॥

१—(७।४।४९) इति सकारस्य तकारः। (७।४।५८) इत्यत्र लोपोऽभ्यासस्य॥

मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा ॥ ५७ ॥

मुचः, अ०स्य, गुणः, वा । सादौ सनिपरे मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा स्यात् । यथा—मोक्षते, मुमुक्षते वा, वत्सः स्वयमेव ॥

सकारादि सन् प्रत्यय परे होतो अकर्मक मुच (मुच्लृ) अङ्ग को विकल्प से गुणादेश हो ॥ ५७ ॥

अत्र लोपोऽभ्यासस्य ॥ ५८ ॥

अत्र, लोपः, अ०स्य । सनि—मीमेत्यारभ्य यदुक्तन्तत्राभ्यासस्य लोपः स्यात् । तत्रैवोदाहृतम् ॥

सनि मीमा (७ । ४ । ५४) इस सूत्र से लेकर यहांतक अभ्यासका लोपहो॥

ह्रस्वः ॥ ५९ ॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् । यथा-डुढौकिषते।रात्रिचरीडुढौके॥

अभ्यास के अच् को ह्रस्वादेशहो ॥ ५९ ॥

हलादिः शेषः ॥ ६० ॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यताम्, अन्ये हलो लुप्यन्ताम् । यथा—पपाच । पपाठ । आट, आटतुः, आटुः ॥

अभ्यास का आदि हल् शेष रहे और इतर हलोंका लोपहो ॥ ६० ॥

शर्पूर्वाः खयः ॥ ६१ ॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ताम्, अन्ये लुप्यन्ताम् । यथा—पस्पर्धे । तिष्ठासति ॥

शर् मत्ताशार है पूर्व जिस के ऐसा अभ्यास का खय् शेष रहे और इतर हलों का लोप हो ॥ ६१ ॥

कुहोश्चुः ॥ ६२ ॥

कुहोः, चुः । अभ्यासस्य कवर्गहकारयो श्चवर्गादेशः स्यात् । यथा-चकार । चखान । जगाम । जघान । हस्य-जहार । जह्रौ । जिहीर्षति ॥

अभ्यास के कवर्ग और हकार को चवर्गादेश हो ॥ ६२ ॥

न कवतेर्यङि ॥ ६३ ॥

न, कवतेः, यङि । कवतेरभ्यासस्य यङिपरे चुत्वं न स्यात् । यथा-को कूयते शिशुकमप्यति गौरवेण ॥

यङ् प्रत्यय परे होतो कु धातु के अभ्यासको कवर्गादेश न हो ॥ ६३ ॥

कृषेश्छन्दसि ॥ ६४ ॥

कृपेः, छन्दसि । यङि परेऽभ्यासस्य चुत्वं न स्याच्छन्दसि । यथा-करीकृष्यते ॥

छन्द विषय में यङ् परे होतो कृष धातु के अभ्यासको चवर्गादेश न हो ॥ ६४ ॥

दाधर्त्ति दर्धर्त्ति दर्धर्षि बोभूतु तेति-क्तेऽलर्ष्यापनीफणत् संसनिष्यदत् करिक्रत् कनिक्रदद् भरिभ्रद् दविध्वतो दविद्युतत् तरित्रतः सरीसृपतं

वरीवृजन् मर्मृज्याऽऽगनीगन्तीति च ॥

दा॰न्ति', इति ,च । छन्दसीमेऽष्टादश निपात्यन्ते । आद्या-स्त्रयो भृञो धारयतेर्वा । भवतेर्यङ् लुगन्तस्य लोटि गुणाभावः । तिजेर्यङ् लुगन्तात्तङ् । इयतेर्लोट हलादिः शेषापवादो रेफस्य लत्वमित्वा भावश्च निपात्यते । फणतेराङ् पूर्वस्य यङ् लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य नीगागमो निपात्यते । स्यन्देः सम्पूर्वस्य यङ्लुकि शतरि अभ्यासस्य निक् । धातुसकारस्य षत्वम् । करोते र्यङ् लुगन्तस्याभ्यासस्य चुत्वाभावः क्रन्देर्लुङिच्लेरङ् द्विर्वचन मभ्यासस्य चुत्वाभावो निगागमश्च निपात्यते । बिभर्ते यङ्लु-गन्तस्य । शतरि भृत्रामिदिति इत्वाभावो जश् त्वाभावोऽभ्यासस्य रिगागमो निपात्यते । दविध्वत इति, ध्वरतेः यङ् लुगन्तस्य शतरि जसि रूपमेतत् । तस्याभ्यासस्य विगागम ऋकारलो-पश्च निपात्यते । दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य । दविद्युतदिति द्युतेर्यङ् लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य सम्प्रसारणाभावोऽत्वं विगागमश्च निपात्यते । तरित्रत इति तरतेः शतरि श्लौ षष्ठ्येकवचनेभ्यास-स्य रिगागमो निपात्यते । सरीसृपतमिति सृपेः शतरि श्लौ द्वि-तीयैक वचनेऽभ्यासस्यरीगागमो निपात्यते। वरीवृजदिति वृजेः शतरि श्लौ रीगागमो निपात्यतेऽभ्यसस्य । मर्मृजेति मृजेर्लिटिणलि अभ्यासस्य रुगागमो धातोश्च युगागमो निपात्यते । दमेराङ् पूर्व-स्य लटिश्लावभ्यासस्य चुत्वाभावोनीगागमश्च निपात्यते ॥

छन्द विषय में दाधर्ति, दर्धर्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य और आगनीगन्ति ये अठारह शब्द निपातन किये गये हैं ॥ ६१ ॥

उरत् ॥ ६६ ॥

उः, अत् । अभ्यास ऋवर्णस्य अत् प्रत्यये परे । यथा—ववृते । ववृधे । नर्नर्ति, नरिनर्त्ति, नरीनर्त्ति ॥

प्रत्यय परे होतो अभ्यास के ऋवर्णको अकारादेश हो ॥ ६६ ॥

द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ॥ ६७ ॥

अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् । यथा—दिद्युते । दिद्युताते दिद्युतिरे । सुष्वाप । सुषुपतुः । सुषुपुः ॥

द्युति और स्वपि (ञिष्वप् शये) अङ्गके अभ्यास को सम्प्रसारण हो ॥ ६७ ॥

व्यथोलिटि ॥ ६८ ॥

व्यथः, लिटि । व्यथोऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्याल्लिटि । यथा— विव्यथे, विव्यथाते, विव्यथिरे ॥

लिट् लकार परे होतो व्यथ अङ्ग के अभ्यास को सम्प्रसारण हो ॥ ६८ ॥

दीर्घ इणः किति ॥ ६९ ॥

दीर्घः, इणः, किति । इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यत् किति लिटि परे यथा—ईयतुः । ईयुः ॥

कित् लिट् प्रत्यय परे होतो इण अङ्ग के अभ्यास को दीर्घादेश हो ॥ ६९ ॥

अत आदेः ॥ ७० ॥

अतः, आदेः । अभ्यासस्यादे रतो दीर्घः स्याल्लिटि । अतोगुणे पररूपापवादः । यथा—आट, आटतुः, आटुः ॥

लिट् लकार परे हो तो अभ्यास के आदि अकार को दीर्घादेश हो ॥ ७० ॥

तस्मान्नुड् द्विहलः ॥ ७१ ॥

तस्मात्, नुट्, द्वि० त्नः । अकारादभ्यासाद्दीर्घीभूतात्परस्य द्विहलो ऽङ्गस्य नुडागमः स्यात् । यथा—आनर्द, आनर्दतुः, आनर्दुः ॥

दीर्घ किये अभ्यास से परे द्वि हल् अङ्ग को नुट् का आगम हो ॥ ७१ ॥

अश्नोतेश्च ॥ ७२ ॥

अ० तेः, च । अश्नोतेश्च दीर्घादभ्यासादवर्णात्परस्य नुडागमः स्यात् । यथा—आनशे, आनशाते, आनशिरे ॥

दीर्घ किये हुये अभ्यास से परे अश्नोति (अशू) अङ्ग को नुट् का आगम हो ॥

भवतेरः ॥ ७३ ॥

भवतेः, अः । भवते रभ्यासोकारस्य अकारादेशः स्याल्लिटि । यथा—बभूव । बभूवतुः । बभूवुः ॥

लिट् लकार परे होतो भू धातु के अभ्यासको अकारादेशहो ॥ ७३ ॥

ससूवेति निगमे ॥ ७४ ॥

ससूव, इति, निगमे । सूतेर्लिटि परस्मैपदं वुगागमोऽभ्यासस्य चात्वं निपात्यते । यथा—ससूव स्थविरम् । सुषुवे इति भाषायाम् ॥

निगम विषय में लिट् लकार में सू धातु को परस्मैपद, वुक्, आगम और अभ्यासको अकारादेश करके ससूव यह निपातन किया है ॥ ७४ ॥

णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ॥ ७५ ॥

णिजिर्, विजिर्, विष्लृ, एषां त्रयाणामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ । यथा—नेनेक्ति, नेनिक्तः, नेनिजन्ति । वेवेक्ति, वेविक्तः, वेविजन्ति । वेवेष्टि, वेविष्टः, वेविषन्ति ॥

श्लु प्रत्यय परे होतो निजादि तीन धातुओं के अभ्यास को गुणादेशहो ७५

भृञामित् ॥ ७६ ॥

भृ०म्, इत्। भृञ, माङ्, ओ--हाङ्, एषां त्रयाणामभ्यासस्येकारादेशः स्यात् श्लौ। यथा--बिभर्त्ति,बिभृतः, बिभ्रति। मिमीते, मिमाते, मिमते। जिहीते, जिहाते, जिहते ॥

श्लौ प्रत्यय पर होतो भृञादि तीन धातुओं के अभ्यासको इकारादेशहो ॥

अर्त्तिपिपर्त्योश्च ॥ ७७ ॥

अ०र्त्योः, च। एतयोरभ्यासस्य इकारोन्तादेशः स्याच्छ्लौ। (अभ्यासस्यासवर्णे) इतीयङ्। यथा-इयर्त्ति, इयृतः, इय्रति। पिपर्त्ति, पिपूर्त्तः, पिपुरति ॥

श्लु प्रत्यय पर होतो ऋ और पृ धातु के अभ्यासको इकारादेशहो ॥ ७७ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७८ ॥

श्लौ बहुलमभ्यासस्येकारादेशः स्याच्छन्दसि। यथा-पूर्णाविवष्टि। वशे रिदंरूपम् ॥

छन्दविषय में श्लु परे हो तो अभ्यास को बाहुल्य से इकारादेश हो ॥७८॥

सन्यतः ॥ ७९ ॥

सनि, अतः। सनिपरेऽभ्यासस्यात इकारादेशः स्यात्। यथा-पिपक्षति। यियक्षति। तिष्ठासति। पिपासति ॥

सन् प्रत्यय परे हो तो अभ्यासके अकार को इकारादेश हो ॥ ७९ ॥

ओः पुयण्ज्यपरे ॥ ८० ॥

१-(७।१।१०२) इत्युत्वम्। रपरत्वम् (८।२।७७) इतिदीर्घत्वम् ॥
२-(८।२।३६) इति षत्वम्। (८।२।१४) इति कुत्वम् ॥

सनिपरे यदङ्गं तदवयवाभ्यासो वर्णस्येत्त्वं स्यात् पवर्गयण् यकारेऽवर्णं परेषु परतः। यथा-पिपविषति। यियविषति जिजावयिषति ॥

अवर्ण है परे जिससे ऐसे पवर्ग यण और जकार परे हों तो सन् प्रत्यय के परे अभ्यास के उवर्ण को इकारादेश हो ॥ ८० ॥

स्रवति शृणोति द्रवति प्रवति प्लवति च्यवतीनां वा ॥ ८१ ॥

एषामभ्यासोकारस्येत्त्वं वा स्यात् सनि अवर्णपरे धात्वक्षरेपरे। यथा-सिस्रावयिषति। सुस्रावयिषति। शिश्रावयिषति। शुश्रावयिषति। दिद्रावयिषति। दुद्रावयिषति। पिप्रावयिषति। पुप्रावयिषति। पिप्लावयिषति। पुप्लावयिषति। चिच्यावयिषति। चुच्यावयिषति ॥

अवर्ण है परे जिससे ऐसा धातु अक्षर परे हो तो स्रवति, शृणोति, द्रवति, प्रवति, प्लवति, और च्यवति धातु के अभ्यास उवर्ण को सन् प्रत्यय के परे विकल्प से इकारादेश हो ॥ ८१ ॥

गुणो यङ्लुकोः ॥ ८२ ॥

गुणः, य० कोः। इगन्ताऽभ्यासस्य गुणः स्याद्यङि यङ्लुकि च परे। यथा-चेचीयते। बोभूयते। यङ्लुकि जोहवीति। चोक्रुशीति ॥

यङ् और यङ् लुक् परे हो तो इगन्त अभ्यास को गुणादेश हो ॥ ८२ ॥

दीर्घोऽकितः ॥ ८३ ॥

दीर्घः, अ० तः। अकितोऽभ्यासस्य दीर्घः स्याद्यङि यङ्लुकि च परे। यथा-पापठ्यते। यायज्यते। पापठीति। यायजीति ॥

यङ् और यङ् लुक् परे हो तो अकित् अभ्यास को दीर्घादेश हो ॥ ८३ ॥

नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपद स्कन्दाम् ॥ ८४ ॥

नीक्, व० मं । एषामभ्यासस्य नीगागमः स्याद्यङि यङ्लुकि च परे । यथा—वनीवच्यते । सनीस्रस्यते । दनीध्वस्यते । बनीभ्रस्यते । चनीकस्यते । पनीपत्यते । पनीपद्यते । चनीस्कद्यते । यङ्लुकि—वनीवञ्चीति । सनीस्रंसीति । दनीध्वंसीति । बनीभ्रंसीति । चनीकसीति । पनीपतीति । पनीपदीति । चनीस्कन्दीति ॥

यङ् और यङ् लुक् परे हों तो वञ्चु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, कस, पत, पद, और स्कन्द धातु के अभ्यास को नीक् का आगम हो ॥ ८४ ॥

नुगतोऽनुनासिकस्य ॥ ८५ ॥

नुक्, अतः, अ० स्यं । अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य नुगागमः स्याद्यङि यङ्लुकि च परे । यथा—तन्तन्यते । जङ्गम्यते । यंयम्यते । रंरम्यते । यङ्लुकि—तन्तनीति । जङ्गमीति । यंयमीति । रंरमीति ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो अनुनासिकान्त अङ्ग के अभ्यास को नुक् का आगम हो

जपजभदहदशभञ्जपशां च ॥ ८६ ॥

एषामभ्यासस्य नुगागमः स्याद्यङि यङ्लुकि च परे । यथा—जञ्जप्यते । जञ्जभ्यते । दन्दह्यते । दंदश्यते । बंभज्यते । पम्पश्यते । यङ्लुकि—जञ्जपीति । जञ्जभीति । दन्दहीति । दन्दशीति । बम्भजीति । पम्पशीति ॥

यङ् और यङ्लुक् परे होतो जप, जभ, दह, दश, भञ्ज, और पश (सौत्र धातु) धातु के अभ्यासको नुक् का आगम हो ॥ ८६ ॥

चरफलोश्च ॥ ८७ ॥

चर॰लोः, च । अनयोरभ्यासस्य नुगागमः स्याद्यङि यङ् लुकि च परे । यथा—चञ्चूर्यते (हलिचेति दीर्घः) । पम्फुल्यते । चञ्चुरीति । पम्फुलीति । आगामि सूत्रेणोत्वम् ॥

यङ् और यङ्लुक् परे होतो चर और फल धातु के अभ्यास को नुक् का आगम हो ८७

उत्परस्यातः ॥ ८८ ॥

उ॰स्य, अतः । चरफलोरभ्यासात् परस्यात उद्यङि लुकि च परे । यथा—चञ्चूर्यते । पम्फुल्यते । चञ्चुरीति । पम्फुलीति ॥

यङ् और यङ्लुक् परे होतो चर और फल धातु के अभ्यास से पर अकार को उकारादेश हो ॥ ८८ ॥

तिँच ॥ ८९ ॥

चरफलोरत उत्स्यात्तादौ किति । यथा—चूर्णः चूर्तिः प्रफुल्तिः ॥

तकारादि कित् प्रत्यय परे होतो भी चर और फल धातु के अकार को उकारादेश हो ॥ ८९ ॥

रीगृदुपधस्यच ॥ ९० ॥

रीक्, ऋ॰स्य, च । ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमः स्याद्यङि यङ्लुकि च परे । यथा—वरीवृत्यते । वरीवृध्यते । नरीनृत्यते । यङ्लुकि—वरीवृतीति । वरीवृधीति । नरीनृतीति । (रीगृत्वत इति वाच्यम्) । वरीवृश्च्यते । परीपृच्छ्यते । वरीवृश्चीति । परीपृच्छीति ॥

यङ् और यङ्लुक् परे होतो ऋकारोपध धातु के अभ्यास को रीक् का आगम हो

रुग्रिकौच लुकि ॥ ९१ ॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य-रुक्,रिक्,रीक्, इमे आगमाः स्युर्यङ् लुकिपरे। यथा-नर्नर्ति,नरिनर्ति,नरीनर्ति। वर्वर्त्ति,वरिवर्ति,वरीवर्ति॥

यङ् लुक् परे होतो ऋदुपध धातु के अभ्यास को रुक्,रिक्,और रीक् का आगमहो॥

ऋतश्च ॥ ९२ ॥

ऋतः,च। ऋदन्तधातोरपि रुक् रिक्,रीक्,एते आगमाः स्युर्यङ् लुकिपरे। यथा-चर्कर्ति,चरिकर्ति,चरीकर्ति।जर्हर्ति,जरिहर्ति,जरीहर्ति॥

यङ् लुक् परे होतो ऋदन्त धातुकोभी रुक्, रिक् और रीक् का आगम हो९१

सन्वल्लघुनिचङ्परेऽनग्लोपे ॥ ९३ ॥

सं०त्. लं०नि, चं०रे, अं०पे। लघुनि धात्वक्षरे परे योऽङ्गस्याभ्यासस्तस्य चङ्परे णौ परतः सनीव कार्य्यं स्यादनग्लोपे सति। यथा-अचीकरत्। अपीपचत्। अपीपठत्। अलीलवत्॥

धातु का लघु अक्षर जिससे परे हो ऐसा जो अङ्ग का अभ्यास उसको जिस चङ् के परे अक् प्रत्याहार में किसी वर्ण का लोप न हुआ हो ऐसा णि परेहोतो सन्वत् कार्य हो अर्थात् सन् प्रत्यय को जो कार्य होताहै वह अभ्यासको भी होजावे

दीर्घोलघोः ॥ ९४ ॥

दीर्घः, लघोः। लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सनवद्भावविषये। यथा-अचीकरत्। अजीहरत्। अलीलवत्। अपीपचत्॥

अनग्लोपी चङ्परक णि परे होतो धातु के लघु अभ्यास को दीर्घ आदेश हो

अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् ॥ ९५ ॥

एषामभ्यासस्याऽकारोऽन्तादेशः स्याच्चङ् परे णौ। यथा-अस्मरत्। अददरत्। अतत्वरत्। अपप्रथत्। अमम्रदत्। अतस्तरत्। अपस्पशत्॥

चङ् परक णि परे हो तो स्मृ, दृ, त्वर, प्रथ, म्रद, स्तृ और स्पश धातु के अभ्यास को अकारादेश हो ॥ ९५ ॥

विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः ॥ ९६ ॥

अनयोर्वाभ्यासस्याऽत्वं स्याच्चङ्परे णौ । यथा—अववेष्टत् । अविवेष्टत् । अचचेष्टत, अचिचेष्टत् ॥

चङ् परक णि परे हो तो वेष्टि और चेष्टि धातु के अभ्यास को विकल्प से अकारादेश हो ॥ ९६ ॥

ई च गणः ॥ ९७ ॥

गणेरभ्यासस्येत् स्याच्चङ् परे णौ चाद । यथा—अजीगणत्, अजगणत् ॥

चङ् परक णि परे हो तो गण धातुके अभ्यास को ईकार तथा अकारादेश भी हो ॥

इति जीवाराम शर्म्मकृतायां पाणिनि सूत्रवृत्तौ सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तोऽयऽमध्यायः ॥

अथाऽष्टमाध्यायस्य

प्रथमः पादः ।

सर्वस्यद्वे ॥ १ ॥

अधिकारोऽयम् पदस्येति यावत् ॥

सबको द्वित्व हो यह अधिकार (८ । १ । १६) से पूर्व २ जानना चाहिये ।

तस्यपरमाम्रेडितम् ॥ २ ॥

तस्य. परम्. आम्रे । द्विरुक्तस्य परं रुप माम्रेडितसंज्ञं स्यात् । यथा-चौर चौ ।

द्वित्व किये हुये शब्द का पर भाग आम्रेडित संज्ञक हो ॥ २ ॥

अनुदात्तं च ॥ ३ ॥

द्विरुक्तस्य परं रूपमनुदात्तसंज्ञंस्यात् । यथा-दिवेदिवे ॥

द्वित्व किये हुये शब्द का पर भाग अनुदात्त संज्ञक हो ॥ ३ ॥

नित्यवीप्सयोः ॥ ४ ॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्विर्वचनं स्यात् । आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च । यथा-पचति पचति । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । वीप्सायाम् । वृक्षं वृक्षं सिञ्चति । ग्रामो ग्रामो रमणीयः ॥

नित्य और वीप्सा (विशेषेच्छा) द्योत्य होतो पदको द्वित्व हो ॥ ४ ॥

परेर्वर्जने ॥ ५ ॥

परेः, व०ने । वर्जनेऽर्थेपरेः द्वेस्याताम् । यथा-परि-परि वङ्गेभ्यो वृष्टोदेवः । वङ्गान् परिहृत्येत्यर्थः ॥ (परेर्वर्जने वा वचनम्)॥ परि-वङ्गेभ्यः ॥

वर्जन अर्थ में परिउपसर्ग को द्वित्व हो ॥ ५ ।

प्रसमुपोदः पादपूरणे ॥ ६ ॥

एषां पाद पूरणे द्वेस्याताम् । यथा-प्रप्रायमग्निः । संसमिद्युवसे । उपोपमे परामृष । किंनोदुदुहर्षसे ॥

पाद पूरण अर्थ में प्र सम् उप और उद् उपसर्गों को द्वित्व हो ॥ ६ ॥

उपर्यध्यधसः सामीप्ये ॥ ७ ॥

एषां सामीप्ये विवक्षिते द्वे स्याताम्। यथा—उपर्युपरि--ग्रामम् । ग्रामस्योपरिष्टात् समीपेदेशे इत्यर्थः । अध्यधि--सुखम् । सुखस्योपरिष्टात् समीपकाले दुःखमित्यर्थः । अधोऽधो लोकम् । लोकस्याधस्तात् समीपेदेशे इत्यर्थः ॥

समीपताकी विवक्षा में उपरि अधि और अधस् शब्द को द्वित्व हो ॥ ७ ॥

वाक्यादेरामन्त्रितस्याऽसूयासम्मति कोप कुत्सन भर्त्सनेषु ॥ ८ ॥

वा० देः, आ० स्य, अ० षु । असूयादिष्वर्थेषु वाक्यादेरामन्त्रितस्य द्वे स्याताम् । यथा--असूयायाम्-सुन्दर ! सुन्दर ! वृथा ते सौन्दर्यम् । सम्मतौ—देव ! देव ! । वन्द्योऽसि । कोपे-दुर्विनीत ! दुर्विनीत ! । इदानीं ज्ञास्यति । कुत्सने—धानुष्क ! धानुष्क ! वृथा ते धनुः । भर्त्सने--चौर ! चौर ! घातयिष्यामित्वाम् ॥

असूया (दूसरे के गुणोंको न सह सकना) सम्मति (पूजा) कोप (क्रोध) कुत्सन(निन्दन और भर्त्सन(धमकाना)अर्थ में वाक्य के आदि आमन्त्रित को द्वित्वहो॥

एकं बहुव्रीहिवत् ॥ ९ ॥

द्विरुक्त एक शब्दो बहुव्रीहिवत् स्यात् । तेन सुब्लोपपुंवद्भावौ । यथा—एकैकम्--अक्षरम् पठति । एकैकयाहुत्या जुहोति ॥

द्वित्व कियाहुआ एक शब्द बहुव्रीहि वत् हो ॥ ९ ॥

आबाधे च ॥ १० ॥

पीडायां द्योत्यायां द्वे स्याताम् बहुव्रीहिवच्च कार्यं स्यात्। यथा–गतगतः। विरहात् पीड्यमानस्येयमुक्तिः। बहुव्रीहिवद् भावात् सुब्लुक्। गतगता। इह पुंवद्भावः॥

आबाधा (पीडा) द्योत्य हो तो वर्त्तमान शब्द को द्वित्व और बहुव्रीहिवत् कार्य्य हो॥ १०॥

कर्मधारयवदुत्तरेषु ११

क० तु, उ० षु। इत उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्म्मधारयवत् कार्यं स्यात्। प्रयोजनं सुब्लोप पुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि॥

इसके आगे कथन में कर्मधारय के तुल्य कार्य हो॥ ११॥

प्रकारे गुणवचनस्य॥ १२॥

सादृश्यद्योत्ये गुणवचनस्य द्वे स्याताम्, तच्च कर्मधारयवत्। पटुपट्वी, पटुपटुः। पटुसदृशः, ईशत् पटुरिति यावत्। गुणोपसर्जनद्रव्य वाचिनः, केवलगुण वाचिनश्च, इह गृह्यन्ते। शुक्ल शुक्लम्–रूपम्। शुक्लशुक्लः पटः। (आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये)॥ मूले मूले स्थूलः॥ (सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः)॥ सर्प सर्प बुध्यस्व, बुध्यस्व २ सर्प सर्प सर्प बुध्यस्व बुध्यस्व–बुध्यस्व॥ (क्रियासमभिहारे च)॥ लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति॥ (कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वेवाच्ये समासवच्च बहुलम्)॥ बहुल ग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत्। इतर शब्दस्य तु नित्यम्॥ (असमासवद्भावेपूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः)॥ अन्योऽन्यं विप्रा नमन्ति, अन्योन्यौ, अन्योन्यान्, अन्योन्येन कृतम्, अन्योऽन्यस्मै दत्तमित्यादि। अन्योऽन्येषां पुष्करैरामृशन्तः' इति माघः। एवं पर-

स्परम्–अत्र कस्कादित्वाद् विसर्गस्य सत्वम् । इतरेतरम्, इतरेतरे णेत्यादि ॥ (स्त्री नपुंसकयोरुत्तरपदस्थायाविभक्ते राम्भावो वा वक्तव्यः) ॥अन्योन्याम्, अन्योऽन्यम् । परस्पराम्, परस्परम् । इतरेतराम्, इतरेतरं वा,–इमे ब्राह्मण्यौ, कुले वा, भोजयतः ॥

सादृश्य द्योत्य होतो गुणवचन शब्द को द्वित्व हो और वह कर्म धारय वत् समझा जावे ॥ १२ ॥

अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् १३

अ०च्छ्रे, प्रि०योः, अ०म् । अकृच्छ्रे द्योत्येऽनयोर्वा द्वे स्याताम् । यथा–प्रियप्रियेण–ददाति, प्रियेण वा । सुख सुखेन–ददाति, सुखेन वा । अति प्रिय मपि वस्तु अनायासेन ददातीत्यर्थः ॥

अकृच्छ्र (सुख) अर्थ में प्रिय और सुख शब्द को विकल्प से द्वित्व हो १३

यथास्वे यथायथम् ॥ १४ ॥

यथा स्वमिति वीप्सायामव्ययीभावः । योऽय मात्मा यद्यच्चात्मीयं–तद्–यथास्वम् । तस्मिन् यथा शब्दस्य द्वे क्लीबत्वं च निपात्यते । यथा–यथायथं ज्ञाता । यथा स्वभावमित्यर्थः, यथात्मीयमितिवा ॥

यथा स्वअर्थ में यथा यथ शब्द निपातित है ॥ १४ ॥

द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमण यज्ञपात्रप्रयोगाऽभिव्यक्तिषु ॥ १५ ॥

द्विशब्दस्य द्विर्वचनं, पूर्व पदस्याऽम्भावः, अत्वं च उत्तरपदस्य नपुंसकत्वं च निपात्यते रहस्यादिष्वर्थेषु । तत्ररहस्यम्-द्वन्द्वशब्द-

स्य वाच्यम् । इतरे विषयभूताः । यथा-द्वन्द्वं-मन्त्रयते । द्वौ द्वौ भूत्वा रहस्य मित्यर्थः । मर्यादा-स्थित्यनतिक्रमः । आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनी[1]यन्ति ।माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति। पौत्रेण, प्रपौत्रेणापीत्यर्थः। व्युत्क्रमणं-पृथगवस्थानम्। द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः। द्वौ पक्षौ भूत्वा पृथगवस्थिता इत्यर्थः । द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति धीरः । द्वेद्वे इत्यर्थः । अभिव्यक्तौ-द्वन्द्वं संकर्षण वासुदेवौ। द्वावप्य भिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः । अन्यत्रापि । द्वन्द्वं युद्धमित्यादि ॥

रहस्य (पोशीदह) मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्र प्रयोग और अभिव्यक्ति अर्थ में द्विशब्द को द्वित्व करके द्वन्द्व शब्द निपातन किया है ॥ १५ ॥

पदस्य ॥ १६ ॥ पदात् ॥ १७ ॥

अनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ १८ ॥

अ०मं. स० मं अं० दौ । एतत् सूत्रत्रयमधिकृतं वेद्यमापाद परि समाप्तेः ॥

पदको कार्य हो । १६-पदसे परे कार्य हो । १७ पदसे परे अपादादि में वर्त्तमान सबपद अनुदात्त हो, पादकी समाप्ति पर्यन्त तीनों सूत्रों का अधिकार है १८

आमन्त्रितस्य च ॥ १९ ॥

पदात् परस्यापादादि स्थितस्यामन्त्रितस्य सर्वस्यानुदात्तः स्यात । षाष्ठस्याप वादोऽयं योगः । यथा-पठसि सोमदत्त ! ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान आमन्त्रित पदको सर्व अनुदात्त हो ॥ १९॥

युष्मदस्मदोःषष्ठीचतुर्थी द्वितीया-

१ मिथुनीयन्तीति मिथुन शब्देन तत्कर्म मैथुनम्, तदिच्छतीत्यर्थे क्यच् । मिथुनायन्ते इति क्यङन्तोऽपपाठः। उपमानार्थाभावात् ॥

स्थयोर्वान्नावौ ॥ २० ॥

युं॰दोः, पं॰योः, वां॰वौ । पदात् परयोरपादादौ स्थितयोरनयोःषष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वान्नावित्यादेशौ स्याताम्, तौ चानुदात्तौ। यथा—ग्रामो वां स्वम् । जनपदो नौ स्वम् । ग्रामो वां दीयते । जनपदो नौ दीयते । ग्रामो वां पश्यति । जनपदो नौ पश्यति ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान षष्ठी-चतुर्थी तथा द्वितीयास्थ युष्मद् अस्मद् शब्दों को सर्वानुदात्त वाम् और नौ आदेश हों ॥ २० ॥

बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ २१ ॥

बहुवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थी द्वितीयास्थयोर्यथा संख्यं वस्नसावादेशौ स्याताम् । यथा—ग्रामो वः स्वम् । जनपदो नः स्वम् । ग्रामो वो दीयते । जनपदो नो दीयते । ग्रामो वो पश्यति । जनपदो नः पश्यति ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान षष्ठी चतुर्थी और द्वितीयास्थ युष्मद् अस्मद् बहुवचन पदों को सर्वानुदात्त वस् तथा नस् आदेश हों ॥ २१ ॥

ते मयावेकवचनस्य ॥ २२ ॥

ते॰यौ, ए॰स्य । युष्मदस्मदोरेकवचनान्तयोः षष्ठी चतुर्थी स्थयोर्यथा संख्यं ते मे इत्यादेशौ स्याताम् । यथा—ग्राम स्ते स्वम् । ग्रामो मे स्वम् । ग्राम स्ते दीयते । ग्रामो मे दीयते ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान षष्ठी और चतुर्थीस्थ एक वचन युष्मद् और अस्मद् शब्दको सर्वानुदात्त ते तथा मे आदेश हों ॥ २२ ॥

त्वामौ द्वितीयायाः ॥ २३ ॥

युष्मदस्मदोर्द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्याताम्। यथा—ग्रामस्त्वा* पश्यति। ग्रामो मा पश्यति॥

पदसे परे अपदादि में वर्तमान द्वितीयैक वचनान्त युष्मद् तथा अस्मद् पदों को सर्वानुदात्त त्वा और मा आदेश हों॥ २३॥

न चवाहाहैवयुक्ते॥ २४॥

चादिपञ्चकयोगेनैते आदेशाः स्युः। यथा—ईशस्त्वां, मां, च रक्षतु। कथं त्वां मां वा न रक्षेदित्यादि॥

च, वा, ह, अह और एव के योग में वान्नावादि आदेश न हों॥ २४॥

पश्यार्थैश्चानालोचने॥ २५॥

प० र्थैः, च, अ० ने। अचाक्षुसज्ञानार्थैर्धातुभिर्योगे नैते आदेशाः स्युः। यथा—चेतसात्वां समीक्षते॥

अचाक्षुष ज्ञानार्थ धातुओं के योगमें उक्त आदेश न हों॥ २५॥

सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा॥ २६॥

विद्यमानपूर्वात प्रथमान्तात् परयोरनयोरन्वादेशेऽप्येते आदेशा वा स्युः। भक्तस्त्वमप्यहं तेन विभुस्त्वां, त्रायते स माम्, त्वा मेति वा॥

जिसके पूर्वपद हो ऐसे प्रथमान्त पद से परे उक्तादेश विकल्प से हो॥ २६॥

तिङो गोत्रादीनिकुत्सनाभीक्ष्ण्योः २७

तिङः, गो०नि. कु०योः। तिङन्तात् पदाद् गोत्रादीनि अनु-

*ईशस्त्वावतु, मापीह, दत्तात्ते, मेऽपि, शर्म सः। स्वामी ते, मेऽपि स पिता-पातु वामपि, नौ विभुः॥१॥
सुखं वां, नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ ह्यजः। सोऽव्य द्वो. नश्शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः सनः॥२॥

दात्तानि स्युः कुत्सने आभीक्ष्ण्येचार्थे । यथा—पचति गोत्रम् । पचति पचति गोत्रम् ॥

तिङन्त पदसेपरे कुत्सन और आभीक्ष्ण्य अर्थमें वर्त्तमान गोत्रादिपद अनुदात्तहों।

तिङ्ङतिङः ॥ २८ ॥

तिङ्, अ०ङः । अतिङन्तात्पदात्परं तिङन्तं निहन्यते । यथा—अग्निमीडे ॥

अतिङन्त पदसे परे तिङन्त पद अनुदात्तहो ॥ २८ ॥

न लुट् ॥ २९ ॥

लुडन्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात् । यथा—श्वः कर्त्ता ॥

लुडन्त तिङन्त अनुदात्त न हो ॥ २९ ॥

निपातैर्यद्यदिहन्त कुविन्नेच्चेच्चण् कच्चिद्यत्र युक्तम् ॥ ३० ॥

नि०तैः, य०म् । एतैर्निपातैर्युक्तं न निहन्यते । यथा यत्करोति ॥

यत्, यदि, हन्त, कुवित, नेत्, चेत्, चण, कच्चित् और यत्र निपातों से युक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो ॥ ३० ॥

नह प्रत्यारम्भे ॥ ३१ ॥

नहेत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात् । प्रतिषेधयुक्त आरम्भः प्रत्यारम्भः । यथा— नह भोक्ष्यसे ॥

प्रत्यारम्भ अर्थ में नह से युक्त तिङन्त अनुदात्त न हो ॥ ३१ ॥

सत्यं प्रश्ने ॥ ३२ ॥

प्रश्ने सत्ययुक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात्। यथा—सत्यं भोक्ष्यते॥

प्रश्न में सत्य से युक्त तिङन्त अनुदात्त न हो ॥ ३२ ॥

अङ्गाऽप्रातिलोम्ये ॥३३॥

अं ङ्ग, अं० म्ये। प्रातिलोम्ये गम्ये अङ्गेत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात्। अप्रातिलोम्यम्। अप्रातिकूलत्वम्। यथा—अङ्ग कुरु। अङ्ग! पठ॥

अप्राति लोम्य गम्यमान हो तो अङ्ग पद से युक्त तिङन्त अनुदात्त न हो॥

हि च ॥ ३४ ॥

हियुक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात्। यथा—सहि कुरु। सहि पठ ॥

अप्रातिलोम्य अर्थ में हि से युक्त तिङन्त अनुदात्त न हो ॥ ३४ ॥

छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् ॥ ३५॥

छं० सि, अं० म्, अपि, सां० म्। छन्दसि विषये हीत्यनेन युक्तं साकाङ्क्षमनेकमपि नानुदात्तं स्यात्। यथा—अनृतं हि मत्तो वदति। पाप्मा चैनं पुनाति॥

छन्द विषय में हि शब्दसे युक्त साकांक्ष अनेक भी तिङन्त पद अनुदात्त न हो

यावद्यथाभ्याम् ॥ ३६ ॥

आभ्यां योगे तिङन्तं नानुदात्तं स्यात्। यथा यावद् भुङ्क्ते यथा भुङ्क्ते ॥

यावत् और यथा से युक्त तिङन्त अनुदात्त न हो ॥ ३६ ॥

पूजायां नानन्तरम् ॥ ३७ ॥

पू०मँ, नँ, अ० म् । यावद्यथाभ्यां युक्त मनन्तरं तिङन्तं पूजायां नानुदात्तं स्यात् । यथा-यावत् पचति शोभनम् । यथा पचति शोभनम् ॥

पूजा विषय में यावत् और यथा पदों से युक्त अनन्तर (व्यवधान रहित) तिङन्त पद अनुदात्त न हो ॥ ३७ ॥

उपसर्गव्यपेतंच ॥ ३८ ॥

यावद्यथाभ्यां युक्तं उपसर्ग व्यपेतंच पूजायां विषये नानुदात्तं स्यात् । यथा—यावत्प्रपचति शोभनम् । यथा प्रपचति शोभनम् ॥

पूजा विषय में यावत् और यथा पदों से युक्त उपसर्गों से व्यवहित तिङन्त पद अनुदात्त न हो ॥ ३८ ॥

तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम् ॥ ३९ ॥

एभिर्युक्तं तिङन्तं न निहन्यते पूजायाम् । यथा—माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम् । पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम् । पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम् । अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम् ॥

पूजा विषय में तु पश्य पश्यत और अह पद से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त न हो

अहो च ॥ ४० ॥

पूजायामहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात् । यथा-अहो देवदत्तः पचति शोभनम् ॥

पूजा अर्थ में अहो से युक्त तिङन्त अनुदात्त न हो ॥ ४० ॥

शेषे विभाषा ॥ ४१ ॥

अहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं वानुदात्तं स्यात्। यथा-अहोकटं करिष्यति ममगेह मेष्यसि ॥
पूजा से भिन्न अर्थ में अहो इस पद से युक्त तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त न हो

पुरा च परीप्सायाम् ॥ ४२ ॥

पुरेत्यनेन युक्तं तिङन्तं त्वरायां वानुदात्तं स्यात। यथा-अधीष्व माणवक पुरा विद्योतते विद्युत् ॥
परीप्सा (शीघ्रता) अर्थ में पुरापद से युक्त तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त न हो

नन्वित्यनुज्ञैषणायाम् ॥ ४३ ॥

अनुज्ञैषणायां ननु इत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात। यथा-ननु गच्छामि भोः। अनुजानीहि मांगच्छन्तमित्यर्थः ॥
स्वीकृत की प्रार्थना विषय में ननु से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त न हो।४३।

किंक्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् ४४

किमे, क्रि०ने, अ०मे अ०मे। क्रियाप्रश्ने वर्त्तमानेन किंशब्देन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात्। यथा-किं देवदत्तः पचति आहो स्विद्भुङ्क्ते ॥
क्रिया प्रश्न अर्थ में वर्त्तमान किं शब्द से युक्त उपसर्ग और नञ् से रहित तिङन्त पद अनुदात्त न हो ॥ ४४ ॥

लोपे विभाषा ॥ ४५ ॥

किमोलोपे क्रियाप्रश्ने तिङन्तमनुपसर्गं मप्रातिषिद्धं वानुदात्तं

स्यात् । यथा-देवदत्तः पचति आहोस्वित्पठति ॥

क्रियाप्रश्न में वर्तमान किं का लोप न होने पर अप्रतिषिद्ध अनुपसर्ग तिङन्तपद विकल्प से अनुदात्त हो ॥ ४५ ॥

एहिमन्ये प्रहासे लृट् ॥ ४६ ॥

प्रहासेगम्ये एहिमन्ये इत्यनेन युक्तं लृडन्तं नानुदात्तं स्यात् । यथा-एहिमन्ये मोदकान् भोक्ष्यसे भुक्तास्ते तुबालकैः ॥

प्रहास (क्रीडा) गम्यमान होतो एहिमन्ये शब्दसे युक्त लृडन्त तिङन्त पद अनुदात्त नहो ॥ ४६ ॥

जात्वपूर्वम् ॥ ४७ ॥

जातु, अ० ॥ अविद्यमान पूर्वंयज्जातु-तेनयुक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात् । यथा-जातु भोक्ष्यसे ॥

जिसके पूर्व कोई नहो ऐसा तिङन्त पद अनुदात्त नहो ॥ ४७ ॥

किंवृत्तं च चिदुत्तरम् ॥ ४८ ॥

अविद्यमान पूर्वं चिदुत्तरं यत्किं वृत्तम्-तेनयुक्तं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात । विभक्त्यन्तं डतर डतमान्तं किमो रूपं किंवृत्तम् । यथा-कश्चिद्भुङ्क्ते-कतरश्चित्, कदमाश्चिद् वा ॥

जिसके पूर्व कोई नहो ऐसे चिदुत्तर किंशब्द के प्रयोगसे युक्त तिङन्त पद अनुदात्त नहो ॥ ४८ ॥

आहो उताहो चानन्तरम् ॥ ४९ ॥

आहो, उताहो, च, अ० ॥ । आहो, उताहो-इत्याभ्यांयुक्तं तिङन्तं नानुदात्तंस्यात् । यथा-आहोभुङ्क्ते । उताहो पठति ॥

आहो, (क्या) उताहो (या) शब्दों से युक्त अनन्तर तिङन्तपद अनुदात्त नहो ॥

शेषे विभाषा ॥ ५० ॥

आहो, उताहो इत्याभ्यां युक्तं व्यवहितं तिङन्तं वानुदात्तं स्यात्। यथा—आहो देवदत्तः पठति २। उताहो देवदत्तः पचति २॥

आहो और उताहो से व्यवधान में युक्त तिङन्तपद विकल्पसे अनुदात्तहो ॥

गत्यर्थलोटा लृण् न चेत् कारकं सर्वान्यत् ॥ ५१ ॥

ग० टौ, लृट्, न० मे, स० तृ। गतिना समानार्था गत्यर्थाः गत्यर्थानां धातूनां लोट् गत्यर्थलोट्। गत्यर्थानां लोटा युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं--यत्रैव--कारके लोट्--तत्रैव लृडपि चेत्। यथा—आगच्छ देव ग्रामंद्रक्ष्यसि। उह्यन्तां देवदत्तेनाशालयो यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते॥

यदि लृट् लोट् के सब कारक अन्य २ न हों तो गत्यर्थ लोट् से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त न हो ॥ ५१ ॥

लोट् च ॥ ५२ ॥

लोडन्तं तिङन्तं गत्यर्थलोटा युक्तं नानुदात्तं स्यात्। यथा—आव्रज विष्णुमित्र ! ग्रामं शाधि ॥

यदि दोनों लोट् के कारक सब अन्य अन्य न हों तो गत्यर्थ लोट् से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त न हो ॥ ५२ ॥

विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् ॥ ५३ ॥

वि० मे, सो० मे, अ० म्। लोडन्तं सोपसर्गमुत्तम वर्जितं गत्यर्थ लोटायुक्तं तिङन्तं वानुदात्तं स्यात्। यथा—आगच्छ देव ग्रामंप्रविश ॥

यदि सर्व कारक अन्य न हों तो गत्यर्थ धातु से युक्त उत्तम वर्जित लोडन्त सोपसर्ग पद तिङन्त विकल्प से अनुदात्तहो ॥ ५३ ॥

हन्त च ॥ ५४ ॥

हन्तेत्यनेन युक्तं लोडन्तं सोपसर्गमुत्तमवर्जितं वानुदात्तं स्यात्। यथा—हन्त प्रशाधि २। हन्त प्रविश २॥

हन्त (खुशी, रञ्ज) पद से युक्त उत्तम पुरुष वर्जित सोपसर्ग लोडन्त तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्तहो ॥ ५४ ॥

आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके ॥

आमः, ए०म्, आ०म्, अँ०के। आमः परमेकपदान्तरितमामन्त्रितं नानुदात्तं स्यात्। यथा—आम् पचासि देवदत्त ३॥

आम् से परे हो और एक पद का जिस में अन्तर हो ऐसा आमन्त्रित पद अनुदात्त न हो ॥ ५५ ॥

यद्धितुपरं छन्दसि ॥ ५६ ॥

यत्परं हिपरं तुपरंच तिङन्तं छन्दसि नानुदात्तं स्यात्। यथा— उदसृजो यदङ्गिरः। इन्दवो वामुशन्ति हि। आख्यास्यामि तु ते॥

छन्द विषय में यत् हि और तु जिस से परे हों ऐसा तिङन्तपद अनुदात्त नहो

चनचिदिव गोत्रादि तद्धिताम्रेडितेष्वगतेः ॥ ५७ ॥

च०षु, अ०तेः। एषु षट्सु परेषु अगतेरुत्तरं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात्। यथा—देवः पचति चन। देवः पचति चित। देवः पचतीव।

देवः पचति गोत्रम् । देवः पचति कल्पम् । देवः पचति पचति ॥
चन, चिद्, इव, गोत्रादि, तद्धित और आम्रेडित परे होतो गति भिन्न से परे तिङन्त पद अनुदात्त न हो ॥ ५७ ॥

चादिषु च ॥ ५८ ।

चवाहाहैवेषु परेषु । तिङन्तमागते परं नानुदात्तं स्यात् । यथा–देवः पचति खादति च । देवः पचति वा खादति वा । देवः पचति ह खादति ह । देवः पचत्यह खादत्यह। देवः पचत्येव खादत्येव॥
च, व, ह, अह और एव परे होतो अगति से परे तिङन्त अनुदात्त न हो

चवायोगे प्रथमा ॥ ५९ ॥

चवेत्याभ्यां योगे प्रथमा तिङ् विभक्तिर्नानुदात्ता स्यात् । यथा–गाश्चारयति वीणां वा वादयति । अश्वान् वा कालयति वीणां वा वादयति ॥
च और वा के योग में प्रथमा तिङ् विभक्ति अनुदात्त न हो ॥ ५९ ॥

हेति क्षियायाम् ॥ ६० ॥

ह, इति, क्षि० म । हयुक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता स्याद्धर्म व्यतिक्रमे । यथा–स्वयं ह्यानेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति । क्षियाशीः प्रैषेषु तिङाकाङ्क्षमितिप्लुतः ॥
क्षिया गम्यमान होतो ह पद से युक्त प्रथमा तिङ् विभक्ति अनुदात्त न हो ६०

अहेति विनियोगे च ॥ ६१ ॥

अह, इति, वि० गे, च । अहयुक्ता प्रथमा तिङ् विभक्तिर्नानुदात्ता स्यान्नानाप्रयोजन नियोगे नियोगे च । यथा–त्वमहग्रामं

गच्छ। त्वमह रथेनाऽरण्यं गच्छ। क्षियायाम्-स्वयमह रथेन यराति २। उपाध्यायं पदातिं नयति॥

विनियोग तथा क्षिया गम्यमान होतो अहपदसे युक्त प्रथमा तिङ् विभक्ति अनुदात्त न हो॥ ६१॥

चाहलोप एवेत्यवधारणम्॥ ६२॥

चाँ०पे, एव, इति, अ०म्। च अह एतयोर्लोपे प्रथमा तिङ् विभक्ति र्नानुदात्ता स्यात्। यथा-देव एव ग्रामं गच्छतु। देव एवारण्यं गच्छतु। ग्राममरण्यं च गच्छत्वित्यर्थः। देव एव ग्रामं गच्छतु। राम एवारण्यं गच्छतु। ग्रामं केवल मरण्यं केवल मित्यर्थः। इहाहलोपः सचकेवलार्थः॥

अवधारणार्थ एवशब्द प्रयुज्यमान होतो च तथा अहका लोप होने पर प्रथमा तिङ् विभक्ति अनुदात्त नहो॥ ६२॥

चादिलोपे विभाषा॥ ६३॥

चवाहाहैवानां लोपे प्रथमातिङ् विभक्तिर्वा नानुदात्ता स्यात्। यथा-चलोपे। इन्द्र वाजेषु नोऽव२। शुक्लाव्रीहयो भवन्ति। श्वेताःगा आज्याय दुहन्ति। वालोपे-व्रीहिभिर्यजेत॥

च,वा,ह,अह,और एवकालोप होनेपर प्रथमातिङ् विभक्ति विकल्प से अनुदात्तहो॥

वैवावेति चच्छन्दसि॥ ६४॥

वै'०व, इति, च, छं०सि। वैवाव इत्याभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ् विभक्तिर्वानुदात्ता स्यात्। यथा-अहर्वै देवानामासीत्२। अयं वाव हस्त आसीत्२॥

छन्द विषयमें वै और वावसे युक्त प्रथमातिङ् विभक्ति विकल्पसे अनुदात्तहो॥

एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्॥ ६५॥

आभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ् विभक्तिर्नानुदात्ता स्याच्छन्दसि विषये। यथा—अजामेकां जिन्वति २ । प्रजामेकां रक्षति २ । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति २ ॥

छन्द विषय में तुल्यार्थ एक और अन्यपदों से युक्त प्रथमा तिङ् विभक्ति विकल्प से अनुदात्त हो ॥ ६१ ॥

यद्वृत्तान्नित्यम् ॥ ६६ ॥

य०त्, नि०म् । यत्रपदे यच्छब्दस्ततः परं तिङन्तं नानुदात्तं स्यात् । यथा—यो भुङ्क्ते । यं भोजयति।येन भुङ्क्ते । यस्मै ददाति। यत् कामास्ते जुहुमः ॥

जिस पद में यद् शब्द प्रयुक्त हो उससे परे तिङन्त पद अनुदात्त न हो ६६

पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः

पू०त्, पू०म्, अ०म, का०भ्यः । पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्य उत्तरपदं पूजितमनुदात्तं स्यात् । यथा—काष्ठाध्यापकः ॥

काष्ठादि गण पठित पूजन वाचक काष्ठादि पदों से परे उत्तर पूजित अनुदात्त हो

सगति रपि तिङ् ॥ ६८ ॥

स० तिः, अपि, तिङ् । सगतिरगति रपि पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यः परं पूजितं तिङन्तमनुदात्तं स्यात् । यथा—यत् काष्ठं पचति । यत् काष्ठं प्रपचति ॥

गण पठित पूजन वाचक काष्ठादि से परे गति तथा अगति भी पूजित तिङन्त अनुदात्त हो ॥ ६८ ॥

कुत्सनेचसुप्यगोत्रादौ ॥ ६९ ॥

कुं०ने, च, सुपि, आं० दौ। कुत्सने च सुबन्ते गोत्रादि बर्जित परेसगतिरपि तिङ् अगाति रप्यनुदात्तः स्यात्। यथा—पचति पूति। प्रपचति पूति। पचति मिथ्या। प्रपचति मिथ्या॥ (क्रिया कुत्सन इति वाच्यम्)॥कर्त्तुः कुत्सने मा भूत्। पचति पूतिदेवदत्तः॥ (पूत्तिश्चानु बन्ध इति वाच्यम्)॥ तेनायं चकारानु बन्धत्वादन्तो दात्तः॥(वा बह्वर्थमनुदात्तमिति वाच्यम्)॥ पचन्ति पूति २ ।प्रपचन्ति पूति २ ॥

गोत्रादि वर्जित कुत्सन सुबन्त परे होंतो सगति तथा अगति भी तिङन्तपद अनुदात्त हो

गतिर्गतौ ॥ ७० ॥

गतिः, गतौ। गतिर्गतौ परेऽनुदात्तः स्यात्। यथा—अभ्युद्धराति॥

गति परे होतो गति संज्ञक अनुदात्त हो ॥ ७० ॥

तिङि चोदात्तवति ॥ ७१ ॥

तिङि, च, उं०ति। तिङन्ते उदात्तवति परे गतिरनुदात्तः स्यात्। यथा—यत्प्रपचिति॥

उदात्तवान् तिङ् परे होतो गति अनुदात्त हो ॥ ७१ ॥

आमन्त्रितं पूर्व मविद्य मानवत्॥७२॥

आ०म्, पूर्वम्, अ०त्। स्पष्टम्। यथा—अग्ने—तव, देवास्मान्पाहि, अग्नेनय, अग्ने इन्द्र, वरुण॥

पूर्व आमन्त्रित अविद्यमान के तुल्य समझाजावे॥

नाऽमन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ॥ ७३ ॥

विशेष्यं समानाधिकरणे आमन्त्रिते परे नाविद्यमानवत् स्यात्। यथा—अग्ने गृहपते! ॥

समानाधिकरण आमन्त्रित परे होतो पूर्व आमन्त्रित अविद्यमानवत् नहो॥७३॥

विभाषितं विशेषवचने ॥ ७४ ॥

बहुवचनान्तं विशेष्यं समानाधिकरणे आमन्त्रिते विशेषणे परे अविद्यमानवद् वा स्यात्। यथा—देवाः शरण्याः २। ब्राह्मणा वैयाकरणाः ॥

विशेष वाचक समानाधिकरण आमन्त्रितान्त परे होतो सामान्यवाचीपूर्व आमन्त्रित पद विकल्प से अविद्यमान वत् हो ॥ ७४ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य द्वितीयपादारम्भः ॥

पूर्वत्राऽसिद्धम् ॥ १ ॥

अधिकारोऽयम्, आ अध्यायपरिसमाप्तेः। तेन सपाद सप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् ॥

पूर्व के प्रति पर को कार्य्य होना असिद्ध समझाजावे यह अधिकार इस अध्याय की समाप्ति तक है। तिस से सपाद ७¼ अध्याय के प्रति तीन पाद तथा तीन पाद में भी पूर्व के प्रति पर को कार्य्य असिद्ध समझा जावे ॥ १ ॥

न लोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ॥ २ ॥

सुब्विधौ स्वरविधौ सञ्ज्ञाविधौ कृतितुग्विधौ च, नलोपोऽसिद्धो, नान्यत्र । यथा-राजभिः । राजभ्याम् ३ । राजसु । स्वरविधौ-राजवती त्यत्र नलोपस्या सिद्धत्वादन्तोदात्ता इति न भवति । संज्ञाविधौ-पञ्च ब्राह्मण्यः । इति न लोपस्यासिद्धत्वात् ष्णान्ता षडितिषट् सञ्ज्ञा भवति । ततश्च न षट् स्वस्रादिभ्य इति टापप्रतिषेधः । तुग्विधौ-वृत्रहभ्याम् ३ । इत्यत्र न लोपस्यासिद्धत्वाद् ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् न भवति ॥

सुप् विधि, स्वरविधि, सञ्ज्ञाविधि, और कृत् सम्बन्धि तुग्विधि कर्त्तव्य हों तो भी नकार का लोप असिद्ध समझाजावे अन्यत्र न ॥ २ ॥

नँ मुँने ॥ ३ ॥

ना भावे कर्त्तव्ये मुभावो नासिद्धः स्यात् अपि तु सिद्ध एव । यथा-अमुना ॥

नाभाव करने में मुभाव असिद्ध नहीं होता ॥ ३ ॥

उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ॥ ४ ॥

उ०योः, यणः, स्व० तः, अ० स्य । उदात्त स्थाने स्वरितस्थाने चयो यण् ततः परस्यानुदात्तस्य स्वरितः स्यात् । यथा-कुमार्यौ । कुमार्यः । स्वरितस्य यणः-खलप्वाशा ॥

उदात्त और स्वरित के स्थान में हुये यण से परे अनुदात्त को स्वरितादेश हो

एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ ५ ॥

ए० शः, उ० नै, उ० त्तः। उदात्तेन सहानुदात्तस्य य एकादेशोऽसा वुदात्तः स्यात् । यथा-वायू । अग्नी । वृक्षैः ॥

उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश वह उदात्त हो ॥ ५ ॥

स्वरितोवाऽनुदात्ते पदादौ ॥ ६ ॥

स्व०तः वा, अ० त्ते, प०दौ । अनुदात्ते पदादौ परे उदात्तेन सहैकादेशः स्वरितो वा स्यात् । पक्षे पूर्वसूत्रेणोदात्तः । यथा-सु उत्थितः-सूत्थितः । सुः पूजायामिति कर्मप्रवचनीयः । तस्य प्रादित्वात्समासे सति, अव्ययपूर्वपदप्रकृति स्वरत्वेनाद्युदात्तः शेषमनुदात्तमिति ॥

पदादि अनुदात्त परे होतो उदात्त के साथ हुआ अनुदात्त का एकादेश विकल्प से स्वरित हो ॥ ६ ॥

नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ७ ॥

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नकारस्य लोपः स्यात् । यथा-राजा । राजभ्याम् ॥

प्राति पदिक संज्ञक जो पद उस के अन्त्य नकार का लोप हो ॥ ७ ॥

न ङिसम्बुद्ध्योः ॥ ८ ॥

नस्य लोपो न स्यान्ङौ सम्बुद्धौ च परे । यथा-परमे व्योमन् । हे राजन् ! ॥ (ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वाच्यः)॥ चर्मणि तिला अस्य-चर्मतिला, ब्रह्मनिष्ठः॥ (वा नपुंसकानामिति वाच्यम्) ॥ हे चर्मन् ! चर्मन्वा ॥

ङि और सम्बुद्धि परे होतो प्रातिपदिकान्त नकार का लोप न हो ॥ ८ ॥

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ९

मातुँ, उँ०याः, चँ, मतोः, वेः, अ०म्यँः । मवर्णाऽवर्णान्तात्, मवर्णाऽवर्णोपधाच्च यवादि वर्जितात् परस्य मतोर्मस्य वः स्यात् । यथा–किंवान् । ज्ञानवान् । विद्यावान । लक्ष्मीवान् । यशस्वान् । भास्वान् ॥

यवादि गण पठित शब्दों को छोडकर मकारान्त और मकारोपध अवर्णान्त और अवर्णोपध शब्दों से परं मतुप् के मकारको वकारादेशहो ॥ ९ ॥

झयँः ॥ १० ॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः स्यात् । अपदान्तान्नजश्त्वम् । यथा–विद्युत्वान् वलाहकः । उदश्वित्वान् घोष ॥

झयन्त से परे मतुप् के मकार को वकार आदेशहो ॥ १० ॥

सञ्ज्ञायाम् ॥ ११ ॥

सञ्ज्ञायां मतोर्मस्य वः स्यात् । यथा–अहीवती । मुनीवती । (शरादीनां च) ॥ इति दीर्घः ॥

संज्ञा विषय में मतुप् के मकार को वकारादेशहो ॥ ११ ॥

आसन्दीवदष्ठीवच्च क्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती ॥ १२ ॥

पडिमे संज्ञायां निपात्यन्ते । यथा–आसन्दीवान्–ग्रामः । आसन्दीवदहिस्थलम् । अन्यत्राऽऽसनवान्, आसनवद्वा । अस्थि शब्दस्याष्ठी भावः–अष्ठीवान् । शरीरैकदेशसंज्ञा । अस्थिमानन्यत्र । चक्रशब्दस्य चक्रीभावः–चक्रीवान् नाम राजा । चक्रवानन्यत्र । कक्षायाः सम्प्रसारणम्–कक्षीवान् नाम ऋषिः । कक्षावानन्यत्र ।

रुमरात्वदिति-लवण शब्दस्य रुमण् भावोनिपात्यते । रुमण्वान् नाम पर्वतः। लवण वानन्यत्र । चर्मणो न लोपाभावो णत्वं च चर्मण्वती-नाम नदी । चर्मवत्यन्यत्र ॥

संज्ञा विषय में आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वत् और चर्मण्वती शब्द निपातित हैं ॥ १२ ॥

उदन्वानुदधौ च ॥ १३ ॥

उ०न्, उँ०धौ, च । उदकस्य उदन्भावो मतौ उदधौ संज्ञायां च । यथा-उदन्वान् । समुद्रः, ऋषि श्च ॥

समुद्र तथा संज्ञा वाच्य होतो मतुप् के परे होनेपर उदक शब्द को उदन्भाव निपातन किया है ॥ १३ ॥

राजन्वान् सौराज्ये ॥ १४ ॥

सौराज्ये गम्ये राजन्वानिति निपात्यते । यथा-शोभनो राजा यस्मिन्निति स राजन्वान्-देशः । राजन्वती-भूः । राजवानन्यत्र ॥

सौराज्य गम्यमान हो तो राजन्वान् शब्द निपातित है ॥ १४ ॥

छन्दसीरः ॥ १५ ॥

छँ० सि, ईरे । इवर्णान्ताद् रेफान्ताच्चोत्तरस्य मतोर्मस्य वः स्यात् । यथा-त्रिवती । गीर्वान् ॥

छन्द विषय में इवर्णान्त और रेफान्त से परे मतुप् के मकार को वकारादेश हो ॥

अनो नुट् ॥ १६ ॥

अंनः, नुट् । छन्दसि विषयेऽनन्तान्मतोर्नुडागमः स्यात् । यथा-अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः ॥

छन्दोविषय में अवन्त से परे मतुप् के मकार को नुडागम हो ॥ १६ ॥

नाद् घस्य ॥ १७ ॥

छन्दसि विषये नान्तात्परस्य घस्य नुडागमः स्यात् । यथा—सुपथिन्तरः । (भूरिदाव्नस्तुड्वक्तव्यः) ॥ भूरिदावत्तरो जनः ॥ (ईद्रथिनः) ॥ रथितरः, रथीतरः । रथीतमं रथीनाम् ॥

छंद विषय में नकारान्त से परे घ संज्ञक को नुट् का आगम हो ॥ १७ ॥

कृपोरोलः ॥ १८ ॥

कृपो ः, रः, लः । कृपोयोरेफस्तस्यलः स्यात् । कृपेर्ऋकारस्यावयवो यो रेफ सदृशस्तस्य च लकार सदृशः स्यात् । यथा—कल्पते । चक्लृपे ॥

कृपधातु के गुण हुये तथा ऋकार विशिष्ट जो रेफ है उन दोनों को लकारादेश हो॥

उपसर्गस्यायतौ ॥ १९ ॥

उ० स्यं, अं० तौ । अयतौ परे उपसर्गस्ययो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् । यथा—प्लायते । पलायते ॥

अयति धातु (अय) परे होतो उपसर्ग के रेफ को लकारादेश हो ॥ १९ ॥

ग्रो यङि ॥ २० ॥

ग्रः, यङि । गिरते रेफस्य लत्वं स्याद्यङि । यथा—गर्हितं निगलति-निजेगिल्यते । घुमास्थेतीत्वम् ॥

यङ् प्रत्यय परे होतो गृधातु के रेफ को लकारादेश हो ॥ २० ॥

अचिँ विभाषाँ ॥ २१ ॥

गिरते रेफस्य लत्वं वा स्यादजादौ । यथा-गिलति । गिरति ॥
अजादि प्रत्यय परे होतो गॄ धातु के रेफको विकल्प से लकारादेश हो ॥२१॥

परेश्चघाङ्कयोः ॥ २२ ॥

परेः, चँ, घाँङ्योः । रेफस्य लो वा स्याद् घ शब्देऽङ्क शब्दे च परे। यथा-पलिघः । परिघः । पल्यङ्कः । पर्य्यङ्कः ॥
घ और अङ्क शब्द परे होतो परि के रेफको विकल्प से लकारादेशहो ॥२२॥

संयोगान्तस्य लोपः ॥ २३ ॥

संयोगान्तं यत्पदं-तदन्तस्य लोपः स्यात् । यथा-कृतवान् ॥
संयोगान्त पद के अन्त का लोपहो ॥ २३ ॥

रात्सस्य ॥ २४ ॥

रेफादुत्तरस्य संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । यथा-कोष्टुः ॥
संयोगान्त रेफ से परे सकार का ही लोपहो इतर किसी का न हो ॥ २४ ॥

धिँ चँ ॥ २५ ॥

धादौ प्रत्यये परे सकारस्य लोपः स्यात् । यथा--एधिताध्वे ॥
धकारादि प्रत्यय परे होतो सकार का लोपहो ॥ २५ ॥

झलो झलि ॥ २६ ॥

झलः, झँलि । झलः परस्य सस्य लोपः स्याज् झलि । यथा-अभित्त । अच्छित्त ॥

झलादि प्रत्यय परे हो तो झलन्त से परे सकार का लोप हो ॥ २६ ॥

ह्रस्वादङ्गात् ॥ २७ ॥

ह्रस्वात्, अं० त् । ह्रस्वादङ्गात्परस्य सकार लोपः स्याज्झलि । यथा—अभृत । अकृत ॥

झलादि प्रत्यय परे हो तो ह्रस्वान्त अङ्ग से परे सकारका लोप हो ॥ २७ ॥

इट ईटि ॥ २८ ॥

इटः, ईटि । इटःपरस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे । (सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः) ॥ यथा -आर्तीत् ॥

ईट् परे हो तो इट् से परे सकार का लोप हो ॥ २८ ॥

स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ॥ २९ ॥

स्कोः, सं० द्योः, अंन्ते, च । पदान्ते झलि च परे यः संयोगस्तदाद्योः सकार ककारयो र्लोपः स्यात् । यथा—(लस्जेः)-लग्नः । लग्नवान् । ककारस्य (तक्षेः)-तष्टः । तष्टवान् ॥

झल् परे हो अथवा पदान्त में संयोग के आदि सकार तथा ककार का लोप हो ॥

चोः कुः ॥ ३० ॥

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि । पदान्तेच । यथा—पक्ता । पक्तुम् । पक्तव्यम् । वक्ता । वक्तुम् । वक्तव्यम् ॥

झल् परे होया पदान्त में चवर्ग को कवर्गादेश हो ॥ ३० ॥

होढः ॥ ३१ ॥

हः, ढः । हस्य ढः स्याज्झलि पदान्तेच । यथा—वोढा । वोढुम् । वोढव्यम् । सोढा । सोढुम् । सोढव्यम् ॥

झल् परे हो अथवा पदान्त में हकार को ढकारादेशहो ॥ ३१ ॥

दादेर्धातोर्घः ॥ ३२ ॥

दादेः, धातोः, घः । उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः स्याज्झलि पदान्ते च। यथा- दग्धा। दग्धुम्, दग्धव्यम्। गृहधक्। दोग्धा। दोग्धुम्। दोग्धव्यम्॥

झल् परे हो अथवा पदान्त में उपदेश में जो दकारादि धातु उसके हकार को घकारादेश हो ॥ ३२ ॥

वा द्रुह मुहष्णुहष्णिहाम् ॥ ३३ ॥

एषां हस्य वा घः स्याज्झलि, पदान्ते च । पक्षेढः । यथा— द्रोग्धा । द्रोढा । मित्र ध्रुक् । मित्रध्रुग् । मित्रध्रुट् । मित्रध्रुड् । मोग्धा । मोढा । मुक् । मुग् । मुट् । मुड् । स्नोग्धा । स्नोढा । स्नुक् । स्नुग् । स्नुट् । स्नुड् । स्नेग्धा । स्नेढा । स्निक् । स्निग् । स्निट् । स्निड् ॥

झल् परे हो अथवा पदान्त में द्रुह, मुह, स्नुह, और स्निह धातु के हकार को विकल्प से घकारादेश हो ॥ ३३ ॥

नहोधः ॥ ३४ ॥

हः, धः । नहोहस्य धः स्याज्झलि पदान्ते च । यथा—नद्धा । नद्धम् । नद्धव्यम् । उपानत् द् ॥

झल् परे हो अथवा पदान्त में नह धातु के हकार को धकारादेश हो ॥ ३४ ॥

आहस्थः ॥ ३५ ॥

आंहः, थः।आहो हस्य थः स्याज्झलिपरे।चर्त्वम्।यथा–किमात्थ ॥
झल्परे हो तो आह(ब्रूञ् के स्थान में हुआ आदेश) धातु के हकारको थकारादेशहो॥

व्रश्च भ्रस्ज सृज मृज यज राज भ्राज-च्छशां षः ॥ ३६ ॥

व्रश्चादीनां सप्तानां, छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्याज्झलि पदान्ते च यथा–व्रश्च, व्रष्टा। व्रष्टुम। व्रष्टव्यम। मूलवृट्। भ्रस्ज, भ्रष्टा। भ्रष्टुम। भ्रष्टव्यम्। धानाभृट्। सृज, स्रष्टा स्रष्टुम। स्रष्टव्यम्। रज्जुसृट्। मृज, मार्ष्टा। मार्ष्टुम। मार्ष्टव्यम्। कंसपरिमृट्। यज, यष्टा। यष्टुम्। यष्टव्यम। उपयट्। राज, सम्राट्। भ्राज, विभ्राट्। राज-भ्राजोः पदान्तार्थं ग्रहणम्। केचित्तु राष्टिः। भ्राष्टिरिति क्तिन्नन्त मिच्छन्ति। छकारान्तस्य। प्रच्छ, प्रष्टा। प्रष्टुम। प्रष्टव्यम। शब्दप्राट्। शकारान्तानाम। लिशू. लेष्टा। लेष्टुम्। लेष्टव्यम। लिट्। विश, वेष्टा। वेष्टुम। वेष्टव्यम। विट्॥

झल् परे हो अथवा पदान्त में व्रश्चादि सप्तधातु तथा छान्त और शान्त धातुओं के अन्त को षकारादेश हो ॥ ३६ ॥

एकाचो बशोभष् झषन्तस्य स्ध्वोः ॥

ए०चः, बशः, भष्, झ॰स्य, स्ध्वोः। धातो रवयवो य एकाज् झषन्तस्तदवयवस्य वशः स्थाने भष् स्यात् सकारे, ध्वशब्दे परे पदान्ते च। यथा–बुध, भोत्स्यन्ते, अभुध्वम्, अर्थभुत्। गुह,निघोक्ष्यते। न्यघुढ्वम्। पर्णघुट्॥

सकार, और ध्व परे हो तथा पदान्त में धातु का अवयव एकाच् झसन्त जो बश उसको झषन्त भष् आदेशहो ॥ ३७ ॥

दधस्तथोश्च ॥ ३८ ॥

दधः, तथोः, च । द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धातोर्बशो भष् स्यात्तथयोः स्ध्वोश्च परतः । यथा—धत्तः । धत्थ । धत्से । धत्स्व । धध्वम् ॥

त, थ, से, स और ध्व प्रत्यय परे हों तो कृत द्विर्वचन झषन्त धा धातु के बश् को भष् आदेश हो ॥ ३८ ॥

झलां जशोऽन्ते ॥ ३९ ॥

झलाम्, जशः, अन्ते । पदान्ते वर्त्तमानानां झलां जशः स्युः । यथा—वागत्र । अग्निचिदस्ति ॥

पदान्त में झलों को जश् आदेश हो ॥ ३९ ॥

झषस्तथोर्धोऽधः ॥ ४० ॥

झषः, तथोः, धः, अधः । झषः परयोस्तथयोर्धः स्याद्धातिं विहाय । यथा—लभ्, लब्धा । लब्धुम् । लब्धव्यम् । अलब्ध । अलब्धाः ॥

धा धातु वर्जित झषन्त से परे तकार और थकार को धकारादेश हो ॥ ४० ॥

षढोः कः सि ॥ ४१ ॥

षस्य ढस्य च ककारादेशः स्यात् सकारे परे । यथा—विष, वेक्ष्यति । विविक्षति । ढस्य लिह, लेक्ष्यति । लिलिक्षति ॥

सकार परे हो तो षकार तथा ढकार को ककारादेश हो ॥ ४१ ॥

रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ४२

रदाभ्याम्, नि०तः, नः, पू०स्य, च, दः । रेफदकाराभ्यां परस्य निष्ठातस्य नकारादेशः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दकारस्य

च। यथा-शॄ, ॠत इत्। रपरः। णत्वम्। शीर्णः। भिन्नः। भिन्नवान्। छिन्नः। छिन्नवान्॥

रेफ और दकार से परे निष्ठा के तकार को तथा निष्ठापेक्षा धातु के दकार को नकारादेश हो॥ ४२॥

संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ॥४३॥

सं०दे:, आतः, धातोः, य०तः। निष्ठातस्य नः स्यात्। यथा-द्राणः। द्राणवान्। ग्लानः। ग्लानवान्। म्लानः। म्लानवान्॥

संयोगादि यण्वान् आकारान्त धातु से परे निष्ठा के तकारको नकारादेश हो॥

ल्वादिभ्यः ॥ ४४॥

लूञ्-छेदने इत्यादाय वृ--वरणे इति यावत्। एकविंशतेर्लूञा दिभ्योनिष्ठातस्य नः स्यात्। यथा लूनः। लूनवान्। ग्रहिज्या०-जीनः। जीनवान्। (ॠकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठवद्भवतीति वक्तव्यम्) यथा-कीर्णिः। गीर्णिः। शीर्णिः। लूनिः। पूनिः॥ (दुग्वोर्दीर्घश्च)। (दु--गतौ)--दूनः। (टुदु-उपतापे) इत्ययं तु न गृह्यते। सानुबन्धकत्वात्। मृदुतया दुतया ' इति माघः। (पूञ् विनाशे)॥ पूनाः--यवाः। विनष्टा इत्यर्थः। पूनमन्यत्। (सिनोतेर्ग्रास कर्म कर्तृकस्य)॥ सिनो--ग्रासः स्वयमेव॥

लूञ् आदि गण पठित धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ४४

ओदितश्च ॥ ४५॥

ओ० त:,च। ओकारेतो धातोरुत्तरस्य निष्ठातस्य नः स्यात्। यथा-ओलस्जी, लग्नः। लग्नवान्। भुजो, भग्नः। भग्नवान्॥

ओदित् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो॥ ४५॥

क्षियो दीर्घात् ॥ ४६ ॥

क्षियः,दी०र्तं । दीर्घात् क्षियो निष्ठा तकारस्य नकारादेशः स्यात् यथा-क्षीणाः क्लेशाः । क्षीणा जाल्माः । क्षीणः तपस्वी ॥

दीर्घ क्षी धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ॥ ४६ ॥

श्योऽस्पर्शे ॥ ४७ ॥

श्यः, अँ०र्शे । श्यैङो निष्ठातस्य नः स्यादस्पर्शेऽर्थे । हलइति दीर्घः । यथा-शीनंघृतम् । शीनोमेदः । शीनात्रसा ॥

श्यैङ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ॥ ४७ ॥

अञ्चोऽनपादाने ॥ ४८ ॥

अञ्चः, अँ० ने । अञ्चो निष्ठातस्य नः स्यान्नत्वपादाने । यथा-समक्नौ शकुनेः पादौ ॥

अनपादान अर्थ में अञ्चु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ४८

दिवोऽविजिगीषायाम् ॥ ४९ ॥

दिवः, वि०मूँ । दिवो निष्ठा तस्यनः स्यादविजिगीषायाम् । यथा-द्यूनः । विजिगीषायांतु-द्यूतम ॥

अविजिगीषा (जीतने की इच्छाभिन्न) अर्थ में दिव् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ॥ ४९ ॥

निर्वाणोऽवाते ॥ ५० ॥

नि०णः, अँ०ते । निः पूर्वाद् वातेर्निष्ठा तस्य नत्वं निपात्यते

वातश्चेत् कर्ता न स्यात्। यथा-निर्वाणोऽग्निर्मुनिर्वा ॥

(वात (वायु) से भिन्न अर्थ वाच्य होतो निः पूर्वक वा धातु से निष्ठा के तकार को नत्व करके निर्वाण शब्द निपातन किया है ॥ ५० ॥

शुषः कः ॥ ५१ ॥

शुषेर्धातोरुत्तरस्य निष्ठातस्य कः स्यात्। यथा-शुष्कः। शुष्कवान्॥

शुष धातु से परे निष्ठा के तकार को ककारादेश हो ॥ ५१ ॥

पचो वः ॥ ५२ ॥

पचः, वः। पचेर्धातोरुत्तरस्य निष्ठातस्य वः स्यात्। यथा-पक्वः। पक्ववान् ॥

पचधातु से परे निष्ठा के तकार को वकारादेश हो ॥ ५२ ॥

क्षायो मः ॥ ५३ ॥

क्षायः, मः। क्षैधातो रुत्तरस्य निष्ठातस्य मः स्यात्। यथा-क्षामः। क्षामवान् ॥

क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश हो ॥ ५१ ॥

प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

प्रस्त्यः, अ० म्। स्त्यैधातो रुत्तरस्य निष्ठातस्य मो वा स्यात्। यथा-प्रस्तीमः। प्रस्तीतः। प्रस्तीमवान्। प्रस्तीतवान् ॥

प्र पूर्वक स्त्यै धातु से परे निष्ठा के तकार को विकल्प से मकारादेश हो ॥५४॥

अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ५५

उपसर्गरहिता इमे निपात्यन्ते। यथा-ञि-फला-फुल्लः। निष्ठातस्य

लत्वं निपात्यते। क्तवत्वेकदेशस्यापीदं निपातनमिष्यते। फुल्लवान्। क्षीबादिषु तु-क्तप्रत्ययस्यैव तलोपः, तस्यासिद्धत्वात् प्राप्तस्येटो ऽभावश्च निपात्यते। क्षीबो-मत्तः कृशः तनुः। उल्लाघो-नीरोगः ॥

उपसर्ग रहित फुल्लादि शब्द निपातित हैं ॥ ५५ ॥

नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् ५६

नु० भ्यः, अ० म्। एभ्यो निष्ठातस्य नो वा स्यात्। यथा-नुद, नुन्नः। नुत्तः। विद, विन्नः। वित्तः। उन्द, उन्नः। उत्तः। त्रा, त्राणः। त्रातः। घ्रा, घ्राणः। घ्रातः। ह्री, ह्रीणः। ह्रीतः ॥

नुद, विद, उन्द त्रा, घ्रा और ह्री धातुसे परे निष्ठाके तकार को विकल्प से नत्वहो ॥

न ध्याख्यापृमूर्छिमदाम् ॥ ५७ ॥

एभ्यो निष्ठातस्य नत्वं न स्यात्। यथा-ध्यातः। ध्यातवान्। ख्यातः ख्यातवान्। पूर्त्तः। पूर्त्तवान्। मूर्त्तः। मूर्त्तवान्। मत्तः। मत्तवान् ॥

ध्या, ख्या, पृ, मूर्छि और मद धातु से परे निष्ठा के तकार को नत्व न हो ॥

वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ ५८ ॥

वित्तः, भो० योः। विदेर्लाभार्थादुत्तरस्य क्तस्य नत्वाभावो निपात्यते, भोग्ये प्रतीते चार्थे। यथा-वित्तम्-धनम्। वित्तोऽयं पुरुषः ॥

भोग और प्रत्यय अर्थ में लाभार्थ विद धातु से क्त प्रत्यय के परे नत्व का अभाव करके वित्त यह शब्द निपातन किया है ॥ ५८ ॥

भित्तं शकलम् ॥ ५९ ॥

भित्तमिति निपात्यते शकलं चेत् स्यात्। भिन्नमन्यत् ॥

शकल (टुकड़ा) वाच्य होतो भित्त शब्द निपातित है ॥ ५९ ॥

ऋणमाधमर्ण्ये ॥ ६० ॥

ऋ०म, आ० ये । ऋधातोः क्तकारस्य नत्वं निपात्यते-अधमर्ण व्यवहारे । यथा-अयं मे ऋणं धारयति । ऋतमन्यत् ॥

आधमर्ण्य (क़र्ज़ा) व्यवहार में ऋ धातु से क्त के तकार को नकार निपातन किया है ॥ ६० ॥

नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त्तसूर्त्तगूर्त्तानि छन्दसि ॥ ६१ ॥

नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त्त, सूर्त्त, गूर्त इतीमानि छन्दसि विषये निपात्यन्ते । सदेर्नञ्पूर्वान्निपूर्वाच्च निष्ठाया नत्वा भावो निपात्यते । नसत मञ्जसा । निषत्तमस्य चरतः । असन्नं निषण्णमिति प्राप्ते । उन्देर्नञ् पूर्वस्याऽनुत्तम् । अनुन्नमिति प्राप्ते । प्रतूर्त्तमिति त्वरतेः । तुर्वीत्यस्यवा । सूर्त्तमिति सृ इत्यस्य । सृतमिति प्राप्ते । गूर्त्तमिति, गूरी इत्यस्य । गूर्णमिति प्राप्ते ।

छन्दो विषय में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त्त, सूर्त्त और गूर्त्त शब्द निपातन किये हैं ॥ ६१ ॥

क्विन्प्रत्ययस्य कुः ॥ ६२ ॥

क्विन् प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोन्तादेशः स्यात् पदान्ते । यथा-घृतस्पृक् । युङ् ॥

क्विन् प्रत्यय जिससे किया जावे उस को पदान्त में कवर्ग आदेश हो ॥६२॥

नशेर्वा ॥ ६३ ॥

नशेः[६], वा[अ] । नशेः कवर्गोन्तादेशो वा स्यात्पदान्ते । यथा-नक्, नग् । नट्, नड् ॥

नश धातु को पदान्त में विकल्प से कवर्गान्तादेशहो ॥ ६३ ॥

मोनोधातोः ॥ ६४ ॥

मः[६], नः, धातोः[६] । मान्तस्य धातोर्मस्य नकारादेशः स्यात् पदान्ते । यथा-प्रशाम्यतीति-प्रशान् ॥

पदान्त में मकारान्त धातु को नकारादेशहो ॥ ६४ ॥

म्वोश्च ॥ ६५ ॥

म्वोः[७], च[अ] । मान्तस्य धातोर्मस्य नकारादेशः स्यान्मकारे, वकारे च परे । यथा-चक्षण्वहे । चक्षण्महे ॥

मकार तथा वकार परेहोंतो माना धातु के मकारको नकारादेशहो ॥ ६५ ॥

ससजुषोरुः ॥ ६६ ॥

स[६]०षोः, रुः[१] । पदान्तस्य सस्य सजुष् शब्दस्य च रुः स्यात् । यथा-कविरत्र । भानुरुदेति । सजूर्देवेन सवित्रा ॥

पदान्त सकार और सजुष् शब्द को रुत्वादेशहो ॥ ६६ ॥

अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च ॥ ६७ ॥

इमे सम्बुद्धौ कृत दीर्घा निपात्यन्ते ॥

अवयाः, श्वेतवाः और पुरोडाः शब्द निपातित हैं ॥ ६७ ॥

अहन् ॥ ६८ ॥

१=सजूरिति पूर्वपद भावे क्विप्, रुत्वेर्वो रुपधाया इति दीर्घत्वम् । बहुव्रीहौ सहस्य सभावः, सप्रीतिरित्यर्थः

अहन्नित्यस्य रुः स्यात् पदान्ते । यथा-अहोभ्याम् ३ । अहोभिः॥
पदान्त में अहन् शब्द को नकारादेश हो ६८ ॥

रोसुपि ॥ ६९ ॥

रः, असुँपि। असुपि परेऽह्नो रेफादेशः स्यात्। यथा-अहरहः। अहर्भुङ्क्ते।
सुप्भिन्न परे होतो अहन् शब्द के नकार को रेफादेश हो ॥ ६९ ॥

अम्नरूधरवरित्युभयथाछन्दसि ॥ ७० ॥

अ०वः, इति, उ०था, छन्दसि । अम्नस्, ऊधस्, अवस् इत्येषां छन्दसि विषये रुर्वा, रेफो वा स्यात् । यथा-अम्नएव, अम्नरेव । ऊधएव, ऊधरेव । अवएव, अवरेव ॥
छन्द विषयमें अम्नस्, ऊधस् और अवस् के सको विकल्पसे रु तथा रेफ आदेश हो

भुवश्च महाव्याहृतेः ॥ ७१ ॥

भुवः, च, म०तेः । भुवस् इत्यस्य महाव्याहृते श्छन्दसि रुर्वा, रेफो वा स्यात् । यथा-भुवइति, भुवरिति ॥
छन्द विषय में महाव्याहृति भुवस् शब्द के सकार को विकल्प से रु तथा रेफ आदेश हो ॥ ७१ ॥

वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ॥ ७२ ॥

सान्तवस्वन्तस्य, स्रंस्वादेश्च दः स्यात् पदान्ते । यथा-विद्वद्भ्याम् ३ । विद्वद्भिः । स्रस्तम् । ध्वस्तम् । अनडुद्भ्याम् ॥
पदान्त में सान्त वस्वन्त स्रंसु, ध्वंसु तथा अनडुह् शब्द को दकारादेश हो ७२

तिप्यनस्तेः ॥ ७३ ॥

तिपि, अ० स्तेः। पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न तु स्ते। यथा—अचकात्, अचकाद् ॥

अस्ति वर्जित पदान्त सकारको दकारादेश हो तिप् परे होतो ॥ ७३ ॥

सिपि धातोरुर्वा ॥ ७४ ॥

सिपि, धातोः, रुः, वा । पदान्तस्य धातोः सस्य रुर्वा स्यात् सिपि। यथा—अचकाः, अचकात्, द् ॥

सिप् परे होतो पदान्त धातु के सकारको विकल्प से रुत्वादेशहो ॥ ७४ ॥

दश्च ॥ ७५ ॥

दः, च। पदान्तस्य दस्य धातोः सिपिपरे रुर्वा स्यात्। यथा अवेः, अवेत, द्

सिप् परे होतो पदान्त दकारान्त धातु को विकल्प से रुत्वादेशहो ॥ ७५ ॥

र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ॥ ७६ ॥

र्वोः, उ० याः, दीर्घः, इकः। पदान्ते रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्यात्। वग्रहणमुत्तरार्थम्। यथा—पिपठीः। गीः। धूः। पूः ॥

पदान्त में रेफ तथा वान्त धातु के उपधा इकको दीर्घादेशहो ॥ ७६ ॥

हलि च ॥ ७७ ॥

रेफवान्तस्य धातो रुपधाया इको दीर्घः स्याद्धलि। यथा-आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम् विशीर्णम्। अवगूर्णम्। वान्तस्य दीव्यति। सीव्यति ॥

हल् परे होतो रेफ और वान्त धातु के उपधा इक् को दीर्घ आदेश हो ॥ ७७ ॥

उपधायां च ॥ ७८ ॥

धातोरुपधा भूतौ यौ रेफ वकारौ हल् परौ तयोरुपधाया इको दीर्घः स्यात् । यथा–हुर्छ, हूर्छिता । मुर्छा, मूर्छिता । तुर्वी, तूर्विता । घुर्वी, घूर्विता ॥

हल् परक धातु के उपधा भूत जो रेफ और वकार उनके इक् को दीर्घादेश हो

न भकुर्छुराम् ॥ ७९ ॥

रेफ वान्तस्य भस्य कुर् छुर् इत्येतयोश्च दीर्घो न स्यात् । यथा–धुरं वहति–धुर्यः । कुर्यात् । छुर्यात् ॥

रेफान्त, वान्त, भसंज्ञक, कुर और छुर को दीर्घादेश न हो ॥ ७९ ॥

अदसोऽसेर्दादु दो मः ॥ ८० ॥

अ०सः, असेः, दात्, उ, दः, मः । अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्यातां दस्यचमः । यथा–अमुम् । अमू । अमून् ॥

असकारान्त अदस् शब्द के दकार से परे अवर्ण को उ तथा ऊ आदेश और दकार को मकारादेश हो ॥ ८० ॥

एत ईद् बहुवचने ॥ ८१ ॥

एतः, ईद्, ब० ने । अदसो दात्परस्यैत ईत्स्याद्दस्य चमोबह्वर्थोक्तौ । यथा–अमी । अमीभिः । अमीभ्यः । अमीषाम् । अमीषु ॥

बहु वचन में अदस् शब्द के दकार से परे एकार को ई और द को म आदेश हो

वाक्यस्यटेः प्लुत उदात्तः ॥ ८२ ॥

वा०स्य, टेः, प्लुतः, उ०त्तः । अधिकारोऽयं विज्ञेयः । आपाद परि समाप्तेः ॥

वाक्यके टि को उदात्त प्लुत हो यह अधिकार इसपाद की समाप्ति पर्यन्त जानना चाहिये ॥ ८२ ॥

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ॥ ८३ ॥

अशूद्रविषये प्रत्यभिवादे यद्वाक्यं तस्यटेः प्लुतः स्यात् । सचो-दात्तः । यथा-अभिवादये यज्ञदत्तोऽहम् । भो आयुष्मानेधि यज्ञदत्त ३ । (स्त्रियां न)अभिवादये गार्ग्यहम् । भो आयुष्मती भूया गार्गि! । (भो राजन्य विशां वेति वक्तव्यम्) ॥ आ-युष्मानेधि भोः ३, आयुष्मानेधि भोः । आयुष्माने धीन्द्रवर्म३न्, आयुष्माने धीन्द्रवर्मन् । आयुष्मानेधीन्द्र पालित३ , आयुष्माने धीन्द्र पालित ॥

शूद्रभिन्नके प्रत्यभिवाद में वाक्यके टिको उदात्त प्लुतहो ॥ ८३ ॥

दूराद् धूते च ॥ ८४ ॥

दूरात्, हूते । दूरात सम्बोधने यद्वाक्यं तस्यटेः प्लुतः स्यात् सचोदात्तः । यथा-अत्रागच्छ देवदत्त३ ॥

दूरसे बुलाने में वाक्यकी टिको प्लुतहो और वह उदात्त संज्ञक हो ॥ ८४ ॥

हैहेप्रयोगेहैहयोः ॥ ८५ ॥

एतयोः प्रयोगे दूराद्धूते यद्वाक्यं तत्र हैहयोरेवप्लुतः स्यात् । यथा-हे३देव ! है३देव ! देवहे३। देवहै३ ॥

है तथा हे प्रयोग में दूरसे बुलाने पर है तथा हेको ही प्लुतहो औरवह उदात्तहो

गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्

गुरोः अ०तः, अ०स्य, अपि, ए०स्य प्राचाम् । दूरात् सम्बोधने यद् वाक्यं तस्यऋदभिन्नस्यानन्त्यस्यापि गुरोःट रेकैकस्य वा प्लुतःस्यात् ।

यथा-दे३ वदत्त। देवद ३ त्त। देवदत्त ३ ॥

सम्बोधन में वर्तमान ऋकार भिन्न गुरु अनन्त्य वर्णको भी पर्याय करके विकल्प से प्लुतहो ॥ ८६ ॥

ओमभ्यादाने ॥ ८७ ॥

ओमं, अं०ने। आरम्भे ओंशब्दस्य प्लुतः स्यात्। यथा-ओ३म्-अग्निमीडे पुरोहितम् ॥

अभ्यादान (आरम्भ) अर्थमें ओम् शब्द प्लुतहो ॥ ८७ ॥

ये यज्ञकर्मणि ॥ ८८ ॥

यज्ञकर्मणि येइत्यस्य प्लुतः स्यात् यथा-ये३यजामहे ॥

यज्ञकर्म में ये इसको प्लुतहो ॥ ८८ ॥

प्रणवष्टेः ॥ ८९ ॥

प्र०वः, टे६ः। यज्ञकर्मणि टेरोमित्यादेशः स्यात्। यथा-अपां रेतांसि जिन्वतोम् ।

यज्ञकर्म में टिको ओम् यह आदेशहो ॥ ८९ ॥

याज्यान्तः ॥ ९० ॥

याज्यान्ता मन्त्रास्तेषामन्त्यस्यटेः प्लुतःस्याद् यज्ञकर्मणि। यथा-जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहाम ३ ॥

यज्ञकर्म में याज्य मन्त्रोंके टिको प्लुतहो ॥ ९० ॥

ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड् वौषडावहानादेः ॥ ९१ ॥

ब्रू० म, आदेः। एषामादेः प्लुतः स्याद् यज्ञकर्मणि। यथा-अ-

ग्नयेऽनुब्रु ३हि । अग्नये गोमयानि प्रे ३ष्य। अस्तु श्रौ ३षट् । सोमस्याग्ने वीही वौ ३षट् । अग्निमा ३ वह ॥

यज्ञ कर्म में ब्रूही, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट् और आवह शब्द के आदि को प्लुत हो।

अग्नीत्प्रेषणे परस्य च ॥ ९२ ॥

यज्ञकर्मणि अग्नीधः प्रेषणे परस्यादेश्च प्लुतः स्यात् । यथा-ओ ३श्रा३वय ॥

यज्ञकर्म विषयक अग्नीध् के प्रेषण में पर और आदि दोनों वर्णों को प्लुत हो।

विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः ॥ ९३ ॥

पृष्टप्रतिवचने हे र्वा प्लुतः स्यात् । यथा-अकार्षीः पटम् । अकार्षंहि ३ । अकार्षंहि ॥

प्रश्न के उत्तर देने में हि को विकल्प से प्लुत हो ॥ ९३ ॥

निगृह्यानुयोगे च ॥ ९४ ॥

स्वमतात् प्रच्यावनं निग्रहः । अनुयोगस्तस्य मतस्याविष्करणम् अत्र यद् वाक्यं तस्यटेर्वा प्लुतः स्यात् । यथा-अनित्यः शब्द इत्यात्थ ३ । अनित्यः शब्द इत्यात्थ ॥

निग्रही के निग्रह को प्रकाश करने में वाक्य के टि को विकल्प से प्लुत हो ९४

आम्रेडितं भर्त्सने ॥ ९५ ॥

वाक्यादेरामन्त्रितस्येति भर्त्सने द्वित्वमुक्तं तस्याम्रेडितं प्लुतः स्यात्। यथा-दस्यो! दस्यो ३ घातयिष्यामित्वाम्। चौर! चौर ३॥

भर्त्सन अर्थ में वाक्य का आम्रेडित भाग प्लुत हो ॥ ९५ ॥

अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् ॥ ९६ ॥

अङ्गेत्यनेन युक्तं तिङन्तं साकाङ्क्षं भर्त्सने प्लुतः स्यात्। यथा-अङ्ग कूज ३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म! कूजनफलमस्मिन्नेव क्षणे ज्ञास्यतीत्यर्थः॥

भर्त्सन अर्थ में अङ्ग (अव्यय) शब्द से युक्त साकाङ्क्ष तिङन्त प्लुत हो ॥ ९६ ॥

विचार्यमाणानाम् ॥ ९७ ॥

प्रमाणेन वस्तुपरीक्षणं विचारः। तत्रविषये विचार्यमाणानां वाक्यानां टेः प्लुतः स्यात्। यथा-होतव्यं दीक्षितस्य गृहा ३ इ। न होतव्य ३ मिति। होतव्यं न होतव्य मिति विचार्यते। प्रमाणै-र्वस्तु तत्वपरीक्षणं विचारः॥

विचार्यमाण वाक्यों के टि को प्लुत हो ॥ ९७ ॥

पूर्वं तु भाषायाम् ॥ ९८ ॥

भाषायां विचार्यमाणानां पूर्वं प्लुतः स्यात्। यथा-अहिर्नु ३। रज्जुर्नु॥

भाषा विषय में विचार्यमाण वाक्यों के पूर्व भाग को प्लुत हो ॥ ९८ ॥

प्रतिश्रवणे च ॥ ९९ ॥

वाक्यस्य टेः प्लुतः स्यादभ्युपगमे प्रतिज्ञाने, श्रवणाभिमुख्ये च। यथा-गां मे देहि भोः। हन्तते ददामि ३। नित्यः शब्दो भवितुमर्हति ३। देवदत्त! किमात्थ ३॥

स्वीकृत प्रतिज्ञान और श्रवणाभिमुख्यार्थ में वाक्य के टि को प्लुत हो ९९

अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः १००

अनयोरर्थयो रनुदात्तः प्लुतः स्यात। यथा-अग्नि भूत ३ इ।

पट ३ उ । अग्नि भूते पटो एतयोः प्रशान्ते टेरनुदात्तः प्लुतः । अभिपूजिते । शोभन खल्वसि माणवक ३ ॥

प्रशान्त और अभि पूजित अर्थ में वाक्य के टि को प्लुतहो ॥ १०० ॥

चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने॥१०१॥

चित्, इति, च, उ०र्थे, प्र०ने । चिदित्ये तस्मिन्निपाते उपमार्थे प्रयुज्यमाने वाक्यस्य टेरनुदात्तः प्लुतः स्यात् । यथा—अग्निचिद् भाया ३ त् । अग्निरिव दीप्यते इत्यर्थः ॥

चिद् यह अव्यय उपमानार्थमें प्रयुज्य मान होतो वाक्यके टिको अनुदात्त प्लुतहो

उपरि स्विदासीदिति च ॥ १०२ ॥

उ०त्, इति, च । अस्यटेरनुदात्तः प्लुतः स्यात् । यथा—उपरि-स्विदासी ३ त् । अधः स्विदासी ३ दित्यत्र तु विचार्य माणाना मित्युदात्तः प्लुतः ॥

उपरि स्विदासीत् इस वाक्य के टिको प्लुतानुदात्तहो ॥ १०२ ॥

स्वरितमाम्रेडितेऽसूया सम्मति कोप कुत्सनेषु ॥ १०३॥

स्व०र्म्, आ०ते, अ०षु । स्वरितः प्लुतः स्यादाम्रेडिते परेऽसूया-दौगम्ये । यथा—असूयायाम्—अभिरूपक ३ अभिरूपक रिक्तंते आभिरूप्यम् । सम्मतौ । आ [illegible] ३ अभिरूपक शोभनोऽसि । कोपे । अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।कुत्सने । शाक्तीक ३ शाक्तीक रिक्ताते शक्तिः ॥

असूया, सम्मति, कोप और कुत्सन अर्थ में आम्रेडित परे होतो पूर्व भाग के टि को स्वरित प्लुतहो ॥ १०३ ॥

क्षियाशीः प्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम् १०४

क्षियाविष्वर्थेषु आकाङ्क्षस्य तिङन्तस्य टेः स्वरितः प्लुतःस्यात् यथा-क्षियायाम्-स्वयं रथेन याति ३ उपाध्यायं पदातिं गमयति। आशिषि- पुत्रांश्च लप्सीष्ट ३ धनं च तात! । प्रैषे-पाठं स्मर ३ पाठशालं च गच्छ ॥

क्षिया (आचारभेद) आशिष् (प्रार्थना) और प्रैष (व्यापारण) अर्थ में साकाङ्क्ष तिङन्तको स्वरित प्लुतहो ॥ १०४ ॥

अनन्त्यस्याऽपि प्रश्नाख्यानयोः१०५

प्रश्ने आख्याने चार्थे अनन्त्यस्यान्त्यस्यापि पदस्य टेः स्वरितःप्लुतः स्यात्। यथा-अगमः ३ पूर्वा ३ न् ग्रामा ३ न् । सर्व पदानामयम्। आख्याने-अगम ३ म पूर्वा ३ न् ग्रामा ३ न् ॥

प्रश्न और आख्यान अर्थ में वाक्यके अनन्त्य तथा अन्त्य टिको स्वरित प्लुतहो

प्लुतावैच इदुतौ ॥ १०६ ॥

प्लुतौ, ऐचः, इ०तौ । दूराद्धूतादिषु प्लुतो विहितस्तत्रैव ऐचः प्लुतप्रसङ्गे तदवयवा विदुतौ प्लवेते । यथा-ऐ ३ति कायन!। औ ३प गव!। चतुर्मात्रा ऐचौ सम्पद्येते ॥

ऐच् को जहां प्लुत कहा जावे वहां इकार और उकार को प्लुत हो ॥ १०६ ॥

एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्द्धस्याऽऽदुत्तरस्येदुतौ ॥ १०७ ॥

एचः, अ०स्य, अ०द्रे, हूते, पूर्वस्य, अ०स्य, आत्, उ०स्य,

ई०तौ । अप्रगृह्यस्य एचोऽदूराद्धूते प्लुत विषये पूर्वस्यार्धस्याकारः प्लुतः स्यादुत्तरस्य त्वर्धस्य इदुतौ स्याताम् । प्रश्नान्ताभि पूजित विचार्यमाण प्रत्यभिवाद याज्यान्ते ष्वेव । प्रश्नान्ते-यथा-अगमः ३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् । अग्निभूत३इ । अभिपूजिते-भद्रं करोषि पट ३उ । विचार्यमाणे-होतव्यं दीक्षितस्य गृहा ३ इ । प्रत्यभिवादे— आयुष्मानेधि अग्निभूत३इ । याज्यान्ते-स्तोमैर्विधेमाग्नय३इ ॥

पाससे बुलाने में अप्रगृह्य एच् के पूर्व अर्ध भागको प्लुत विषय में आकारादेश हो और उत्तर को इकार तथा उकारादेश हो ॥ १०७ ॥

तयोर्य्वावचि संहितायाम् ॥ १०८ ॥

तयोः, य्वोः, अचि, स० म् । संहितायामचिपरे इदुतोर्यकार वकारौ स्याताम् । यथा-अग्न३याशा । पट३वाशा । अग्न ३ यिन्द्रम् । पट ३ वुदकम् ॥

संहिता विषय में अच् परे होतो प्लुत विषयक इकार तथा उकार को यकार और वकारादेश हो ॥ १०८ ॥

इत्यष्टमाऽध्यायस्य द्वितीयपादः समाप्तः ।

अथाष्टमाऽध्यायस्य तृतीयपादारम्भः ।

मतुवसोरुःसम्बुद्धौछन्दसि ॥ १ ॥

म०सोः, रुः, स० द्धौ, छं०सि । छन्दसि विषये मत्वन्तस्य वस्वन्तस्य चरुः स्यात सम्बुद्धौ परे । यथा-इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम् । मीढ्वस्तोकाय तनयाय । छन्दसिर इतिवर्तम् ॥

छन्दो विषय में सम्बुद्धि परे होतो मत्वन्त तथा वस्वन्त पद को रु आदेश हो

अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य तु वा ॥२॥

अत्र रु प्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा स्यात्। अधिकारोऽयम्। यथा–सँस्कर्त्ता ॥

यहां रुत्व प्रकरण में रु से पूर्व अनुनासिक विकल्प से हो यह अधिकार है २

आतोऽटि नित्यम् ॥ ३ ॥

आतः, अटि, नित्यम्। अटिपरेरोः पूर्वस्यातः स्थाने नित्यमनुनासिकः स्यात्। यथा–महाँ इन्द्रः ॥

अट् परे होतो रुसे पूर्व आकार को नित्य अनुनासिक हो ॥ ३ ॥

अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ॥ ४ ॥

अ०तुं, परः, अ०रः। अनुनासिकं विहायरोः पूर्वस्मात् परोऽनुस्वारागमः स्यात्। यथा–भवांश्चरति ॥

अनुनासिक को छोड़कर रुसे पूर्व वर्ण को अनुस्वारागम हो ॥ ४ ॥

समः सुटि ॥ ५ ॥

समो रुः स्यात् सुटिपरे। (सम्पुकानां सो वक्तव्यः)॥यथा–संस्कर्त्ता। सँस्सकर्त्ता ॥

सुट् परे होतो सम् के मकार को रु आदेश हो ॥ ५ ॥

पुमः खय्यम्परे ॥ ६ ॥

अम्परे खयि पुम् शब्दस्य रुः स्यात्। यथा–पुंस्कोकिलः। पुँस्कोकिलः। पुंस्फलम्। पुँस्फलम् ॥

अम्परक खय् परे होतो पुम् शब्दके मकार को रु हो ॥ ६ ॥

नश्छव्यप्रशान् ॥ ७ ॥

नः, छवि, अ॰ न् । अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यात्, नतु प्रशान् शब्दस्य । यथा—भवांश्छादयति । भवांश्चिनोति । भवांस्तरति । संश्च ॥

अम्परक छव्प्रत्याहारपरे होतो प्रशान् भिन्न नकारान्त पदको रु आदेश हो७।

उभय्यथर्क्षु ॥ ८ ॥

उ॰ था ऋक्षु । ऋक्षु अम्परे छवि नकारस्य वा रुः स्यात् । यथा—पशून् तांश्चक्रे । पशून् तान् चक्रे ॥

अम् परक छव् परे हो तो ऋग्वेद विषयक नकार को विकल्प से रु हो ॥८॥

दीर्घादटि समानपादे ॥ ९ ॥

दी॰ तं, अटि, स॰ दे । ऋक्षु दीर्घान्नकारस्य रुर्वा स्यादटि तौ चेन्नाटौ एकपादस्थौस्याताम् । यथा—देवाँ अच्छा सुमती । महाँ इन्द्रो य ओजसा । आदित्यान् याचिपामहे ॥

समानपद में अट् परे हो तो दीर्घ से परे पदान्त नकार को विकल्पसे रुत्वादेश हो ॥

नॄन् पे ॥ १० ॥

नॄनित्यस्य नस्य रुर्वा स्यात् पकारे परे । यथा—नॄँः पाहि । नॄंः पाहि । नॄन् पाहि ॥

पकार परे हो तो नॄन् के नकार को विकल्प से रुत्व हो ॥ १० ॥

स्वतवान् पायौ ॥ ११ ॥

पायौ स्वतवानित्यस्य नस्य रुः स्यात् । यथा—स्वतवाँः पायुरग्ने ॥

पायु शब्द परे हो तो स्वतवान् शब्द के नकार को रुत्वादेश हो ॥ ११ ॥

कानाम्रेडिते ॥ १२ ॥

कान्, आँ० ते । कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते परे । यथा-कांस्कानाह्वयति । काँस्कान् भोजयति ॥

आम्रेडित परे हो तो कान् के नकार को रुत्वादेश हो ॥ १२ ॥

ढो ढे लोपः ॥ १३ ॥

ढः, ढे ७, लोपः । ढस्य लोपः स्याड्ढे परे । यथा-मीढम् । लीढम् ॥

ढकार का लोप हो ढकार परे हो तो ॥ (८ । २ । ४०) सूत्रसे त के स्थान में धकार तथा (८ । ४ । ४१) इस सूत्र से हकार को ढकरादेश हुआ ॥

रो रि ॥ १४ ॥

रः, रि ७ । रेफस्य रेफ परे लोपः स्यात् । यथा-नीरक्तम् । दूरुक्तम् ॥

रेफ परे हो तो रेफ का लोप हो । (६ । ३ । १११) इस सूत्र से निर् और दुर् दीर्घ हुआ ॥ १४ ॥

खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ १५ ॥

खँ० योः, वि० यः । खरि अवसाने च परे रेफस्य विसर्जनीयः स्यात् पदान्ते । यथा-वृक्षश्छादयति । पुरुषः ॥

खर् प्रत्याहार परे हो तथा अवसान में पदान्त रेफ को विसर्जनीय आदेश हो ॥

रोः सुपि ॥ १६ ॥

सप्तमी बहुवचने परे रो रेव विसर्जनीयो नान्यरेफस्य । यथा-पयः सु । यशः सु । सर्पिः षु ॥

सुप् विभक्ति परे होतो रु के रेफ को ही विसर्जनीयादेशहो ॥ १६ ॥

भो भगो अघो अपूर्वस्य योशि १७

भो०स्य, यः, अशि । एतत् पूर्वस्य रोर्यादेशः स्यादशिपरे । यथा-भो आगच्छ । भगो अत्र । अघो अत्र । भो ददाति । भगो ददाति । अघो ददाति। अवर्णपूर्वस्य । क आस्ते।पुरुषायान्ति॥

अश् परे होतो भोस् भगोस् अघोस् तथा अवर्ण है पूर्व जिस के ऐसे रु के रेफ को यकारादेश हो ॥ १७ ॥

व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य॥१८॥

व्योः, ल०रः, शा०स्य । पदान्तयोर्यकारवकारयोर्लघूच्चारणौ वयौ वा स्याताम शिपरे। यस्योच्चारणे जिह्वाग्रो पाग्र मध्य मूलानां शैथिल्यं स लघूच्चारणः । यथा-भोयत्र । भो अत्र । भगोयत्र। भगो अत्र। अघो यत्र। अघो अत्र।कयास्ते। क आस्ते। असा वादित्यः। असा आदित्यः ॥

शाकटायन के मत में अश् परे होतो भोस्, भगोस्, अघोस् और अवर्ण है पूर्व जिस के ऐसे पदान्त यकार तथा वकार को यकार और वकारादेशहो॥१८॥

लोपः शाकल्यस्य ॥ १९ ॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्वयोर्लोपो वाशिपरे । यथा-बाल आस्ते।बाल यास्ते। अस्माउद्धर। अस्मा युद्धर। द्वावमू। द्वा अमू॥

अश् परे होतो अवर्ण पूर्व है जिस के ऐसे पदान्त यकार तथा वकार का विकल्प से लोपहो ॥ १९ ॥

ओतो गार्ग्यस्य ॥ २० ॥

ओतः, गा०स्यं । ओकारात्परस्य पदान्तस्यालघुप्रयत्नस्य यकारस्य नित्यं लोपः स्यात् । गार्ग्य ग्रहणं सन्मानार्थं । यथा—भो आशु।भयाशु ॥

अश् परे होतो पदान्त लघु प्रयत्न यकार का नित्य लोपहो ॥ २० ॥

उञि च पदे ॥ २१ ॥

अवर्ण पूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोप उञिपदे।यथा-स उ एकाग्निः॥

उञ् पद परे होतो अवर्ण पूर्वक पदान्त यकार और वकार का लोपहो २१

हलि सर्वेषाम् ॥ २२ ॥

भो भगो अघो अपूर्वस्य लघ्वलघूच्चारणस्य यकारस्य लोपः स्याद्धलि सर्वेषां मतेन । यथा—भो विद्वन् ! । भगो नमस्ते । अघो याहि । बाला हसन्ति ॥

हल् परे होतो सर्व आचार्यों के मत में भो, भगो, अघो और अवर्ण पूर्वक लघु अलघु उच्चारण यकार का लोपहो ॥ २२ ॥

मोऽनुस्वारः ॥ २३ ॥

मः, अ०रः । मान्तस्य पदस्यानुस्वारः स्याद्धलि । यथा—भवन्तं वन्दे । वनंयाति ॥

हल् परे होतो पदान्त मकार को अनुस्वार आदेश हो ॥ २३ ॥

नश्चापदान्तस्य झलि ॥ २४ ॥

नः, च, अ०स्यं, झलि । नस्य मस्य चापदान्तस्यानुस्वारः स्याद् झलि । यथा—यशांसि । पयांसि । आक्रंस्यते । अधिजिगांसते ॥

झल् परे होतो अपदान्त नकार और मकार को अनुस्वार हो ॥ २४ ॥

मोराजि समः क्वौ ॥ २५ ॥

मः, राजि, समः, क्वौ । क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् । यथा—सम्राट् ॥

क्विप् प्रत्ययान्त राजति धातु परे होतो सम् के मकार को मकारही रहे ॥२५॥

हेमपरेवा ॥ २६ ॥

मपरे हकारे परे मस्य मो वा । (ह्मल, ह्वल चलने) । यथा—किम् ह्मलयति । किंह्मलयति ॥(यवलपरे यवलावा) कियँह्यः । किंह्यः । किवँह्वलयति । किंह्वलयति । किलँह्लादयति । किंह्लादयति ॥

मकार है परे जिससे ऐसा हकार परे होतो मकार को विकल्पसे मकारही हो १६

नपरेनः ॥ २७ ॥

नपरे हकारे परे मस्य नो वा । यथा—किन् ह्नुते । किंह्नुते ॥

नकार परक हकार परे होतो मकार को विकल्प से नकारादेश हो ॥ २७ ॥

ङ्णोः कुक्टुक् शरि ॥ २८ ॥

ङकार णकारयोः कुक् टुकावागमौ वा स्यातां शरि ॥ (चयो- द्वितीयाः शरि पौष्करसादे रिति वाच्यम्)॥ यथा—प्राङ्ख्षष्ठः। प्राङ्क्षष्ठः। प्राङ् षष्ठः। सुगण्ठ्षष्ठः। सुगुण्ट्षष्ठः। सुगण्षष्ठः ॥

शर परे होतो पदान्त ङकार और णकार को कुक् और टुक् का आगम हो ॥ १८ ॥

ङः सि धुट् ॥ २९ ॥

ङात्परस्य सस्य धुड्वा । यथा—षट्त्सन्तः । षट्सन्तः ॥

ङकार से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम हो ॥ २९ ॥

नश्च ॥ ३० ॥

नः, च । नात्परस्य सस्य धुड् वा । यथा—अस्मिन्त्सधस्थे । अस्मिन् सधस्थे ॥

नकार से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम हो ॥ ३० ॥

शि तुक् ॥ ३१ ॥

नस्य पदान्तस्य शकारे परे तुग्वा स्यात् (शश्छोऽटि) इतिच्छत्व विकल्पः । पक्षे झरो झरीति च लोपः । यथा—सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्चशम्भुः, सञ्शम्भुः ॥

शकार परे होते नकारान्त पद को विकल्प से तुक् का आगम हो ॥ ३१ ॥

ङमोह्रस्वादचिङमुण्नित्यम् ॥ ३२ ॥

ङमः, ह्रस्वात्, अचि, ङमुट्, नित्यम् । ह्रस्वात् परोयो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो नित्यंङमुडागमः स्यात् । यथा—प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । कुर्वन्नास्ते ॥

ह्रस्वसे परे जो ङम् तदन्त जो पद उससे परे अच् को नित्य ङमुट् का आगम हो ॥ ३२ ॥

मय उञो वो वा ॥ ३३ ॥

मयः, उञः, वः, वा । मयः परस्य उञो वो वा स्यादचि परे । यथा—शमु अस्तु वेदिः । सम्वस्तु वेदिः । किमु उक्तम् । किम्वुक्तम् ॥

अच् परे होतो मय् से परे उञ् को विकल्प से वकारादेश हो ॥ ३३ ॥

विसर्जनीयस्य सः ॥ ३४ ॥

विसर्जनीयस्य सः स्यात् खरि। यथा—वृक्षश्छादयति। बालस्तिष्ठति। पुरुषश्चिनोति फलानि ॥

खर् परे होतो विसर्जनीय को सकारादेश हो ॥ ३४ ॥

शर्परे विसर्जनीयः ॥ ३५ ॥

शर्परे खरि विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशः स्यात्। यथा—पुरुषः क्षुरम्। घना घनः क्षोभणः ॥

शर् परक खर् परे होतो विसर्जनीय को विसर्जनीय आदेश हो ॥ ३५ ॥

वा शरि ॥ ३६ ॥

शरि परे विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो वा स्यात्। यथा—बालः शेते। बालश्शेते। वृक्षः षष्ठः। वृक्षष्षष्ठः। सर्पाः सर्पन्ति। सर्पास्सर्पन्ति ॥

शर् परे होतो विसर्जनीय को विकल्प से विसर्जनीयादेश हो ॥ ३६ ॥

कुप्वोः ≍क≍पौ च ॥ ३७ ॥

कवर्गे पवर्गे च परे विसर्जनीयस्य क्रमाज्जिह्वामूलीयोपध्मानीया वा देशौ स्याताम्, चाद् विसर्गः। यथा—नॄँ≍पाहि। नॄँ≍पाहि। नॄँःपाहि। नॄन् पाहि। नॄन्पाहि ॥

कवर्ग तथा पवर्ग परे होता विसर्जनीय को क्रमसे जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हों ॥ ३७ ॥

सोऽपदादौ ॥ ३८ ॥

सः, अं०दौ । विसर्जनीयस्य सः स्यादपदाद्योः कुप्वोःपरयोः। (पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम्)॥यथा—पयस्पाशम्।पयस्कल्पम्। पयस्कम् । पयस्काम्यति ॥

अपदादि में कवर्ग तथा पवर्ग परे होतो विसर्जनीय को सकारादेशहो ॥३८॥

इणः षः ॥ ३९ ॥

इणः परस्य विसर्गस्य षः स्यादपदाद्योः कुप्वोः परयोः। यथा—सर्पिष्पाशम्। सर्पिष्कल्पम् । सर्पिष्कम् । सर्पिष्काम्यति ॥

अपदादि में कवर्ग और पवर्ग परे होतो इण् से परे विसर्ग को षकारादेशहो ॥३९॥

नमस्पुरसोर्गत्योः ॥ ४० ॥

नं०सोः, गैत्योः । गति संज्ञकयोरनयोर्विसर्गस्य सः स्यात् कुप्वोः परयोः। यथा—नमस्करोमि । साक्षात् प्रभृतित्वात् कृञियोगे वा गति सञ्ज्ञा । तद् भावे नमः करोमि। (पुरोऽव्ययम्) इति नित्यं गति संज्ञा। पुरस्कृत्य। पुरस्करोति ॥

कवर्ग तथा पवर्ग परे होंतो गति संज्ञक नमस् और पुरस्के विसर्गको सकारादेशहो

इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य ॥ ४१ ॥

इकारोकारोपधस्याऽप्रत्ययस्य विसर्जनीयस्य षः स्यात् कुप्वोःपरयोः। यथा—निष्कृतम्। निष्पीतम्। दुष्कृतम् । दुष्पीतम् । बहिष्कृतम्। बहिष्पीतम्॥(मुहुसः प्रतिषेधः) ॥ मुहुः कामा ॥

कवर्ग और पवर्ग परे होंतो प्रत्यय भिन्न इकार उकार हैं जिन की उपधा में ऐसे विसर्जनीय को षकारादेशहो ॥ ४१ ॥

तिरसोऽन्यतरस्याम् ॥ ४२ ॥

ति०रः, अ० म् । तिरसो विसर्गस्य सो वा स्यात् कुप्वोः परयोः । यथा—तिरस्कर्त्ता । तिरः कर्त्ता । तिरस्कर्त्तुम् । तिरः कर्त्तुम्

कवर्ग और पवर्ग परे हों तो तिरसके विसर्गको विकल्प से सकारा देशहो ॥ ४२ ॥

द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोर्थे ॥ ४३ ॥

द्वि०तुः,इति, कृ०र्थे । कृत्वोर्थे वर्तमानानामेषां विसर्गस्य षः स्याद् वा कुप्वोः परयोः । यथा—द्विष्करोति । द्विः करोति । त्रिष्करोति । त्रिःकरोति । चतुष्करोति । चतुः करोति । द्विष्पचति । द्विःपचति । त्रिष्पचति । त्रिः पचति । चतुष्पचति । चतुः पचति ॥

कवर्ग और पवर्ग परे होतो कृत्वोर्थ में वर्तमान द्विस्, त्रिस् और चतुर् शब्द के विसर्ग को विकल्प से सकारा देशहो ॥ ४३ ॥

इसुसोः सामर्थ्ये ॥ ४४ ॥

इसुसो र्विसर्गस्य षः स्याद् वा सामर्थ्ये कुप्वोः परयोः । यथा—सर्पिष्करोति । सर्पिः करोति।धनुष्करोति । धनुः करोति ॥

सम्बन्धार्थ में कवर्ग तथा पवर्ग परे होतो इस् और उस् के विसर्ग को विकल्प से षकारा देशहो ॥ ४४ ॥

नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ॥ ४५ ॥

इसुसो र्विसर्गस्याऽनुत्तरपदस्थस्य समासे नित्यं षत्वं स्यात् कुप्वोः परयोः । यथा—सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालम् । सर्पिष्पानम् । धनुष्फलम् ॥

समास में कवर्ग और पवर्ग परे होतो अनुत्तरपदस्थ इस् और उस् के विसर्ग को नित्य षत्वा देशहो ॥ ४५ ॥

अतः कृकमि कंस कुम्भपात्रकुशा कर्णी ष्यनव्ययस्य ॥ ४६ ॥

अतः, कृ०षु अ०स्य । अकारादुत्तरस्यानव्ययबिसर्गस्य समासे नित्यं सः स्यात् करोत्यादिषु परेषु न तूत्तरपदस्थस्य । यथा—अयस्कारः । अयस्कामः । अयस्कंसः । अयस्कुम्भः । अयस्पात्रम् । अयस्कुशा । अयस्कर्णी ॥

समास विषय में कृ, कमि, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा, और कर्णी परे होतो अकारसे परे अव्यय भिन्न शब्दके अनुत्तरपदस्थ विसर्ग को नित्य सकारादेश हो

अधः शिरसी पदे ॥ ४७ ॥

अनयोर्विसर्गस्य सादेशः स्यात्पदशब्दे परे । यथा—अधस्पदम् । शिरस्पदम् । मयूरव्यंसकादित्वात् समासइति । अधस्पदमित्यत्र तु षष्ठी समासः ।

समास में पद शब्द परे होतो अधस् और शिरस् शब्द के अनुत्तरपदस्थ विसर्ग को सकारादेश हो ॥ ४७ ॥

कस्कादिषु च ॥ ४८ ॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः सकारो वा यथायोगमादेशः कुप्वोःपरतः स्यात् । यथा—कांस्कान्, काँस्कान् । भ्रातुष्पुत्रः ॥

कस्कादि गणपठित शब्दों के विसर्जनीय को यथा योग्य षकार या सकारादेश हो

छन्दसिवाऽप्राम्रेडितयोः ॥४९॥

छन्दसि विसर्गस्य सो वा स्यात् कुप्वोः परयोः, प्रशब्दमाम्रेडितं

च विहाय । यथा–अग्ने त्रातर्ऋतस्कविः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः । नेह । वसुनः पूर्व्यः पतिः ॥

और आम्रेडित संज्ञक को छोड़कर कवर्ग तथा पवर्ग परे होतो छन्दविषय में विसर्ग को विकल्पसे सकारादेश हो ॥ ४९ ॥

कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः ॥ ५० ॥

कः० षु, अ० तेः । छन्दस्येषु परेषु अनदितेर्विसर्गस्य सादेशः स्यात् । यथा–अपस्कः । विश्वतस्करत् । सुपेशस्करति । उरुणस्कृधि । नस्कृतम् ॥

छन्द विषय में कः, करत्, करति, कृधि और कृत शब्द परे होतो आदिति से भिन्न शब्द के विसर्ग को सकारादेश हो ॥ ५० ॥

पञ्चम्याः परावध्यर्थे ॥ ५१ ॥

प०म्याः, परौ, अ०र्थे । छन्दसि विषये पञ्चमी विसर्गस्य सः स्यादुपरि भावार्थे परिशब्दे परे । यथा–दिवस्परिप्रथमं जज्ञे ॥

अध्यर्थ (ऊपरी भाग) में परि शब्द परे होतो छन्द विषय में पञ्चमी के विसर्ग को सकारादेशहो ॥ ५१ ॥

पातौ च बहुलम् ॥ ५२ ॥

पातौ धातौ परे पञ्चमी विसर्गस्य बहुलं छन्दसि सादेशः स्यात् । यथा–दिवस्पातु । परिषदः पातु ॥

छन्द विषय में पा धातु परे होतो पञ्चमीके विसर्गको बहुलतासे सकारादेशहो

षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु ॥

छन्दस्येषु परेषु षष्ठी विसर्गस्य सादेशः स्यात् । यथा–वाचस्पतिं

विश्वकर्म्माणम् । दिवस्पुत्राय सूर्याय । दिवस्पृष्ठं भन्द मानः । तमस्पारमस्य । परिवीत इडस्पदे । दिवस्पयोदिधिषाणः । रायस्पोषेण मिमषीय ॥

छन्द विषय में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष शब्द परे होतो षष्ठी के विसर्ग को सकारादेशहो ॥ ५३ ॥

इडाया वा ॥ ५४ ॥

छन्दसि विषये इडायाः षष्ठी विसर्गस्य पति पुत्रादिषु परेषु वा सादेशः स्यात् । यथा—इडायास्पुत्रः, इडायाः पुत्रः । इडायास्पतिः, इडायाः पतिः ॥

छन्द विषय में पति पुत्रादि शब्द परे हों तो इडाशब्द से परे षष्ठी के विसर्ग को विकल्प से सकारा देशहो ॥ ५४ ॥

अपदान्तस्यमूर्द्धन्यः ॥ ५५ ॥

आपादपरिसमाप्तेरधिकारोऽयं विज्ञेयः ॥

अपदान्त स को मूर्द्धन्यादेश हो इस पाद की समाप्ति पर्यन्त यह अधिकार जानना चाहिये ॥ ५५ ॥

सहेः साडः सः ॥ ५६ ॥

साड् रूपस्य सहेः सस्य मूर्द्धन्यादेशः स्यात् । यथा—जलाषाट् । जलं सहत इत्यर्थे ॥

साड्रूप सह धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो ॥ ५६ ॥

इण्कोः ॥ ५७ ॥

इत्यऽधिकृत्य कार्य्यं स्यात् ॥

इण् और कवर्ग से परे कार्य्य हो यह अधिकार पाद की समाप्ति तक है ॥५७॥

नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ॥ ५८ ॥

एते ४ प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यामुत्तरस्य सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । नुम्व्यवाये-यथा-सर्पींषि । हवींषि विसर्जनीयव्यवधाने-सर्पिः षु । हविः षु । शर्व्यवाये- सर्पिष्षु । हविष्षु ॥

नुम् विसर्जनीय और शर् के व्यवाय (व्यवधान) में भी सकार को मूर्धन्यादेश हो

आदेशप्रत्यययोः ॥ ५९ ॥

इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशस्य प्रत्ययावयवस्य च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः। यथा-सिषेव । सुष्वाप । कविषु,प्रभुषु । कर्तृषु, बालेषु ॥

इण् और कवर्ग से परे आदेश तथा प्रत्यय के सकार को मूर्धन्यादेश हो ५९

शासिवसिघसीनांच ॥ ६० ॥

इण् कुभ्यां परस्मैषां सस्य षादेशः स्यात् । यथा-शिष्टः । शिष्टवान् । उषितः । उषितवान् । घासि- जक्षतुः । जक्षुः ॥

इण् और कवर्ग से परे शासु वस घस्लृ धातुओं के सकार को षत्वादेश हो ६०

स्तौतिण्योरेवषण्यभ्यासात् ॥ ६१ ॥

स्तौ०योः, एव, षणि, अ०त् । अभ्यासेणः परस्य स्तौतिण्यन्तयो रेव सस्य षः स्यात्-षभूते सनिपरे । यथा-तुष्टूषति । ण्यन्तस्य-सिषेवयिषति । सिषञ्जयिषति । सुष्वापयिषति ॥

षभूत—सन् प्रत्यय परे हो तो अभ्यास इण् से परे स्तौति और ण्यन्त धातु के ही सकार को षत्वादेश हो ॥ ६१ ॥

सः स्विदिस्वदिसहीनां च ॥ ६२ ॥

अभ्यासेणः परस्य ण्यन्तानामेषां सस्य स एव स्यात् षभूतेसनि परे। यथा—सिस्वेदयिषति। सिस्वादयिषति। सिसाहयिषति॥

ष भूत् सन् प्रत्यय परे होतो ण्यन्तास्वदि स्वादि तथा सहि धातुओं के अभ्यास इण् से पर सकार को सकारादेशही हो ॥ ६२ ॥

प्राक् सितादड् व्यवायेऽपि ॥ ६३ ॥

प्राक्, सि०द्. अ०ये, अपि। से वसिते त्यत्र सितशब्दात् प्राग् ये सुनोत्यादयस्तेषामड् व्यवायेऽपि षत्वं स्यात्। यथा—न्यषेधत्। न्यषेधीत्। न्यषेधिष्यत्॥

परिनिविभ्यः ७० सूत्र में कथित सित् शब्द से पूर्व २ अट् के व्यवधान में भी षत्वादेश हो ॥ ६३ ॥

स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य॥ ६४॥

स्था०पुं. अ०नं, च, अ०स्यं। प्राक् सितात् स्थादिष्वभ्यासेन व्यवायेऽपि षत्वं स्यात, एषामेव चाभ्यासस्य, न तु सुनोत्यादीनाम्। यथा—परितष्ठौ। अभिषिषेणयिषति॥

आगे के सूत्र में स्थादि धातुओं के अभ्यास के व्यवधान में जो सकार उस को तथा अभ्यास के सकार को ही षत्वादेश हो न कि सुनोत्यादिकों को॥६४॥

उपसर्गात् सुनोति सुवतिस्यातिस्तौतिस्तोभतिस्था सेनय सेध सिच सञ्ज स्वञ्जाम् ॥ ६५ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तादेषां सस्य षः स्यात् । यथा—अभिषुणोति, परिषुणोति । अभिषुवति, परिषुवति।अभिष्यति, परिष्यति । अभिष्टौति, परिष्टौति । अभिष्टोभते, परिष्टोभते । अभिष्ठास्यति, परिष्ठास्यति । अभिषेणयति, परिषेणयति । अभिषेधति, परिषेधति । अभिषिञ्चति, परिषिञ्चति । अभिषजति, परिषजति । अभिष्वजते, परिष्वजते ॥

उपसर्ग निमित्त से परे सुनोति आदि धातुओं के सकारको षत्वादेशहो ६५

सदिरप्रतेः ॥ ६६ ॥

सदिः, अ०तेः । प्रतिभिन्नादुपसर्गात्सदेः सस्य षादेशः स्यात् । यथा—निषीदति । विषीदति ॥

प्रति भिन्न उपसर्ग पूर्वक सदि धातु के स को षादेशहो ॥ ६६ ॥

स्तन्भेः ॥ ६७ ॥

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्यषादेशः स्यात् । योगविभाग उत्तरार्थः । यथा—अभिष्टभ्नाति । परिष्टभ्नाति ॥

उपसर्ग पूर्वक सूत्रस्थ स्तन्भु धातु के स को षहो ॥ ६७ ॥

अवाच्चाऽऽलम्बनाऽऽविदूर्ययोः॥६८॥

अ०तं, आँ०योः । अवादुत्तरस्य स्तन्भेः सस्य षादेशः स्यादालम्बने आविदूर्ये चार्थे । आलम्बनम्—आश्रयणम् । विदूरं विप्रकृष्टम्, तदन्य दविदूरम्, तस्य भाव आविदूर्यम् । यथा—अवष्टभ्यास्ते । अवष्टब्धा सेना । आसन्नेत्यर्थः ॥

आलम्बन और आविदूर्य अर्थ में अव उपसर्ग पूर्वक स्तन्भु धातु के सकार को षकारादेशहो ॥ ६८ ॥

वेश्चस्वनो भोजने ॥ ६९ ॥

वे ५:, च, स्वनेः, भों०ने । व्यावाभ्यमुत्तरस्य स्वनतेः सस्य षादेशः स्याद् भोजने । यथा—विष्वणति । अवष्वणति । सशब्दं भुङ्क्ते ॥

वि तथा अव उपसर्ग पूर्वक स्वन धातुके सकारको षकारादेशहो भोजन अर्थ में॥

परिनिविभ्यः सेवसित सयसिवुसह-सुट् स्तुस्वञ्जाम् ॥ ७० ॥

परिनिविभ्यः परेषामेषां सस्य षादेशः स्यात्। यथा—परिषेवते । निषेवते । विषेवते । सित । परिषितः । निषितः । विषितः । सय । परिषयः । निषयः । विषयः । सिवु । परिषीव्यति । निषीव्यति । विषीव्यति । सह । परिषहते । निषहते । विषहते । सुट् । परिष्करोति । स्तु । परिष्टौति । निष्टौति । विष्टौति । स्वञ्ज । परिष्वजते । निष्वजते । विष्वजते । दंशसञ्जस्वञ्जामिति न लोपः ॥

परि, नि और विपूर्वक सेव आदि धातु ओं के सकार को षकारा देशहो ७०

सिवादीनां वाड् व्यवायेऽपि ॥ ७१ ॥

परि निविभ्यःपरेषां सिवादीनां सस्य षो वास्या दड् व्यवायेपि । यथा—पर्यषीव्यत्, पर्यसीव्यत् । इत्यादि ॥

अड् के व्यवधान में भी परि, नि और वि उपसर्ग पूर्वक सिवादि (सिवु, सह) सुट, स्तु, स्वञ्ज) धातु ओं के सकार को विकल्प से षकारा देशहो ॥ ७१ ॥

अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु

अ०भ्यः, स्यन्दतेः, अ० षु । एभ्यः परस्याप्राणि कर्तृकस्य स्य-

न्दतेः स्यस्यपो वा स्यात्। यथा—अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते, विष्यन्दते, विस्यन्दते, । परिष्पन्दते, परिस्यन्दते । अभिष्यन्दते, अभिस्यन्दते । निष्यन्दते, निस्यन्दते वा जलम् ॥

प्राणि भिन्न अर्थ में अनु, वि, परि अभि, और निउपसर्ग से परे स्यन्द् धातु के सकार को विकल्प से षकारादेश हो ॥ ७२ ॥

वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ॥ ७३ ॥

वेः, स्कन्देः, अ०म् । वेरुत्तरस्य स्कन्देः ससस्य पो वा स्यादनिष्ठायाम् । यथा—विष्कन्ता, विस्कन्ता । विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम् । विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम् ॥

निष्ठा भिन्न प्रत्यय परे हो तो स्कन्दिर् धातु के सकार को विकल्प से षकारादेश हो।

परेश्च ॥ ७४ ॥

परेः, च अ० । अस्मात्परस्य स्कन्दतेः सस्यषो वा स्यात्। यथा—परिष्कन्दति, परिस्कन्दति । परिष्कन्ता, परिस्कन्ता । परिस्कन्तुम्. परिस्कन्तुम्॥

परि उपसर्ग से परे स्कन्दिर् धातु के सकार को विकल्प से षकारादेश हो ॥ ७४

परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ॥ ७५ ॥

प्राच्यभरतेषु प्रयोग विषयेषु परिस्कन्द इति निपात्यते । यथा—परिस्कन्दः । अन्यत्र, परिष्कन्दः ॥

प्राच्य भरत विषयक प्रयोगों में परिस्कन्द शब्द निपातित है ॥ ७५ ॥

स्फुरति स्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ॥ ७६ ॥

स्फु०त्योः, नि०भ्यः । निर्निविभ्यः परस्य स्फुरति स्फुलत्योः सस्य षो वा स्यात्। यथा—निष्फुरति, निस्स्फुरति । निष्फुरति, निस्फुरति।

विष्फुरति, विस्फुरति निष्फुलति, निस्स्फुलति । निष्फुलति, नि-स्फुलति विष्फुलति, विस्फुलति ॥

निस्, नि और वि उपसर्ग से परे स्फुरति और स्फुलति के सकार को विकल्प से षकारादेश हो ॥ ७६ ॥

वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ॥ ७७ ॥

वेः, स्कभ्नातेः, नित्यम् । वेः परस्य स्कभ्नातेः सस्य षादेशः स्यात् । यथा—विष्कभ्नाति, विष्कभ्नाति ॥

विपूर्वक स्कभ्नाति धातु के सकार को षकारादेश नित्य हो ॥ ७७ ॥

इणः षीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गात् ॥ ७८ ॥

इणः, षीध्वं, धः, अङ्गात् । इणन्तादङ्गात्परेषां षीध्वं लुङ्लिटां धस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । यथा—च्योषीढ्वम् । अच्योढ्वम् । चकृढ्वे ।

इणन्त अङ्ग से परे षीध्वम् लुङ् और लिट के धकार को मूर्धन्यादेश हो ॥ ७८ ॥

विभाषेटः ॥ ७९ ॥

विभाषा, इटः । इणः परो य इट् तस्मात्परेषां षीध्वं लुङ्लिटां धस्य वा मूर्धन्यादेशः स्यात । यथा—लविषीढ्वम्, लविषीध्वम् । अलविढ्वम्, अलविध्वम् । लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे ॥

इणन्त अङ्ग से परे जो इट् उससे परे षीध्वं लुङ् और लिट् के धकार को विकल्प से मूर्धन्यादेश हो ॥ ७९ ॥

समासेऽङ्गुलेः सङ्गः ॥ ८० ॥

अङ्गुलिशब्दात् सङ्गस्य सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । समासे यथा—अङ्गुलिषङ्गः ॥

समासमें अङ्गुलि शब्द से पर सङ्ग शब्द के सकारको षकारादेशहो ॥ ८० ॥

भीरोःस्थानम् ॥ ८१ ॥

भीरो रुत्तरस्य स्थानस्य सस्यषादेशः स्यात्समासे। यथा--भीरुष्ठानम्

समास में भीरु शब्द से परे स्थान शब्द के सकार को षकारादेशहो ॥ ८१ ॥

अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ॥ ८२ ॥

अग्ने रुत्तरस्यैषां सस्य षादेशः स्यात्समासे। यथा--अग्निष्टुत्। अग्निष्टोमः। अग्निषोमौ॥

समास में अग्नि शब्द से परे स्तुत् स्तोम और सोम के सकार को षकारादेशहो

ज्योतिरायुषः स्तोमः ॥ ८३ ॥

आभ्यामुत्तरस्य स्तोमस्य सस्य षादेशः स्यात् समासे। यथा—ज्योतिष्टोमः। आयुष्टोमः॥

समास में ज्योतिस् औरआयुस् शब्द से परे स्तोम के सकारको षकारादेशहो

मातृपितृभ्यां स्वसा ॥ ८४ ॥

आभ्या मुत्तरस्य स्वसुः सस्य षादेशः स्यात् समासे यथा--मातृष्वासा पितृष्वसा॥

समास में मातृ और पितृ शब्द से परे स्वसृ के सकार को षकारादेशहो॥

मातुः पितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ ८५ ॥

मा मृं, अ म। आभ्या मुत्तरस्या स्वसुः सस्य षो वा स्यात् समासे। यथा—मातुःष्वसा, मातुःस्वासा पितुःष्वसा, पितुस्वसा॥

समास में मातृ और पितृ शब्द से परे स्वसृ के सकार को विकल्प से षकारादेश हो ॥ ८५ ॥

अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् ८६

शब्दसंज्ञायामस्मादुत्तरस्य स्तनेः सस्य षादेशः स्यात् । यथा--अभिनिष्टानः-वर्णः ॥

शब्द संज्ञा गम्यमान हो तो अभिनिस् पूर्वक स्तन धातु के सकार को षकारादेश हो

उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८७

उ० म्, अस्तेः, यं० रः उपसर्गेभ्यः प्रादुसश्चोत्तरस्यास्तेः सस्य षादेशः स्याद् यकारेऽचि च परे । यथा--अभिषन्ति। निषन्ति । विषन्ति॥ प्रादुःषन्ति । अभिष्यात् ॥

यकार और अच् परे हो तो उपसर्ग और प्रादुस् शब्द से परे अस्ति के सकार को षकारादेश हो ॥ ८७ ॥

सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ॥ ८८ ॥

एभ्यः परस्य सुप्यादेः सस्य षादेशः स्यात् । यथा—सुषुप्तः । निःषुप्तः । विषुप्तः । सूतिरिति स्वरूपग्रहणम् । सुषूतिः । विषूतिः । निःषूतिः । दुःषूतिः । सम । सुषमम् । विषमम् । निःषमम् । दुःषमम्॥

सु, वि, निर् और दुर् से परे सुपि, सूति और सम् के सकार को षकारादेश हो

निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ॥ ८९ ॥

नि० म्. स्नातेः, कौ० ले । आभ्यामुत्तरस्य स्नातेः सस्य षादेशः स्यात् कौशले गम्ये । यथा—निष्णतः—शास्त्रेषु । नद्यां-स्नातीति नदीष्णः ॥

कुशलता गम्यमान होतो नि और नदी शब्द से परे स्नाति धातु के सकार को षकारादेश हो ॥ ८९ ॥

सूत्रं प्रतिष्णातम् ॥ ९० ॥

प्रति ष्णातमिति निपात्यते सूत्रं चेत् स्यात् । यथा-प्रतिष्णातं सूत्रम् । शुद्धमित्यर्थः ॥

सूत्र अर्थ में प्रतिष्णात शब्द निपातित है ॥ ९० ॥

कपिष्ठलो गोत्रे ॥ ९१ ॥

क० लः, गोत्रे । गोत्र विषये कपिष्ठल इति निपात्यये । यथा-कपिष्ठलो नाम यस्य सकापिष्ठलिः पुत्रः ॥

गोत्र विषय में कपिष्ठल शब्द निपातित है ॥ ९१ ॥

प्रष्ठोऽग्रगामिनि ॥ ९२ ॥

प्रष्ठः, अ०नि । अग्रगामिन्यर्थे प्रष्ठ इति निपात्यते। यथा-प्रतिष्ठित इति प्राष्ठो-गौः । अग्रतोगच्छतीत्यर्थः ॥

अग्रगामि अर्थ में प्रष्ठ शब्द निपातित है ॥ ९२ ॥

वृक्षासनयोर्विष्टरः ॥ ९३ ॥

वृ० योः, वि०रः । वृक्षे आसने च वाच्ये विपूर्वस्य स्तृणातेः षत्वं निपात्यते । यथा-विष्टरः-वृक्षः, आसनं वा ॥

वृक्ष और आसन अर्थमें विपूर्वक स्तृणाति धातु को षत्व करके विष्टर शब्द निपातन कियाहै ॥ ९३ ॥

छन्दो नाम्नि च ॥ ९४ ॥

अत्रापि विष्टरो निपात्यते । यथा–विष्टार पङ्क्तिः–छन्दः । विष्टारो बृहती–छन्दः– ॥

छन्दो नाममें भी विष्टर शब्द निपातित है ॥ ९४ ॥

गवियुधिभ्यां स्थिरः ॥ ९५ ।

आभ्यामुत्तरस्थिरस्य सस्य षादेशः स्यात् । यथा–गविष्ठिरः। युधिष्ठिरः॥

गवि और युधि शब्दसे पर स्थिर शब्द के सकार को षकारादेश हो ॥ ९५ ॥

विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ॥ ९६ ॥

एभ्य उत्तरस्य स्थलस्य सस्य षादेशः स्यात् । यथा- विष्ठलम् । कुष्ठलम् । शमिष्ठलम । परिष्ठलम ॥

वि, कु, शमि और परि शब्द से पर स्थल शब्द के सकारको षकारा देश हो

अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्कङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ॥ ९७ ॥

एभ्य उत्तरस्य स्थस्य सस्य षादेशः स्यात् । यथा–अम्बष्ठः । आम्बष्ठः । गोष्ठः । भूमिष्ठः । सव्येष्ठः । अपष्ठः । द्विष्ठः । त्रिष्ठः । कुष्ठः । शेकुष्ठः । शङ्कुष्ठः । अङ्गुष्ठः । मञ्जिष्ठः । पुञ्जिष्ठः । परमेष्ठः । बर्हिष्ठः । दिविष्ठः । अग्निष्ठः ॥

अम्बादि शब्दों से परे स्थाके सकार को षकारादेश हो ॥ ९७ ॥

सुषामादिषु च ॥ ९८ ॥

सुषामादिषु शब्देषु सस्य षादेशः स्यात् । यथा-शोभनं साम यस्यासौ-सुषामा ब्राह्मणः । इत्यादि ॥

सुषामादि गणमें षकार को षकारादेश हो ॥ ९८ ॥

एतिसंज्ञायामगात् ॥ ९९ ॥

एति, सं० मृ, अं० व । संज्ञायामेकार परस्य सस्य षादेशः स्यात्, इण् कोरुत्तरस्या गकारात् परस्य । यथा-हरयः सेना यस्यासौ हरिषेणः । परितः सेना अस्य परिषेणः ॥

संज्ञाविषय में एत् परे होतो गकार भिन्न इण कवर्ग से परे सकार को षकारादेश हो

नक्षत्राद्वा ॥ १०० ॥

संज्ञायां विषये नक्षत्र वाचिनः शब्दाद् गकारादिण्कोरुत्तरस्य सस्य षो वादेशः स्यात् । यथा-रोहिणिषेणः,रोहिणिसेनः ॥

संज्ञाविषय में एत् परे होतो गकार वर्जित नक्षत्र स्थ इण कवर्ग से परे सकार को विकल्प से षकारादेश हो ॥ १०० ॥

ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ॥ १०१ ॥

ह्र०तं, तादौ, तं०ते । ह्रस्वादुत्तरस्य सस्य षादेशः स्यात् तादौ तद्धिते परे । तर तम तय त्व तल् तस् त्यप् इमानि प्रयोजयन्ति । यथा-सर्पिष्टरम् । सर्पिष्टमम् । चतुष्टयम् । सर्पिष्ट्वम् । सर्पिष्टा । सर्पिष्टः । आविष्ट्यो वर्धते ॥

तकारादि तद्धित परेहोतो ह्रस्वसेपरे सकारको षकारा देशहो ॥ १०१ ॥

निसस्तपतावनासेवने ॥ १०२ ॥

निसः, तं०तौ, अं०ने । निसः सस्य षादेशः स्यादना सेवने

तपतौ परतः। आसेवनम्।पौनः पुन्यम्। यथा–निष्टपति सुवर्णम्। सकृदग्निं स्पर्शयतीत्यर्थः॥

अनासेवन अर्थमें तप धातुपरे होतो निसके सकार को षकारा देशहो ॥ १०२

युष्मत्तत्ततक्षुः ष्वन्तः पादम् ॥१०३॥

यु॰षु, अ॰ म्।पादमध्यस्थस्य सस्य षादेशः स्या त्तकारादिष्वेषु परेषु। युष्मदादेशः त्वं त्वातेतवाः। यथा–त्रिभिष्ट्वं देव! सवितः!। तेभिष्ट्वा। अभिष्टे। अप्स्वग्ने! सधिष्टव। अग्निष्टद्विश्वम्। द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः॥

युष्मद् तद् और ततक्षु तकारादि शब्द परेहोतो पादस्थ सकार को षकारादेशहो

यजुष्येकेषाम् ॥ १०४ ॥

यॅ॰षि, एँ॰म्। युष्मत्तत्ततक्षुषु परतः सस्य षो वा स्यात्।यथा–अर्चिभिष्ट्वम्। अग्निष्टे अग्रम्। अर्चिभिष्टतक्षुः। पक्षे। अर्चिभिस्त्व मित्यादि॥

यजुर्वेद विषयमें तकारादि युष्मद् तद् और ततक्षु परे होतो विकल्प से सकारको षकारादेश हो॥ १०४

स्तुतस्तोमयोः छन्दसि ॥ १०५॥

छन्दस्यनयोः सस्यषो वा स्यात्।यथा-नृभिष्टुतस्य। नृभिःस्तुतस्य। गोष्टोमम्। गोस्तोमम्॥

छन्दो विषय में स्तुत और स्तोम के सकार को विकल्पसे षकारा देशहो॥

पूर्वपदात् ॥१०६॥

पूर्वपदस्था न्निमित्तात् परस्य सस्यषो वास्याच्छन्दसि। यथा–

यदिन्द्राग्नी दिविष्ठः। युवंहिस्थः स्वर्पती ॥
छन्द विषयमें पूर्वपदस्थ निमित्तसे परे सकार को विकल्पसे षकारादेश हो।१०६

सुञः ॥ १०७ ॥

छन्दसिपूर्व पदस्थान्निमित्तात् परस्य सुञो निपातस्य सस्यपः स्यात्। यथा- ऊर्ध्व ऊषुणः अभीषुणः॥
छन्द विषयमें पूर्वपदस्थ निमित्तसे परे सुञ्के निपात सकार को षकारादेश हो

सनोतेरनः ॥१०८॥

सनोतेः, अनः। सनोतेर नकारान्तस्य सस्य पः स्यात्। यथा- गोपाः। नृपाः॥
सनोति के अनकारान्त सकार को षकारादेश हो॥ १०८ ॥

सहेः पृतनर्त्ताभ्यांच ॥ १०९ ॥

आभ्या मुत्तरस्य सहेः सस्य पः स्यात्। यथा-पृतनाषाहम्। ऋताषाहम् ॥
पृतना और ऋत शब्द से परे सहि धातु के सकार को षकारादेश हो।१०९।

न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥ ११० ॥

रेफ परस्य सस्य सृप्यादीनां सवनादीनां च पो न स्यात्। यथा- पुरा क्रूरस्य विसृपः। वाचो विसर्जनम्। दिविस्पृशम्। निस्पृहं वक्ति। सवनादीनाम्। सवने २ सूते ॥
रेफसे परे सृपि सृजि स्पृशि स्पृहि और सवनादि गण पठि। सकार को षनहो

सात्पदाद्योः ॥ १११ ॥

अनयोः षत्वं न स्यात् । यथा—अग्निसात् । दधिसात् । पदादेः दधिसिञ्चति । मधु सिञ्चति ॥

सात् और पदादि सकार को षत्व नहीं । १११ ॥

सिचो यङि ॥ ११२ ॥

सिचः, यङि ।यङिपरे सिचः सस्य षत्वं न । यथा—सेसिच्यते ॥

यङ् परे होतोसिच् के सकार को षकार न हो ॥ ११२ ॥

सेधतेर्गतौ ॥ ११३ ॥

से० ते ः, गतौ । गतौ वर्त्तमानस्य सेधतेः सस्य षत्वंन स्यात् । यथा—अभिसेधयति गाः । परिसेधयति गाः ॥

गति में वर्त्तमान सेधति धातु के सकार को षत्वनहो ॥ ११३ ॥

प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ॥११४ ॥

इमौ निपात्येते । यथा—प्रतिस्तब्धः । निस्तब्धः ।

प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध शब्दों में षत्वका निषेध निपातनकियाहै ॥ ११४ ॥

सोढः ॥ ११५ ॥

सोढ्रूपस्य सहेः सस्य षत्वं न स्यात् । यथा—परिसोढा ॥

सोढ्रूप सह धातु के सकार को षकारा देशनहो ॥ ११५ ॥

स्तम्भुसिवुसहां चङि ॥ ११६ ॥

उपसर्ग निमित्तादेषांसस्य षोनस्याच्च धङि परे। यथा-पर्य तस्तम्भत्। पर्यसी षिवत्। पर्यसीषहत् ॥

उपसर्ग निमित्त से परे स्तम्भुसिवु और सह के षकार को षकारादेश नहो ११६॥

सुनोतेः स्यसनोः ॥ ११७ ॥

स्ये, सनि च, परे सुञ् षो न स्यात्। यथा-अभिसोष्यति। परिसोष्यति। अभिसुसूः ॥

स्य और सन परे होंतो सुञ् धातु के सकार को षनहो ॥ ११७ ॥

सदेः परस्य लिटि ॥ ११८ ॥

सदे रभ्यासात् परस्य षत्वं न स्याल्लिटि। यथा-निषसाद ॥

अभ्यास से परे सदि धातुके सकार को षत्वनहो ॥ ११८ ॥

निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि ११९

निऽभ्यः, अं० ये, वा छं० सि। अत्र षो वा स्यात्। यथा-न्यषीदत्, न्यसीदत्। व्यषीदत्, व्यसीदत्। अभ्यषीदत्, अभ्यसीदत् ॥

छन्द विषय तथा अट् के व्यवाय में नि, वि और अभि शब्द से परे सकार को विकल्प से षत्व हो ॥ ११९ ॥

इत्यष्टमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥

अथाऽष्टमाध्यायस्य चतुर्थ पादारम्भः ॥

रषाभ्यांनोणः समानपदे ॥ १ ॥

एकपदस्थाभ्यां रेफ षकाराभ्यामुत्तरस्य नस्य णः स्यात् समानपदे। यथा-आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम्। षात्। कुष्णाति। मुष्णाति ॥

एक पदस्थ रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश हो समान पद में ॥१॥

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ॥ २ ॥

अट् कवर्ग पवर्ग आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवमिलितैश्च व्यवायेऽपि रषाभ्यामुत्तरस्य नस्य णः स्यात् समान पदे। यथा-अड्व्यवाये--करणम्। हरणम्। कवर्गव्यवाये-अर्केण। मूर्खेण। पवर्ग व्यवाये दर्पेण।रेफेण।गर्भेण। चर्मणा।आङ्व्यवाये-पर्याणद्धम्।निराणद्धम्॥ नुम् व्यवाये--बृंहणम्। बृंहणीयम्॥

अट् कवर्ग पवर्ग आङ् और नुम् के व्यवधान में भी रेफ षकार से परे नकार को ण हो ॥ २ ॥

पूर्वपदात्संज्ञायामगः ॥ ३ ॥

पूर्व० त्, सं० म्, अगः। पूर्व पदस्थान्निमित्तात् परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायां, नतुगकारव्यवाये। यथा--द्रुरिव नासिका यस्य सः--द्रुणसः। खरणसः। शूर्पणखा॥

गकार वर्जित व्यवधान में एवं संज्ञाविषय में पूर्वपदस्था निमित्त से परे नकारको ण हो॥

वनंपुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः ॥ ४ ॥

पुरगा मिश्रका सिध्रका शारिका कोटरा अग्रे इत्येभ्यः पूर्वपदेभ्यः उत्तरस्य वननस्य णः स्यात् संज्ञायां विषये। यथा-पुरगावणम्। मिश्रकावणम् ।सिध्रकावणम्। शारिकावणम्। कोटरावणम्। अग्रेवणम्॥

संज्ञाविषयमें पुरगादि शब्दोंसेपरे वनस्थ नकारको णत्वादेश हो ॥ ४ ॥

प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्र कार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि ॥ ५ ॥

प्र०भ्यः, अ०मू, अपि । असंज्ञायामपि एभ्य उत्तरस्य वनस्य नस्यणः स्यात् । यथा--प्रवणम् । निर्वणम । अन्तर्वणम् । शरवणम् । इक्षुवणम।प्लक्षवणम् । आम्रवणम । कार्ष्यवणम् । खादिरवणम् । पीयूक्षावणम ॥

असंज्ञा विषयमें भी प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर और पीयूक्षा शब्द सेपरे वनस्थ नकार को णकारा देशहो ॥ ५ ॥

विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः ॥ ६ ॥

वि० षा, ओ०भ्यः । एभ्य उत्तरस्य वनस्य नस्य णत्वं वास्यात्। यथा—दूर्वावणम्,दूर्वावनम् । शिरिषवणम्, शिरिषवनम ॥

ओपधि और वनस्पति वाचक शब्दोंसेपरे वनस्थ नकार को विकल्प से णकारा देशहो ॥ ६ ॥

अह्नोऽदन्तात् ॥ ७ ॥

अ०नः,अ०त्। अदन्तात् पूर्व पदस्थाद् रेफादुत्तरस्य ऽह्नो नस्य णः स्यात् । यथा—पूर्वाह्णः । सर्वाह्णः । अपराह्णः ॥

अदन्त पूर्वपदस्थ रेफ से परे अहन् शब्द के नकार को णकारादेश हो ॥ ७ ॥

वाहनमाहितात् ॥ ८ ॥

वा०मू, आ० त। आरोप्य यदुह्यते तदवाचिस्थान्निमित्तात् परस्य वाहननस्य णत्वं स्यात् । यथा—इक्षु वाहणम । शरवाहणम ॥

आरोप्य (रखकर) जो वस्तु लेजाया जावे उस कथन के निमित्त से परे वाहन के न को णत्वादेश हो ॥ ८ ॥

पानं देशे ॥ ९ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य पानस्य नस्य णत्वं स्याद् देशे गम्ये । यथा—क्षीरं पानं येषाम्—ते क्षीरपाणाः—उशीनराः । सुरापाणाः--पाश्चात्याः ॥

देश गम्य मान होतो पूर्वपदस्थ निमित्त से परे पान के नकार को णत्वादेशहो

वा भावकरणयोः ॥ १० ॥

भावे करणे च देशे वाच्ये पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्यपानस्य नस्य वा णत्वं स्यात्। यथा—क्षीरपाणाः,क्षीरपानाः—उशीनराः।सुरापाणाः, सुरापानाः--पाश्चात्याः ॥

भाव और करण में देश वाच्य होतो पूर्वपदस्थ निमित्त से परे पानस्थ नकार को विकल्प से णत्वादेशहो ॥ १० ॥

प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ॥ ११ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य एषु स्थितस्य नस्यणो वा स्यात् । यथा—प्रातिपदिकान्ते—माषवापिणौ, माषवापिनौ । नुमि—व्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि । विभक्तौ—माषवापेण, माषवापेन ॥

पूर्वपदस्थ निमित्तसे परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को विकल्प से णकारा देशहो ॥ ११ ॥

एकाजुत्तरपदे णः ॥ १२ ॥

एकाऽजुत्तरपदं यस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य,

प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णत्वं स्यात् । यथा—वृत्रहणौ । क्षीरपाणि । क्षेरपेण ॥

एक अच् है उत्तरपदमें जिसके ऐसे समास में पूर्वपदस्थ निमित्तसे परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णत्वहो ॥ १२ ॥

कुमति च ॥ १३ ॥

कवर्गवत्युत्तरपदे पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य प्राति पदिकान्त नुम्--विभक्तिस्थस्य नस्य णत्वं स्यात् । यथा—स्वर्गकामिणौ । वस्त्रयुगाणि । खरयुगेण ॥

कुमान् उत्तरपद में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो ॥ १३ ॥

उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य १४

उ० त्, अ० से, अपि, णो० स्य । उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः स्यात् समासेऽसमासेऽपि । यथा—प्रणमति । प्रणदति । प्रणायकः । परिणायकः ॥

समास या असमास में उपसर्गस्थ निमित्त से परे णोपदेश धातु के नकार को णकारादेश हो ॥ १४ ॥

हिनुमीना ॥ १५ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्यानयोर्नस्य णः स्यात् । यथा—प्रहिणोति । प्रमीणाति ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे हिनु और मीना के न को णादेश हो ॥ १५ ॥

आनि लोट् ॥ १६ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य लोडादेशस्याऽऽनीत्यस्य नस्य णः

स्यात् । यथा—प्रभवाणि । प्रयाणि । परिवपाणि ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे लोट् के स्थानमें आदेश आनि के नकारको णत्वादेश हो॥

नेर्गद नद पत पद घुमास्यति हन्ति याति वाति द्राति प्साति वपति वहति शाम्यति चिनोति देग्धिषु च॥ १७ ॥

ने:, ग०षु, च । उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नेर्णः स्याद् गदादिषु परेषु । यथा—प्रणिगदाति । परिणिगदाति । प्रणिनदाति । परिणिनदाति । प्रणिपताति परिणिपताति । प्रणिपद्यते । परिणिपद्यते । प्रणिददाति । परिणिददाति । प्रणिदधाति । परिणिदधाति । प्रणिमिमीते । परिणिमिमीते । प्रणिमयते । परिणिमयते । प्रणिष्यति । परिणिष्यति । प्रणिहन्ति । परिणिहन्ति । प्रणियाति । परिणियाति । प्रणिवाति । परिणिवाति । प्रणिद्राति । परिणिद्राति । प्रणिप्साति । परिणिप्साति । प्रणिवपति । परिणिवपति । प्रणिवहति । परिणिवहति । प्रणिशाम्यति । परिणिशाम्यति । प्रणिचिनोति । प्ररिणिचिनोति । प्रणिदोग्धि । परिणिदोग्धि ॥

उपसर्ग निमित्त से परे निके नकार को णत्वादेश हो गद, नद, पत, पद, घु संज्ञक मा, (मेङ्, मा) स्यति, हन्ति, याति, वाति, द्राति, प्साति, वपति, वहति, शाम्यति, चिनोति और देग्धि परे होतो ॥ १७ ॥

शेषे विभाषाऽकखादावषान्तउपदेशे

शेषे, वि० षा, अ० दौ, अ० न्ते, उ० शे । उपदेशे कादि खादि षान्तवर्जे गदनदादेरस्मिन्—धातौ परे उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्यनेर्नस्य णोवा स्यात्। यथा--प्रणिभवति, प्रनिभवति। प्रणिपचति, प्रनिपचति ॥

उपदेश में ककारादि खकारादि तथा षान्त वर्जित, पूर्व सूत्रस्थ धातुओं

मिश्र धातु परे हों तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे मि के नकार को विकल्प से णकारादेश हो ॥ १८ ॥

अनितेः ॥ १९ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्यानितेर्नस्य णत्वं स्यात् । यथा-प्राणिति । पराणिति ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अन धातु के नकार को णत्वादेश हो ॥ १९ ॥

अन्तः ॥ २० ॥

पदान्तस्य अनिते र्नस्य णत्वं स्यादुपसर्गस्थान्निमित्तात् परश्चेत् । यथा-हे प्राण् ! । हे पराण् ! ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे पदान्त अनधातु के नकार को णत्वादेश हो ॥२०॥

उभौ साभ्यासस्य ॥ २१ ॥

साभ्यासस्याऽनितेरुभयोर्नयोर्णत्वादेशः स्यात् निमित्तेसति । यथा-प्राणिणिषति । प्राणिणत् ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अभ्यास सहित अन के दोनों नकारोंको णत्वादेश हो ॥

हन्तेरत्पूर्वस्य ॥ २२ ॥

हन्तेः, अं० स्य । उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य अपूर्वस्य हन्ते र्नस्य णत्वं स्यात् । यथा-प्रहण्यते । प्रहणनम् ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अकार है पूर्व जिसके ऐसे हन्ति के नकार को णत्वादेश हो ॥ २१ ॥

वमोर्वा ॥ २३ ॥

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library
मसूरी
MUSSOORIE

अवाप्ति सं०
Acc. No.............................

कृपया इस पुस्तक को निम्नलिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped below.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 491.25
PAN
125486
LBSNAA

Sans
491.25
प्राणिनी
अवाप्ति सं०
ACC. No. 125486
वर्ग सं.
Class No. 491.25
पुस्तक सं.
Book No. पाणि
लेखक
Author पाणिनी
शीर्षक
Title अष्टाध्यायी: 1

Sans
491.25
पाणिनी

LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 125486

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving